हरिवंशपुराण

(हिन्दी टीका सहित)

भाग : २

हे द्विज ! तेरी पुत्री राक्षसोंने तेजसेभी नहीं छुई हैं देखो यज्ञवाटमें मैंने मायासे स्थापन कर रक्खी है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षट्पुरवधे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् जन्मेजय ! जब सेवकोंसहित राजा बांध लिये तब असुरोंको बहुत कष्ट प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ और बलदेव और कृष्णसे आदि लेकर यादवोंके बाणोंसे वींधे हुए दिशाओंमें दौडने लगे ॥ २ ॥ तब दानवोंमें श्रेष्ठ निकुंभ क्रोधित होकर उनसे यह वचन कहने लगा कि, हे असुरो ! प्रतिज्ञाको भेदन करके भयसे विह्वल हुए कहां जाते हो ॥ ३ ॥ अरे ! यहभी

न चासुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः खल्वपि चेतसा ॥ यज्ञवाटे निरीक्ष्यन्तां मायया निहिता मया ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विशाम्पते आविवेशासुरांश्चाथ कश्मलं जनमेजय ॥ १ ॥ दिशः प्रतस्थुस्ते वीरा वध्यमानाः समन्ततः ॥ कृष्णानन्तप्रभृतिभिर्यदुभिर्युद्धदुर्मदैः ॥ २ ॥ निकुम्भस्तानथोवाच रुषिते दानवोत्तमः ॥ भित्त्वा प्रतिज्ञां किं मोहाद्भयार्ता यात विह्वलाः ॥ ३ ॥ हीनप्रतिज्ञाः काँल्लोकान्प्रयास्यथ पलायिताः ॥ अगत्वापचितिं युद्धे ज्ञातीनां कृतनिश्चयाः ॥ ४ ॥ फलं जित्वेह भोक्तव्यं रिपून्समरकर्कशान् हतेन चापि शूरेण वस्तव्यं त्रिदिवे सुखम् ॥ ५ ॥ पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रक्ष्यथ हे मुखम् ॥ दारान्वक्ष्यथ किं चापि धिग्धिक्किं किं न लज्जथ ॥ ६ ॥ एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः ॥ द्विगुणेन च वेगेन युयुधुर्यदुभिः सह ॥ ७ ॥ उत्सवे युद्धशौण्डानां नानाप्रहरणैर्नृप ॥ ये यान्ति यज्ञवाटं तं तान्निहन्ति धनञ्जयः ॥ ८ ॥

जानते हो कि हीनप्रतिज्ञावाले और युद्धमें भागे हुए नीचे लोकोंको जाया करते हैं. अरे ! निश्चय करके ज्ञातियोंको बदला दो ॥ ४ ॥ युद्धमें कठोर शत्रुओंको जीतकर फल भोगो; युद्धमें सन्मुख मृत्यु हो तोभी स्वर्गमें वसते हैं ॥ ५ ॥ भागके घर गये हुए क्या सुख देखोगे, स्त्रियोंसे जाकर क्या कहोगे, अरे ! तुम्हारे जीवनको धिक्कार है ! हे दैत्यो ! तुमको लज्जा क्यों नहीं आती है ॥ ६ ॥ ऐसे कहे हुए वे असुर लज्जित होकर आये, और आनकर दुगुण वेगसे लडनेलगे ॥ ७ ॥ और जो यज्ञवाटमें जाते थे, तिनको अर्जुन मारता था ॥ ८ ॥

नकुल, सहदेव, भीमसेन, युधिष्ठिर, येभी यक्षमें प्राप्त हुओंको मारते थे ॥ ९ ॥ और आकाशमें गये हुए असुरोंको द्विजोंमें उत्तम प्रवर और जयंत दोनों मारते हुए, पश्चात् असुरोंके रुधिरसे बालरूपी शिवालवाली चक्ररूप कछुओंवाली, रथरूप भँवरवाली, हस्तीरूप पर्वतवाली ॥ १० ॥ ध्वजा भालेरूप वृक्षोंसे आच्छादित, और शूरवीरोंके शब्दसे शब्दवाली और गोविंदरूप शैलसे उत्पन्न होनेवाली ॥ ११ ॥ और भयानकोंके चित्तको मथनेवाली और रुधिरके बूंदोंसे व्याप्त और तलवाररूप तरंगोंसे व्याप्त नदी रणसे वहने लगी; जैसे वर्षाऋतुमें जलकी नदी वहती है ॥ १२ ॥

यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ द्यां प्रयातान् जघानैन्द्रिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ अथासुरासृक्तोयाढ्या केश-शैवलशाद्वला ॥ चक्रकूर्मरथावर्ता गजशैलानुशोभिनी ॥ १० ॥ ध्वजाकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्कुष्टनादिनी ॥ गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी ॥ ११ ॥ असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी ॥ सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे ॥ १२ ॥ तान्हत्वैव निकुम्भस्तु वर्द्धमानांश्च शात्रवान् ॥ हतान्सर्वान्सहायांश्च वीर्यादेवोत्पपात ह ॥ १३ ॥ स वारितो जयन्तेन प्रवरेण च भारत ॥ शरैः कुलिशसंकाशैर्निकुम्भो रणकर्कशः ॥ १४ ॥ सन्निवृत्याथ दष्टोष्ठः परिघेण दुरासदः ॥ प्रवरं ताडयामास स पपात महीतले ॥ १५ ॥ ऐन्द्रिस्तं पतितं भूमौ बाहुभ्यां प्ररिषस्वजे ॥ विदित्वा चैव सप्राणं हित्वाऽसुरमभिद्रुतः ॥ १६ ॥ अभिद्रुत्य निकुम्भं च निस्त्रिंशेन जघान ह ॥ परिघेणापि दैतेयो जयन्तं समताडयत् ॥ १७ ॥ ततश्च बहुलं गात्रं निकुम्भ-स्यैन्द्रिराहवे ॥ स चिन्तयामास तदा वध्यमानो महासुरः ॥ १८ ॥

पश्चात् निकुंभ शत्रुओंको बढे हुए देखकर और अपने सहायकोंको हत देखकर वीर्यसे ऊपरको उछला ॥१३॥ तब निकुंभको जयंतने और प्रवरने निवारण कर दिया, पश्चात् वज्रकेसे शरोंसे और लोहेके मूसलसे क्रोधसे होठोंको फडकाकर रणकर्कश ॥१४॥ निकुंभने प्रवरको ताडित किया, जिससे यह प्रवर पृथ्वीपर गिर गया ॥१५॥ तब जयंतने इस पडे हुएको भुजाओंसे आलिंगन किया; तब इसको प्राणोंसहित जानकर और सन्मुख आये असुरको देखकर ॥१६॥ निकुंभकी ओर दौडा और इस निकुंभको खड्गसे मारा; जब निकुंभने मूसलसे जयंतको ताडन किया ॥१७॥ निकुंभ और

जयतक युद्धमें यह वध्यमान महासुर विचारने लगा ॥१८॥ कि ज्ञातिको मारनेवाले कृष्णचंद्रके साथ युद्ध करूंगा और उस कृष्णको हराऊंगा,इस इन्द्रके पुत्रके युद्धसे क्या है ॥१९॥यह निश्चय करके अंतर्ध्यान हो गया, और जहां महाबली कृष्णचंद्र थे उस स्थानमें युद्धके निमित्त गया ॥२०॥ पश्चात् ऐरावत स्कंधपर स्थित हुआ इन्द्र देवताओंके सहित युद्ध देखनेको आया॥२१॥और अपने पुत्र जयंतसे साधु २ कह सराहना कर मिला; और यह धर्मात्मा इन्द्र मोहवर्जित प्रवरसेभी मिले॥२२॥तब रणमें दुर्जय जयंतको रणमें जीता हुआ देखकर इन्द्रकी आज्ञासे स्वर्गमें नगाडे बजाये

कृष्णेन सह योद्धव्यं वैरिणा ज्ञातिघातिना ॥ श्रावयामि किमात्मानमाहवे शक्रसूनुना ॥ १९ ॥ एवं स निश्चयं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ जगाम चव युद्धार्थं यत्र कृष्णो महाबलः ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वैरावतस्कन्धमास्थितो बलनाशनः ॥ द्रष्टुमभ्यागतो युद्धं जहृषे सह देवतैः ॥ २१ ॥ साधु साध्विति पुत्रं च परितुष्टः स सस्वजे ॥ प्रवरं चापि धर्मात्मा सस्वजे मोहवर्जितम् ॥ २२ ॥ देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्वासवाज्ञया ॥ जयमानं रणे दृष्ट्वा जयन्तं रणदुर्जयम् ॥ २३ ॥ ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम् ॥ अर्जुनेन स्थितं सार्धं यज्ञवाटाविदूरतः ॥ २४ ॥ स नादं सुमहान्कृत्वा पक्षिराजमताडयत् ॥ परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च ॥ २५ ॥ नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम् ॥ यमौ च वासुदेवं च साम्बं कामं च वीर्यवान् ॥२६॥ युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत ॥ न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ २७ ॥ यदा तु नैवापश्यंस्तं तदा बिल्वोदकेश्वरम् ॥ दध्यौ देवं हृषीकेशः प्रमथानां गणेश्वरम् ॥ २८ ॥

गये ॥२३॥ तब निकुंभने भगवान्‌को रणमें दुर्जय देखकर अर्जुनको यज्ञवाटके निमित्त देख ॥२४॥ निकुंभने घोर शब्द करके पक्षिराजको ताडन किया;और घोरपरिघसे बलदेवजी और सात्यक ॥२५॥ नारायण अर्जुन और भीम युधिष्ठिर नकुल सहदेव सांब प्रद्युम्न इन सम्पूर्णोंके साथ॥२६॥ यह शीघ्रकारी दैत्य मायासे युद्ध करने लगा;और इन सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवालोंको यह नहीं दीखा॥२७॥जब यह नहीं दीखा तब हृषीकेश भग-

नकुल, सहदेव, भीमसेन, युधिष्ठिर, येभी यक्षमें प्राप्त हुओंको मारते थे ॥ ९ ॥ और आकाशमें गये हुए असुरोंको द्विजोंमें उत्तम प्रवर और जयंत दोनों मारते हुए, पश्चात् असुरोंके रुधिरसे बालरूपी शिवालवाली चक्ररूप कछुओंवाली, रथरूप भँवरवाली, हस्तीरूप पर्वतवाली ॥ १० ॥ ध्वजा भालेरूप वृक्षोंसे आच्छादित, और शूरवीरोंके शब्दसे शब्दवाली और गोविंदरूप शैलसे उत्पन्न होनेवाली ॥ ११ ॥ और भयानकोंके चित्तको मथनेवाली और रुधिरके बूंदोंसे व्याप्त और तलवाररूप तरंगोंसे व्याप्त नदी रणसे वहने लगी; जैसे वर्षाऋतुमें जलकी नदी वहती है ॥ १२ ॥

यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ द्यां प्रयातान् जघानैन्द्रिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ अथासुरासृक्तोयाढ्या केश-शैवलशाड्वला ॥ चक्रकूर्मरथावर्ता गजशैलानुशोभिनी ॥ १० ॥ ध्वजाकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्कुष्टनादिनी ॥ गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी ॥ ११ ॥ असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी ॥ सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वैव निकुम्भस्तु वर्द्धमानांश्च शात्रवान् ॥ हतान्सर्वान्सहायांश्च वीर्यादेवोत्पपात ह ॥ १३ ॥ स वारितो जयन्तेन प्रवरेण च भारत ॥ शरैः कुलिशसंकाशैर्निकुम्भो रणकर्कशः ॥ १४ ॥ सन्निवृत्याथ दष्टोष्ठः परिघेण दुरासदः ॥ प्रवरं ताडयामास स पपात महीतले ॥ १५ ॥ ऐन्द्रिस्तं पतितं भूमौ बाहुभ्यां प्ररिषस्वजे ॥ विदित्वा चैव सप्राणं हित्वाऽसुरमभिद्रुतः ॥ १६ ॥ अभिद्रुत्य निकुम्भं च निस्त्रिंशेन जघान ह ॥ परिघेणापि दैतेयो जयन्तं समताडयत् ॥ १७ ॥ ततश्च बहुलं गात्रं निकुम्भ-स्यैन्द्रिराहवे ॥ स चिन्तयामास तदा वध्यमानो महासुरः ॥ १८ ॥

पश्चात् निकुंभ शत्रुओंको बढे हुए देखकर और अपने सहायकोंको हत देखकर वीर्यसे ऊपरको उछला ॥ १३ ॥ तब निकुंभको जयंतने और प्रवरने निवारण कर दिया, पश्चात् वज्रकेसे शरोंसे और लोहेके मूसलसे क्रोधसे होठोंको फडकाकर रणकर्कश ॥ १४ ॥ निकुंभने प्रवरको ताडित किया, जिससे यह प्रवर पृथ्वीपर गिर गया ॥ १५ ॥ तब जयंतने इस पडे हुएको भुजाओंसे आलिंगन किया; तब इसको प्राणोंसहित जानकर और सन्मुख आये असुरको देखकर ॥ १६ ॥ निकुंभकी ओर दौडा और इस निकुंभको खड्गसे मारा; जब निकुंभने मूसलसे जयंतको ताडन किया ॥ १७ ॥ निकुंभ और

जयंतके युद्धमें यह वध्यमान महासुर विचारने लगा ॥१८॥ कि ज्ञातिको मारनेवाले कृष्णचंद्रके साथ युद्ध करूंगा और उस कृष्णको हराऊंगा,इस इन्द्रके पुत्रके युद्धसे क्या है ॥१९॥यह निश्चय करके अंतर्ध्यान हो गया, और जहां महाबली कृष्णचंद्र थे उस स्थानमें युद्धके निमित्त गया ॥२०॥ पश्चात् ऐरावत स्कंधपर स्थित हुआ इन्द्र देवताओंके सहित युद्ध देखनेको आया॥२१॥और अपने पुत्र जयंतसे साधु २ कह सराहना कर मिला; और यह धर्मात्मा इन्द्र मोहवर्जित प्रवरसेभी मिले॥२२॥तब रणमें दुर्जय जयंतको रणमें जीता हुआ देखकर इन्द्रकी आज्ञासे स्वर्गमें नगाडे बजाये

कृष्णेन सह योद्धव्यं वैरिणा ज्ञातिघातिना ॥ श्रावयामि किमात्मानमाहवे शक्रसूनुना ॥ १९ ॥ एवं स निश्चयं कृत्वा तत्रैवा-न्तरधीयत ॥ जगाम चव युद्धार्थं यत्र कृष्णो महाबलः ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वैरावतस्कन्धमास्थितो बलनाशनः ॥ द्रष्टुमभ्यागतो युद्धं जहृषे सह दैवतैः ॥ २१ ॥ साधु साध्विति पुत्रं च परितुष्टः स सस्वजे ॥ प्रवरं चापि धर्मात्मा सस्वजे मोहवर्जितम् ॥ २२ ॥ देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्वासवाज्ञया ॥ जयमानं रणे दृष्ट्वा जयन्तं रणदुर्जयम् ॥ २३ ॥ ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम् ॥ अर्जुनेन स्थितं सार्धं यज्ञवाटाविदूरतः ॥ २४ ॥ स नादं सुमहान्कृत्वा पक्षिराजमताडयत् ॥ परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च ॥ २५ ॥ नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम् ॥ यमौ च वासुदेवं च साम्बं कामं च वीर्यवान् ॥२६॥ युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत ॥ न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ २७ ॥ यदा तु नैवापश्यंस्तं तदा बिल्वो-दकेश्वरम् ॥ दध्यौ देवं हृषीकेशः प्रमथानां गणेश्वरम् ॥ २८ ॥

गये ॥२३॥ तब निकुंभने भगवान्को रणमें दुर्जय देखकर अर्जुनको यज्ञवाटके निमित्त देख ॥२४॥ निकुंभने घोर शब्द करके पक्षिराजको ताडन किया;और घोरपरिघसे बलदेवजी और सात्यक ॥२५॥ नारायण अर्जुन और भीम युधिष्ठिर नकुल सहदेव सांब प्रद्युम्न इन सम्पूर्णोंके साथ॥२६॥ यह शीघ्रकारी दैत्य मायासे युद्ध करने लगा;और इन सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवालोंको यह नहीं दीखा॥२७॥जब यह नहीं दीखा तब हृषीकेश भग-

वान्‌ने प्रथमगणोंके ईश्वर बिल्वोदकेश्वरको नमस्कार करके ध्यान किया॥२८॥तब महादेवजीके तेजके प्रभावसे यह सम्पूर्ण इस मायावी निकुम्भको देखने लगे ॥२९॥ तब अर्जुन कैलासके शिखरके आकारवाले आकाशको ग्रसते हुए जातिके नाश करनेवाले वैरी निकुंभको रणमें देखनेलगा ॥३०॥ तब निकुंभको अर्जुनने देखकर गांडीव धनुषको चढा बाणोंसे उसके परिघको और गात्रोंको वारंवार वींध डाला॥ ३१ ॥ यह शिलापर पैनाये बाण तिसके अंगोंमें और परिघमें लगकर गूठे हुए सम्पूर्ण पृथ्वीपर गिर पडे ॥३२॥ हे राजन् ! अस्त्रयुक्त इन बाणोंको अर्जुन विफल देखकर भगवान्‌को

ततस्ते ददृशुः सर्वे प्रभावादतितेजसः ॥ बिल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिनां वरम् ॥ २९ ॥ कैलासशिखराकारं ग्रसन्तमिव धिष्ठितम् ॥ आह्वयन्तं रणे कृष्णं वैरिणं ज्ञातिनाशनम् ॥ ३० ॥ सज्यगाण्डीवमेवाथ पार्थस्तस्य रथेषुभिः ॥ परिघं चैव गात्रेषु विव्याधैनमथासकृत् ॥ ३१ ॥ ते बाणास्तस्य गात्रेषु परिघे च जनाधिप ॥ भग्नाः शिलाशिताः सर्वे निपेतुः कुञ्चिता क्षितौ ॥३२॥ विफलानस्त्रयुक्तांस्तान्दृष्ट्वा बणान्धनंजयः ॥ पप्रच्छ केशवं वीरः किमेतदिति भारत ॥३३॥ पर्वतानपि भिन्दन्ति मम वज्रोपमाः शराः ॥ किमिदं देवकीपुत्र विस्मयोऽत्र महान्मम ॥ ३४ ॥ तमुवाच ततः कृष्ण प्रहसन्निव भारत ॥ महद्भूतं निकुम्भोऽयं कौन्तेय शृणु विस्तरात् ॥३५॥ पुरा गत्वोत्तरकुरूंस्तपश्चक्रे महासुरः ॥ शतं वर्षसहस्राणां देवशत्रुर्दुरासदः ॥३६॥ अथैनं छन्दयामास वरेण भगवान्हरः ॥ स वव्रे त्रीणि रूपाणि न वध्यानि सुरासुरैः ॥ ३७ ॥ तमुवाच महादेवो भगवान्वृषभध्वजः ॥ मम वा ब्राह्मणानां वा विष्णोर्वा प्रियमाचरन् ॥ ३८ ॥

पूछने लगे कि,हे भगवन् ! यह क्या कारण है ॥३३॥ वज्रकेसे मेरे बाण पर्वतोंकोभी भेदन कर दें, और इसको नहीं लगते.हे भगवन् ! यह मुझे बडा आश्चर्य है ॥३४॥ हे भारत ! हँसते हुए भगवान् अर्जुनसे यह वचन कहने लगे,हे कौंतेय ! यह निकुंभ महद्भूत है इसको विस्तारसे सुन ॥३५॥ हे अर्जुन!पहले इस देवशत्रु दुरासद महाबल निकुंभने उत्तरकुरुओंमें जाकर सौसहस्र वर्ष घोर तप किया॥३६॥महादेवजी प्रसन्न होकर वरका लोभ देने लगे, तब इसने तीन रूपोंके सुरअसुरोंसे अवध्यत्व मांगा॥३७॥वृषभध्वज भगवान् महादेवजीने उससे कहा;हे निकुंभ ! जब तू मेरा ब्राह्मणोंका

और विष्णुका अप्रिय करेगा॥ ३८॥ हे महासुर ! तब तुझे हरि मारेंगे और नहीं; हे निकुंभ ! मैं और विष्णु ब्राह्मणोंपर दया करनेवाले हैं; और ब्राह्मण हमारी परमगति है॥ ३९॥ हे पांडुनंदन ! यह वर दिया हुआ दानव सम्पूर्ण शस्त्रोंसे अवध्य है और यह त्रिदेह है; और अतिप्रमादी है॥ ४०॥ हे अर्जुन ! भानुमतीके अपहरणमें इसका एक देह मैंने मारा है और इस दुरात्माका यह षट्पुर देह अवध्य है ॥ ४१ ॥ और तपसे युक्त एक तो इसका देह दितिकी शुश्रूषा करे है; और दूसरा इसका देह षट्पुरमें वसता है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ! यह निकुंभका सम्पूर्ण चारित्र मैंने तुम्हारे आगे

भविष्यसि हरेर्वध्यो न त्वन्यस्य महासुर ॥ ब्रह्मण्योऽहं च विष्णुश्च विप्राणां परमा गतिः ॥ ३९ ॥ स एष सर्वशस्त्राणामवध्यः पाण्डुनन्दन ॥ त्रिदेहोऽतिप्रमाथी च वरमत्तश्च दानवः ॥ ४० ॥ भानुमत्यापहरणे देहोऽस्यैको हतो मया ॥ अवध्यं षट्पुरं देहमिदमस्य दुरात्मनः ॥४१॥ दितिं शुश्रूषति त्वेको देहोऽस्य तपसान्वितः ॥ अन्यस्तु देहो घोरोऽस्य येनावसति षट्पुरम् ॥४२॥ एतत्तु सर्वमाख्यातं निकुम्भचरितं मया ॥ त्वरयास्य वधे वीर कथा पश्चाद्भविष्यति ॥४३॥ तयोः कथयतोरेव कृष्णयोरसुरस्तदा ॥ गुहां षट्पुरसंज्ञां तां विवेश रणदुर्जयः ॥४४॥ अन्विष्यतस्य भगवान्विवेश मधुसूदनः ॥ तां षट्पुरगुहां घोरां दुर्द्धर्षां कुरुनन्दन ॥४५॥ चन्द्रसूर्यप्रभाहीनां ज्वलन्तीं स्वेन तेजसा ॥ सुखदुःखोष्णशीतानि प्रयच्छन्तीं यथेप्सितम् ॥ ४६ ॥ तत्र प्रविश्य भगवापश्यत जनाधिपान् ॥ युयुधे सह घोरेण निकुम्भेन जनाधिप ॥४७॥ कृष्णस्यानुप्रविष्टास्तु बलाद्या यादवास्तदा ॥ प्रविष्टाश्च तथा सर्वे पाण्डवास्ते महात्मनः ॥ ४८ ॥

कहा, हे शूरवीर ! इसके वधमें शीघ्रता करो कथा पश्चात् होगी ॥४३॥ अर्जुनसे कृष्णचंद्रके ऐसा कहनेपर यह रणदुर्जय असुर षट्पुरसंज्ञक गुफामें प्रवेश कर गया ॥ ४४ ॥ तब मधुसूदन भगवान्नेभी जिस घोर गुहामें प्रवेशकर उस षट्पुरसंज्ञक गुहाको देखा ॥ ४५ ॥ चंद्रसूर्यकी प्रभासे हीन अपने तेजको प्रकाशित सुख दुःख उष्ण शीत इच्छा करतेही प्राप्त करनेवाली ॥४६॥ उसमें प्रविष्ट होकर भगवान्ने तिन राजोंको देखा और घोर निकुंभके साथ युद्ध किया ॥ ४७ ॥ बलदेवजीसे आदि लेकर सम्पूर्ण यादव और महात्मा पांडव उनके पीछे उसमें प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥

उसमें प्रवेश कर कृष्णचंद्रके मतसे सम्पूर्णने युद्ध किया, और कृष्णचंद्रकें प्रेरे हुए प्रद्युम्नभी तिसके साथ युद्ध करने लगे; और जिन बांधव यादवोंको ले गया था; तिन सम्पूर्णोंको प्रद्युम्नने ॥४९॥ छुटा दिया, तब निकुंभके वधकी इच्छा करते हुए ॥५०॥ सम्पूर्ण राजा प्रसन्न होकर प्रद्युम्नसे यह कहने लगे; कि हे शूरवीर ! हमको छुटाओ; तब प्रतापवान् प्रद्युम्नने इन सम्पूर्णोंको छुटाया ॥५१॥ तब यह सम्पूर्ण राजे नीचेको मुख किये मौन धारण किये लज्जासे व्याप्त होकर स्थित हो गये ॥ ५२ ॥ और गोविंद भगवान् जयके प्रति यत्न करते हुए अपने शत्रु घोर निकुंभसे युद्ध करने लगे ॥ ५३ ॥ हे

समेतास्तु प्रविष्टास्ते कृष्णस्यानुमतेन वै ॥ युयुधे स तु कृष्णेन रौक्मिणेयः प्रचोदितः ॥ अनयद्यादवान्सर्वान्यानयं बद्ध्वा-वान्पुरा ॥४९॥ ते मुक्ता रौक्मिणेयेन प्राप्ता यत्र जनार्दनः ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे निकुम्भवधकाङ्क्षिणः ॥ ५० ॥ राजानो वीर मुञ्चेति पुनः कामं यथाब्रुवन् ॥ मुमोच चाथ तान्वीरो रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥५१॥ अधोमुखमुखः सर्वे बद्धमौना नराधिपाः ॥ लज्जयाभिप्लुता वीरास्तस्थुर्नष्टश्रियस्तदा ॥५२॥ निकुम्भमपि गोविन्दः प्रयतन्तं जयं प्रति ॥ योधयामास भगवान्घोरमात्मरिपुं हरिः ॥५३॥ परिघेणाहतः कृष्णो निकुम्भेन भृशं विभो ॥ गदया चापि कृष्णेन निकुम्भस्ताडितो भृशम् ॥ ५४ ॥ तावुभौ मोहमापन्नौ सुप्रहारहतौ तदा ॥ ततः प्रव्यथितान्दृष्ट्वा पाण्डवांश्चाथ यादवान् ॥५५॥ जेपुर्मुनिगणास्तत्र कृष्णस्य हितकाम्यया॥ तुष्टुवुश्च महात्मानं वेदप्रोक्तैस्तथा स्तवैः ॥ ५६ ॥ ततः प्रत्यागतप्राणो भगवान्केशवस्तदा ॥ दानवश्च पुनर्वीरावुद्यतौ समरं प्रति ॥५७॥ वृषभाविव नर्दन्तो गजाविव च भारत ॥ शालावृकाविव क्रुद्धौ प्रहरन्तौ रणोत्कटौ ॥ ५८ ॥

राजन् ! लोहके मूसलसे निकुंभने कृष्णचंद्रको मारा, और गदासे कृष्णचंद्रने निकुंभको मारा॥५४॥ तब बहुत प्रहारोंसे हते हुए यह दोनों मोहको प्राप्त हो गये; तिसके अनंतर मुनियोंके समूह पांडव और यादवोंको पीडित देखकर ॥ ५५ ॥ और कृष्णके हितके निमित्त मुनिजन जप करने लगे; और वेदोक्त स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ केशव भगवान्के प्राणोंमें और दानवकेभी प्राणमें बल हुआ; तब फिर यह दोनों युद्ध करने लगे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! वृषभ और गजकी नाईं दोनों शब्द करने लगे; और श्वानोंकी तरह क्रोधभरे प्रहार करने लगे ॥ ५८ ॥

हे जनमेजय ! तब कृष्णचंद्रसे आकाशवाणीने कहा; हे कृष्ण ! देवता और ब्राह्मणोंके कंटकरूप इसको चक्रसे मारो ॥ ५९ ॥ और बिल्वोदकेश्वर महादेवजीनेभी यहीं कहा, कि हे महाबल कृष्णचंद्र ! बहुतसे धर्म और यशको तुम प्राप्त हो ॥ ६० ॥ तब कृष्णचंद्रने इस बातको अंगीकार करके लोकनाथ महादेवजीको नमस्कार कर पश्चात् दैत्यकुलके नाश करनेवाले सुदर्शनचक्रको छोडा ॥ ६१ ॥ और उस श्रेष्ठ कुंडलोंसहित निकुंभके शिरको छेदन कर दिया; नारायणकी भुजासे काटा हुआ सूर्यके मंडलकेसी कांतिवाला उसका शिर ॥ ६२ ॥ पृथ्वीपर ऐसे गिरा जैसे पर्वतके

अथ कृष्णं तदोवाच नृपं वागशरीरिणी ॥ चक्रेण शमयस्वैनं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ५९ ॥ इति होवाच भगवान्देवो बिल्वोदकेश्वरः ॥ धर्मं यशश्च विपुलं प्राप्नुहि त्वं महाबल ॥ ६० ॥ तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्वा लोकनाथः सतां गतिः ॥ सुदर्शनं मुमोचाथ चक्रं दैत्यकुलान्तकम् ॥ ६१ ॥ तन्निकुम्भस्य चिच्छेद शिरः प्रवरकुण्डलम् ॥ नारायणभुजोत्सृष्टं सूर्यमण्लवर्चसम् ॥ ६२ ॥ उत्पपात शिरस्तस्य भूमौ ज्वलितकुण्डलम् ॥ मेघमत्तो गिरेः शृङ्गान्मयूर इव भूतले ॥ ६३ ॥ निकुम्भे निहते तस्मिन्देवो विल्वोदकेश्वरः ॥ तुतोष च नरव्याघ्र जगत्त्रासकरो विभुः ॥ ६४ ॥ पपात पुष्पवृष्टिश्च शक्रसृष्टा नभस्तलात् ॥ देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुररिनाशने ॥ ६५ ॥ ननन्द च जगत्कृत्स्नं मुनयश्च विशेषतः ॥ दैत्यकन्याश्च भगवान्यदुभ्यः शतशो ददौ ॥ ६६ ॥ क्षत्रियाणां च भगवान्सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ॥ रत्नानि च विचित्राणि वासांसि प्रवराणि च ॥ ६७ ॥ रथानां वाजियुक्तानां षट्सहस्राणि केशवः ॥ अददात्पाण्डवेभ्यश्च प्रीतात्मा गदपूर्वजः ॥ ६८ ॥

शृंगसे पृथ्वीपर मत्त मयूर गिरे ॥ ६३ ॥ हे नरोंमें शार्दूल जन्मेजय ! जगत्को त्रास करनेवाला वह निकुंभ जब मार दिया, तब बिल्वोदकेश्वर महादेवजी प्रसन्न हुए ॥ ६४ ॥ और आकाशसे इन्द्रकी छोडी हुई पुष्पोंकी वर्षा हुई; हे राजन् ! तब आकाशमें नगारे बजे ॥ ६५ ॥ सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हुआ और मुनि विशेष करके आनंदित हुए, और भगवान् कृष्णचन्द्रने यादवोंको सैंकडों दैत्योंकी कन्या दीं ॥ ६६ ॥ और क्षत्रियोंको वारंवार भगवान्‌ने सांत्वना कराके अनेक प्रकारके रत्न और श्रेष्ठ वस्त्र दिये ॥ ६७ ॥ भगवान् कृष्णचंद्रने बडे उत्तम घोडे जोडकर छः

सहस्र रथ तो पांडवोंको प्रसन्न हो दिये ॥६८॥ और पुरको बढानेवाले गरुडध्वज भगवान्‌ने वह श्रेष्ठ षट्पुर ब्राह्मणको दिया ॥६९॥ जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब महाबल भगवान् शंख चक्र गदाको धारण किये क्षत्रियोंको और पांडवोंको विदा करके॥७०॥बिल्वोदकेश्वर महादेवजीका समाज कर मांस दालसहितबहुतसे अन्न बनाये; और व्यंजन बहुतसे बनाये ॥७१॥ पश्चात् मल्लप्रिय भगवान्‌ने उत्तम मल्लोंकी कुस्ती कराकर पश्चात् तिन्होंको बहुतसा द्रव्य और वस्त्र दिया॥७२॥फिर मातापिताओंके सहित, सम्पूर्ण यादवोंसहित महाबल भगवान् ब्रह्मदत्तको नमस्कार करके द्वारकामें गये॥७३॥

तदेव चाथ प्रवरं षट्पुरं पुरवर्द्धनः ॥ द्विजाय ब्रह्मदत्ताय ददौ तार्क्ष्यवरध्वजः ॥ ६९ ॥ सत्रे समाप्ते च तदा शंखचक्रगदाधरः ॥ विसर्जयित्वा तत्क्षत्रं पाण्डवांश्च महाबलः ॥ ७० ॥ बिल्वोदकेश्वरस्याथ समाजमकरोत्प्रभुः ॥ मांसरूपसमाकीर्णं बह्वन्नं व्यञ्जनाकुलम् ॥ ७१ ॥ नियुद्धकुशलान्मल्लान्देवो मल्लप्रियस्तदा ॥ योधयित्वा ददौ भूरि वित्तं वस्त्राणि चात्मवान् ॥ ७२ ॥ मातापितृभ्यां सहितो यदुभिश्च महाबलः ॥ अभिवाद्य ब्रह्मदत्तं ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ ७३ ॥ स विवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ पुष्पचित्रपथां वीरो वन्द्यमानो नरैः पथि ॥७४॥ इमं यः षट्पुरवधं विजयं चक्रपाणिनः ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि युद्धे जयमवाप्नुयात ॥ ७५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥ व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धश्चाप्यथ बंधनात् ॥ ७६ ॥ इदं पुंसवनं प्रोक्तं गर्भाधानं च भारत ॥ श्राद्धेषु पठितं सम्यगक्षय्यकरणं स्मृतम् ॥ ७७ ॥ इदममरवरस्य भारते प्रथितबलस्य जयं महात्मनः ॥ सततमिदं हि यः पठेन्नरः सुगतिमितो व्रजते गतज्वरः ॥ ७८ ॥

तब हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त और पुष्पोंसे विचित्रमार्गवालीपुरीमें जनोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ॥ ७४ ॥ जो यह षट्पुरका वध और भगवान्‌की जय सुनते हैं अथवा पढते हैं वे युद्धमें जयको प्राप्त होते हैं॥७५॥अपुत्र पुत्र पाते हैं,और निर्धन धन पाते हैं,तथा व्याधिसे रोगसे और बंधनसे छूट जाते हैं ॥७६॥ और यह पुंसवन गर्भाधानका करनेवाला है; और श्राद्धमें पढा हुआ तिसको अक्षय गुण कर देता है ॥ ७७ ॥ हे भारत ! यह

महात्मा अमरवरका जय जो निरन्तर पढते हैं, सो उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥७८॥ मणि सुवर्णसे विचित्र हस्तचरणवाले अत्यन्त गुणोंसे युक्त आदिनाथ चारों सागरमें शयन करनेवाले चार प्रकारके आत्मावाले सहस्रनामा पुरुषकी जय हो ॥ ७९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषाटी० षट्पुरवधे पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ॥ छ ॥ जन्मेजय बोले; हे मुनिवरोंमें श्रेष्ठ! मैंने यह रमणीक षट्पुरका वध तो सुना अब पहले कहा अंधकका वध कहो ॥ १ ॥ हे मुने ! भानुमतीका हरना और निकुंभका वध विशेष करके वर्णन करो; हे भगवन् ! इसके सुननेहीसे मुझे प्रीति

मणिकनकविचित्रपाणिपादो निरतिशयार्कगुणोऽरिहादिनाथः ॥ चतुरुदधिशयश्चतुर्विधात्मा जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा॥७९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ छ ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतोऽयं षट्पुरवधो रम्यो मुनिवरोत्तम ॥ पुरोक्तमन्धकवधं वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥ भानुमत्याश्च हरणं निकुम्भस्य वधं तथा ॥ प्रब्रूहि वदतां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ॥ दितिर्हतेषु पुत्रेषु विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तपसाराधयामास मारीचं कश्यपं पुरा ॥३॥ तपसा कालयुक्तेन तथा शुश्रूषया मुनेः ॥ आनुकूल्येन च तथा माधुर्येण च भारत ॥ ४ ॥ परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोधनः ॥ परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते ॥ ५ ॥ दितिरुवाच ॥ ॥ हतपुत्रास्मि भगवन्देवैर्धर्मभृतां वर ॥ अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैरमितविक्रमम् ॥ ६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अवध्यस्ते सुतो देवि दाक्षायणि भवेदिति ॥ देवानां संशयो नात्र कश्चित्कमललोचने ॥ ७ ॥

है ॥२॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! जो जो दैत्य विष्णु भगवान्ने मारे तिनके मारनेमें दितिने दुःखी हो तपसे मरीचपुत्र कश्यपका आराधन किया है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! एक समयमें तपसे और कालयुक्त शुश्रूषासे अनुकूलतासे मधुर वचनसे दितिने जब कश्यपका आराधन किया ॥ ४ ॥ तब कश्यपजी प्रसन्न होकर दितिसे कहने लगे, कि हे भद्रे, हे सुव्रते ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ तू वर मांग ॥ ५ ॥ दिति कहने लगी कि, हे भगवन् ! हे धर्मको धारण करनेवाले! देवताओंने मेरे पुत्र मार दिये इस कारण देवताओंसे अवध्य और अमितपराक्रमवाले पुत्रकी इच्छा करती हूं ॥ ६ ॥ कश्यपजी

बोले; हे दक्षकी पुत्री ! हे देवि ! तेरे देवताओंसे अवध्य पुत्र होगा; हे कमललोचने ! इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ७॥एक देवदेव रुद्रके विना, कारण तिससे मैं समर्थ नहीं हूं. हे प्रिये ! उस पुत्रसे तुझको अपना आत्मा सर्वथा रक्षा करना योग्य है ॥ ८ ॥ तब सत्यवान् कश्यपजीने तिसको शुभ देशमें प्राप्त कर उसके उदरमें अंगुलीसे स्पर्श किया ॥ ९ ॥ तिसके अनंतर सहस्र भुजाओंवाला और सहस्र शिरोंवाला और दो सहस्र नेत्रोंवाला दो सहस्र चरणोंवाला पुत्र दितिके जन्मा ॥ १० ॥ हे भारत ! यह अंधा न होकरभी अंधेकी तरह चला इस कारण मनुष्योंने उसको अंधकनामसे विख्यात किया ॥ ११ ॥ हे भारत ! यह अंधक मैं अवध्य हूं, ऐसे जानकर सम्पूर्ण लोकोंको बाधा करने लगा; और अपने बलसे रत्नोंको हरने लगा ॥ १२ ॥ और अप्सराओंके गणको

देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रभवाम्यहम् ॥ आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा॥८॥ अन्वालभत तां देवीं कश्यपः सत्यवागथ ॥ अङ्गुल्योदरदेशे तु सा पुत्रं सुषुवे ततः ॥ ९ ॥ सहस्रबाहुं कारव्यं सहस्रशिरसं तथा ॥ द्विसहस्राक्षेणं चैव तावच्चरणमेव च ॥ १० ॥ स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्धोऽपि हि भारत ॥ तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः ॥ ११ ॥ अवध्योऽस्मीति लोकान्स सर्वान्बाधति भारत ॥ हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्यात्मबलाश्रयात् ॥ १२ ॥ वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसां गणान् ॥ स वेश्मन्यूर्जितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयंकरः ॥ १३ ॥ परदारापहरणं पररत्नविलापनम् ॥ चकार सततं मोहादन्धकः पापनिश्चयः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यविजयं कर्तुमुद्यतः स तु भारत ॥ सहायैरसुरैः सार्द्धं बहुभिः सर्वधार्षिभिः ॥१५॥ तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः कश्यपं पितरं ब्रवीत् ॥ अन्धकेनेदमारब्धमीदृशं मुनिसत्तम ॥ १६ ॥ आज्ञापय विभो कार्यमस्माकं समनन्तरम् ॥ यवीयसः कथं नाम सोढव्यं स्यान्मुने मया ॥ १७ ॥ इष्टपुत्रे प्रहर्तव्यं कथं नाम मया विभो ॥ इहात्रभवती कुर्यान्मन्युं मयि हते सुते ॥ १८ ॥

पकड २ कर गर्भित किया, और अपने स्थानमें यह ऊर्जित हुआ सम्पूर्ण लोकोंको भय देने लगा १३ ॥ यह पापी अंधक मोहसे दूसरोंकी स्त्रियोंको और रत्नोंको हरने लगा ॥ १४ ॥ हे भारत ! बडे महाबली सम्पूर्ण असुरोंकी सहायता ले वह त्रिलोकीके जीतनेको उद्यम करने लगा ॥ १५ ॥ तिसको भगवान् इन्द्र सुनकर पिता कश्यपसे वचन बोले, हे मुनिसत्तम ! अंधकने जयका आरंभ किया है ॥ १६ ॥ हे मुने ! हमको आज्ञा करो यह छोटा अंधक है, इसके अपराधको मैं कैसे सहू ॥ १७ ॥ हे विभो ! इस इष्टपुत्रके विषे मैं कैसे प्रहार करू, चाहें मारे पीछे मेरे ऊपर आप क्रोध

भी करो ॥ १८ ॥ देवेन्द्रके वचन सुन कश्यपमुनि बोले; हे देवेन्द्र ! तिसकोमैं निवारण कर दूंगा; तेरा सर्वथा कल्याण हो ॥ १९ ॥ दितिके सहित कश्यपजीने अंधकको त्रलोक्यके विजयके कष्टसे निवारण किया ॥२०॥ परन्तु निवारण कियाभी यह दुष्टात्मा स्वर्गवासियोंको बाधा करने लगे, और तिन तिन उपायोंसे यह दुष्टात्मा पीडा करके॥२१॥ फिर खोटी बुद्धिवाला अंधक नंदनवनके वृक्षोंको उखाडने लगा, और उच्चैःश्रवाकी औलादके अश्वोंको स्वर्गसे बलसेले आया॥२२॥और उत्तम हस्तियोंकोभी लाया; वनसे देवताओंके रत्न हरण किये फिर तपसे देवताओंके यज्ञ

देवेन्द्रवचन श्रुत्वा कश्यपोऽथाब्रवीन्मुनिः ॥ वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते ॥ १९ ॥ अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यपः ॥ त्रैलोक्यविजयाद्वीरं कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत॥२०॥ वारितोऽपि स दुष्टात्मा बाधत्येव दिवौकसः ॥ तैस्तैरुपायैर्दुष्टात्मा प्रमथ्य च तथामरान् ॥ २१ ॥ बभञ्ज कामने वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः ॥ उच्चैःश्रवःसुतानश्वान्बलादप्यानयद्दिवः ॥ २२ ॥ नागान्दिशागजसुतान्दिव्यानपि च भारत ॥ बलाद्धरति देवानां पश्यतां वरदर्पितः ॥२३॥ देवानाप्याययन्ते तु ये यज्ञैस्तपसा तथा ॥ तेषां चकार विघ्नं स दुष्टत्मा देवकण्टकः ॥ २४ ॥ नेजुर्यज्ञैस्त्रयो वर्णास्तेपुश्च न तपांस्यपि ॥ अन्धकस्य भयाद्राजन्यज्ञ-विघ्नानि कुर्वतः ॥ २५ ॥ तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत ॥ चन्द्रमा वा सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः॥ २६॥ न व्रजन्ति विमानानि विहायसि भयात्प्रभो॥ अन्धकश्यातिघोरस्य बलदृप्तस्य दुर्मतेः ॥२७॥ निरोङ्कारवषट्कारं जगद्वीर तथाभवत् ॥ अन्धकस्यातिघोरस्य भयात्कुरुकुलोद्वह ॥ २८ ॥

विध्वंस करने लगा॥२३॥हे राजन्!वह देवकंटक विघ्न करने लगा;तब यज्ञोंमें अधंकके विघ्नके भयसे तीनों वर्णोंने यज्ञ करना छोड दिया॥२४॥२५॥ हे राजन्!तिसके भयसे यथेच्छ वायु चलने लगी,और सूर्यभी भयसे तपने लगा, और नक्षत्रोंसहित चंद्रमा भी इच्छाहीसे दीखता था ॥ २६ ॥ और बलसे गर्वित महाघोर अत्यन्त घोर अंधकके भयसे आकाशमें विमान नहीं चलतेथे ॥२७॥ हे कुरुकुलके धारण करनेवाले ! तिस अत्यन्त घोर

अंधकके भयसे जगत् ओंकार वषट्कारहीन हो गया ॥२८॥ इस पापीने उत्तरकुरुओंको भयसे भगा दिया,वह भद्राश्व,केतुमाल,जम्बूद्वीपको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण देवतादानव भयसे तिसको मानने लगे;और समर्थभी तिसको मानने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वध्यमान संपूर्ण ब्रह्मवादी ऋषि इकट्ठे होकर अंधकके वधको चिंतवन करने लगे॥३१॥ तिनके मध्यमें बुद्धिमान् बृहस्पति यह वचन बोले; हे ऋषियों!रुद्रके विना औरसे इसकी मृत्यु नहीं ॥३२॥ क्यों कि जब कश्यपने दितिको वरदान दिया तब यह कह दिया था कि रुद्रसे रक्षा करनेको तो मैं समर्थ नहीं ॥ ३३ ॥ इस

कुरूंस्तथोत्तरान्पापो द्रावयामास भारत ॥ भद्राश्वान्केतुमालांश्च जम्बुद्वीपांस्तथैव च ॥ २९ ॥ मानयन्ति च तं देवा दानवाश्च दुरासदाः भूतानि च तथान्यानि समर्थान्यपि सर्वथा ॥ ३० ॥ ऋषियो वध्यमानास्तु समेता ब्रह्मवादिनः ॥ अचिन्तयन्नन्धकस्य वधं धर्मभृतां वर ॥ ३१ ॥ तेषां बृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमथाब्रवीत् ॥ नास्य रुद्रादृते मृत्युर्विद्यते च कथंचन ॥ ३२ ॥ तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दितः ॥ नाहं रुद्रात्परित्रातुं शक्तइत्येव धीमताः ॥३३॥ तमुपायं चिन्तयामः शर्वो येन सनातनः ॥ जानीयात्सर्वभूतानि पीडचमानानि शंकरः ॥ ३४ ॥ विदितार्थं हि भगवानवश्यं जगतः प्रभुः ॥ अश्रुप्रमार्जनं देवः करिष्यति सतां गतिः ॥ ३५ ॥ व्रतं हि देवदेवस्य भवस्य जगतो गुरोः ॥ सन्तोऽसद्भ्यो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषतः ॥ ३६ ॥ ते वयं नारदं सर्वे प्रयामः शरणं द्विजम् ॥ उपाय वेत्स्यते तत्र तत्र वयस्यो हि भवस्य सः ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिवचः श्रुत्वा सर्वेऽप्यथ तपोधनाः ॥ तावद्ददृशुराकाशे प्राप्तं देवर्षिसत्तमम् ॥ ३८ ॥

॥२६०॥

कारण वह उपाय चिंतवन करे;जिससे सनातन महादेवजी सम्पूर्ण भूतोंको अंधकसे पीडचमान जाने ॥ ३४ ॥ जगत्के प्रभु भगवान् महादेवजी जब तुम्हारे अर्थको जान लेंगे,तब अवश्य वह सतांगति देव तुम्हारे आंसुओंको पोंछेंगे ॥३५॥ क्योंकि देवताओंके देवता और जगत्के गुरु महादेवजीका यह संकल्प है कि दुष्टोंसे संतोंकी रक्षा करनी और ब्राह्मण तो विशेषकरके तिनके रक्षा करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥ इस कारण हम संपूर्ण नारद मुनिके शरणको प्राप्त होंगे, सो हमको उपाय बतावेंगे, क्योंकि जिससे नारदमुनि महादेवजीके मित्र हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार संपूर्ण

ऋषि बृहस्पतिके वचन सुन आकाशमें नारदजीको देख ॥ ३८ ॥ और विधिपूर्वक मुनिका सत्कार कर देवता कहने लगे कि; हे साधो ! शीघ्र कैलासमें जाओ ॥ ३९ ॥ वह नारदमुनि तिसको अंगीकार कर अंधकके वधको महादेवजीसे कहिये, नारदजीने यह स्वीकार किया ॥ ४० ॥ जब ऋषि चले गये तब तिस कार्यको मनसे नारदमुनिने विचारकर यह करना होगा यह निश्चय किया ॥ ४१ ॥ तब मंदारवनके मध्यमें जहां देवदेव महादेवजी रहते थे तिनके देखनेको नारदमुनि गये ॥ ४२ ॥ महादेवजीके मित्र और मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदमुनि

पूजयित्वा यथान्यायं सत्कृत्य विधिवन्मुनिम् ॥ देवा ऊचुः ॥ देवर्षे भगवन्साधो कैलासं व्रज सत्वरम् ॥ ३९ ॥ विज्ञप्तुमर्हसे देवमन्धकस्य वधे हरम् ॥ त्राणाथ नारदं प्रोचुस्तांस्तथेति स चोक्तवान् ॥ ४० ॥ ऋषिष्वथ प्रयातेषु तत्कार्य नारदो मुनिः ॥ विचार्य मनसा विद्वानिति कार्यं स दृष्टवान् ॥ ४१ ॥ स देवदेवं भगवान्द्रष्टुं मुनिरथाययौ ॥ मन्दारवनमध्यस्थो यत्र नित्यो वृषध्वजः ॥ ४२ ॥ स तत्र रजनीमेकामुषित्वा मुनिसत्तमः ॥ मन्दाराणां वने रम्ये दयितः शूलपाणिनः ॥४३॥ आजगाम पुनः स्वर्गं लब्ध्वानुज्ञां वृषध्वजात् ॥ मन्दारपुष्पैः सुकृतां मालामाबध्य भारत ॥ ४४ ॥ ग्रथितां सविशेषां तां सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम् ॥ सन्तानमाल्यदामं च तैरेव कुसुमैः कृतम् ॥४५॥ तच्च कण्ठे समासज्य महागन्धं नराधिप ॥ आययावन्धको यत्र दुरात्मा बल-दर्पितः ॥ ४६ ॥ अन्धकस्त्वथ तं दृष्ट्वा गन्धमाघ्राय चोत्तमम् ॥ सन्तानकानां स्रङ्मालां महागन्धां महामुने ॥ ४७ ॥ कुत्रायं पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन ॥ गन्धान्वर्णान् शुभांस्तान्हि भोःपुष्पति मुहुर्मुहुः ॥ स्वर्गे सन्तानकुसुमान्यतिवर्तंति सर्वथा४८॥

एक रात्रि तिस रमणीक मंदारके वनमें वास कर ॥४३॥ तब महादेवजीसे आज्ञा लेकर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला पहर फिर स्वर्गमें आये ॥४४॥ वह सम्पूर्ण गंधभरे पुष्पोंसे गुंथी थी वह संतानक वृक्षके फूल थे ॥ ४५ ॥ नारदमुनि बहुत विचित्र और सुगंधवाली मालाको कंठमें डाल जहां दुरात्मा अंधक था तहां गये ॥४६॥ तब महात्मा अंधक उस संतानक वृक्षोंकी मालाकी सुगंधि लेकर कहने लगा कि; हे महामुने ! हे तपोधन ! ॥ ४७ ॥ यह ऐसी सुन्दर पुष्पजाति कहां है; अनेक प्रकारकी गंधको और वर्णको वारंवार उत्पन्न करते हैं; हे मुने ! यह स्वर्गके कल्पवृक्षोंसे भी

शिवाय है ॥४८॥ और हे मुने ! जहां यह ऐसे पुष्प हैं तिस देशका कौन स्वामी है; और कौन वहांसे लानेको समर्थ है, यह कहो और हमारे ऊपर अनुग्रह करो ॥४९॥ हे भारत जन्मेजय ! यह सुन नारदमुनि हँसते हुए उसे दक्षिण हाथमें ले बोले ॥५०॥ हे शूरवीर ! पर्वतोंमें श्रेष्ठ मंदराचल है, तहां कामगमवन है सो महादेवजीने रच रक्खा है, तहां ऐसे पुष्प हैं ॥५१॥ परन्तु तिस वनमें महादेवजीकी आज्ञा विना कोई नहीं जा सकता है, क्योंकि तहांअनेक प्रकारके शस्त्र लिये और घोररूप धारणकिये और दुरासद और सम्पूर्ण भूतोंसे अवध्य और महादेवजीसे रक्षित ऐसे महादेवजीके

कः प्रभुस्तस्य वृक्षस्य शक्यं वानयितुं मुने ॥ आचक्ष्व यद्यनुग्राह्या वयं ते देवतातिथे ॥ ४९ ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रहसन्निव भारत ॥ आदाय दक्षिणे हस्ते महतस्तपसो निधिः ॥ ५० ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीरकामगमं वनम् ॥ तत्र चैवंविधं पुष्पं भोः सृष्टिः शूलपाणिनः ॥ ५१ ॥ नतु तत्र वनं कश्चिदच्छन्देन महात्मनः ॥ प्रवेष्टुं लभते तद्धि रक्षन्ति प्रवरोत्तमाः ॥ ५२ ॥ नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा दुरासदाः ॥ अवध्याः सर्वभूतानां महादेवाभिरक्षिताः ॥ ५३ ॥ नित्यं प्रक्रीडते तत्र सोमः सप्रवरो हरः ॥ मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावनः ॥ ५४ ॥ तपोविशेषैराराध्य हरं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ शक्यं मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवंशज ॥ ५५ ॥ स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ ॥ कांक्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभाः ॥ ५६ ॥ न तत्र सूर्यः सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रमः ॥ स्वयंप्रभं तरुवनं तद्वो दुःखविवर्जितम् ॥ ५७ ॥ तत्र गन्धान्स्रवत्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमाः ॥ वासांसि विविधान्यन्ये सुगन्धीनि महाबल ॥ ५८ ॥

गण तिसकी रक्षामें रहते हैं।।५२।।५३।।सर्वात्मा सर्वभावन गणोंसहित महादेवजी उमाके साथ वहांनित्य क्रीडा करते हैं।।५४।।इस कारण हे कश्यपके पुत्र!तपोंसे तिस त्रिभुवनेश्वरमहादेवजीका आराधन करके पश्चात् कल्पवृक्षके पुष्पोंको लानेको समर्थ हो।।५५।।हे अंधक! स्त्रीरत्न, मणिरत्न,अन्यरत्न जिन २ की पुरुष वांछा करते हैं सो सम्पूर्ण वस्तु वे महादेवजीके प्यारे वृक्ष फलते हैं ॥ ५६ ॥ हे अतुल पराक्रमवाले अंधक ! तहां सूर्य और चंद्रमाभी नहीं तपते हैं,किन्तु अपनीही कांतिसे वह वन प्रकाशित है ॥ ५७ ॥ दुःखसे वर्जित है, और तहां कितनेक वृक्ष तो सुगंधको गिरावे हैं और

कितनेक वस्त्रोंको उत्पन्न करते हैं॥५८॥कितनेक तरु भक्ष्य भोज्य पेय लेह्य और चोष्यको उत्पन्न करते हैं; और तिन तरुओंसे अनेक प्रकारकी वांछित वस्तु उत्पन्न होती है॥५९॥प्यास, भूंख, ग्लानि, चिंता, दुःख उस कल्पवृक्षके वनमें नहीं होते ॥६०॥ हे शूरवीर ! कहांतक कहें, सौ वर्षमेंभी तिसके गुण नहीं वर्णन कर सक्के; हे अंधक ! जो स्वर्गमें गुण हैं तिससेभी अधिक गुण तिस वनमें हैं ॥ ६१ ॥ और जो एक दिनभी तहां वास कर ले सो महेन्द्रसहित सम्पूर्ण लोकोंको जीत ले इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ मेरा मन तो है कि वह वन स्वर्गकाभी स्वर्ग

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यं तथैव च ॥ तरुभ्यः स्रवते तेभ्यो विविधं मनसेप्सितम् ॥ ५९ ॥ ॥ पिपासा वा बुभुक्षा वा ग्लानिश्चिन्तापि वानघ ॥ न मन्दारवने वीर भवतीत्युपधार्यताम् ॥ ६० ॥ न ते वर्णयितुं शक्या गुणा वर्षशतैरपि ॥ गुणा ये तत्र वर्द्धन्ते स्वर्गाद्बहुगुणोत्तराः ॥ ६१ ॥ अतीव हि जयेल्लोकान्स महेन्द्रान्न संशयः ॥ एकाहमपि यस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम ॥ ६२ ॥ स्वर्गस्यापि हि तत्स्वर्गं सुखानामपि तत्सुखम् ॥ बभूव जगतः सर्वमिति मे धीयते मनः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अन्धको नारदवचः श्रुत्वा तत्त्वेन भारत ॥ मन्दरं पर्वतं गन्तुं मनो दध्रे महासुरः ॥ १ ॥ सोऽसुरान्सुमहातेजाः समानीय महाबलः ॥ जगाम मन्दरं क्रुद्धो महादेवालयं तदा ॥ २ ॥ तं महाभ्रप्रतिच्छन्नं महौषधिसमाकुलम् ॥ नानासिद्धसमाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३ ॥ चन्दनागरुवृक्षाढ्यं सरलद्रुमसंकुलम् ॥ किन्नरोद्गीतरम्यं च बहुनागकुलाकुलम् ॥ ४ ॥

है और सुखोंकाभी सुख है वह जगत्में सबसे श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां अंधकवधे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ ६७ ॥ वैशंपायनजी बोले;हे राजन्! महासुर अंधकने तत्वसे नारदमुनिके वचन सुनकर मंदराचलको जानेकी इच्छा की ॥ १ ॥ वह बडा तेजस्वी महाबली अंधक असुरोंको बुलाकर और क्रोधित हुआ महादेवजीके स्थान मंदरको गया ॥ २ ॥ बडे मेघोंसे आच्छादित, महौषधियोंसे व्याप्त अनेक सिद्धोंसे युक्त महर्षिगणोंसे सेवित ॥ ३ ॥ चंदन अगर इन वृक्षोंसे युक्त, सरलके वृक्षोंसे

व्याप्त, किन्नरोंके गीतोंसे रमणीक और बहुतसे हस्तियोंसे व्याप्त॥४॥ पवनसे कंपाये हुए फूले वृक्षोंसे कहीं नृत्य करता हुआ और झिरते हुए धातुओंसे कहीं विलिप्तके समान ॥५॥ पक्षियोंके मधुरशब्दसे कहीं बोलते हुएके समान और जहां तहां गिरते हुए सुन्दर पैरोंवाले हंसोंसे व्याप्त॥६॥ और दैत्योंके नाश करनेवाले महाबलवान् चरते हुए भैंसोंसे युक्त और चंद्रमाकेसी कांतिवाले सफेद सिंहोंसे भूषित ॥ ७ ॥ सुवर्णसे भूषित और सिंहोंसे व्याप्त मृगसमूहोंसे युक्त रूप धारण किये ऐसे मंदरपर्वतसे बलदर्पित यह अंधक कहने लगा॥८॥हे मंदराचल ! जैसे पिता कश्यपजीके वर-

वातोद्धूतैर्वनैः फुल्लैर्नृत्यन्तमिव च क्वचित् ॥ प्रस्रुतैर्धातुभिश्चित्रैर्विलिप्तमिव च क्वचित् ॥ ५ ॥ पक्षिस्वनैः सुमधुरैर्नदन्तमिव च क्वचित् ॥ हंसैः शुचिपदैः कीर्णं संपतद्भिरितस्ततः ॥ ६ ॥ महाबलैश्च महिषैश्चरद्भिर्दैत्यनाशनैः ॥ चन्द्रांशुविमलैः सिंहैर्भूषितं हेमसंचयम् ॥ ७ ॥ मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिषेवितम् ॥ स मन्दरं गिरिं प्राह रूपिणं बलदर्पितः ॥ ८ ॥ वेत्सि त्वं हि यथावध्यो वरदानादहं पितुः ॥ मम चैव वशे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९ ॥ प्रतियोद्धुं न मां कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात् ॥ पारिजातवनं चास्ति तव सानौ महागिरे ॥ सर्वकामप्रदैः पुष्पैर्भूषितं रत्नमुत्तमम् ॥ १० ॥ तदाचक्ष्वोपभोक्ष्यामि तद्वनं तव सानुजम् ॥ किं करिष्यसि क्रुद्धस्त्वं मनो हि त्वरते मम ॥११॥ त्रातारं नानुपश्यामि मया खल्वर्दितस्य ते ॥ इत्युक्तो मन्दरस्तेन तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२ ॥ ततोऽन्धकोऽतिरुषितो वरदानेन दर्पितः ॥ मुमोच नादं सुमहदिदं वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

दानसे मैं अवध्य हूँ इस बातको तूभी जानता है, या नहीं. हे गिरे ! यह सम्पूर्ण चराचर त्रलोक्य मेरे वशमें है ॥ ९ ॥ और मेरे भयसे कोई सन्मुख युद्ध करनेको समर्थ नहीं; हे महागिरे ! तेरे शिखरमें कल्पवृक्षका वन है,सो सम्पूर्ण कामनाके देनेवाले पुष्पोंसे भूषित है, और उत्तम रत्न है॥१०॥तेरी शिखरमें उत्पन्न हुए तिस वनको बता मैं अनुजसहित भोगूंगा. मेरा मन संभ्रमको प्राप्त होताहै, जो तू क्रोधित होगा तो तू मेरा क्या करेगा ॥ ११ ॥ तुझको मारूंगा तो कोई तेरा रक्षा करनेवालाभी नहीं होगा ऐसे वचन सुन मंदराचल तहां अंतर्ध्यान हो गया॥ १२ ॥ तब अंधक

॥२६२॥

वरसे गर्वित हुआ अत्यन्त क्रोधित होकर घोर शब्द कर यह वचन कहने लगा ॥ १३ ॥ हे पर्वत ! मैंने तो तुझको जांचा और तू मेरा वचन नहीं मानता इस कारण अब मेरे बलको देख तेरा चूर्ण करता हूं॥१४॥इस प्रकार कहकर पर्वतका शिखर उखाड तिसको बहुत योजनपर दूसरे तिसहीके शिखरपर फेंक दिया॥१५॥ तब वह उन सुरोंसहित वरदानसे दर्पित हो विघ्न करने लगा, तब तिस महागिरिको भग्न होता देखा कि उसकी नदी आदि छिन्नभिन्न हो गई हैं ॥ १६ ॥ भगवान् रुद्रने तिसपर अनुग्रह किया जैसा पहले था वैसाही बना दिया मतवाले हाथी और मृग

मया वै त्वं याच्यमानो यस्मान्न बहुमन्यसे ॥ अहं चूर्णीकरोमि त्वां बलं पर्वत पश्य मे ॥१४॥ एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गमुत्पाट्य बहुयोजनम् ॥ निष्पिपेष गिरेस्तस्य शृङ्गेष्वन्यत्र वीर्यवान् ॥ १५ ॥ स हतैरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितः ॥ तं प्रच्छन्ननदीजालं भज्यमानं महागिरिम् ॥ १६ ॥ विदित्वा भगवान्रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः ॥ सविशेषतरं वीरं मत्तद्विपमृगायुतम् ॥ १७ ॥ नदीजालैर्बहुरैराचितं चित्रकाननम् ॥ नभश्च्युतैः पुरा यद्वत्तद्वदेव विराजते ॥ १८ ॥ अथ देवप्रभावेन शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु ॥ क्षिप्तानि चासुरानेव घ्नन्ति वीराणि भारत ॥ १९ ॥ क्षिप्त्वा ये प्रपलायन्ते शृङ्गाणि तु महासुरः ॥ शृङ्गैस्तैस्तैः स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिप ॥२०॥ ये स्वस्थास्त्वसुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु ॥ शृङ्गैस्तेन स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः ॥ २१ ॥ ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा सेनां तां मर्दितां तथा ॥ रुषितः सुमहानादं नर्दित्वैवं तदाब्रवीत् ॥ २२ ॥

फिरने लगे॥ १७ ॥ अनेक नदीसमूहसे वह वन चित्रित होगया और आकाशचारियोंसे पहलेके समान हो गया ॥ १८ ॥ हे भारत ! तब महादेवजीके प्रभावसे फेंके हुए ॥ १९ ॥ शृंगोंसे असुरोंको नष्ट करने लगा, वे महाअसुर उन शृंगोंके लगनेसे भागने लगे और पर्वतशृंगोंसे मरने लगे ॥२०॥ और जो असुर नहीं मरे थे और अच्छी तरहसे पर्वततटमें खडे थे वे पर्वतके शृंगोंसे मरते थे ॥ २१ ॥ इस प्रकार सेनाको मर्दित देख क्रुद्ध होकर महानादको छोडकर यह वचन कहने लगा ॥२२॥

हे पर्वत ! तुमसे युद्ध करनेसे क्या है; जिसका यह वन है सो युद्धको आवें जिसने रणमें कपटसे असुर यहां मारे हैं ॥ २३ ॥ जब अंधकने ऐसा कहा तब महादेवजी बैलपर चढ त्रिशूलको ले अंधकके मारनेकी इच्छासे आये ॥ २४ ॥ पीछे प्रमथगण भूतगण येभी सम्पूर्ण साथ आये, तब भूत-गणोंके ईश्वर महादेवजी जब कुपित हुए ॥ २५ ॥ तब सम्पूर्ण त्रिलोकी कांपती हुई और सिंधु उलटे वहने लगे ॥ २६ ॥ तब महादेवजीके तेजसे दिशाओंमें अग्निदाह होने लगा. हे राजन् ! विपरीत हुए सम्पूर्ण ग्रह युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! तिस समयमें पर्वत चलायमान हुए, और धूम

आह्वये तं वनं यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु ॥ किं त्वयाचल युद्धेन हताः स्म च्छद्मना रणे ॥ २३ ॥ एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः ॥ संप्राप्तो शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया ॥ २४ ॥ प्रमथानां गणैर्धीमान्वृतो वै बहुलोचनः ॥ तथा भूतगणैश्चैव धीमा-न्भूतगणेश्वरः ॥२५॥ प्रचकम्पे ततः कृत्स्नं त्रैलोक्यं रुषिते हरे ॥ सिन्धवश्च प्रतिस्रोतमूहुः प्रज्वलितोदकाः ॥ २६ ॥ जग्मुर्दिशोऽ-ग्निदाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा ॥ युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता जनाधिप ॥ २७ ॥ चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह ॥ प्रववर्षाथ पर्जन्यः सधूमाङ्गारवृष्टयः ॥ २८ ॥ उष्णभाश्चन्द्रमाश्चासीत्सूर्यः शीतप्रभस्तथा ॥ न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥२९॥ वडवाः सुषुवुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानघ ॥ पेतुर्वृक्षाश्च मेदिन्यामच्छिन्ना भस्मसात्कृताः ॥ ३० ॥ बाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चारु-रुहुर्वृषान् ॥ राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः ॥ ३१ ॥ विपरीतं जगद्दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम् ॥ मुमोच भगवाञ्छूलं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३२ ॥ तत्पपात रहोत्सृष्टमन्धकोरसि दुर्द्धरम् ॥ भस्मसाच्चाकरोद्रौद्रमन्धकं साधुकण्टकम् ॥ ३३ ॥

अंगारोंसहित वर्षा होने लगी ॥ २८ ॥ चंद्रमा गरमकांतिवाला हो गया, और सूर्यकी ठंडी कांति हो गई, ब्रह्म और वेदवादी मुनि ये कुछभी नहीं जान सकते ॥ २९ ॥ घोडी बछडे जनने लगी, और गौ अश्वोंको जगने लगी, भस्म हुए विना कटे हुए वृक्ष पृथ्वीपर गिरे ॥ ३० ॥ वृषभ गौवोंको मारने लगे, गौ बैलोंको मारने लगीं, राक्षस यातुधान पिशाचोंको ॥ ३१ ॥ तथा जगत्को महादेवजीने विपरीत देखकर अग्निकी कांतिवाला दीप्त त्रिशूल छोडा ॥ ३२ ॥ सो दुर्द्धर त्रिशूल अंधककी छातीपर गिरा और साधुओंके कंटकरूप अंधकको भस्म कर दिया ॥ ३३ ॥

पश्चात् जब यह जगत्का शत्रु मार दिया तब देवता मुनि और तपस्वी महादेवजीकी स्तुति करने लगे॥ ३४॥आकाशमें नगारे बजे,पुष्पोंकी वर्षा हुई, हे जन्मेजय ! त्रिलोकी आनंदित हो गई॥ ३५॥सबोंका दुःख दूर हो गया;देव गंधर्व गाने लगे;और अप्सरा नृत्य करने लगीं और ब्राह्मण जप तथा यज्ञ करने लगे॥ ३६॥ग्रह अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो गये; नदी पहलेके समान वहने लगी;जल निर्मल हो गये,सम्पूर्ण दिशा प्रसन्न हो गईं॥ ३७॥और पर्वतोंमें श्रेष्ठ मंदराचल पहलेके समान शोभित हो गया, और उसका बड़ा तेज बढा॥ ३८॥और पारिजात वनमें महादेवजी रमण करने लगे; इन्द्रादिक सम्पूर्ण

ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ शंकरं तुष्टुवुश्चैव जगच्छत्रौ निबर्हिते ॥३४॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ त्रैलोक्यं निर्वृतं चासीन्नरेन्द्र विगतज्वरम् ॥ ३५ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ जेपुश्च ब्राह्मणा देवानीजुश्च क्रतुभिस्तदा ॥३६॥ ग्रहाः प्रकृतिमापेदुरूहुर्नद्यो यथा पुरा ॥ न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे ॥ ३७ ॥ मन्दरः पर्वतश्रेष्ठः पुनरेव रराज ह ॥ श्रिया परमया जुष्टः सर्वतेजःसमुच्छ्रयात्॥३८॥रेमे सोमश्च भगवान्पारिजातवने हरः॥ सुप्रचारान्सुरान्कृत्वा शक्रादीन्धर्मतः प्रभुः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ मुनेऽन्धकवधः श्राव्यः श्रुतोऽयं खलु भो मया ॥ शान्तिस्त्रयाणां लोकानां कृता देवेन धीमता ॥ १ ॥ निकुम्भस्य हतं देहं द्वितीयं चक्रपाणिना ॥ यदर्थं च यथा चैव तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रद्दधानस्य राजेन्द्र वक्तव्यं भवतोऽनघ ॥ चरितं लोकनाथस्य हरेरमिततेजसः ॥ ३ ॥

देवता धर्मसे प्रसन्न हो गये॥ ३९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भा.टी. अंधकवधे सप्ताशीतितमोध्यायः॥८७॥जनमेजय बोले; हे भगवन ! यह अंधकका वध मैंने सुना, और जैसे तीनों लोकोंकी शांति महादेवजीने की सोभी सुनी॥ १॥परन्तु अब वह वर्णन करो कि भगवान्ने जैसे निकुंभका दूसरा शरीर हत किया सो कहो ॥२॥ वैशंपायन बोले; हे राजर्षे ! अमितपराक्रमवाले भगवान्के उत्तम चरित्र तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥

हे राजन्! द्वारकामें वसते हुए एक कालमें पिंडारककी यात्रा प्राप्त हुई॥४॥तब उग्रसेन और वसुदेव तो नगरकी रक्षाके वास्ते छोडे;और शेष सम्पूर्ण यादव चले ॥ ५ ॥ पृथक् सेना निकली और बालक पृथक् निकले तथा लोकनाथ जनार्दन देवताओंके समान प्रकाशित चले ॥ ६ ॥ हे नृप! हजारहों वेश्या चलीं और भूषणोंसे आभूषित कुमार॥७॥सम्पूर्ण यादवोंसहित जो बडे बली थे दैत्योंके अधिवासको जीतकर तहां सहस्रों वेश्या वसा दी थीं॥८॥सामान्यसे यह स्त्री कुमारोंकी श्रीके निमित्त थीं, यह स्त्री गुणोंसे राजोंकी इच्छा भोगरूप थीं ॥९॥ क्योंकि भैमवंशवालोंकी यह स्थिति

द्वारवत्यां निवसतो विष्णोरतुलतेजसः ॥ समुद्रयात्रा संप्राप्ता तीर्थे पिण्डारके नृप ॥ ४ ॥ उग्रसेनो नरपतिर्वसुदेवश्च भारत ॥ निक्षिप्तौ नगराध्यक्षौ शेषाः सर्वे विनिर्गताः ॥५॥पृथग्बलः पृथग्धीमाल्लोकनाथो जनार्दनः ॥ गोष्ठ्याःपृथक्कुमाराणां नृदेवामितते-जसाम् ॥६॥ गणिकानां सहस्राणि निःसृतानि नराधिप ॥ कुमारैः सह वार्ष्णेयै रूपवद्भिः स्वलंकृतैः ॥७॥ दैत्याधिवासं निर्जित्य यदुभिर्दृढविक्रमैः ॥ वेश्या निवेशिता वीर द्वारवत्यां सहस्रशः ॥८॥ सामान्यास्ताः कुमाराणां क्रीडानार्यो महात्मनाम् ॥ इच्छा-भोग्या गुणैरेव राजन्या वेषयोषितः ॥९॥ स्थितिरेषा हि भैमानां कृता कृष्णेन धीमता ॥ स्त्रीनिमित्तं भवेद्वैरं मा यदूनामिति प्रभो ॥१०॥ रेवत्या चैकया सार्धं बलो रेमेऽनुकूलया ॥ चक्रवाकानुरागेण यदुश्रेष्ठः प्रतापवान् ॥ ११ ॥ कादम्बरीपानकलो भूषितो वनमालया ॥ चिक्रीड सागरजले रेवत्या सहितो बलः ॥ १२ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि जले जलजलोचनः ॥ रमयामास गोविन्दो विश्वरूपेण सर्वदृक् ॥१३॥ अहमिष्टा मया सार्द्धं जले वसति केशवः॥इति ता मेनिरे सर्वा रात्रौ नारायणस्त्रियः॥१४॥

कृष्णने की है, स्त्रीके निमित्त यादवोंका वैर मत हो इस हेतुसे ॥ १० ॥ प्रतापवान् और यादवोंमें श्रेष्ठ बलदेवजी एक रेवतीसहित सागरके जलमें क्रीडा करने लगे ॥ ११ ॥ कादंबरीका पान किये वनमाला पहरे सागरके जलमें विहार करने लगे ॥ १२ ॥ संपूर्णोंके द्रष्टा और कमलकेसे नेत्रोंवाले गोविंद सोलह सहस्र स्त्रियोंको रमण कराने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन्! वे सम्पूर्ण स्त्री अलग २ यह मनाती हुई

कि मैं भगवान्‌की प्यारी हूं, और केशव जलमें मेरेही साथ क्रीडा करते हैं॥ १४॥ वे सब सुरतके चिन्होंसे युक्त सुरतसे तृप्त हुईं बहुत मानवाले गोविंदमें मानवती हुईं ॥ १५ ॥ परिजनमें प्यारी हूं, मैं प्यारी हूं ऐसे कहती हुईं नारायणसहित अति आनंदको प्राप्त हुईं ॥ १६ ॥ वे उत्तम नेत्रोंवाली अंगना नख और दांतोंके चिन्ह कुच और होठोंपर दर्पणोंमें देखकर अतिआनंदको प्राप्त हुईं॥ १७॥ और नेत्रोंसे कमलकेसे मुखकी पीती हुईं भगवान्‌का गोत्र कहकर भगवान्‌के गुणोंको गाने लगीं॥ १८॥ हे जन्मेजय ! कृष्णचंद्रमें मनदृष्टि लगाये नारायणकी मनोहर स्त्री एकनिश्चयवाली न हुईं ॥ १९॥

सर्वाः सुरतचिह्नाङ्ग्यः सर्वाः सुरततर्पिताः ॥ मानमूहुश्च ताः सर्वा गोविन्दे बहुमानजम् ॥ १५ ॥ अहमिष्टाहमिष्टेति स्निग्धे परिजने तदा ॥ नारायणस्त्रियः सर्वा मुदा शश्लाघिरे शुभाः ॥ १६ ॥ करजद्विजचिह्नानि कुचाधरगतानि ताः ॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वा जहृषिरे दर्पणे कमलेक्षणाः ॥ १७ ॥ गोत्रमुद्दिश्य कृष्णस्य जगिरे कृष्णयोषितः ॥ पिबन्त्य इव कृष्णस्य नयनैर्वदनाम्बुजम् ॥ १८ ॥ कृष्णार्पितमनोदृष्ट्यः कान्ता नारायणस्त्रियः ॥ मनोहरतरा राजन्नभवन्नेकनिश्चयाः ॥ १९ ॥ एकार्पितमनोदृष्ट्यो नेर्ष्यां ताश्चक्रिरेऽङ्गना ॥ नारायणेन देवेन तर्प्यमाणमनोरथाः ॥ २० ॥ शिरांसि गर्वितान्यूहुः सर्वा निरवशेषतः ॥ वाल्लभ्यं केशवमयं वहन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ २१ ॥ ताभिस्तु सह चिक्रीड सर्वाभिर्हरिरात्मवान् ॥ विश्वरूपेण विधिना समुद्रे विमले जले ॥ २२ ॥ उवाह सर्वगन्धाढ्यं स्वच्छं वारि महोदधिः ॥ तोयं विलवणं मृष्टं वासुदेवस्य शासनात् ॥ २३ ॥ गुल्फदघ्नं जानुदघ्नमूरुदघ्नम-थापि वा ॥ नार्यस्ताः स्तनदघ्नं वा जलं समभिकांक्षितम् ॥ २४ ॥

संपूर्ण सुरतबद्ध अंगोंवाली और मैथुनसे तृप्त हुई बहुतसे मानको धारे कृष्णचंद्रमें दृष्टि और मन लगाये तृप्त मनोरथवाली अंगना आपसमें ईर्षा न करती हुईं ॥२०॥ और केशवरूप वल्लभको प्राप्त हुईं, शिरसे गर्वको धारे प्रसन्न हुईं ॥ २१ ॥ आत्मवान् हरि विश्वरूप विधिसे तिन संपूर्णोंसहित समुद्रके विमल जलमें क्रीडा करने लगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! भगवान्‌की शिक्षासे वह समुद्र सम्पूर्ण गंधयुक्त और स्वच्छ मिष्टजलको वहाने लगा ॥ २३ ॥ वह समुद्र कहीं घुटनेके प्रमाण, और कहीं गोडेके प्रमाण, और कहीं जंघाके प्रमाण, और कहीं स्तनके प्रमाण ऐसे वांछित जलको धारण करने

लगा ॥ २४ ॥ ये सम्पूर्ण पत्नी केशवको ऐसे सींचने लगीं जैसे धारा समुद्रको और गोविन्दभी तिन्होंको ऐसे सींचने लगे; जैसे फूली हुई वेलोंको मेघ ॥ २५ ॥ हरिणकेसे नेत्रोंवाली कितनीएक स्त्री महाराजको कंठमें पकडकर कहने लगीं, कि हे वीर ! मैं गिरती हूं मुझे थामो ॥ २६ ॥ कितनी-एक सुन्दर अंगोंवाली स्त्री क्रौंच मयूर हस्तीकेसे आकारवाले प्लवोंसे तरने लगीं ॥ २७ ॥ और कितनीक मगर मच्छकेसी आकृतिवाली नौकासे तिरने लगीं, कितनीक मच्छीकेसा आकारवाले प्लवोंसे तिरती भई और कितनीक और स्त्री बहुतरूपवाले प्लवोंसे तिरती ॥ २८ ॥ तिस समुद्रके जलमें जनार्द-

सिषिचुः केशवं पत्न्यो धीरा इव महोदधिम् ॥ सिषेच ताश्च गोविन्दो मेघः फुल्ललता इव ॥ २५ ॥ अवलम्ब्य पराः कण्ठे हरिं हरिणलोचनाः ॥ उपगूहस्व मां वीर पतामीत्यब्रुवन् स्त्रियः ॥ २६ ॥ काश्चित्काष्ठमयैस्तेरुः प्लवैः सर्वाङ्गशोभनाः ॥ क्रौञ्चबर्हिण-नागानामाकारसदृशैः स्त्रियः ॥ २७ ॥ मकराकृतिभिश्चान्या मीनाभैरपि चापराः ॥ बहुरूपाकृतिधरैः पुप्लुवुश्चापराः स्त्रियः ॥२८॥ स्तनकुम्भैस्तथा तेरुः कुम्भैरिव तथापराः ॥ समुद्रसलिले रम्ये हर्षयन्त्यो जनार्दनम् ॥ २९ ॥ रराम सह रुक्मिण्या जले तस्मि-न्मुदा युतः ॥ येनैव कार्ययोगेन रमतेऽमरसत्तमः ॥ ३० ॥ तत्तदेव हि ताश्चक्रुर्मुदा नारायणस्त्रियः ॥ तनुवस्त्रावृतास्तन्व्यो लील-यन्त्यस्तथापराः ॥ चिक्रीडुर्वासुदेवस्य जले जलजलोचनाः ॥ ३१ ॥ यस्या यस्यास्तु यो भावस्तां तां तेनैव केशवः ॥ अनुप्रविश्य भावज्ञो निनायात्मवशं वशी ॥ ३२ ॥ हृषीकेशोऽपि भगवान् हृषीकेशः सनातनः ॥ बभूव देशकालेन कान्तावशगतः प्रभुः ॥३३ ॥

नको प्रसन्न करनेके निमित्त स्तनरूप कुंभोंसे कुंभोंकी तरह तिरने लगीं ॥ २९ ॥ तिस जलमें रुक्मिणीसहित भगवान् क्रीडा करने लगे; जिस कार्यके योगसे भगवान् रमते ॥ ३० ॥ वैसेही नारायणकी स्त्री सम्पूर्ण आनंद करती हुईं; अन्य कितनीएक स्त्री बारीक वस्त्र धारण करे लीला करती हुईं; और कमलकेसे नेत्रोंवाली स्त्रियोंसे वासुदेव भगवान् रमण करने लगे ॥ ३१ ॥ और जिस स्त्रीका जो भाव था उसी भावसे भगवान् तिन्होंके साथ रमण करने लगे, और देशकालसे स्त्री भगवान्को उन्हीं भावोंसे वश करने लगीं ॥ ३२ ॥ और हृषीकेश भगवान् सनातनभी देशकालके अनुसार उनके वश हुए ॥ ३३ ॥

और यह कुल शील कर्मोंसे हमारे योग्य है ऐसा माना और देशरूपके अनुसार वर्तते हुए कृष्णचंद्रका वे बहुतसा मान करती हुईं ॥ ३४ ॥ तब चतुरतासे युक्त हास्यपूर्वक बोलनेवाले कृष्णकी भार्या इच्छा करने लगीं और भक्तिसे उन्हें बहुत माना ॥३५॥ स्त्रीजनोंके सहित कुमारोंकी पृथक् गोष्ठी हुई वे सब वीर सागरके जलको शोभित करने लगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उन स्त्रियोंके गीत नृत्य विधानके प्रभाव सब कृष्णके तेजसे हर गये और वे उनके वशमें हुईं ॥ ३७ ॥ उनके अभिनय और सुन्दर गीत सुनकर तथा उत्तम स्त्रियोंके बाजे सुनकर यदुश्रेष्ठ

कुलशीलसमोऽस्माकं योग्योऽअयमिति मेनिरे ॥ वंशरूपेण वर्तन्तमङ्गनास्ता जनार्दनम् ॥३४॥ तदा दाक्षिण्ययुक्तं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ॥ कृष्णं भार्याश्चकमिरे भक्त्या च बहु मेनिरे ॥ ३५ ॥ पृथग्गोष्ठ्यः कुमाराणां प्रकाशं स्त्रीगणैः सह ॥ अलंचक्रुर्जलं वीराः सागरस्य गुणाकराः ॥३६॥ गीतनृत्यविधिज्ञानां तासां स्त्रीणां जनेश्वर ॥ तेजसाप्याहृतानां ते दाक्षिण्यात्तस्थिरे वशे ॥३७॥ शृण्वन्तश्चारुगीतानि तथा स्वभिनयान्यपि ॥ तुर्याण्युत्तमनारीणां मुमुहुर्यदुपुङ्गवाः ॥ ३८ ॥ पञ्चचूडां ततः कृष्ण कौबेर्यश्च वराप्सराः ॥ माहेन्द्रीश्चानयामास विश्वरूपेण हेतुना ॥ ३९ ॥ ताः प्रोवाचाप्रमेयात्मा सान्त्वयित्वा जगत्प्रभुः ॥ उत्थापयित्वा प्रणताः कृताञ्जलिपुटास्तथा ॥ ४० ॥ क्रीडायुवत्यो भैमानां प्रविशध्वमशङ्किता ॥ मत्प्रियार्थं वरारोहा रमयध्वं च यादवान् ॥ ॥ ४१ ॥ दर्शयध्वं गुणासन्सर्वान्नृत्यगीते रहस्सु च ॥ तथाभिनययोगेषु वाद्येषु विविधेषु च ॥ ४२ ॥ एवं कृते विधास्यामि श्रेयो वा मनसेप्सितम् ॥ मच्छरीरसमा ह्येते सर्वे निरवशेषतः ॥ ४३ ॥

मोहित हुए ॥ ३८ ॥ तब कृष्णने पंचचूड तथा कुबेरकी अप्सरा और महेन्द्री अप्सराओंको ईश्वरतासे बुलाया ॥ ३९ ॥ जगत्के प्रभु अमेयात्माने समझकर उनसे कहा और उन हाथ जोडती हुइयोंको उठाया ॥ ४० ॥ तुम क्रीडाके निमित्त भयरहितहो भैमवंशियोंमें प्रवेश करो; और हमारे प्रियके निमित्त यादवोंको रमण कराओ ॥ ४१ ॥ एकांतमें नृत्य गीतोंसहित संपूर्ण गुण दिखाओ; और मनके भावोंसे और बाजोंसे चित्त प्रसन्न करो ॥ ४२ ॥ जब ऐसे प्रसन्न कर दो तब तुमको वांछित अर्थ प्राप्त होगा; हे अप्सराओ ! यह संपूर्ण मेरे समान हैं ॥ ४३ ॥

तब यह सब हरिकी आज्ञाको शिरसे ग्रहण करके वे संपूर्ण क्रीडायुवति भैमोंको प्राप्त हुई॥४४॥जब यह प्रवेश हुई तब वह महार्णव प्रकाशित हुआ; और वे संपूर्ण ऐसे प्रकाश करती हुई जैसे मेघमें विजली ॥४५॥ और वे संपूर्ण जलमें स्थलवत् स्थित हुई; तहां स्थित होकर जलबाजा बजाने लगीं वे संपूर्ण अंगना स्वर्गवासके समान अभिनय करने लगीं ॥४६॥ गंधमाला दिव्य वस्त्रोंसे और क्रीडाओंकरके हास्यभावोंकरके भैमोंके मनको हरती हुई ॥४७॥ कटाक्ष चेष्टित हास्यकेलि रोष प्रसाद अन्य मनोनुकूल वस्तुओंसे तिन भैमोंके मनोंको हरने लगीं ॥४८॥ और आकाशमें

शिरसाज्ञां तु ताः सर्वाः प्रतिगृह्य हरेस्तदा ॥ क्रीडायुवत्यो विविशुर्भैमानामप्सरोवराः ॥४४॥ ताभिः प्रविष्टमात्राभिर्द्योतितः स महार्णवः ॥ सौदामिनीभिर्नभसि घनवृन्दमिवानघ ॥ ४५ ॥ ता जले स्थलवत्स्थित्वा जगुश्चाप्यथ वादयन् ॥ चक्रुश्चाभिनयं सम्यग्स्वर्गावास इवाङ्गनाः ॥ ४६ ॥ गन्धैर्माल्यैश्च ता दिव्यैर्वस्त्रैश्चायतलोचनाः ॥ हेलाभिर्हास्यभावैश्च जह्रुर्भैममनांसि ताः ॥ ४७ ॥ कटाक्षैरिङ्गितैर्हास्यैः केलिरोषैः प्रसादितैः॥मनोऽनुकूलैर्भैमानां समाजह्रुर्मनांसि ताः ॥४८॥ उत्क्षिप्योत्क्षिप्य चाकाशं वातस्कन्धान्बहूंश्च तान् ॥ मदिरावशगा भैमा मानयन्ति वराप्सराः ॥ ४९ ॥ कृष्णोऽपि तेषां प्रीत्यर्थं विजह्रे वियति प्रभुः ॥ सर्वैः षोडशभिः सार्द्धं स्त्रीसहस्रैर्मुदान्वितः ॥ ५० ॥ प्रभावज्ञास्तु ते वीराः कृष्णस्यमिततेजसः ॥ न जग्मुर्विस्मयं भैमा गाम्भीर्ये परमास्थिताः ॥ ५१ ॥ केचिद्रैवतकं गत्वा पुनरायान्ति भारत ॥ गृहाण्यन्ये वनान्यन्ये कांक्षितान्यरिमर्दन ॥ ५२ ॥ अपेयः पेयसलिलः सागरश्चाभवत्तदा ॥ आज्ञया लोकनाथस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥ ५३ ॥

कूदकर मदिराके वश हुए वातयुक्त भैमोंको वे वरांगना बहुतसी क्रीडा करती हुईं॥४९॥ प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रभी उनकी प्रीतिके निमित्त आकाशमें सोलह सहस्र स्त्रियोंसे प्रसन्न हो विहार करने लगे ॥ ५० ॥ कृष्णचंद्रके प्रभावके जाननेवाले वीर भैम परमगांभीर्यको स्थित हुए आश्चर्यको नहीं प्राप्त हुए ॥५१॥ हे भारत ! कितनेएक रैवतको जाकर फिर आये;हे शत्रुकर्शन ! कृष्णचन्द्रके प्रभावसे गृह और वन वांछित हो गये ॥ ५२ ॥ और तिस समयमें अपेय सागर पीनेके योग्य हो गये; कमलसरीखे नेत्रोंवाली श्री अतुलतेजवाले लोकोंके नाथ भगवान्की आज्ञासे ॥ ५३ ॥

जलमेंभी संपूर्ण स्त्री स्थलकी तरह चलने लगीं, वे स्त्री हाथ पकड २ गोते लगाती थीं ॥५४॥ भक्ष्य भोज्य पेय लेह्य चोष्य इन पदार्थोंका ध्यान करतेही सम्पूर्ण पदार्थ आते थे ॥ ५५ ॥ और खिले हुए पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये तिन आनंदितोंको ऐसे एकांतमें रमण कराती हुईं, जैसे स्वर्गमें देवताओंको ॥ ५६ ॥ अंधक वृष्णि नहीं थके हुए गृहसरीखी नौकासे रमण करते हुए, और सायंकालमें स्नान करके और चंदन लगाकर क्रीडा करने लगे ॥ ५७ ॥ चौखूंटे स्वस्ति गोल विश्वकर्माने नौकामें महल रचे ॥ ५८ ॥ और किसीको कैलास और किसीके निमित्त मंदराचल और

अधावन्स्थलवच्चापि जले जलजलोचनाः ॥ गृह्य हस्ते तथा नार्यो युक्ता मज्जंस्तथापि च ॥ ५४ ॥ भक्ष्यभोज्यानि पेयानि चोष्यं लेह्यं तथैव च ॥ बहुप्रकारं मनसा ध्याते तेषां भवत्युत ॥ ५५ ॥ अम्लानमाल्यधारिण्यस्ताः स्त्रियस्ताननिन्दितान् ॥ रहस्सु रमयांचक्रुः स्वर्गे देवरतानुगाः ॥ ५६ ॥ नैभिर्गृहप्रकाराभिश्चिक्रीडुरपराजिताः तास्तानुलिप्तमुदिताः सायाह्नेऽन्धकवृष्णयः ॥५७॥आयताश्चतुरस्राश्च वृत्ताश्च स्वस्तिकास्तथा ॥ प्रासादा नौषु कौरव्य विहिता विश्वकर्मणा ॥ ५८ ॥ कैलासमन्दरच्छन्दा मेरुच्छन्दास्तथैव च ॥ तथा नानावयच्छन्दास्तथेहामृगरूपिणः ॥ ५९ ॥ वैडूर्यतोरणैश्चित्राश्चित्राभिर्मणिभक्तिभिः ॥ मसारगल्वर्कमयैश्चित्रभक्तिशतैरपि ॥ ६० ॥ आक्रीडगरुडच्छन्दाश्चित्राः कनकरीतिभिः ॥ क्रौञ्चच्छन्दा शुकच्छन्दा गजच्छन्दास्तथापरे ॥ ६१ ॥ कर्णधारैर्गृहीतास्ता नावः कार्तस्वरोज्ज्वलाः ॥ सलिलं शोभयामासुःसागरस्य महोर्मिमत् ॥ ६२ ॥ समुच्छ्रितैः सितैः पोतैर्यानपात्रैस्तथैव च ॥ नौभिश्च झिल्लिकाभिश्च शुशुभे वरुणालयः ॥ ६३ ॥

किसीके लिये सुमेरु ऐसे स्थान रचकर यहां मृगके समान अनेक मृगोंके आकारके ॥ ५९ ॥ वैदूर्य तोरण और विचित्र मणियोंसे भूषित करे मरकत चंद्रकांत सूर्यकांतसे चित्रविचित्र ॥ ६० ॥ लीलागरुडके समान सुवर्णधाराओंसे युक्त क्रौंचच्छंद शुकच्छन्द गजच्छन्दके स्थान बने ॥ ६१ । कितनेएक यादव अनेक प्रकारके पक्षियोंसे क्रीडा करने लगे, तब कर्णधारोंसे धारण करी हुई नौका सुवर्णके समान प्रकाश करती हुई बडी ऊर्मियों-वाले तिस सागरके जलको भूषित करने लगीं ॥ ६२ ॥ और बडी ऊंची छोटी नौकाओंसे और यानपात्रोंसे और नौकाओंसे और झल्लिकाओंसे वह

वरुणालय शोभाको प्राप्त हुआ॥६३॥आकाशमें विचरनेवाले गंधर्वोंके पुर जहां तहां भ्रमते हुए, और सागरके जलमें भैमोंके यान भ्रमने लगे॥६४॥ और तिन यानपात्रोंमें विश्वकर्माने नंदनके समान बगीचा रच दिया॥६५॥और उद्यान सभावृक्ष रच दिये; और वैसेही सम्पूर्ण जगह शिल्पी वसा दिये ॥ ६६ ॥ नारायणकी आज्ञासे विश्वकर्माने सम्पूर्ण स्वर्गके भोग रच दिये ॥६७॥ और उस वनमें पक्षी मधुर शब्द करने लगे, और अत्यन्त तेजवाले भैमोंको वह अत्यन्त मनोहर हो गया॥६८॥और देवलोकमें होनेवाली सफेद कोयल तहां मधुर और विचित्र और यादवोंको वांछित शब्द

पुराण्याकाशगानीव गन्धर्वाणामितस्ततः ॥ बभ्रमुः सागरजले भैमयानानि सर्वतः ॥ ६४ ॥ नन्दनच्छन्दयुक्तेषु यानपात्रेषु भारत ॥ नन्दनप्रतिमं सर्वं विहितं विश्वकर्मणा ॥६५॥ उद्यानानि सभावृक्षा दीर्घिकाः स्यन्दनानि च ॥ निवेशितानि शिल्पानि तादृशान्येव सर्वथा ॥६६॥ स्वर्गच्छन्देषु चान्येषु समासात्स्वर्गसन्निभाः ॥ नारायणाज्ञया वीर विहिता विश्वकर्मणा ॥६७॥ वनेषु रुरुवुर्हृद्यं मधुरं चैव पक्षिणः ॥ मनोहरतरं चैव भैमानामतितेजसाम् ॥६८॥ देवलोकोद्भवा श्वेता विलेपुः कोकिलास्तदा॥मधुराणि विचित्राणि यदूनां कांक्षितानि च ॥६९॥ चन्द्रांशुसमरूपेषु हर्म्यपृष्ठेषु बर्हिणः॥ ननृतुर्मधुरा रावाःशिखण्डिगणसंवृताः॥७०॥ पताका यानपात्राणां सर्वाः पक्षिगणायुताः ॥ भ्रमरैरुपगीताश्च स्रग्दामासक्तवासिभिः ॥७१॥ नारायणाज्ञया वृक्षाःपुष्पाणि मुमुचुर्भृशम् ॥ ऋतवश्चारुरूपाणि विहायसि गतास्तथा ॥ ७२ ॥ ववौ मनोहरो वातो रतिखेदहरः सुखः ॥ रजोभिः सर्वपुष्पाणां पृक्तश्चन्दनशैत्यभृत् ॥ ७३ ॥ शीतोष्णमिच्छतां तत्र बभूव वसुधापते ॥ वासुदेवप्रसादेन भैमानां क्रीडतां तदा ॥ ७४ ॥

करने लगी ॥६९॥ और चंद्रमाकेसी कांतिवाले सफेद महलोंपर शिखंडियोंके सहित और मधुर शब्दवाले मयूर नृत्य करने लगे ॥ ७० ॥ पताका यानपात्रोंपर पक्षी स्थित थे मालाकी सुगंधिके लोभी भ्रमरोंसे गाये हुए वृक्ष ॥ ७१ ॥ नारायणकी आज्ञासे पुष्पोंको त्यागने लगे; सब ऋतु अनुकूल हो गये और ॥ ७२ ॥ उस समयमें रतिका हरनेवाला और सुखदायक पवन चलने लगा; और पुष्पोंकी रजसे और मलयागिरि चंदनसे अत्यन्त शीतल ॥ ७३ ॥ पवन यादवोंको अतिसुख देने लगा;हे जन्मेजय ! भगवान्‌के प्रभावसे तिस समयमें भैमोंको जो क्रोध करते थे ॥ ७४ ॥

क्षुधा और प्यास ग्लानि चिता शोक नहीं हुए॥७५॥पश्चात् बडे ऊंचे शब्दोंवाले बाजोंसे भूषित और नृत्यगीतोंसे भूषित अत्यन्त तेजवाले भैमोंकी सागर क्रीडा हुई ॥७६॥ और बहुत योजनके विस्तारवाले जलरूप समुद्रको रोककर इन्द्रकेसी कांतिवाले कृष्णसे रक्षित यादव क्रीडा करने लगे ॥ ७७ ॥ और सम्पूर्ण सामग्रियोंसहित महात्मा नारायण देवका विश्वकर्माने विचित्र यानपात्र बनाया॥७८॥हे जन्मेजय! जो जो श्रेष्ठ रत्न त्रिलोकीमें थे सो सम्पूर्ण अत्यन्त तेजवाले कृष्णचंद्रके यानपात्रमें विश्वकर्माने लगाये॥७९॥हे भारत! कृष्णचंद्रकी स्त्रियोंके अलग २ निवास रचे और वैदूर्यमणियोंसे

न क्षुत्पिपासा न ग्लानिर्न चिन्ता शोक एव च ॥ आविवेश तदा भैमान्प्रभावाच्चक्रपाणिनः ॥७५॥ अप्रशान्तमहातूर्या गीतनृत्योपशोभिताः ॥ बभूबुः सागरक्रीडा भैमानामतितेजसाम्॥७६॥बहुयोजनविस्तीर्णं समुद्रं सलिलाशयम् ॥ रुद्ध्वा चिक्रीडुरिन्द्राभा भैमाः कृष्णाभिरक्षिताः ॥ ७७ ॥ परिच्छदस्यानुरूपं यानपात्रं महात्मनः ॥ नारायणस्य देवस्य विहितं विश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥ रत्नानि यानि त्रैलोक्ये विशिष्टानि विशाम्पते ॥ कृष्णस्य तानि सर्वाणि यानपत्रेऽतितेजसः ॥७९॥ पृथक्पृथङ्निवासाश्च स्त्रीणां कृष्णस्य भारत ॥ मणिवैडूर्यचित्रास्ताः कार्तस्वरविभूषिताः ॥ ८० ॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णाः सर्वगन्धाधिवासिताः ॥ यदुसिंहैः शुभैर्जुष्टाः शकुनैः स्वर्गवासिभिः ॥८१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रेमे बलश्चन्दनपङ्कदिग्धः कादम्बरीपानकलः पृथुश्रीः ॥ रक्तेक्षणो रेवतिमाश्रयित्वा प्रलम्बबाहुस्खलितः प्रपातः ॥१॥ नीलाम्बुदाभे वसने वसानश्चन्द्रांशुगौरो मदिराविलाक्षः ॥ रराज रामोऽम्बुदमध्यमेत्य संपूर्णबिम्बो भगवानिवेन्दुः ॥२॥

विचित्र और सुवर्णसे भूषित ॥८०॥ सम्पूर्ण ऋतुओंकेपुष्पोंसे व्याप्त और सम्पूर्णगंधोंसे सेवित और स्वर्गके शुभ शकुनोंसे सेवित यदुसिंह अतिशोभाको प्राप्त हुए ॥८१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥ वैशंपायनजी बोले; हे जन्मेजय! चंदनसे लिप्त और कादंबरीके पानसे मधुर शब्दवाले अत्यन्त शोभावाले रक्तनेत्रोंवाले और लम्बीभुजाओंवाले स्खलितवीर्यवाले बलदेवजी रेवतीके आश्रय होकर रमण करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन्! नीलमेघकेसे वस्त्र धारण किये और चंद्रमाकी किरणकेसे गौररूपवाले और मदिरासे घूमते हुए नेत्रोंवाले भग-

वान् बलदेवजी समुद्रके मध्यमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुए जैसे सम्पूर्ण बिंबवाला आकाशमें चंद्रमा॥२॥और बांये एक कानमें निर्मल कुंडलकी शोभा-वाले,और मंदहाससे भूषित, सुन्दर कमलके आभूषणोंसे भूषित,और तिरछे कटाक्षोंवाले रेवतीके सुन्दर मुखको देखते हुए बलदेवजी प्यारी रेवतीके साथ आनंद करने लगे ॥३॥ इसके अनंतर कंस और निकुंभके शत्रु कृष्णचंद्रकी आज्ञासे वह अत्यन्तरूपवाली अप्सराओंका समूह आनंदित हुआ रेवतीके देखनेको स्वर्गकेसी समृद्धिवाले बलदेवजीके स्थानको गया ॥ ४ ॥ पश्चात् यह श्रेष्ठ अंगोंवाली अप्सरा तहां रेवती और बलदेवजीको नमस्कार करके चारों ओर बाजोंके अनुरूप सुन्दर अंगोंवाली अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ५ ॥ यह अप्सरा यथावत् अर्थयुक्त प्रियको

वामैककर्णामलकुण्डलश्रीः स्मेरन्मनोज्ञाब्जकृतावतंसः ॥ तिर्यक्कटाक्षं प्रियया मुमोद रामो मुखं चार्वभिवीक्ष्यमाणः ॥ ३ ॥ अथाज्ञया कंसनिकुम्भशत्रोरुदाररूपोऽप्सरसां गणः सः ॥ द्रष्टुं मुदा रेवतिमाजगाम वेलालयं स्वर्गसमानमृद्ध्या ॥ ४ ॥ तां रेवतीं चाप्यथ वापि रामं सर्वा नमस्कृत्य वराङ्गयष्टयः ॥ वाद्यानुरूपं ननृतुः सुगात्र्यः समन्ततोऽन्या जगिरे च सम्यक् ॥५॥ चक्रुस्तथैवाभिनयेन लब्धं यथावदेषां प्रियमर्थयुक्तम् ॥ हृद्यानुकूलं च बलस्य तस्य तथाज्ञया रैवतराजपुत्र्याः ॥ ६ ॥ चक्रुर्ह-सन्त्यश्च तथैव रासं तद्देशभाषाकृतिवेषयुक्ताः ॥ सहस्ततालं ललितं सलीलं वराङ्गना मङ्गलसंभृताङ्गयः ॥७॥ संकर्षणाधोक्षज-नन्दनानि संकीर्तयन्त्योऽथ च मङ्गलानि ॥ कंसप्रलम्बादिवधं च रम्यं चाणूरघातं च तथैव रङ्गे ॥ ८ ॥ यशोदया च प्रथितं यशोऽथ दामोदरत्वं च जनार्दनस्य ॥ वधं तथारिष्टकधेनुकाभ्यां व्रजे च वासं शकुनीवधं च ॥ ९ ॥

लब्ध होकर पश्चात् रेवतराजकी पुत्रीकी आज्ञाके भावोंसे बलदेवजीका हृद्यानुकूल करने लगीं ॥ ६ ॥ और कितनी एक अप्सरा देशभाषा आकृति और वेशसे युक्त हुई कला करने लगीं; और कितनी एक श्रेष्ठ अंगना लीलासहित सुन्दर ताल बजाती थीं और कितनी एक अंगना बलदेवजी और कृष्णके आनंद करनेवाले और मंगलके देनेवाले गीत गाने लगीं ॥ ७ ॥ तिस रंगभूमिमें कंसका वध और प्रलंबासुरका वध और रमणीक चाणूरका वध इन संपूर्णोंको गाने लगीं॥८॥यशोदाका दामोदर भगवान्‌को ऊखलमें बांधना, अरिष्ट और धेनुकासुरका वध और व्रजमें

वसना; और शकुनीका वध ॥९॥ और यमलार्जुनका तोडना, और वृकोंकी सृष्टि इन सबोंको गाती हुई और यमुनाके कुंडमें कृष्णचंद्रसे दुरात्मा कालिय नागपतिका नाथना॥१०॥और कुंडसे शंखासुरका मारना भगवान्‌का कमलोंको निकालना और जनार्दन भगवान्‌का गौवोंके निमित्त गोवर्द्धनको उठाना ॥११॥और चंदनकी पीसनेवाली कुब्जाको सीधी करना और श्लाघाके योग्य कृष्णचंद्रने जैसे वामनरूप धारण किया इन सम्पूर्ण चरित्रोंको अप्सरा गाने लगीं ॥१२॥ सौभका मथना और हलायुधत्व और देवशत्रुका वध और गांधारकन्याओंके लानेमें राजाओंका जीतना ॥ १३ ॥

तथा च भग्नो यमलार्जुनौ तौ सृष्टिं वृकाणामपि वत्सयुक्ताम्॥ स कालियो नागपतिर्ह्रदे च कृष्णेन दान्तश्च यथा दुरात्मा ॥१०॥ शङ्खह्रदादुद्धरणं च वीर पद्मोत्पलानां मधुसूदनेन ॥ गोवर्द्धनोऽर्थे च गवां धृतोऽभूद्यथा च कृष्णेन जनार्दनेन ॥११॥ कुब्जां यथा गन्धकपीषिकां च कुब्जत्वहीनां कृतवांश्च कृष्ण ॥ अवामनं वामनकं च चक्रे कृष्णो यथात्मानमजोऽप्यनिन्द्यः ॥१२॥ सौभप्रमाथं च हलायुधत्वं वधं मुरस्याप्यथ देवशत्रोः ॥ गन्धारकन्यावहने नृपाणां रथे तथा योजनमूर्जितानाम् ॥ १३ ॥ ततः सुभद्राहरणे जयं च युद्धे च बालाहकजम्बुमाले ॥ रत्नप्रवेकं च युधार्जितैर्यत्समाहृतं शक्रसमक्षमासीत् ॥१४॥ एतानि चान्यानि च चारुरूपा जगुः स्त्रियः प्रीतिकराणि राजन् ॥ सङ्कर्षणाधोक्षजहर्षणानि चित्राणि चानेककथाश्रयाणि ॥१५॥ कादम्बरीपानमदोत्कटस्तु बलः पृथुश्रीः स चुकूर्द रामः ॥ सहस्तताल मधुरं समं च स भार्यया रेवतराजपुत्र्या ॥१६॥ तं कूर्दमानं मधुसूदनश्च दृष्ट्वा महात्मा च मुदान्वितोऽभूत् ॥ चुकूर्द सत्या सहितो महात्मा हर्षागमार्थं च बलस्य धामान् ॥ १७ ॥

और सुभद्राके हरणमें युद्धविषे जीतना बलाहक जम्बूमालीका युद्ध और युद्धमें राजाओंको जीतकर रत्नोंका लाना, यह इंद्रतुल्य पराक्रमीका यश गाया ॥१४॥ हे जन्मेजय ! यह जो बलदेवकृष्णके आनंद करनेवाले चरित्र हैं, और अन्य जो विचित्र चरित्र हैं, उन सबोंको वे अंगना गाने लगीं ॥१५॥ पश्चात् उत्तम शोभावाले और कादंबरीके पानसे मदोत्कट हुए बलदेवजी रेवती भार्यासहित मधुरतालके साथ क्रीडा करने लगे ॥१६॥ पश्चात् क्रीडा करते हुए बलदेवजीको देखकर बलदेवजीके हर्षके कारण सत्यभामासहित भगवान्‌भी क्रीडा करने लगे और आनंदके साथ वे अंगनाभी

क्रीडा करने लगीं ॥ ७॥ और समुद्रयात्राके निमित्त आये हुए नरलोकमें शूरवीर मुदित हुए अर्जुनभी कृष्णचंद्रसहित और सुभद्रासाहित क्रीडा करने लगे ॥ १८ ॥ और बुद्धिमान् गद और सारण और प्रद्युम्न और सांब और सात्यकि और उदारवीर्यबली सत्राजितीका पुत्र अर्थात् सत्यभामाका पुत्र और सुन्दररूपवाला चारुदेष्ण येभी सम्पूर्ण क्रीडा करने लगे ॥ १९ ॥ और बलदेवजीका पुत्र शूर वीर निशठ और उल्मुक ये दोनोंभी क्रीडा करने लगे; अक्रूर सेनापति और शंकु इनसे आदि लेकर यादव और अन्य यादव सम्पूर्ण क्रीडा करने लगे॥२०॥हे उदार कीर्तिवाले जन्मेजय ! ऐसे

समुद्रयात्रार्थमथागतश्च चुकूर्द पार्थो नरलोकवीरः॥ कृष्णेन सार्द्धं मुदितश्चुकूर्द सुभद्रया चैव वराङ्गयष्ट्या॥१८॥गदश्च धीमानथ सारणश्च प्रद्युम्नसाम्बौ नृप सात्यकिश्च ॥ सात्राजितीसूनुरुदारवीर्यः सुचारुदेष्णश्च सुचारुरूपः॥१९॥ वीरौ कुमारौ निशठोल्मुकौ च रामात्मजौ वीरतमौ चुकूर्दतुः॥अक्रूरसेनापतिशंकरश्च तथापरे भैमकुलप्रधानाः॥२०॥ तद्यानपात्रं ववृधे तदानीं कृष्णप्रभावेन जनेन्द्रपुत्र॥ आपूर्णमापूर्णमुदारकीर्ते चुकूर्दयद्भिर्नृप भैममुख्यैः ॥२१॥ तै रासंसक्तैरतिकूर्दमानैर्यदुप्रवीरैरमरप्रकाशैः ॥ हर्षान्वितं वीर जगत्तथाभूच्छेमुश्च पापानि जनेन्द्रसूनो ॥ २२ ॥ देवोऽतिथिस्तत्र च नारदोऽथ विप्रप्रियार्थं मुरकेशिशत्रोः ॥ चुकूर्द मध्ये यदुसत्तमानां जटाकलापागलितैकदेशः ॥२३॥ रामप्रणेता मुनिराजपुत्र स एव तत्राभवदप्रमेयः ॥ मध्ये च गत्वा स चुकूर्द भूयो हेलाविकारैः सविडम्बिताङ्गैः ॥ २४ ॥ स सत्यभामामथ केशवं च पार्थं सुभद्रां च बलं च देवम् ॥ देवीं तथा रेवतराजपुत्रीं संदृश्य संदृश्य जहास धीमान् ॥ २५ ॥

भैममुख्य राजाओंके साथ क्रीडा करते हुए पूर्यमाण वह यानपात्र कृष्णचंद्रके प्रभावसे बढते हुए ॥२१॥ हे राजन् ! देवताओंकेसे प्रकाशवाले क्रीडामें आसक्त यादवोंसे आनंदयुक्त सम्पूर्ण जगत् हो गया और भगवत्की कृपासे पापरहित हो गये॥२२॥और देवताओंके अतिथि जटाकलापसे एकदेशमें गलित नारदमुनि भगवान्के प्यारके निमित्त यादवोंके मध्यमें क्रीडा करने लगे ॥ २३ ॥ हे राजपुत्र ! रासके करनेवाले तहां अप्रमेय कृष्णचंद्र क्रीडा विकारों और विडंबित अंगोंकरके उन स्त्रियोंके मध्यमें फिर क्रीडाकरने लगे॥२४॥और पश्चात् बुद्धिमान् बलदेवजी सत्यभामा केशव सुभद्रा और रेवती इन

सबोंको देख २ हँसने लगे ॥२५॥ परिहासके जाननेवाले भगवान् उन उन उपायोंसे उनको हास्य कराने लगे चेष्टाकी समान चेष्टा करना और भी अनेक लीला करने लगे॥२६॥ कुछ देखकर हँसना और शब्दपर शब्द करना यह भगवान् करने लगे हँसना हँसाना सब कृष्णके विनोदके निमित्त होने लगा॥२७॥तब कृष्णचंद्रकी आज्ञासे सम्पूर्ण स्त्रीरूपके योग्य बहुतसे रत्न और वस्त्र स्त्रियोंने ॥ २८ ॥ स्वर्गमें होनेवाली बहुतसी माला सम्पूर्ण ऋतुके योग्य सबोंको दान कर दीं ॥ २९ ॥ इसके अंतमें अप्रमेय भगवान् नारदका हाथ पकडकर सत्राजितकी पुत्री और अर्जुनके साथ सागरके

ता हासयामास सुधैर्ययुक्तास्तैस्तैरुपायैः परिहासशीलः ॥ चेष्टानुकारैर्हसितानुकारैर्लीलानुकारैरपरैश्च धीमान् ॥२६॥ आभाषितां किंचिदिवोपलक्ष्य नादातिनादान्भगवान्मुमोच ॥ हसन्विहासांश्च जहास हर्षाद्धास्यागमे कृष्णविनोदनार्थम् ॥२७॥ कृष्णाज्ञया सातिशयानि तत्र यथानुरूपाणि ददुर्युवत्यः ॥ रत्नानि वस्त्राणि च रूपवन्ति जगत्प्रधानानि नृदेवसूनोः ॥ २८ ॥ माल्यानि च स्वर्गसमुद्भवानि सन्तानदामान्यतिमुक्तकानि ॥ सर्वर्तुकान्यप्यनयंस्तदानीं ददुर्हरेरिङ्गितकालतज्ज्ञाः ॥ २९ ॥ रासावसाने त्वथ गृह्य हस्ते महामुनिं नारदमप्रमेयः ॥ पपात कृष्णो भगवान्समुद्रे सात्राजितीं चार्जुनमेव चाथ ॥ ३० ॥ उवाच चामेयपराक्रमोऽथ शैनेयमीषत्प्रहसन्पृथुश्रीः ॥ द्विधा कृतास्मिन्पततामु भूत्वा क्रीडाजले नौस्तु सहाङ्गनाभिः ॥ ३१ ॥ सरेवतीकोऽस्तु बलोऽर्द्धनेता पुत्रा मदीयाश्च सहार्द्धभैमाः ॥ भैमार्द्धमेवाथ बलात्मजाश्च सत्पक्षिणः सन्तु समुद्रतोये ॥ ३२ ॥ आज्ञापयामास ततः समुद्रं कृष्णः स्मितं प्राञ्जलिनं प्रतीतः ॥ सुगन्धतोयो भव मृष्टतोयस्तथा भव ग्राहविवर्जितश्च ॥ ३३ ॥

जलमें कूदे॥३०॥तब श्रीकृष्णचंद्र महालक्ष्मीवान् शैनेय (सात्यकि)से बोले कि इस क्रीडाजलमें अपने दो भाग करके अंगनासहित प्राप्त हो॥३१॥ रेवतीसहितआधे भैमोंके साथ वर्तमान हमारे पुत्र, आधे भैम और बलरामके पुत्र सागरमें पक्षवाले हो ॥ ३२ ॥ पीछे अंजलि बांधे आगे खडे समुद्रसे प्रसन्न हुए श्रीकृष्णचंद्र कहने लगे कि हे समुद्र ! तेरा जल सुगंधवाला और मीठा और सुन्दर हो जावे और तू ग्राहोंसे रहित हो जाय ॥ ३३ ॥

तेरी वेलाभूमि रत्नसे विभूषित तथा सुखरूप हो जाय; जो जिसके मनमें हो सो मेरे प्रभावसे उसका मनोनुकूल दे ॥ ३४ ॥ और हे समुद्र ! तेरा जल पीनेके योग्य और सम्पूर्ण जनोंके मनके अनुकूल हो; और तेरे विषय मत्स्य मोती, मणि सुवर्णसे विचित्र हो जाँय ॥ ३५ ॥ अच्छी सुगंधवाले और अच्छे रसवाले भौरोंसे सेवित और रक्तवर्णसे संयुक्त ऐसे विचित्रकमलोंको धारण करो ॥ ३६ ॥ और हे समुद्र ! गौडी और माध्वी और पैष्टी इन मदिराओंके कलशोंको जलके ऊपर स्थापन कर और पीनेके निमित्त सोनेके पात्र स्थापन कर, तिस मदिराको भैमोंको तू दे और वे

दृश्या च ते रत्नविभूषिता तु सा वेलिकाभूरथ पत्सुखा च ॥ मनोऽनुकूलं च जनस्य तत्तत्प्रयच्छ विज्ञास्य च मत्प्रभावात् ॥३४॥
भवस्य पेयोऽप्यथ चेष्टपेयो जनस्य सर्वस्य मनोऽनुकूलः ॥ वैडूर्यमुक्तामणिहेमचित्रा भवन्तु मत्स्यास्त्वयि सौम्यरूपाः ॥३५॥
बिभृस्व च त्वं कमलोत्पलानि सुगन्धसुस्पर्शरसक्षमाणि ॥ षट्पादजुष्टानि मनोहराणि कीलालवर्णैश्च समन्वितानि ॥३६॥ मैरे-
यमाध्वीकसुरासवानां कुम्भांश्च पूर्णान्स्थपयस्व तोये ॥ जाम्बूनदं पाननिमित्तमेषां पात्रं पपुर्येषु ददस्व भैमाः ॥३७॥ पुष्पोच्च-
यैर्वासितशीततोयो भवाप्रमत्तः खलु तोयराशे ॥ यथा व्यलीकं न भवेद्यदूनां सस्त्रीजनानां कुरु तत्प्रयत्नम् ॥३८॥ इतीदमुक्त्वा
भगवान्समुद्रं ततः प्रचिक्रीड सहार्जुनेन ॥ सिषेच पूर्वं नृप नारदं तु सात्राजिती कृष्णमुखेङ्गितज्ञा ॥३९॥ ततो मदावर्जितचा-
रुदेहः पपात रामः सलिले सलीलम् ॥ साकारमालम्ब्य करं करेण मनोहरां रैवतराजपुत्रीम् ॥४०॥ कृष्णात्मजा ये त्वथ भैममुख्या
रामस्य पश्चात्पतिताः समुद्रे ॥ विरागवस्त्राभरणाः प्रहृष्टाः क्रीडाभिरामा मदिराविलाक्षाः ॥ ४१ ॥

यथेच्छ पान करें ॥३७॥ हे समुद्र ! पुष्पोंके समूहसे सुगंधिवाला ठंडे जलवाला हो और तू अप्रमत्त हो; हे समुद्र ! जैसे स्त्रियोंकेसहित यादवोंको दुःख नहीं होवे सोही यत्नसे तू कर ॥३८॥ हे राजन् जन्मेजय ! भगवान् समुद्रको इस प्रकार कहकर पश्चात् अर्जुनके सहित क्रीडा करने लगे, और पीछे सत्यभामा प्रभुके मनकी बात जान पहले नारद मुनिको सेचन करके पीछे कृष्णचंद्रको सेचन करती हुई ॥३९॥ इसके पीछे मदकरके वर्जित सुन्दर देहवाले बलदेवजी मनोहर रेवतीके हाथको पकड जलमें क्रीडा करने लगे ॥४०॥ और भैमसे आदि लेकर जो कृष्णचंद्रके पुत्र थे

सो अनेक प्रकारके आभूषण और वस्त्र धारण करके आनंद युक्त हुए, मदिरा पीकर बलदेवजीके पीछे समुद्रमें कूदे ॥४१॥ निशठोल्मुकसे आदि लेकर बाकी रहे भैम विचित्र वस्त्र धारण किये कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला पहरे और अनेक प्रकारके चिह्न धारण किये कृष्णचंद्रके साथ जलक्रीडा करने गये ॥ ४२ ॥ वीर्यवान् चिह्नोंसे युक्त जलपात्र हाथमें लिये बडे मनोहर अनेक प्रकारके गान करने लगे ॥ ४३ ॥ तिसके पश्चात् अनेक प्रकारके प्रिय जलके बाजे बजने लगे; अप्सरा और स्वर्गवासी जनोंसहित कृष्णचंद्रकी आज्ञासे सैंकडों वधू ॥ ४४ ॥

शेषास्तु भैमा हरिमभ्युपेताः क्रीडाभिरामा निशठोल्मुकाद्याः ॥ विचित्रवस्त्राभरणाश्च मत्ताः सन्तानमाल्यावृतकण्ठदेशाः ॥४२॥ वीर्योपपन्नाः कृतचारुचिह्ना विलिप्तगात्रा जलपात्रहस्ताः ॥ गीतानि तद्वेषमनोहराणि स्वरोपपन्नान्यथ गायमानाः ॥ ४३ ॥ ततः प्रचक्रुर्जलवादितानि नानास्वराणि प्रियवाद्यघोषाः ॥ सहाप्सरोभिस्त्रिदिवालयाभिः कृष्णाज्ञया वेशवधूशतानि ॥ ४४ ॥ आकाशगङ्गाजलवादनज्ञाः सदा युवत्यो मदनैकचित्ताः ॥ अवादयंस्ता जलदर्दुरांश्च वाद्यानिरूपं जगिरे च हृष्टाः ॥४५॥ कुशेशयाकोशविशालनेत्राः कुशेशयापीडविभूषिताश्च ॥ कुशेशयानां रविबोधितानां जह्रुः श्रियं ताः सुरवारमुख्याः ॥ ४६ ॥ स्त्रीवक्त्रचन्द्रैः सकलेन्दुकल्पै रराज राजञ्च्छतशः समुद्रः ॥ यदृच्छया देव विधानतो वा नभो यथा चन्द्रसहस्रकीर्णम् ॥ ४७ ॥ समुद्रमेघः स रराज राजञ्च्छतह्रदा स्त्रीप्रभयाभिरामः ॥ सौदामिनीभिन्न इवाम्बुनाथो देदीप्यमानो नभसीव मेघः ॥ ४८ ॥

मदसे मत्त हुई आकाशगंगाके जलके बाजे जलदर्दुर नाम बजाने लगीं; और प्रसन्न हुई तिन बाजोंके अनुरूप गायनभी करने लगीं ॥ ४५ ॥ कमलकलीके समान नेत्रवाली कमलनालके समान आपीड और मुकुटसे व्याप्त खिले हुए कमलोंकी लक्ष्मीकोभी उन वराङ्गनाओंने हरण कर लिया ॥४६ ॥ हे राजन् जन्मेजय ! कलाकारके सहित स्त्रियोंके मुखरूप चंद्रमाओंसे समुद्र ऐसा शोभित हो गया जैसे हजारों चंद्रमाओंसे आकाश व्याप्त हो ॥४७॥हे राजन् ! समुद्र सहस्रों स्त्रियोंसे ऐसे शोभित हुआ जैसे बिजलियोंसे शोभित आकाशमें मेघ हो ॥४८॥

एकपक्षमें नारायण और नारदजी स्थित हो बलरामपर जल छिकडने लगे,और वह बलरामजी अपने पक्षके चिन्हसे उनको सींचने लगे ॥४९॥ हाथमें लिये हुए पिचकारियोंसे वह जल छोडने लगे वारुणीपानके मदसे और प्रेमसे बलराम तथा श्रीकृष्ण और देवपत्नी॥५०॥जलके सींचनेसे लाल नेत्रकर पुरुषके समान आचरण करती हुई, उनके साथ भैमवंशी काममदसे युक्त हो विहार करने लगे ॥५१॥ तब कृष्णने अतिप्रसंग देखकर उनको निवारण किया, और नारद अर्जुनके सहित बाजोंके शब्दसे युक्त हो स्वयं निवृत्त हुए ॥५२॥ दृढमानवालेभी भैमवंशी कृष्णकी इच्छा जान

नारायणश्चैव सनारदश्च सिषेच पक्षे कृतचारुचिह्नः ॥ बलं समक्षं कृतचारुचिह्नं स चैत्र पक्षं मधुसूदनस्य ॥ ४९ ॥ हस्तप्रमुक्त-जलयन्त्रकैश्च प्रहृष्टरूपाः सिषिचुस्तदानीम् ॥ रागोद्धता वारुणिपानमत्ताः संकर्षणाधोक्षजदेवपत्न्यः ॥ ५० ॥ आरक्तनेत्रा जल-मुक्तिसक्ताः स्त्रीणां समक्षं पुरुषायमाणाः ॥ तेनोपरेमुः सुचिरं च भैमा मानं वहन्तो मदनं मदं च ॥ ५१ ॥ अतिप्रसङ्गं तु विचिन्त्य कृष्णस्तान्वारयामास रथाङ्गपाणिः ॥ स्वयं निवृत्तो जलवाद्यशब्दैः सनारदः पार्थसहायवांश्च ॥ ५२ ॥ कृष्णेङ्गितज्ञा जलयुद्ध-सङ्गाद्भैमा निवृत्ता दृढमानिनोऽपि ॥ नित्यं तथानन्दकराः प्रियाणां प्रियाश्च तेषां ननृतुः प्रतीताः ॥ ५३ ॥ नृत्यावसाने भग-वानुपेन्द्रस्तत्याज धीमानथ तोयसङ्गान् ॥ उत्तीर्य तोयादनुकूललेपं जग्राह दत्त्वा मुनिसत्तमाय ॥ ५४ ॥ उपेन्द्रमुत्तीर्णमथाशु दृष्ट्वा भैमा हि ते तत्यजुरेव तोयम् ॥ विविक्तगात्रास्त्वथ पानभूमिं कृष्णाज्ञया ते ययुरप्रमेयाः ॥५५॥यथानुपूर्व्या च यथावयश्च यत्सन्नियोगाश्च तदोपविष्टाः ॥ अन्नानि वीरा बुभुजुः प्रतीताः पपुश्च पेयानि यथानुकूलम् ॥ ५६ ॥

जलयुद्धसे निवृत्त हुए तब अपने प्रियजनोंको आनद देनेवाली स्त्री उनके सन्मुख नृत्य करने लगीं॥५३॥श्रीकृष्णने नृत्य देखकर जलके वस्त्र त्यागन किये,और फिर चन्दनादि लेपन नारदजीको देकर स्वयंभी ग्रहण किया॥५४॥श्रीकृष्णको जलसे बाहर आया हुआ देख यादवोंनेभी जल त्यागन कर दिया गीले शरीरवाले चंदनयुक्त श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे पानभूमिको गये॥५५॥यथायोग्य अवस्थाके अनुसार वे सब स्थित हुए और वे वीर

अन्नपान अनेक प्रकारकी वस्तुओंका सेवन करने लगे ॥ ५६ ॥ पक्क मांस अम्ल फल चूक दाडमी शूलपर भूने मांस वहां रसोई बनानेवालोंने प्रस्तुत किये ॥ ५७ ॥ शूलमें आरोपण करनेसे खिन्न हुए अरने बालशल घृतमें तप्त किये अन्य पदार्थ अम्लवेतसादिके वृक्ष नमक चूका पुरवासियोंने सूपकारीके विधानसे इनको सेवन किया ॥ ५८ ॥ और इसी प्रकारसे सूपविधानसे सिद्ध किये मृगोंके मांस तथा औरभी अनेक प्रकारके मीठे खट्टे पदार्थ प्राप्त किये गये॥५९॥ घृतमें तर किये मांसखण्ड उनके निकट उपस्थित किये गये जो समुद्रचूर्णसे चूर्ण किये हुए मिरच मसालोंसे युक्त कहीं

मांसानि पक्कानि फलाम्लकानि चुकोत्तरेणाथ च दाडिमेन ॥ निष्टप्तशूलान् शकलान्पशूंश्च तत्रोपजह्नुः शुचयोऽथ सूदाः ॥५७॥ सुस्विन्नशूल्यान्महिषांश्च बालाञ्छूलान्सविष्टप्तघृतावसिक्तान् ॥ वृक्षाम्लसौवर्चलचुक्रपूर्णान्पौरोगवोक्त्या उपजह्नुरेषाम्॥५८॥पौरोगवोक्त्या विधिना मृगाणां मांसानि सिद्धानि च पीवराणि॥नानाप्रकाराण्युपजह्नुरेषां मृष्टानि पक्कानि च चुक्रचूतैः॥५९॥पार्श्वानि चान्ये शकलानि तत्र ददुः पशूनां घृतमृक्षितानि ॥ सामुद्रचूर्णैरवचूर्णितानि चूर्णेन मृष्टेन समारिचेन ॥६०॥ समूलकैर्दाडिममातुलिङ्गैः पर्णासहिङ्ग्वार्द्रकभूस्तृणैश्च ॥ तदोपदंशैः सुमुखोत्तरैस्ते पानानि हृष्टाः पपुरप्रमेयाः ॥६१॥ कट्वाङ्गशूलैरपि पक्षिभिश्च घृताम्लसौवर्चलतैलसिक्तैः ॥ मैरेयमाध्वीकसुरासवांस्ते पपुः प्रियाभिः परिवार्यमाणाः ॥६२॥ श्वेतेन युक्ता नृप शोणितेन भक्ष्यान् सुगन्धाँल्लवणान्वितांश्च ॥ आर्द्रान्किलादान्घृतपूर्णकांश्च नानाप्रकारानपि खण्डखाद्यान् ॥ ६३ ॥

दूसरे प्रकारके मीठे पदार्थ ॥ ६० ॥ मूली दाडिमी मातुलिंग पर्णास (ववई) हींग अद्रक भूतृण पानपात्रमें अनेक प्रकारके पदार्थ प्रसन्न हो पान करने लगे ॥ ६१ ॥ कटुरस तथा पक्षियोंसे युक्त घृत अम्लरस नमक तेलमें सिक्त हुए पदार्थ मैरेय माधवी सुरा आसव यह सब वस्तु वे अपनी प्रियाओंके संग पान करने लगे ॥६२॥ हे नृप ! शोणित और श्वेतके सहित भक्ष्य पदार्थ तथा दूसरे गंध और लवणयुक्त पदार्थ आर्द्रादि खाद्य पदार्थ महिषीके दूधमें सिक्त हुए घृतसे पूर्ण औरभी अनेक प्रकारके खण्डखाद्य पदार्थ ॥ ६३ ॥

मद्यपानादि त्यागे हुए उद्धव भोज मिश्र आदि यह शाक और अनेक प्रकारके सूप दूध दही और अनेक प्रकारके मिष्ट पदार्थ भोजन करनेलगे उद्धव भोज मिश्र मांसादिका सेवन नहीं करते थे॥६४॥अनेक प्रकारके कांजीके रस बहुत प्रकारके कपर्दके बनाये हुए पात्रोंमें औटे हुए दूधमें बूरा आदि डालकर पान करते औरभी अनेक प्रकारके फल खाने लगे॥६५॥इस प्रकार वे भैममुख्य तृप्त हो अपनी स्त्रियोंके साथ प्रसन्न हो अनेक प्रकारके गीत गाने लगे और मनोहर स्त्रियोंसे गवाने लगे॥६६॥तब भगवान् उपेन्द्रने रात्रिके समय उनको आज्ञा दी कि सब मिलकर गान करो जिसको गंधर्व राग कहते

अपानपाश्चोद्धवभोजमिश्राः शाकश्च सूपैश्च बहुप्रकारैः ॥ पेयैश्च दध्ना पयसा च वीराः स्वन्नानि राजन्बुभुजुः प्रहृष्टाः ॥६४॥ तथारनालांश्च बहुप्रकारान्पपुः सुगन्धानपि पालवीषु ॥ शृतं पयः शर्करया च युक्तं फलप्रकारांश्च बहूंश्च खादन् ॥ ६५ ॥ तृप्ताः प्रवृत्ताः पुनरेव वीरास्ते भैममुख्या वनितासहायाः ॥ गीतानि रम्याणि जगुः प्रहृष्टाः कान्ताभिनीतानि मनोहराणि ॥६६॥ आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः॥ छालिक्यगेयं बहुसन्निधानं यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति ॥६७॥ जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड्ग्रामरागादिसमाधियुक्ताम् ॥ हल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः स वंशघोषं नरदेव पार्थः ॥६८॥ मृदंगवाद्यानप- गंश्च वाद्यान्वराप्सरास्ता जगृहुः प्रतीताः ॥ आसारितान्ते च ततः प्रतीता रम्भोत्थिता साभिनयार्थतज्ज्ञा ॥ ६९ ॥ तयाभिनीते वरगात्रयष्ट्या तुतोष रामश्च जनार्दनश्च ॥ अथोर्वशी चारुविशालनेत्रा हेमा च राजन्नथ मिश्रकेशी ॥७०॥ तिलोत्तमा चाप्यथ मेनका च एतास्तथान्याश्च हरिप्रियार्थम् ॥ जगुस्तथैवाभिनयं च चक्रुरिष्टैश्च कामैर्मनसोऽनुकूलैः ॥७१॥

हैं॥६७॥तब रागकी समाधिसे युक्त नारदजीने वीणा ग्रहण की श्रीकृष्णने नृत्य ग्रहण किया और वंशघोष (मुरली) भी ग्रहण की॥६८॥दूसरे मृदंगके बाजे अर्जुनने तथा दूसरी अप्सराओंने ग्रहण किये और आसारित अर्थात् प्रथम नर्तकीप्रवेश फिर अर्थ दिखाकर अभिनय करना फिर तालकी गतिसे अंगादिका चलाना फिर देवता चिह्नरूपसे नृत्य करना यह प्रारंभ हुआ तब नृत्य करनेमें चतुर रंभा खडी हुई॥६९॥उस श्रेष्ठ अंगनाकेनृत्यसे राम और जनार्दन प्रसन्न हुए फिर सुन्दर विशालनेत्रवाली उर्वशी हेमा और मिश्रकेशी॥७०॥तिलोत्तमा मेनका यह सब श्रीकृष्णके प्रियके निमित्त गाने

और नाटच करने लगीं तथा मनके अनुकूल कार्य करने लगीं ॥ ७१ ॥ वे वासुदेवमें मन लगाये अपने नृत्य गीत उदारतादिसे ताम्बूलके योगसे तथा अन्यकलाओंसे उन अप्सराओंने श्रीकृष्णको तृप्त किया ॥७२॥ तब जलक्रीडामें प्राप्त हुई वे कृष्णके मनोनुकूल करनेवाली अप्सरा फल और उत्तम गंधवाली गान्धर्व नृत्य करने लगीं ॥७३॥ वे कृष्णकी इच्छासे मनुष्योंके ऊपर अनुग्रह करनेको स्वर्गसे पृथ्वीमें आईं और वे सुन्दर फलादि लाईं थीं जो बडे मनोहर और प्रभुके तेजसे स्थित थे रुक्मिणीकुमारने उनको लेकर बांटे ॥ ७४ ॥ उस समय छालिक्यराग उदारबुद्धि इन इन्द्रके समान

ता वासुदेवेऽप्यनुरक्तचित्ताः स्वगीतनृत्याभिनयैरुदारैः ॥ नरेन्द्रसूनो परितोषितेन ताम्बूलयोगाश्च वराप्सरोभिः ॥७२॥ तदागताभिर्नृवराहृतास्तु कृष्णेप्सया मानमयास्तथैव ॥ फलानि गन्धोत्तमवन्ति वीराश्छालिक्यगान्धर्वमथाहृतं च ॥ ७३ ॥ कृष्णेच्छया च त्रिदिवान्नृदेव अनुग्रहार्थं भुवि मानुषाणाम् ॥ स्थितं च रम्यं हरितेजसेव प्रयोजयामास स रौक्मिणेयः ॥ ७४ ॥ छालिक्यगान्धर्वमुदारबुद्धिस्तेनैव ताम्बूलमथ प्रयुक्तम् ॥ प्रयोजितं पञ्चभिरिन्द्रतुल्यैश्छालिक्यमिष्टं सततं नराणाम् ॥ ७५ ॥ शुभावहं वृद्धिकरं प्रशस्तं मङ्गल्यमेवाथ तथा यशस्यम् ॥ पुण्यं च पुष्ट्यभ्युदयावहं च नारायणस्येष्टमुदारकीर्तेः ॥ ७६ ॥ भरापहं धर्मभरावहं च दुःस्वप्ननाशं परिकीर्त्यमानम् ॥ करोति पापं च तथा विहन्ति शृण्वन्सुरावासगतो नरेन्द्र ॥ ७७ ॥ छालिक्यगान्धर्वमुदारकीर्तिर्मेने किलैकं दिवसं सहस्रम् ॥ चतुर्युगानां नृप रेवतोऽथ ततः प्रवृत्ता च कुमारजातिः ॥ ७८ ॥ गान्धर्वजातिश्च तथापरापि दीपद्यथा दीपशतानि राजन् ॥ विवेद कृष्णश्च सनारदश्च प्रद्युम्नमुख्यैर्नृप भैममुख्यैः ॥ ७९ ॥

महाबली कृष्ण राम प्रद्युम्न अनिरुद्ध साम्ब पांच जनोंने प्रयोग किया जो मनुष्योंको अत्यन्त इष्टरूप था॥७५॥शुभका करनेवाला वृद्धिका करनेवाला प्रशस्त मंगल और यशका देनवाला पुण्य पुष्टि और अभ्युदयका देनेवाला उदारकीर्ति नारायणका इष्ट ॥७६॥ श्रमका दूर करनेवाला धर्मका धारण करनेवाला नाम लेतेही दुःस्वप्नका नाश करनेवाला कीर्तन करनेसे पापका दूर करनेवाला श्रवण करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला ॥७७॥ जो कि छालिक्य गान्धर्व उदारकीर्तिने चार सहस्र युगोंके एक दिन माना था उसीसे कुमारजातिके गन्धर्व प्रवृत्त हुए हैं ॥ ७८ ॥ जैसे एक दीपकसे सहस्र

दीपक प्रज्वलित हो जाते हैं इसी प्रकार दूसरी गन्धर्वजाति उससे प्रगट हुई है कृष्ण नारद प्रद्युम्न मुख्य राजा ॥७९॥ इस विज्ञानको जानते हैं और मनुष्यलोकमें उद्देशमात्रसे छालिक्यके गुणोदयजानते हैं जैसे नदियोंके जल सागरमें जाते हैं॥८०॥हिमवान्पर्वतफलसे या गुणसे जाननेको समर्थ है उस छालिक्यको तपके विना तथा मूर्छनाकेस्थान आदिमें जाननेको समर्थ नहीं है॥८१॥हे राजन्! रागोंमें छःग्राम उसके एकदेशके अवयवमें करने उचित हैं उस कुमारजातिको लेशमात्र निष्ठाकोभी कोई दुःखसे प्राप्त होता है॥८२॥छालिक्यगन्धर्वके गुणोदयमें जो देवगन्धर्व महर्षि हैं वे बडी विचारबुद्धिसे

विज्ञानमेतद्धि परे यथावदुद्देशमात्राच्च जनास्तु लोके ॥ जानन्ति छालिक्यगुणोदयानां तोयं नदीनामथ वा समुद्रे ॥ ८० ॥ ज्ञातुं समर्थो हिमवान् गिरिर्वा फलाग्रतो वा गुणतोऽथ वापि ॥ शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिः स्थाने विधानान्यथ मूर्च्छनासु ॥८१॥ षड्ग्रामरा गेषु च तत्र कार्यं तस्यैकदेशावयवेन राजन् ॥ लेशाभिदानां सुकुमारजातिं निष्ठां सुदुःखेन नराः प्रयान्ति ॥ ८२ ॥ छालिक्यगान्धर्वगुणोदयेषु ये देवगन्धर्वमहर्षिसंघा ॥ निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छ बुद्ध्या छालिक्यमेवं मधुसूदनेन ॥ ८३ ॥ भैमोत्तमानां नरदेव दत्तं लोकस्य चानुग्रह काम्ययैव ॥ गतं प्रतिष्ठाममरोपगेयं बालायुवानश्च तथैव वृद्धाः ॥ ८४ ॥ क्रीडन्ति भैमाः प्रसवोत्सवेषु पूर्वं तु बालाः समुदावहन्ति ॥ वृद्धाश्च पश्चात्प्रतिमानयन्ति स्थानेषु नित्यं प्रतिमानयन्ति ॥८५॥ मर्त्येषु मर्त्यान्यदवोऽतिवीरा स्ववंशधर्मं समनुस्मरन्तः ॥ पुरातनं धर्मविधानतज्ज्ञाः प्रीतिः प्रमाणं न वयः प्रमाणम् ॥ ८६ ॥ प्रीतिप्रमाणानि हि सौहृदानि प्रीतिं पुरस्कृत्य हि ते दशार्हाः ॥ वृष्ण्यन्धकाः पुत्रसुखा बभूवुर्विसर्जिताः केशिविनाशनेन ॥ ८७ ॥

निष्ठाको प्राप्त होते हैं इसप्रकार छालिक्यमधुसूदनने॥८३॥लोकके अनुग्रहकी इच्छासे उत्तम भैमोंको प्रदानकिया और वह गाना समाप्तितक पहुँच गया बालक युवा और वृद्ध॥८४॥भैमवंश उसउत्सवमें क्रीडा करने लगे प्रथमबालक प्रसन्न होते हैं फिर उसे वृद्धमानते और प्रसन्न होते हैं स्थानोंमें योग्यताको प्राप्तहोते हैं॥८५॥यदुवीर मृत्युलोकमें अपने वंशके धर्मको स्मरण करते हुए तथा पुरातन धर्मके विधानके जाननेवाले प्रीतिकाही प्रमाण करते हैं वयका प्रमाण नहीं है॥८६॥मित्रता प्रीतिहीकी प्रमाणवाली होती वे दाशार्ह प्रीतिको आगे करके वृष्णिअंधक पुत्रोंसे बडा सुख मानते हुए तब

श्रीकृष्णने उनको विदा किया ॥ ८७ ॥ मधु और कंसके शत्रुको प्रणाम करके अप्सराओंके समूह स्वर्गको गये और देवताओंके समूह बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां भानुमतीहरणे छालिक्यक्रीडावर्णनं नामकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ वैशंपायन बोले; उन पुण्यकर्मा यदुओंके क्रीडा करनेपर छिद्रको देखकर दुर्बुद्धि देवताओंका शत्रु दुरासद ॥ १ ॥ भानुकी कन्या भानुमतीको अपने वधकी इच्छासे निकुंभ नाम दानवने हरण किया ॥ २ ॥ अन्तर्हित होकर यदुओंकी स्त्रीजनोंको मोहित कर, हे राजन्! उस मायाके जाननेवालेने मायासे पूर्ववैरको

स्वर्गं गताश्चाप्सरसां समूहाः कृत्वा प्रणामं मधुकंसशत्रोः ॥ प्रहृष्टरूपस्य सुहृष्टरूपा बभूव हृष्टः सुरलोकसङ्घः ॥ ८८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे छालिक्यक्रीडावर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तेषां क्रीडाप्रसक्तानां यदूनां पुण्यकर्मणाम् ॥ छिद्रमासाद्य दुर्बुद्धिर्देवशत्रुर्दुरासदः ॥ १ ॥ कन्यां भानुमतीं नाम भानोर्दुहितरं नृप ॥ जहारात्मवधाकांक्षी निकुम्भो नाम दानवः ॥ २ ॥ अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूनां प्रमदाजनम् ॥ मायावी मायया राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥ भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती ॥ प्रद्युम्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हतः ॥ ४ ॥ भानोरेव तथा रण्ये वसत्यवसरेण हि ॥ अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधमः ॥ ५ ॥ कन्यापुरे महानादः सहसा समुपस्थितः ॥ तस्यां ह्रियन्त्यां कन्यायां रुदन्त्यां समर्तिंजयः ॥ ६ ॥ वसुदेवाहुको वीरौ दंशितौ निर्गतावुभौ ॥ आर्तनादमुपश्रुत्य भानोः कन्यापुरे तदा ॥ ७ ॥ न दृष्टिगोचरौ तौ तु ददृशातेऽपकारिणम् ॥ तथैव दंशितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः ॥ ८ ॥

स्मरण करते हुए ॥ ३ ॥ जो कि उसके वज्रनाभ भाईकी प्रभावती कन्या थी उसको प्रद्युम्नने वज्रनाभको मार प्रभावतीका हरण किया था ॥ ४ ॥ भानु यादवके उपवनमें स्थित हुआ जान समयको देख अस्वाधीन द्वारकामें कोई रक्षक न देखकर और दुराधर्षतामें युक्त इस दानवने छिद्रको देख कार्य किया ॥ ५ ॥ तब भानुके अन्तःपुरमें सहसा कोलाहल होने लगा. हे राजन् ! उस कन्याके हरण होनेमें वे सब स्त्री रुदन करने लगीं ॥ ६ ॥ भानुके कन्याके रहनेके स्थानमें आर्तनाद श्रवण कर वसुदेव और आहुक यह दोनों चले ॥ ७ ॥ परन्तु उन दोनोंने अपकारीको प्रत्यक्ष न देखा तब इस प्रकार

देख महाबली कृष्णके पास आये ॥ ८ ॥ यह सुनतेही श्रीकृष्ण अर्जुनके सहित सर्पशत्रु गरुडवाहनपर स्थित हुए ॥९॥ हे रथी ! तुम बहुत शीघ्र चलो इस प्रकार कश्यपपुत्र गरुडको श्रीकृष्णने आज्ञा दी ॥१०॥ रणदुर्जय निकुंभके वज्रनगरमें अर्जुन और श्रीकृष्ण आये ॥११॥ और माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी प्रद्युम्नजीभी आये, निकुंभ उन तीनोंको देखकर आपभी तीन रूप हो गया॥१२॥और हँसते हुए निकुंभने उन तीनोंसे युद्ध किया देवताके समान वह बहुत काँटे लगी बडी भारी गदा ॥ १३ ॥ और वाम हाथमें भानुमतीको लिये हुए और दहने हाथमें कन्याको

श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः ॥ पार्थेन सहितस्तार्क्ष्यं नागशत्रुमरिंदमः ॥ ९ ॥ रथा त्वमनुगच्छेति सादश्य मकरध्वजम् ॥ त्वरेति गरुडं वीरः संदिदेश च काश्यपम् ॥ १० ॥ वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम् ॥ पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिंदमौ ॥ ११ ॥ प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिनां प्रवरो नृप ॥ निकुम्भश्चाथ तान्दृष्ट्वा त्रिधात्मानमथाकरोत् ॥ १२ ॥ तान्सर्वान्योधमायास निकुम्भः प्रहसन्निव ॥ बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमरोपमः ॥१३॥ सव्येनालम्ब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप ॥ दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत्पुनः ॥ १४ ॥ कन्यार्थं न च कृष्णो वा कामो वा नृपसत्तमः ॥ निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥ १५ ॥ समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः ॥ निशश्वसुर्नरप ते दयाभारावपीडिताः ॥ १६ ॥ श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थः सर्वथा कुशलो युधि ॥ नागोध्रविधिना दैत्यं शरपंक्त्या जघान ह ॥ १७ ॥ ते तु वैतस्तिकैर्बाणैर्विधान्दानवान्युधि ॥ न कन्यां कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते ॥ १८ ॥

ग्रहण किये प्रहार करने लगा ॥१४॥ हे राजन् ! कहीं कन्याके आघात न लगे इस कारण प्रद्युम्न और श्रीकृष्ण निर्दयतासे निकुंभपर प्रहार नहीं करते थे ॥१५॥ वे महात्मा दुरासद शत्रु के मारनेमें समर्थ थे. हे राजन् ! दयाभावसे पीडित हो श्वास लेने लगे ॥१६॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सर्वथा युद्धमें कुशल अर्जुनने अजगरवेष्टित ऊंटकी विधिसे (जिसमें सर्पके प्रहार लगे ऊंटके नहीं) शरपंक्तिसे उसको ताडन किया॥१७॥ते कृष्ण आदि बडे बडे वैतस्तिक बाणोंसे दानवोंको मारने लगे परन्तु उनकी अस्त्रशिक्षासे कन्याके प्रहार नहीं लगता था ॥ १८ ॥

तब वह कन्याके सहित अन्तर्धान हो गया आसुरीमायामें स्थित हुए उसको किसीने न जाना ॥ १९ ॥ राम कृष्ण और प्रद्युम्न उसके पीछे हुए तब वह महाराक्षस हरियल पक्षी बनकर स्थित हुआ ॥ २० ॥ तब वीर अर्जुनने अनेक बाणोंसे उसे ताडन किया परन्तु इस प्रकार ताडन किया कि जिससे कन्याकी रक्षा की जाय ॥ २१ ॥ वह महाबली असुर सात द्वीपकी सम्पूर्ण पृथ्वीमें घूमता फिरा परन्तु इन वीरोंने उसका पीछा न छोडा ॥ २२ ॥ तब वह महाअसुर गोकर्णपर्वतके ऊपरसे कन्याके सहित गंगाके पुलिनमें गिरा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! गोकर्ण

ततः स कन्यया सार्द्धं तत्रैवान्तरधीयत ॥ असुरीमाश्रितो मायां न च तां वेत्ति कश्चन ॥१९॥ तं कृष्णौ रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनु-ययुस्तदा ॥ हारितः शकुनो भूत्वा तस्यावथ महासुरः ॥२०॥ तं बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो धनञ्जयः ॥ वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भिः कन्यां रक्षन्न ताडयत् ॥२१॥ स इमां पृथिवीं कृत्स्नां सप्तद्वीपां महासुरः ॥ बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वीरैररिमर्दनः ॥२२॥ गोकर्णस्यो-परिष्टात्तु पर्वतस्य महासुरः ॥ पपात वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया ॥२३॥ न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः ॥ गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत ॥२४॥ एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः ॥ कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः ॥२५॥ असुरः सोऽर्दितो राजन्कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः ॥ त्यक्त्वाथोत्तरगोकर्णं निकुम्भो दक्षिणां दिशम् ॥ जगाम पृष्ठतो यातौ कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा ॥२६॥ विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातिनामालयं तदा ॥ तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोषतुः ॥ २७॥

महादेवका ऐसा तेज है कि देवता असुर तपोधन कोईभी उनको लंघन करनेमें समर्थ नहींहैं ॥२४॥ शीघ्रविक्रमी प्रद्युम्न रणदुर्जयने इसी अवसरमें भानु-मती उस कन्याको उससे ग्रहण किया॥२५॥कृष्ण आदिने तीक्ष्णबाणोंसे उस असुरको विद्ध किया तब गोकर्णको छोडकर वह दक्षिणदिशामें चला तब कृष्णादिभी गरुडपर चढ उसके पीछे गये ॥२६॥ तब वह अपने जातियोंके षट्पुरमें प्रविष्ट हुआ वह कृष्णादि दोनों वीर रात्रिमें उसे गुहाके द्वारमें

स्थित रहे ॥२७॥ प्रद्युम्नको कृष्णने द्वारकामें जानेकी आज्ञा दी वह प्रसन्न हो भानुमतीको लेकर गये ॥ २८ ॥ जब वह वीर चले गये और शीघ्र लौट आये तब दानवोंसे आकुल षट्पुरको गुहाके द्वारपर कृष्ण और अर्जुनने देखा॥२९॥ तब यह महाबली उसका द्वार रोककर वहां स्थित रहे यह प्रद्युम्नसहित श्रीकृष्ण निकुंभके वधकी इच्छा किये रहे ॥ ३० ॥ तब इसी अवसरमें महाबली निकुंभ युद्धकी इच्छासे गुहासे निकला ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उसके गुहासे निकलतेही अर्जुनने गांडीव धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे सर्वथा उसका मार्ग रोक दिया ॥ ३२ ॥ तब वहभी महाबली निकुंभ

रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम् ॥ अनयद्भानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥ नयित्वा चाययौ वीरः षट्पुरं दानवाकुलम् ॥ ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ ॥ २९ ॥ ऊषतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ ॥ कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवधकांक्षिणौ ॥ ३० ॥ ततोऽनन्तरमेतस्माद्बिलादतिबलस्तदा ॥ निर्जगाम बली योद्धुं निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥ तस्यनिर्गच्छतस्तस्माद्बिलात्पार्थो विशाम्पते ॥ रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनिःसृतैः ॥ ३२ ॥ सोऽभिसृत्य गदां घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम् ॥ शिरस्यताडयत्पार्थं निकुम्भो बलिनां वरः ॥ ३३ ॥ अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ॥ गदयाभिहते पार्थे रक्तं वमति मुह्यति ॥ हसित्वा सोऽसुरो दृप्तो रौक्मिणेयमताडत् ॥३४॥ तं प्राङ्मुखं वीरं मायावी मायिनां वरम् ॥ अदृष्टेना-हतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ॥ ३५ ॥ तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ ॥ अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भं क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३६ ॥ कौमोदकीं समुद्यम्य गदापूर्वोद्भवो गदाम् ॥ तावन्योन्यं दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततुः ॥ ३७ ॥

बहुत कांटेवाली गदाको उठाकर अर्जुनके शिरमें मारता हुआ ॥३३॥ और अदृष्ट होकर वीरके शिरपर प्रहार किया, जिससे अर्जुन मोहित हो रुधिर वमन करने लगे, तब हँसकर तृप्त हुए उस असुरने प्रद्युम्नको ताडन किया ॥ ३४ ॥ उस मायाके जाननेवाले वीरको सन्मुख देखकर अदृष्ट हो दैत्यने उनके शिरपर प्रहार किया जिससे वेभी मोहित हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकार उनको मोहित और अधिक ताडित देख क्रोधसे मूर्छित हो निकुंभ कृष्णके निकट आया ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णने उसे आता देख कौमोदकी गदा ग्रहण की, और वह दोनों दुराधर्ष गर्जन करते सन्मुख हुए ॥ ३७ ॥

सब देवताओंके सहित इन्द्र ऐरावतपर चढकर उस देवासुरके महाघोर युद्धको दखने लगे॥ ३८ ॥श्रीकृष्णने देवताओंको देखउनके हितकी इच्छासे दानवोंकेवधको उनके साथ बडा विचित्र युद्ध किया॥३९॥केशव बडे बडे विचित्र मंडल दिखाते हुए युद्धमें पण्डित कौमोदकी गदाको घुमाने लगे ॥४०॥ इसी प्रकार वह राक्षसभी उस बहुत काँटेवाली गदाको शिक्षासे घुमाता हुआ मंडलोंमें विचरने लगा ॥४१॥ वे बडे दो वृषभ और हाथीके समान गर्जते हुए क्रोधी दो शालावृकके समान कुछ अन्तरके प्राप्त हो गये ॥४२॥तब निकुंभने श्रीकृष्णके गदाका प्रहार किया जिसमें आठ घंटे लगे

ऐरावतगतः शक्रः सर्वैर्देवगणैः सह ॥ ददर्श तन्महायुद्धं घोरं देवासुरं तदा ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा देवान्हृषीकेशश्चित्रैर्युद्धैररिंदमः ॥ इयेष दानवं हन्तुं देवानां हितकाम्यया ॥३९॥ स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशवः ॥ कौमोदकीं महाबाहुर्लालयन्युद्धकोविदः ॥४०॥ तथैवासुरमुख्योऽपि गदां तां बहुकण्टकाम् ॥ शिक्षया भ्रामयानोऽथ मण्डलानि चचार ह ॥ ४१ ॥ वृषभाविव गर्जन्तौ बृंहताविव कुञ्जरौ ॥ इषितान्तरमासाद्य क्रुद्धौ शालावृकाविव ॥ ४२ ॥ आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्वजम् ॥ स्पष्टाष्टघण्टया वीर नादं मुक्त्वातिदारुणम् ॥ ४३ ॥ तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम् ॥ निकुम्भमूर्द्धनि तदा पातयामास भारत ॥४४॥ अवष्टभ्य मुहूर्त तु हरिः कौमोदकीं गदाम् ॥ तस्थौ जगद्गुरुर्धीमान्मुमोह पतितः क्षितौ ॥ ४५ ॥ हाहाभूतं जगत्सर्वं तत्कालमभवत्तदा ॥ यथागते वासुदेवे नरदेव महात्मनि ॥४६॥ आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ॥ सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ॥ ४७ ॥

हुए थे उसने बडा दारुण शब्द किया ॥ ४३ ॥ उसी समय श्रीकृष्णनेभी महागदा घुमाकर निकुंभक शिरपर मारी ॥ ४४ ॥ कौमोदकी गदाको प्रहार कर हरि एक मुहूर्ततक स्थित हुए और उसके प्रहारसे जगद्गुरु मोहित हो पृथ्वीमें गिरे ॥ ४५ ॥ उस समय सब जगत्में हाहाकार मच गया जब नरदेव महात्माकी यह दशा हुई ॥ ४६ ॥ आकाशगंगाके शीतल सुगन्धिभरे अमृतमय जलसे श्रीकृष्णका शरीर सींचा गया ॥ ४७॥

यह वार्ता श्रीकृष्णने जानकरही की थी अन्यथा उन महात्माको मोहित कौन कर सकता है ॥४८॥ फिर कृष्णचन्द्रने सावधान हो चक्र उठाकर कहा कि सावधान हो॥४९॥तब महामायावी निकुंभ वहांसे उठा और उस शरीरको छोड दिया श्रीकृष्णने यह बात न जानी ॥५०॥ मरता है या यह मर गया और वीरव्रतवाले प्रभुने इसी कारणसे उसकी रक्षा की॥५१॥उसी समय प्रद्युम्न और अर्जुनको चेतना प्राप्त हुई वे निकुंभके वधमें निश्चित हो उनके निकट स्थित हुए॥५२॥तब प्रद्युम्नभी उस मायावीको जानकर श्रीकृष्णसे कहने लगे; हे तात ! यहां निकुंभ नहीं है वह दुर्मति

नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रि सुरोत्तमः ॥ को हि शक्तो महात्मानं युद्धे मोहयितुं हरिम् ॥४८॥ कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत ॥ प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ॥ ४९ ॥ निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात दुरासदः ॥ शरीरं तत्परित्यज्य न तु तं वेत्ति केशवः ॥५०॥ मुमूर्षति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दनः॥ ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रतं विभो॥५१॥ अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ ॥ स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ ॥५२॥ प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदितः कृष्णमब्रवीत् ॥ निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः ॥५३॥ प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कलेवरम् ॥ प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः ॥ ५४ ॥ तदायुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप ॥ ददृशुस्ते ततो वीराः क्षितौ दिवि च सर्वतः ॥५५ ॥ सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिंदम ॥ रौक्मिणेयं तथा वीरं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५६ ॥ पाण्डवस्य धनुः केचित्केचिदस्य महाशरान् ॥ अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुराः ॥५७॥ एवं ग्रहाय तं वीरमगमस्ते विहायसि ॥ पार्थानामपि कोटचस्तु गृहीतानां तदाभवन् ॥ ५८ ॥

कहां गया ॥ ५३ ॥ प्रद्युम्नके ऐसा कहतेही उसका शरीर नष्ट हो गया तब अर्जुनके सहित भगवान् हँस पडे ॥५४ ॥ हे राजन् ! तब आकाश और पृथ्वीमें दश सहस्र निकुंभ दृष्टिगोचर होने लगे ॥५५॥ सहस्रों कृष्ण अर्जुन और प्रद्युम्न दिखाई दिये यह एक अद्भुत वार्तासी हुई ॥५६॥ किसीने अर्जुनका धनुष किसीने बाण किसीने चरण ग्रहण किये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार उस वीरको लेकर वे आकाशमें चले गये, और फिर अनन्त

अर्जुनोंने पार्थको ग्रहण किया ॥५८॥ जिनका अन्त श्रीकृष्ण और कार्ष्णि प्रद्युम्नने नहीं जाना और यह बाणोंसे पार्थको छोड निकुंभोंको मारने लगे ॥५९॥ हे राजन् ! दो टुकडे जहां एकके किये कि वह दो शरीर हो जाते थे तब भगवान् कृष्णने दिव्यज्ञानसे देखा ॥६०॥ तब मधुसूद- नने तत्त्वसे निकुंभको जाना कि यह सब मायाका रचनेवाला और अर्जुनका हरनेवाला है ॥ ६१ ॥ तब श्रीकृष्ण अविनाशी सब जगत्के उत्पन्न पालन करनेवालेने सम्पूर्ण प्राणियोंके देखते २ चक्रसे उसका शिर काट डाला ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! शिरके छिन्न होनेपर वह अर्जुनको छोडकर

नान्तं ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ ॥ विच्छिद्य तौ शरैर्वीरौ निकुम्भं पार्थवर्जितौ ॥५९॥ एकैकस्तु द्विधा च्छिन्नो द्वेधा भवति भारत॥ दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान् ॥ ६० ॥ निकुम्भं तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदनः ॥ स्रष्टारं सर्वमायानां हर्तारं फाल्गुनस्य च ॥ ६१ ॥ स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्त्तासुरसूदनः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां भूतभव्यभवो हरिः ॥ ६२ ॥ स मुक्त्वा फाल्गुनं राजञ्छिन्ने शिरसि भारत ॥ पपातासुरमुख्योऽथ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ६३ ॥ अथाकाशगतं पार्थं पतमानं विहायसः ॥ कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्वियति मानद ॥ ६४॥ निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम् ॥ जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः ॥६५॥ समियाय दशार्होऽथ द्वारकां मुदितो विभुः ॥ नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः ॥ ६६ ॥ नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत् ॥ भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं श्रूयतां भैमनन्दन ॥ ६७॥ क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽनया ॥ स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव ॥ ६८ ॥

छिन्नमूल वृक्षके समान पृथ्वीमें गिरा ॥ ६३ ॥ तब आकाशसे अर्जुनको गिरता देख कृष्णके वचनसे प्रद्युम्नने आकाशमेंही ग्रहण किया ॥६४॥ पृथ्वीमें निकुंभके गिरनेपर अर्जुनको सावधान कर अर्जुन प्रद्युम्नसहित श्रीकृष्ण द्वारकाको गये ॥ ६५ ॥ वह श्रीकृष्ण प्रसन्न हो द्वारकामें प्राप्त हो महात्मा नारदजीको प्रणाम करते हुए ॥ ६६ ॥ महातेजस्वी नारदने भानुयादवसे कहा; हे भैमनंदन भानु ! आप क्रोध न कीजिये हमारे वचनको सुनिये ॥६७॥ रेवती उद्यानमें क्रीडा करती हुई इसने दुर्वासा ऋषिको कुपित किया था उस मुनिने क्रोधसे तुम्हारी दुहिताको शाप दिया॥६८॥

यह कन्या दुर्ल्ललित होनेसे शत्रुके हाथमें प्राप्त होगी, तब मुनिके साथ मैंने प्रसन्नताके निमित्त प्रार्थना की ॥ ६९ ॥ हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! बालक व्रतसे युक्त अपराधरहित इस कन्याको आपने क्यों शाप दिया, आप इसपर अनुग्रह कीजिये मुनियोंसहित आपसे हम याचना करते हैं ॥ ७० ॥ हे भमनंदन ! जब हमने ऐसा कहा तब दुर्वासा एक मुहूर्तमें कृपायुक्त हो नीचेको मुख किये बोले ॥ ७१ ॥ जो मैंने कहा है वह अन्यथा नहीं होगा शत्रुके हाथमें यह अवश्य जायगी इसमें संदेह नहीं ॥ ७२ ॥ किन्तु धर्मसे अदूषित हो अपने स्वामीको

अतिदुर्ल्ललितैः कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति ॥ सुतार्थे ते मया सार्द्धं मुनिभिः स प्रसादितः ॥६९॥ बाला व्रतवती कन्यामनागस-मिमां मुने ॥ शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतां वर॥ अनुग्रहं विधत्स्वात्र वयं विज्ञापयामहे ॥७०॥ अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन ॥ उवाचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयान्वितः ॥ ७१ ॥ यदवोचमहं वाक्यं तत्तथा न तदन्यथा ॥ रिपुहस्तमवश्यं हि गमिष्यति न संशयः ॥७२॥ अदूषितानुधर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति ॥ बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति ॥७३॥ सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुनः पुनः ॥ न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धारयिष्यति ॥ ७४ ॥ एवं भानुमतीं वीर सहदेवाय दीयताम् ॥ श्रद्दधानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डवः ॥ ७५ ॥ ततो भानुमतीं भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै ॥ सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन् ॥ ७६ ॥ आनीतः सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना ॥ विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यः स पुरीं गतः ॥ ७७ ॥

प्राप्त होगी बहुपुत्रवाली धनसे युक्त और सौभाग्यवती होगी ॥ ७३ ॥ सदा इसके शरीरमें सुगंधि रहेगी और पुत्र उत्पन्न करनेपर फिर कुमारी हो जायगी और इस सूक्ष्मांगीको कभी घोर शोक न होगा ॥ ७४ ॥ हे वीर ! इस कारण अब तुम इस भानुमतीको सहदेवके निमित्त दे दो वह पाण्डव श्रद्धायुक्त और धर्मशील है ॥ ७५ ॥ तब भानुने भानुमतीको माद्री पुत्रके निमित्त प्रदान किया और उस धर्मात्माने नारदके वचन माने ॥ ७६ ॥ दूत द्वारा श्रीकृष्णने सहदेवको बुलाया और विवाह कर भार्या सहित अपनी पुरीको गया ॥ ७७ ॥

जो कोई इस कृष्णकी जयको पढते या सुनते हैं वह श्रद्धावाले मनुष्य सब काममें विजय पाते हैं॥७८॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णु-पर्वणि भाषायां भानुमतीहरणेनिकुंभवधो नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥जन्मेजय बोले; भानुमतीका हरण और केशवका जय ॥ १ ॥ और महाते जस्वी यादवोंकी जलमें क्रीडा हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ मुनिराज ! यह मैंने सब कुछ श्रवण किया॥२॥निकुंभके वधकीर्तनमें आपने वज्रनाभका वध कीर्तन किया है. हे मुने ! आपके प्रसादसे मेरे सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! वज्रनाभका वध साम्ब और कामकी जय मैं

इमं कृष्णस्य विजयं यः पठच्छृणुयादथ ॥ विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्दधानो लभेन्नरः ॥ ७८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे निकुम्भवधो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥ जनमेजय उवाच ॥ भानुमत्यापहरणं विजयं केशवस्य च॥१॥ क्रीडां च सागरे दिव्यां वृष्णीनामतितेजसाम्॥ अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतां वर ॥२॥ वज्रनाभवधंह्युक्तं निकुम्भवध-कीर्तने ॥ तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद्भवतो मुने ॥३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप ॥ विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥४॥ मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः ॥ वज्रनाभ इति ख्यातौ निश्चितः समितिंजयः ॥५॥ तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मलोकपितामहः ॥ वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥६॥ अवध्यत्वं स देवेभ्यो वव्रे दान-वसत्तमः ॥ पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥७ ॥ स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत ॥ अचिन्तितेन कामानामुपप-त्तिनराधिप ॥८॥ शाखानगरमुख्यानां संवाहानां शतानि च ॥ नगस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥ ९ ॥

तुम्हारे प्रति कहता हूं॥४॥हे राजन् ! इस महाअसुरने मेरुपर्वतके शिखरपर बडा तप किया, यह वज्रनाभनामसे विख्यात था॥५॥इसके ऊपर महातेजस्वी ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और तपसे प्रसन्न हो वर देने लगे ॥६॥ तब दानवश्रेष्ठने देवताओंसे अवध्यत्व मांगा और वज्रपुरनामक सम्पूर्ण रत्नमय नगर मांगा ॥७॥ कि जिसमें विना इच्छा स्वच्छन्द वायुकाभी गमन न हो सके और विनाही विचारे सब कामकी उत्पत्ति हो जाय॥८॥मुख्यनगरके

चारों ओर छोटे नगर और उद्यान हो जांय;हे जन्मेजय ! इस प्रकार वर मांगा ॥९॥ हे राजन् ! उसके वरदानसे यह सब कुछ हो गया इस प्रकार महाअसुर वज्रनाभ उस पुरमें निवास करने लगा ॥ १० ॥ औरभी करोड़ों दैत्य वर पाये हुए उसकी सेवा करने लगे, वे सब सामग्रीसहित वहां रहने लगे ॥११॥ हे राजन् ! मुख्य शाखानगर और दूसरे स्थानोंमें वे राक्षस प्रसन्न हो रहने लगे ॥ १२ ॥ दुष्टात्मा वज्रनाभभी वरदानसे दर्पित हो इस प्रकार पुरमें स्थित हो जगत्के नाश करनेको उद्यत हुआ ॥ १३ ॥ हे राजन् ! देवलोकमें जाकर इन्द्रसे कहा; हे इन्द्र ! मैं त्रिलोकीके राज्य करनेकी इच्छा करता हूं ॥१४॥ यदि तुमको यह बात स्वीकार न हो तो हे राजन् ! हे इन्द्र ! मुझसे युद्ध करो यह सम्पूर्ण जगत् कश्यपके पुत्र

तथा तदभवत्तस्य वरदानेन भारत ॥ उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥ १० ॥ कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते ॥ ऊषुर्वज्रपुरे राजन् संवाहेषु तथैव च ॥११॥ शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप ॥ हृष्टपुष्टमुदिता नृपदेवस्य शत्रवः ॥१२॥ वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः ॥ पुरेऽस्यचात्मनश्चैव जगद्बाधितुमुद्यतः ॥१३॥ महेन्द्रमब्रवीद्गत्वा देवलोकं विशाम्पते॥ अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन ॥१४॥ अथवा मे प्रयच्छस्व युद्धं देवगणेश्वर ॥ सामान्यं हि जगत्कृत्स्नं काश्यपानां महात्मनाम् ॥१५॥ स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः ॥ वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुवंशज ॥ १६ ॥ सत्रेषु दीक्षितः सौम्याः कश्यपो नः पिता मुनिः ॥ तस्मिन्वृत्ते यथा न्याय्यं तथा स हि करिष्यति ॥१७॥ ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत् ॥ यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः ॥१८ तंत्रे वृत्ते करिष्यामि यथान्यायं भविष्यति ॥ त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वस गच्छ समाश्रितः ॥ १९ ॥ एवमुक्तो वज्रनाभः स्वमेव नगरं गतः ॥ महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम् ॥ २० ॥

देवदैत्योंका बराबर है ॥ १५ ॥ तब महेश्वर बृहस्पतिके साथ सम्मति करके असुरश्रेष्ठ वज्रनाभसे कहने लगे ॥१६॥ हे सौम्य ! हमारे पिता मुनि कश्यप यज्ञमें दीक्षित हैं उनमें यथान्याय वर्तोंगे तो वह वैसाही करेंगे ॥१७॥ तब वह दानव अपने पिता कश्यपसे जाकर कहने लगे जो देवराजने कहा था उसपर कश्यपजी कहने लगे ॥ १८ ॥ यज्ञ हो चुकनेपर जो उचित होगा सो मैं करूंगा इतने तुम जाकर वज्रपुरमें निवास करो ॥ १९ ॥ यह सुन वज्रनाभ अपने नगरमें गया और महेन्द्रभी द्वारकापुरीको गये ॥ २० ॥

वह देव अन्तर्हित होकर वासुदेवसे वज्रनाभका वृत्तान्त सुनाने लगे श्रीकृष्णने उनसे कहा ॥ २१ ॥ कि शौरिका महायज्ञ अश्वमेध होगा मैं उसमें इस वज्रनाभको अवश्य नष्ट कर दूंगा ॥ २२ ॥ वहां हम प्रवेशका उपाय चिन्तन करेंगे अनिच्छासे तो वहां वायुकाभी प्रवेश नहीं हो सकता ॥२३॥ इस प्रकार देवराज श्रीकृष्णसे सत्कारको प्राप्त होकर गये. हे राजन् ! जब वासुदेवका यज्ञ प्रवृत्त हुआ ॥ २४ ॥ उस यज्ञके वर्तमान होनेमें उसके प्रवेशके निमित्त वे दोनों देवताओंमें श्रेष्ठ महावीर इन्द्र और कृष्ण विचार करने लगे ॥२५॥ उस यज्ञके वर्तमान होनेसे भद्रनाम नटने

गत्वा चान्तर्हिते देवो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दनः ॥ २१ ॥ शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतुः ॥ तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव ॥ २२ ॥ तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयावः सतां गते ॥ नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥ २३ ॥ ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः ॥ वाजिमेधे च संप्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥२४॥ तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ ॥ चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ ॥ २५ ॥ तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा ॥ महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥ २६ ॥ तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत् ॥ स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवेश्वरोपमः ॥ २७ ॥ देवेन्द्रकृष्णछन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः ॥ प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् ॥ २८ ॥ नट उवाच ॥ भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः ॥ सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम् ॥ २९ ॥ प्रसिद्धाकाशगमनः शकुवंश्च विशेषतः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जङ्गमाः ॥ ३० ॥

महर्षियोंको संतुष्ट किया ॥ २६ ॥ मुनिश्रेष्ठोंने उसको वरदानके निमित्त कहा तब उस नटने वर मांगा कि देवेश्वरके समान ॥ २७ ॥ देवेन्द्र और कृष्णकी स्वच्छन्दतासे सरस्वती द्वारा प्रेरित होकर उन अश्वमेधमें आये हुए मुनियोंको प्रणाम कर ॥ २८ ॥ नट बोला; हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका भोज्य हूं और इस सात द्वीप पृथ्वीमें स्वच्छन्दतासे विचरण करूं ॥२९॥ विशेष कर प्रसिद्ध आकाशमें गमन कर सकूं,स्थावर जंगम सब

प्राणियोंसे मैं अवध्य हूं ॥ ३० ॥ म जिस२वेषसे प्रवेश करूं उसी उसी वेषमें होकर मैं तत्काल प्रवेश कर सकूं ॥ ३१ ॥ मैं वैसाही रूप कर सकूं और जरारोगसे वर्जित हूं मुनि तथा दूसरे प्राणी मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥३२॥हे राजन् ! यह सुनकर ब्राह्मणोंने कहा ऐसाही होगा तुम देवताओंके समान पृथ्वीमें विचरण करोगे ॥३३॥ दानवेन्द्रोंके पुर उत्तर कुरु भद्राश्व केतुमाल कालाभ्र द्वीप ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण पर्वोंमें यदुओंसे मंडित द्वारकापुरीमें फिरोगे मैं लोकवीर वरदान पाये हुए वह नट आया करता था ॥३५॥ तब देवलोकके रहनेवाले धृतराष्ट्र हंसोंसे सान्त्वना करके इन्द्रने कहा

यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं खलु ॥ मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा ॥ ३१ ॥ स तूर्यस्तादृशःस्यां वै जरारोगविवार्जितः ॥ तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥३२॥ एवमंस्त्विति संप्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः ॥ सप्तद्वीपां वसुमती पर्यटत्यमरोपमः ॥ ३३ ॥ पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूंस्तथा ॥ भद्राश्वान्केतुमालांश्च कालाभ्रद्वीपमेव च ॥ ३४ ॥ पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुमण्डिताम् ॥ आयाति वरदत्तः स लोकवीरो महानटः ॥३५॥ ततो हंसान् धार्तराष्ट्रान् देवलोकनिवासिनः ॥ उवाच भगवान् शक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः ॥ ३६ ॥ भवन्तो भ्रातरोऽस्माकं काश्यपादेव पक्षिणः ॥ विमानवाहा देवानां सुकृतीनां तथैव च ॥ ३७ ॥ देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रुवधान्वितम् ॥ तत्कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो वः कथंचन ॥ ३८ ॥ न कुर्वतां देवताज्ञामुग्रो दण्डःपतेदपि॥सर्वत्रप्रतिषिद्धं वो गमनं हंससत्तमाः ॥३९॥ गत्वाऽप्रवेश्यमन्येषां वज्रनाभपुरोत्तमम् ॥ इतोऽन्तःपुरवापीषु चरध्वमुचितं हि वः॥४०॥तस्यास्ति कन्यारत्नं हि त्रैलोक्यातिशयं शुभम्॥नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती ॥४१॥

॥३६॥ तुम कश्यपसे उत्पन्न हुए देवपक्षी होनेसे हमारे भ्राता हो देवता और पुण्यात्माओंके विमान लेकर चलते हो ॥ ३७ ॥ शत्रुओंका मारना देवताओंका कर्तव्य कार्य है वही करना चाहिये, इसमें किसी प्रकारका भय करना उचित नहीं॥३८॥देवताओंकी आज्ञा उल्लंघन करनेसे उग्र दंड पतित होता है.हे हंसो ! तुम्हारा गमन कहीं रुका नहीं है ॥ ३९ ॥ दूसरोंके प्रवेशके अयोग्य तुम वज्रनाभके पुरमें जाओ और उसके अन्तःपुरकी वावडीमें विचरण करो ॥ ४० ॥ उसके यहां त्रिलोकीमें श्रेष्ठ कन्यारत्न है उसका प्रभावती नाम है वह चन्द्रमाके प्रभाके समान है ॥४१॥

उसे माताने वरदानसे प्राप्त किया है कि हैमवती उसकी माताने देवीसे उसे पाया है॥४२॥बन्धुओंने उस कन्याको स्वयंवरके निमित्त स्थापित किया है. हे हंसो! वह अपने समान पतिको वरण करेगी ॥ ४३ ॥ सो उससे जाकर प्रद्युम्नके गुण वर्णन करो जिससे प्रभावतीका मन उनमें स्थित हो जाय उनका कुल रूप शील वय कथन करो ॥ ४४ ॥ जब वह वज्रनाभकी सुता उनमें प्रीति करने लगे तब उसके समीपसे संदेशा तुमको लाना चाहिये ॥४५॥ प्रद्युम्नके पास संदशा ले जाओ उनका उसपर ले जाओ यह काम तुमको बुद्धिपूर्वक करना चाहिये ॥ ४६ ॥ नेत्र और मुखका

वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना ॥ हैमवत्या महादेव्याः सकाशादिति नः श्रुतम् ॥४२॥ स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभिः स्थापिता सती ॥ आत्मेच्छया पतिं हंसा वरयिष्यति शोभना ॥४३॥ तद्भवद्भिर्गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ सद्भूताःकुल-रूपस्य शीलस्य वयसस्तथा ॥ ४४ ॥ यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती ॥ तस्याः सकाशात्संदेशो नयितव्यः समाधिना ॥४५॥ प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च ॥ स्वबुद्ध्या प्राप्तकालं च संविधेयं हितं मम ॥ ४६ ॥ नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥४७॥ तथा तथा गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम् ॥४८॥ वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा ॥ द्वारवत्यां च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयसः ॥ ४९ ॥ तावद्यत्नश्च कर्तव्यः प्रद्युम्नो यावदात्मवित् ॥ पर्यावर्तेद्वरारोहां वज्रनाभसुतां विभुः ॥५०॥ अवध्यास्ते तु देवानां ब्रह्मणो वरदर्पिताः ॥ देवपुत्रैर्हि हन्तव्याः प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥ ५१ ॥ नटो दत्तवरस्तस्य वेषमास्थाय यादवाः ॥ प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशनाः ॥ ५२ ॥

प्रसाद सर्वदा करना चाहिये ॥ ४७ ॥ और प्रद्युम्नके वह वह गुण उससे सुना देना कि जिससे प्रद्युम्नमें उसका मन लग जाय ॥ ४८ ॥ और इसका वृत्तान्त प्रतिदिन मुझको देते रहो कि द्वारकापुरीमें हमारे छोटे भ्राता कृष्ण क्या करते हैं ॥ ४९ ॥ वही यत्न करो जिससे प्रद्युम्नका मन सर्वथा प्रभावतीमें लग जाय ॥ ५० ॥ वे ब्रह्माके वरसे दर्पित असुर देवताओंसे अवध्य हैं. हां, प्रद्युम्न आदि देवपुत्रही युद्धमें उनको मार सकते हैं ॥५१॥ और वर पाया हुआ वह नष्ट है उसका वेष धारण कर यादव उसके नाश करनेको पुरीमें जांयगे ॥ ५२ ॥

यह और इसके उपयोगी और भी सब वार्ता करो हमारे प्रियकी इच्छासे समयके अनुसार कार्य करो ॥ ५३ ॥ हे हंसो ! देवता वहां किसी प्रकार नहीं जा सक्के क्योंकि उसने वर मांगा है इससे वहां प्रवेश दुर्लभ है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां एकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥ वैशंपायन बोले; वे हंस इन्द्रके वचन सुन वज्रपुरमें गये. हे राजन् ! उनका गमन वहां पूर्वके उचितही था ॥१॥ वे वीर पक्षी वहां मनोहर वाटिकाओं बावडियोंमें प्राप्त हुए जो कमलदलरूप सुवर्णकान्तिसे युक्त थीं ॥२॥ वे संस्कृत बोलनेवाले मधुर शब्द करते थे वे प्रथम

एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि॥प्राप्तकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया॥५३॥प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हंसाः कथंचन॥ वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रवेशः खलु सर्वथा ॥५४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ते वासववचः श्रुत्वा हंसा वज्रपुरं ययुः ॥ पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप ॥१॥ तेदीर्घिकासुरम्यासु निपेतुर्वीरपक्षिणः ॥ पद्मोत्पलैरावृत सु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः ॥ २ ॥ ते वै नदन्तो मधुरं संस्कृतापूर्वभाषिणः ॥ पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मय जनयन्ति हि ॥ ३ ॥ अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप ॥ इष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टिपनिवासिनः ॥ ४ ॥ आलपन्तः सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर ॥ स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः ॥५॥ त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिणः ॥ यदैवेहोत्सवोऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते ॥६॥ आगन्तव्यं जालपादाः स्वमिदं भवतां गृहम् ॥ विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टपनिवासिभिः ॥ ७ ॥ ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत ॥ तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ॥ ८ ॥

आनेके कारण लोगोंको विस्मय उत्पन्न करते थे॥३॥हे राजन् ! वे अन्तःपुरकी भोगने योग्य बावडियोंमें विचरने लगे वे त्रिविष्टपके निवासी इन्द्रको प्रिय थे ॥४॥ हे राजन् ! वे धार्तराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न हुए मधुर शब्द करने लगे तब वह दैत्यपति उन हंसोंसे कहने लगा ॥५॥ तुम सुन्दर बोलनेवाले सदा स्वर्गमें रहते हो जो हमारा उत्सव तुमको स्वीकार हो तो ॥६॥ हे हंसो ! यहां नित्य आया करो यह तुम्हाराही घर है स्वर्गनिवासियोंको यहां आनकी मनाई नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब वज्रनाभने उन पक्षियोंसे ऐसा कहा तब बहुत अच्छा ऐसा कह वे दानवेन्द्रके मंदिरमें

प्रविष्ट हुए ॥८॥ और देवकार्यकी इच्छासे परिचय करने लगे और मनुष्योंकी बोलीसे अनेक कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ जो कि सर्व कल्याणके पात्र दानवोंके सम्बंधकी थीं वे कथा सुनकर स्त्रियें विशेषकर प्रसन्न हुईं ॥१०॥ तब विचरते हुए हंसोंने उस सुमुखी सुहासिनी वज्रनाभकी कन्या प्रभावतीको देखा ॥११॥ हंसोंने उस चारुहासिनीसे परिचय किया तब राजसुताने एक शुचिमुखी हंसीको अपनी सखी बनाया ॥१२॥ वह एक समय वज्रनाभकी सखीसे मनोहर वचन कहकर इस प्रकार पूछने लगी जो कि सैंकडों आख्यानकी जाननेवाली थी॥१३॥हे प्रभावति ! मैं तुझको त्रिलो-

चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया ॥ मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः ॥ ९ ॥ वंशबद्धाः काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम् ॥ स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यः सङ्गताः कथाः ॥ १० ॥ विचरन्तस्ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम् ॥ प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा ॥११॥ हंसाः परिचितां चक्रुस्तां ततश्चारुहासिनीम् ॥ सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा ॥१२॥ सा तां कदाचित्पप्रच्छ वज्रनाभसुतां सखीम् ॥ विश्रम्भितां पृथक्सूक्तैराख्यानकशतैर्वराम् ॥१३॥ त्रैलोक्यसुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति ॥ रूपशीलगुणैर्देवि किंचित्त्वां वक्तुमुत्सहे ॥ १४ ॥ व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि ॥ यदतीतं पुनर्नेति गतः स्रोत इवाम्भसः ॥ १५ ॥ कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते॥ स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१६॥ स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वाङ्गशोभने ॥ न च कांश्चिद्वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥१७॥ व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ॥ रूपशौर्यगुणैर्युक्तान्सदृशांस्त्वं कुलस्य हि १८ ॥

कसुंदरी जानती हूं हे देवि ! तुम्हारा रूप गुण शील देखकर मैं तुझसे कुछ कहनकी इच्छा करती हूं ॥ १४ ॥ हे भीरु मनोहर हँसनेवाली ! तुम्हारा यौवन जाता है और यह नदियोंके स्रोतके समान गया हुआ फिर नहीं आता है ॥ १५ ॥ हे देवि ! कामके उपभोगके समान कोई दूसरी रति नहीं है. हे कल्याणी ! स्त्रियोंको जगत्में यही सुख है यह मैं सत्य कहती हूं ॥ १६ ॥ हे सर्वांगशोभने ! पिताने तुझे स्वयंवरके निमित्त रक्खा है. तुम देवता असुरोंके कुलमें उत्पन्न हुए किसीको न वरोगी ॥ १७ ॥ हे शुभे ! वे तो तुझसे तिरस्कारको प्राप्त हो लज्जित होते हैं. रूप शूरता और तेरे गुणोंके

सदृश ॥१८॥ आये हुएकी हे देवि ! तुम इच्छा नहीं करोगी और रुक्मिणीका पुत्र प्रद्युम्न भला किस कारण यहां आवेगा ॥ १९ ॥ क्योंकि उसके रूपके समान त्रिलोकीमें और कुलमें गुणमें शूरतामें कोईभी नहीं है ॥२०॥ हे सुश्रोणि! देवताओंमें देवता दानवोंमें दानव और मनुष्योंमें मनुष्य कोई ऐसा नहीं वह महाबली है ॥ २१ ॥ हे देवि ! जिसको देखकर पीनजंघावाली बडे ऊधोंवाली धेनु दुग्धको टपकाती है ॥ २२ ॥ उसके मुखकी शोभाको पूर्ण चन्द्र और नेत्रकी शोभाको कमलभी नहीं प्राप्त हो सकता है, उसकी गतिसे मृगेन्द्रकी उपमा नहीं दे सकते हैं

आगतान्नेच्छसे देवि सदृशान्कुलरूपयोः ॥ इहैष्यति किमर्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥१९॥ त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ॥ गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यस्ति वा शुभे ॥२०॥ देवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः ॥ मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः ॥२१॥ यं सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि ॥ आपीनानीव धेनूनां स्रोतांसि सरितामिव ॥२२॥ न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः ॥ उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम् ॥२३॥ जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे ॥ कृत्वानङ्गं वरे साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२४॥ हृतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हितः ॥ मायाश्च सर्वाः संप्राप्ता नच शीलं विनाशितम् ॥२५॥ यान्यान्गुणान्पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि ॥ एष्टव्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥२६॥ रुच्या वह्निप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः ॥ तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः ॥ प्रभावती शुचिमुखीं त्विति होवाच भामिनी ॥२७॥ प्रभावत्युवाच ॥ विष्णुर्मानुषलोकस्थः श्रुतः सुबहुशो मया ॥ पितुः कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः ॥२८॥

॥ २३ ॥ हे शुभे ! समर्थ विष्णुने मानो जगत्की लावण्यताका सार लेकर कामदेवकोही सांग करके मानो पुत्र बनाया है ॥ २४ ॥ जिसको बाल्यअवस्थामेंही शम्बर हरण कर ले गया, वहां इसने संपूर्ण माया प्राप्त कीं, और अपना शील नष्ट नहीं किया ॥ २५ ॥ हे पृथुश्रोणि ! जिन जिन गुणोंको तुम मनमें कल्पना करोगी, वे सब त्रिलोकीके विख्यात गुण प्रद्युम्नमें पाओगी ॥ २६ ॥ रुचिमें अग्नि क्षमामें पृथ्वी तेजमें सूर्य गंभीरतामें ह्रदके समान है, यह सुन पवित्रमुखी प्रभावतीने यह वचन कहे ॥ २७ ॥ प्रभावती बोली; विष्णु इस समय

मनुष्यलोकमें आये हैं,यह मैंने बहुतवार श्रवण किया है,यह बात नारद और पिताके कथनमें सुनी थी ॥२८॥ हे पापरहित ! वह दैत्योंके शत्रु हैं इस कारण उनका कुल हमको सदा वर्जनीय है. हे मानिनि ! उसने दैत्योंके कुलका नाश कर दिया है ॥२९॥ प्रदीप्तचक्र और गदा तथा शार्ङ्ग धनुषसे दग्ध किया है, जो असुर शाखानगर देशोंमें निवास करते हैं ॥ ३० ॥ उनको दानवेन्द्रने संदेशेको कहा है; हे शुचिस्मिते ! यह संपूर्ण स्त्रियोंका मनोरथ है ॥३१॥ कि हमको पति पिताके कुलसे श्रेष्ठ मिले जो किसी उपायसे उसका यहां आगमन हो ॥३२॥ तो मेरे ऊपर महा-

शत्रुः किल स दैत्यानां वर्जनीयः सदानघे॥कुलानि किल दैत्यानां तेन दग्धानि मानिनि॥२९॥प्रदीप्तेन रथाङ्गेण शार्ङ्गेण गदया तथा ॥ शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल येऽसुराः ॥ ३० ॥ इत्येते दानवेन्द्रेण संदिश्यन्ते हि तं प्रति ॥ मनोरथो हि सर्वासां शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ भवेद्धि मे पतिकुलं श्रेष्ठं पितृकुलादिति ॥ यदि नामाभ्युपायः स्यात्तस्येहागमनं प्रति ॥ ३२ ॥ महाननुग्रहो मे स्यात्कुलं स्यात्पावितं च मे ॥ समर्थनं मे पृष्टा त्वं प्रयच्छ शुचिलापिनि ॥ ३३ ॥ प्रद्युम्नः स्याद्यथा भर्त्ता स मे वृष्णिकुलोद्भवः अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरिः ॥ ३४ ॥ असुराणां स्त्रियो वृद्धाः कथयन्त्यो मया श्रुताः ॥ प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्ता दपि मे श्रुतम् ॥ ३५ ॥ यथा च तेन निहतो बलवान्कालशम्बरः ॥ हृदि मे वर्तते नित्यं प्रद्युम्नः खलु सत्तमे ॥ ३६ ॥ हेतुः स नास्ति स्यात्तेन यथामम समागमः ॥ दासी तवाहं सख्याहं दूत्ये त्वां च विसर्जये ॥ ३७ ॥ पण्डितासि वदोपायं मम तस्य च सङ्गमे ॥ ततास्तां सन्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

अनुग्रह हो और मेरा कुल पवित्र हो. हे सुन्दर बोलनेवाली ! मैंने तुझे समर्थको पूछा था ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए मेरे भर्ता प्रद्युम्न हो सो करो वह हरि दैत्योंको अत्यन्त उद्वेजन करनेहारे हैं॥३४॥ असुरोंकी वृद्धस्त्रियोंको कहते हुए मैंने सुना है प्रद्युम्नका जन्म पहलेभी मैंने सुना है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार काल शम्बर उनको ले गया था तबसे वह प्रद्युम्न मेरे हृदयमें वर्तमान रहता है ॥ ३६ ॥ ऐसा हेतु मैं नहीं देखती हूं कि उसके साथ मेरा समागम हो.हे हंसी ! तेरी दासी हूं तुझको मैं दूतीपनमें विसर्जन करती हूं ॥ ३७ ॥ तू पंडिता है उससे मिलनेका उपाय

कर, तब उसकी सान्त्वना करती हुई हसी बोली ॥ ३८ ॥ शुचिमुखी बोली; हे चारुहासिनि ! मैं वहां दूती होकर जाऊंगी हे शुचिस्मिते ! इस तुम्हारी उदार भक्तिको मैं कहूंगी ॥ ३९ ॥ मैं वही करूंगी जिससे वह तुम्हारे समीप आवे हे कामिनी ! कामसे तू सकामा हो जायगी ॥ ४० ॥ हे पवित्रलोचने ! तू हमारे वचनको नित्य स्मरण कर और हे बडे नेत्रोंवाली ! कथामें कुशल अपने पितासेभी कहना ॥ ४१ ॥ हे देवि! तुम अवश्य उसको प्राप्त होगी ऐसा कहकर जो उसने कहा था सो किया और बोली ॥ ४२ ॥ दान वेन्द्रने हंसीसे अन्तःपुरमें पूछा कि तुमने

शुचिमुख्युवाच ॥ तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि ॥ इमां भक्तिं तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥ तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ॥ साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥ ४० ॥ इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथाः शुचिलोचने ॥ कथाकुशलतां पित्रे कथयस्वायतेक्षणे ॥ ४१ ॥ ममत्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक् प्रपत्स्यसे ॥ इत्युक्त्वा सा तथा चक्रे यत्तत्सा तामथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥ दानवेन्द्रश्च तां हंसी पप्रच्छान्तःपुरे तदा ॥ प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव ॥ ४३ ॥ तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथां योग्यतया वरे ॥ किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि ॥ ४४ ॥ अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्यायोग्यमनिन्दिते ॥ सोवाच वज्रनाभं तु हंसी वरनरोत्तम ॥ ४५ ॥ श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्रं महाद्युतिम् ॥ दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम ॥ आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरुपार्श्वे मनस्विनी ॥ ४६ ॥ सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता ॥ कथंचिद्वरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्या शुभा सखी ॥ ४७ ॥

कथाकुशल प्रभावतीसे भी वार्ता की है ॥ ४३ ॥ हे शुचिमुखी ! जो कुछ उसने कहा है सो कह तैंने यदि कहीं आश्चर्य देखा हो तो कहो. हे उत्तम पंखवाली ! तैंने जगत्में क्या आश्चर्य देखा है ॥ ४४ ॥ हे पापरहिते ! जो दूसरोंने न देखा हो वह योग्य अयोग्य कहो यह वचन सुन हंसी बोली; हे नरोत्तम ! ॥ ४५ ॥ सुनो. इस प्रकार दानवेन्द्रको अभिमंत्रण कर बोली; हे दानव ! मैंने शांडिली नामको आश्चर्य कर्म करते मेरुके समीप देखा है ॥ ४६ ॥ सुमना कौशल्या सब प्राणियोंके हित करनेमें तत्पर देखी है वह शांडिल्या शैलपुत्राकी सुन्दर सखी ॥ ४७ ॥

और वर पाये हुए एक नट देखाहै कामरूपी भोज्य नित्य त्रिलोकीका संमत है ॥ ४८ ॥ कुरु उत्तरकुरु कालाम्रद्वीप भद्राश्व केतुमाल तथा और दूसरे द्वीप॥४९॥देवता गन्धर्वोंके गाने योग्य अनेक प्रकारके नृत्य वह जानता है और अपने नृत्यसे देवतोंके नृत्यको विस्मरण करता है॥५०॥वज्रनाभ बोले; हे हंसी ! मैंने महात्मा सिद्ध चारणोंके मुखसे उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त नहीं सुना है॥५१॥हे पक्षिनंदिनी ! मुझे इसके सुननेमें बडा कुतूहल है उस वर पाये हुए नटमें तुझे सब विदित होगा॥५२॥हंसी बोली; हे दैत्यराज ! वह नट सात द्वीपमें विचरण करता है वह गुणवान् मनुष्यको सुनकर सर्वथा

नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः ॥ कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यसमंतः ॥४८॥ कुरूनयत्युत्तरान्वीर कालाम्रद्वीपमेव च ॥ भद्राश्वान्केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ ॥४९॥ देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च ॥ स वेत्ति देवान्नृत्येन विस्मापयपि सर्वथा ॥५०॥ वज्रनाभ उवाच ॥ श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम् ॥ चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम् ॥५१॥ कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि ॥ नटे दत्तवरे तस्मिन्संस्तवस्तु न विद्यते ॥५२॥ हंस्युवाच ॥ सप्तद्वीपान्विचरति नटः स दितिजोत्तम॥ गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा ॥५३॥ तव चेच्छृणुयाद्वीर सद्भूतं गुणविस्तरम् ॥ नट तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर ॥५४॥ वज्रनाभ उवाच ॥ उपायः सृजतां हंसि येनेह स नटः शुभे ॥ आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पक्षिनन्दिनि ॥५५॥ ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिताः ॥ देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत् ॥ ५६ ॥ अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि ॥ प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥ ५७ ॥

वहां जाकर अपना गुण प्रकाश करता है॥५३॥हे वीर ! यदि वह तुम्हारे गुणको श्रवण करेगा तो वह अवश्य तुम्हारे पुरमें आवेगा॥५४॥वज्रनाभ बोले; हे हंसि ! वह उपाय करो जिससे वह नट हमारे देशमें आवे॥५५॥तब वे हंस वज्रनाभने इस कार्यके निमित्त भेजे उन्होंने देवेन्द्र और कृष्णसे सब कार्यका कथन किया ॥५६॥ तब श्रीकृष्णने प्रद्युम्नको इस कार्यमें नियुक्त किया जिससे प्रभावतीका संसर्ग और वज्रनाभका वध हो ॥ ५७ ॥

दैवीमायाको प्राप्त हो और नटरूपसे यादवोंको श्रीकृष्णने वहां भेजा ॥५८॥ साम्बको विदूषक और प्रद्युम्नको नायक गदको पारिपार्श्व तथा औरभी दूसरे वीरोंको ॥ ५९ ॥ वारमुखियोंको शीघ्र अपने समान नटी करके नृत्य गीतादिके योग्य कार्य करके भद्र और भद्रकी उस प्रकार सहायता करके॥६०॥उन महारथियोंने प्रद्युम्नका विमान बनाकर देवताओंके कार्यके निमित्त गमन किया॥६१॥वे पुरुष एक एकके समान रूपवाले स्वरूपसे वे राजा सब स्त्रियोंके समान रूपवाले थे ॥६२॥ वे वज्रनगरके शाखानगरोंमें जो दानवोंसे भरे सुपुर कहाते थे तहाँ गये॥६३॥इति श्रीमहाभारते

देवीं मायां समाश्रित्य संविधाय हरिर्नटम् ॥ नटवेषेण भैमानां प्रेषयामास भारत ॥ ५८ ॥ प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम् ॥ पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान्भैमांस्तथैव च ॥ ५९ ॥ वारमुख्या नटीः कृत्वा तत्तूर्यसदृशास्तदा ॥ तथैव भद्रं भद्रस्य सहायांश्च तथाविधान् ॥ ६० ॥ प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः ॥ जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानाममितौजसाम् ॥ ६१ ॥ एकैकस्य समा रूपे पुरुषाः पुरुषस्य ते ॥ स्त्रीणां च सदृशाः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपाः ॥ ६२ ॥ ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम् ॥ जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ॥ ६३ ॥ इति श्री महाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभप्रद्युम्नोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स्वपुरवासीनामसुराणां नराधिप ॥ ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ॥१॥ आतिथ्यं क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम् ॥ वासांसि स विचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् ॥२॥ भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः ॥ पूर्वश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ॥ ३ ॥

खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां वज्रनाभप्रद्युम्नोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥वैशंपायन बोले; तब वज्रनाभने अपने नगरवासियोंको आज्ञा दी कि इनके रहनेको सुंदर घर दो ॥१॥ बहुतसे रत्नोंकी भेट देकर इनका अतिथिसत्कार करो नानाप्रकारके वस्त्र मनुष्योंके सुखनिमित्त दो ॥ २ ॥ उन्होंने स्वामीकी आज्ञा मानकर यह सब कुछ किया और जिसका पहले नाम सुनते थे वही नट आया है इससे उनको बडा कौतू-

हल हुआ ॥३॥ दैत्योंने परमप्रसन्न हो नटोंको सत्कार दिया और भेंटमें अनेक प्रकारके रत्न दिये गये॥४॥तब उस वर पाये हुए नटने नृत्य किया जिसने अपने कर्तव्यसे सुपुरके पुरवासियोंको प्रसन्न किया॥५॥ महाकाव्य रामायणके उद्देशसे उन्होंने नाटक किया अमेयात्मा विष्णुका जन्म और राक्षसेन्द्र रावणका वध वर्णन किया॥६॥जिस प्रकार लोमपाद दशरथ ऋषि शृंग महामुनि और शान्ता कन्याको लाये और वेश्या जैसे ऋषिको लाई थी ॥७॥ राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न ऋष्यशृंग और शान्ता इनका रूप नटोंने किया ॥ ८ ॥ वे वृद्ध मानो इसी समय जन्म ले आये हैं यह देखकर

नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा ॥ पर्यायार्थं ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ॥ ४ ॥ ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा ॥ स्वपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ॥५॥ रामायणं महाकाव्यमुद्देश्यं नाटकीकृतम् ॥ जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥६॥ लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम् ॥ शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ ॥७॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत ॥ ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथा रूपैर्नटैः कृताः ॥ ८ ॥ तत्कालजीविनो वृद्धा दानव विस्मयं गताः ॥ आचक्षुश्च तेषां वै रूपतुल्यत्वमच्युतम् ॥९॥ संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम् ॥ दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः ॥१०॥ ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुराः परया मुदा ॥ उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनः पुनः॥११॥ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च ॥ हारान्मनोहरांश्चैव हेमवैडूर्यभूषितान् ॥१२॥ पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्ते तुष्टुवुर्नटाः ॥ आसुरांश्च मुनींश्चैव गात्रैरभिजनैरपि॥१३॥ प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः ॥ नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमनं तदा ॥ १४ ॥

दानव परम विस्मयको प्राप्त हुए और उन्होंने कहा; हे राजन् ! उनका रूप अच्युतके समान है ॥९॥ उनके संस्कार वेषधारण अभिनय और प्रस्ताव धारणाको देखकर सम्पूर्ण दानव महाविस्मयको प्राप्त हुए॥१०॥वे असुर परम प्रसन्नताको प्राप्त हो शब्दकरने लगे नाट्यशालासे वारंवार उठकर॥११॥ वस्त्र कंगन और गलोंके भूषण देने लगे मनोहर सुवर्ण वैडूर्य मणिसे जडे हुए हार ॥ १२ ॥ और धनोंके पृथक् २ देनेपर वे नट बहुत प्रसन्न हुए असुर मुनि तथा दूसरे गोत्र अभिजनों द्वारा॥१३॥ उन शाखानगरवासियोंने वज्रनाभके निकट संदेशे भेजे कि राजा इस दिव्यरूप नटका आकर अवलोकन

करें ॥ १४ ॥ तब यह वार्ता सुनकर नटको राजाने बुलानेके निमित्त दूतको भेजा कि बुलाकर लाओ ॥ १५ ॥ दानवेंद्रके वचन सुन शाखानगरके रहनेवालोंने नटवेषधारी यादवोंको वज्रपुरमें पहुँचाया ॥१६॥ विश्वकर्माके अच्छे बनाये हुए घरमें उनको स्थान दिया और एक एक वस्तुकी आवश्यकतामें सौ सौ दीं ॥१७॥ तब वज्रनाभ महा असुरने महाकालका उत्सव किया और सेनास्थान बडा मनोहर बनाया॥ १८ ॥ तब उनको देखकर विश्रामस्थान बनानेकी इच्छा की और वज्रनाभ महाअसुरने अनेक प्रकारके रत्न देकर ॥ १९ ॥ उनको बैठा हुआ देख वह आत्मवान् अपने

पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास भारत ॥ आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः ॥ १५ ॥ दानवेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः ॥ नीता वज्रपुरं रम्यं नटवेषेण यादवाः ॥ १६ ॥ आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा ॥ एष्टव्यं यच्च तत्सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम् ॥ १७ ॥ अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः ॥ कारयामास रम्यं च चमूवाटं प्रहृष्टवान् ॥१८॥ ततस्तान्परिविश्रान्तान्प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत् ॥ दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः ॥१९॥ उपविष्टश्च तान्द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान् ॥ छन्ने चान्तःपुरं स्थाप्य चक्षुर्दृश्ये नराधिपः ॥ २० ॥ भैमा हि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा ॥ कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः ॥२१॥ ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम् ॥ तन्त्रीस्वरगणैर्विद्वान्ततोद्यानन्ववादयन् ॥ २२ ॥ ततस्तु देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम् ॥ भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम् ॥२३॥ आगान्धारग्रामरागं गङ्गावतरणं तथा ॥ विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वरसम्पदा ॥ २४ ॥ लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम् ॥ असुरास्तोषयामास उत्थायोत्थाय भारत ॥२५॥

जातिजनोंके साथ बैठे और चक्षुमात्र प्रवेशवाले अर्थात् अन्तःपुरवाली स्त्रियें झरोखोंसे देख सके वहां स्थित हुआ ॥ २० ॥ उस नाट्यशालामें नटवेष धारण किये यादव अपने कार्यके निमित्त वे महापराक्रमी गये ॥२१॥ तब कासीके बाजे बांसुरी मुरज तंत्रीसुरसे वे विद्वान् उन बाजोंको बजाने लगे॥२२॥तब देवताओंका छालिक्य नाम गीत जो कानोंको अमृतके समान था उसको भैमोंकी स्त्रियें प्रसन्नतापूर्वक गान करने लगीं॥२३॥ गांधारसे लेकर ग्रामराग गंगावतरण विद्ध और मूर्च्छित राग वे रमणीय स्वरसे गाने लगीं ॥२४॥उस गंगावतरण रागको लय ताल और स्वरके सहित

सुनकर असुर संतुष्ट हुए. हे राजन्! वे उठ उठकर ॥२५॥ प्रसन्नता प्रगट करने लगे नांदिनामक बाजेको प्रद्युम्न गद और वीर्यवान् साम्ब अपने कार्यके निमित्त नटताको प्राप्त हुए बजाने लगे ॥२६॥ नांदीके अन्तमें गंगावतरणके सुन्दर श्लोक विनययुक्त प्रद्युम्नने बहुत श्रेष्ठ उच्चारण किये॥२७॥ रंभा और कुबेरसम्बन्धी नाटक करना प्रारंभ किया जो कि शूरने रावणका रूप और मनोवतीने रंभाका रूप धारण किया॥२८॥नलकूबरका वेष प्रद्युम्नने और विदूषकका वेष साम्बने धारण किया ॥ २९ ॥ जैसे नलकूबरने दुरात्मा रावणको शाप दिया और रंभाको समझाया ॥ ३० ॥ इस

नान्दिं च वादयामास प्रद्युम्नो गद एव च ॥ साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थं नटतां गतः ॥ २६ ॥ नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं गङ्गावतरणाश्रितम् ॥ रौक्मिणेयस्तदोवाच सम्यक् स्वविनयान्वितम् ॥ २७ ॥ रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः ॥ शूरो रावणरूपेण रम्भावेषं मनोवती ॥ २८ ॥ नलकूबरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य विदूषकः ॥ कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः ॥ २९ ॥ शापश्च दत्तः क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः ॥ नलकूबरेण च यथा रम्भा चाप्यथ सान्त्विता ॥ ३० ॥ एतत्प्रकरणं वीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः ॥ नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥३१॥ पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च ॥ तुष्टुवुर्दानवा वीरा भैमानामतितेजसाम् ॥ ३२ ॥ ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च ॥ हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान् ॥३३॥ विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः ॥ गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान् ॥ ३४ ॥ चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च ॥ गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत ॥ ३५ ॥

प्रकरणको लेकर वीर यदुनन्दनने नृत्य किया सर्वज्ञ महात्मा नारदमुनिकी कीर्ति॥३१॥जो कि उन्होंने रावणके शापकी प्रसन्नता सुनकर नृत्य किया था कही, तब वे वीर दानव उनको संतुष्ट करने लगे ॥ ३२ ॥ वे मुख्य वस्त्र और रत्न उनको देने लगे वैडूर्य मणिसे युक्त हार देने लगे ॥३३॥ अनेक प्रकारके विचित्र विमान और आकाशगामी रथ आकाशमें जानेवाले दिव्य नागोंके कुलमें उत्पन्न हुए हाथी ॥३४॥अनेक प्रकारके चन्दन और दूसरी रसकी वस्तु गुरु अगुरु मुख्य और गंधकी श्रेष्ठ वस्तु ॥३५॥

विचार करतेही मनचिन्तित वस्तुकी देनेवाली उदार चिन्तामणि और अनेक प्रकारकी दर्शनीय वस्तु दानव देने लगे ॥३६॥ हे राजन् ! उन्होंने राजा मुख्य दानव और उनकी स्त्रियोंको धन रत्नोंसे विहीन कर दिया ॥ ३७ ॥ तब हंसी प्रभावतीकी सखी प्रभावतीसे कहने लगी. हे अनिन्दिते ! मैं यादवोंसे रक्षित द्वारकापुरीमें गई थी ॥ ३८ ॥ हे चारुलोचने ! मैंने एकान्तमें प्रद्युम्नको देखा और तुम्हारी भक्तिभी मैंने कही ॥ ३९ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर समय किया है प्रदोषके समय तुम्हारे साथ समागम होगा ॥ ४० ॥ हे रुचिरश्रोणि ! सो आज यह तुम्हारा

चिन्तामणीनुदारांश्च चिन्तिते सर्वकामदान् ॥ प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा ॥ ३६ ॥ धनरत्नैर्विरहिताः कृताःपुरुषसत्तम ॥ स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर ॥ ३७ ॥ ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम् ॥ गतास्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते ॥३८॥ प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने ॥ भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥३९॥ तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने ॥ अथ प्रदोषसमये त्वया सह समागमे ॥ ४० ॥ तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः ॥ न ह्यात्मवति भाषन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः ॥ ४१ ॥ ततः प्रभावती हृष्टा हंसीं तामिदमब्रवीत् ॥ उषितासि मया वासे स्वप्तुमर्हसि सुंदरि॥४२॥ त्वयाहं सहिता वासे द्रष्टुमिच्छामि केशविम् ॥ निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे॥४३॥ हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम् ॥ आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा॥४४॥विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती ॥ संविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम्॥४५॥तस्मिन्कृते संविधाने काममानयितुं ययौ॥प्रभावतीमनुज्ञाप्य हंसी वायुसमा गतौ॥४६॥

प्रियसमागम हुआ यादवकुलोत्पन्न कभी मिथ्या भाषण नहीं करते हैं ॥४१॥ तब प्रसन्न हो प्रभावतीने हंसीसे कहा मेरे साथ एकान्त स्थानमें रहनेको योग्य हो ॥ ४२ ॥ तेरे साथ एकान्तस्थानमें मैं प्रद्युम्नके देखनेकी इच्छा करती हूं. हे विहंगमे ! मैं तेरे साथ रहकर निश्चिन्त हो जाऊंगी ॥ ४३ ॥ हंसीने उसका वचन सुनकर कहा ऐसेही होगा तब प्रभावतीके साथ वह हंसी महलके ऊपर चढी ॥४४॥ प्रभावती उस विश्वकर्माके बनाये हुए महल पर चढकर प्रद्युम्नके आनेका सामान करने लगी ॥४५॥ उसके कार्य करनेपर वह कामके लेनेके निमित्त गई प्रभावतीकी आज्ञा ले वह वायुके समान

वेगगामिनी ॥४६॥ नटवेषधारी कामके पास जाय हँसकर कहने लगी आज आप रात्रिमें मिलिये ॥४७॥ कामने इस बातको स्वीकार किया तब वह पक्षिणी यह वचन सुन निवृत्त हुई फिर आकर हंसीने प्रभावतीसे कहा;हे दीर्घलोचने ! सावधान हो तुम्हारा भर्ता आवेगा ॥४८॥ ले जाते हुए प्रद्युम्नने किसी मालाको देखा कि भौरोंसे आवृत और सुगंधसे युक्त है ॥४९॥ यह उस मालामें भौंरे होकर बैठ गये वह माला प्रभावतीके निमित्त ले जाई जाती थी ॥ ५० ॥ भौरोंसे युक्त वह माला स्त्रियोंने प्रवेशित कराई स्त्रीजन प्रभावतीके निकट ले गई ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! वह प्रभावतीके

नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता ॥ अद्य भूतः स भगवन्समयो वर्तते निशि ॥४७॥ तथेति प्राह तां कामः सा निवृत्ताथ पक्षिणी ॥ अभ्यागता च सा हंसी प्रभावतिमथाब्रवीत् ॥ अभ्येति रौक्मिणेयोऽसावाश्वसायतलोचने ॥४८॥ प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददृशे माल्यमात्मवान् ॥ भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः ॥ ४९ ॥ निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा ॥ प्रभावत्या नीयमाने विदितार्थः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ प्रवेषितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम् ॥ उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद्भ्रमरावृतम् ॥ ५१ ॥ अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप ॥ भ्रमरास्ते ययुः सौम्य सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते ॥ ५२ ॥ स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः ॥ कर्णोत्पले प्रभावत्या निलिल्ये शनकैरिव ॥५३॥ ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां वरा ॥ उद्यंतं पूर्णचन्द्रं सा समीक्ष्यातिमनोहरम्॥५४॥सखि दह्यन्ति मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति ॥ औत्सुक्यं हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौषधः ॥ ५५ ॥ दधाद्द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः ॥ नवोदितः शीतरश्मिः सख्यं हरति च प्रियः ॥ ५६ ॥

बहुत निकटमें रक्खी गई.हे सौम्य ! संध्याकालके उपस्थित होनेपर वे भौंरे चले गये ॥ ५२ ॥ वह यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर उनकी सहायतासे हीन हो सहजमें प्रभावतीके कर्णोतपलमें लीन हो गया ॥ ५३ ॥ तब बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ प्रभावतीने हंसीसे पूर्ण और मनोहर चन्द्रमाको उदय होते हुए देखकर कहा ॥ ५४ ॥ हे सखि ! मेरे अंग दग्ध होते हैं मुख सूखता है हृदयमें उत्कंठा अधिक है इस व्याधिकी औषधी क्या है ॥ ५५ ॥ यह पूर्णमासीका चन्द्रमा दूनी उत्कण्ठा करता है यह नया उदित हुआ शीतकिरणोंवाला प्रियभी अप्रिय होता है ॥५६॥ मैंने वह कभी नहीं देखा केवल

श्रवणमात्रसेही कांक्षाकी थी. अहो ! स्त्रीस्वभावसे मेरे अंगोंको अधिक धूपित करता है ॥ ५७ ॥ मैं बुद्धिसे कल्पना करती हूं यदि मेरा प्रिय नहीं आवेगा तौ मैं कुमुद्वतीके मार्गको प्राप्त हूंगी. हां, मैं कामाग्निसे दग्ध होती हूं ॥ ५८ ॥ यह चन्द्रमाकी किरणें स्वभावसे शीतल औरजगत्के सुख देनेवाली होकर भी मेरे शरीरको दग्ध करती हैं॥ ५९ ॥ अनेक प्रकारकी पुष्पसुगंधि ले चलनेवाला प्रकृतिसे ही शीतल पवन मेरे इस शरीरको दावाग्निकी समान जलाता है ॥६०॥ अपना संकल्प कार्य स्थिर नहीं होता है संकल्पसे धर्षित हुआ निर्वीर्य मन स्थिर नहीं रहता है ॥ ६१ ॥

न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण कांक्षितः ॥ अहो धूमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक् खलु ॥५७॥ कल्पयामि यथाबुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः ॥ कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना ॥ मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी ॥५८॥ शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्लादनाः सुखाः ॥ दहन्ति मम गात्राणि किंनु चन्द्रगभस्तयः ॥ ५९ ॥ प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानपुष्परजोवहः ॥ दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम् ॥ ६० ॥ ततः संकल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः ॥ नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम् ॥ ६१ ॥ विमनस्कास्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान्हृदि ॥ बंभ्रमाति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु ॥ कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह ॥ १ ॥ दैत्येन्द्रतनयां प्राप्तमवगच्छस्व मामिह ॥ षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥ २ ॥

मुझे वैमनस्य है और मेरा हृदय कंपित होता है मेरी दृष्टि घूमती है. हां, क्या मैं क्षयको प्राप्त हूंगी ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ वैशंपायन बोले; कार्ष्णि (प्रद्युम्न) ने प्रसन्नमन होकर हंसीसे यह वचन कहे सर्वथा यह बाला मैंने आवृत कर ली है ॥ १ ॥ दैत्येन्द्रकी कन्याके पास जाके कहा कि वह यहां आ गया है और भौरोंके साथ भौर बनकर मैं उसमें लीन हूंगा ॥ २ ॥

मैं प्रभावतीका यथेष्ट करूंगा यथेष्ट मुझमें वर्तो ऐसा कहकर उसने अपना स्वरूप दिखलाया ॥ ३ ॥ उस महत्माकी प्रभासे सब उसका महल प्रदीप्त हो गया और उससे चन्द्रमाकी कान्ति मलीन हो गई ॥ ४ ॥ उसे देखकर प्रभावतीका कामसागर बढने लगा जैसे चन्द्रमाके उदय होनेमें सागर बढता है ॥ ५ ॥ वह लज्जासे किंचित् अधोमुखी होकर नीचे तिरछा देखती हुई वह प्रभावती कमललोचनी निश्चल स्थित हो गई ॥६॥ कानके नीचेके प्रदेशमें सुन्दरभूषणसे भूषित वरारोहाको छूकर बोले; उससे उनका शरीर रोमांचित होगया ॥ ७ ॥ हे पूर्णचन्द्रके समान कान्तिवाली ! क्या तुम्हारे

विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्तताम् ॥ इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः ॥ ३ ॥ तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया द्योतितं तस्य धीमतः ॥ अभिभूता प्रभा चैव राजंश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥ ४ ॥ प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे कामसागरः ॥ चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्यां सरितां पतिः ॥५॥ सलज्जाधोमुखी किञ्चित्किञ्चित्तिर्यगवेक्षिणी ॥ प्रभावती तदा तस्थौ निश्चलं कमलेक्षणा ॥६॥ करेणाधः प्रदेशे तां चारुभूषणभूषिताम् ॥ स्पृष्ट्वोवाच वरारोहां रोमाञ्चिततनुस्ततः॥७॥ मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् ॥ अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किञ्चित्प्रभाषसे ॥८॥ प्रभोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने ॥ साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासः साध्वनु गृह्यताम् ॥९॥ न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ॥ याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे ॥१०॥ गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम ॥ देशकालानुरूपेण रूपेणाप्रतिमा सती ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थं जातवेदसम् ॥ जुहाव समये वीरः पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हुए जो तुम नीचेको मुख किये कुछभी नहीं बोलती हो ॥ ८ ॥ हे वरानने! मुखकी प्रभाका उपमर्द मत करो व्याकुलता छोड-कर मुझे अपनी सेवामें ग्रहण करो ॥ ९ ॥ हे भीरु ! भयका कोई कारण नहीं देखता हूं उससे व्याकुलता छोडो मैं अञ्जलि बांधकर कहता हूं समय पर प्राप्त हुआ मुझे जानो ॥ १० ॥ गन्धर्वविवाह कर मुझपै अनुग्रह करो. हे सति ! जो इस देशकालके समान है । ।११ ॥ तब यादवनंदनने मणिमें

स्थित अग्निको स्पर्श कर पुष्पोंद्वारा मंत्र पढ़ हवन करने लगा॥१२॥तब उस सुन्दर आभरणोंसे भूषितका हाथ ग्रहण किया और उस मणिमें स्थित अग्निकी प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ तब तेजस्वी अग्नि प्रद्युम्नको मानकर प्रज्वलित हुए यह भगवान् अग्नि जगत्के शुभाशुभके साक्षी हैं ॥ १४ ॥ वीर यदुनंदन ब्राह्मणोंकी दक्षिणाका उद्देश्य कर द्वारमें स्थित हंसीसे बोले कि रक्षा करनेके निमित्त तुम यहां स्थित रहो ॥१५॥ जब वह प्रणाम कर बाहर गई तब प्रद्युम्न उस सुन्दरनेत्रवालीका दक्षिण हाथ धारण कर शयनस्थानमें ले गये ॥ १६ ॥ अपनी जंघापर उसे बैठाय वारंवार समझाय अपने

जग्राहाथ करं तस्या वराभरणभूषितम् ॥ चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम् ॥१३॥ प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् ॥ भगवान् जगतःसाक्षी शुभस्याथाशुभस्य च ॥ १४ ॥ उद्दिश्य दक्षिणां वीरो विप्राणां यदुनन्दनः ॥ उवाच हंसीं द्वारस्थां तिष्ठावां रक्ष पक्षिणि ॥ १५ ॥ तस्यां प्रणम्य यातायां कामस्तां चारुलोचनाम् ॥ ग्रहाय दक्षिणे हस्ते निनाय शयनोत्तमम् ॥१६॥ ऊरावेवोपवेश्यैनां सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ॥ चुचुम्ब शनकैर्गण्डं वासयन्मुखमारुतैः ॥ १७ ॥ ततोऽस्याश्च पपौ वक्रपद्मं मधुकरो यथा ॥ आलिलिङ्गे च सुश्रोणीं क्रमेण रतिकोविदः ॥१८॥ अरामयद्रहस्यैनां न चोद्वेजितवांस्तदा ॥ अपकृष्टं च रत्यर्थं रतिकार्यविशारदः ॥ उवाच स तया सार्द्धं रमन्कृष्णसुतः प्रभुः ॥ १९ ॥ अरुणोदयकाले च ययौ यत्र नटालयम् ॥ अकामया प्रभावत्या कथञ्चित्स विसर्जितः ॥ २० ॥ तामेव मनसा कान्तां कान्तरूपां समुद्वहन् ॥ त ऊषुर्नटवेषेण कार्यार्थं भैमवंशजाः ॥ २१ ॥

मुखकी सुगंधिसे इसे सुगंधित करते हुए सहज २ में उसके कपोलोंको चुम्बन करने लगे ॥ १७ ॥ फिर जैसे भौरा कमलरस पान करता है इस प्रकार इसके मुखको पान करने लगे और उन रतिपण्डितने क्रमसे इनको आलिंगन किया॥१८॥ और एकान्तमें इसे रमण कराने लगे उद्वेजित न हुए फिर रतिकार्यमें चतुर इसको रतिके निमित्त खैंचकर उसके साथ प्रद्युम्न रमण करने लगे ॥ १९ ॥ फिर अरुणोदयके समय नटशालाके स्थानमें गये प्रभावतीने बडी कठिनतासे उस समय उनको विदा दी थी ॥२०॥ उस मनोहर कान्ताको मनसे स्मरण करते हुए यादव अपने कार्यके निमित्त

नटरूपसे स्थित हुए ॥२१॥ वे इन्द्र और श्रीकृष्णके वाक्यकी प्रतीक्षा करते हुए वज्रनाभके जयसे त्रिलोकविजयका उद्योग करने लगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! गुप्तरूपसे रक्षा करते हुए कश्यपऋषिके यज्ञ समाप्त होनेकी वाट देखने लगे ॥२३॥ क्योंकि उस समय सम्पूर्ण देवता और असुरोंका विरोध नहीं वह धर्मचारियोंके त्रिलोकविजयमें यत्न करते थे ॥२४॥ इस प्रकार समयकी प्रतीक्षा करते हुए वह सम्पूर्ण प्राणियोंको मनोहर समय आकर प्राप्तहुआ ॥ २५ ॥ इधर वे हंस भी कुमारोंका वृत्तान्त प्रतिदिन श्रीकृष्ण और अर्जुनको पहुंचाते थे ॥२६॥ प्रद्युम्नजी अपने अनुरूप प्रभावतीसे

प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्रकेशवयोस्तदा ॥ उद्योगं वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजयं प्रति ॥२२॥ प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुह्यसंरक्षणे रताः॥ कश्यपस्य मुनेः सत्रं यावत्तावन्नराधिप ॥२३॥ देवासुराणां सर्वेषामविरोधो महात्मनाम्॥ त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्म चारिणाम् ॥२४॥ एवं कालं प्रतीक्षाणां वसतां तत्र धीमताम् ॥ संप्राप्तः प्रावृषो रम्यः सर्वभूतमनोहरः ॥२५॥ अहर्निशं च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवाः ॥ शक्रकेशवयोर्हंसाः कुमाराणां महात्मनाम् ॥२६॥ रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया ॥ रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥२७॥ तैर्हि वज्रपुरं हंसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया ॥ व्याप्तं नृप नटांस्तांस्तु न विदुः कालमोहिताः॥२८॥ दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये ॥ तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हंससङ्घाभिरक्षितः ॥२९॥ माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये ॥ देहार्द्धेन तु कौरव्य सिषेवेऽसौ प्रभावतीम् ॥३०॥ सन्नतिं विनयं शीलं लीलां दाक्ष्यमथार्जवम् ॥ स्पृहन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्तां च महात्मनाम् ॥३१॥ रूपं विलासं गन्धं च मंजुभाषामथार्यताम् ॥ तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रियः ॥ ३२ ॥

रमण करते थे रातरातमें वे महातेजस्वी हंसोंसे रक्षित होकर जाते थे ॥२७॥ इन्द्रकी आज्ञासे वसते हुए उन हंसोंने नटोंको इस प्रकार प्राप्त किया परन्तु उन कालसे मोहित हुओंने न जाना ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कभी प्रभावतीके स्थानमें दिनमेंभी प्रद्युम्न हंसोंसे रक्षित हो रहने लगे ॥ २९ ॥ और नटोंके स्थानमें मायाकी बनी प्रतिच्छाया दीखती थी. हे कौरव्य ! आधी देहसे तो यह प्रभावतीसे रमण करते थे ॥ ३० ॥ सन्नति विनय शील लीला चतुरता सीधापन आदि उनकी देखकर असुर नटोंकी बडी सराहना करते थे ॥ ३१ ॥ रूप विलास गंध मंजुभाषण सीधापन श्रेष्ठता उन

यादवोंकी स्त्रियोंको देखकर दैत्यस्त्री सराहना करती थीं ॥ ३२ ॥ वज्रनाभका सुनाभ नाम भ्राता था उसके रूप गुणसे युक्त दो कन्या थीं ॥ ३३ ॥ एक चन्द्रवती दूसरी गुणवती वे नित्य प्रभावतीके स्थानमें जाती थीं ॥ ३४ ॥ उन्होंने प्रभावतीको रतिके चिन्होंसे युक्त देखा तब वह आश्चर्यमें हो उससे पूछने लगीं ॥ ३५ ॥ वह बोली मुझे एक विद्या आती है जो मनमें इच्छित किये पतिको रतिके निमित्त लाती और सौभाग्य देती है ॥ ३६ ॥ देवता दानवोंको भी शीघ्र वशमें कर लेती है सो मैं देवपुत्र बुद्धिमान् अपने पतिसे रमण करती हूं ॥ ३७ ॥ देखो मेरे प्रभावसे मेरा प्रिय पति प्रद्युम्न

वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुतः ॥ दुहितृद्वयं च नृपतेस्तस्य रूपगुणान्वितम् ॥ ३३ । एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा ॥ प्रभावत्यालयं ते तु व्रजतः खलु नित्यदा ॥ ३४ ॥ ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्तां प्रभावतीम् ॥ परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगता सतीम् ॥ ३५ ॥ सोवाच मम विद्यास्ति याधीता कांक्षितं पतिम् ॥ रत्यर्थमानयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति ॥ ३६ ॥ देवं वा दानवं वापि विवशं सद्य एव हि ॥ साहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥ ३७ ॥ दृश्यतां मत्प्रभावेण प्रद्युम्नः सुप्रियो मम ॥ ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपयौवनसम्पदम् ॥ ३८ ॥ पुनरेवाब्रवीत्ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी ॥ प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वचः ॥ ३९ ॥ देवा धर्मरता नित्यं दंभशीला महासुराः ॥ देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुराः ॥ ॥ ४० ॥ देवाः सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुराः धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्र यत्र जयो ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ देवपुत्रौ वरयतां पतिविद्यां ददाम्यहम् ॥ उचितौ मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथः ॥ ४२ ॥

हुआ है.वह उसके रूपयौवनकी संपदा देख महाविस्मित हुई ॥ ३८ ॥ फिर वो सौभागिनी सुनेत्रवाली सुहासिनी वरारोहा समय अनुसार उन दोनोंसे कहने लगी ॥ ३९ ॥ देवता नित्य धर्ममें रत हैं असुर पाखण्डी हैं देवता तप करते और असुर सुखमें आसक्त हैं ॥ ४० ॥ देवता नित्य सत्यमें रत हैंऔर असुर सदा असत्य बोलते हैं जहां धर्म तप सत्य है वहीं जय होती है ॥ ४१ ॥ तुमभी देवपुत्रोंको वरण करो मैं पतिविद्या देती हूं मेरे प्रभा-

वसे तुम शीघ्र उचित पतिको प्राप्त होगी॥४२॥यह सुन वोह दोनों भगिनी उस सुन्दर नेत्रवालीसे बोलीं बहुत अच्छा तबउसने प्रद्युम्नसे इस कार्यके निमित्त पूछा ॥ ४३ ॥ उन्होंने अपने पितृव्य साम्ब और गदका वर्णन किया वह बडे रूपवान् सुशील और रणकर्ममें चतुर हैं ॥ ४४ ॥ प्रभावती बोली; मुझे दुर्वासाने पहले प्रसन्न होकर विद्या दी थी कि तुझे सदा कन्यापन और सौभाग्य रहेगा ॥४५॥ देव दानव यक्षोंमें जिसका ध्यान करेगी वही तेरा पति होगा तब मैंने इस वीरकी अभिलाषा की ॥४६॥ इसे तुम ग्रहण करो तुम्हारा प्रिय संगम हो तब भगिनीके मुखसे प्रसन्न हो उन्होंने

तां तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यो चारुलोचनाम् ॥ परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत्पतिमानिनी ॥४३॥ स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथा ब्रवीत्तदा ॥ रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि॥४४॥ प्रभावत्युवाच ॥ परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा॥परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्यात्वमेव च ॥४५॥ देवदानवयक्षाणां यं ध्यास्यसि स ते पतिः ॥ भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकांक्षितः॥४६॥ गृह्णीतं तदिमां विद्यां सद्यो वां प्रियसङ्गमः ॥ ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्यां भगिनीमुखात् ॥४७॥ दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे ॥ तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥४८॥ प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप ॥ गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिबलार्दनौ ॥४९॥ पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ ॥ चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च केशविः ॥५०॥ रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः ॥ मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावतीपाणिग्रहणे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

वह विद्या ग्रहण की ॥ ४७ ॥ उन्होंने विद्याको अभ्यास कर गद और साम्बका ध्यान किया वे दोनों यादव प्रद्युम्नके संग प्रविष्ट हुए ॥४८॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नने मायासे उन दोनों वीरोंकोभी छिपा दिया वेभी शत्रुनाशक गंधर्वविवाहसे ॥४९॥ मंत्रपूर्वक उसका हाथ ग्रहण करते हुए चन्द्रवतीका साम्बने और गुणवतीका गदने हाथ ग्रहण किया॥५०॥वे यदुपुंगव वीर उन श्रेष्ठ कन्याओंके साथ रमण करने लगे और इन्द्र श्रीकृष्णकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावतीपाणिग्रहणे चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

वैशम्पायन बोले; तब पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाले प्रद्युम्नने भादोंके महीनेमें आकाशमें मेघोंके समूह देखकर सुनेत्री प्रभावतीसे कहा ॥ १ ॥ हे सुन्दर शरीरवाली ! तुम्हारा मुखचन्द्र और आकाशचारी चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होता तुम्हारा मुखकमल केशपाशसे ढका है, और आकाशचारी चन्द्रमा मेघोंसे ढका है ॥ २ ॥ हे सुभ्रू ! आकाशमें मेघोंमें बिजली दीखती है और तुम्हारे सुवर्णकेसे शरीरमें भूषण दमकते हैं आकाशसे मेघ शब्दपूर्वक धारा त्यागन करते हैं तुम प्रस्वेदसे स्वभावतः जलरूप हो ॥ ३ ॥ आकाशमें बकपांति तुम्हारे

वैशम्पायन उवाच॥नभो नभस्येथ निरीक्ष्य मासि कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम्॥प्रभावतीं चारुविशालनेत्रामुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवक्त्रः ॥१॥ तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो न दृश्यते सुन्दरि चारुबिम्बः ॥ त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु ॥२॥ संदृश्यते सुभ्रु तडिद्घनस्था त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव ॥ मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्तस्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि ॥ ३ ॥ घनप्रदेशेषु बलाकपंक्त्यस्त्वद्दन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति ॥ निमग्नपद्मानि सरित्सु सुभ्रु न भान्ति तोयानि रयाकुलानि ॥४॥ अमी घना वायुवशोपयाता बलाकमालामलचारुदन्ताः॥ अन्योन्यमभ्याहनितुं प्रवृत्ता वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः॥५॥धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य कृतं तवापाङ्गमिवाननस्थम् ॥ विभूषयन्तं गगनं घनाश्च प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥६॥ घनान्नदन्तः प्रतिनर्दमानान्निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन्प्रहृष्टान् ॥ समाहृतानुद्धतपिच्छभारान्प्रियाभिरामानुपनृत्यमानान् ॥ ७ ॥

दन्तपंक्तिकी समान दीखती है; हे सुभ्रू! नदियोंमें कमल जलके वेगसे निमग्न हो गये वेगसे व्याकुल हो जल शोभित नहीं होते हैं ॥ ४ ॥ यह घन वायुके वशीभूत होकर चलायमान होते हैं. बकपंक्ति चलती है तुम्हारे दांतभी चलायमान हैं, और वनोंमें शुक्लदन्तवाले हाथी एक दूसरेको मारनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ५ ॥ हे वरगात्री ! तीन वर्णके धनुष आकाशमें देखो, इसी प्रकार तुम्हारे मुखके अपांगभाग हैं. हे कान्ते ! यह बादल आकाशको भूषित करते कामिजनोंको प्रसन्न करते हैं ॥ ६ ॥ हे सुनितम्बिनी ! यह मेघ गर्जते हैं इनसे प्रतिशब्दित होकर मोर शब्द करते हैं

जो पूंछके भारसे नम्र हुए अपनी प्रिय स्त्रियोंके साथ नृत्य कर प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ हे सुश्रोणि ! दूसरे श्वेत महलोंमें मोर बैठे हुए शोभा पाते हैं जिनसे ग्रहचूडा (छज्जे) के पुटोंमें मुहूर्तमात्रको बडी शोभा होती है ॥ ८ ॥ भीजे पंखवाले मोर वृक्षोंपर बैठे मुहूर्तमात्रको अपनी चूडामणिताको छोड कर नवीन शाद्वलवाली भूमिमें जाते हैं, और वे हरिततृणवाली भूमिमें अपने शरीरकी सादृशता देखते हैं ॥९॥ धाराओंके सम्पर्कसे निकला हुआ सुखदायक पवन चन्दनकी पंकके समान शीतल कदम्ब सर्ज अर्जुनके फूलोंके समान गन्धवाला कामदेवका बन्धुरूप पवन वहन करता है ॥१०॥

हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डुरेषु राजन्ति सुश्रोणि मयूरसङ्घाः ॥ मुहूर्त्तशोभामतिचारुरूपां दत्त्वा पतन्तो वलभीपुटेषु ॥८॥ प्रक्लिन्नपक्षास्तरुमस्तकेषु मुहूर्तचूडामणितां विधाय ॥ प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलानामाशङ्कमाना धृतचारुदेहाः ॥ ९ ॥ प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च सुखोऽनिलश्चन्दनपङ्कशीतः ॥ कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं समावहन्गन्धमनङ्गबन्धुम् ॥ १० ॥ रतिश्रमस्वेदविनाशहेतुर्नवोदभारानयने च हेतुः ॥ न मारुतः स्याद्यदि चारुगात्रि न मेघकालो मम वल्लभः स्यात् ॥११॥ एवंविधेषु प्रियसंगमेषु रतावसाने यदुपैति वायुः ॥ रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी ततःपरं किं सुखमस्ति लोके ॥१२॥ जलाप्लुतानीक्ष्य महानदीनां सुगात्रि हंसाः पुलिनानि हृष्टाः ॥ गताः श्रमं मानसवासलुब्धाः ससारसा कौञ्चगणानुविद्धाः ॥१३॥ न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव हतत्विषीवायतचारुनेत्रे ॥ गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु रथाङ्गतुल्याह्वयनेषु चैव ॥ १४ ॥

रतिके श्रमका दूर करनेवाला नवीन जल लानेका कारणभूत यदि पवन न होता तो हे सुन्दर शरीरवाली ! हमको यह वर्षाऋतु किसी प्रकार भली न लगती ॥११॥ इस प्रकारके प्रिय संगमोंमें रतिके पीछे जो वायु आनकर लगती है वही मनोहर है रतिश्रमके स्वेदका हरनेवाला सुगन्धियुक्त है इससे परे लोकमें और क्या सुख है ॥ १२ ॥ हे सुगात्रि ! हंस महानदियोंके किनारे जलसे प्लुत देखकर बडे प्रसन्न होते हैं श्रमरहित हो मानससरोवरमें रहनेकी इच्छा किये हुए सारस और क्रौंचोंके गुणोंसे अनुविद्ध ॥१३॥ नदी और सरोवर प्रकाशित नहीं होते हैं, और उनकी शोभा हतसी हो रही

है हंस सारस चकवा चकवीके तुल्य बालोंके चले जानेपर ॥ १४ ॥ शेषजीके शरीरके किसी एकभागमें शयन करनेवाले जगन्नाथ उपेंद्र ईश्वर निद्राको प्राप्त हुए हैं यह विचार कर ईश्वरके भक्त प्रेमसे उनको प्राप्त होते हैं ॥१५॥ भगवान्‌के शयन करनेपर चंद्रमा मेघोंसे आच्छादित हो रहा है; हे कालके समान बडे नेत्रवाली! पद्मकी निर्मल कान्ति कृष्णके मुखकी अनुकृति करती है ॥१६॥ कदम्बनीप अर्जुन केतकीकी माला अवश्य कृष्णको भेंट देती हैं पुष्प और दूसरी समस्त ऋतु कृष्णसे प्रसादकी इच्छा करती हैं ॥ १७ ॥ विषसे दिग्ध मुखवाले सर्प फिरते हैं वृक्षोंके पुष्पोंको स्पर्श करते

भोगैकदेशेन शुभं शयानं ध्रुवं जगन्नाथमुपेन्द्रमीशम् ॥ निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५ ॥
निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य ॥ पद्मामलाभः कमलायताक्षि कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति ॥ १६ ॥
कदम्बनीपार्जुनकेतकानां स्रजो ध्रुवं कृष्णमुपानयन्ति ॥ पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः कृष्णात्प्रसादानभिकांक्षमाणाः ॥ १७ ॥
नागाश्चरन्तो विषदिग्धवक्त्राः स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान् ॥ पेपीयमानान् भ्रमरैर्जनानां कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव ॥१८॥
तोयातिभाराम्बुदवृन्दनद्धं नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य ॥ निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं मनोहरं चारुमुखस्तनोरु ॥१९॥ बलाक-
मालाकुलमाल्यदाम्ना निरीक्ष्य रम्यं घनवृन्दमेतत् ॥ सस्यानि भूमावभिवर्षमाणं जगद्धितार्थं विमलाङ्गयष्टे ॥ २० ॥ जलाव-
लम्बाम्बुदवृन्दकर्षी घनैर्घनान्योधयतीव वायुः ॥ प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान्गजान्गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान् ॥२१॥ अभौममम्भो
विसृजन्ति मेघाः पूतं पवित्रं पवनैः सुगन्धि ॥ हर्षावहं चातकबर्हिणानां वराण्डजानां जलदप्रियाणाम् ॥ २२ ॥

हैं और भौरोंसे पान किये जाते वृक्ष अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न करते हैं ॥१८॥ जलके अतिभार मेघके वृंदोंसे नद्ध हुआ आकाश तुम्हारे सुंदर मुख स्तन ऊरु इनको जल भरा हुआसा देखकर मानो गिरासा जाता है॥१९॥बकपांतिकी मालासे व्याप्त यह मनोहर मेघ देखकर हे उज्ज्वल शरीरवाली ! जगत्‌के निमित्त सस्य धानोंकी वर्षा होती है ॥ २० ॥ वायु जल भरे हुए बादलोंको खैंचता हुआ मानो मेघोंसे युद्ध करता है जिस प्रकार राजाकी महाआज्ञासे अपने हाथी हाथियोंसे खिचाये जाते हैं जो मदसे दृप्त हैं॥ २१ ॥ मेघ पृथ्वीमें न होनेवाले स्वर्गके जलको वर्षाते हैं जो

कि पूत पवित्र और सुगंधितयुक्त है जिससे चातक और मोर प्रसन्न होते हैं श्रेष्ठ पक्षी और मेघोंके प्यार करनेवालोंका शब्द होता है ॥ २२ ॥ घर निर्माण करनेमें समर्थ भेकनामक पक्षी वर्षाके आठ पखवारोंमें शयन करनेवाला गोठमें स्त्रियोंके सहित वर्षाके निमित्त शब्द करता है जिस प्रकार अपने शिष्योंके सहित ब्राह्मण ऋचाओंका पाठ करते हैं ॥ २३ ॥ यह जल वर्षानेवाला समय बडे गुणसे युक्त है इसमें मेघ बढे हुए महाशब्द करते हैं इसमें शय्याके विनाही अपने प्रियोंको आलिंगन कर प्राणी कामकी वृद्धि करते हैं ॥ २४ ॥ हे उदारवंशमें उत्पन्न महासुन्दरी ! इस वर्षामें एकही दोष है जो कि मेघोंके घिरे रहनेसे तेरे मुखकी समान कान्तिवाले चन्द्रमाका दर्शन नहीं होता है ॥ २५ ॥ हे भीरु ! जगत्का दीपक चन्द्रमा जब कभी

प्लवङ्गमः षोडशपक्षशायी विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः ॥ ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥ २३ ॥
गुणो महांस्तोयदकालजोऽयमबुद्धमेघस्वनभीषितानाम् ॥ परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति विनापि शय्यासमयं प्रियाणाम् ॥ २४ ॥
दोषोऽयमेकः सलिलागमस्य मां प्रत्युदारान्वयवर्णशीले ॥ न दृश्यते यत्तव वक्त्रतुल्यो घनग्रहग्रस्ततनुः शशाङ्कः ॥ २५ ॥
प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को घनान्तरस्थो जगतः प्रदीपः ॥ तदानु पश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा बन्धुं प्रवासादिव सन्निवृत्तम् ॥ २६ ॥
विलापसाक्षी प्रियहीनितानां संदृश्यते भीरु यदा शशाङ्कः ॥ नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां दृष्टैव कान्तं भवतीत्यवैमि ॥ २७ ॥
नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम् ॥ तेनैव देहेन वराङ्गनानां चन्द्रोऽपि तावत् प्रियविप्रियश्च ॥ २८ ॥
विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते यतः प्रभा चन्द्रगभस्तिगौरी ॥ गुणागुणांश्चन्द्रमसो न वेद्मि यतस्ततोऽहं प्रशशंसयिष्ये ॥ २९ ॥

मेघोंके बीचमें दिखाई देता है तब प्राणी प्रसन्न हो इसको ऐसे देखते हैं जैसे किसी अपने प्यारे बंधुको विदेशसे आये हुए उसके कुटुम्बी देखते हैं ॥ २६ ॥ हे भीरु ! जिस समय प्रियहीनोंके विलापका साक्षी यह चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है उस समय प्राणियोंको ऐसी प्रसन्नता होती है जिस प्रकार प्रदेशसे लौटकर आये हुए कामियोंको देखकर कान्ता प्रसन्न होती हैं ॥ २७ ॥ आये हुए प्रियजनोंके नेत्रोंका आनंद बढानेवाला तथा प्रियजनोंसे हीनोंको दावाग्निकी तुल्य है, इसी देहसे नरांगनाओंको चन्द्रमा प्रिय अप्रिय दोनों प्रकारका है ॥ २८ ॥ जिस कारण कि चन्द्रमाके विनाभी

तुम्हारे पिताके पुरमें चन्द्रमाकी कान्ति पूर्ण चन्द्रवत् हो रही है, इस गुणसे चन्द्रमाको नहीं जानता हूं इससे मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूं ॥ २९ ॥ जो महास्तुतिको प्राप्त हो ब्राह्मणराज्यको पाता हुआ जो कि दूसरे पुण्यात्माओंके तपसे भी प्राप्त नहीं है जिसको ब्राह्मण पवमान यज्ञके नामसे गाते हैं उस उदारयज्ञमें वे आते हैं॥ ३०॥ जिस बुधका चन्द्रमा पिता है उस बुधके महावीर्यवान् पुरूरवा नामक पुत्र हुआ है जिसने उर्वशीके निमित्त गन्धर्वों-का आराधन किया इसका वृत्तान्त यों हैकि एक समय शापित हो उर्वशीने पुरूरवाको वरण किया उस समय पुरूरवासे यहप्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैं तुमको नग्न देखूंगी तो तुम्हारे पाससे चली जाऊंगी और यह दो मेरे मेंढे हैं इनको जो कोई कष्ट देगा तो भी न रहूंगी, राजाने स्वीकार किया, इस प्रकार बहुत समय दोनोंको बीत गया, इन्द्रको उर्वशीके बुलानेकी इच्छा हुई, उस समय गन्धर्वोंने जाकर उर्वशीसे कहा तुमको देखनेकी इन्द्र इच्छा करते हैं,उर्वशीने उनको अपनी प्रतिज्ञा समझाई,रात्रिके समय जब कि राजा उर्वशीके सहित शयन करते थे,उस समय गन्धर्वोंने उसके दोनों मेंढोंको

अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः ॥ गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं समागताः पर्वणि चाप्युदारम् ॥ ३० ॥
पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः ॥ प्राणाग्निरीड्योऽग्निमजीजनद्यो नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा ॥ ३१ ॥

हरण किया और आकाशको ले चले,उस समय उर्वशी पुकारने लगी कि अनाथके समान हरण होते मेरे मेंढोंको बचाओ राजा यह सुन वैसेही नंगा उठ दौडा,गन्धर्व आकाशको मेंढे लेगये(वेभी गन्धर्व थे). राजासे उर्वशी बोली मैं अब नहीं रहूँगी,यह कह स्वर्गको चली गई. राजा उसके वियोगमें मत्त हो वन वन घूमता फिरा बहुत दिनोंके उपरान्त अप्सराओंके साथ उर्वशीको एक सरोवरमें स्नान करते देखकर राजाने रो रो अपनी व्यथा कही,तब उर्वशीने कहा राजन् ! मैं वर्षदिन पीछे एक रात तुम्हारे पास रहूंगी, और पुत्रभी होगा, राजा इस आशामें घर रहा, वर्षदिन पीछे उर्वशी आई और राजाके संग रही, पीछे राजाकी व्याकुलता देख कहाकि गन्धर्वोंकी उपासना करो तो मुझे प्राप्त होगे,राजाने वही किया गन्धर्वोंने उसे एक चरुस्थाली दी राजानेउसे मार्गमेंही छोड दी परन्तु फिर जाकर उसे देखा तो शमीके गर्भमें अश्वत्थ (पीपल) जमा हुआ देखा तब अश्वत्थसे अरणीको मथकर तीन अग्निके साधनभूत त्रेतायुगके कर्मको राजाने प्रवृत्त किया जिसके प्रभावसे स्वर्गमें जा उर्वशीसे मिले औषधि वनस्पतियोंके पति चन्द्रमाने अश्वत्थको

उत्पन्न कर नष्ट अग्निको प्रगट किया शिवने उसको शिरपर धारण किया इससे भवात्मा कहा॥३१॥हे श्रेष्ठ शरीरवाली! जिस चन्द्रमाने पुरूरवारूप पौत्र आत्मासे मानो स्वयं उर्वशीकी इच्छा की थी जिसने सब शरीरका अमृतपान करकेभी मानो तृप्ति प्राप्त नहीं की थी॥३२॥ जिसके वंशमें आयु नामराजा कुशाग्रसेअग्निको यजन कर तृप्तकरता हुआ और यज्ञकी परम्परासे अग्नि स्वर्गको गई उसनेअग्निका सायुज्य प्राप्त किया जिस आयुके वंशमें राजा नहुष बडा वीर देवत्वको प्राप्त हुआ॥३३॥ जिसके वंशमें जगत् प्रणेता देवातिदेव नारायण उत्पन्न हुए.हे सुभ्रु ! वही यदुवंशियोंमें मुख्य

तथैव पश्चाच्चकमे महात्मा पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम् ॥ पीतः पुरा योऽमृतसर्वदेहो मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः ॥३२॥ नृपः कुशाग्रैः पुनरेव यश्च धीमानतोऽग्निर्दिवि पूज्यते च ॥ आयुश्च वंशे नहुषश्च यस्य यो देवराजत्वमवाप वीरः ॥ ३३ ॥ देवातिदेवो भगवा-न्प्रसूतो वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता ॥ भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतोर्यः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः ॥३४॥ बभूव राजाथ वसुश्च यस्य वंशे महात्मा शशिवंशदीपः ॥ यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः ॥ ३५ ॥ यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो योऽवाप मह्यामधिराजभावम् ॥ भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य वीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः ॥ ३६ ॥ न कूटकृद्यस्य नृपोऽ-स्ति वंशे न नास्तिको नैष्कृतिकोऽपि वाथ ॥ अश्रद्दधानोऽप्यथवा कदर्यः शौर्येण वा वारिरुहाक्षि हीनः ॥३७॥ वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि श्लाघ्या गुणानामतिपात्रभूता ॥ कुरु प्रणामं शिखराग्रदन्ति तस्य त्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥ ३८ ॥

है यह वंश दक्षकी कन्याओंके ग्रहण करनेवाले चन्द्रमासे व्याप्त है ॥ ३४ ॥ जिस वंशमें चन्द्रवंशका दीपक राजा वसु हुआ जो वीर इन्द्रके तुल्य तेजस्वी अपने कर्मसे चक्रवर्तीपनको प्राप्त हुआ ॥३५॥ चन्द्रवंशमें मुख्य राजा यदु हुए जिन्होंने पृथ्वीका राज्य किया जिस राजाके कुलमें भोजवंशीय इन्द्र तुल्य पराक्रमी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ जिनके वंशमें कोईभी कुटिलता करनेवाला न हुआ न कोई नास्तिक और न कोई निष्कर्म हुआ श्रद्धारहित कायर अथवा शूरतासे हीन कोई न हुआ. ॥ ३७ ॥ हे कमललोचने ! श्लाघ्यगुणोंकी पात्रभूत तू इस वशकी वधू है.

है. हे लोहितमणिकी समान दांतोंवाली ! सत्पुरुषोंके प्रिय ईश इस चन्द्रमाको प्रणाम करो ॥ ३८ ॥ हे देवि ! तुम नारायण स्वयंभू लोक और स्वर्गके स्थानभूत गरुडध्वज पुरुषोत्तम अपने श्वशुरको प्रणाम करो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां प्रद्युम्नभाषणे पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् जन्मेजय ! अति तेजस्वी कश्यपमुनिके यज्ञके अंतमें सम्पूर्ण देवता और असुर अपने २ स्थानोंमें गये ॥ १ ॥ यज्ञ निवृत्त होतेही त्रैलोक्यके जीतनेकी इच्छा करता हुआ वज्रनाभभी कश्यपजीके पास गया तब कश्यपजी उससे वचन कहने लगे ॥ २ ॥ कि हे वज्रनाभ ! तू समझ मेरे वचन मान; हे पुत्र ! अपने स्वजनोंके सहित वज्रपुरमें वस ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! इन्द्र

नारायणायात्मभवायनाय लोकायनाय त्रिदशायनाय ॥ खगेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय कुरु प्रणामं श्वशुराय देवि ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः ॥ जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः ॥ १ ॥ वज्रनाभोऽपि निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात् ॥ त्रैलोक्यविजयाकांक्षी तमुवाचाथ कश्यपः ॥ २ ॥ वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम ॥ वस वज्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥ ३ ॥ तपसाभ्यधिकः शक्रः शक्तश्चैव स्वभावतः ॥ ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ ४ ॥ राजा कृत्स्नस्य जगतः पात्रभूतः सतां गतिः ॥ संप्राप्तो लोकराज्यं स सर्वभूतहिते रतः ॥ ५ ॥ नैव शक्यस्त्वया जेतुं वज्रनाभ विहन्यसे ॥ अहिं पदा व्युत्क्रमन्वै न चिराद्विनशिष्यसि ॥ ६ ॥ वज्रनाभश्च तद्वाक्यं नाभिनन्दति भारत ॥ कालपाशपरीताङ्गो मर्तुकाम इवौषधम् ॥ ७ ॥

तो तपसेभी अधिक है, स्वभावसेभी समर्थ है; हे पुत्र ! ब्रह्मण्य है और कृतज्ञ है ज्येष्ठ है और गुणसे श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ और सम्पूर्ण जगत्का राजा और सबका पात्रभूत है और सतांगति है; हे पुत्र ! इन्द्र सम्पूर्ण लोकोंके राज्यको प्राप्त है तिसमें स्थित है ॥ ५ ॥ हे वज्रनाभ ! इन्द्रको तू जीतनेको समर्थ नहीं है; और जो तू मरनेकी इच्छा करता है तो युद्ध कर पैरसे सर्प छूनेकी समान नष्ट हो जायगा ॥ ६ ॥ हे भारत ! ऐसे कश्यपमुनिके वाक्य सुन कालपाशसे व्याप्त हुए वज्रनाभने तिनको ऐसे नहीं माना जैसे मरनेकी वांछा करनेवाला रोगी औषधीको नहीं मानता ॥ ७ ॥

हे जन्मेजय ! तब यह दुर्बुद्धि लोकभावन कश्यपजीको प्रणाम करके त्रैलोक्यके विजयके आरंभमें मति करने लगा॥ ८॥ हे राजन् ! वज्रनाभने बहुतसे जाति योधाओंको और बहुतसे मित्रोंको बुलाकर और स्वर्गके जीतनेको प्रस्थान किया ॥ ९॥ तब इसी समयमें कृष्णचंद्र और इन्द्र दोनोंने महाबली वज्रनाभके वधके निमित्त हंसोंको भेजा ॥ १० ॥ पीछे यदुमुख्य महाबल यादव आये हुए हंसोंको सुनकर और सम्मति करके अत्यन्त चिंता करने लगे ॥११॥ और कहने लगे कि वज्रनाभ तौ प्रद्युम्नसे मरेगा उन दोनोंकी दुहिता भक्तिसे युक्त थीं ॥ १२ ॥ और वे सब गर्भवती थीं सोचने लगीं अब क्या करें

अभिवाद्य स दुर्बुद्धिः कश्यपं लोकभावनम् ॥ त्रैलोक्यविजयारम्भे मतिं चक्रे दुरासदः ॥ ८ ॥ ज्ञातियोधान्समानीय मित्राणि सुबहूनि च ॥ प्रतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन्विशाम्पते ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ च महाबलौ ॥ प्रेषयामासतुर्हंसान्वज्रनाभवधं प्रति ॥ १० ॥ समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुमुख्या महाबलाः ॥ मन्त्रयित्वा महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥ ११ ॥ वज्रनाभोऽद्य हन्तव्यः प्रद्युम्नेनेत्यसंशयम् ॥ तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या ताः सर्वभावनाः ॥ १२ ॥ सर्वाः सगर्भास्ताश्चैव किंतु कार्यमनन्तरम् ॥ प्राप्तः प्रसवकालश्च तासां नातिचिरादिव ॥ १३ ॥ संमन्त्रयित्वैतदर्थं हंसानूचुर्महाबलाः ॥ आख्येयमर्थवत्कृत्स्नं शक्रकेशवयो-स्तदा ॥ १४ ॥ हंसैर्गत्वा तदाख्यातं देवयोस्तद्यथातथम् ॥ ताभ्यां हंसास्तु संदिष्टा न भेतव्यामिति प्रभो ॥ १५ ॥ उत्पत्स्यन्ति गुणैः श्लाघ्याः पुत्रा वः कामरूपिणः ॥ गर्भस्थाः सर्ववेदांश्च साङ्गान्वेत्स्यन्त्यनिन्दिताः ॥ १६ ॥ तथा चानागतं सर्वमस्त्राणि विवि-धानि च ॥ सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिताः ॥ १७ ॥

क्योंकि प्रसवकाल समीप है ॥ १३ ॥ तब सम्मति करके वे महाबल हंसोंसे कहने लगे कि यह सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र और केशवसे कहो, यह सुनकर समस्त वृत्तान्त ॥ १४ ॥ सत्य सत्य उन हंसोंनें जाकर वहां कहा तब इन्द्र और भगवान्ने फिर हंस भेजे और कहा 'कि भय मत करो ॥ १५ ॥ हे यादवो ! तुम्हारे कामकेसे रूपवाले और गुणोंकरके श्लाघ्य और गर्भमेंही अंगोंसहित वेदोंको पढनेंवाले और अनेक शास्त्रोंको विचारनेवाले ॥ १६ ॥ ऐसे पंडित पुत्र होंगे और तत्कालही युवा हो जांयगे और सब शास्त्र जान जांयगे ॥ १७ ॥

हंस इस प्रकार कहकर फिर वज्रपुरमें गये और तहां इन्द्र और केशवका संपूर्ण कथन भैमोंको सुनाया ॥१८॥ तब प्रभावतीने प्रद्युम्नकेही समान श्रेष्ठ पुत्रको जना; हे भारत ! यह तत्कालही सर्वज्ञत्व और यौवनको प्राप्त हो गया ॥ १९ ॥ हे भारत ! एक महीनेमें पिताके समान चंद्रमाकेसी कांतिवाले पुत्रको चन्द्रवतीने उत्पन्न किया ॥ २० ॥ सो यहभी तत्काल यौवन और सर्वज्ञत्वको प्राप्त हो गया, और ऐसेही आनिंदित गुणवतीने भी सर्वशास्त्रोंके जाननेवाले॥२१॥गुणवान् और युवा दो पुत्रोंको जना, यह इन्द्र और उपेन्द्रके प्रसादसे युद्धदुर्मद हुए॥२२॥एक दिन महलकी पृष्ठपर

एवमुक्त्वा गता हंसाः पुनर्वज्रपुरं विभो ॥ शशंसुश्चैव भैमानां शक्रकेशवभाषितम् ॥१८॥ प्रभावती तदा पुत्रं सुषुवे सदृशं पितुः॥ सद्यो यौवनसम्प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत ॥ १९ ॥ मासमात्रेण सुषुवे देवी चन्द्रवती नृप ॥ चन्द्रप्रभमिति ख्यातं तनयं सदृशं पितुः ॥२०॥ सद्यश्च यौवनं प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत ॥ गुणवत्यपि पुत्रं च गुणवन्तमनिन्दिता ॥ २१ ॥ युवानावथ सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ ॥ इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन संवृत्तौ युद्धवर्धनौ ॥२२॥ हर्म्यपृष्ठे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दनाः ॥ इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम् ॥२३॥ निवेदिताश्च सम्भ्रान्तैर्दैत्यैराकाशरक्षिभिः ॥ वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपजयैषिणे ॥२४॥ वधाय सर्वे गृह्यन्तां ममैते गृहधर्षकाः ॥ इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुरः ॥२५॥ ततः सैन्यं समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता ॥ आवारयामास दिशः सर्वाः कुरुकुलोद्वह ॥२६॥ गृह्यन्तामाशु वध्यन्तामिति वाचस्ततस्ततः ॥ उच्चैरुरसुरेन्द्रस्य शासनादरिशासिनः ॥२७॥

वर्धमान संपूर्ण यादव देखे और कहने लगे कि इन्द्र और उपेन्द्रकी इच्छासे यह वार्ता है यह निश्चय जानो ॥ २३ ॥ ऐसे विचार भ्रमयुक्त हुए दानव स्वर्गके जीतनेकी इच्छा करनेवाले शूरवीर वज्रनाभसे दैत्य संपूर्ण वृत्तान्त कहने लगे ॥ २४ ॥ वज्रनाभ उस वृत्तान्तको सुनकर कहने लगा कि रे पंकड लो; यह संपूर्ण मेरे कुलके धर्षक हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार कहकर सब सेनाको आज्ञा दी कि चारों तरफसे दिशाओंको घेर लो और पकड लो और मारो॥ २६ ॥ तिस असुरेन्द्रकी आज्ञासे असुरोंने वैसाही किया और दैत्येन्द्रकी आज्ञासे सब ओर यह बात फैल गई ॥ २७ ॥

तब पुत्रको प्यारकरनेवाली प्रभावती आदि माता रुदन करने लगीं, उनको दुःखित देखकर हँसकर प्रद्युम्न वचन कहने लगे ॥२८॥ हे अबलाओ ! हमारे जीते हुए तुम भय मत करो; दैत्य हमारा क्या करेंगे; सर्वथा तुम्हारा कल्याण हो ॥२९॥ यह कहकर प्रद्युम्न विकल हुई प्रभावतीसे कहने लगे कि, हे प्रिये ! देखो हाथमें गदा लिये तुम्हारा पिता स्थित है, और यह तेरे पितृव्य स्थित हैं॥३०॥हे देवि ! तेरे भ्राता और ज्ञातिके स्थित हैं सो हे प्रिये ! तेरे निमित्त सम्पूर्ण मेरे पूज्य हैं और मान्य हैं॥३१॥सो तू अपनी बहनोंको पूछ यह बडा दारुणकाल है, युद्धमें जयके निमित्त मरना नहीं देखा

तच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः पुत्रवत्सलाः ॥ रुरुदुस्ता रुदन्त्यश्च प्रद्युम्नः प्रहसन्नब्रवीत्॥२८॥मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु सर्वथा ॥ किं नोदैत्याः करिष्यन्ति सर्वथा भद्रमस्तु वः ॥२९॥ प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विप्लुवां स्थिताम् ॥ पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव ॥३०॥ भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे ॥ एते पूज्याश्च मान्याश्च तवार्थे खलु सर्वथा॥३१॥ भगिन्यौ पृच्छ भद्रं ते कालोऽयं खलु दारुणः ॥ मरणं सहमानानां युद्ध्यतां विजयो ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः ॥ किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चक्रान्तरस्थितैः ॥३३॥ प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ ॥३४॥ गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण ॥ जीवन् पुत्रांश्च दारांश्च द्रष्टासि यदुनन्दन ॥३५॥ आर्यां नृवरवैदर्भीमनिरुद्धं च मानद ॥ स्मृत्वैतन्मोक्षयात्मानं व्यसनादरिमर्दन ॥ ३६ ॥

जाता ॥३२॥ क्योंकि सम्पूर्ण दानवेन्द्र हमारे वधकी इच्छा करते हैं; हे प्रिये ! तेरी आज्ञामें स्थित हुए हमको यहां क्या करना योग्य है ॥३३॥ इस प्रकार सुनकर रुदन करती हुई प्रभावती प्रद्युम्नसे कहने लगी; और शिरके ऊपर अंजलि धरकर गोडोंसे पृथ्वीमें गिर गई ॥३४॥ और कहने लगी कि, हे प्रिय ! हे शत्रुनिबर्हण ! शस्त्र ग्रहण करो और अपने आत्माकी रक्षा करो क्योंकि हे यदुनंदन! तुम तो जीते हुए पुत्रवाली स्त्रियोंको देखनेवाले हो ॥ ३५ ॥ हे नृवरश्रेष्ठ ! वैदर्भीको और अनिरुद्धको याद करके हे अरिमर्दन ! इस व्यसनसे छुटाओ ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! बुद्धिमान् दुर्वासाने मुझको वरदानभी दिया है कि हे प्रभावती ! तू वैधव्यरहित और जीवपुत्रा होगी ॥३७॥ यह मेरे हृदयको विश्वास है कि सूर्य और अग्निके तेजवाले मुनिके वाक्य अन्यथा नही होते॥३८॥हे राजन्!इस प्रकार कहकर और खड्गको ले दृढतासे इस मनस्विनीने प्रद्युम्नको दिया; और यहभी कहा कि हे शूरवीर ! तुम जय करो ॥३९॥ ऐसे कहती हुई उस आनन्दयुक्त आत्मासे भक्तियुक्त प्रियाके दिये हुए खड्गको प्रणाम करके तिन धर्मात्माने ग्रहण किया ॥४०॥पीछे चंद्रवतीने आनंदयुक्त हो गदको खड्ग दिया और गुणवतीने महात्मा सांबको खड्ग

दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता ॥ वैधव्यरहिता हृष्टा जीवपुत्रा भविष्यसि ॥३७॥ एष मे हृदयाश्वासो भविता न तद-न्यथा ॥ सूर्याग्नितेजसो वाक्यं मुनेरिन्द्रानुजात्मज ॥३८॥ इत्युक्त्वाथासिमादाय सूपस्पृष्ट्वा मनस्विनी ॥ प्रददौ रौक्मिणेयाय जयस्वेति वरं वरा ॥३९॥ स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया ॥ ४० ॥ चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा ॥ तदा गुणवती चैव साम्बायासिं महात्मने ॥४१॥ हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं प्रभुः ॥ इहैव साम्बसहितो युध्यस्व सह यादवैः ॥ ४२ ॥ आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम ॥ इत्युक्त्वाथ रथं चक्रे मायया मायिनां वरः ॥४३॥ सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान् ॥ अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ स तेन रथमुख्येन हर्षयन्वै प्रभावतीम् ॥ चचारासुरसैन्येषु तृणेष्विव हुताशनः ॥४५॥ शरैराशीविषप्रख्यैरर्द्धचन्द्रानुकान्तिभिः॥ भेदनैर्गार्धनैश्चैव ततर्द दितिसम्भवान् ॥ ४६ ॥

दिया ॥४१॥ इसके अनंतर प्रद्युम्नने प्रणत हंसकेतुसे कहा; हे हंसकेतो ! तुम साम्बके सहित और यादवोंके सहित यहीं युद्ध करो ॥ ४२ ॥ हे अरिंदम ! मैं सम्पूर्ण दिशाओंमें और आकाशमें युद्ध करूंगा; ऐसे कहकर पश्चात् मायावियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने मायासे रथकी रचना की ॥ ४३ ॥ हे कौरव्य!सम्पूर्ण नागोत्तमोंमें उत्तम और अनंतभोगवाले सहस्र शिरोंवाले नागको अपना सारथि बनाया॥४४॥तब तिस मुख्यरथसे प्रभावतीको आनंदयुक्त करते हुए असुरोंकी सेनामें ऐसे विचरने लगे जैसे तृणोंमें अग्नि॥४५॥ सर्पके समान और अर्द्धचंद्रमाकेसी कांतिवाले भेदन करनेवाले

बाणोंसे दितिके पुत्रोंको भेदन करने लगे॥४६॥पश्चात् रणमें मत्त हुए असुर प्रद्युम्नके शस्त्रोंसे व्याकुल हुए और निश्चयको अस्थित हुए कमलकेसे नेत्रवाले प्रद्युम्नको भेदन करने लगे ॥४७॥ तब प्रद्युम्नने कितनेकोंकी तो बाजूबंद और कंकणोंसे भूषित भुजाओंको छेदन कर दिया;और कितनेक असुरोंके कुंडलोंसहित शिरोंको छेदन कर दिया॥४८॥अत्यन्ततेजवाले प्रद्युम्नके शस्त्रोंसे काटे हुए असुरोंके शिर और शरीरके टुकडोंसे पृथ्वी व्याप्त हो गई॥४९॥ तब देवगणोंके सहित युद्धको जीतनेवाले आनंदयुक्त हुए इन्द्र भैमोंके साथ असुरोंके युद्धको देखने लगे ॥ ५० ॥ उस समय जो

असुराश्च रणे मत्ताः कार्ष्णिं शस्त्रैरितस्ततः॥ जघ्नुः कमलपत्राक्षं परं निश्चयमास्थिताः ॥४७॥ चिच्छेद बाहून्केषांचित्केयूरवलयोज्ज्वलान्॥स कुण्डलानि केषां चिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे ॥४८॥ क्षुरच्छिन्नैः शिरोभिश्च कायैश्च शकलैरपि ॥ असुराणां मही कार्णा प्रद्युम्नेनातितेजसा ॥४९॥ देवेश्वरो देवगणैः सहितः समितिंजयः ॥ ददर्श मुदितो युद्धं भैमानां दितिजैः सह ॥५० ॥ ये गदं चैव साम्बं च दैत्याः समभिदुद्रुवुः ॥ ते ययुर्निधनं सर्वे यादांसीव महोदधौ॥५१॥विषमं तु तदा युद्धं दृष्ट्वा देवपतिर्हरिः॥गदाय प्रेषयामास स्वं रथं हरिवाहनः ॥५२॥ दिदेश मातलिसुतं यन्तारं च सुवर्चसम् ॥ साम्बायैरावणं नागं प्रेषयामास चेश्वरः ॥५३॥ जयन्तं रौक्मिणेयस्य सहायमददद्विभुः ॥ ऐरावणधिष्ठातुं प्रवरं स नियुक्तवान्॥५४॥ देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराक्रमौ ॥ अनुज्ञाप्य सुराध्यक्षं ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥५५॥ तं मातलिसुतं चैव गजमैरावणं तदा ॥देवः प्रेषितवाञ्छक्रो विधिज्ञो वरकर्मसु ॥ ५६ ॥

दैत्य गद और सांबके सन्मुख गये सो सम्पूर्ण इसप्रकार मृत्युको प्राप्त हुए कि जैसे महोदधिमें जल जंतु॥५१॥तब देवताओंके पति इन्द्रने युद्धको विषम देखकर अपने रथको गदके निमित्त भेजा ॥५२॥ और मातलि नाम सूतके पुत्रको भेजा; सांबके अर्थ ऐरावत हस्तीको भेजा॥५३॥ और विभु इन्द्रने जयंतको प्रद्युम्नकीसहायताको भेजा;और ऐरावतके प्रेरनेको प्रवरकोयुक्त किया॥५४॥ऐसे सुराध्यक्ष लोकभावन ब्रह्माकी आज्ञासे पश्चात् अमितपराक्रमवाले देवपुत्र ॥ ५५ ॥ जयंत और प्रवर मातलिपुत्र सारथि और ऐरावत इन सम्पूर्णोंको विधिके जाननेवाले इन्द्रने श्रेष्ठ कर्मोंमें योजन

किया॥५६॥तब इसका तप क्षीण हुआ यह दुर्मति यदुओंसे वध्य है सब ओर यथेच्छ प्राणी प्रविष्ट होने लगे ॥५७॥ महाबल प्रद्युम्न और जयंत दोनों हर्म्यको प्राप्तहुए और शरजालोंके समूहसे असुरोंका नाश करने लगे ॥ ५८ ॥ तब रणदुर्जय प्रद्युम्न गदसेबोले; हे उपेंद्रानुज ! इन्द्रने तुम्हारे कारण यह घोडे जोडकर रथ भेजा है॥५९॥यह मातलिपुत्र महाबल सारथी भेजा है;और सांबके निमित्त प्रवर चढाकर ऐरावतहस्ती भेजा है॥६०॥ हे अच्युतके छोटे भ्राता ! आज तो द्वारकामें रुद्रकी महापूजाहै,और पूजाके पश्चात् कल भगवान्ही यहां आवेंगे॥६१॥ तब उनकी आज्ञासे बांधवों

क्षीणमस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मतिः ॥ प्रविशन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम् ॥५७॥ प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राप्तौ हर्म्यं महाबलौ ॥ असुराञ्च्छरजालौघैर्विक्राम्यन्तौ प्रणश्यतुः ॥५८॥ गदं कार्ष्णिस्तदोवाच दुर्वार्यरणदुर्जयः ॥ उपेन्द्रानुजशक्रेण रथोऽ-यं प्रेषितस्तव ॥५९॥ हरियुङ् मातलिसुतो यन्ता चायं महाबलः ॥ प्रवराधिष्ठितश्चायं साम्बस्यैरावणो गजः ॥६०॥ अद्योप-हारो रुद्रस्य द्वारकायां महाबलः ॥ श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन्वृत्तेऽच्युतानुज॥६१॥ तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभं सबान्ध-वम्॥ अभ्युत्थानकृतं पापं त्रिविष्टपजयं प्रति ॥६२॥ करिष्यामि विधानं च नैष चक्रं सुतान्वितम् ॥ विजेष्यत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मतिः ॥ ६३ ॥ कलत्ररक्षणं कार्यं सर्वोपायैर्नरैर्बुधैः ॥ कलत्रधर्षणं लोके मरणादतिरिच्यते ॥६४॥ एवं संदिश्य भैमः स गदासाम्बौ महाबलः ॥ प्रद्युम्नकोट्यः ससृजे मायया दिव्यरूपया ॥६५॥ तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्टं दुरासदम्॥ जहृषे देवरा-जश्च तं दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥ ६६ ॥ ददृशुः सर्वभूतानि कार्ष्णिं सर्वेषु शत्रुषु ॥ अन्तरात्मनि वर्तन्तं क्षेत्रज्ञमिव तं विदुः ॥६७॥

सहित वज्रनाभको मारेंगे, और स्वर्गके जयके प्रति अभ्युत्थानकृत पाप लगेगा॥६२॥कलही यह वज्रनाभ पुत्रसहित इन्द्रकोभी जीतेगा, इससे अप्रमा-दसे यह करनायोग्य है ॥६३॥ हे गद ! बुद्धिमान् नरको सम्पूर्णउपायोंसे स्त्रियोंकी रक्षा करनी योग्य है,क्योंकि स्त्रियोंका धर्षण लोकमें मरणसेभी अधिक कहाहै॥६४॥इसप्रकार महाबली प्रद्युम्न गदऔर सांब कहकर अपनी दिव्यरूप मायासे करोड अपने स्वरूप रच लिये॥६५॥और दैत्योंके रचे हुए दुरासद तमको नष्टकर दिया,ऐसे तिस रिपुमर्दन प्रद्युम्नको इंद्र देखकरबहुत प्रसन्नहुए॥६६॥और सम्पूर्ण भूतसम्पूर्ण शत्रुओंमें वर्तते हुएप्रद्युम्नको

ऐसेदीखने लगे जैसे आत्मामें वर्तते हुएक्षेत्रज्ञको देखते हों॥६७॥इसप्रकार प्रद्युम्नको युद्ध करते हुए रात्रि व्यतीतहो गई, और प्रद्युम्नने अतितेजसे असुरोंके तीन भाग मार दिये॥६८॥और रणभूमिमें जितने समय प्रद्युम्नने युद्धकिया जितने गंगाजीके जलमें जयंतने संध्योपासन कर्म किया॥६९॥ और जितने महाबल जयंतने युद्ध किया इतने समयमें आकाशगंगामें प्रद्युम्नने संध्योपासन कर्म किया ॥ ७० ॥ इति श्रीमहा. खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नदैत्ययुद्धेषण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥वैशंपायनजी बोले;हे राजन् जन्मेजय ! जब जगत्का चक्षुरूप सूर्य उदय हुआ तब सर्पोंके शत्रु

एवं व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यतः ॥ आसुराणां त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा ॥ ६८ ॥ यावद्व्योधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान् रणाजिरे ॥ सन्ध्योपास्ता जयन्तेन तावद्विष्णुपदीजले ॥ ६९ ॥ अयोधयज्जयन्तश्च यावद्दैत्यान्महाबलः ॥ तावदाकाशगङ्गायां भैमः सन्ध्यामुपास्तवान् ॥७०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नदैत्ययुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ॥ प्रादुरासीद्धरिर्देवस्तार्क्ष्येणोरगशत्रुणा ॥ १ ॥ हंसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरगः खगः ॥ तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ॥२॥ समेत्य च यथान्यायं कृष्णो वासवसन्निधौ ॥ पाञ्चजन्यं हरिर्दध्मौ दैत्यानां भयवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ तं श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नः परवीरहा ॥ वज्रनाभं जहीत्युक्तः केशवेन त्वरेति च ॥ ४ ॥ तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदितः ॥ चकार स तथा वीरः प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ॥ ५ ॥ स मनोरंहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप ॥ अभ्यासं वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत ॥ ६ ॥

गरुडपर हरिदेव प्रकट हुए॥१॥ हे कुरुनंदन ! हंस वायु और मनकेसे वेगवाले गरुड आकाशमें इन्द्रके पास आनकर खडे हुए॥२॥ पश्चात् इन्द्रके समीप आय दैत्योंको भय करनेवाले पांचजन्यको हरि भगवान्ने बजाया ॥३॥ पीछे प्रद्युम्न तिस शंखके शब्दको सुन भगवान्के समीप आये तब भगवान्ने देखतेही कहा कि, हे पुत्र ! शीघ्र जाओ और वज्रनाभको मारो ॥४॥ फिर भगवान् कहने लगे कि, हे पुत्र ! गरुडपर चढकर जाओ; ऐसे सुन यह शूरवीर दोनों सुरोत्तमोंको प्रणामकर वैसेही करने लगे ॥५॥हे राजन् ! इसके उपरान्त मनके समान वेगवाले गरुडपर सवार होकर शीघ्रही

दुरंत युद्धवाले वज्रनाभके पास गये ॥ ६ ॥ तिसके उपरान्तसम्पूर्ण अस्त्रोंके जाननेवाले निंदारहित गरुड रणभूमिमें स्थित हुए वज्रनाभको पीडित करने लगे ॥७॥ पीछे गरुडसे प्राप्त हुए प्रद्युम्नने गदासे तिस महात्मा वीरके हृदयमें मारा ॥ ८ ॥ पश्चात् मोहके वश हुआ यह दैत्य प्रद्युम्नने जब मारा तब मुखसे बहुतसा रुधिर गिराने लगा और मरे हुएके समान गिर गया ॥९॥ फिर रणदुर्जय प्रद्युम्न तिसको कहने लगे कि सावधान हो, पीछे जब संज्ञा लब्ध हो गई तब यह शूरवीर वज्रनाभ प्रद्युम्नसे यह कहने लगा ॥ १० ॥ हे यादव ! यह तैंने श्रेष्ठ काम किया और तू वीर्यसे मेरा श्लाघनीय रिपु है इस कारण हे महाबल ! यह प्रहारकाल है मेरे आगे स्थिर हो ॥ ११ ॥ पीछे वज्रनाभने इस प्रकार कहकर

ततस्तार्क्ष्यगतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि ॥ वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दितः ॥७॥ तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना ॥ उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना ॥८॥ स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवशं गतः ॥ चक्षार च भृशं रक्तं बभ्रामेव गतासुवत् ॥९॥ आश्वसेत्यथ तं कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जयः ॥ लब्धसंज्ञः स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ॥ १० ॥ साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् ॥ प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल ॥११॥ एवमुक्त्वा महानादं मुक्त्वा मेघशतोपमम् ॥ गदां मुमोच वेगेन सघण्टां बहुकण्टकाम् ॥ १२ ॥ तया ललाटेऽभिहतः प्रद्युम्नो गदया नृप ॥ उद्वमन्रुधिरं भूरि मुमोह यदुनन्दनः ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः पाञ्चजन्यं जलोद्भवम् ॥ दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशनः ॥ १४ ॥ तं पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्तं महाबलम् ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ ॥ १५ ॥

और सैंकडों मेघोंकेसा शब्द करके पीछे घंटोंके सहित बहुतकांटोंवाली गदाको प्रहार किया ॥१२॥ हे राजन् ! उस गदासे मस्तकमें हनन किया यदुनंदन प्रद्युम्न रुधिर गिराते हुए मोहको प्राप्त हो गये ॥१३॥ तब पुत्रके शत्रुको नाश करनेवाले भगवान् कृष्णचंद्रने तिस प्रद्युम्नको देखकर आश्वासना करानेवाला पांचजन्य शंख बजाया ॥ १४ ॥ पश्चात् पांचजन्यके शब्दसे महाबल प्रद्युम्नको सचेत देखकर सम्पूर्ण लोक मुदित हो गये; और इन्द्र और केशव तो विशेष करके प्रसन्न हो गये ॥ १५ ॥

हे भारत ! पश्चात् तिस प्रद्युम्नके हाथमें जो तीक्ष्ण नेमिवाला और हजार अरोंवाला और दैत्यसमूहके कुलका अंत करनेवाला चक्र था॥१६॥तिसको सुरेन्द्र और महात्मा कृष्णको नमस्कार कर वज्रनाभके ऊपर प्रद्युम्नने छोडा॥१७॥पश्चात् प्रद्युम्नका छोडा हुआ वह चक्र दैत्योंके देखते हुए वज्रनाभके शरीरसे शिरको दूर करता हुआ॥१८॥और रणके आंगनमें रणद्दप्त और भयांतक और यत्न करते हुए सुनाभदैत्यको गदासे मारा॥१९॥और शत्रुओंको नाश करनेवाला सांब युद्धमें स्थित हुआ दैत्योंको तीक्ष्ण बाणोंसे प्रेताधिपके स्थानको प्राप्त करने लगा॥२०॥पश्चात् जब वज्रनाभ मार

तस्य चक्रं करे यातं कृष्णच्छन्देन भारत ॥ क्षुरनेमिसहस्रारं दैत्यसङ्घकुलान्तकम् ॥ १६ ॥ तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत ॥ नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ॥ १७ ॥ वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चकर्त शिरस्तदा ॥ नारायणसुतोन्मुक्तं दैत्यानामनुपश्यताम् ॥ १८ ॥ गदः सुनाभमवधीतद्यमानं रणाजिरे ॥ हर्म्यपृष्ठे जिघांसन्तं रणद्दप्तं भयानकम् ॥ १९ ॥ साम्बः समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दनः ॥ निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥ २० ॥ निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे ॥ जगाम षट्पुरं वीरो नारायणभयार्दितः ॥ २१ ॥ निबर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे ॥ अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥ २२ ॥ लब्धप्रशमनं चैव चक्रतुः सुरसत्तमौ ॥ सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्धं भयार्दितम् ॥ २३ ॥ इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ ॥ आयत्यां च तदात्वे च बृहस्पतिमतानुगौ ॥ २४ ॥ वज्रनाभस्य तद्राज्यं चतुर्द्धा चक्रतुर्नृप ॥ विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥ २५ ॥

दिया तब शूरवीर निकुंभभी नारायणके भयसे अर्दित हुआ षट्पुरको जाने लगा॥२१॥पश्चात् जब वज्रनाभ देवरिपु नष्ट हो गया तब महेन्द्र और केशव वज्रपुरमें अवतीर्ण हुए॥२२॥ फिर लब्ध हुए शत्रु पराजयका दुःख दूरकर भयसे अर्दित हुए बालवृद्धको आश्वासन देते हुए ॥ २३ ॥ फिर महात्मा इन्द्र और उपेन्द्र सम्मति करके बृहस्पतिके मतको प्राप्त होकर ॥ २४ ॥ हे राजन् ! भूत और वर्तमानकालमें वज्रनाभके राज्यके चार भाग करते हुए. जिसमें चौथा भाग तो जयंतके पुत्र विजयको दिया ॥ २५ ॥

और चौथा भाग रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नको दिया; और हे जनेश्वर ! चौथा भाग चंद्रप्रभको दिया ॥ २६ ॥ पश्चात् कुछेक अधिक चार करोड ग्रामोंसे व्याप्त वज्रपुरके समान शाखापुरसहस्रोंको प्रसन्न हुए इन्द्र और केशव चार भाग करने लगे ॥ २७ ॥ हे शूरवीर ! कंबल मृगचर्म और वस्त्र और अनेक प्रकारके रत्न इन सबोंके चार भाग करके॥२८॥तिसके उपरान्त वह शूरवीर इन्द्रकी आज्ञासे अभिषिक्त कर दिये, देवदुन्दुभिके बाजोंसे और गंगाजीके जलसे ॥ २९ ॥ आप बुद्धिमान् केशवने और इन्द्रने ये ऋषिवंशमें उत्पन्न हुए महात्मा माधवनंदन राजा बना

प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च ॥ चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥ २६ ॥ कोटचश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशाम्पते ॥ शाखापुरसहस्रं च स्फीतं वज्रपुरोपमम् ॥ चतुर्द्धा चक्रतुस्तत्र संहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥ २७ ॥ कम्बलाजिनवासांसि रत्नानि विविधानि च ॥ चतुर्द्धा चक्रतुर्वीरौ वीरवासवकेशवौ ॥२८॥ ततोऽभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वासवाज्ञया ॥ देवदुन्दुभिवाद्येन नृप विष्णुपदीजलैः ॥ २९ ॥ स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता ॥ ऋषिवंशे महात्मानः शक्रमाधवनन्दनाः॥३०॥ विजयस्य प्रसिद्धैव गतिर्वियति धीमतः ॥ मातृजेन गुणेनापि माधवानां महात्मनाम् ॥ ३१ ॥ अभिषिच्य जयन्तं तु वासवो भगवान्ब्रवीत् ॥ त्वयैते वीर संरक्ष्या राजानः समितिंजयाः ॥३२॥ मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ॥अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया ॥ ३३ ॥ गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति ॥ त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम् ॥ ३४ ॥ दिशागजसुतान्नागान्हयांश्चोच्चैःश्रवोन्वयान् ॥ इच्छयैषां प्रयच्छस्व रथांस्त्वष्टृकृतानपि ॥ ३५ ॥

दिये ॥ ३० ॥ और महात्मा माधवोंमें मातृजगुणसे बुद्धिमान् विजयकी गति तो आकाशमें प्रसिद्ध की ॥ ३१ ॥ भगवान् और इन्द्र जयंतका अभिषेक कराकर कहने लगे कि; हे वीर ! ये इन राजोंकी तुम रक्षा करना ॥३२॥ मेरे वंशके करनेवाला एक और केशववंशक करनेवाले तीन मेरी आज्ञासे तुम सम्पूर्ण भूतोंसे अवध्य होगे ॥३३॥और स्वर्गमें तुम्हारा जाना आना सिद्ध होगा, और आकाशमें और भैमाभिरक्षित सुन्दर द्वारकामें जाना आना श्रेष्ठ रहेगा ॥३४॥ और दिशा गज हस्तियोंके बच्चोंको और उच्चैःश्रवा अश्वोंको और त्वष्टृकृत रथोंको दानकर ॥ ३५ ॥

सांब और गदको ऐरावतके पुत्र शत्रुंजय और रिपुंजयको दे दोनोंको कहा तुम आकाशमार्गसे ॥ ३६॥ भैमरक्षित द्वारकाको जाओ; और भैमनंदन पुत्रोंको देखनेको यथेष्ट आओ ॥ ३७ ॥ तब देवताओंके राजा भगवान् इन्द्र आज्ञा देकर स्वर्गमें गये और केशव भगवान् द्वारकामें गये ॥ ३८ ॥ पश्चात् छः महीनापर्यंत गद और प्रद्युम्न और सांब ये तीनों वहां रहे; और जब राज्य जम गया तब ये महाबल द्वारकाको आगये ॥ ३९ ॥ हे देवताओंके समान जनमेजय! अबभी वे राजा उत्तरमें सुमेरुके पास स्थित हैं और जितने जगत् रहेगा इतने स्थित रहेंगे ॥ ४० ॥ हे विभो! मूसलयुद्ध हो चुक-

गजावैरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ ॥ प्रयच्छाकाशगौ वीरौ साम्बस्य च गदस्य च ॥ ३६ ॥ आकाशेन पुरीं यातुं द्वारकां भैमरक्षिताम् ॥ आयातौ च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ ॥ ३७ ॥ इति संदिश्य भगवान्देवराजः पुरंदरः ॥ जगाम भगवान्स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥ ३८ ॥ षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च ॥ साम्बश्च द्वारकां याता रूढे राज्ये महाबलाः ॥ ३९ ॥ अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ॥ तिष्ठन्ति च जगद्यावत्स्थास्यन्त्यमरसंनिभ ॥ ४० ॥ निवृत्ते मौशले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु ॥ गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो ॥ ४१ ॥ ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः ॥ प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर ॥ ४२ ॥ प्रद्युम्नोत्तरमेतत्ते नृदेव कथितं मया ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुनाशनमेव च ॥ ४३ ॥ पुत्रपौत्रा विवर्द्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः ॥ यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

नेपर और सम्पूर्ण यादवोंके स्वर्ग चले जानेपर गद प्रद्युम्न और सांब ये तीनों वज्रपुरको गये ॥ ४१ ॥ हे जनमेजय! पीछे तहां वास कर फिर स्वर्गमें प्राप्त करनेवाले शुभकर्मोंसे लोककर्ता कृष्णचंद्रके प्रसादसे स्वर्गमें जांयगे ॥ ४२ ॥ हे नृदेव! यह प्रद्युम्नोत्तर मैंने तेरे आगे कहा है; यह धन्य और यश आयुको बढाता है शत्रुओंका नाश करता है ॥ ४३ ॥ पुत्र पौत्र आरोग्य धन और संपत् बढाता है विपुल यशको प्राप्त करता है; जैसे व्यासजीके वचन होते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहा० खि० हरि० विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधो नाम सप्तनवतितमोध्यायः ॥ ९७ ॥

वैशंपायन बोले; हे राजन् ! जन्मेजय ! इसके उपरान्त गरुडपर स्थित हुए कृष्णचंद्र चारों तरफसे प्रतिनादित और देवस्थानोंमें प्रकाशित द्वारकाको देखने लगे ॥१॥ और तैसेही मणिपर्वतके यन्त्र और क्रीडागृह और उद्यान वन मुख्य बलभी और आंगणकोभी देखने लगे ॥ २ ॥ और देवकीके पुत्र कृष्णचंद्र जब पुरीमें प्राप्त हुए तब देवराज इन्द्र विश्वकर्माको बुलाकर यह कहने लगा॥३॥कि हे शिल्पियोंमें श्रेष्ठ ! जो तू मेरे प्यारकी इच्छा करता है तौ कृष्णचंद्रके प्यारके निमित्त फिरभी मनोहर ॥ ४ ॥ सैंकडों उद्यानोंसे युक्त और स्वर्गके समान द्वारकापुरी रचो; हे विबुधश्रेष्ठ ! मेरी

वैशम्पायन उवाच ॥ ददर्शाथ पुरीं कृष्णो द्वारकां गरुडे स्थितः ॥ देवसद्मप्रतीकाशां समन्तात्प्रतिनादिताम् ॥१॥ मणिपर्वत-यन्त्राणि तथा क्रीडागृहाणि च ॥ उद्यानवनमुख्यानि वलभीचत्वराणि च ॥ २ ॥ संप्राप्ते तु तदा कृष्णे पुरीं देवकिनन्दने ॥ विश्वकर्माणमाहूय देवराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥ प्रियमिच्छसि चेत्कर्तुं मह्यं शिल्पमतां वर ॥ कृष्णप्रियार्थं भूयस्त्वं प्रकुरुष्व मनोहराम् ॥ ४ ॥ उद्यानशतसंबाधां द्वारकां स्वर्गसंमिताम् ॥ कुरुष्व विबुधश्रेष्ठ यथा मम पुरी तथा ॥ ५ ॥ यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु रत्नभूतं प्रपश्यसि ॥ तेन संयुज्यतां क्षिप्रं पुरी द्वारवती त्वया ॥६॥ कृष्णो हि सुरकार्येषु सर्वेषु सततोत्थितः ॥ सङ्ग्रामान्घोररूपांश्च विगाहति महाबलः॥तामिन्द्रवचनाद्गत्वा विश्वकर्मा पुरीं ततः ॥७॥ अलंचक्रे समन्ताद्वै यथेन्द्रस्यामरावती ॥ तां ददर्श दशार्हाणामीश्वरः पक्षिवाहनः ॥ विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरभिप्रायैरलंकृताम् ॥८॥ तां तदा द्वारकां दृष्ट्वा प्रभुर्नारायणो विभुः ॥ हृष्टः सर्वार्थसम्पन्नः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥९॥सोऽपश्यद्वृक्षखण्डांश्च रम्यान्दृष्टिमनोहरान्॥द्वारकां प्रति दाशार्हश्चित्रितान् विश्वकर्मणा॥१०॥

पुरीकेसी सुन्दर रचो ॥ ५ ॥ हे विश्वकर्मन् ! त्रिलोकमें जो रत्नरूप वस्तु हैं सो सम्पूर्ण शीघ्र द्वारवतीमें योजन करनी उचित है ॥ ६ ॥ पश्चात् कृष्णचंद्र सम्पूर्ण सुरकार्योंमें स्थित हुए; घोररूप संग्रामोंको स्थित होते हुए और इन्द्रके वचनसे विश्वकर्मा वहां जाकर चारों तरफसे ऐसी सुन्दर द्वारका रचते हुए कि जिस प्रकार इन्द्रकी पुरी अमरावती ॥७॥ फिर गरुडवाहन कृष्णचंद्र विश्वकर्माके दिव्य अभिप्रायोंकरके अलंकृत तिस पुरीको देखने लगे॥ ८ ॥ फिर प्रभु नारायण तिस द्वारकाको देखकर सर्वार्थसम्पन्न और प्रसन्न हुए प्रवेश होनेको मन करते हुए ॥९॥ तब वे विश्वकर्माके रचे हुए

सृष्टिको मनोहर वृक्षखंडोंको देखने लगे॥१०॥और कमलोंके समूह और हंससेवित जलसे गंगासिंधुके समानपरिखासे युक्तपुरीको देखने लगे॥११॥ और सुवर्ण और चांदीके प्राकारसेवेष्टित देखते हुए और अट्टालकाओंपर ऐसीशोभा होती हुई जैसे मेघोंसे आकाशकी॥१२॥और चैत्ररथ और नंदन-केसे बागोंसेद्वारका ऐसे शोभित हुई कि जिस प्रकार मेघोंसे स्वर्ग ॥ १३ ॥ और पूर्वदिशामें मणिकांचन तोरणवाला और रमणीक सानु और गुफा-ओंवाला रैवतक शैल शोभाको प्राप्त होता हुआ॥१४॥और द्वारकाके दक्षिण दिशामें लताओंसे वेष्टित पंचवर्ण शोभादेता हुआ;और पश्चिम दिशामें

पद्मखण्डाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः ॥ गङ्गासिन्धुप्रकाशाभिः परिखाभिर्वृतां पुरीम् ॥ ११ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन राजता ॥ चयमूर्ध्नि निविष्टेन द्यां यथैवाभ्रमालया ॥ १२ ॥ काननैर्नन्दनप्रख्यैस्तथा चैत्ररथोपमैः बभौ चारुपरिक्षिप्ता द्वारका द्यौरिवाम्बुदैः ॥१३॥ बभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः ॥ पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान्मणिकाञ्चनतोरणः ॥१४॥ दक्षिणस्यां लताविष्टः पञ्चवर्णो विराजते ॥ इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमायां तथा क्षयः ॥ १५ ॥ उत्तरां दिशमत्यर्थं विभूषयति वेणुमान् ॥ मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थिवर्षभ ॥१६॥ चित्रकं पञ्चवर्णं च पाञ्चजन्यं वनं महत् ॥ सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति॥१७॥ लतावेष्टितपर्यन्तं मेरुप्रभवनं महत् ॥ भाति भानुवनं चैव पुष्पकं च महद्वनम् ॥१८॥ अक्षकैर्बीजकैश्चैव मन्दारैश्चोपशोभितम् ॥ शतावर्तवनं चैव करवीराकरं तथा ॥१९॥ भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च वनं महत् ॥ रमणं भावनं चैवं वेणुमद्वै समन्ततः ॥२०॥ वैडूर्यपत्रैर्जलजैस्तदा मन्दाकिनी नदी ॥ भाति पुष्करणी रम्या पूर्वस्यां दिशि भारत ॥ २१ ॥

इन्द्रकेतुकीसी शोभावाला क्षय शोभाको प्राप्त होने लगा॥१५॥हे राजन्!उत्तर दिशामें मंदराचल पर्वतके समान वेणुमान श्वेतवर्ण॥१६॥और रैवतके पति चित्रक पंचवर्ण पांचजन्य सर्वर्तुक यह वनशोभाको प्राप्त हो गये ॥१७॥ और लताओंसे वेष्टित मेरुप्रभवन शोभाको प्राप्त हो गया; और भानुवन और पुष्पक महावन शोभाको प्राप्त हो गये ॥१८॥ अक्षक बीजक मंदारसे शतावर्त नाम भूषित हो गया ॥१९॥ उसी प्रकार चारों तरफको चैत्ररथ और नंदनवन और रमणभवन वेणुमद यह शोभाको प्राप्त हो गये॥२०॥हे भारत!वैदूर्यकेसे पत्रोंवाले कमलोंकरके मंदाकिनी नदी पूर्वदिशामें शोभाको

प्राप्त होती हुई॥२१॥ और विश्वकर्मासे प्रेरे हुए देवगंधर्वोंकरके पर्वतोंकी सानु भूषित होती हुई॥२२॥और महानदी पचास महामुखोंकरके चारों ओर भिगोती हुई द्वारकामें प्रवेश करती हुई॥२३॥और अप्रमेय बहुत ऊंची और अगाध खाईसे युक्त और श्रेष्ठ प्राकारसे युक्त सुधापांडुरसेयुक्त ॥२४॥ तीक्ष्ण यंत्र शतघ्नीसे युक्त हेमके जालोंसे भूषित,महाचक्र आयसोंसे भूषित द्वारकापुरीको भगवान् देखने लगे॥२५॥और आठ हजार रथ और छोटे घूंघुरुवोंवाले नर्तक इनसे द्वारका भूषित हो गई; और ऊंची २ पताकाओंसे ऐसी शोभा हुई जिस प्रकार देवपुरीकी शोभा हो ॥ २६ ॥ और

सानवो भूषितास्तत्र केशवस्य प्रियैषिभिः ॥ बहुभिर्देवगन्धर्वैश्चोदितैर्विश्वकर्मणा ॥२२॥ महानदी द्वारवती पञ्चाशद्भिर्महामुखैः ॥ प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्तत ॥ २३ ॥ अप्रमेयां महोत्सेधामगाधपरिखायुताम् ॥ प्राकारवरसम्पन्नां सुधापाण्डुरलेपनाम् ॥२४॥ तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषिताम् ॥ आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥ २५ ॥ अष्टौ रथसहस्राणि नगरे किङ्किणीकिनाम् ॥ समुच्छ्रितपताकानि यथा देवपुरे तथा ॥२६॥ अष्टयोजनविस्तीर्णामचलां द्वादशायताम् ॥ द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥२७॥ अष्टमार्गमहारथ्यां महाषोडशचत्वराम् ॥ एकमार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसा कृताम् ॥२८॥ स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येरन्किमु वृष्णिमहारथाः ॥ व्यूहानामुत्तमा मार्गाः सप्त चैव महापथाः ॥ २९ ॥ तत्र वै विहिताः साक्षाद्विविधा विश्वकर्मणा ॥ तस्मिन्पुरवरश्रेष्ठे दाशार्हाणां यशस्विनाम्॥३०॥ वेश्मानि जहृषे दृष्ट्वा ततो देवकिनन्दनः ॥ काञ्चनैर्मणिसोपानैरुपेतानि नृहर्षणैः ॥ ३१ ॥ भीमघोषमहाघोषैः प्रासादवरचत्वरैः ॥ समुच्छ्रितपताकानि पारिप्लववनानि च ॥ ३२ ॥

आठ योजन विस्तृत,अचल और बारह योजन लंबी और दुगुनी उपनिवेशवाली द्वारकापुरीको देखने लगे॥२७॥अष्टमार्गवाली और महारथ्या और महाषोडश चौराहोंवाली और एकमार्ग परिक्षिप्त और साक्षात् उशनाकी रची हुई द्वारकाको देखने लगे॥२८॥ जिस द्वारकामें स्त्रीभी युद्ध करनेवाली हैं, और यादवोंकी तो क्या बात है; और तिस द्वारकामें सात महामार्ग सेनाके निवासके थे ॥ २९ ॥ तिसी श्रेष्ठ पुरमें विश्वकर्माने अनेक प्रकारके महात्मा यादवोंके स्थान बनाये ॥३०॥ और कांचनमणि सोपानोंकरके युक्त तिन भवनोंको देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए ॥३१॥ और भीम

घोष और प्रासादवर चौराहोंसे युक्त ऊंची २ पताकाओंसे प्रकाश करती हुई॥३२॥अग्रभागमें कंचन लगे महलोंके शिखरोंसे रमणीय घरोंकी शोभा थी वे पर्वत मेरुकूटके समान विदित होते थे ॥३३॥ और सफेद २ शृंगोंकरके और सुवर्णके कलशोंकरके पुरीकी ऐसी शोभा होती हुई जैसे रमणीक विचित्र शिखरोंसे पर्वतकी॥३४॥और पुष्पवृष्टिके समान पांच प्रकारके सुवर्णके पुष्पोंसे और मेघके समान गूंजनेवाले नानारूपवाले पर्वतोंसे॥३५॥ और विश्वकर्माके रचे हुए दावाग्निके समान प्रकाशवाले चंद्रमाकेसी कांतिवाले आकाशको छूते हुए भवनोंसे ऐसी शोभा होती हुई ॥३६॥और श्रेष्ठ

काञ्चनाग्राणि भास्वन्ति प्रासादशिखराणि च ॥ गृहाणि रमणीयानि मेरुकूटनिभानि च ॥३३॥ पाण्डुपाण्डुरशृङ्गैश्च शातकुम्भपरिष्कृतैः ॥ रम्यसानुगृहैः शृङ्गैर्विचित्रैरिव पर्वतैः ॥ ३४ ॥ पञ्चवर्णैः सुवर्णैश्च पुष्पवृष्टिसमप्रभैः ॥ पर्जन्यतुल्यनिर्घोषैर्नानारूपैरिवाद्रिभिः ॥३५॥ दावाग्निज्वलितप्रख्यैर्निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥ आश्लिषद्भिरिवाकाशमतिचन्द्रार्कभास्वरैः ॥३६॥ तैर्दाशार्हैर्महाभागैर्बभासे तद्वनद्रुमैः ॥ वासुदेवेन्द्रपर्जन्यैर्गृहमेघैरलंकृता ॥ ३७ ॥ ददृशे द्वारका चारुमेघैर्द्यौरिव संवृता ॥ साक्षाद्भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा ॥३८॥ ददृशे वासुदेवस्य चतुर्योजनमायतम् ॥ तावदेव च विस्तीर्णमप्रमेयं महाधनम् ॥३९॥ प्रासादवरसंपन्नैर्युक्तं जगति पर्वतैः ॥ यच्चकार महाभागस्त्वष्टा वासवनोदितः ॥४०॥ प्रासादं चैव हेमाभं सर्वभूतमनोहरम् ॥४१॥ मेरोरिव गिरेः शृङ्गमुच्छ्रितं काञ्चनं महत् ॥ रुक्मिण्याः प्रवरं वासं विहितं विश्वकर्मणा ॥४२॥

वन द्रुमोंसे तथा महाभाग वासुदेव और इन्द्रके गृह मेघोंकरके द्वारका अत्यन्त भूषित हुई ॥ ३७ ॥ इस प्रकार ऐसी भूषित सुन्दर द्वारकाको देखने लगे कि जैसे मेघोंसे व्याप्त आकाश और भगवान् वासुदेवका मंदिर॥३८॥चार योजन लंबा और चार योजन चौडा और महाधनवालाविश्वकर्माने रचा ॥ ३९ ॥ इन्द्रसे प्रेरित त्वष्टाने सुंदर महलोंसे और पर्वतोंसे भूषित जो मंदिर रचे ॥ ४० ॥ जो सम्पूर्ण भूतोंके मनको हरनेवाले; सुवर्णके मंदिर ऊंचे मेरुशृंगके समान शोभित हुए॥४१॥और सम्पूर्ण प्रकारके प्रासादोंसे भूषित पश्चात् रुक्मिणीका श्रेष्ठवास विश्वकर्माने रचा॥४२॥

पश्चात् सुन्दर सत्यभामाका मंदिर रचा जो विचित्र मणिसोपानसे युक्त श्वेतवर्ण था जैसे भोगियोंका घर हो ॥४३॥ विमल आकाशकेसी पताकाओंसे अलंकृत और सभास्थानोंसे भूषित प्रतिक्षण नया रूप धरनेवाला चारों दिशामें ध्वजारूप॥४४॥मुख्य प्रासादवाला जांबवतीका घर रचा और यह प्रासाद तिन सम्पूर्णोंको अपनी कांतिसे तिरस्कार करने लगा मध्यमें इस प्रकार प्रकाश करने लगा कि जैसे उदय होता हुआ सूर्य ॥ ४५ ॥उदय होते हुए सूर्यके समान उनके बीचमें विश्वकर्माका रचा हुआ और कैलासकी शिखरके समान ॥ ४६ ॥ सुवर्ण और अग्निकेसा दीप्तिमान प्रासाद

सत्यभामा पुनर्वेश्म यदावसत पाण्डुरम् ॥ विचित्रमणिसोपानं तद्विदुर्भोगषन्निति ॥४३॥ विमलादित्यवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ व्यक्तसञ्जवनोद्देशो यश्चतुर्दिङ्महाध्वजः ॥ ४४ ॥ सच प्रासादमुख्योऽथ जाम्बवत्या विभूषितः ॥ प्रभयाभ्यभवत्सर्वांस्तानन्यान् भास्करो यथा ॥४५॥ उद्यद्भास्करवर्णाभस्तयोरन्तरमाश्रितः ॥ विश्वकर्मकृतो दिव्यः कैलासशिखरोपमः ॥ ४६ ॥ जाम्बूनद इवादीप्तः प्रदीप्तज्वलनो यथा ॥ सागरप्रतिमोत्तिष्ठन्मेरुरित्यभिविश्रुतः ॥ ४७॥ तस्मिन्गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी ॥ गान्धारी भरतश्रेष्ठ केशवेन निवेशिता ॥ ४८ ॥ पद्मकूल इति ख्यातं पद्मवर्णं महाप्रभम् ॥ सुभीमाया महाकूटं वासं सुरुचिरप्रभम् ॥ ४९ ॥ सूर्यप्रभस्तु प्रासादः सर्वकामगुणैर्युतः ॥ लक्ष्मणाया नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टः शार्ङ्गधन्वना ॥५०॥ वैडूर्यमणिवर्णाभः प्रासादो हरितप्रभः ॥ यं विदुः सर्वभूतानि परमित्येव भारत ॥५१॥ वासं तं मित्रविन्दाया देवर्षिगणपूजितम् ॥ महिष्या वासुदेवस्य भूषणं तेषु वेश्मसु ॥ ५२ ॥

अत्यन्त शोभा देता हुआ जो सागरके समान मेरुनामसे विख्यात था ॥४७॥ वह प्रासाद नाग्नजितीका रचा तिसमें भगवानकी गांधारराजकी सुता कुलशालिनी गांधारी नाग्नजिती प्रवेश कर गई॥४८॥और कमलकेसी कांतिवाला प्रभावसे युक्त रहनेके योग्य पद्मकूल नाम प्रासाद भीमाके निमित्त रचा ॥४९॥ और सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त सूर्यप्रभ नाम प्रासाद भगवान्‌ने लक्ष्मणाका रचा॥५०॥और वैडूर्यकेसी कांतिवाला हरितप्रासाद मित्रविंदाका बनवाते हुए तिन सम्पूर्ण प्रासादोंमें श्रेष्ठ प्रासाद विश्वकर्माने रचा ॥ ५१ ॥ जो इस देवता ऋषि जनोंसे पूजित था उस स्थानमें मित्रविंदाको

वसाया; उन सब घरके भूषणरूप घरमें वासुदेवकी महिषी रही ॥ ५२ ॥ अत्यन्त रमणीक पर्वतके समान अधिष्ठित मुख्य महल जो विश्वकर्माने बनाया ॥ ५३ ॥ वह सुवार्ता महिषीका केतुमान नाम भवन रचा जिसकी सब देवता बढाई करते थे ॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण रत्नोंसे जडित और एक योजन विस्तारवाला मुख्य भवन विश्वकर्माने बनाया॥५५॥वह विरजानाम लक्ष्मीसम्पन्न महल था जहां भगवान् देवता ब्राह्मणादिका उपस्थान करते थे वह महात्मा केशवका भवन महाशोभित था ॥५६॥ उसमें सुवर्णके डंडे लगी पताका शोभित थीं; उस स्थानमें भगवान्‌के घरमें जानेका मार्ग ध्वजा-

यस्तु प्रासादमुख्योऽत्र विहितो विश्वकर्मणा ॥ अतीव रम्यरम्योऽसौ धिष्ठितः पर्वतो यथा ॥ ५३ ॥ सुवार्ताया निवासं तं प्रशस्तं सर्वदैवतैः ॥ महिष्या वासुदेवस्य केतुमानिति विश्रुतः ॥ ५४ ॥ तत्र प्रासादमुख्यो वै यं त्वष्टा विदधे स्वयम् ॥ योजनायत-विष्कम्भः सर्वरत्नमयः शुभः ॥५५॥ स श्रीमान्विरजा नाम व्यराजत्तत्र सुप्रभः ॥ उपस्थानगृहं यत्र केशवस्य महात्मनः ॥५६॥ तस्मिन्सुविहिताः सर्वे रुक्मदण्डाः पताकिनः ॥ सदने वासुदेवस्य मार्गसञ्जवनध्वजाः ॥ ५७ ॥ रत्नजालानि दिव्यानि तत्रैव च निवेशिताः ॥ आहृत्य यदुसिंहेन वैजयन्तोऽचलो महान् ॥ ५८ ॥ हंसकूटस्य यच्छृङ्गमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति ॥ षष्टितालसमुत्सेध-मर्धयोजनमायतम् ॥ ५९ ॥ सकिंनरमहानागं तदप्यमिततेजसा ॥ पश्यतां सर्वभूतानामानीतं लोकविश्रुतम् ॥ ६० ॥ आदित्य-पथगं यत्तु मेरोः शिखरमुत्तमम् ॥ पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः ॥ ६१ ॥ जाम्बूनदमयं दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्- ॥ तदप्युत्पाट्य कृष्णार्थमानीतं विश्वकर्मणा ॥ ६२ ॥

ओंसे जाना जाता था ॥ ५७ ॥ अनेक प्रकारके रत्नसमूह वहां धरे गये, उन यदुश्रेष्ठने इन्द्रका महान वैजयन्त मंडल ॥ ५८ ॥ प्रद्युम्न सरके प्रति हंसकूटका शृंग साठ ताल ऊंचा और आधे योजन विस्तृत ॥ ५९ ॥ किन्नर महानागोंसे युक्त लोकविख्यात पर्वत सम्पूर्ण भूतोंके देखते हुए तहां प्राप्त कर दिया ॥६०॥ और जो आदित्यमार्गमें स्थित उत्तम कमलोंसे व्याप्त और सुवर्णमय विमानोंसे व्याप्त ॥६१॥ सुवर्णमय तीनों लोकोंमें विख्यात मेरुशिखर है वहभी तहां प्राप्त कर दिया ॥६२॥

जो सब प्रकारसे विराजमान अनेक औषधियोंसे युक्त है वहभी विश्वकर्मानेइन्द्रके वचनसे लाया॥६३॥और तहां पारिजात वृक्ष आप भगवान्‌लाये॥६४॥ और जब भगवान् कल्पवृक्षको लेकर चले तब रक्षा करनेवाले देवताओंके साथ अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ६५ ॥ और वासुदेवके निमित्त सैंकडों कमलोंसे युक्त विमान और रत्नपुष्पफलोंवाले वृक्ष रचे ॥ ६६ ॥ और कमलोंके समूह और जलोंसे युक्त और रत्नसौगंधिक कमलोंवाली और मणिहेमप्लवोंसे व्याप्त नदी और सर रचे॥६७॥उन नदियोंके किनारे अनेक प्रकारकी शाला और ताल और कदंब और रौहिण वृक्ष शोभाको प्राप्त होते थे ॥ ६८ ॥

भ्राजमानमतीवाग्र्यं सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ तदिन्द्रवचनात्त्वष्टा कार्यहेतोः समानयत् ॥ ६३ ॥ पारिजातश्च तत्रैव केशवेनाहृतः स्वयम् ॥ ६४ ॥ नीयमाने तु तत्रासीद्युद्धमद्भुतकर्मणः ॥ कृष्णस्य येऽभ्यरक्षंतु देवाः पादपमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ पुण्डरीकशतैर्तैर्युष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः ॥ विहिता वासुदेवार्थं रत्नपुष्पफलद्रुमाः ॥ ६६ ॥ पद्मखण्डजलोपेता रत्नसौगन्धिकोत्पलाः ॥ मणिहेमप्लुवाकीर्णाः पुष्करिण्यः सरांसि च ॥ ६७ ॥ तासां परमकूलानि शोभयन्ति महाद्रुमाः ॥ शलास्तालाः कदम्बाश्च शतशाखाश्च रौहिणाः ॥ ६८ ॥ ये च हैमवतो वृक्षा ये च मेरुरुहास्तथा ॥ आहृत्य यदुसिंहार्थं विहिता विश्वकर्मणा ॥ ६९ ॥ रक्तपीतारुणश्यामाः श्वेतपुष्पाश्च पादपाः ॥ सर्वर्तुफलसम्पन्नास्तेषु काननसन्धिषु ॥७०॥ समकूलजलोपेताः शान्तशर्करवालुकाः ॥ तस्मिन्पुरवरे नद्यःप्रसन्नसलिला ह्रदाः ॥७१॥ पुष्पाकुलजलोपेता नानाद्रुमलताकुलाः ॥ अपराश्चाभवन्नद्यो हेमशर्करवालुकाः ॥७२॥ मत्तबर्हिणसङ्घैश्च कोकिलैश्च सदामदैः ॥ बभूवुः परमोपेतास्तस्यां पुर्यां च पादपाः ॥ ७३ ॥

जो हिमवानमें वृक्ष थे और जो सुमेरुमें थे सम्पूर्ण भगवान्‌के निमित्त तहां विश्वकर्माने लाकर रचे॥६९॥ और तिन वनोंकी संधियोंमें सब ऋतुवाले लाल और पीले श्याम और श्वेतपुष्पोंवाले वृक्ष तहां रच दिये ॥ ७० ॥ तिस श्रेष्ठ पुरमें किनारेके जलसे युक्त शांत शर्करा वालुकोंवाली और प्रसन्न जलोंवाली नदीरची ॥ ७१ ॥ कोई फूलोंसे जलवाली अनेक द्रुम लताओंसे व्याप्त सुवणकी शर्करावाली दूसरी नदी हुई ॥ ७२ ॥ और मत्त मयूर

और सदा मदसे मत्त कोकिल शब्द करते हुए उस पुरीके वृक्ष अधिक शोभित हुए ॥७३॥ और वहां गोपुरीमें गौऔर महिषोंका तथा हाथियोंका निवास बना दिया; और उस रमणीक पुरीमें वराह मृग पक्षियोंका निवास बनादिया ॥ ७४ ॥ और उस पुरीका सौ हाथ ऊंचाविश्वकर्माने सुवर्णका दुर्ग रच दिया ॥ ७५ ॥ और वह दुर्ग अत्यन्त सौम्य पर्वतके समान वेष्टित होने लगा और वहां विश्वकर्माने मुख्य२पर्वत और नदी और सरोवर और वन उपवन रच दिये ॥ ७६ ॥ इति श्रीम० भा० खिलेषुहरि० विष्णुप० द्वारकाविशेषनिर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे !

तत्रैव गजयूथानि पुरे गोमहिषास्तथा ॥ निवासश्च कृतस्तत्र वराहमृगपक्षिभिः ॥७४॥ पुर्यां तस्यां तु रथ्यायां प्राकारो वै हिरण्मयः ॥ व्यक्तः किष्कुशतोत्सेधो विहितो विश्वकर्मणा ॥ ७५ ॥ अतीव रम्यः सोऽथासीद्वेष्टितः पर्वतो यथा ॥ ते च ते च महाशैलाः सरितश्च सरांसि च ॥ परिक्षिप्तानि भौमेन वनान्युपवनानि च ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाविशेषनिर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमालोकयानः स द्वारकां वृक्षभेक्षणः ॥ अपश्यत्स्वगृहं कृष्णः प्रासादशतशोभितम् ॥ १ ॥ मणिस्तम्भसहस्राणामयुतैर्विवृतं शतैः ॥ तोरणैर्ज्वलनप्रख्यैर्मणिविद्रुमराजतैः ॥ २ ॥ तत्र तत्र प्रभासद्भिश्चित्रकाञ्चनवेदिकैः ॥ प्रासादस्तत्र सुमहान्कृष्णोपस्थानिकोऽभवत् ॥ ३ ॥ स्फाटिकस्तम्भविवृतो विस्तीर्णः सर्वकाञ्चनः ॥ पद्माकुलजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः ॥ ४ ॥

राजन् जन्मेजय ! इस प्रकार द्वारकाको देखते हुए भगवान् पीछे सैंकडों प्रासादोंसे भूषित अपने गृहको देखने लगे ॥ १ ॥ सहस्रों मणियोंके स्तंभसे स्पष्ट रत्नकांचनोंवाली वेदियोंसे भूषित अग्निके समान प्रकाशमान तोरण और मणिविद्रुमयुक्त भगवान्का प्रासाद अत्यन्त शोभा पाता था ॥ २ ॥ प्रकाशमान होती हुई सुवर्णकी वेदीसे वह श्रीकृष्णका मंदिर महासुंदर लगता था ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके स्तंभोंसे युक्त विस्तारयुक्त सब कंचनका बना हुआ पद्मयुक्त जल और लालकमलकी सुगंधिसे युक्त ॥ ४ ॥

और मणि हेमोंके समान और रत्नसोपानोंसे भूषित मत्त मयूरोंसे सेवित कोकिलोंसे सेवित॥५॥खिले हुए कमलोंवाली वापी अत्यन्त शोभा देती हुई; और विश्वकर्माने तिस भवनके चारों ओर पत्थरका प्राकार रच दिया॥६॥और खाई चारों तरफको रच दी ऐसा उत्तम भवन विश्वकर्माने श्रीकृष्ण-चंद्रका रचा ॥ ७ ॥ और आधा योजन चारों तरफसे महेन्द्रके भवनके समान रचा, वहां स्थानके ऊपर भगवान्‌ने गरुडपर स्थित होकर ॥ ८ ॥ शत्रुओंके रोमोंको उठानेवाला शंख बजाया;पीछे उस शंखके शब्दसे समुद्र तो क्षोभको प्राप्त हुआ और सम्पूर्ण आकाश प्रतिशब्द करने लगा; यह बडा

मणिहेमनिभाश्चित्रा रत्नसोपानभूषिताः ॥ मत्तबर्हिणजुष्टाश्च कोकिलैश्च सदामदैः ॥५॥ बभूवुः परमोपेता वाप्यश्च विकचोत्पलाः ॥ विश्वकर्मकृतः शैलः प्राकारस्तस्य वेश्मनः ॥ ६ ॥ व्यक्तकिष्कुशतोत्सेधः परिखापरिवेष्टितः ॥ तद्गृहं वृष्णिसिंहस्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ७ ॥ महेन्द्रसदृशं वेश्म समंतादर्धयोजनम् ॥ तत्रस्थं पाण्डुरं शौरिर्मूर्ध्नि तिष्ठद्गरुत्मतः ॥ ८ ॥ प्रीतः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विषतां रोमहर्षणम् ॥ तस्य शङ्खस्य शब्देन सागरश्चुक्षुभे भृशम् ॥ ररास च नभः कृत्स्नं तच्चित्रमभवत्तदा ॥९॥ पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं संश्रुत्य कुकुरान्धकाः ॥ विशोकाः समपद्यन्त गरुडस्य च दर्शनात् ॥ १० ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्योपरि स्थितम् ॥ दृष्ट्वा जहृषिरे पौरा भास्करोपमतेजसम् ॥ ११ ॥ ततस्तूर्यप्रणादश्च भेरीणां च महास्वनाः ॥ जज्ञिरे सिंहनादाश्च सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ १२ ॥ ततस्ते सर्वदाशार्हाः सर्वे च कुकुरान्धकाः ॥ प्रीयमाणाः समाजग्मुरालोक्य मधुसूदनम् ॥१३॥ वासुदेवं पुरस्कृत्य शङ्खतूर्यरवैः सह ॥ उग्रसेनो ययौ राजा वसुदेवनिवेशनम् ॥ १४ ॥

अद्भुत हुआ ॥ ९ ॥ कुकुर और अंधक पांचजन्यके शब्दको सुनकर और गरुडके दर्शनसे विशोक हो तहां प्राप्त हुए ॥१०॥ शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुडके ऊपर स्थित सूर्यके समान तेजवाले भगवान्‌को देखकर सम्पूर्ण पुरवासी प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ इसके उपरांत तूर्य प्रणाद और भेरीका महान् शब्द हुआ और संपूर्ण पुरवासियोंने सिंहनाद किया ॥१२॥ पीछे सम्पूर्ण दाशार्ह और संपूर्ण कुकुर और संपूर्ण अंधक प्रसन्न हुए मधुसूदनको देखकर आते हुए ॥१३॥ पश्चात् उग्रसेन वासुदेव भगवान्‌को आगे करके शंख तूर्य बजाते हुए वासुदेवके स्थानको गये ॥ १४ ॥

वहां अपने स्थानोंमें आनंदिनी देवकी रोहिणी, यशोदा और आहुककी स्त्री विचरती हुई ॥१५॥ तिसके उपरांत गरुडसहित भगवान् अपने स्थानमें गये; और इन्द्रादिक अनुचरवाले हरि भगवान् यथोद्देशमें विचरने लगे ॥१६॥फिर यादवोंमें श्रेष्ठ यदुनंदन कृष्णचन्द्र गृहद्वारपर आकर यथायोग्य यादवोंका पूजन करने लगे ॥१७॥ बलदेवजी आहुक गद अक्रूर और प्रद्युम्नसे पूजित हुए भगवान् मणिपर्वतको लेकर अपने भवनकोगये ॥१८॥ फिर रुक्मिणीका पुत्र प्रद्युम्न इन्द्रके प्यारे महाद्रुम कल्पवृक्षको भगवान्‌के गृहमें स्थित करते हुए॥१९॥फिर वह सब शूरवीर अमानुष देहबंधोंको

आनन्दिनी पर्यचरत्स्वेषु वेश्मसु देवकी ॥ रोहिणी च यशोदा च आहुकस्य च याः स्त्रियः ॥ १५ ॥ ततः कृष्णः सुपर्णेन स्वं निवेशनमभ्यगात् ॥ चचार च यथोद्देशमीश्वरानुचरो हरिः ॥१६॥ अवतीर्य गृहद्वारि कृष्ण स्तु यदुनन्दनः ॥ यथार्हं पूजयामास यादवान्यादवर्षभः ॥१७॥ रामाहुकगदाक्रूरप्रद्युम्नादिभिरर्चितः ॥ प्रविवेश गृहं शौरिरादाय मणिपर्वतम् ॥ १८ ॥ तं च शक्रस्य दयितं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ प्रवेशयामास गृहं प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥ तेऽन्योन्यं ददृशुर्वीरा देहबन्धानमानुषान् ॥ पारिजातप्रभावेन ततो मुमुदिरे जनाः ॥२०॥ तैः स्तूयमानो गोविन्दः प्रहृष्टैर्यादवर्षभैः ॥ प्रविवेश गृहं श्रीमान्विहितं विश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ ततोऽन्तः पुरमध्ये तं सशृङ्गमणिपर्वतम् ॥ न्यवेशयदमेयात्मा वृष्णिभिः सहितोऽच्युतः ॥ २२ ॥ तं च दिव्यं द्रुमश्रेष्ठं पारिजातममित्रजित् ॥ अर्च्यमर्चितमव्यग्रमिष्टे देशे न्यवेशयत् ॥ २३ ॥ अनुज्ञाप्य ततो ज्ञातीन्केशवः परवीरहा ॥ ताः स्त्रियः पूजयामास संहृता नरकेन याः ॥ २४ ॥

देखने लगे; और पारिजातके प्रभावसे सब जन आनन्दयुक्त हुए ॥ २० ॥पीछे प्रसन्न हुए यादवमुख्योंसे स्तुति किये भगवान् विश्वकर्माके रचे हुए श्रीमान् गृहमें प्रवेशित हुए॥२१॥फिर वृष्णियोंके सहित अमेयात्मा अच्युतने शृंगसहित मणिपर्वतको अन्तःपुरमें स्थापन किया॥२२॥पश्चात् शत्रुओंको जीतनेवाले कृष्णचन्द्रने तिस द्रुमश्रेष्ठ कल्पवृक्षका पूजन करके फिर इष्टदेशमें स्थापन किया॥२३॥ पश्चात् शूरवीरोंको मारनेवाले केश-

वने अपने ज्ञातियोंको आज्ञा देकर जिन स्त्रियोंको नरकासुरने हरा था तिनका सत्कार पूजन किया॥२४॥वस्त्र आभूषण दिव्यदासी धनसंचय और चंद्रमाकी किरणोंकेसे हार महाप्रभावाली मणि ॥ २५ ॥ इनसे उन स्त्रियोंका पहले वासुदेवने पूजन किया था. देवकी रोहिणी और रेवती आहुक इन्होंनेभी पूजन किया था॥२६॥और उन स्त्रियोंके मध्यमें सौभाग्य करके सत्यभामा उत्तम होती हुई और भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी कुटुम्बकी ईश्वरी हुई॥२७॥ पीछे उनको कृष्णचन्द्र हर्म्य प्रासाद शिखर गृह और अनेक पदार्थ यथायोग्य देने लगे और बहुतसी सामग्री दी॥२८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वारकाप्रवेशनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् जन्मेजय ! फिर

वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्दासीभिर्धनसञ्चयैः हारैश्चन्द्रांशुसंकाशैर्मणिभिश्च महाप्रभैः ॥ २५ ॥ पूर्वमभ्यर्चिताश्चैव वसुदेवेन ताः स्त्रियः ॥ देवक्या सह रोहिण्या रेवत्या चाहुकेन च ॥२६॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सौभाग्येनाभवत्तदा ॥ कुटुंबस्येश्वरी त्वासीद्रुक्मिणी भीष्मकात्मजा ॥२७॥ तासां यथार्हंहर्म्याणि प्रासादशिखराणि च ॥ आदिदेश गृहान्कृष्णः पारिबर्हांश्च पुष्कलान् ॥२८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रवेशनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥ वैशंपायन उवाच ॥ ततः संपूज्य गरुडं वासुदेवोऽनुमान्य च ॥ सखिवच्चोपगृह्यैनमनुजज्ञे गृहं प्रति ॥ १ ॥ सोऽनुज्ञातो हि सत्कृत्य प्रणम्य च जनार्दनम् ॥ ऊर्ध्व-माच क्रमे पक्षी यथेष्टं गगनेचरः ॥२॥ स पक्षवातसंक्षुब्धं समुद्रं मकरालयम् ॥ कृत्वा वेगेन महता ययौ पूर्वमहोदधिम् ॥३॥ कृत्यकाले उपस्थास्य इत्युक्त्वा गरुडे गते ॥ कृष्णो ददर्श पितरं वृद्धमानकदुन्दुभिम् ॥ ४ ॥ उग्रसेनं च राजानं बलदेवं च सात्यकिम् ॥ काश्यं सान्दीपनिं चैव ब्रह्मगार्ग्यं तथैव च ॥ ५ ॥

वासुदेव भगवान्‌ने गरुडका पूजन करके और इसको मानकर मित्रके समान ग्रहणकर गृह जानेको आज्ञा दी ॥ १ ॥ फिर आज्ञा किये हुए गरुड जनार्दन भगवान्‌का सत्कार और प्रणाम कर यह पक्षी गरुड ऊपरको उछले, जैसे यथेष्ट गगनेचर ॥ २ ॥ फिर वह गरुड मकरोंके स्थानरूप समुद्रको पक्षवातसे संक्षुभित कर अत्यन्त वेगसे पूर्वमहोदधिको गये ॥ ३ ॥ गरुडके गये उपरांत पीछे कृत्यकालमें समीप प्राप्त हूंगा; ऐसे भगवान्‌से कहकर गरुडके गये उपरान्त श्रीकृष्ण वृद्ध आनकदुंदुभि पिताको देखते हुए ॥ ४ ॥ राजा उग्रसेन बलदेवजी सात्यकि

और काश्य सांदीपनी गुरु और ब्राह्मणोंमें मुख्य गार्ग्य॥५॥और अन्य वृद्ध वृष्णियोंको भोज और अंधकोंको दाशार्होंको इन सम्पूर्णोंको वीर्यसे लब्ध हुए मुख्य रत्नोंसे पूजन करने लगे ॥६॥ और ब्राह्मणद्रोही सम्पूर्ण मारकर सम्पूर्ण अंधक और वृष्णियोंकी जीत करा अक्षतशरीर मधुसूदन भगवान् रणभूमिसे निवृत्त हुए ॥ ७ ॥ इस प्रकार सुन्दर पूजित किये हुए उज्ज्वल कुंडलोंवाले चाक्रिक पुरुषने द्वारकावतीके चौराहे और गलियोंमें ऐसा घोष किया ॥८॥ विनययुक्त जनार्दनने पहले सांदीपनीको प्राप्त होकर नमस्कार किया; और फिर यादवोंके राजा आहुकको॥९॥पीछे बलदेवजीसहित

अन्यांश्च वृद्धान्वृष्णीनां तांश्च भोजान्धकांस्तथा ॥ रत्नप्रवेकैर्दाशार्हान्वीर्यैलब्धैस्तथार्चयत् ॥६॥ हता ब्रह्मद्विषः सर्वे जयन्यन्ध कवृष्णयः ॥ रणात्प्रतिनिवृत्तोऽयमक्षतो मधुसूदनः ॥७॥ इति चत्वररथ्यासु द्वारवत्यां सुपूजितः ॥ चाक्रिको घोषयामास पुरुषो मृष्टकुण्डलः ॥८॥ ततः सान्दीपनिं पूर्वमभिगम्य जनार्दनः ॥ ववन्दे वृष्णिनृपतिमाहुकं विनयान्वितः ॥९॥ तथा हि परिपूर्णा क्षमानन्दागतचेतसम् ॥ ववन्दे सह रामेण पितरं वासवानुजः ॥१०॥ उपगम्य तथा शेषान्सत्कृत्य च यथार्हतः ॥ सर्वेषां नाम जग्राह दाशार्हाणामधोक्षजः ॥ ११ ॥ ततः सर्वाणि दिव्यानि सर्वरत्नमयानि च ॥ आसनाग्र्याणि विविशुरुपेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥१२॥ ततस्तद्धनमक्षय्यं किङ्करैर्यत्समाहृतम् ॥ तत्सभामानयामासुः पुरुषाः कृष्णशासनात् ॥ १३ ॥ ततः संमानयामास दाशार्हांश्च यदूत्तमः ॥ सर्वान्दुन्दुभिशब्देन पूजयिष्यन् जनार्दनः ॥१४॥ तामासनवतीं रम्यां मणिविद्रुमतोरणाम् ॥ सभां सर्व-दशार्हास्ते विविशुः कृष्णशासनात् ॥ १५ ॥

कृष्णचंद्रने आनंदचित्तवाले परिपूर्ण नेत्रोंवाले पिताको प्रणाम किया ॥१०॥ फिर भगवान्‌ने सम्पूर्णोंको प्राप्त होकर और यथायोग्य सत्कार करके सम्पूर्ण दाशार्होंके नामको ग्रहण किया ॥ ११ ॥ फिर उपेन्द्रसे आदि लेकर सर्व रत्नमय दिव्यआसनोंपर सब बैठ गये ॥१२॥ तिसके उपरान्त जो अक्षय धन किंकरोंद्वारा प्राप्त करा था तिसको कृष्णकी आज्ञासे पुरुष सभामें लाये ॥१३॥ तिसके उपरान्त जनार्दन यदूत्तम दुंदुभिशब्द करके तिन सम्पूण दाशार्होंका पूजन करनेके निमित्त लाये ॥१४॥ फिर कृष्णचंद्रकी आज्ञासे वे सम्पूर्ण दाशार्ह मणिमूंगोंके तोरणोंवाली सभामें प्राप्त हुए॥१५॥

हे भरतर्षभ ! वह सभा पुरुषसिंह यादवोंसे चारों तरफसे व्याप्त हो गई;सम्पूर्ण अर्थ और गुणोंसे सम्पन्न हो गई, और उनसे वह सभा इस प्रकार शोभा पाने लगी कि जैसे सिंहोंसे गुफा ॥१६॥ भोजवृष्णियोंके आगे प्राप्त हुए कृष्णचंद्र उग्रसेनको आगेकरके बलदेवजीके सहित सुवर्णके आसनपर स्थित हुए ॥ १७ ॥ फिर पुरुषोत्तम भगवान् वहांस्थित होकर और यथाप्रीति यथावत् यदुश्रेष्ठोंको संबोधन करके यह वचन बोले ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सभाप्रवेशननाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ श्रीकृष्ण बोले; तुम पुण्य कीर्तिवालोंके तपोबल समाधियांसे

ततः पुरुषसिंहैर्या यदुभिः सर्वतो वृता ॥ सर्वार्थगुणसंपन्ना सा सभा भरतर्षभ ॥ शुशुभेऽभ्यधिकं शुभ्रा सिंहैर्गिरिगुहा यथा ॥१६॥ रामेण सह गोविन्दः काञ्चनं महदासनम् ॥ उग्रसेनं पुरस्कृत्य भोजवृष्णिपुरस्कृतः ॥१७॥ तत्रोपविष्टांस्तान्वीरान्यथा-प्रीतिर्यथावयः ॥ समाभाष्य यदुश्रेष्ठानुवाच पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ इति श्रीम०खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि सभाप्रवेशनं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भवतां पुण्यकीर्तीनां तपोबलसमाधिभिः ॥ अपध्यानाच्च पापात्मा भौमः स नरको हतः ॥१॥ मोक्षितं बन्धनाद्गुप्तं कन्यान्तःपुरमुत्तमम् ॥ मणिपर्वतमुत्पाटच शिखरं चैतदाहृतम्॥२॥ अयं धनौघः सुमहान्किङ्करैराहृतो मम ॥ ईशा भवन्तो द्रव्यस्य तानुक्त्वा विरराम ह॥३॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भोजवृष्ण्यन्धका वचः ॥ जहृ-षुर्हृष्टरोमाणः पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ४ ॥ ऊचुश्चैनं नृवीरास्ते कृताञ्जलिपुटास्ततः ॥ नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने ॥५॥ यत्कृत्वा दुष्करं कर्म देवैरपि दुरासदम् ॥ लालयेः स्वजनान्भोगै रत्नैश्च स्वयमर्जितैः ॥ ६ ॥

और अपध्यानसे पृथ्वीका पुत्र नरकासुर मैंने मार दिया॥१॥और गुप्त और उत्तम कन्यांतःपुरभी बंधनसे छुटा दिया,और मणिपर्वत और शिखरभी यहां प्राप्त कर दिये॥ २ ॥ यह सुन्दर धनका समूह मेरे किंकरोंने प्राप्त कर दिया सो इस द्रव्यके आपही स्वामी हैं; हे राजन् ! इस प्रकार कृष्णचंद्र कहकर चुप हुए ॥३॥ भोज वृष्णि और अंधक यह भगवान्के वचन सुनकर और अतिप्रसन्न होकर जनार्दनका पूजन करने लगे ॥४॥ वे राजा अंजलिपुटको बांधकर इस प्रकारसे कहने लगे; हे महाबाहो ! हे देवकीनंदन!तुममें यह कुछ विचित्र नहीं ॥५॥ जो कि देवताओंकोभी दुरासद दुष्कर

कर्म करके पीछे आप इकट्ठे किये रत्नभोगोंसे अपने जनोंको लाड लडाते हो ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण दाशार्होंकी स्त्री और राजा उग्रसेनकी स्त्री प्रसन्न हुई भगवान्‌को देखनेको आई ॥ ७ ॥ और देवकी सुमुखी रोहिणीभी बैठे हुए महाभुज कृष्णचंद्र और बलदेवजीको देखती हुई ॥ ८ ॥ तब रामकेशवने क्रमको त्यागकर पहले रोहिणीको प्रणाम करके पीछे देवी देवकीको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ सो अंबिका देवकी तिन कमलनेत्रवाले पुत्रोंसे शोभाको पाती हुई जैसे मित्र और वरुणसे देवमाता अदिति ॥ १० ॥ पीछे जिस कामरूपिणीको मनुष्य एका और अनंशा कहते हैं सो यशो

ततः सर्वदशार्हाणामाहुकस्य च याः स्त्रियः ॥ प्रीयमाणाः समाजग्मुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥७॥ देवकीसप्तमा देव्यो रोहिणी च शुभानना ॥ ददृशुः कृष्णमासीनं रामं चैव महाभुजम् ॥ ८॥ तौ तु पूर्वमतिक्रम्य रोहिणीमभिवाद्य च ॥ अभिवादयतां देवीं देवकीं रामके-शवौ ॥ ९ ॥ सा ताभ्यामृषभाक्षाभ्यां पुत्राभ्यां शुशुभेऽम्बिका ॥ अदितिर्देवमातेव मित्रेण वरुणेन च ॥ १० ॥ ततः प्राप्ता नराग्र्यौ तु तस्याः सा दुहिता तदा ॥ एकानंशेति यामाहुर्नरा वै कामरूपिणीम् ॥ ११ ॥ तथा क्षणमुहूर्ताभ्यां यथा जज्ञे सुरेश्वरः ॥ यत्कृते सगणं कंसं जघान पुरुषोत्तमः॥१२॥ सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसद्मानि पूजिता ॥ पुत्रवत्पाल्यमाना वै वासुदेवाज्ञया तदा ॥ १३ ॥ एकानंशेति यामाहुरुत्पन्नां मानवा भुवि ॥ योगकन्यां दुराधर्षां रक्षार्थं केशवस्य ह ॥ १४ ॥ यां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ॥ देववद्दिव्यपुरुषः कृष्णः संरक्षितो यथा॥ १५ ॥ तां च तत्रोपसंगम्य प्रियामिव सखीं स्वसाम् ॥ दक्षिणेन कराग्रेण परिजग्राह माधवः ॥ १६ ॥

दाकी पुत्री ॥ ११ ॥ जिस कन्यासे एकक्षण और मुहूर्त्तमें सुरेश्वर भगवान्‌ने जन्म लिया; और जिसके निमित्त पुरुषोत्तम भगवान्‌ने गणसहित कंसको मारा ॥ १२ ॥ सो कन्या पूजित हुई वृष्णिके भवनमें बढने लगी; और वासुदेवकी आज्ञासे पुत्रकी समान पालित हुई ॥ १३ ॥ तिस उत्पन्न हुईको पृथ्वीपर मनुष्य एका और अनंशा कहते हैं और सम्पूर्ण यादवोंने सुन्दर मनसे तिस दुराधर्ष योगकन्याका केशवकी रक्षाके निमित्त ॥ १४ ॥ पूजन किया, उस योगकन्याने देवताओंकी समान दिव्य पुरुष कृष्णचंद्रकी रक्षाके निमित्त किया ॥ १५ ॥ फिर माधव भगवान्‌ने तिसको प्रियस्वसाकी

समान प्राप्त होकर दहने हाथसे ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उसी प्रकार अत्यन्त बलवान् बलदेवजीनेभी तिस भवानीको आलिंगन कर मस्तक सूंघकर सव्य हाथसे ग्रहण किया ॥ १७ ॥ फिर सुवर्णकी समान कमल हाथमें लिये रामकृष्णकी भगिनीको मध्यमें वे स्त्री इस प्रकार देखने लगीं कि जिस प्रकार पद्मालया लक्ष्मी हो ॥ १८ ॥ पश्चात् अक्षतोंकी महावृष्टिसे और अनेक प्रकारके पुष्प और लाजाओंसे वे स्त्री उनपर वर्षा कर अपने २ स्थानोंको गई ॥ १९ ॥ फिर सम्पूर्ण यादव जनार्दन भगवान्‌को सराहते हुए, और उस अद्भुतकर्मको सराहते हुए प्रसन्न होकर कृष्णचंद्रके समीप गये ॥ २० ॥ फिर

तथैव रामोऽतिबलः संपरिष्वज्य भाविनीम् ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय सव्येन प्रतिजग्राह पाणिना ॥ १७ ॥ ददृशुस्ताः स्त्रियो मध्ये भगिनीं रामकृष्णयोः ॥ रुक्मपद्मव्यग्रकरां श्रियं पद्मालयामिव ॥ १८ ॥ तथाक्षतमहावृष्ट्या पुष्पैश्च विविधैः शुभैः ॥ अवकीर्य च लाजैस्ताः स्त्रियो जग्मुर्यथालयम् ॥ १९ ॥ ततस्ते यादवाः सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ उपोपविविशुः प्रीताः प्रशंसन्तोऽद्भुतं कृतम् ॥ २० ॥ पूज्यमानो महाबाहुः पौराणां रतिवर्द्धनः ॥ विरराज महाकीर्तिर्देवैरिव स तैः सह ॥ २१ ॥ समासीनेषु सर्वेषु यादवेषु जनार्दनम् ॥ नियोगात्त्रिदशेन्द्रस्य नारदोऽभ्यागमत्सभाम् ॥ २२ ॥ सोऽथ संपूजितः पूज्यः शूरैस्तैर्यदुपुङ्गवैः ॥ करं संस्पृश्य स हरेर्विवेश परमासने ॥ २३ ॥ सुखोपविष्टस्तान्वृष्णीनुपविष्टानुवाच ह ॥ संप्राप्तं शक्रवचनाज्जानीध्वं मां नरर्षभाः ॥ २४ ॥ शृणुध्वं राजशार्दूलाः कृष्णस्यास्य पराक्रमम् ॥ यानि कर्माणि कृतवान्बाल्यात्प्रभृति केशवः ॥ २५ ॥

पुरवासियोंकी प्रीति बढाते हुए पूज्यमान महाबाहु श्रीकृष्णचंद्र उनसे ऐसे शोभाको पाने लगे कि जैसे देवताओंमें इन्द्र ॥ २१ ॥ फिर देवता और इन्द्रके नियोगसे सम्पूर्ण यादवोंके बैठे हुए नारदमुनि सभामें प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ वह नारद शूरवीर यदुपुंगवोंसे पूजित हो हरि भगवान्‌के हाथको छूकर परम आसनपर बैठे ॥ २३ ॥ फिर सुखपूर्वक बैठे हुए नारदमुनिजी तिन बैठे हुए वृष्णियोंसे वचन कहने लगे कि; हे पुरुषश्रेष्ठो ! मुझे यहां इन्द्रके वचनसे प्राप्त हुआ जानो ॥ २४ ॥ हे राजशार्दूलो ! इन कृष्णचंद्रके पराक्रम मुझसे सुनो बाल्यावस्थासे लेकर केशवने जौनसे कर्म किये हैं ॥ २५ ॥

हे नृपो ! उग्रसेनके पुत्र दुर्बुद्धि कंसने जब सम्पूर्ण यादवोंको मथकर और उग्रसेन पिताको बांधकर राज्यको ग्रहण किया॥२६॥और यह कुलपांसन कंस जरासंध ससुरके आश्रय होकर पश्चात् भोज वृष्णि अंधक सम्पूर्ण यादवोंका अपमान करने लगा॥२७॥और जातिके कार्य करनेकी इच्छासे वसुदेवने प्रतापवान् उग्रसेनकी रक्षाके निमित्त अपने पुत्रकी रक्षा की॥२८॥और धर्मात्मा मधुसूदन भगवान्‌ने गोपोंके सहित मथुराके उपवनमें स्थित हो अत्यन्त अद्भुत कर्म किये॥२९॥और एक अन्यभी महाअद्भुत कर्म सुने हैं कि शूरसेनोंके प्रत्यक्ष शकटके अंतर चेष्टा करते हुए कृष्णचंद्रने॥३०॥रौद्र और शकुनी

उग्रसेनसुतः कंसः सर्वान्निर्मथ्य यादवान् ॥ राज्यं जग्राह दुर्बुद्धिर्बद्ध्वा पितरमाहुकम् ॥२६॥ समाश्रित्य जरासन्धं श्वशुरं कुलपांसनः ॥ भोजवृष्ण्यन्धकान्सर्वानवमन्यत दुर्मतिः ॥२७॥ ज्ञातिकार्यं चिकीर्षुस्तु वसुदेवः प्रतापवान् ॥ उग्रसेनस्य रक्षार्थं स्वपुत्रं पर्यरक्षत ॥२८॥ स गोपैः सह धर्मात्मा मथुरोपवने स्थितः ॥ अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतवान्मधुसूदनः ॥२९॥ प्रत्यक्षं शूरसेनानां श्रूयते महदद्भुतम् ॥ उत्तानेन शयानेन शकटान्तरचारिणा ॥३०॥ राक्षसी निहता रौद्रा शकुनावेषधारिणी ॥ पूतना नाम घोरा सा महाकाया महाबला ॥३१॥ विषदिग्धं स्तनं रौद्रं प्रयच्छन्ती जनार्दने ॥ ददृशुर्निहतां तां ते राक्षसीं वनगोचराः ॥३२॥ पुनर्जातोऽयमित्याहुरुक्तस्तस्मादधोक्षजः ॥ अत्यद्भुतमिदं चासीद्यच्छिशुः पुरुषोत्तमः ॥ ३३ ॥ पादाङ्गुष्ठेन शकटं क्रीडमानो व्यलोडयत् ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धो विप्रकुर्वन् कुमारकम् ॥ ३४ ॥ बभञ्जार्जुनवृक्षौ द्वौ ख्यातो दामोदरस्तदा ॥ कालियश्च महानागो दुराधर्षो महाबलः ॥ ३५ ॥

वेष धारनेवाली घोरा और बडे शरीरवाली महाबला पूतना नाम राक्षसी॥३१॥जनार्दनको विष लिपटा हुआ स्तन देती हुई भगवान्‌ने उसे मारा.उस मारी हुई राक्षसीको सम्पूर्णवनगोचर देखने लगे॥३२॥और भगवान्‌को सब यह कहने लगे कि;इन कृष्णचंद्रका फिर जन्म हुआ है;और यह अत्यन्त अद्भुत होता हुआ कि बालकही पुरुषोत्तमने॥३३॥क्रीडा करते हुएने पैरके अंगूठेसे गाडेको डाल दिया,और जब रस्सीसे ऊखलमें बांध दिये तब बालकोंके समान क्रीडा करते हुए दामोदर भगवान्‌ने॥३४॥विख्यात अर्जुन वृक्षोंको तोड दिया फिर दुराधर्ष और महाबली महानाग कालिय॥ ३५ ॥

क्रीडा करते हुए भगवान्‌ने यमुनाके ह्रदमें जीत लिया; और अक्रूरके सामने नागोंके भवनमें प्रभु॥३६॥नागोंसे पूजित हो भगवान्‌ने दिव्य शरीरको धारा और शीतवातसे पीडित हुई गौओंको देखकर॥३७॥सात दिन पर्यन्त गोवर्धन पर्वतको धारण किया, उस समय श्रीकृष्ण बालक थे यह गायोंके निमित्त किया ॥३८॥ और वैसेही उक्ष दुष्ट और अतिबली बडे शरीरवाले, नरोंके अंत करनेवाले अरिष्टासुरको भगवानने मारा ॥३९॥ और गौओंकी रक्षाके निमित्त वासुदेव भगवान्‌ने महाकाय और महाबली धेनुक दानवको मारा॥४०॥शत्रुओंको मारनेवाले भगवान्‌ने सम्पूर्ण सेनाके

क्रीडता वासुदेवेन निर्जितो यमुनाह्रदे ॥ अक्रूरस्य समक्षं च यन्नागभवने विभुः ॥३६॥ पूज्यमानं तदा नागैर्दिव्यं वपुरधारयत् ॥ शीतवातार्दिता गाश्च दृष्ट्वा कृष्णेन धीमता ॥३७॥ धृतो गोवर्धनः शैलः सप्तरात्रं महात्मना ॥ शिशुना वासुदेवेन गवां त्राणार्थमिच्छताम् ॥ ३८ ॥ तथोक्षदुष्टोऽतिबलो महाकायो नरान्तकृत् ॥ गोपतिर्वासुदेवेन हतोऽरिष्टो महासुरः ॥ ३९ ॥ धेनुकः स महाकायो दानवः सुमहाबलः ॥ निहतोवासुदेवेन गवां त्राणाय दुर्मतिः ॥ ४० ॥ सुनामानममित्रघ्नः सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ॥ वृकैर्विद्रावयामास गृहीतं समुपस्थितम् ॥ ४१ ॥ रौहिणेयेन संगम्य वने विचरता पुनः ॥ गोपवेषधरेणैव कंसस्य भयमाहितम् ॥ ४२ ॥ तथा व्रजगतः शौरिर्दृष्ट्वा युद्धबलं हयम् ॥ प्रग्रहं भोजराजस्य जघान पुरुषोत्तमः ॥ ४३ ॥ प्रलम्बश्च महाबाहो रौहिणेयेन धीमता ॥ दानवो मुष्टिनैकेन कंसामात्यो निपातितः ॥ ४४ ॥ एतौ हि वसुदेवस्य पुत्रौ सुरसुतोपमौ ववृधाते महावीर्यौ ब्रह्मगार्ग्येण संस्कृतौ ॥ ४५ ॥

॥३०६॥

आगे प्राप्त हुए सुदामाको वृकोंसे दौडाया ॥ ४१ ॥ और गोपवेश धारण किये वनमें विचरते हुए बलदेवजीने अन्यभी दैत्य मारे ॥ ४२ ॥ और वैसेही व्रजमें प्राप्त हुए भगवान्‌ने कंसके सहायक केशीको मारा ॥४३॥ हे राजन् ! कंसका मंत्री प्रलंब दानव एकही मूकेसे बुद्धिमान् बलदेवजीने मार दिया ॥ ४४ ॥ हे राजा!गार्ग्यऋषिसे संस्कारको प्राप्त हुए वसुदेवके महावीर्य पुत्र देवताओंके पुत्रोंके समान बढे ॥ ४५ ॥ जन्मसे आदि लेकर पर

मर्षि गार्ग्यने इन्हींका यथावत् संस्कार प्रतिपादन करा है ॥४६॥ और जब ये नरश्रेष्ठ यौवनमें आये तब सिंहके बच्चोंकी तरह स्थित हुए ॥ ४७ ॥ पश्चात् जवान हुए भगवान् गोपियोंके मनको हरते हुए और देवपुत्रोंकेसी कांतिवाले और श्रेष्ठ भगवान् व्रजमें स्थित हुए॥४८॥और इन दोनोंको नंदगोपके गोपालोंमें और युद्धमें अनेक प्रकारकी क्रीडाओंमें देखनेकोभी नहीं समर्थ हुए ॥४९॥ चौडी छाती और महाबाहु और शालस्कंध बलदे-वकृष्णको मंत्रियोंसहित कंस सुनकर अत्यन्त व्यथित हुआ ॥५०॥ जब कंस कृष्णबलदेवको ग्रहण करनेको समर्थ न हुआ; तब क्रोधसे बांधवोंस-

जन्मप्रभृति चाप्येतौ गार्ग्येण परमर्षिणा ॥ याथातथ्येन विज्ञाप्य संस्कारप्रतिपादितौ ॥ ४६ ॥ यदा त्विमौ नरश्रेष्ठौ स्थितौ यौवनसंमुखे ॥ सिंहशावाविवोदीर्णौ मत्तौ हैमवतौ यथा ॥ ४७ ॥ ततो मनांसि गोपीनां हरमाणौ महाबलौ ॥ आस्तां गोष्ठ वरौ वीरौ देवपुत्रोपमद्युती ॥ ४८ ॥ एतौ जये वा युद्धे वा क्रीडासु विविधासु च॥ नन्दगोपस्य गोपाला न शेकुः प्रसमिक्षितुम् ॥ ४९ ॥ व्यूढोरस्कौ महाबाहु शालस्कन्धाविवोद्गतौ ॥ श्रुत्वासौ व्यथितः कंसो मन्त्रिभिः सहितोऽभवत् ॥ ५० ॥ नाशकच्च यदा कंसो गृहीतुं बलकेशवौ ॥ निजग्राह ततः क्रोधाद्वसुदेवं सबान्धवम् ॥ ५१ ॥ सहोग्रसेनेन तदा चोरवद्गाढबन्धनम् ॥ कालं महान्तमसुवत्कृच्छ्रमानकदुन्दुभिः ॥ ५२ ॥ कंसस्तु पितरं बद्ध्वा शूरसेनान् शशास ह ॥ जरासन्धं समाश्रित्य तथैवाहृतिभी ष्मकौ ॥ ५३ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य मथुरायां महोत्सवम् ॥ पिनाकिनं समुद्दिश्य चक्रे कंसो नराधिपः ॥ ५४ ॥ तत्र मल्लाः समाजग्मुर्नानादेश्या विशाम्पते ॥ नर्तना गायनाश्चैव कुशला नृत्यकर्मसु ॥ ५५ ॥

हित वसुदेवको ग्रहण किया ॥ ५१ ॥ वसुदेव उग्रसेनके सहित अत्यन्त कष्टसे बहुत कालतक बंधनस्थानमें वास करते रहे ॥५२॥ फिर कंस पिता उग्रसेनको बांधकर और जरासंध और आव्हति भीष्मकको आश्रय होके यादवोंको हनन करने लगे॥५३॥एक समयमें मथुरापुरीमें महादेवजीके उद्देशसे कंसने परम उत्साह किया॥५४॥हे राजन् ! तहां अनेक देशोंसे मल्ल आये और नृत्यकर्ममें कुशल अनेक नृत्य करनेवाले और गानेवाले आये॥५५॥

तिसके अनंतर महातेजा कंसने कुशल शिल्पियोंसे महाधन रंगवाट बनवाया॥५६॥तिस रंगवाटमें पुर जानपदजनोंसे व्याप्त हजारहों मंच ऐसे दीखते थे जैसे आकाशमें तारागण ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे भोजराज कंस श्रीसे सेवित हो ऋद्धिमान् रंगवाटमें ऐसे आरूढ हुए कि जैसे सुकृती जन विमानमें चढता है ॥ ५८ ॥ और वीर्यमान् राजा कंसने रंगवाटमें मदोन्मत्त कुवलयापीडको और शूरोंको स्थापन किया ॥ ५९ ॥ हे राजन्! महातेजस्वी कंसने जब पुरुषव्याघ्र चंद्रमासूर्यकेसे तेजवाले बलदेवकृष्णको आये हुए सुना तब ॥ ६० ॥ मनमें रक्षाके प्रति

ततः कंसो महातेजा रङ्गवाटं माहाधनम् ॥ कुशलैः कारयामास शिल्पिभिः साधुनिष्ठितैः ॥ ५६ ॥ तत्र मञ्चसहस्राणि पौरजानपदैर्जनैः ॥ समाकीर्णानि दृश्यन्ते ज्योतींषि गगने यथा ॥ ५७ ॥ भोजराजः श्रिया जुष्टं रङ्गवाटं महर्द्धिमत् ॥ आरुरोह ततः कंसो विमानं सुकृती यथा ॥५८॥ रङ्गवाटे गजं मत्तं प्रसूतायुधकल्पितम् ॥ शूरैरधिष्ठितः कंसः स्थापयामास वीर्यवान् ॥५९॥ यदा हि स महातेजा रामकृष्णौ समागतौ ॥ शुश्राव पुरुषव्याघ्रौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ६० ॥ तदाप्रभृति यत्नोभूद्रक्षां प्रति नराधिपः ॥ नच शिश्ये सुखं रात्रौ रामकृष्णौ विचिन्तयन् ॥ ६१ ॥ श्रुत्वा तु रामः कृष्णश्च तं समाजमनुत्तमम् ॥ उभौ विविशतुर्वीरौ शार्दूलौ गोव्रजं यथा ॥६२॥ ततः प्रवेशे संरुद्धौ रक्षिभिः पुरुषर्षभौ ॥ हत्वा कुवलयापीडं ससादिनमरिन्दमौ ॥ अवमृद्य दुराधर्षौ रङ्गं विविशतुस्तदा ॥ ६३ ॥ चाणूरान्ध्रौ विनिष्पिष्य केशवेन बलेन च ॥ औग्रसेनिः सुदुष्टात्मा सानुजो विनिपातितः ॥ ६४ ॥ यत्कृतं यदुसिंहेन देवैरपि सुदुष्करम् ॥ कर्म तत्केशवादन्यः कर्तुमर्हति कः पुमान् ॥ ६५ ॥

यत्न करने लगा और बलदेवकृष्णकी चिंतवन करता हुआ सुखसे रात्रिको नहीं सोया ॥ ६१ ॥ बलदेवजी और कृष्णचन्द्र ये उत्तम समाजको सुनकर दोनों शूरवीर तिस समाजमें प्रविष्ट हुए कि, जिस प्रकार गौओंके समूहमें दो शार्दूल॥ ६२ ॥ पश्चात् ये पुरुषश्रेष्ठ अरिन्दम रक्षियोंसे प्रवेशमें रोके हुए सवारोंसहित दुर्द्धर्ष कुवलयापीडको मारकर तिस रंगभूमिमें प्रविष्ट हुए ॥ ६३ ॥ बलदेवजी और कृष्णचंद्रने चाणूर और अंध्रको पीसकर कृष्णचंद्रने दुष्टात्मा उग्रसेनके पुत्र कंसको अनुजोंसहित मार दिया॥६४॥जो कर्म देवताओंकोभी दुष्कर है;

हे राजन्! तिस कर्मको केशवसे अन्य करनेको कौन समर्थ है॥६५॥क्योंकि जिसमें प्रह्लाद बलि और शंबर इनकोभी अधिकार नहीं हुआ; वह धन तुम्हारे निमित्त श्रीकृष्ण लाये हैं ॥६६॥ दैत्यको और पंचजनको आक्रमण करके तुम्हारे निमित्त यह द्रव्य केशवने प्राप्त किया है ॥६७॥ और पर्वतके शृङ्गकेसी कांतिवाला निसुंद दैत्य गणोंसहित मारा;पृथ्वीका पुत्र भौमासुर मारा है;और अदितिके सुन्दर कुंडल ला दिये;और स्वर्गमें देवताओंके विषे केशवको महत् यश प्राप्त हुआ है ॥६८॥ तुम सम्पूर्ण शोक भय और बाधासे रहित हुए कृष्णकी भुजाओंके बलके आश्रय हुए,

यदि नाधिगतं पूर्वैः प्रह्लादबलिशम्बरैः ॥ तदिदं प्रापितं वित्तं शौरिणा भवतां कृते ॥ ६६ ॥ एतेन मुरुमाक्रम्य दैत्यं पञ्चजनं तथा ॥ निष्क्रम्य शैलसङ्काशान्निसुन्दः सगणो हतः ॥ ६७ ॥ नरकश्च हतो भौमः कुण्डले चाहृते शुभे ॥ प्राप्तं च दिवि देवेषु केशवेन महद्यशः ॥ ६८ ॥ वीतशोकभया बाधा कृष्णबाहुबलाश्रयाः ॥ यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्यादवा वीतमत्सराः ॥ ६९ ॥ देवानां सुमत्कार्यं कृतं कृष्णेन धीमता ॥ प्रियमावेदयाम्येष भवतां भद्रमस्तु वः ॥ ७० ॥ यदिष्टं वो यदुश्रेष्ठाः कर्त्तास्मि तदतन्द्रितः ॥ भवतामस्मि यूयं च मम युष्मास्वहं स्थितः ॥ ७१ ॥ इति संबोधयन्कृष्णमब्रवीत्पाकशासनः ॥ स मां प्रैक्षीत् सुरश्रेष्ठ प्रीतस्तुष्टास्तथा वयम् ॥ ७२ ॥ यत्र धीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र सन्नतिः ॥ संनतिर्धीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

मत्सर छोड अनेक प्रकारके यज्ञोंसे भगवान्का यजन करो ॥६९॥ हे राजाओ! देवताओंक ऐसे बडे कार्य महात्मा कृष्णचंद्रने करे हैं. हे यदुश्रेष्ठो!जो प्रिय है तिसको मैं तुम्हारे आगे कहता हूं तुम्हारा कल्याण हो॥७०॥ जो तुमको इष्ट है वही मैं करूंगा, इसमें जगत् स्थित है॥७१॥ इस प्रकार वचन कहते हुए इन्द्रने कहा है,उस देवताओंमें श्रेष्ठने मुझको प्रीतिसे देखा हम संतुष्ट हुए ॥७२॥ जहां बुद्धि हो वहीं लक्ष्मी रहती है और जहां श्री वहां सन्नति है. श्री, बुद्धि और सन्नति यह सम्पूर्ण महात्माकृष्णचंद्रमें स्थित हैं ॥७३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णु-

पर्वणि नारदवाक्यं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥ नारदजी बोले; मुरुके पाशभी भगवान्ने काट दिये, और निसुंद और नरकासुरभी मार दिये, और प्राग्ज्योतिषपुरके प्रति क्षेमयुक्त मार्ग कर दिया ॥ १ ॥ हे राजाओ ! कृष्णचंद्रने रणभूमिमें वैर करनेवाले राजाओंको धनुषके शब्दसे और पांचजन्यके शब्दसे त्रासित किया ॥ २ ॥ मेघके समान दाक्षिणात्य सेनाओंसे रक्षित महाबल पराक्रमी रुक्मीको युद्धमें जीतकर ॥ ३ ॥ तत्काल रुक्मिणीको हरण किया; तिसके अनंतर मेघकेसे शब्दवाले सूर्यके समान प्रकाशवाले रथमें रुक्मिणीको प्राप्तकर शंख चक्र गदा खड्ग

नारद उवाच ॥ सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ ॥ कृतः क्षेम्यः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १ ॥ शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिताः स्पर्द्धिनो रणे ॥ धनुषश्च निनादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च ॥ २ ॥ मेघप्रख्यै रथानीकैर्दाक्षिणात्यैः सुरक्षितम् ॥ रुक्मिणं युधि निर्जित्य महाबलपराक्रमम्॥रुक्मिणीमाजहाराशु केशवो वृष्णिपुङ्गवः॥३॥ततःपर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ अवाप्य महिषीं भोज्यां शंखचक्रगदासिभृत्॥४॥जारूथ्यामाहवृतिः क्राथः शिशुपालश्च निर्जितः॥वक्रश्च सह सैन्येन शतधन्वाथ निर्जितः ॥ ५ ॥ इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद्यवनश्च कशेरुमान् ॥ हतः सौभपतिः श्रीमान् शाल्वश्च दृढधन्वना ॥ ६ ॥ पर्वतानां सहस्रं च चक्रेण पुषोत्तमः ॥ विकीर्य पुण्डरीकाक्षो द्युमत्सेनं व्यपोथयत् ॥ ७ ॥ महेन्द्रशिखरे चैव निमेषान्तरचारिणौ ॥ जघान पुरुषव्याघ्रो रावणस्याभितश्चरौ ॥ ८ ॥ इरावत्यां महाभोजावग्निसूर्यसमौ युधि ॥ गोपतिस्तालकेतुश्च निहतौ शार्ङ्गधन्वना ॥९॥

शस्त्रोंको भगवान् धारण करके ॥ ४ ॥ पश्चात् आहृति और क्राथ और शिशुपाल इन राजाओंको जीत दंतवक्र और सेनासहित शतधन्वाको भी जीत लिया ॥५॥ और इंद्रद्युम्न यवन कशेरुमान ये सम्पूर्ण मार दिये; और दृढधनुषसे श्रीमान् सौभपति शाल्वभी मार दिया ॥६॥ और सहस्रों पर्वतोंको वखेरकर पुरुषोत्तम भगवान् द्युमत्सेनको पीडित करने लगे ॥ ७ ॥ और पुरुषव्याघ्र कृष्णचंद्रने महेंद्रके शिखरमें रावणके दो चर एक निमेषमें मारे ॥ ८ ॥ और इरावतीपुरीमें अग्निसूर्यके समान युद्धमें महाबली शार्ङ्गधन्वा भगवान्ने गोपति और तालकेतुको मारा ॥ ९ ॥

चक्षुके विक्षेपमात्रसेही अनुगोंसहित डिंभ और हंस इन दोनों दानवोंका अनुचरोंक सहित वध किया ॥ १० ॥ हे राजा ! महात्मा केशवने काशीपुरी दग्ध करी; और राष्ट्र और बांधवोंसहित काशीके राजाकोभी मार दिया ॥ ११ ॥ और अद्भुतकर्मवाले कृष्णचंद्रने उत्तम बाणोंसे युद्धमें यमको जीतकर इन्द्रसेनाको लाये ॥१२॥ महाबल कृष्णचंद्रने लोहित कूटको प्राप्त होकर जलजीवोंसहित वरुणदेवताको जीता ॥१३॥ महेंद्रभवनमें प्राप्त हो कृष्णचंद्रने इन्द्रका मथन करके महात्मा देवताओंसे रक्षित कल्पवृक्षको हर लाये ॥ १४ ॥ पांड्य पौंड्र कलिंग मात्स्य इन सम्पूर्ण

अक्षप्रपातने चैव डिम्भौ हंसश्च दानवौ ॥ उभौ तावपि कृष्णेन सानुगौ विनिपातितौ ॥ १० ॥ दग्धा वाराणसी चैव केशवेन महात्मना ॥ सराष्ट्रः सानुबन्धश्च काशीनामधिपो हतः ॥११॥ विजित्य च यमं सङ्ख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ अथेन्द्रसेनिरानीतः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ १२ ॥ सहितः सर्वयादोभिः समरेषु महाबलः ॥ प्राप्य लोहितकूटं च कृष्णेन वरुणो जितः ॥ १३ ॥ महेन्द्रभवने यातो देवैर्गुप्तो महात्मभिः ॥ अचिन्तयित्वा देवेन्द्रं पारिजातद्रुमो हृतः ॥१४॥ पाण्ड्यं पौण्ड्रं कलिङ्गं च मात्स्यं चैव जनार्दनः ॥ जघान सहितान्सर्वान्वङ्गराजं तथैव च ॥१५॥एष चैकशतं हत्वा रणे राज्ञां महात्मनाम् ॥ गान्धारीमावहद्वीरो महिषीं प्रियदर्शनाम् ॥ १६ ॥ तथा गाण्डीवधन्वानं क्रीडन्तं मधुसूदनः ॥ जिगाय भरतश्रेष्ठं कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः ॥१७॥ द्रोणं द्रौणिं कृपं कर्णं भीष्मं चैव सुयोधनम् ॥ चक्रयानैः प्रह्रवणे जिगाय पुरुषोत्तमः ॥१८॥ बभ्रोश्च प्रियमन्विच्छन् शङ्ख-चक्र गदासिभृत् ॥ सौवीरराजस्य सुतां प्रसह्य हृतवान्प्रभुः ॥ १९ ॥

राजाओंको मारकर जनार्दनने वंगराजकोभी मारा ॥१५॥ हे राजाओ ! यह महात्मा कृष्णचंद्र एक सौ एक राजाओंको रणभूमिमें मारकर पश्चात् प्यारे दर्शनोंवाली पटरानी गांधारीको लाये ॥१६॥ और कुंतीके देखते हुए क्रीडा करते हुए भरतश्रेष्ठ अर्जुनको जितवाया ॥ १७ ॥ और पुरुषोत्तम भगवान्‌ने द्रोणाचार्य अश्वत्थामा कृपाचार्य कर्ण भीष्म और दुर्योधन इन संपूर्णोंसे रणभूमिमें अर्जुनको जिताया ॥ १८ ॥ नकुलके प्यारकी इच्छा

करते हुए भगवान्‌ने शंख चक्र गदा और खड्ग इनको धारण कर हठसे सौवीरराजाकी कन्याको हरण किया ॥ १९ ॥ और पुरुषोत्तम भगवान्‌ने वेणुदारिके निमित्त अश्व रथ हस्तीसहित संपूर्ण पृथ्वीको यत्नसे जीता॥२०॥वे हरि पूर्वदेहमें बल वीर्य और ओजको प्राप्त होकर बलिसे त्रिभुवनको हरने लगे॥२१॥हे नृपो ! प्राग्ज्योतिषपुरमें वज्र अशनि गदा और खड्गसे त्रास कराते हुए दानवोंमें जिस कृष्णचंद्रके समीपभी मृत्यु नहीं प्राप्त हुई ॥२२॥ और गणोंके सहित महाबली महावीर्यवान् अत्यन्त द्रव्यवाला बलिका पुत्र बाणासुरभी कृष्णचंद्रने तिरस्कृत कर दिया ॥२३॥ और महाबाहु महा-

पर्यस्तां पृथिवीं कृत्स्नां साश्वां सारथकुञ्जराम् ॥ वेणुदारिकृते यत्नाज्जिगाय पुरुषोत्तमः ॥ २० ॥ अवाप्य तपसो वीर्यं बलमोजश्च माधवः ॥ पूर्वदेहे जहारायं बलेस्त्रिभुवनं हरिः ॥२१॥ वज्राशनिगदाखड्गैस्त्रासयद्भिश्च दानवैः ॥ यस्यानाधिगतो मृत्युः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥२२॥ अभिभूतश्च कृष्णेन सगणः सुमहाबलः ॥ बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो द्रविणवत्तरः ॥२३॥ पीठं तथा महाबाहुः कंसामात्यं जनार्दनः ॥ पैठिकं चासिलोमानं निजघान महाबलः ॥ २४ ॥ जृम्भमैरावणं चापि विरूपं च महायशाः ॥ जघान पुरुषव्याघ्रो दैत्यं मानुषरूपिणम् ॥२५॥ तथा नागपतिं तोये कालीयं च महौजसम् ॥ निर्जित्य पुण्डरीकाक्षः प्रेषयामास सागरम् ॥२६॥ संजीवयामास मृतं पुत्रं सान्दीपनेस्तथा ॥ निर्जित्य पुरुषव्याघ्रो यमं वैवस्वतं हरिः ॥२७॥ एवमेष महाबाहुः शास्ता तेषां दुरात्मनाम् ॥ देवांश्च ब्राह्मणांश्चैव ये द्विषन्ति सदानृप ॥ २८ ॥ निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ॥ देवमातुर्ददौ चैव प्रीत्यर्थं वज्रपाणिनः ॥ २९ ॥

बली जनार्दनने कंसके अमात्य पैठिक और असिलोमाको मारा ॥२४॥ और बडे यशवाले कृष्णचंद्रने जृम्भ ऐरावत और विरूप इन मनुष्यरूपवाले दैत्योंको मारा॥२५॥और यमुनाजीके जलमें बडे तेजवाले नागपति कालीयको कमलकेसे नेत्रोंवाले भगवान् जीतके सागरमें भेजते हुए॥२६॥ पुरुषोंमें व्याघ्ररूप यह हरि धर्मराजको जीतकर और सांदीपनि गुरुके मरे पुत्रको जिवाते हुए॥२७॥और यही महाबाहु कृष्ण चंद्र जो दुरात्मादेवता और ब्राह्मणोंके साथ वैर करते हैं;तिनको शिक्षा करनेवाले हैं॥२८॥और इन्द्रके प्रियके निमित्त पृथ्वीके पुत्र भौमासुरको मारकर और मणिजटित कुंडलोंको लाकर

देवमाता अदितिको दिये॥२९॥और सम्पूर्ण लोकोंके रचनेवाले समर्थ यह कृष्णचंद्र देवताओंको अभय देते हैं;और दैत्योंको भय देते हैं॥३०॥ हे नृपो!यह कृष्णचंद्र बहुतसी दक्षिणाओंवाले यज्ञसे यजन कर मनुष्योंमें धर्मका स्थापन करके देवताओंका प्रयोजन कर पश्चात् फिर वैकुंठधाममें जाँयगे ॥३१॥ और महायशवाले कृष्णचंद्र भोगोंवाली रमणीक द्वारकाको अपने वंशमें कर पीछे समुद्रको प्राप्त करेंगे॥३२॥ फिर रत्नोंसे व्याप्त वनोंसहित द्वारकाको वरुणके स्थानमें प्राप्त करेंगे ॥३३॥ पश्चात् भगवान्‌की रची हुई तिस सूर्यकेसी कांतिवाली द्वारकाको समुद्र उनकी आज्ञासे डुबो देगा ॥३४॥ सुर असुर और मनुष्योंमें ऐसा कोई न तो हुआ न होगा; कि जो मधुसूदनसे अन्य इस पुरीमें वसे ॥ ३५ ॥ हे राजो ! ऐसे

एवं च देवदैत्यानां सुराणां च महायशाः ॥ भयाभयकरः कृष्णः सर्वलोककरो विभुः ॥३०॥ संस्थाप्य धर्मान्मर्त्येषु यज्ञैरिष्ट्वाप्तदक्षिणैः ॥ कृत्वा देवार्थममितं स्वस्थानं प्रतिपत्स्यते ॥३१॥ कृष्णो भोगवतीं रम्यामृषिकां तां महायशाः ॥ द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यति ॥३२॥ बहुरत्नसमाकीर्णां चैत्ययूपशताङ्किताम् ॥ द्वारकां वरुणावासे प्रवेक्ष्यति सकाननाम् ॥३३॥ तां सूर्यसदनप्रख्यां मतज्ञः शार्ङ्गधन्वनः ॥ विसृष्टां वासुदेवेन सागरः प्लावयिष्यति ॥३४॥ सुरासुरमनुष्येषु नासीन्न भविता क्वचित् ॥ य इमामावसेत्कश्चिदन्यो वै मधुसूदनात् ॥३५॥ एवमेष दशार्हाणां विधाय विधिमुत्तमम् ॥ विष्णुर्नारायणः सोमः सूर्यश्च भविता स्वयम् ॥३६॥ अप्रमेयस्त्वचिन्त्यश्च यथा कामचरो वशी ॥ मोदत्येष सदा भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥३७॥ न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽयं मधुसूदनः ॥ परं ह्यपरमेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥३८॥ श्रुतोऽयमेवं शतशस्तथा शतसहस्रशः ॥ अन्तो हि कर्मणामस्य दृष्टपूर्वो न केनचित् ॥ ३९ ॥ एवमेतानि कर्माणि शिशुमध्यगतस्तदा ॥ कृतवान्पुण्डरीकाक्षः संकर्षणसहायवान् ॥४०॥

दाशार्होंके उत्तम विधि विधान करके पश्चात् विष्णु नारायण कृष्णचंद्र सोम और सूर्य होंगे ॥ ३६ ॥ यह कृष्णचंद्र अप्रमेय औरअचिंत्य हैं; और यथेच्छ विचरनेवाले हैं; और यह सम्पूर्ण कालमें भूतोंसे ऐसी क्रीडा करते हैं कि जिस प्रकार खिलोनोंसे बालक खेलते हैं ॥ ३७ ॥ हे नृपो ! इस मधुसूदनका प्रमाण करनेको कोई समर्थ नहीं क्योंकि इस विश्वरूपसे अन्य कुछ भी नहीं ॥ ३८ ॥ और यह वार्ता मैंने सैंकडों और सहस्रों वार सुनी है कि इनके कर्मोंका अंत किसीने भी नहीं देखा ॥ ३९ ॥ बलदेवजीके सहित यह

कमलनेत्र भगवान् शिशुभावमें प्राप्त हुए इन कर्मोंको करने लगे॥४०॥महायोगी और महाबुद्धि और सम्पूर्णोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले व्यासजीने पहले तपोवीर्य चक्षुसे यह पूर्वकथा कही है॥४१॥वैशंपायन बोले; हे राजन् ! महेन्द्रके वचनसे नारदमुनि इस प्रकार गोविंदकी स्तुति कर पश्चात् सम्पूर्ण यादवोंसे पूजित हो स्वर्गमें गये॥४२॥फिर पुंडरीकाक्ष मधुसूदन भगवान् विधिपूर्वक यथायोग्य तिस धनको अंधक वृष्णियोंको देते हुए॥४३॥ फिर सब यादव उस धनको प्राप्त होकर वे महात्मा यादव बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञोंसे यजन करके द्वारकापुरीमें रहने लगे ॥४४॥ इति श्रीमहाभारते

इत्युवाच पुरा व्यासस्तपोवीर्येण चक्षुषा ॥ महायोगी महाबुद्धिः सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥४१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इति संस्तूय गोविन्दं महेन्द्रवचनान्मुनिः ॥ यदुभिः पूजितः सर्वैर्नारदस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४२ ॥ ततस्तद्वसु गोविन्दो दिदेशान्धकवृष्णिषु ॥ यथार्हं पुण्डरीकाक्षो विधिवन्मधुसूदनः ॥४३॥ यादवाश्च धनं प्राप्य विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥ यज्ञैरिष्ट्वा महात्मानो द्वारकामावसन्पुरीम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ छ ॥

जनमेजय उवाच॥बहूनां स्त्रीसहस्राणामष्टौ भार्याः प्रकीर्तिताः ॥ तासामपत्यान्यष्टानां भगवान्प्रब्रवीतु मे॥१॥वैशम्पायन उवाच॥ अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः ॥ सर्वा वीरप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ २ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा ॥ सुदत्ता च तथा शैब्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ॥ ३ ॥ मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी ॥ सुभीमा च तथा माद्री रुक्मिणीतनयान् शृणु ॥ ४ ॥

खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥ जनमेजय बोले; हे मुने ! सहस्रों स्त्रियोंमें जो भगवान्की आठ पटरानी हैं तथा और भी हैं तिनकी वीरसंतानका वर्णन कीजिये॥१॥यह सुन वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! भगवान्की आठ पटरानी पुत्रवाली होती हुईं उन्होंने संपूर्ण शूरवीरोंको उत्पन्न किया उनको सुनो ॥२॥ हे जनमेजय ! रुक्मिणी १ सत्यभामा २ नाग्नजिती ३ सुदत्ता शैब्या ४ और लक्ष्मणा ५ चारुहासिनी ६ ॥ ३ ॥ मित्रविंदा ७ कालिंदी ८ जांबवती पौरवी सुभीमा माद्री यह भगवान्की पटरानी हुईं ! हे राजन् ! उनमें

रुक्मिणीके पुत्रोंको सुनो ॥४॥ प्रथम तो शंबरका नाश करनेवाला प्रद्युम्न हुआ; और दूसरा महारथ चारुदेष्ण हुआ ॥५॥ पश्चात् चारुभद्र, चारु गर्भ, सुदेष्ण और द्रुम सुषेण, चारुदेष्ण और बली चारुविंद ॥६॥ छोटा चारुबाहु, ये तो रुक्मिणीके पुत्र हुए, और चारुमती कन्या हुई; पश्चात सत्यभामाके भानु और भीमरथ ॥ ७ ॥ रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रजाक्ष और जलांतक ये तो पुत्र हुए. भानु भीमनिका ताम्रपर्णी और जलंधमा ॥८॥ ये चार कन्या गरुडध्वजके हुई, और जांबवतीके युद्धको शोभन करनेवाला सांब हुआ ॥ ९ ॥ मित्रवान्, मित्रविंद, मित्रबाहु, सुनीथ ये पुत्र होते

प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरान्तकरः शुभः॥द्वितीयश्चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः॥५॥चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च ॥ सुषेणश्चारुदेष्णश्च चारुविन्दश्च वीर्यवान् ॥६॥ चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती तथा ॥ जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भीमरथस्तथा ॥७॥ रौहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः ॥ भानुर्भीमनिका चैव ताम्रपर्णी जलंधमा ॥ ८ ॥ चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात्॥जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः॥९॥मित्रवान्मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चाङ्गना ॥ मित्रवाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु ॥१०॥ भद्रकारो भद्रविन्दः कन्या भद्रवती तथा ॥ सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत ॥११॥सत्यजित्सेनजिच्चैव तथा शूरःसपत्नजित् ॥ सुभीमायाःसुतो माद्र्या वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः ॥१२॥ कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्मणायाःप्रजाः शृणु ॥ गात्रवान्गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्यवान् ॥१३॥ जज्ञिरे गात्रवत्या च भगिन्यानुजया सह ॥ अश्रुतश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्याः श्रुतसंमतः॥१४॥अश्रुतं श्रुतसेनायै प्रददौ मधुसूदनः ॥ तंप्रदाय हृषीकेशस्तां भार्यां मुदितोऽब्रवीत्॥१५॥

हुए; और मित्रवती कन्या हुई और नाग्नजितीके ॥१०॥ भद्रकार भद्रविंद पुत्र हुए और भद्रवती कन्या हुई; और सुदत्ता शैब्यामें संग्रामजित् हुआ ॥ ११ ॥ सत्यजित् सेनजित् और सपत्नजित् यह पुत्र हुए; और सुभीमा माद्रीके वृकाश्व और वृकनिर्वृति ॥ १२ ॥ और वृकदीप्ति हुए और लक्ष्मणाके गात्रवान् गात्रगुप्त और बली गात्रविंद पुत्र जन्मे ॥ १३ ॥ और गात्रवती और जया कन्या जन्मी, और कालिन्दीके श्रुतसे माना हुआ अश्रुत नाम पुत्र जन्मा ॥१४॥ हे राजन् ! तिस अश्रुतको मधुसूदन भगवान्ने श्रुतसेनाको दिया, और उसको देकर फिर मुदित हुए केशव उस भार्यासे

बोले ॥१५॥ कि यह तुम दोनोंका पुत्र है; सो सैंकडों वर्ष जीवो, बृहतीमें गद और शैब्याके अंगद ॥१६॥ कुमुद और श्वेत ये पुत्र हुए; और श्वेता पुत्री हुई, और अवगाह सुमित्र शुचि और चित्ररथ ॥ १७ ॥ ये सुदेवाके पुत्र हुए, और चित्रावती कन्या हुई, और वन और स्तंब और स्तंबवन ये पुत्र हुए ॥ १८ ॥ निवासन वनस्तंब और स्तंबवती कन्या हुई और उपसन्न, शंकु वज्रांशु और क्षिप्र ये ॥ १९ ॥ कौशिकी विषे हुए और श्रुतसोम यौधिष्ठिर विषे युधिष्ठिर हुआ, और चित्रयोधी कापाली और गरुड हुआ ॥ २० ॥ हे राजन्! इन्हींसे

एष वामुभयोरस्तु दायादः शाश्वतीः समाः ॥ बृहत्यां तु गदस्याहुः शैब्यायामङ्गदं सुतम् ॥ १६ ॥ उत्पन्नं कुमुदं चैव श्वेतं श्वेता तथाङ्गना ॥ अगावहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथस्तथा ॥ १७ ॥ चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा ॥ वनस्तम्बश्च जज्ञात सुतः स्तम्बवनश्च ह ॥१८॥ निवासनो वनस्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा ॥ उपसन्नश्च शङ्कुश्च वज्रांशुःक्षिप्र एव च ॥१९॥ कौशिक्यां श्रुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः ॥ कापाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ॥२०॥एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे ॥ दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः ॥ २१ ॥ अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः ॥ जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोऽयं तथा मया २२ ॥ प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम ॥ अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः ॥२३॥ रेवत्यां बलदेवस्य जज्ञाते निशठोल्मुकौ ॥ भ्रातरौ देवसंकाशावुभौ पुरुषसत्तमौ ॥२४॥ सुतनुश्च सुतारा च शौरेरास्तां परिग्रहः ॥ पौण्ड्रकः कपिलश्चैव वसुदेवस्य तौ सुतौ ॥ २५ ॥ तारायां कपिलो जज्ञे पौण्ड्रश्च सुतनोः सुतः ॥ तयोर्नृपोऽभवत्पौण्ड्रः कपिलश्च वनं ययौ ॥२६॥

आदि लेकर सहस्रों पुत्र जानो इस प्रकार वासुदेवके एक लक्ष पुत्र हुए ॥ २१ ॥ तिनमें अस्सी सहस्र तो शूरवीर और रणके जाननेवाले हुए. हे राजन्! यह जनार्दनकी संतान तुमसे कही है ॥ २२ ॥ हे राजसत्तम! वैदर्भीसे प्रद्युम्नके अनिरुद्ध पुत्र जन्मा; सो सिंहरूप युद्धमें किसीसे नहीं रुकता था ॥२३॥ रेवतीसे बलदेवजीके निशठ और उल्मुख नाम पुत्र जन्मे; यह दोनों भ्राता देवताओंकेसी कांतिवाले पुरुषश्रेष्ठ हुए ॥२४॥ सुतनु और सुतारा यह शौरिकी सन्तान हुई पौंड्रक और कपिल वसुदेवके पुत्र हुए ॥२५॥ सो कपिल तो तारासे उत्पन्न हुआ और

सुतनुसे पौंड्र तिन दोनोंमें पौंड्र तो राजा हुआ और कपिल वनको गया॥२६॥ सो यह निषादोंमें समर्थ हुआ है;और सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमेंभी श्रेष्ठ हुआ है ॥ २७ ॥ और काशीविषे सांबसे सुपार्श्व पुत्र हुआ; सानुसे अनिरुद्धके वज्रनाभ पुत्र हुआ ॥ २८ ॥ वज्रनाभसे प्रतिरथ हुआ, और प्रतिरथसे सुचारु और अनिमित्त छोटा वृष्णिनंदनसे शिनि उत्पन्न हुआ ॥२९॥ और शिनिके सत्यवाक् और सत्यक हुआ और सत्यकका पुत्र शूर युयुधान हुआ ॥३०॥ युयुधानके असंग हुआ और तिसके मणि हुआ और मणिके युगंधर हुआ इस प्रकार यह वंश पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

तुर्यां समभवद्वीरो वसुदेवान्महाबलः ॥ जरा नाम निषादानां प्रभुः सर्वधनुष्मताम् ॥२७॥ काश्यां सुपार्श्वं तनयं लेभे साम्बात्तरस्विनम् ॥ सानुर्जज्ञेऽनिरुद्धस्य वज्रः सानोरजायत ॥ २८ ॥ वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारुस्तस्य चात्मजः ॥ अनमित्ताच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥२९॥ शिनेस्तु सत्यवाक् जज्ञे सत्यकश्च महारथः ॥ सत्यकस्यात्मजः शूरो युयुधानस्त्वजायत ॥३०॥ असङ्गो युयुधानस्य मणिस्तस्याभवत्सुतः ॥ मणेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृष्णिवंशानुकीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥ जनमेजय उवाच ॥ य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः ॥ प्रद्युम्नः स कथं जघ्ने शम्बरं तद्ब्रवीहि मे ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः ॥ शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः ॥ सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते ॥२॥ तं सप्तरात्रे संपूर्णे निशीथे सूतिकागृहात् ॥ जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बरः ॥ ३ ॥ विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः ॥ ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते विष्णुपर्वणि भाषायां वृष्णिवंशानुकीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ जनमेजय बोले; हे भगवन्, जो तुमने प्रद्युम्नको शंबरका मारनेवाला कहा सो कैसे हुआ और कैसे उत्पन्न हुआ सो कहो॥१॥ वैशंपायन बोले; कि हे राजन् ! लक्ष्मी रुक्मिणीमें वासुदेव भगवान्का पुत्र कामदर्शन और शंबरका अंत करनेवाला प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ; जिस प्रद्युम्नको पुराणोंमें सनत्कुमार कहते हैं ॥ २ ॥ तिस बालक कृष्णपुत्र प्रद्युम्नको सात रात्रि पीछे कालशंबर दैत्य सूतिकागृहसे हर ले गया ॥ ३ ॥ और देवमायानुवर्ती कृष्णचंद्रने उसे जानाभी तथापि

युद्धदुर्मद दानवको ग्रहण न किया ॥ ४ ॥ वह मृत्युसे हीन आयु हो शंबर तिस बालकको भुजाओंमें लेकर अपने नगरमें गया ॥ ५ ॥ तिसके रूप और गुणवाली संतानरहित शुभदर्शना मायावती नाम भार्या थी ॥ ६ ॥ तिसको पुत्रके समान वासुदेवपुत्र सौंप दिया यह कार्य दानवने कालसे प्रेरित हो किया ॥७॥ प्रद्युम्नको दिया मायावती तिस प्रद्युम्नको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और बहुत हर्षसे युक्त हुई उस बालकको देखने लगी॥८॥तब देखती हुई तिस माया वतीके स्मृति उत्पन्न हुई कि अहो यह तो मेरा पति है; ऐसे स्मरण करके पश्चात् चिंतवन करने लगी ॥९॥

स मृत्युना परीतायुर्मायया प्रजहार तम् ॥ दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वं निनाय महासुरः ॥ ५ ॥ अनपत्या तु तस्यासीद्भार्या रूप गुणान्विता ॥ नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना ॥६॥ ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम् ॥ तस्या महिष्या मादिन्या दानवः कालचोदितः ॥७॥ मायावती तु संदृष्ट्वा संप्रहृष्टतनूरुहा ॥ हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत ॥ ८ ॥ अथ तस्य निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह ॥ अयं स मम कान्तोऽभूत्स्मृत्वैवं चान्वचिन्तयत् ॥९॥ अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहंदिवानिशम् ॥ चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित् ॥१०॥ अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना ॥ खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्टो जात्यन्तरे मया ॥११॥ कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती ॥ भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत ॥ १२ ॥ एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत् ॥ रसायन प्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ॥ १३ ॥ धात्र्याः सकाशात्स च तां शृण्वन्रुक्मिणिनन्दनः ॥ मायावतीमविज्ञानान्मेने स्वामेव मातरम् ॥ १४ ॥

अहो यह तो वही मेरा कांत स्वामी है कि जिसके निमित्त रातदिन चिंताशोकरूप समुद्रमें डूबी हुई सुखको कहीं नहीं प्राप्त होती ॥ १० ॥ और यह पहले खेदित देवदेव महादेवजीने अनंग और अदृष्ट कर दिया था ॥ ११ ॥ सो मैं जानती हुई मातृभाव करके कैसे इसको स्तन दूंगी और इस भर्ताकी मैं भार्या होकर कैसे पुत्र कहूंगी ॥ १२ ॥ ऐसे मनमें चिंतवन कर उसने प्रद्युम्नको धायको सौंप दिया; पश्चात् रसायनोंके प्रयोगोंसे यह शीघ्रही बढा ॥ १३ ॥ फिर इन रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नने धायके मुखसे मायावतीको माता माना ॥ १४ ॥

फिर कमलकेसे नेत्रवाले प्रद्युम्नको यह बढाती हुई और कामदेवसे मोहित हुई सम्पूर्ण दानवी मायाभी इसको सिखाने लगी॥ १५॥जब यह कामदर्शन प्रद्युम्न यौवनमें स्थित हुआ तब स्त्रियोंके चिकीर्षितको जाननेवाला और सम्पूर्ण अस्त्रविधिका जाननेवाला हुआ॥ १६॥फिर मायावती कामिनी तिस कांतकी वांछा करती हुई चेष्टितोंसे देखती हुई; और मंद२ हँसती हुई लोभ करने लगी; तब सुन्दर हासवाली तिस देवीको युक्त हुई देखकर॥ १७॥प्रद्युम्न बोले; हे मायावति ! मातृभावको त्यागकर ऐसे अन्यथा कैसे वर्तती है; अहो तू दुष्टस्वभाववाली है स्त्रीभावमें तेरा चपल मन है ॥१८॥ हे सौम्ये ! जौनसी

सा च तं वर्द्धयामास कार्ष्णिं कमललोचनम् ॥ मायाश्चास्मै ददौ सर्वा दानवीः काममोहिता ॥ १५ ॥ स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः ॥ चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः ॥ १६ ॥ तं सा मायावती कान्तं कामयामास कामिनी ॥ इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत सस्मिता ॥ प्रसज्जन्तीं तु तां देवीं बभाषे चारुहासिनीम् ॥१७॥ प्रद्युम्न उवाच ॥ मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ॥ अहो दुष्टस्वभावासि स्त्रीत्वे चपलमानसा ॥१८॥ या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात्प्रवर्तसे ॥ नतु तेऽहं सुतः सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः ॥ १९ ॥ तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं कोऽन्वयं विधिः ॥ विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः खलु योषिताम् ॥२०॥ या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव ॥ यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे ॥२१॥ कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ एवमुक्ता तु सा भीरुः कामेन व्यथितेन्द्रिया ॥ २२ ॥ प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम् ॥ न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता ॥ २३ ॥

तू पुत्रभावको त्यागकर और मेरे विषे लोभसे प्रवृत्त होती है; इस कारण मैं तेरा पुत्र नहीं हूं; यह कौन विपरीत शील है ॥ १९ ॥ हे देवि ! मैं यह तत्त्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं;यह कौन विधि है तू कह;अहो निश्चय करके स्त्रियोंका स्वभाव विजलीके समान चंचल है ॥२०॥ जो पर्वतोंके अग्रभागमें मेघोंके समान पुरुषोंमें वर्तती है हे सौम्ये ! मैं तेरा पुत्र हूं अथवा नहीं सो ॥२१॥ कह क्या तेरी इच्छा है; हे राजन् ! इस प्रकार कहनेपर वह कामपीडित भीरु ॥२२॥ केशवके पुत्र अपने प्रियको एकांतमें वचन कहने लगी; हे कांत! तू न मेरा पुत्र है; और न शम्बर तेरा पिता है ॥२३॥

तू तो रुपवान् बली जातिसे वृष्णीका पुत्र है; और वृष्णियोंमेंभी रुक्मिणीके आनंद बढानेवाला वासुदेवका पुत्र है॥२४॥ सो तू जन्मा हुआही बालक सातवें दिन ऊंची शय्यापर सोते हुए॥२५॥ सूतिकास्थानसे यह मेरा भर्ता शम्बर बलवीर्यसे तेरे पिता वासुदेवके घरको धर्षण कर हर लाया ॥२६॥ इन्द्रके समान बली तुझको शंबरने हरण किया है; पीछे तेरी माता करुणकी तरह सोच करती हुई ॥२७॥ हे शूरवीर ! तेरी माता ऐसे दुःख पा रही है कि जिस प्रकार बछडेरहित गौ; और इसी प्रकार गरुडध्वज तेरे पिताकोभी अत्यन्त चिंता है ॥ २८ ॥ क्योंकि बालक अवस्थामें यहां

रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दनः ॥ पुत्रस्त्वं वासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्धनः ॥ २४ ॥ दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोऽपवाहितः ॥ सूतिकागारमध्यात्त्वं शिशुरुत्तानशायितः ॥२५॥ मम भर्त्रा हृतोऽसि त्वं बलवीर्यप्रवर्तिना ॥ पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥२६॥ पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्वं शम्बरेण ह ॥ सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती ॥२७॥ अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभा यथा ॥ सोऽपि शक्रादपि महान्पिता ते गरुडध्वजः ॥२८॥ इह त्वां नाभिजानाति बालमेवोपवाहितम् ॥ कान्त वृष्णिकुमारस्त्वं नहि त्वं शम्बरात्मजः ॥२९॥ वीर नैवंविधान्पुत्रान्दानवा जनयन्ति हि ॥ अतोऽहं कामयामि त्वां नहि त्वं जनितो मया ॥३०॥ रूपं ते सौम्य पश्यन्ति सीदामि हृदि दुर्बला ॥ यन्मे व्यवसितं कान्त यत्तु मे हृदि वर्तते ॥३१॥ तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसन्धातुमर्हसि ॥ एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम ॥३२॥ यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च ॥ श्रुत्वैवमखिलं सर्वं मायावत्या प्रभाषितम् ॥३३॥

॥३१३॥

आये इन्द्रतुल्य पराक्रमी तुमको नहीं जानते हैं; हे कांत ! तू वृष्णीका कुमार है; शंबरका पुत्र नहीं है ॥२९॥ हे वीर ! दानव इस प्रकारके पुत्रोंको नहीं उत्पन्न करते हैं; इसकारण मैं तेरी वांछा करती हूं; मुझसे तू उत्पन्न नहीं है ॥ ३० ॥ हे सौम्य ! मैं तेरे रूपको देख हृदयमें क्लेश पाती हूं; हे कांत ! जो मेरे निश्चित है सो मेरे हृदयमें वर्तता है ॥ ३१ ॥ हे वार्ष्णेय ! तिस निश्चितके प्रति संधान करनेको योग्य हो. यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तेरे आगे कहा है ॥ ३२ ॥ और जिस प्रकार तू मेरा पुत्र नहीं है सोभी कहा है. हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार मायावतीके सम्पूर्ण भाषितको

भगवान्‌का पुत्र प्रद्युम्न सुनकर ॥ ३३ ॥ तब वह क्रुद्ध हुआ शंबरको युद्धके निमित्त बुलाने लगा; और सम्पूर्ण मायाओंका जाननेवाला अपने नामको सुनाकर बुलाने लगा ॥ ३४ ॥ अहो बडे आश्चर्यकी बात है. हे दानव ! तू दुष्टात्मा केशवके पुत्र मेरेको हरकर निर्भय हुआ है, इस कारण अब मैं तुझे भय करूंगा ॥ ३५ ॥ कैसे क्रोधको प्राप्त हो और कैसे मैं तुझे मारूं; और कैसे वधको प्राप्त होगा, पहले मैं क्या करूं जिससे यह मंदबुद्धि कुपित होवे ॥ ३६ ॥ ऐसे विचार कर फिर कहने लगा कि; इसके सिंहकेतु भूषित विचित्र ध्वजा है सो तोरणको प्राप्त होकर जो कि मेरुशृंगके

चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत्॥सर्वमायास्वभिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मनः ॥३४॥ अहो दानव दुष्टात्मा केशवस्यात्मजं शिशुम् ॥ हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥ ३५ ॥ कथं वै क्रोधमागच्छेद्वध्यते वा कथं मया ॥ प्रथमं किं करिष्यामि येन कुप्यति मन्दधीः ॥३६॥ अस्ति चास्य ध्वजं चित्रं सिंहकेतुविभूषितम् ॥ तोरणं गृहमासाद्य उच्छ्रितं मेरुशृङ्गवत्॥३७॥एतदुन्मथ्य पातिष्ये भल्लेन निशितेन वै॥ ध्वजच्छेदं विदित्वाथ शम्बरो निष्क्रमिष्यति ॥३८॥ ततो युद्धेन हत्वाजौ गन्तास्मि द्वारकां प्रति॥इत्युक्त्वा सज्यमाचक्रे सशरं चापमोजसा॥३९॥चिच्छेद ध्वजरत्नं तु शम्बरस्य महाभुजः॥तच्छ्रुत्वा तु ध्वजच्छेदं प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ४० ॥ क्रुद्धस्त्वाज्ञापयामास पुत्रान्वै कालशम्बरः ॥ जिघांसध्वं महावीरा रौक्मिणेयं त्वरान्विताः ॥ ४१ ॥ नैनं वै द्रष्टुमिच्छामि मम विप्रियकारकम् ॥ श्रुत्वा तु शम्बराद्वाक्यं सुतास्ते शम्बरस्य ह ॥ ४२ ॥

समान ऊंचा है॥३७॥सो इसको मथकर तीक्ष्ण भालेसे गिराऊंगा पश्चात् ध्वजाको टूटा हुआ जानकर यह शंबर निकलकर शीघ्रही आवेगा ॥३८॥ फिर युद्धसे इसको मारकर द्वारकामें चला जाऊंगा;हे राजन् ! इस प्रकार कहकर प्रद्युम्न शरसहित धनुषको सज्जी कर॥३९॥इस महाभुज प्रद्युम्नने शंबरके ध्वजरत्नको छेदन कर दिया; फिर महात्मा प्रद्युम्नसे ध्वजच्छेद जानकर ॥ ४० ॥ क्रुद्ध हुआ कालशंबर पुत्रोंको आज्ञा कर बोला; हे महावीर ! बहुत वेगसे तुम प्रद्युम्नको मार डालो ॥ ४१ ॥ शंबर कहने लगा कि,इसके प्यार करनेवालेको मैं देखा नहीं चाहता हूं;ऐसे शंबरके वचन

सुनकर ॥४२॥ तिसके पुत्र कवच धारण करके प्रद्युम्नके मारनेके निमित्त निकले.चित्रसेन, अतिसेन, विष्वक्सेन और गद ॥ ४३ ॥ श्रुतसेन सुषेण सोमसेन मन सेनानी सैन्यहंता सेनाहा और सैनिक ॥ ४४ ॥ सेनस्कंध, अतिसेन, सेनक, जनक, सुत और सकाल विकल शांत और विभु शांतांतकर ॥ ४५ ॥ कुंभकेतु और सुदंष्ट्र, केशि ये सम्पूर्ण और इन्हीसे आदि लेकर अन्य चक्र तोमर शूल पट्टिश और परश्वध इन शस्त्रोंको ॥४६॥ लेकर प्रसन्न हुए परमक्रोधसे व्याप्त हुए योध शत्रुको बुलाते हुए निकले;और निकलकर संग्राममें स्थित हुए ॥४७॥ महाबाहु प्रद्युम्न धनुषको लेकर और

संनद्धा निर्ययुर्हृष्टाः प्रद्युम्नवधकांक्षया ॥ चित्रसेनोऽतिसेनश्च विष्वक्सेनो गदस्तथा ॥४३॥ श्रुतसेनः सुषेणस्तु सोमसेनो वन-
स्तथा ॥ सेनानीः सैन्यहन्ता च सेनाहा सैनिकस्तथा ॥ ४४ ॥ सेनस्कन्धोऽतिसेनश्च सेनको जनकः सुतः ॥ सकालो विकलः
शान्तः स शान्तान्तकरो विभुः ॥४५॥ कुम्भकेतुः सुदंष्ट्रश्च केशिरित्येवमादयः ॥ चक्रतोमरशूलानि पट्टिशानि परश्वधान् ॥४६॥
गृहीत्वा निर्ययुर्हृष्टा मन्युना परमाप्लुताः ॥ आह्वयन्तममित्रं वै तस्थुः सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्तु महाबाहू रथमारुह्य
सत्वरम् ॥ निर्ययौ चापमादाय सङ्ग्रामाभिमुखस्तदा ॥ ४८ ॥ ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ शम्बरस्य तु पुत्राणां
केशवस्य च सूनुना ॥ ४९ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः समहोरगचारणाः ॥ देवराजं पुरस्कृत्य विमानाग्रेषु धिष्ठिताः ॥ ५० ॥
नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहा हूहूश्च गायकाः ॥ अप्सरोभिः परिवृताः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५१ ॥ देवराजप्रतीहारो गन्धर्वश्चित्रमद्भु-
तम् ॥ शशंस देवराजाय वज्रिणे तद्विचेष्टितम् ॥ ५२ ॥

रथमें बैठ पश्चात् शीघ्रही संग्रामके सन्मुख गये॥४८॥इसके उपरान्त शंबरके पुत्रोंका और केशवके पुत्रका लोमहर्षण तुमुल युद्ध होने लगा ॥४९॥ फिर देवता गंधर्व महोरग चारण ये सम्पूर्ण इन्द्रको आगे करके विमानोंमें बैठकर आये ॥ ५० ॥ नारद तुम्बरु हाहा हूहू यह देवताओंके गंधर्वभी अप्सराओंसहित आये॥५१॥और देवराजका द्वारपाल गंधर्व वज्री देवराजसे ऐसा युद्ध कभीनहीं हुआ यह आश्चर्यविचेष्टित इन्द्रसे कहने लगा॥५२॥

जन्मेजय कहते हैं कि हे मुने ! शंबरके तो सौ पुत्र और कृष्णचन्द्रका एक पुत्र सौ युद्ध करते हुओंसे किस प्रकार विजयको प्राप्त हुआ ॥५३॥ तिसका ऐसा वचन सुनकर और फिर बलसूदन इन्द्र हँसकर वचन कहने लगे कि इसके पराक्रम सुनो॥५४॥हे भाई ! यह पहले कामदेव था और महादेवजीने क्रोधरूप अग्निसे मार दिया, जब कामदेवकी स्त्री रतिने महादेवजीको प्रसन्न करा तब इसको यह वरदान दिया कि, ॥५५॥ हे रते ! द्वारकामें मानुषदेह विष्णु होंगे सो यह काम तिसके पुत्रभावको प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५६ ॥ यह महायशा त्रैलोक्यमें अनंगनामसे विख्यात

शम्बरस्य शतं पुत्रा एकः कृष्णस्य चात्मजः ॥ बहूनां युध्यतामेषः कथं विजयमाप्नुयात् ॥५३॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य प्रहस्य बलसूदनः उवाच वचनं चेदं शृणु योऽस्य पराक्रमः ॥ ५४ ॥ कामोऽयं पूर्वदेहे तु हरक्रोधाग्निना हतः ॥ रत्या प्रसादितो देवः कामपत्न्या त्रिलोचनः ॥ परितुष्टेन देवेन वरमस्याः प्रदीयते ॥५५॥ विष्णुर्मानुषदेहस्तु द्वारकायां भविष्यति ॥ तस्य पुत्रत्वमस्यैव भविष्यति न संशयः ॥५६॥ अनङ्ग इति विख्यातस्त्रैलोक्ये तु महायशाः ॥ तत्रोत्पन्नो महातेजाः शम्बरं घातयिष्यति ॥५७॥ सप्ताहे जातमात्रे तु रुक्मिण्याः क्रोडसंस्थितम् ॥ आस्थाय शम्बरो मायां प्रद्युम्नमपनेष्यति ॥५८॥ तद्गच्छ शम्बरगृहं भार्या मायावती भव ॥ मायारूपप्रतिच्छन्ना शम्बरं मोहयिष्यसि ॥५९॥ तत्र त्वमात्मनः कान्तं बालरूपं विवर्द्धय ॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु शम्बरं निहनिष्यति ॥६०॥ ततस्त्वया सहानङ्गो द्वारकां वै गमिष्यति ॥ रमिष्यति त्वया सार्द्धं शैलपुत्र्या यथा ह्यहम् ॥ ६१ ॥ एवमादिश्य देवेशो जगाम पुरुषोत्तमः ॥ कैलासं मेरुसंकाशं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ६२ ॥

होगा और वहां उत्पन्न हुआ यह महातेजा शंबरको मारेगा ॥५७॥ और रुक्मिणीसे जन्म होतेही सात दिनकेको शंबर अपनी मायासे प्रद्युम्नको ले जायगा ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले; इस कारण हे रते ! तू शंबरके घर जा और मायावती हो; और मायारूपसे प्रतिच्छन्न हुई शंबरको मोह प्राप्त करना॥५९॥हे रते ! वहां तू अपने कांत बालरूपको बढा; जब वह तेरा कांत यौवनको प्राप्त होकर शंबरको मारेगा॥६०॥तब तेरे सहित वह अनंग द्वारकाको प्राप्त होगा; और हे रते ! तेरे साथ ऐसे रमण करेगा कि जिस प्रकार शैलपुत्रीके साथ मैं करता हूं॥६१॥देवेश पुरुषोत्तम महादेवजी ऐसे आज्ञा,

देकर सिद्ध चारणोंसे सेवित और सुमेरुकेसी कांतिवाले कैलासको गये॥६२॥काम और पत्नी रतिभी उमाके पति महादेवजीको नमस्कार करकेकालके अंतको देखती हुई शंबरके गई ॥ ६३ ॥ और यह विचारती हुई कि महाबाहु प्रद्युम्न पुत्रोंसहित उस दुरात्माको कब मारेगा ॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां शम्बरवधे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥वैशंपायनजी बोले; हे राजन् जनमेजय ! तिसके उपरान्त तिन शंबरके पुत्रोंका और रुक्मिणीके पुत्रका संग्राम होने लगा॥१॥पीछे क्रोधित हुए महादैत्य शरशक्ति फरसा चक्र तोमर कुंत भुशुंडी और मुसल

कामपत्नी प्रणम्याथ देवदेवमुमापतिम् ॥ जगाम शम्बरगृहं कालस्यान्त प्रतीक्षती॥६३॥ एवमेष महाबाहुः शम्बरं निहनिष्यति ॥ सह पुत्रेण प्रद्युम्नो हन्ता तस्य दुरात्मनः ॥६४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रवृद्धं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ शम्बरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धा महादैत्याः शरशक्तिपरश्वधान् ॥ चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीर्मुशलानि च ॥ २ ॥ युगपत्पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिताः ॥ कार्ष्णायनिस्तु संक्रुद्धः सर्वास्त्रधनुषश्च्युतैः॥३॥एकैकं पञ्चभिः क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्द्धनि ॥ पुनरेवासुराः क्रुद्धाः सर्वे ते कृतनिश्चयाः॥४॥ववृषुः शरजालानि प्रद्युम्नवधकांक्षया ॥ ततः प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्वरः॥५॥शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान्महौजसः ॥ ततोऽपरेण भल्लेन कुपितः केशवात्मजः ॥ ६ ॥ चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यवान् ॥ ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुद्ध्यत॥७॥शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावन् जिघांसितुम्॥ततः संधाय बाणांस्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुकाः॥८॥

इन सम्पूर्ण शस्त्रोंको॥२॥प्रद्युम्नके ऊपर एकवार गेरते हुए; तब यह प्रद्युम्न क्रोधकर एक एकको॥३॥पांच पांच बाणोंसे छेदन करने लगे पश्चात् कृतनिश्चय वे असुर फिर क्रुद्ध हुए॥४॥और प्रद्युम्नके मारनेकी इच्छा करके शरजालोंकी वर्षा करने लगे, इसके उपरान्त अनंगने कुपित होकर और धनुषको लेकर शीघ्रही ॥ ५ ॥ बडे पराक्रमी शंबरके दश पुत्रोंको मार डाला;और फिर कुपित हुए केशवके पुत्र प्रद्युम्नने भालेसे तत्काल ॥ ६ ॥ चित्रसेनके शिरको छेदन कर डाला तिसके उपरान्त हतशेष दानव इकट्ठे होकर युद्ध करने लगे॥७॥और प्रद्युम्नके मारनेकी इच्छा करने लगे, शरों

की वर्षा करते हुए सन्मुख दौडे ॥ ८ ॥ पश्चात् क्रीडा करते हुए महातेजस्वी प्रद्युम्नने दानवोंके शिरोंको छेदन कर डाला ॥ ९ ॥ ऐसे उस युद्धमें धन्वियोंके मध्यमें सौदानवोंको मारकर और फिरयुद्धकी वांछा करते हुए प्रद्युम्नने संग्रामके बीचमें स्थित हुए,पश्चात् शम्बर दैत्य सौ पुत्रोंको हत जानकर क्रोधकर ॥१०॥ सारथिको प्रेरण किया;हेसारथे ! मेरे रथको जोड;सारथि राजाके यह वचन सुन शिरसे पृथ्वीमें प्रणाम करके ॥ ११ ॥ फिर सुसमाहित और सहस्रमृगविशषोंसे युक्त और सेना करके भूषित और सर्पराजकी ध्वजासे भूषित॥१२॥शार्दूलचर्मसे वेष्टित किंकिणीजालोंकी मालावाले

क्रीडन्निव महातेजाः शिरांस्येषामपातयत् ॥ निहत्य समरे सर्वान् शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ९ ॥ प्रद्युम्नः समराकांक्षी तस्थौ संग्राममूर्द्धनि ॥ हतं पुत्रशतं श्रुत्वा शम्बरः क्रोधमादधे ॥१०॥ सूतं संचोदयामास रथं मे संप्रयोजय ॥ राज्ञो वाक्यं निशम्याथ प्रणम्य शिरसा भुवि ॥११॥ ससैन्यं नोदयामास रथं स सुसमाहितम् ॥ युक्तमृष्यसहस्रेण सर्पराजसकेतनम् ॥१२॥ शार्दूलचर्म संविष्टं किङ्किणीजालमालिनम् ॥ ईहामृगगणाकीर्णं पङ्क्तिभक्तिविराजितम् ॥ १३ ॥ ताराचित्रपिनद्धाङ्गं स्वर्णकूबरभूषितम् ॥ सुपताकमहोच्छ्रायं मृगराजोग्रकेतनम् ॥१४॥ सुविभक्तवरूथं च लोहेषावज्रकूबरम्॥मन्दरोदग्रशिखरं चारुचामरभूषितम् ॥१५॥ नक्षत्रमालापिहितं हेमदण्डसमाहितम् ॥ विराजमानं श्रीमन्तमारोहच्छम्बरो रथम् ॥१६॥ काञ्चनं चित्रसन्नाहं धनुर्गृह्य शरांस्तथा ॥ प्रस्थितः समराकांक्षी मृत्युना परिचोदितः ॥ १७ ॥

ईहामृगोंसेयुक्त पंक्तियोंसे भूषित॥१३॥और दश ऊपर२कोठोंसे भूषित और ताराचक्रोंसे भूषित चक्रोंवाला बडी पताकाओंसे ऊंचा मृगराजके समान उग्रस्थानवाला ॥१४॥ विभक्त हुए वरूथ लोहे और वज्रके कूबरसे युक्त मंदिरके समान ऊंचे शिखर और सुन्दर और नक्षत्रमालासे पिहित॥१५॥ और सुवर्णदंडसे समाहित और श्रीमान् और अतिविराजमान रथको सारथि जोडकर पश्चात् शंबरकोबैठाय रथको चलाने लगा ॥ १६ ॥ फिर चित्रसन्नाह कांचन धनुषको लेकर और तैसेही शरोंको ग्रहण करके मृत्युसे प्रेरित किया युद्धकी वांछा करता हुआ शम्बर स्थित हुआ ॥ १७ ॥

और दुर्धर केतुमाली शत्रुहन्ता प्रमर्दन चार मंत्रियोंके सहित और बहुतसी सेनासे युक्त ॥ १८ ॥ ऐसे स्थित हुआ इन अमात्यों सहित युद्धकी वांछा करता हुआ यह शम्बर रणमें स्थित हुआ, दश हजार हस्ती और दो सौ रथ ॥१९॥ आठ हजार घोडे और दश लक्ष पदाति इतनी सेनासे परिवृत हुआ शम्बर युद्धको निकला ॥२०॥ और पश्चात् शम्बरके संग्राममें उत्पात उठे; उस समयमें आकाश गृध्र और चक्रोंसे व्याप्त हो गया; और संध्यासमयकेसे मेघोंका शब्द हुआ ॥२१॥ और वज्रोंसहित मेघ कठोर शब्द करने लगे और आकाशसे वज्रपात हुआ और गीदडी अमंगल

चतुर्भिः सचिवैः सार्द्धं सैन्येन महता वृतः ॥ दुर्धरः केतुमाली च शत्रुहंता प्रमर्दनः ॥१८॥ एतैः परिवृतोमात्यैर्युयुत्सुः प्रस्थितो रणे ॥ दशनागसहस्राणि रथानां द्वे शते तथा ॥ १९ ॥ हयानां चाष्टसाहस्रैः प्रयुतैश्च पदातिनाम् ॥ एतैः परिवृतो योधैः शम्बरः प्रययो तदा ॥ २० ॥ प्रयातस्य तु संग्रामे उत्पाता बहवोऽभवन् ॥ गृध्रचक्राकुले व्योम्नि संध्याकाराभ्रनादितम् ॥ २१ ॥ गर्जन्ति परुषं मेघा निर्घातश्चम्बरात्पतत् ॥ शिवा विनेदुरशिवं सैन्यं संकालयन्महत् ॥ २२ ॥ ध्वजशीर्षेऽपतद्गृध्रः कांक्षन्वै दानवासृजम् ॥ रथाग्रे पतितश्चास्य कबन्धो भुवि दृश्यते ॥ २३ ॥ वीचीकूचीति वाशन्ति शम्बरस्य रथोपरि ॥ स्वर्भानुग्रस्त आदित्यः परिघैः परिवेष्टितः ॥२४॥ स्फुरते नयनं चास्य सव्यं भयनिवेदनम् ॥ बाहुः प्रकम्पते सव्यः प्रास्खलन्रथवाजिनः ॥२५॥ ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि निपतितः शम्बरस्य सुरारिणः ॥ ववर्ष रुधिरं देवः शर्कराङ्गारमिश्रितम् ॥ २६ ॥

शब्द करने लगी; और सेना क्षुभित होने लगी ॥२२॥ और तिस समयमें दानवोंके रुधिरकी वांछा करते हुए गृध्र ध्वजाके शिरपर गिरे;और तब रथके आगे पडा पृथ्वीमें शम्बरका कबंध दीखने लगा॥२३॥और शम्बरके रथपर वीची कूची शब्द करते हुए पक्षी वास करने लगे; और राहुग्रस्त आदित्य हो गया; और मूसलोंसे वेष्टित हुआ ॥२४॥ और इस शम्बरके भय निवेदन करनेवाला वाम नेत्र फडकने लगा;और वांई भुजा फडकने लगी ॥२५॥ और देवशत्रु शम्बरके मस्तकपर काग बैठ गया; और तब इन्द्रदेवता शर्करा और अंगारसहित रुधिरकी वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥

और रणमें सहस्रों मुंड गिरने लगे; और सारथिके हाथसे घोडोंका चाबुक गिर पडा ॥ २७ ॥ प्राप्त हुए उत्पातोंको यह शम्बर नहीं गिनकर प्रद्युम्नके मारनेके वास्ते क्रोधित होकर शम्बर चला ॥ २८ ॥ भेरी मृदंग शंख पणव डफ दुन्दुभि इनके एकवार शब्द होनेसे पृथ्वी काँपने लगी ॥ २९ ॥ और तिस अत्यन्त शब्द करके त्रासको प्राप्त हुए मृग पक्षी चारों तरफ दौडने लगे ॥ ३० ॥ रणके मध्यमें स्थित हुआ प्रद्युम्न शत्रुकी मृत्युको विचारता हुआ असंख्य सेनासे परिवृत हुआ युद्धको तैयार हुआ ॥ ३१ ॥ पीछे क्रुद्ध हुआ यह शंबर सहस्रों बाणोंसे प्रद्युम्नको

उल्कापातसहस्राणि निपेतू रणमूर्द्धनि ॥ प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सारथेर्हययायिनः ॥ २७ ॥ एतानचिन्तयित्वा तु उत्पातान्समुपस्थितान् ॥ प्रययौ शम्बरः क्रुद्धः प्रद्युम्नवधकांक्षया ॥ २८ ॥ भेरीमृदङ्गशङ्खानां पणवानकदुन्दुभेः ॥ युगपन्नाद्यमानानां पृथिवी समकम्पत ॥ २९ ॥ तेन शब्देन महता संत्रस्ता मृगपक्षिणः ॥ समन्ताद्दुद्रुवुस्तस्माद्भयविक्लवचेतसः ॥ ३० ॥ रणमध्ये स्थितः कार्ष्णिश्चिन्तयन्निधनं रिपोः ॥ सैन्यैः परिवृतोऽसङ्ख्यैर्युद्धाय कृतनिश्चयः॥३१॥क्रुद्धः शरसहस्रेण प्रद्युम्नं समताडयत् ॥ संप्राप्तांश्चैव तान्बाणांश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नो धनुरादाय शरवर्षं मुमोच ह ॥ तस्मिन् सैन्ये न कोऽप्यस्ति यो न विद्धः शरेण वै ॥३३॥ प्रद्युम्नशरपातेन तत्सैन्यं विमुखीकृतम् ॥ शम्बरस्य तथाभ्याशे स्थितं संहृत्य भीतवत् ॥ ३४ ॥ स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥ आज्ञापयामास तदा सचिवान्दानवेश्वरः ॥ ३५ ॥

ताडना करने लगा और उन्होंने लघुहस्ततासे उन बाणोंको छेदन किया ॥ ३२ ॥ और प्रद्युम्न धनुषको लेकर तिसके बाणोंको काट पश्चात् शरोंकी वर्षा करने लगा जिससे उस सेनामें ऐसा प्रद्युम्नने कोई नहीं छोडा कि जो शरसे नहीं बींध दिया हो ॥ ३३ ॥ और प्रद्युम्नके बाणोंके पडनेसे वह सेना विमुख हो गई, और डरकर सेना शंबरके पास खडी होगई ॥ ३४ ॥ तब क्रोधसे मूर्छित हुए दानवपति शंबरने अपनी सेनाको भागी हुई देख मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥ ३५ ॥

कि हे मंत्रियो ! शत्रुओंकी उपेक्षा करना योग्य नहीं शीघ्र मारो ॥ ३६ ॥ यह शत्रु व्याधिकी तरह अपेक्षित किया निश्चय शरीरका नाश कर देता है; इस कारण मेरे प्रियकी इच्छा करके इस दुर्मति पापीको मारो ॥ ३७ ॥ हे जनमेजय! तिसके बाद वे मंत्री तिस आज्ञाकोशिरसे ग्रहण कर और क्रोधित हुए शरोंकी वर्षा करते हुए रथोंको प्रेरने लगे ॥ ३८ ॥ क्रोधित हुआ प्रद्युम्न तिनकोयुद्धमें दौडता हुआ देखकर धनुष लेकर यह बली आगे स्थित हुआ ॥ ३९ ॥ और पच्चीस शरोंसे तिसको भेदन करते हुए, महातेजस्वी प्रद्युम्नने तिरसठ बाणोंसे केतुमालीको

गच्छध्वं मन्नियोगेन प्रहरध्वं रिपोः सुतम् ॥ नोपेक्षणीयः शत्रुर्वै वध्यतां क्षिप्रमेष वै ॥ ३६ ॥ उपेक्षित इव व्याधिः शरीरं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ तदेष दुर्मतिः पापो वध्यतां मत्प्रियेप्सया ॥ ३७ ॥ ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः शिरसा गृह्य शासनम् ॥ शरवर्षं विमुञ्चन्तस्त्वरिता नोदयन्रथान् ॥ ३८ ॥ तान् दृष्ट्वा धावतः संख्ये क्रुद्धो मकरकेतनः ॥ चापमुद्यम्य संभ्रान्तस्तथौ प्रमुखतो बली ॥ ३९ ॥ दुर्द्धरं पञ्चविंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ बिभेद सुमहातेजाः केतुमालिं त्रिषष्टिभिः ॥ ४० ॥ सप्तत्या शत्रुहन्तारं द्व्यशीत्या तु प्रमर्दनम् ॥ बिभेद परमामर्षी रुक्मिण्या नंदिवर्धनः ॥४१॥ ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः प्रद्युम्नं शरवृष्टिभिः ॥ एकैकशो बिभेदाजौ षष्टिभिः षष्टिभिः शरैः ॥४२॥ तानप्राप्तान् शरान्बाणैश्चिच्छेद मकरध्वजः ॥ ततोऽर्द्धचन्द्रमादाय दुर्द्धरस्य स सारथिम् ॥ ४३ ॥ जघान पश्यतां राज्ञां सर्वेषां सैनिकस्य वै ॥ चतुर्भिरथ नाराचैः सुपर्वैः कङ्कतेजितैः ॥ ४४ ॥

भेदन किया ॥ ४० ॥ और रुक्मिणीनंदनने क्रुद्धहो सत्तर बाणोंसे शत्रुहंताको और बयासी बाणोंसे प्रमर्दनको भेदन किया ॥ ४१ ॥ फिर वे मंत्री क्रुद्ध होकर प्रद्युम्नको शरोंकी वर्षासे छादित कर एक २ मंत्री साठ साठ बाणोंसे प्रद्युम्नको भेदन करने लगे ॥ ४२ ॥ फिर प्रद्युम्न प्राप्त हुए तिन बाणोंको बाणोंसे छेदन करने लगे; अर्धचंद्रबाणसे इसके सारथिको मार ॥ ४३ ॥ फिर सम्पूर्ण राजाओंके देखते हुए प्रद्युम्नने सुन्दर पौरियोंवाले चार बाणोंसे ॥ ४४ ॥

चार अश्वोंको भेदन कर डाला और एक बाणसे छत्र और एक बाणसे सुंदर ध्वज ॥ ४५ ॥ और साठ बाणोंसे प्रद्युम्नने रथके चक्र और धुरेको तोड डाला; पीछे बहुत तीक्ष्ण एक और बाण लेकर छोडा ॥४६॥ तिस अल्पजीवी शंबरके हृदयमें बाण लगतेही शोभा प्राण सत्य और प्रभा ये सम्पूर्ण विगत हो गये॥४७॥ और रथसे क्षीण हुए ग्रहके समान गिरा; जब यह दुर्धर शूरवीर दानव मार दिया तब दानवेश्वर॥४८॥ केतुमाली शरके समूहोंसे कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके सन्मुख दौडा और यह केतुमाली भ्रुकुटीसे भयानक प्रद्युम्नक सन्मुख ॥४९॥ मुख किये ठहर ठहर कहता हुआ दौडा

जघान चतुरः सोऽश्वान्दुर्द्धरस्य रथं प्रति ॥ एकेन योक्त्रं छत्रं च ध्वजमेकेन बन्धुरम् ॥४५॥ षष्ट्या च युगचक्राक्षं चिच्छेद मकरध्वजः ॥ अथापरं शरं गृह्य कङ्कपत्रं सुतेजितम् ॥४६॥ मुमोच हृदये तस्य दुर्द्धरस्याल्पजीविनः ॥ स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतप्रभः ॥४७॥ निपपात रथोपस्थात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ दुर्द्धरे निहते शूरे दानवे दानवेश्वरः॥४८॥ केतुमाली शरव्रातैरभिदुद्राव कृष्णजम् ॥ प्रद्युम्नमथ संक्रुद्धो भ्रुकुटीभीषणाननः ॥४९॥ कृत्वाभ्यधावत्सहसा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ संक्रुद्धः कृष्णसूनुस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥५०॥ पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव यथा घनः ॥ विद्धो दानवामात्यः प्रद्युम्नेन धनुष्मता ॥५१॥ चक्रमादाय चिक्षेप प्रद्युम्नवधकांक्षया ॥ तं तु प्राप्तं सहस्रारं कृष्णचक्रसमद्युतिम् ॥५२॥ निपत्योत्पत्य सहसा सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ तेनैव तस्य चिच्छेद केतुमालेः शिरस्तदा ॥५३॥ तद्दृष्ट्वा कर्म विपुलं रौक्मिणेयस्य देवराट् ॥ विस्मयं परमं प्राप्तः सर्वैर्देवगणैः सह ॥५४॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव पुष्पवर्षैरवाकिरन् ॥ केतुमालिं हतं दृष्ट्वा शत्रुहन्ता प्रमर्दनः ॥ महाबलसमूहेन प्रद्युम्नमथ दुद्रुवे ॥ ५५ ॥

पश्चात् यह प्रद्युम्न क्रोधयुक्त होकर तिसपर शरोंकी वर्षा इस प्रकार करने लगा ॥ ५० ॥ कि जैसे वर्षाऋतुमें मेघ पर्वतपर वर्षा करता है पश्चात् धनुषवाले प्रद्युम्नसे वींधा हुआ इस दानवके मंत्रीने ॥५१॥ चक्र लेकर प्रद्युम्नक मारनेकी इच्छासे दौडा उस महाधारयुक्त चक्रको आता देखा ॥५२॥ तब सबोंको देखते हुए यह चक्र प्रद्युम्नपर पडने लगा; तब इन्होंने उछलकर चक्रको पकड तिससे उलटा केतुमालकाही शिर छेदन कर दिया॥५३॥ प्रद्युम्नके उस उत्तम कर्मको देवताओंसहित इन्द्र देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए॥५४॥ फिर केतुमालको देखकर गंधर्व और अप्सरा पुष्पोंकी वर्षा

करने लगे; और शत्रुहंता प्रमर्दन बहुतसी सेनाके समूहसे प्रद्युम्नको प्राप्त हुआ ॥५५॥ हेराजन्! वे सम्पूर्ण दैत्य गदा मूसल चक्र प्रास तोमर बाण भिंदिपाल कुहाडे और मुद्गर॥५६॥इन दीप्तशस्त्रोंको प्रद्युम्नके वधको एकवारही ऊपर गेरने लगे; और प्रद्युम्नभी तिनको अनेक प्रकारके शस्त्रजालोंसे॥५७॥हस्तलाघव दिखाते हुए छेदन करने लगे; और क्रुद्ध हुए प्रद्युम्नने सहस्रों हस्तियोंको और हस्तियोंके सवारोंको भेदन कर दिया॥५८॥ और रथ और सारथि घोडोंका मर्दन करने लगा; और शरोंके समूहोंसे शत्रुओंको गिराते हुए आप अविद्ध रहे॥५९॥इस प्रकार सम्पूर्ण सैन्यको

ते गदां मुशलं चक्रं प्रासतोमरसायकान् ॥ भिन्दिपालान् कुठारांश्च भास्वरान् कूटमुद्गरान् ॥ ५६ ॥ युगपत्संक्षिपन्ति स्म वधार्थं कृष्णनन्दने ॥ सोऽपि तान्यस्त्रजालानि शस्त्राजालैरनेकधा ॥५७॥ चिच्छेद बहुधा वीरो दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ गजान् सोऽभ्यहनत् क्रुद्धो गजारोहान् सहस्रशः ॥ ५८ ॥ रथान् सारथिभिः सार्द्धं हयांश्चैव ममर्द ह ॥ पातयंस्तान् शरव्रातैर्नाविद्धः कश्चिदीक्ष्यते ॥ ५९ ॥ एवं सर्वाणि सैन्यानि ममन्थ मकरध्वजः ॥ नदीं प्रावर्तयद्घोरां शोणिताम्बुतरङ्गिणीम् ॥ ६० ॥ मुक्ताहारोर्मिबहुलां वसामेदोऽस्थिपङ्किनीम् ॥ छत्रद्वीपशरावर्तां रथैः पुलिनमण्डिताम् ॥ ६१ ॥ केयूरकुण्डलाकूर्मां ध्वजमत्स्यविभूषिताम् ॥ नगग्राहवतीं रौद्रीं मत्स्यकूर्मविभूषिताम् ॥ ६२ ॥ केशशैवलसंछन्नां शोणिसूत्रमृणालिकाम् ॥ नराननसुपद्मां च हंसचामरवीजिताम् ॥६३॥ शिरस्तिमिसमाकीर्णां शोणितौघप्रवार्तिनीम् ॥ नदीं दुस्तरणीं भीमामनङ्गेन प्रवर्तिताम् ॥६४॥ दुष्प्रेक्ष्यां दुर्गमां रौद्रां हीनतेजः सुदुस्तराम् ॥ शस्त्रग्रहावतीं घोरां यमराष्ट्रविवर्द्धनीम् ॥ ६५ ॥

मथकर प्रद्युम्नने घोर रुधिरकी तरंगवाली नदी प्रवृत्त करी॥६०॥जो घोरहारोंके तरंगोंवाली वसा मेद और अस्थिरूप कीचवाली; छत्र द्वीपशरोंसे आवर्तमान रथ और पुलिनसे मंडित ॥ ६१॥ केयूर कुंडलरूपी कूर्मध्वजारूपी मत्स्योंसे व्याप्त, नागरूपी ग्राहसे रौद्र मत्स्यकूर्मसे विभूषित ॥ ६२ ॥ केशरूप शैवालसे व्याप्त श्रोणिसूत्ररूप कमलकी नालवाली और मनुष्योंके सुन्दरमुख कमलोंवाली हंस चामरोंसे वीजित ॥ ६३ ॥ शिररूप तिमिजीवोंसे व्याप्त रुधिरके समूहको प्रवृत्त करनेवाली दुस्तर घोर नदी प्रद्युम्नने प्रवृत्त की॥६४॥ उस दुःप्रेक्ष्य दुर्गम और रौद्रहीन तेजोंको दुस्तर शस्त्र-

रूप ग्राहोंवाली और यमराष्ट्रको बढानेवाली ॥ ६५ ॥ नदीमें रुक्मिणीके श्रीमान् पुत्र प्रद्युम्न धनुष लिये अवगाहन करने लगे; और उस शत्रुहन्ताके निकट प्राप्त हो बाणप्रहार किये ॥ ६६ ॥ तब वह शत्रुसूदन बाण वर्षाने लगे उनका शर प्रद्युम्नके हृदयपर गिरा ॥ ६७ ॥ परन्तु तिस बाणसे बंधे हुएभी प्रद्युम्न नहीं कंपित हुए; तब मारनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुहंताके अर्थ उन्होंने शक्तिको ग्रहण किया; जब वह प्रद्युम्नकी फैंकी हुई शक्ति अग्निज्वालासे युक्त उसपर गिरी ॥ ६८ ॥ तब हृदयको भेदन करके इन्द्रके वज्रके समान शब्द किया ॥६९॥ तब वह शत्रुहंता भिन्नहृदय और

तत्र रुक्मिसुतः श्रीमान् विलोडयति धन्विनः ॥ शत्रुहन्तारमाश्रित्य शरानभ्यकिरन् बहून् ॥ ६६ ॥ शत्रुहन्ता पुनः क्रुद्धो मुमोच शरमुत्तमम् ॥ प्रद्युम्नस्य समासाद्य हृदये निपपात ह ॥ ६७ ॥ स विद्धस्तेन बाणेन प्रद्युम्नो न व्यकम्पत ॥ शक्तिं जग्राह बलवान् शत्रुहन्त्रे मुमूर्षवे ॥ ६८ ॥ सा क्षिप्ता रौक्मिणेयेन शक्तिर्ज्वालाकुला रणे ॥ पपात हृदयं भित्त्वा शक्राशनिसमस्वना ॥६९॥ स भिन्नहृच्च स्रस्ताङ्गो मुक्तमर्मास्थिबन्धनः ॥ पपात रुधिरोद्गारी शत्रुहन्ता महाबलः ॥ ७० ॥ पतितं शत्रुहन्तारं दृष्ट्वा तस्थौ प्रमर्दनः ॥ जग्राह मुशलं सोऽथ वचनं चेदमाददे ॥ ७१ ॥ तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिः करिष्यसि रणप्रियः ॥ मां योधयस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं न भविष्यसि ॥ ७२ ॥ वृष्णिवंशकुले जातः शत्रुरस्मत्पिता तव ॥ पुत्रं हन्तास्म्यहं तस्य ततोऽसौ निहतो भवेत् ॥ ७३ ॥ मृतेन तेन दुर्बुद्धे सर्वदेवक्षयो भवेत् ॥ दैतेया दानवाः सर्वे मोदन्ता हतशत्रवः ॥ ७४ ॥

स्रस्तांग और रुधिरका वमन करता हुआ यह महाबली पृथ्वीमें गिर पडा ॥७०॥ तब शत्रुहंताको गिरा हुआ देखकर प्रमर्दन स्थित हुआ; और मूसलको ग्रहण करके यह वचन कहने लगा ॥ ७१ ॥ हे रणप्रिय ! ठहर इन्होंके मारनेसे क्या है; हे दुर्बुद्धे ! मुझसे युद्ध कर जिससे तेरा नाश हो ॥ ७२ ॥ और हमारा शत्रु तेरा पिता वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुआ है; तिसके पुत्र तुझको जब मार दूंगा तब उसकी आप मृत्यु हो जायगी ॥ ७३ ॥ हे दुर्बुद्धे ! तिसके मरनेसे देवताओंका क्षय हो जायगा; और जब देवताओंका क्षय हो जायगा तब दैतेय

और दानव हतशत्रु हुए आनंद करेंगे ॥ ७४ ॥ और जब तू मेरे अस्त्रोंसे मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब तेरे रुधिरसे शंबरके पुत्रोंकी श्रेष्ठ क्रिया करूंगा ॥ ७५ ॥ और वह भीष्मककी पुत्री अब यौवनमें स्थित तुझे मरा हुआ सुनकर आज विलाप करेगी ॥ ७६ ॥ यह बात सुन चक्र धारण किये भी तुम्हारा पिता निष्फल आशावाला होगा और तुझे हत जानकर वह मंदधी प्राणोंकोभी त्याग देगा ॥ ७७ ॥ इस प्रकार कहकर प्रमर्दनने मूसलसे रुक्मिणीके पुत्रको ताडन किया फिर ताडित हुए प्रतापवान् प्रद्युम्नने ॥ ७८ ॥ उसके रथके भुजाओंसे उठा चूर्ण कर

हते त्वयि ममास्त्रेण त्वत्समुत्थैश्च शोणितैः ॥ शम्बरस्य तु पुत्राणां करोम्युदकसत्क्रियाम् ॥ ७५ ॥ अद्य सा भीष्मकसुता करुणं विलपिष्यति ॥ निहतं त्वां च श्रुत्वैव यौवनस्थं गतायुषम् ॥ ७६ ॥ स ते पिता चक्रधरो निष्फलाशो भविष्यति ॥ हतं त्वां स विदित्वाथ प्राणांस्त्यक्ष्यति मन्दधीः ॥ ७७ ॥ इत्युक्त्वा परिघेणाशु ताडयद्रुक्मिणीसुतम् ॥ ताडितो हि महातेजा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥७८॥ दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तस्यैव रथं मह्यां व्यचूर्णयत ॥ सोऽवप्लुत्य रथात्तस्मात्पदातिरवतस्थिवान् ॥ ७९ ॥ तां गदां गृह्य सहसा रौक्मिणेयमुपाद्रवत् ॥ तयैव गदया कामः प्रमर्दनमपोथयत् ॥ ८० ॥ हते प्रमर्दने दैत्ये दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः ॥ न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं सिंहत्रासाद्गजा इव ॥८१॥ सारमेयं यथा दृष्ट्वाऽविगणो वै पलायते ॥ तथा सेना विषीदन्ती प्रद्युम्नस्य भयार्दिता ॥ ८२ ॥ क्षतजादिग्धवस्त्रा वै मुक्तकेशा विशोभना ॥ रजस्वलेव युवतिःसेना समवगूहते ॥ ८३ ॥

दिया,तब प्रमर्दन रथसे उतर पदाति स्थित होगया॥७९॥और गदा लेकर प्रद्युम्नकी तरफ दौडा तब उसीकी गदाको प्रद्युम्नने ग्रहण कर प्रमर्दनको ताडन किया ॥८०॥ तब प्रमर्दनको सम्पूर्ण दैत्य मरा हुआ देखकर भाग गये और सन्मुख स्थित होनेको ऐसे समर्थ न हुए जैसे सिंहके त्राससे हाथी ॥८१॥ जैसे कुत्तेको देखकर भेडी भाग जाती है ऐसे प्रद्युम्नको देखकर सेना भाग गई ॥८२॥ घायल हुई और रुधिरसे व्याप्त वस्त्रोंवाली

सेना केश खोले रजस्वला स्त्रीकी समान शोभारहित हुई ॥८३॥ और प्रद्युम्नके शरोंसे भिन्न और युवतिसमान वेषवाली निर्दय धनुषोंसे पीड्यमान युद्धको नहीं देखती ऊंचे श्वास लेती सेना घरको जानेकी इच्छा करने लगी; और वहां स्थित होनेकी इच्छा नहीं की॥८४॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां शम्बरसैन्यभंगो नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! इसके उपरान्त क्रुद्ध हो शंबरने सारथिसे कहा कि; हे सारथे ! मेरे रथको शत्रुके सन्मुख स्थापन कर ॥ १ ॥ कि मैं इस प्रद्युम्नका नाश करूं, यह भर्ताके वचन सुन प्रिय करने-

मदनशरविभिन्ना सैनिका नभ्ययायाद्युवतिसदृशवेषा साध्वसैः पीडयमाना ॥ रतिसमरमशक्ता वीक्षितुं सोच्छ्वसन्ती स्वगृहगमनकामा नेच्छते स्थातुमत्र ॥८४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरसैन्यभङ्गो नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शंबरस्तु ततः कुद्धः सूतमाह विशाम्पते ॥ शत्रुप्रमुखतो वीर रथं मे वाहय द्रुतम् ॥१॥ यावदेनं शरैर्हन्मि मम विप्रियकारकम् ॥ ततो भर्तृवचः श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारकः॥२॥रथं संचोदयामास चामीकरविभूषितम् ॥ तं दृष्ट्वा रथमायान्तं प्रद्युम्नः फुल्ललोचनः ॥ ३ ॥ संदधे चापमादाय शरं कनकभूषितम् ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धः कोपयन् शंबरं रणे ॥ ४ ॥ हृदये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः ॥ रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोऽथ विचेतनः ॥ ५ ॥ स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय शंबरः ॥ विव्याध कार्ष्णि कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥ तानप्राप्तान् शरान्सोऽथ सप्तभिः सप्तधाच्छिनत् ॥ शंबरं च जघानाथ सप्तत्य निशितैः शरैः ॥ ७ ॥

वाला सारथि ॥२॥ सुवर्णभूषित रथको आगे चलाने लगा तब प्रफुल्ललोचन प्रद्युम्नने इस रथको आया हुआ देख ॥ ३ ॥ धनुषको लेकर सुवर्णभूषित बाणको चढाय तिस बाणको शम्बरकी ओर छोडकर क्रोध कराया ॥४॥ तब तिससे पीडित हुआ देवशत्रु रथशक्तिके आश्रय होकर विचेतन हो स्थित हुआ ॥ ५ ॥ फिर शम्बरने चेतनाको प्राप्त होकर मनुष ले तीक्ष्ण सात बाणोंसे प्रद्युम्नको भेदन किया ॥ ६ ॥ तो निकट न आते हुएही

तिन घोर बाणोंको सात बाणोंसे छेदन कर फिर तीक्ष्ण सत्तर बाणोंसे शम्बरको हनन किया ॥ ७ ॥ तब फिर कंकबर्हि पंखोंवाले सहस्र बाणोंसे क्रोध करके शम्बरको इस प्रकार विद्ध किया जैसे धाराओंसे पर्वत ॥ ८ ॥ और शरोंकी धारा दिशा विदिशाओंको आच्छादन करती हुई; अर्थात् दिशा विदिशा सब स्थान आच्छादन कर दिया ॥ ९ ॥ जब उन बाणोंसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और सूर्यभी नहीं दीखा तब वैद्युत अस्त्रसे शम्बरने तिस अंधकारको दूर करके॥ १०॥प्रद्युम्नके रथपर शरोंकी वर्षा कर दी; और प्रद्युम्नभी तिस अस्त्रजालको सुन्दर बाणोंसे छेदन करने लगे॥ ११॥

पुनः शरसहस्रेण कङ्कबर्हिणवाससा ॥ अहनच्छंबरं क्रोधाद्धाराभिरिव पर्वतम् ॥८॥ प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृताः ॥ स दिशो विदिशश्चैव शरधारा समावृणोत् ॥ ९ ॥ अन्धकारीकृतं व्योम दिनकर्ता न दृश्यते ॥ ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शंबर ॥१०॥ प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह ॥ तदस्त्रजालं प्रद्युम्नः शरेणानतपर्वणा ॥ ११ ॥ चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ हते तस्मिन्महावर्षे शराणां कार्ष्णिना तदा ॥१२॥ द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशंबरः ॥ द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्नः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १३ ॥ आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत् ॥ भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासङ्घातमुत्सृजत् ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे ॥ ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ॥ १५ ॥ सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान् वारणान्वारिदप्रख्यान्हयानुष्ट्रान्विशाम्पते ॥ १६ ॥ मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि ॥ गन्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान्खण्डशस्तदा ॥ १७ ॥

इस प्रकार प्रद्युम्न शरोंकी महावर्षा नष्ट कर हस्तलाघव दिखाते हुए बहुत प्रकारसे उसको छेदन करने लगे ॥१२॥ तब कालशम्बर मायासे वृक्षोंकी वर्षा करने लगा और वृक्षोंकी अति वर्षाको प्रद्युम्न देख क्रोधसे मूर्छित हो गये ॥१३॥ और आग्नेयास्त्रको छोडकर प्रद्युम्न तिन वृक्षोंका नाश करने लगे जब उनकी भस्म हो गई तब शिलाओंके समूहकी वर्षा करी ॥१४॥ प्रद्युम्नने शिलाओंकोभी वायव्यअस्त्रोंसे नष्ट कर दिया तब फिर वह देवशत्रु प्रतापवान् और मायाको रचने लगा॥१५॥हे राजन् ! तब सिंह, व्याघ्र,वराह, रीछ, वानर, हस्ती, अश्व और उष्ट्र ॥ १६ ॥ इन जीवोंको छोडने

लगा;तब शंबर धनुषको लेकर प्रद्युम्नके रथके ऊपर दौडने लगा;तिन सबोंको प्रद्युम्नने गंधर्व अस्त्रसे छेदन कर दिया॥१७॥जब प्रद्युम्नने वह सम्पूर्ण माया नष्टकर दी तब शम्बरतिसको नष्ट देख क्रोधसे मूर्छित हुआ और मायाको करने लगा॥१८॥भिन्नवदनवाले तरुण साठ२वर्षोंवाले पीलवानोंसे युक्त और रणमें चतुर हस्तियोंको छोडनेलगा ॥ १९ ॥ तब कमललोचन प्रद्युम्न तिस आती हुई मायाको देख सैंही मायाके छोडनेका विचार करने लगे॥२०॥जब प्रद्युम्नने यह सिंहमाया रची तब नागवती माया इस प्रकार नष्ट होगई जैसे सूर्यसे रात्रि ॥ २१ ॥ तब वह दानवोत्तम मायाको नष्ट देख

प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शम्बरः ॥ अन्यां मायां मुमोचाथ शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥१८॥ गजेन्द्रान्भिन्नवदनान्षाष्टिहायनयौवनान् ॥ महामात्रोत्तमारूढान्कलिपतान्रणकोविदान् ॥ १९ ॥ तामापतन्तीं मायां तु कार्ष्णिः कमललोचनः ॥ सैंहीं मायां समुत्स्रष्टुं चक्रे बुद्धिं महामनाः ॥२०॥ सा सृष्टा सिंहमाया तु रौक्मिणेयेन धीमता॥ माया नागवती नष्टा आदित्येनेव शर्वरी ॥२१॥ निहतां हस्तिमायां तु तां समीक्ष्य महासुरः ॥ अन्यां संमोहिनीं मायां सोऽसृजद्दानवोत्तमः ॥ २२ ॥ तां दृष्ट्वा मोहिनीं नाम मायां मयविनिर्मिताम् ॥ संज्ञास्त्रेण तु प्रद्युम्नो नाशयामास वीर्यवान् ॥२३॥ शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा ॥ सैंहीं मायां महातेजाः सोऽसृजद्दानवेश्वरः ॥ २४ ॥ सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥ अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत्तदा ॥ तेऽष्टपादा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे ॥ २५ ॥ सिंहान्विद्रावयामासुर्वायुर्जलधरानिव ॥ सिंहान्विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टपदेन वै ॥ २६ ॥

फिर संमोहिनी मायाको करने लगा ॥ २२ ॥ तब उस मोहिनी मायाको जो मयकी बनाई थी प्रद्युम्नने देखकर संज्ञास्त्रसे नष्ट कर दी ॥ २३ ॥ तब शम्बरने तिस मायाको नष्ट देख सही मायाकी रचना की ॥ २४ ॥ तब प्रद्युम्न सिंहोंको आते हुए देख गांधर्व अस्त्र लेकर शरभोंको रचने लगे ॥ २५ ॥ आठ २ पैरोंवाले शरभ नख और दंष्ट्राओंसे युद्ध करते हुए सिंहोंपर ऐसे दौडने लगे कि जैसे मेघोंपर वायु;तब मायाके अष्टापदोंसे सिंहोंको दोडते हुए देख ॥ २६ ॥

शम्बर यह विचारने लगा कि इसको मैं कैसे मारूं; अहो मैं बडा मूर्खस्वभाववाला हूं क्योंकि बालकहीमें इसको मैंने नहीं मारा ॥२७॥ और अब यह यौवनको प्राप्त हो गया, शस्त्र धारण कर लिये, इस शत्रुको अब मैं कैसे मारूंगा ॥ २८ ॥ जो देवदेव असुरघाती महादेवजीने दी थी वह पन्नगी नाम माया मेरे पास स्थित है उस मायाको मैं रचूंगा ॥ २९ ॥ तिस विषकी भरी मायाको करूंगा उससे यह मायामय महाबली दग्ध होगा ॥ ३० ॥ हे जनमेजय ! इस प्रकार विचार उसने विषज्वालासे युक्त पन्नगीमाया रची; तिस पन्नगमयीमायासे रथ और अश्व ॥ ३१ ॥ सारथिसहित

शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै ॥ अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः ॥२७॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि दुर्मतिः ॥ तत्कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम् ॥ २८ ॥ माया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा ॥ दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना ॥२९॥ तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम् ॥ तया दह्येत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली ॥३०॥ सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला ॥ तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम् ॥ ३१ ॥ ससूतं स हि प्रद्युम्नं बबन्ध शरबन्धनैः ॥ बध्यमानं तदा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः ॥३२॥ मायां संचिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम् ॥ सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना ॥३३॥ सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषाः ॥ भग्नायां सार्पमायायां प्रशंसन्ति सुरासुराः ॥३४॥ साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन ॥ यस्त्वया धार्षिता माया तेन स्म परितोषिताः ॥३५॥ हतायां सर्पमायायां शम्बरश्चिन्तयत्पुनः ॥ अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः ॥ ३६ ॥

प्रद्युम्नको शरबंधनोंसे बांध लिया; तब वृष्णिवंशवर्धन प्रद्युम्नने अपने आपको वध्यमान देखकर ॥ ३२ ॥ सर्पोंको नष्ट करनेवाली सौपर्णीमायाकी रचना की, महात्मा प्रद्युम्नने जब उस महामायाका चिन्तन किया ॥ ३३ ॥ तिस मायासे अनेक गरुड उत्पन्न हो गये; तिससे सम्पूर्ण महाविषके सर्प नष्ट हो गये; जब सर्पमाया नष्ट कर दी तब प्रद्युम्नको सुर और असुर सराहने लगे ॥ ३४ ॥ हे शूरवीर ! हे महाबाहो ! हे रुक्मिणीके आनंद बढानेवाले ! तैंने जो यह माया नष्ट की इससे हम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ जब सर्पमाया नष्ट कर दी तब फिर शम्बरने विचारा कि मेरे पास

सुवर्णसे भूषित कालदंडके समान कांतिवाला मुद्गर है ॥ ३६ ॥ जिसे देव दानव नहीं सह सकते; जिसे प्रसन्न होकरपार्वतीने दिया है ॥ ३७ ॥ हे शम्बर ! इस सुवर्णभूषित मुद्गरको तू ले तैंने बडा घोर तप किया है ॥ ३८ ॥ हे शम्बर ! इससे संपूर्ण असुरोंका मैंने नाश किया है; और इस मुद्गरसे बलवान् कामरूपी दानव ॥ ३९ ॥ शुंभ और निशुंभ दानवगणोंसहित मैंने मारे हैं. हे शंबर ! जब प्राणोंका संदेह तुमको हो तब अपने शत्रुके ऊपर छोडना योग्य है ॥ ४० ॥ इस प्रकार कहकर पार्वती देवी अंतर्धान हो गई;उस मुद्गरको मैं अपने शत्रुके अर्थ छोडूंगा ॥ ४१ ॥

तमप्रतिहतं युद्धे देवदानवमानवैः ॥ पुरा यो मम पार्वत्या दत्तः परमतुष्टया ॥३७॥ गृहाण शम्बरेमं त्वं मुद्गरं हैमभूषितम्॥मया सृष्टं स्वदेहे वै तपः परमदुश्चरम्॥३८॥मायान्तकरणं नाम सर्वासुरविनाशनम् ॥ अनेन दानवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ॥३९॥ शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया ॥ प्राणसंशयमापन्ने त्वया मोक्ष्यः स शत्रवे ॥४०॥ इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ तदहं मुद्गरं श्रेष्ठं मोचयिष्यामि शत्रवे ॥ ४१ ॥ तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत ॥ गच्छ नारद शीघ्रं त्व प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ॥४२॥ संबोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च मोक्षय ॥ वैष्णवास्त्रं प्रयच्छास्मै वधार्थं शंबरस्य च ॥ ४३ ॥ अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदिने ॥ एवमुक्तो मघवता नारदः प्रययौ त्वरन् ॥ ४४ ॥ आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम् ॥ कुमार पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम् ॥ प्रेषितं देवराजेन तव संबोधनाय वै ॥४५॥ स्मर त्वं पूर्वकं भावं कामदेवोऽसि मानद॥ हरकोपानलाद्दग्धस्तेनानङ्ग इहोच्यते ॥ ४६ ॥

हे जन्मेजय ! इस शंबरके विचारको इंद्रने जानकर नारदमुनिसे कहा; हे मुने नारद ! प्रद्युम्नके रथके समीप जल्दी जाओ ॥ ४२ ॥ तिस महाबाहुको संबोधन दो और शंबरके वधके निमित्त इसको वैष्णवास्त्र दो ॥ ४३ ॥ और इसको अवेध्य कवच दो; इन्द्रसे यह सुनकर नारदजी शीघ्र वहां गये ॥ ४४ ॥ पश्चात आकाशमें स्थित हुए नारदमुनि प्रद्युम्नसे कहने लगे;हे कुमार ! देवता और गंधर्वोंके प्रिय मुझे नारद मुनि जानो; हे कुमार ! तुमसे कुछ कहनेको इन्द्रने मुझे यहां भेजा है ॥ ४५ ॥ हे मानद ! तुम अपने पूर्वभावको स्मरण करो; तुम कामदेव महादेवजीके कोपरूप अग्निसे

दग्ध हो गये इस कारण अनंग कहे जाते थे ॥ ४६ ॥ हे कुमार ! तू वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुआ है;और रुक्मिणीसे उत्पन्न हुआ है केशवने तुमको उत्पन्न किया है ॥ ४७ ॥ हे मानद ! जब तुम सात दिनके थे तब यह शंबर तुमको सूतिकाघरसे ले गया था ॥ ४८ ॥ और शम्बरकेही वधके निमित्त तुमको हारा हुआ जान केशवने उपेक्षा की; क्योंकि देवताओंके कार्यकी सिद्धि होती है॥४९॥हे प्रद्युम्न ! जो यह शंबरकी भार्या मायावती है;इसको तुम अपनी पुरातन भार्या रति जानो ॥ ५० ॥ तेरी रक्षाके निमित्त यह शंबरके घरमें रही है; और तिस दुरात्मा शम्बरके शरीरकी

त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसंभवः ॥ जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे ॥४७॥ आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद ॥ सप्तरात्रे त्वसंपूर्णे सूतिकागारमध्यतः ॥४८॥ वधार्थं शम्बरस्य त्वं ह्रियमाणो ह्युपेक्षितः ॥ केशवेन महाबाहो देवकार्यार्थसिद्धये ॥४९॥ यैषा मायावती नाम भार्या वै शम्बरस्य तु ॥ रतिं तां विद्धि कल्याणीं तव भार्यां पुरातनीम् ॥५०॥ तव संरक्षणार्थाय शम्बरस्य गृहेऽवसत् ॥ मायां शरीरजां तस्य मोहनार्थं दुरात्मनः ॥ ५१ ॥ रतेः संपादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा ॥ एवं प्रद्युम्न बुद्ध्वा वै तत्र भार्या प्रतिष्ठिता॥५२॥हते त्वं शम्बरे वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे ॥ गृह्य मायावतीं भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥ गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम् ॥ शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥ ५४ ॥ शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया ॥ अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ॥५५॥ पार्वत्यां परितुष्टायां दत्तः शत्रुनिबर्हणः॥ अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः ॥ ५६ ॥

मायाही उसे मोहित करनेको मायावतीरूपसे रमण कराती है ॥५१॥ रतिके व्रत रखनेको वह सदैव उसके निकट जाती है. हे प्रद्युम्न ! ऐसे जानकर तेरी भार्या वहां स्थित हुई ॥५२॥ हे शूरवीर ! इस वैष्णवअस्त्रसे शंबरको मार और मायावतीको ग्रहण कर द्वारकामें जानेको योग्य है ॥५३॥ हे शत्रुसूदन ! इस वैष्णवअस्त्रको और कवचको ग्रहण करो;इन्द्रने तुम्हारे कारण यह भेजा है ॥५४॥ हे प्रद्युम्न ! मेरा और वाक्य सुनो, शंकारहित हो; वैसेही करो.हे प्रद्युम्न ! इस देवरिपु शम्बरके एक मुद्गर महान् है ॥ ५५ ॥ उसे प्रसन्न हुई पार्वतीने दिया है; सो वह मुद्गर शत्रुओंका नाश करने-

वाला है; और देवदानवोंसे संग्राममें अमोघ है॥५६॥सो तिस अस्त्रके प्रति घातके निमित्त तुम देवीजीका स्मरण करो.हे प्रद्युम्न ! रणके उत्साहवाले शूरवीरोंको वह महादेवी स्तुति करने योग्य है; तथा नमस्कार करनेके योग्य है॥५७॥सो संग्राममें रिपुके साथ यत्न करना योग्य है; हे जनमेजय ! नारदमुनि प्रद्युम्नसे यह वचन कहकर फिर इन्द्रके पास गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां नारदवाक्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥वैशंपायन बोले;हे जनमेजय ! इसके उपरान्त क्रुद्ध हो शम्बरने तिस मुद्गरको लिया; तब मुद्गरके ग्रहण करतेही बारह सूर्य

तदस्त्रप्रतिघातार्थं देवी त्वं स्मर्तुमर्हसि ॥ स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः ॥५७॥ तत्र वै क्रियतां यत्नः सङ्ग्रामे रिपुणा सह ॥ इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः ॥५८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं तं समाददे ॥ मुद्गरे गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिता ॥ १ ॥ पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम् ॥ उन्मार्गाः सागरा याताः संक्षुब्धाश्चापि देवताः ॥२॥ गृध्रचक्राकुलं व्योम उल्कापातो बभूव ह ॥ ववर्ष रुधिरं देवः पुरुषं पवनो ववौ ॥३॥ एवं दृष्ट्वा महोत्पातान्प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः ॥ अवतीर्य रथाद्वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥ ४ ॥ देवीं सस्मार मनसा पार्वतीं शङ्करप्रियाम् ॥ प्रणम्य शिरसा देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥ प्रद्युम्न उवाच ॥ ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः॥ नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः ॥६॥ नमः शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये ॥ नमस्ये शुम्भमथनीं निशुम्भमथनीमपि ॥ ७ ॥

उदय हुए ॥१॥ पर्वत और संपूर्ण वसुधातल कंपित हुआ और सागरोंने मार्ग छोड दिया;देवता संक्षुब्ध हो गये ॥ २ ॥ और आकाश, गृद्धचक्रोंसे आकुल हो गया और उल्कापात हुआ, और इन्द्रने रुधिरकी वर्षा की; और कठिन वायु चली ॥ ३ ॥ वेगवाले प्रद्युम्न उन उत्पातोंको देखकर और रथसे उतर अंजलि पुट बांधकर स्थित हुए॥४॥और मनसे शंकरकी प्रिया पार्वतीदेवीका स्मरण करने लगे; और शिरसे देवीको प्रणाम कर स्तुति करनेको प्रारंभ किया ॥ ५ ॥ कात्यायनीको नमस्कार है; गिरिशाको नमस्कार है, त्रैलोक्यमायाको नमस्कार है ॥६॥ शत्रुविनाशिनी देवीको नमस्कार है; और

गौरीको शिवप्रियाको नमस्कार है और शुंभनिशुंभोंको मथनेवाली देवीको नमस्कार है ॥ ७ ॥ कालरात्रिको प्रणाम है; कौमारी देवीको प्रणाम है और कांतारवासिनीको हाथ जोडकर प्रणाम है॥८॥और विंध्यवासिनी और शत्रुके दुर्गको नाश करनेवाली और रणप्रिया दुर्गा इन सम्पूर्णोंको मैं प्रणाम करता हूं; और महादेवी जया विजया ॥९॥ अपराजिता और अजिता और शत्रुनाशिनी और घंटाहस्ता इन देवियोंको मैं अंजलि बांधकर नमस्कार करता हूं और घंटामाला, कुला ॥१०॥ त्रिशूलिनी और महिषासुरघातिनी और सिंहासना और सिंहप्रवरकेतना ॥ ११ ॥ और एकानंशा

कालरात्रि नमस्तुभ्यं कौमार्यै च नमो नमः ॥ कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ विन्ध्यवासिनीं दुर्गघ्नां रणदुर्गां रणप्रियाम् ॥ नमस्यामि महादेवीं जयां च विजयां तथा ॥९॥ अपराजितां नमस्येहमजितां शत्रुनाशिनीम् ॥ घटाहस्तः नमस्यामि घण्टामालाकुलां तथा ॥ १० ॥ त्रिशूलिनीं नमस्यामि महिषासुरघातिनीम् ॥ सिंहाननां नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् ॥ ११ ॥ एकानंशां नमस्यामि गायत्रीं यज्ञसत्कृताम् ॥ सावित्रीं चापि विप्राणां नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ रक्ष मां देवि सततं सङ्ग्रामे विजयं कुरु ॥ इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा सप्रीतमानसा ॥ १३ ॥ उवाच वचनं देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन ॥ १४ ॥ वरं वरय वत्स त्वमोघं दर्शनं मम ॥ देव्यास्तु वचनं श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानसः॥१५॥ प्रणम्य शिरसा देवीं विज्ञप्तुमुपचक्रमे ॥ यदि त्वं देवि तुष्टासि दीयतां मे यदीप्सितम्॥१६॥

इन देवियोंको मैं नमस्कार करता हूं; और गायत्री यज्ञसत्कृता और सावित्री इन सम्पूर्णों देवियोंको मैं अंजलि बांधकर प्रणाम करता हूं ॥१२॥ हे देवि ! मेरी निरन्तर रक्षा कर और संग्राममें मेरी जय कर; हे जनमेजय ! इस प्रकार प्रद्युम्नके वचन सुन दुर्गा प्रसन्न ॥ १३ ॥ और प्रसन्न मनसे यह वचन कहने लगी;हे रुक्मिणीके आनंद बढानेवाले हे महाबाहो! देख २ ॥ १४ ॥ हे पुत्र ! तू वर मांग मेरे दर्शन वृथा नहीं जाते; देवीके इस प्रकारके वचन सुनकर रोमांच खडे हो गये ॥ १५ ॥ फिर शिरसे देवीको प्रणामकर यह कहने लगे; हे देवि ! जो तू प्रसन्न हुई है तो मुझे मनवांछित

वर दे ॥ १६ ॥ हे वरके देनेवाली!मैं यह वर मांगू हूं कि सम्पूर्ण शत्रुओंमें मेरी जय हो;और जो आत्मसंभव तेरा दिया शंबरके पास मुद्गर है ॥ १७॥ सो हे देवि!वह मेरे शरीरको प्राप्त होकर कमलोंकी माला हो जाय, यह वर दे. हे राजन् ! देवी तथास्तु अर्थात् ऐसेही हो यह कह वहीं अंतर्ध्यान हो गई ॥ १८ ॥ फिर महातेजा प्रद्युम्न प्रसन्न हुए रथमें बैठे और क्रोधमूर्छित शंबर तिस मुद्गरको ग्रहण कर ॥ १९ ॥ घुमाने लगा; और भ्रमाकर इस वीर्यवान् शंबरने प्रद्युम्नके हृदयमें फेंका तब वह मुद्गर प्रद्युम्नके पास गया हुआ कमलोंकी माला होकर॥२०॥प्रद्युम्नके कंठमें ऐसे विराजती हुई कि

वरं च वरदे याचे सर्वामित्रेषु मे जयः ॥ यस्त्वया मुद्गरो दत्तः शम्बरस्यात्मसंभवः ॥१७॥ एष मे गात्रमासाद्य माला पद्मवती भवेत् ॥ तथास्त्विवति च साप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १८ ॥ प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत् ॥ मुद्गरं तं गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥ भ्रामयित्वा स चिक्षेप प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान् ॥ स गत्वा मदनाभ्याशं मालाभूत्वा तु पौष्करी ॥२०॥ प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत ॥ नक्षत्राणां तु मालायां यथा परिवृतो विधुः ॥ २१ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ साधु साध्विति वाचोचुः पूजयन्केशवात्मजम् ॥ २२ ॥ मुद्गरं पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसन्निधौ ॥ वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन यथाहृतम् ॥ २३ ॥ संदधे चापमानम्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम् ॥ २४ ॥ तेन सत्येन बाणेन जहि त्वं शंबरं रणे ॥ इत्युक्त्वा चापमाकृष्य संधाय च महामनाः ॥ २५ ॥ चिक्षेप शंबरस्याथ दहँल्लोकत्रय यथा ॥ स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः ॥ २६ ॥

जिस प्रकार नक्षत्रोंकी मालासे भूषित चंद्रमा ॥२१॥ फिर देवता गंधर्व सिद्ध चारण परमर्षि ये संपूर्ण पुष्परूप मुद्गरको देखकर प्रद्युम्नको वाणियोंसे साधु २ अर्थात् बहुत अच्छा किया बहुत अच्छा किया यह कहकर सराहने लगे और वैष्णवास्त्र जो नारदजीने दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ तिसको धनुषपर चढाकर यह वचन बोले;हे बाण!तू इसे मार जो मैं रुक्मिणीका और केशवका पुत्र हूं॥२४॥ तो इस सत्यसे मैं इसे मारूं;हे जनमेजय ! ऐसे यह महामना प्रद्युम्न धनुषको चढाय॥२५॥तीनों लोकोंको दहते हुएके समान बाण शंबरपर छोडा; इस प्रकार वृष्णिसिंह प्रद्युम्नका छोडा हुआ

यह क्रव्यादमोहन बाण॥२६॥शंबरके हृदयको भेदन करके पृथ्वीपर आकर पडा न तो शंबरका मांस रहा और न नसें रहीं न हड्डी रही न रुधिर रहा ॥२७॥ वैष्णवास्त्रके तेजसे संपूर्ण भस्म हो गया, और जब यह महाकाय अधम दानव शंबर मर गया ॥२८॥ तब देव और गंधर्व प्रसन्न हुए; और अप्सरा नृत्य करने लगीं;उर्वशी, मेनका, रंभा और विप्रचित्ति, तिलोत्तमा ॥ २९ ॥ और यह संपूर्ण प्रसन्नमन हो नृत्य करने लगीं; और स्थावर जंगम जीव प्रसन्न हुए; और देवताओंसहित इन्द्र प्रसन्न हो प्रद्युम्नपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे; शत्रुभयसे रहित हुए देवता

हृदयं शंबरस्याथ भित्त्वा धरणिमागतः ॥ न चास्य मांसं न स्नायुर्नास्थि न त्वङ्न शोणितम् ॥ २७ ॥ सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं वैष्णवास्त्रस्य तेजसा ॥ हते दैत्ये महाकाये दानवे शंबरेऽधमे ॥ २८ ॥ जहृषुर्देवगन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ उर्वशी मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२९॥ ननृतुर्हृष्टमनसो जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह ॥ प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्य प्रहृष्टवत् ॥३०॥ अथ समरहते तु दैत्यराजे मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवास्त्रैः ॥ विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मुर्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः ॥ ३१ ॥ सच समरपरिश्रमं वहन्वै नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः ॥ प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्टस्त्वरितपदं रतिदर्शनं चकार ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ समाप्तमायो मायाज्ञो विक्रान्तः समरेऽव्ययः ॥ अष्टम्यां निहतो युद्धे मायावी कालशम्बरः ॥ १ ॥ तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम् ॥ गृह्य मायावतीं देवीमागच्छन्नगरं पितुः ॥ २ ॥

प्रद्युम्नकी स्तुति करते हुए गये ॥ ३० ॥ जब कृष्णके पुत्र कामने युद्धमें इस प्रकारसे उस दैत्यको मार डाला;उस समय देवता इनकी स्तुति करते करते अपने स्थानको गये ॥ ३१ ॥ तब वह युद्धके परिश्रमको दूरकर नगरमें गये और प्रसन्नमन हो मंदिरमें प्रवेश कर शीघ्रही रतिका दर्शन किया ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शंबरवधो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! जबयह समाप्त मायावी कालशंबर अष्टमीको मारा गया॥१॥ तब प्रसन्न हुए प्रद्युम्न मायावती देवीको ग्रहण कर पिताके नगरमें आये ॥२॥

वह शीघ्र इन्द्रके तुल्य पराक्रमी आकाशमें स्थित हो मायाके जाननेवालेपिताके तेजसे रक्षित मनोहर पुरीमें आये ॥३॥वह बालक आकाशसे पिताके अन्तःपुरमें उस मायावतीके सहितरूपवान्कामके समानशोभित हुए॥४॥ प्राप्त होतेही भगवान्की संपूर्ण पटरानीएकवारविस्मित और भयभीत और आश्चर्ययुक्त हुईं ॥ ५ ॥ तिसके उपरांत कामके समान प्रद्युम्नको कांतासहित देख नयनोंसे पीती हुईं ॥६॥तिस व्रीडितमुखको पद पदविषे लज्जमान होती हुईं और सम्पूर्ण कृष्णकी स्त्री स्निग्धसंकल्प हो देखने लगीं॥७॥ और पुत्रके शोकसे दुःखित हुई पुत्रकी अभिलाषा करती हुई सैंकडों

सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रमः ॥ आजगाम पुरीं रम्यां रक्षितां तेजसा पितुः ॥ ३ ॥ सोऽन्तरिक्षान्निपतितः केशवान्तःपुरे शिशुः ॥ मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथः ॥ ४ ॥ तस्मिंस्तत्रावपतिते महिष्यः केशवस्य याः ॥ विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवंस्ततः ॥५॥ ततस्तं कामसंकाशं कान्तया सह सङ्गतम् ॥ प्रेक्षन्त्यो हृष्टवदनाः पिबन्त्यो नयनोत्सवम् ॥६॥ तं व्रीडितमुखं दृष्ट्वा लज्जमानं पदे पदे ॥ अभवन्स्निग्धसंकल्पाः सर्वास्ताः कृष्णयोषितः ॥ ७ ॥ रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगृद्धिनी ॥ सपत्नीशतसंकीर्णा सबाष्पा वाक्यमब्रवीत ॥८॥ तादृक् स्वप्नो मया दृष्टो निशायां यौवने गते ॥ कंसारिणा ममानीय दत्तं साहारपल्लवम् ॥९॥ शशिरश्मिप्रतिकाशं मुक्तादामविभूषितम् ॥ केशवेनाङ्कमारोप्य मम कण्ठे न्यबन्धत ॥ १० ॥ श्यामा सुचारुकेशा स्त्री शुक्लाम्बरविभूषिता ॥ पद्महस्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम वेश्मनि ॥ ११ ॥ तया पुनरहं गृह्य स्नापिता रुचिराम्बुना ॥ कुशेशयमयीं मालां स्त्री संगृह्याथ पाणिना ॥ १२ ॥

सपत्नीसहित आंसू गिराती रुक्मिणी यह वचन बोली॥८॥ हे सखियो!रात मैंने ऐसा स्वप्न देखा कि कंसारि भगवान्ने मेरेको चंद्रमाकेसी कांतिवाले और मोतियोंसे भूषित हार और पल्लव दिये हैं॥ ९ ॥ और भगवान्ने मुझे गोदमें बैठालकर चंद्रमाके समान उज्ज्वल मोतियोंका हार कंठमें बांध दिया ॥१०॥ और एक श्यामा सुन्दर केशोंवाली सफेद वस्त्रोंसे भूषित कमल हाथमें लिये स्त्री मेरे घर आई है ॥११॥ और उस स्त्रीने मुझे

सुन्दर जलसे स्नान कराया;और फिर कमलोंकी माला हाथमें ग्रहणकर मेरे कंठमें डाल दी॥१२॥और मेराशिरसूंघकर वह मुझे पवित्रता देती हुई इस प्रकार स्वप्नको कहती हुई रुक्मिणीप्रसन्नचित्त हुई॥१३॥फिर सखीजनोंसे आवृत यह देवीरुक्मिणी वारंवारकुमारको देखकर कहने लगी कि जिसका यह प्रियदर्शन पुत्र है तिसको धन्यहै॥१४॥क्योंकि जिससे प्रथम यौवनमें स्थित कामदेवके समान रूपवाले हे पुत्र! तू जी और यह तेरी वधू सौभाग्यसे युक्त हो॥१५॥ हे जनमेजय! रुक्मिणी इस प्रकार कहकर पूछने लगी; हे पुत्र ! तू मेघके समान श्याम स्त्रीसहित यहां किस निमित्त

मम मूर्धन्युपाघ्राय दत्ता स्वच्छा तया मम ॥ एवं स्वप्नान्कीर्तयन्ती रुक्मिणी हृष्टमानसा ॥ १३ ॥ सखीजनवृता देवी कुमारं वीक्ष्य तं मुहुः ॥ धन्यायाः खल्वयं पुत्रो दीर्घायुः प्रियदर्शनः ॥ १४ ॥ ईदृशः कामसंकाशो यौवने प्रथमे स्थितः ॥ जीवपुत्र त्वया पुत्रका सौभाग्यसमन्विता ॥ १५ ॥ किमर्थं चाम्बुदश्यामः सभार्यस्त्वमिहागतः ॥ अस्मिन्वयसि सुव्यक्तं प्रद्युम्नो मम पुत्रकः ॥ १६ ॥ भवेद्यदि न नीतः स्यात्कृतान्तेन बलीयसा ॥ व्यक्तं कृष्णकुमारस्त्वं न मिथ्या मम तर्कितम् ॥ १७ ॥ विज्ञातोऽसि मया चिह्नैर्विना चक्रं जनार्दनः ॥ मुखं नारायणस्यैव केशाः केशान्त एव च ॥ १८ ॥ ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिनः श्वशुरस्य मे ॥ कस्त्वं वृष्णिकुलं सर्वं द्योतयन्वपुषा स्थितः ॥ १९ ॥ अहो नारायणस्यैव दिव्या ते परमातनुः ॥ एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः सहसा प्रविवेश ह ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा शम्बरस्य वधं प्रति ॥ २० ॥

आया है; हे पुत्र! इसी उमरमें मेरा कहीं पुत्र प्रद्युम्नभी होगा ॥ १६ ॥ जो कालबलीसे नहीं ग्रसा होगा तो ऐसाही होगा और तू निश्चय कृष्णचंद्रका कुमार है; यह मेराविचार असत्य नहीं॥१७॥मैंने चिन्होंसे जान लिया क्योंकि तेरा मुख और केशांत सम्पूर्ण नारायणके समान है॥१८॥और ऊरू और वक्ष भुज ये सम्पूर्ण बलदेवजीके समान हैं; ऐसा तू कौन है?सम्पूर्ण वृष्णिकुलको शरीरसे भूषित करता हुआ स्थित है॥१९॥ क्योंकि जिससे नारायणकेसी दिव्यकांतिको धारण करता है,पश्चात् शम्बरके वधके प्रति नारदमुनिके वचन भगवान् सुनकर तिस समय भवनमें प्राप्त हुए ॥२०॥

पश्चात् जनार्दन भगवान् कामदेवके लक्षणोंसे सिद्ध तिस ज्येष्ठ पुत्रको देख और मायावती पुत्रवधूको देख, हे राजन् ! कृष्णचंद्र वचन कहने लगे ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण देवताके समान रुक्मिणीको देख बोले;हे रुक्मिणी ! देख धनुषको धारण किये यह तेरा पुत्र प्राप्त हो गया है ॥ २२ ॥ और हे देवि ! इस तेरे पुत्रने मायाओंको जाननेवाले शंबरको मार दिया है; और जिन मायाओंसे देवताओंको पीडा करता था वे सब मार दी हैं ॥ २३ ॥ सती साध्वी और शुभा यह मायावती तेरे पुत्रकी भार्या है; यह शम्बरके गृहमें वसी थी ॥ २४ ॥ और यह

सोऽपश्यत्तं सुत ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः ॥ स्नुषां मायावतीं चैव हृष्टचेता जनार्दनः ॥२१॥ कृष्ण उवाच ॥ सोऽब्रवीत्सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव ॥ अयं स देवि संप्राप्तः सुतश्चापधरस्तव ॥ २२ ॥ अनेन शंबरं हत्वा मायायुद्धविशारदम् ॥ हता मायास्तु ताः सर्वा याभिर्देवानबाधयत् ॥ २३ ॥ सती चेयं शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते ॥ मायावतीति विख्याता शम्ब रस्य गृहोषिता ॥ २४ ॥ मा च ते शंबरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा ॥ मन्मथे तु गते नाशं गते चानङ्गतां पुरा ॥२५॥ कामपत्नी न कान्तैषा शंबरस्य रतिप्रिया ॥ मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा॥२६॥ न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना ॥ आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शंबरमाविशत् ॥२७॥ पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वराङ्गना ॥ लोककान्तस्य साहाय्यं करिष्यति मनोमयम् ॥ २८ ॥ प्रवेशयैनां भवनं पूज्यां ज्येष्ठां स्नुषां मम ॥ चिरं प्रणष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम् ॥ २९ ॥

व्यथा तू मत करना कि यह शंबरकी स्त्री है जब मन्मथ नाशको प्राप्त हो गया और अनंगताको प्राप्त हो गया॥२५॥तब यह कामपत्नी शम्बरके घर आई परन्तु उसकी भार्यात्वको न प्राप्त हुई;तब यह मायारूपसे उस शम्बर दैत्यको मोहती हुई ॥२६॥ और यह कौमारभावमेंभी उसके वशमें स्थित न रही तब अपने आत्माको मायामय करके शंबरके रूपको प्राप्त हुई ॥२७॥ सो यह मेरे पुत्रकी पत्नी है और हे रुक्मिणी ! मेरी और तेरी स्नुषा पुत्रवधू है यह मनोमय लोकका सहाय करेगी॥२८॥सो इस श्रेष्ठ मेरी स्नुषाको भवनमें प्रविष्ट कर और चिरकालसे नष्ट हुए फिर आये

पुत्रको फिर भज ॥२९॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! देवी रुक्मिणी इस प्रकार श्रीकृष्णके वचन सुन अतुल हर्षको प्राप्त होकर यह वचन बोली ॥ ३० ॥ अहो वीरपुत्रके समागमसे मेरेको धन्य है और मेरा काम आज सफल हुआ और मनोरथभी आज पूर्ण हुआ ॥३१॥ क्योंकि जिससे चिरकालसे नष्ट हुए पुत्रका प्रियासहित दर्शन हुआ; हे राजन् ! इस प्रकार विचार कहने लगी कि हे पुत्र ! आओ और भार्यासहित भवनको प्राप्त हो ॥३२॥ तिसके उपरान्त प्रद्युम्न गोविंद और माताके चरणोंको प्रणाम करके प्रद्युम्नने महाबल बलदेवजीका पूजन किया ॥३३॥ फिर

वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा ॥ प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥ अहो धन्यतरास्मीति वीरपुत्रसमागमात् ॥ अद्य मे सफलः कामः पूर्णो मेऽद्य मनोरथः ॥ ३१ ॥ चिरप्रणष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह ॥ आगच्छ पुत्र भवनं सभार्यः प्रविवेश ह ॥३२॥ ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम् ॥ प्रद्युम्नःपूजयामास हलिनं च महाबलम् ॥ ३३ ॥ उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान् ॥ प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं केशवः परवीरहा ॥ ३४॥ स्नुषां चोत्थाप्य तां देवीं रुक्मिणी रुक्मभूषणा ॥ परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद्गद्गदभाषिणी ॥३५॥ समेत्य भवनं पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा ॥ प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम् ॥३६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अत्राश्चर्यात्मकं स्तोत्रमाह्निकं यजतां वर ॥प्रद्युम्ने द्वारकां प्राप्ते हत्वा तं कालशम्बरम् ॥१॥

शत्रुनाशी केशव भगवान्ने बलियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नको उठाकर हृदयसे लगाय मस्तक सूंघ लिया ॥३४॥ और रुक्मभूषणा रुक्मिणी देवी पुत्रवधूको उठाकर मिली और स्नेहसे गद्गदकंठ हो गई॥३५॥और फिर अत्यंत स्नेहसे युक्त रुक्मिणी पत्नीसहित भुवनको ऐसे प्राप्त हुई जैसे इन्द्राणी और इन्द्रको प्राप्त होकर प्रसन्न हो और स्वयं अदितिके समान आये पुत्रको प्रवेश कराया ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ वैशंपायन बोले; हे यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! तिस समयमें कालरूपी शंबर दैत्यको मार और द्वारकामें

प्रद्युम्न आये तब उनकी रक्षाके अर्थ आश्चर्यरूप एक आह्निक स्तोत्र ॥१॥ बलदेवजीने कहा है;सो उस स्तोत्रको मनुष्य सायंकालमें जपता हुआ देहकी शुद्धिको प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ और यह स्तोत्र बलदेवजी और विष्णु भगवान्‌ने तथा धर्मकामनाकी इच्छा करते हुए ऋषियोंने भी वर्णन किया है ॥३॥ एक दिनअपने घर बलदेवजीके संग बैठे हुए प्रद्युम्न हाथ जोड बलदेवजीसे बोले ॥ ४ ॥ प्रद्युम्न बोले; हे कृष्णके बडे भाई ! हे महा-भाग ! हे रोहिणीके पुत्र ! ऐसा कोई स्तोत्र कहो कि जिसके जपनेसे मैं निर्भय हो जाऊं ॥ ५ ॥ बलदेवजी बोले; सुर असुर और सम्पूर्ण जगत्के

बलदेवेन रक्षार्थं प्रोक्तमाह्निकमुच्यते ॥ यज्जप्त्वा तु नृपश्रेष्ठ सायं पूतात्मतां व्रजेत् ॥२॥ कीर्तितं बलदेवेन विष्णुना चैव कीर्ति-तम् ॥ धर्मकामैश्च मुनिभिर्ऋषिभिश्चापि कीर्तितम् ॥३॥ कर्हिचिद्रुक्मिणापुत्रो हलिना संयुतो गृहे ॥ उपविष्टः प्रणम्याथ तामुवाच कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ प्रद्युम्न उवाच ॥ कृष्णानुज महाभाग रोहिणीतनय प्रभो ॥ किंचित्स्तोत्रं मम ब्रूहि यज्जप्त्वा निर्भयोऽभवम् ॥५॥ श्रीबलदेव उवाच ॥ सुरासुरगुरुर्ब्रह्मा पातु मां जगतः पतिः ॥ अथोङ्कारवषट्कारौ सावित्री विधयस्त्रयः ॥ ६ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि च्छन्दांस्याथर्वणानि च ॥चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥७॥ पुराणमितिहासश्च खिलान्युपखि-लानि च ॥अङ्गान्युपाङ्गानि तथा व्याख्यातानि च पान्तु माम् ॥८॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिस्तथा सत्त्वं रजस्तमः ॥ ९ ॥ व्यानोदानः समानश्च प्राणोऽपानश्च पञ्चमः ॥ वायवः सप्त चैवान्ये येष्वायत्तमिदं जगत् ॥१०॥ मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो भगवान्पान्तु ते मा महर्षयः ॥ ११ ॥

पति ब्रह्मा मेरी रक्षा करो,औरॐकार वषट्कार सावित्री और अपूर्व विधि और नियम विधि और सांख्यविधि ॥६॥ ऋग्,यजु,साम, अथर्व चारों वेदोंके अभिमानी देवता उनके रहस्य और विस्तार पुराण और इतिहासमें खिल और अखिल अंग और उप अंग ये सम्पूर्ण मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥ ८ ॥ पृथ्वी वायु आकाश जल अग्नि ये पांचों तत्त्व इन्द्रिय मन बुद्धि सत्व रज तम ॥ ९ ॥ तीनों गुण और व्यान उदान समान प्राण अपान पांचों प्राण और जिनमें सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है वे सातों पवन॥१०॥ मरीचि अंगिरा अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु वसिष्ठ महर्षि मेरी रक्षा करो ॥११॥

और कश्यपसेआदि ले चौदह मुनि और दशों दिशा और गणोंसहित नरनारायण ये संपूर्ण मेरी रक्षाकरो॥१२॥एकादश रुद्र द्वादश आदित्य आठों वसु और दोनों अश्विनीकुमार ॥ १३ ॥ श्रीलक्ष्मी स्वधा मेधा तुष्टि पुष्टि स्मृति धृति ये संपूर्ण अदिति दिति दनु सिंहिका दैत्योंकी माता ॥ १४ ॥ हिमवान् हेमकूट निषध श्वेतपर्वत ऋषभ पारियात्र विंध्य वैदूर्य पर्वत ॥ १५ ॥ सह्योदय मलय मेरु मन्दर दर्दुर क्रौंच कैलास और मैनाक यह संपूर्ण पर्वत मेरी रक्षा करो ॥१६॥ शेष वासुकि विशालाक्ष तक्षक एलापुत्र शुक्लवर्ण कम्बल और अश्वतर ॥१७॥ हस्तिभद्र,पिटरक, कर्कोटक, धनंजय, पूरणक

कश्यपाद्याश्च मुनयश्चतुर्दश दिशो दश ॥ नरनारायणौ देवौ सगणौ पांतु मां सदा ॥१२॥ रुद्राश्चैकादशप्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु ॥ अष्टौच वसवो देवा अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ १३ ॥ ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीः स्वधा मेधा तुष्टिः पुष्टिः स्मृतिर्धृतिः ॥ अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सिंहिका दैत्यमातरः ॥१४॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधः श्वेतपर्वतः ॥ ऋषभः पारियात्रश्च विन्ध्यो वैडूर्यपर्वतः ॥ १५ ॥ सह्योदयश्च मलयो मेरुमन्दरदर्दुराः॥क्रौञ्चकैलासमैनाकाः पान्तु मां धरणीधराः॥१६॥शेषश्च वासुकिश्चैव विशालाक्षश्च तक्षकः॥ एलापुत्रः शुक्लवर्णः कम्बलाश्वतरावुभौ॥१७॥हस्तिभद्रः पिटरकः कर्कोटकधनञ्जयौ॥तथा पूरणकश्चैव नागश्च करवीरकः ॥१८॥ सुमनास्यो दधिमुखस्तथा शृङ्गारपिण्डकः। मणिनागश्च भगवांस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१९॥ नागराडधिकर्णश्च तथा हारिद्रकोऽपरः ॥ एते चान्ये च बहवो ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ २० ॥ भूधराः सत्यधर्माणः पान्तु मां भुजगेश्वराः ॥ समुद्राः पान्तु चत्वारो गङ्गा च सरितां वरा ॥२१॥ सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रुर्देविका शिवा ॥ द्वारावती विपाशा च सरयूर्यमुना तथा ॥ २२ ॥

और करवीरक ॥ १८ ॥ सुमनास्य उदधिमुख शृंगारपिंडक और तीनों लोकोंमें विख्यात मणिनाग ॥ १९ ॥ नागोंका राजा अधिकरण हारिद्रक इनसे आदि ले औरभी अन्य नाग मेरी रक्षा करो ॥ २० ॥ सत्यधर्मवाले पर्वत भुजंगेश्वर मेरी रक्षा करो, चारों दिशाओंके चार समुद्र और नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा ॥२१॥ सरस्वती चंद्रभागा और शतद्रु देविका, शिवा, द्वारावती, विपाशा और सरयू और यमुना ॥ २२ ॥

कल्माषी रथोष्णा बाहुदा और हिरण्यदा प्लक्षा इक्षुमती स्रवन्ती बृहद्रथा॥२३॥विख्यात चर्मण्वती पुण्यरूप वधूसरा और इनसे आदि ले और भी अन्य नदी॥२४॥उत्तरदिशाके रास्ते गमन करनेवाली नदी मेरेको जलोंसे स्नान कराओ और वेणी और गोदावरी,सीता,कावेरी और कौंकणावती॥२५॥कृष्णा वेणी मुक्तिमती तमसा और पुष्पवाहिनी और ताम्रपर्णी,ज्योतिरथा, उत्पला और उदुम्बरावती ॥२६॥ और वैतरणी और विधर्मा और नर्मदा वितस्ता भीमरथ्या और एला और महानदी॥२७॥कालिन्दी गोमती और शोणनद ये सम्पूर्ण और अन्य नदी॥२८॥दक्षिणदिशाके रास्ते वहनेवाली मुझको

कल्माषी च रथोष्मा च बाहुदा च हिरण्यदा॥प्लक्षा चेक्षुमती चैव स्रवन्ती च बृहद्रथा॥२३॥ख्याता चर्मण्वती चैव पुण्या चैव वधूसरा॥एताश्चान्याश्च सरितो याश्चान्या नानुकीर्तिताः॥२४॥उत्तरापथगामिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्॥वेणी गोदावरी सीता कावेरी कौङ्कणावती ॥ २५ ॥ कृष्णा वेणी मुक्तिमती तमसा पुष्पवाहिनी ॥ ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्पलोदुम्बरावती ॥ २६ ॥ नदी वैतरणी पुण्या विदर्भा नर्मदा शुभा ॥ वितस्ता भीमरथ्या च ऐला चैव महानदी ॥ २७ ॥ कालिन्दी गोमती पुण्या नदः शोणश्च विश्रुतः ॥ एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या नतु कीर्तिताः ॥२८॥ दक्षिणापथवाहिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम् ॥ क्षिप्रा चर्मण्वती पुण्या मही शुभ्रवती तथा ॥२९॥ सिन्धुर्वेत्रवती चैव भोजान्ता वनमालिका ॥ पूर्वभद्रा परभद्रा ऊर्मिला च परद्रुमा ॥३०॥ ख्याता वेत्रवती चैव चापदासीति विश्रुता ॥ प्रस्थावती कुण्डनदी नदी पुण्या सरस्वती ॥३१॥ चित्रघ्नी चेन्दुमाला च तथा मधुमती नदी ॥ उमा गुरुनदी चैव तापी च विमलोदका ॥३२॥ विमला विमलोदा च मत्तगङ्गा पयस्विनी ॥ एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या नानुकीर्तिता॥३३॥ता मां समभिषिञ्चन्तु पश्चिमामाश्रिता दिशम्॥भागीरथी पुण्यजला प्राच्यां दिशि समाश्रिता॥३४॥

जलोंसे स्नान कराओ और क्षिप्रा और चर्मण्वती और पुण्या मही और शुभ्रमती॥२९॥ सिन्धु वेत्रवती भोजान्ता, वनमालिका पूर्वभद्रा और पराभद्रा और उर्मिला परद्रुमा ॥ ३० ॥ विख्यात वेत्रवती और प्रस्थावती कुंडनदी और पुण्यसरस्वती ॥३१॥ चित्रघ्नी और इन्दुमाता और मधुवती उमा, गुरुनदी और तापी और विमला ॥३२॥ विमलोदा विमला और मत्तगंगा और पयस्विनी ये संपूर्ण और अन्य नदी ॥३३॥ पश्चिम दिशामें वहनेवाली मुझे स्नान कराओ और पूर्व दिशामें आश्रित और महादेवकी धारण की हुई ॥ ३४ ॥

पुण्य जलोंवाली भागीरथी नदी मेरे पापोंको दहन करो; और प्रभास प्रयाग नैमिष और पुष्कर॥३५॥गंगातीर्थ कुरुक्षेत्र श्रीकंठ और गौतमका आश्रम रामह्रद विनशन और रामतीर्थ ॥३६॥ गंगाद्वार कनखल जहां सोम उठा है और कपालतीर्थ और जंबूमार्ग ॥ ३७ ॥ विख्यात सुवर्णबिंदु और कनकपिंगल दशाश्वमेधिक पुण्य आश्रम ॥ ३८ ॥ और नरनारायणका विख्यात बदरिकाश्रम, फल्गुतीर्थ और चंद्रवट ॥३९॥ पुण्यरूप कोकामुख गंगासागर मगधदेशोंमें तपोद और गंगोद्भेद ये दो तीर्थ ॥ ४० ॥ यह मुनियोंसे सेवित पवित्र तीर्थ सूकर और योगमार्ग और श्वेतद्वीप ॥ ४१ ॥

सा तु दहतु मे पापं कीर्तिता शम्भुना धृता ॥ प्रभासं च प्रयागं च नैमिषं पुष्कराणि च ॥ ३५ ॥ गङ्गातीर्थं कुरुक्षेत्रं श्रीकण्ठं गौतमाश्रमम् ॥ रामह्रदं विनशनं रामतीर्थं तथैव च ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र चोत्थितः ॥ कपालमोचनं तीर्थं जम्बूमार्गं च विश्रुतम् ॥३७॥ सुवर्णबिन्दु विख्यातं तथा कनकपिङ्गलम् ॥ दशाश्वमेधिकं चैव पुण्याश्रमविभूषितम् ॥३८॥ बदरी चैव विख्याता नरनारायणाश्रमः ॥ विख्यातं फल्गुतीर्थं च तीर्थं चन्द्रवटं तथा ॥३९॥ कोकामुखं पुण्यतमं गङ्गासागरमेव च ॥ मगधेषु तपोदश्च गङ्गोद्भेदश्च विश्रुतः ॥४०॥ तीर्थान्येतानि पुण्यानि सेवितानि महर्षिभिः ॥ सूकरं योगमार्गं च श्वेतद्वीपं तथैव च ॥ ४१ ॥ ब्रह्मतीर्थं रामतीर्थं वाजिमेधशतोपमम् ॥ धारासम्पातसंयुक्ता गङ्गा किल्बिषनाशिनी ॥ ४२ ॥ गङ्गा वैकुण्ठकेदारं सूकरोद्भेदनं परम् ॥ तं शापमोचनं तीर्थं पुनन्त्वेतानि किल्बिषात् ॥ ४३ ॥ धर्मार्थकामविषयो यशः प्राप्तिः शमो दमः ॥ वरुणेशोऽथ धनदौ यमो नियम एव च ॥४४॥ कालो नयः संनतिश्च क्रोधमोहः क्षमा धृतिः ॥ विद्युतोऽभ्राण्यथौषध्यः प्रमादो-न्मादविग्रहाः ॥ ४५ ॥ यक्षाः पिशाचागन्धर्वाः किन्नराः सिद्धचारणाः ॥ नक्तंचराः खेचरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ॥ ४६ ॥

ब्रह्मतीर्थ रामतीथ वाजिमेध शतोपम और धारण धारासंपातसे युक्त किल्बिषनाशिनी गंगा ॥ ४२ ॥ वैकुंठ केदार और सूकरोद्भदन और शापमोचन यहसंपूर्ण तीर्थ मुझे पापोंसे पवित्र करो ॥ ४३ ॥ धर्म अर्थ कामका विषय और यशकी प्राप्ति और शम दम वरुणेश कुबेर यम और नियम ॥ ४४ ॥ काल नय सन्नति क्रोध मोह और क्षमा धृति विद्यत मेघ औषधि प्रमाद और उन्माद॥४५॥यक्ष पिशाच गंधर्व किन्नर सिद्ध चारण रात्रिमें विचरने-

वाले खेचर डाढोंवाले प्यारमें विग्रह करनेवाले बली ॥४६॥ लंबे उदरोंवाले,पीले नेत्रोंवाले, पवनोंसहित मेघ,कला, त्रुटि, लव और क्षण ॥४७॥ नक्षत्र ग्रह और शिशिरसे आदि ले ऋतु मास रात्रि दिन और सूर्य चंद्रमा॥४८॥ आमोद प्रमोद प्रहर्ष शोक रज तम तप सत्य शुद्धि बुद्धि धृति श्रुति ॥ ४९ ॥ रुद्राणी भद्रकाली भद्रा ज्येष्ठा वारुणी भासी अलिका शांडिली ॥ ५० ॥ आर्या कुहू सिनीवाली भामा चित्ररथी रति एकानंशा कूष्मांडी कात्यायनी देवी ॥।५१॥ जनमाता लोहिता और देवकन्या और देवताओंकी स्त्री गोनंदा यह सम्पूर्ण बांधवों सहित मेरी रक्षा करो ॥५२॥

लम्बोदराश्च बलिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ॥ मरुतः सहपर्जन्याः कलात्रुटिलवाः क्षणाः ॥ ४७ ॥ नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ऋतवः शिशिरादयः ॥ मासाहोरात्रयश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ ४८ ॥ आमोदश्च प्रमोदश्च प्रहर्षः शोक एव च ॥ रजस्तमस्तपः सत्यं शुद्धिर्बुद्धिर्धृतिः श्रुतिः ॥ ४९ ॥ रुद्राणी भद्रकाली च भद्रा ज्येष्ठा तु वारुणी ॥ भासी च कालिका चैव शाण्डिली चेति विश्रुता ॥ ५० ॥ आर्या कुहूः सिनीवाली भीमा चित्ररथी रतिः ॥ एकानंशा च कूष्माण्डी देवी कात्यायनी च या ॥ ५१ ॥ लोहित्या जनमाता च देवकन्या तु याः स्मृताः ॥ गोनन्दा देवपत्नी च मां रक्षन्तु सबान्धवम् ॥ ५२ ॥ नानाभरणवेषाश्च नाना-रूपाङ्किताननाः ॥ नानादेशविचारिण्यो नानाशस्त्रोपशोभिताः ॥ ५३ ॥ मेदोमज्जाप्रियाश्चैव मद्यमांसवसाप्रियाः ॥ मार्जारद्वी-पिवक्त्राश्च गजसिंहनिभाननाः ॥ ५४ ॥ कङ्कवायसगृध्राणां क्रौञ्चतुल्याननास्तथा ॥ व्यालयज्ञोपवीताश्च चर्मप्रावरणास्तथा॥५५॥ क्षतजोक्षितवक्त्राश्च खरभेरीसमस्वनाः ॥ मत्सराः क्रोधनाश्चैव प्रासादरुचिरालयाः ॥ ५६ ॥

अनेक प्रकारके केशोंवाले,अनेक प्रकारक रूपोंसे अकित मुखोंवाले और अनेक प्रकारके विषयोंके विचार करनेवाले अनेक शस्त्रोंसे शोभित॥५३॥ मेद मज्जा मांस वसा मदिराके खानेवाले बिलाव गेंडाके समान मुखोंवाले;हस्ती सिंहोंके सदृश मुखोंवाले॥५४॥कंक वायस गृध्र क्रौंच तुल्य मुखोंवाले; सर्पोंके यज्ञोपवीतोंवाले चर्मकेआच्छादनोंवाले॥५५॥खर भेरीकी नाईं शब्दोंवाले, ईर्षा करनेवाले, महाक्रोधीप्रासाद और सुन्दर स्थानवाले ॥५६॥

मत्त और उन्मत्त प्रमत्त प्रहार करनेवाले पीत नेत्रोंवाले और पीत केशोंवाले छेदित केशोंवाले ॥ ५७ ॥ खडे केशोंवाले और काले केशोंवाले और सफेदकेशोंवाले दश सहस्र हाथीके तुल्य पराक्रमोंवाले और वायुके तुल्य वेगवाले॥५८॥एक हाथवाले, एक पैरवाले, एक नेत्रवाले बहुत पुत्र और अल्पपुत्रोंवाले दो पुत्र और पुत्र मंडवाले ॥ ५९ ॥ मुखमंडी बिडाली पूतना गंधपूतना शीतवातोष्ण वेताली रेवती और गृहसंज्ञावाली ॥६०॥ प्रियहास्या प्रियक्रोधा,प्रियावासा,प्रियंवदा,सुखप्रदा, असुखदा सदा ब्राह्मणोंसे प्यार करनेवाली ॥६१॥ नक्तंचरा सुखोदका पर्वकालमें सदा दारुण

मत्तोन्मत्तप्रमत्ताश्च प्रहरन्त्यश्च धिष्ठिताः ॥ पिङ्गाक्षाः पिङ्गकेशाश्च ततोऽन्या लूनमूर्धजाः ॥ ५७ ॥ ऊर्ध्वकेश्यः कृष्णकेश्यः श्वेतकेश्यस्तथा वराः॥ नगायुतबलाश्चैव वायुवेगास्तथापराः ॥ ५८ ॥ एकहस्ता एकपादा एकाक्षाः पिङ्गला मताः ॥ बहुपुत्रा-ल्पपुत्राश्च द्विपुत्राः पुत्रमण्डिकाः ॥ ५९ ॥ मुखमण्डी बिडाली च पूतना गन्धपूतना ॥ शीतवातोष्णवेताली रेवती ग्रहसं-ज्ञिताः ॥ ६० ॥ प्रियहास्याः प्रियक्रोधाः प्रियवासाः प्रियंवदाः ॥ सुखप्रदाश्चासुखदाः सदा द्विजजनप्रियाः ॥ ६१ ॥ नक्तंचराः सुखोदर्काः सदा पर्वणि दारुणाः ॥ मातरो मातृवत्पुत्रं रक्षन्तु मम नित्यशः ॥ ६२ ॥ पितामहमुखोद्भूता रौद्रा रुद्राङ्गसंभवाः ॥ कुमारस्वेदजाश्चैव ज्वरा वै वैष्णवादयः ॥ ६३ ॥ महाभीमा महावीर्या दर्पोद्भूता महाबलाः ॥ क्रोधनाऽक्रोधनाः क्रूराः सुरवि-ग्रहकारिणः ॥ ६४ ॥ नक्तञ्चराः केसरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ॥ लम्बोदरा जघनिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ॥ ६५ ॥ शक्त्यृ-ष्टिशूलपरिघप्रासचर्मासिपाणयः ॥ पिनाकवज्रमुशलब्रह्मदण्डायुधप्रियाः ॥ ६६ ॥

रूपवाली यह मातृका संपूर्ण माताओंकी तुल्य मेरी रक्षा करो॥६२॥ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होनेवाले, रुद्रके अंगसे उत्पन्न होनेवाले रुद्र और सन-कादिकोंके पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले वैष्णवादि ज्वर॥६३॥महाभीम और महावीर्यवाले गर्ववाले महाबलवंत क्रोधवाले क्रोधीस्वभाववाले;देवताओंसे विग्रह करनेवाले ॥६४॥ रात्रिमें विचरनेवाले, सिंहकीसी डाढोंवाले, मित्रोंसे विग्रह करनेवाले, पिंगनेत्रोंवाले विश्वमें फैले हुए रूपवाले ॥ ६५ ॥ शक्ति ऋष्टि त्रिशूल परिघ प्रास ढाल खड्गको हाथोंमें धारण करनेवाले और पिनाक वज्र मूसल और ब्रह्मदंड इन आयुधोंसे प्रीतिवाले ॥ ६६ ॥

और दंडोंवाले और कुंडलोंवाले और शूर वीर और जटा और मुकुटोंको धारण करनेवाले और वेद वेदांतमें कुशल और नित्य यज्ञोपवीत धारण करनेवाले॥६७॥सर्पोंके मुकुटोंवाले कुण्डलोंवाले बाजुओंको धारण करनेवाले अनेक प्रकारके वस्त्रोंवाले, चित्र विचित्र चंदनादिकोंके लगानेवाले॥६८॥ और हस्ती घोडा ऊंट ऋक्ष बिलाव सिंह व्याघ्रके तुल्य मुखोंवाले वराह उल्लू गीदड मृग भसोंके तुल्य मुखोंवाले॥६९॥वामन कुबडे भयानक रूपवाले छेदित केशोंवाले तथा सैंकडों सहस्रों तथा एक सहस्र जटाओंको धारण करनेवाले ॥७०॥ श्वेतवर्णवाले कैलासपर्वतके तुल्य आकारवाले कोई एक

दण्डिनः कुण्डिनः शूरा जटामुकुटधारिणः ॥ वेदवेदाङ्गकुशला नित्ययज्ञोपवीतिनः ॥६७॥ व्यालपीडाः कुण्डलिनो वीराः केयूरधारिणः ॥ नानावसनसंवीताश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ॥६८॥ गजाश्वोष्ट्रर्क्षमार्जारसिंहव्याघ्रनिभाननाः ॥ वराहोलूकगोमायुमृगाखुमहिषाननाः ॥ ६९ ॥ वामना विकटाः कुब्जाः कराला लूनमूर्धजाः ॥ सहस्रशतशश्चान्ये सहस्रजटधारिणः ॥ ७० ॥ श्वेताः कैलाससंकाशाः केचिद्दिनकरप्रभाः केचिज्जलदवर्णाभा नीलाञ्जनचयोपमाः ॥७१॥ एकपादा द्विपादाश्च तथा द्विशिरसोऽपरे ॥ निर्मांसाः स्थूलजङ्घाश्च व्यादितास्या भयङ्कराः ॥७२॥ वापीतडागकूपेषु समुद्रेषु सरित्सु च ॥ श्मशानशैलवृक्षेषु शून्यागारनिवासिनः ॥ ७३ ॥ एते ग्रहाश्च सततं रक्षन्तु मम सर्वतः ॥ महागणपतिर्नन्दी महाकालो महाबलः ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च ज्वरौ लोकभयावहौ ॥ ७४ ॥ ग्रामणीश्चैव गोपालो भृङ्गरीटिर्गणेश्वरः ॥ देवश्च वामदेश्च घण्टाकर्णः करंधमः ॥७५॥ श्वेतमोदः कपाली च जम्भकः शत्रुतापनः ॥ मज्जनोन्मज्जनौ चोभौ संतापनविलापनौ ॥ ७६ ॥

सूर्यकांतिवाले कोई एक मेघकेसे वर्णोंवाले, नीले पर्वतकी तुल्य उपमावाले॥७१॥एक पैर दो पैरोंवाले और दो शिरोंवाले मांसरहित शरीरवाले, बडी जंघाओंवाले, मुखोंको फाडते हुए बडे भयानक रूपोंवाले॥७२॥बावडी कूवा तलाव समुद्र नदी स्मशान पर्वत वृक्ष शून्य स्थानोंमें वसनेवाले यह सम्पूर्ण ग्रह मेरी सब ओरसे रक्षा करो; और महागणोंके पति नंदीश्वर॥७३॥और लोकको भय देनेवाले महादेव और विष्णुके ज्वर॥७४॥ग्रामणी गोपालगणोंके ईश्वर भृंगरीटि,देव वामदेव और घंटाकर्ण और करंधम॥७५॥श्वेतमोद कपाली जंभक और शत्रुतापन और मज्जन और उन्मज्जन,संतापन

और विलपिन॥७६॥ निजघास घस स्थूणाकर्ण प्रशोषण उल्कमाली धम ज्वालामाली और प्रदर्शन ॥७७॥ संघटन और संकुटन और काष्ठभूत शिवंकर और कुष्मांड कुंभमूर्द्धा रोचन और वैकृत ॥७८॥ अनिकेत सुरारिघ्न शिव अशिव और क्षेमक पिशिताशी और सुरारी और हरिलोचन॥७९॥ भीमक, ग्राहक, अग्रमय, उपग्रह आर्यक और स्कंदग्रह॥८०॥चपल, समवेताल, तामस, सुमहाकपि और हृदयोद्वर्तन एड कंकणप्रिय कुंडाशी॥८१॥ हरिश्मश्रु आर बोझवाले मन पवनकेसे वेगवाले, सैंकडों सहस्रों पार्वतीके रोषसे उत्पन्नहोनेवाले ॥ ८२ ॥ शक्तिवाले कांतिवाले ब्राह्मणोंकी भक्ति-

निजघासो घसश्चैव स्थूणाकर्णः प्रशोषणः ॥ उल्कामाली धमधमो ज्वालामाली प्रदर्शनः ॥ ७७ ॥ संघट्टनः संकुटनः काष्ठभूतः शिवंकरः ॥ कूष्माण्डः कुम्भमूर्द्धा च रोचनो वैकृतो ग्रहः ॥७८॥ अनिकेतः सुरारिघ्नः शिवश्चाशिव एव च ॥ क्षेमकः पिशिताशी च सुरारिर्हरिलोचनः ॥ ७९ ॥ भीमको ग्राहकश्चैव तथैवाग्रमयो ग्रहः ॥ उपग्रहोर्यकश्चैव तथा स्कन्दग्रहोऽपरः ॥ ८० ॥ चपलो समवेतालस्तामसः सुमहाकपिः ॥ हृदयोद्वर्तनश्चैडः कुण्डाशी कङ्कणप्रियः ॥८१॥ हरिश्मश्रुर्गरुत्मन्तो मनोमारुतरंहसः॥ पार्वत्या रोषसंभूताः सहस्राणि शतानि च ॥८२॥ शक्तिमन्तो द्युतिमन्तो ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गरा ॥ सर्वकामापहन्तारो द्विषतां च मृधे मृधे ॥८३॥ रात्रावहनि दुर्गेषु कीर्तितः सकलैर्गुणैः ॥ तेषां गणानां पतयः सगणः पान्तु मां सदा ॥८४॥ नारदः पर्वतश्चैव गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ पितरः कारणं कार्यमाधयो व्याधयस्तदा ॥८५॥ अगस्त्यो गालवो गार्ग्यः शक्तिर्धौम्यः पराशरः॥कृष्णात्रेयश्च भगवानसितो देवलो बलः ॥८६॥ बृहस्पतिरुतथ्यश्च मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः ॥ द्वैपायनो विदर्भश्च जैमिनिर्माठरः कठः॥८७॥

॥३३०॥

वाले सत्यके युद्ध करनेवाले; युद्धमें शत्रुओंके संपूर्ण कामनाओंके हरनेवाले॥८३॥रात्रिदिन किलोंमें रहनेवाले संपूर्ण गुणोंसे कीर्तन किये हुए संपूर्ण गणोंके पति मेरी रक्षा करो ॥८४॥ नारद पर्वत और गंधर्व अप्सराओंके गण पितर कारण कार्य आधि और व्याधि ॥८५॥और अगस्त्य और गालव और गार्ग्य और शक्ति और धौम्य और पराशर और कृष्णात्रेय और असित और देवल और बल॥८६॥बृहस्पति,उतथ्य, मार्कण्डेय, श्रुत-

श्रवा, द्वैपायन,विदर्भ जमिनि माठर कठ ॥ ८७ ॥ विश्वामित्र वसिष्ठ लोमश उतंक रैभ्य पौलोम द्वित और त्रित ॥ ८८ ॥ कालवृक्षीय मेधातिथि सारस्वत, यवक्रीति कुशिक और गौतम ॥ ८९ ॥ संवर्त, ऋष्यशृंग, सरस्वती, आत्रेय और विभांडक, ऋचीक, जमदग्नि और और्व ॥ ९० ॥ भरद्वाज, स्थूलशिरा, कश्यप, पुलह और ऋतु और बृहदग्नि और हरिश्मश्रु और विजय और कण्व ॥ ९१ ॥ वैतंडी, दीर्घतपा, वेदगाथ, अंशुमान्, शिव, अष्टावक्र; दधीचि, श्वेतकेतु ॥ ९२ ॥ उद्दालक, क्षीरपाणि और शृंगी गौरमुख, अग्निवेश्य, शमीक और प्रमुचु और

विश्वामित्रो वसिष्ठश्च लोमशश्च महामुनिः ॥ उत्तङ्कश्चैव रैभ्यश्च पौलोमश्च द्वितस्त्रितः ॥ ८८ ॥ ऋषिर्वै कालवृक्षी यो मुनिर्मेधातिथिस्तथा ॥ सारस्वतो यवक्रीतिः कुशिको गौतमस्तथा ॥ ८९ ॥ संवर्त ऋष्यशृङ्गश्च स्वस्त्यात्रेयो विभाण्डकः ॥ ऋचीको जमदग्निश्च तथौर्वस्तपसां निधिः ॥ ९० ॥ भरद्वाजः स्थूलशिराः कश्यपः पुलहः क्रतुः ॥ बृहदग्निर्हरिश्मश्रुर्विजयः कण्व एव च ॥ ९१ ॥ वतण्डी दीर्घतापाश्च वेदगाथोंऽशुमाञ्छिवः ॥ अष्टावक्रो दधीचिश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ९२ ॥ उद्दालकः क्षीरपाणिः शृङ्गी गौरमुखस्तथा ॥ अग्निवेश्यः शमीकश्च प्रमुचुर्मुमुचुस्तथा ॥ ९३ ॥ एते चान्ये च ऋषयो बहवः शंसितव्रताः ॥ मुनयः शंसितात्मानो ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥९४॥ ऋतवः श्लाघिनः शान्ताः शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥ त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रैविद्या कौस्तुभो मणिः ॥९५॥ उच्चैः श्रवा हयः श्रीमान्वैद्यो धन्वन्तरिर्हरिः ॥ अमृतं गौः सुपर्णश्च दधि गौराश्च सर्षपाः ॥९६॥ शुक्लाः सुमनसः कन्याः श्वेतच्छत्रं यवाक्षताः ॥ दूर्वा हिरण्यं गन्धाश्च वालव्यजनमेव च ॥ ९७ ॥ तथा प्रतिहतं चक्रं महोक्षश्चन्दनं विषम् ॥ श्वेतो षः करी मत्तः सिंहो व्याघ्रो हयो गिरिः ॥ ९८ ॥

मुमुचु ॥९३॥ इसके शिवाय और भी बहुतसे पवित्र व्रतवाले; ऋषि तथा और जिन महात्माओंका कीर्तन नहीं किया है ॥९४॥ श्लाघा किये हुए शांतरूप यह सम्पूर्ण मेरी रक्षा करो;और तीनों अग्नि और तीनों वेद त्रयविद्या और कौस्तुभमणि॥९५॥उच्चैःश्रवा घोडा,धन्वन्तरी वैद्य हरिअमृत गौ सुपर्ण दधि गौर सर्षप ॥ ९६ ॥ सफेद पुष्प कन्या श्वेत छत्र यवअक्षत दूर्वा सुवर्ण व्याल व्यजन ॥ ९७ ॥ और अप्रतिहत चक्र महोक्ष चंदन

और विष श्वेत वृष मत्त हस्ती सिंह व्याघ्र घोडा और पर्वत ॥ ९८ ॥ पृथ्वी लाजा ब्राह्मण मधु और पायस स्वस्तिक वर्द्धमान नद्यावत ये तीनों गृहोंके भेद और प्रियंगु श्रीफल गोमय मत्स्य दुन्दुभि और पटहस्वन॥९९॥ऋषियोंकी स्त्री कन्या शोभायमान श्रेष्ठ आसनवाला धनुष रोचना रुचक नदियोंके संगमोंका जल ॥१००॥ सुपर्ण शतपत्र चकोर नन्दीमुख मयूरबद्ध मुक्ता मणियोंसे जटित ध्वजा ॥ १ ॥ कार्यके सिद्ध करनेवाले श्रेष्ठ आयुध, मंगलोंसे युक्त और शोभायमान केशरहित पुण्य मेरी रक्षा करो॥ २ ॥ आयु श्री जयकी इच्छा करते हुए बलदेवजीने यह स्तोत्र कहा है, जो कोई

पृथिवी चोद्धृता लाजा ब्राह्मणा मधु पायसम् ॥ स्वस्तिको वर्द्धमानश्च नंद्यावर्तः प्रियङ्गवः ॥ श्रीफलं गोमयं मत्स्यो दुन्दुभिः पटहस्वनः ॥ ९९ ॥ ऋषिपत्न्यश्च कन्याश्च श्रीमद्भद्रासनं धनुः ॥ रोचना रुचकश्चैव नदीनां सङ्गमोदकम् ॥ १०० ॥ सुपर्णा शतपत्राश्च चकोरा जीवजीवकाः ॥ नन्दीमुखो मयूरश्च बद्धमुक्तामणिध्वजाः १॥आयुधानि प्रशस्तानि कार्यसिद्धिकराणि च ॥ पुण्यं वै विगतक्लेशं श्रीमद्वै मङ्गलान्वितम् ॥२॥ रामेणोदाहृतं पूर्वमायुः श्रीजयकांक्षिणा ॥ य इदं श्रावयेद्विद्वांस्तथैव शृणुयान्नरः ॥ ३ ॥ मङ्गलाष्टशतं स्नातो जपन्पर्वणि पर्वणि ॥ वधबन्धपरिक्लेशं व्याधिशोकपराभवम् ॥ ४ ॥ न च प्राप्नोति वैकल्पं परत्रेह च शर्मदम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं वेदसंमितम् ॥५॥ श्रीमत्स्वर्ग्यं सदा पुण्यमपत्यजननं शिवम् ॥ शुभं क्षेमकरं नृणां मेधाजननमुत्तमम् ॥ ६ ॥ सर्वरोगप्रशमनं स्वकीर्तिकुलवर्द्धनम् ॥ श्रद्दधानो दयोपेतो यः पठेदात्मवान्नरः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते च शुभां गतिम्॥१०७॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवाह्निकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥

विद्वान् इस स्तोत्रको अपने मुखसे किसीको सुनावे या आप सुने॥३॥स्नानकर पर्व२में सौ वेर स्तोत्रको जपे, तब वह मनुष्य वध और बंध परिक्लेश व्याधि शोक तिरस्कार॥४॥और विकलताको प्राप्त नहीं होता है;परलोकमें आनंद देनेवाला यह स्तोत्र वेदसंमत और पवित्र है,धन यश आयु और ॥ ५ ॥ श्री स्वर्ग पुण्य संतति कल्याणशुभ और क्षेम और मनुष्योंको बुद्धि देनेवाला है॥६॥सम्पूर्ण रोगकी शांति और कीर्ति और कुलकी वृद्धिको देता है और जो कोई मनुष्य श्रद्धासे इस स्तोत्रको पढे वह सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध हो उत्तम गतिको प्राप्त होता है॥१०७॥ इति श्रीमहाभारते

खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां बलदेवाह्निकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०९॥वैशंपायन बोले; आत्माको हनन करनेवाले शम्बर दैत्यने जिस मासमें प्रद्युम्नको हरा उसी मासमें जाम्बवतीके साम्ब उत्पन्न हुआ॥ १॥बलदेवजीने साम्बको बाल्यावस्थासे शस्त्रविद्यामें नियुक्त किया और बलदेवजीसे उपरान्त सम्पूर्ण यादवोंने सांबका मान किया ॥ २ ॥ और शत्रुहन्ता श्रीकृष्णने साम्बके उत्पन्न होतेही अपनी द्वारकापुरीमें ऐसे आनंदसे वास किया कि जैसे इन्द्रके उपवनमें देवता रहते हैं ॥३॥ तब इन्द्र यादवोंकी शोभाको देखकर अपनी शोभाकी निन्दा करने लगे और श्रीकृष्णके भयसे

वैशम्पायन उवाच ॥ हृतो यदैव प्रद्युम्नः शम्बरेणात्मघातिना ॥ मासेऽस्मिन्नेव साम्बस्तु जाम्बवत्यत्यामजायत ॥ १ ॥ बाल्यात् प्रभृति रामेण शस्त्रेषु विनियोजितः ॥ रामादनन्तरश्चैव मानितः सर्ववृष्णिभिः ॥ २ ॥ जातमात्रे ततः कृष्णः शुभां तामवसत्पुरीम् ॥ निहतामित्रसामन्तः शक्रोद्यानं यथामरः ॥ ३ ॥ यादवीं च श्रियं दृष्ट्वा स्वां श्रियं द्वेष्टि वासवः ॥ जनार्दनभयाच्चैव न शान्तिं लेभिरे नृपाः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य पुरे वारणसाह्वये ॥ दुर्योधनस्य यज्ञे वै समीयुः सर्वपार्थिवाः ॥ ५ ॥ तां श्रुत्वा माधवीं लक्ष्मीं सपुत्रं च जनार्दनम् पुरीं द्वारवतीं चैव निविष्टां सागरान्तरे ॥ ६ ॥ दूतैस्तैः कृतसन्धानाः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ श्रियं द्रष्टुं हृषीकेशमाजग्मुःकृष्णमन्दिरम् ॥७॥ दुर्योधनमुखाःसर्वे धृतराष्ट्रवशानुगाः पाण्डवप्रमुखाश्चैव धृष्टद्युम्नादयो नृपाः॥८॥पाण्ड्याश्चोलकलिङ्गेशा बाह्लीका द्राविडाःखशाः॥अक्षौहिणीःप्रकर्षन्तो दश चाष्टौ च भूमिपा॥९॥

किसी राजाको शांति प्राप्त नहीं हुई ॥४॥ और किसीके समयके योगसे हस्तिनापुरमें दुर्योधनके यज्ञमें सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा आये ॥ ५ ॥ और तिस यज्ञमें पुरुषोंके मुखसे श्रीकृष्णकी शोभाको सुन और पुत्रोंसहित श्रीकृष्ण समुद्रके अंत द्वारका पुरीको सुन ॥ ६ ॥ और अपने नौकरोंको संग ले वे सम्पूर्ण राजा श्रीकृष्णकी शोभा देखनेको द्वारकापुरीको गये॥७॥दुर्योधन पांडव ये मुख्य धृतराष्ट्रके पीछे चलनेवाले और धृष्टद्युम्नादिक राजा॥८॥ और पांड्यदेशके राजा और चोल कलिंग देशोंके राजा बाल्हिक देशके और द्राविड देशके खशके संपूर्ण राजा अठारह अक्षौहिणियोंकोसंग ले॥९॥

और रैवत पर्वतकी परिक्रमा दे श्रीकृष्णकी भुजाओंसे पालना की हुई द्वारकापुरीमें॥ १०॥प्राप्त हो और कई योजन चौडे और लम्बे अपने २ स्थानमें स्थित हो गये; तब शोभायमान श्रीकृष्ण श्रेष्ठ२यादवोंको संगले ॥ ११ ॥ राजाओंके समीप आये; और उन नरदेवोंके मध्यमें वह श्रीकृष्ण ऐसे शोभाको प्राप्त हुए॥ १२॥ कि जिस प्रकार शरदऋतुमें सूर्य शोभाको प्राप्त हो; और वह श्रीकृष्ण तिन राजाओंका यथायोग्य शिष्टाचार कर॥ १३॥ सुवर्णके सिंहासनपर स्थित हुए वे राजाभी अपने यथायोग्य आसनोंमें स्थित हुए ॥१४॥ चित्र विचित्र सिंहासनोंपर कुर्सियोंमें स्थित हुए यादवोंसहित

आजग्मुर्यादवपुरीं गोविन्दभुजपालिताम् ॥ ते पर्वतं रैवतकं परिवार्यावनीश्वराः ॥१०॥ विविशुर्योजनाख्यासु स्वासु स्वासु च भूमिषु ॥ ततः श्रीमान् हृषीकेशः सह यादवपुङ्गवैः ॥ ११ ॥ समीपं मानवेन्द्राणां निर्ययौ कमलेक्षणः ॥ स तेषां नरदेवानां मध्यस्थो मधुसूदनः ॥ १२ ॥ व्यराजत यदुश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः ॥ स तत्र समुदाचारं यथास्थानं यथावयः ॥१३॥ कृत्वा सिंहासने कृष्णः काञ्चने निषसाद ह ॥ राजानोऽपि यथास्थानं निषेदुर्विविधेष्वथ ॥ १४ ॥ सिंहासनेषु चित्रेषु पीठेषु च नराधिपाः ॥ स यादवनरेन्द्राणां समाजः शुशुभे तदा ॥ १५ ॥ सुराणामसुराणां च सदसि ब्रह्मणो यथा ॥ तेषां चित्राः कथास्तत्र प्रवृत्तास्तत्समागमे ॥ यदूनां पार्थिवानां च केशवस्योपशृण्वतः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वायुर्ववौ मेघरवोपमः ॥ तुमुलं दुर्दिनं चासीत्सविद्युत्स्तनयित्नुमत् ॥ १७ ॥ तद्दुर्दिनतलं भित्त्वा नारदः प्रत्यदृश्यत ॥ संवेष्टितजटाभारो वीणासक्तेन बाहुना ॥१८॥ स पपात नरेन्द्राणां मध्ये सागरसंनिभः ॥ नारदोऽग्निशिखाकारः श्रीमान् शक्रसखो मुनिः ॥ १९ ॥

संपूर्ण राजाओंका समाज शोभाको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ कि जैसे देवता और असुरोंकी सभामें ब्रह्माका समाज हो; और तिस सभामें श्रीकृष्णके सुनते हुए यादव और राजाओंकी चित्र विचित्र कथा होने लगी ॥ १६ ॥ उसी समयमें मेघके तुल्य शब्दवाला वायु चलने लगा; बिजली और गर्जनसे युक्त बडा तुमुल दुर्दिन हो गया ॥ १७ ॥ और बटी हुई जटाओंके भारवाले नारद मुनि वीणाको बजाते हुए उन बादलोंको भेदनकर आकाशमें दीखे ॥१८॥ और अग्निके शिखाकी तुल्य कांतिवाले शोभायमान इन्द्रके सखा समुद्रके तुल्य नारदमुनि राजाओंकी सभामें आकाशसे

उतरे ॥१९॥ उन नारदजीके पृथ्वीपर उतरनेमें वह अद्भुत महामेघका दुर्दिन दूर हुआ ॥ २० ॥ वह राजारूपी सागरको अवगाहन कर आसनपर स्थित हुए श्रीकृष्णसे नारदमुनि कहने लगे ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! संपूर्ण देवताओंके तुम आश्चर्य रूप हो;हे महाबाहो ! इस लोकमें तुम धन्यरूप होतुमसे अन्य कोई नहीं है ॥ २२ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णचंद्र मुसकाकर नारदजीके प्रति बोले; हे नारद ! दक्षिणासहित ॥२३॥ आश्चर्य और धन्य मैं ही हूं इस प्रकार कहे हुए नारदमुनि राजाओंके मध्यमें फिर श्रीकृष्णसे बोले; हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे वाक्यसे पूर्ण हुआ मैं अब जाता

तस्मिन्निपतिते भूमौ नारदे मुनिपुङ्गवे ॥ तदद्भुतं महामेघं व्यपाकृष्यत दुर्दिनम् ॥ २० ॥ सोऽवगाह्य नरेन्द्राणां मध्ये सागरसनिभः ॥ आसनस्थं यदुश्रेष्ठमुवाच मुनिरव्ययम् ॥ २१ ॥ आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥ धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन ॥ २२ ॥ एवमुक्तः स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच मुनिं प्रभुः ॥ आश्चर्यश्चैव धन्यश्च दक्षिणाभिः सहेत्यहम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः प्राह मध्ये महीभृताम् ॥ कृष्ण पर्याप्तवाक्योऽस्मि गमिष्यामि यथागतम् ॥ २४ ॥ तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य पार्थिवाः प्राहुरीश्वरम् ॥ गुह्यं मन्त्रमजानन्तो वचनं नारदेरितम् ॥ २५ ॥ आश्चर्यमित्यभिहितं धन्योऽसीति च माधव ॥ दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रत्युक्तेऽपि च नारदे ॥ २६ ॥ किमेतन्नाभिजानीमो दिव्यं मन्त्रपदं महत् ॥ यदि श्राव्यमिदं कृष्ण श्रोतुमिच्छाम ॥ तत्त्वतः॥२७॥तानुवाच ततः कृष्णः सर्वान् पार्थिवपुङ्गवान्॥ श्रोतव्य नारदस्त्वेष द्विजो वः कथयिष्यति ॥ २८ ॥ ब्रूहि नारद तत्त्वार्थं श्रोतुकामा महीभुजः ॥ यत्त्वयाभिहितं वाक्यं मयानुप्रतिभाषितम् ॥ २९ ॥

हूं ॥ २४ ॥ तब जाते हुए नारदमुनिको वे राजा देख श्रीकृष्णसे बोले; हे भगवन् ! नारदजीके गुह्यमंत्रको हम नहीं जानते न इन्होंने कहा ॥ २५ ॥ हे भमवन् ! दक्षिणासहित आश्चर्य और धन्य यह क्या वचन नारदसे कहा ॥ २६ ॥ इस परममंत्रको हम क्यों नहीं जानते सो हे भगवन् ! यह मंत्र सुनानेके योग्य हो तो हमको सुनाओ; हम सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ २७ ॥ तब उन श्रेष्ठ राजाओंके प्रति श्रीकृष्ण बोले, हे राजाओ ! मैं नारदके प्रति वर्णन करता हूं यह तुम्हारे अगाडी कहेंगे ॥ २८ ॥ ऐसे कह श्रीकृष्ण नारदमुनिसे बोले; हे नारदमुने ! यह संपूर्ण राजा

सुननेकी इच्छा करते हैं; सो इनके प्रति तुम तत्त्वार्थ वर्णन करो ॥२९॥ यह सुन नारदमुनि सुवर्णके आसनपर बैठे हुए श्रीकृष्णक प्रभाव कहनेको प्रवृत्त हुए ॥३०॥नारदमुनि बोले; हे राजाओ ! इन श्रीकृष्णका जितना प्रभाव मैं जानता हूं उसको तुम जितने राजा सभामें बैठे हो वे सब मेरे मुखसे सुनो ॥ ३१ ॥ मैं एक दिन प्रातःकाल गंगाजीके तीरपर स्नान करनेको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ तब एक कोस चौडा और दो कोस लंबा और पर्वतके शिखरकेसे आकारवाला और कपालोंवाला॥३३॥चार पैरोंसे श्लिष्ट गीला और मेरी वाणीके समान आकृतिवाला हाथीकेचर्मके समूहके समान

स पीठे काञ्चने शुभ्रे सूपविष्टः स्वलंकृतः ॥ प्रभावं तस्य वन्द्यस्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा यावन्तः स्थ समागताः ॥ अस्य कृष्णस्य महतो यथा पारमहं गतः ॥ ३१ ॥ अहं कदाचिद्गङ्गायास्तीरे त्रिषवणातिथिः ॥ चराम्येकः क्षपापाये दृश्यमाने दिवाकरे ॥ ३२ ॥ अवश्यं गिरिकूटाभं कपालद्वयदेहिनम् ॥ क्रोशमण्डलविस्तारं तावद्द्विगुणमायतम् ॥ ३३ ॥ चतुश्चरणसुश्लिष्टं क्लिन्नं चैव सपङ्किलम् ॥ मम वीणाकृतिं कूर्मं गजचर्मचयोपमम् ॥ ३४ ॥ सोऽहं तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रोक्तवान् जलचारिणम् ॥ त्वमाश्चर्यशरीरोऽसि कूर्म धन्योऽसि मे मतः ॥ ३५ ॥ यस्त्वमेवमभेद्याभ्यां कपालाभ्यां समावृतः ॥ तोये चरसि निःशङ्कः किंचिदन्यमचिन्तयन् ॥ ३६ ॥ स मामुवाचाम्बुचरः कूर्मो मानुषवत्स्वयम् ॥ किमाश्चर्यं मयि मुने धन्यश्चाहं कथं विभो ॥३७॥ गङ्गेयं निम्नगा धन्या किमाश्चर्यमतः परम् ॥ यत्राहमिव सत्वानि चरन्त्ययुतशो द्विज ॥३८॥ सोऽहं कुतूहलाविष्टो नदीं गङ्गामुपस्थितः धन्यासि त्वं सरिच्छ्रेष्ठ नित्यमाश्चर्यभूषिता ॥ ३९ ॥

उपमावाला॥३४॥ऐसे जीवको मैं देखकर उस जलचारी जीवको अपने हाथसे स्पर्श कर मैं बोला कि,हे कूर्म! तू आश्चर्यरूप शरीरवालाहै और धन्य है॥३५॥क्योंकि तू अभेद्यरूप दोनों कपालोंसे आवृत हुआ निःसन्देह इस जलमें विचरता है ॥३६॥ तब वह कछुआ मनुष्यकी वाणीसे मुझसे बोला कि, हे मुने ! मेरेमें क्या आश्चर्य है और म कैसे धन्य हूं॥३७॥धन्य तो यह गंगाजी हैं क्योंकि इस गंगाजीमें मेरे सरीखे सहस्रों विचरते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा मनमें आश्चर्यसे युक्त हुआ गंगामें जाकर प्राप्त हुआ और गंगासे मैं बोला कि, हे गंगे ! तू धन्य है और नित्य आश्चर्यसे भूषित है ॥ ३९ ॥

क्योंकि तू बडी २ देहवाले जीवोंसे शोभित है; और तपस्वियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हुई समुद्रमें जाती है ॥४०॥ इस प्रकार संभाषण की हुई गंगा अपना रूप धर नारदसे बोली ॥४१॥ कि हे देवताओंके गंधर्व ! हे कलहप्रिय ! मुझसे ऐसे मत कहो क्योंकि मैं धन्य नहीं हूं; और आश्चर्यसे भी शोभित नहीं हूं ॥४२॥ और हे द्विज ! संपूर्ण आश्चर्योंको करनेवाला और धन्यरूप इस लोकमें समुद्र है ॥ ४३ ॥ क्योंकि मेरे सरीखे विस्तारवाली सैंकडों नदी तिसमें जाकर प्राप्त होती हैं; इस प्रकार गंगाके वाक्यको सुनकर मैं समुद्रमें जाकर प्राप्त हुआ ॥४४॥ और मैं बोला कि, हे समुद्र ! तू

या त्वमेवं महादेहैः श्वापदैरुपशोभिता ॥ ह्रदिनी सागरं यासि रक्षन्ती तापसालयान् ॥४०॥ एवमुक्ता ततो गंगा रूपिणी प्रत्यभासत ॥ नारदं देवगन्धर्व शक्रस्य दयितं द्विजम् ॥४१॥ मा मैवं देवगन्धर्व सङ्ग्रामकलहप्रिय ॥ नाहं धन्या द्विजश्रेष्ठ नैवाश्चर्योपशोभिता ॥४२॥ तव सत्ये निविष्टस्य वाक्यं मां प्रतिबाधते ॥ सर्वाश्चर्यकरो लोके धन्यश्चैवार्णवो द्विज ॥४३॥ यात्राहमिव विस्तीर्णाः शतशो यान्ति निम्नगाः ॥ सोऽहं त्रिपथगावाक्यं श्रुत्वार्णवमुपस्थितः ॥४४॥ आश्चर्यं खलु लोकानां धन्यश्चासि महार्णव ॥ येन खल्वसि योनिस्त्वमम्भसां सलिलेश्वरः ॥४५॥ स्थाने त्वां वारिवाहिन्यः सरितो लोकपावनाः ॥ इमाः समभिगच्छन्ति पत्न्यो लोकनमस्कृताः ॥ ४६ ॥ समुद्रस्त्वेवमुक्तस्तु ततो मामवदद्वचः ॥ स्वं जलौघतलं भित्त्वा व्युत्थितः पवनेरितः ॥४७॥ मा मैवं देवगन्धर्व नास्म्याश्चर्यो द्विजर्षभ ॥ वसुधेयं मुने धन्या यत्राहमुपरि स्थितः ॥४८॥ ऋते तु पृथिवीं लोके किमाश्चर्यमतः परम् ॥ सोऽहं सागरवाक्येन क्षितिं क्षितितले स्थितः ॥ ४९ ॥

लोकमें धन्यरूप है और आश्चर्यरूप है इसमें तू सम्पूर्ण जलोंकी योनि है और ईश्वर है॥४५॥जलोंको बहानेवाली लोकोंको पवित्र करनेवाली लोकोंको नमस्कार की हुई नदीरूप स्त्री तुझमें जाकर प्राप्त होती हैं॥४६॥यह वचन सुनकर समुद्र मुझसे कहने लगा कि मैं तो अपना पाताल भेदकर उपस्थित हुआ हूं॥४७॥हे देवगंधर्व!ऐसे मत कहो मैं आश्चर्यरूप नहीं हूं;हे मुने ! यह पृथ्वी धन्य है:जिसके ऊपर मैं स्थित हूं॥४८॥और इस लोकमें पृथ्वीसे

उपरान्त आश्चर्य क्या है; यह सुन मैं समुद्रके वाक्यसे पृथ्वीतलमें पृथ्वीपर स्थित हुआ ॥ ४९ ॥ और आश्चर्यसे युक्त हुआ मैं पृथ्वीसे बोला कि, हे धरित्रि ! हे देहधारियोंकी योनि ! हे शोभने ! तू धन्य है॥५०॥हे महाक्षमायुक्ते ! तुझसे मनुष्योंमें आश्चर्य है और मनुष्योंकी तू अरणि रूप है॥५१॥ तुझहीसे भूतोंके क्षमा उत्पन्न होती है, तब सामयुक्ते स्तुतिरूपी वचनोंसे क्षोभ की हुई पृथ्वी ॥ ५२ ॥ अपनी धीर्यताको त्याग मुझसे बोली कि हे देव-गंधर्व ! हे कलहप्रिय॥५३॥ ऐसे मत कहो, क्योंकि मैं धन और आश्चर्यरूप नहीं हूं; हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! ये सम्पूर्ण पर्वत धन्य हैं, जो मुझे धारण करते

कौतूहलसमाविष्टो ह्यब्रुवं जगतो गतिम् ॥ धरित्रि देहिनां योने धन्यास्खल्वासि शोभने ॥ ५० ॥ आश्चर्यं चापि भूतेषु महत्या क्षमया युते ॥ तेन खल्वसि भूतानां धरणी मनुजारणिः ॥ ५१ ॥ क्षमा त्वत्तः प्रभूता च कर्मं चाम्बरगामिनाम् ॥ ततो भूः स्तुतिवाक्येन सा मयोक्तेन तेजिता ॥ ५२ ॥ विहाय सहजं धैर्यं प्रत्यक्षा मां प्रभाषत ॥ देवगन्धर्व मा मैवं सङ्ग्रामकलहप्रिय ॥ ५३ ॥ नास्मि धन्या न चाश्चर्यं पारक्येयं धृतिर्मम ॥ एते धन्या द्विजश्रेष्ठ पर्वता धारयन्ति माम् ॥ ५४ ॥ आश्चर्याणि च दृश्यन्ते एते लोकस्य हेतवः ॥ सोऽहं धरणिवाक्येन पर्वतान् समुपस्थितः ॥ ५५ ॥ धन्या भवन्तो दृश्यन्ते बह्वाश्चर्याश्च भूधराः ॥ काञ्चनस्याग्ररत्नस्य धातूनां च विशेषतः ॥ ५६ ॥ तेन खल्वाकराः सर्वे भवन्तो भुवि शाश्वताः ॥ ते ममैतद्वचः श्रुत्वा पर्वतास्तस्थुषां वराः ॥ ५७ ॥ ऊचुर्मां सान्त्वयुक्तानि वचांसि वनशोभिताः ॥ ब्रह्मर्षे न वयं धन्या नाप्याश्चर्याणि सन्ति नः ॥ ब्रह्मा प्रजापतिर्धन्यः सर्वाश्चर्यः सुरेष्वपि ॥ ५८ ॥ सोऽहं प्रजापतिं गत्वा सर्वप्रभवमव्ययम् ॥ तस्य वाक्यस्य पर्यायपर्याप्तिमिव लक्षये ॥ ५९ ॥

हैं ॥५४॥ यही लोकके कारण आश्चर्य रूप हैं; तब मैं धरणीके वाक्योंसे पर्वतोंमें जाकर प्राप्त हुआ॥५५॥और पर्वतोंसे मैं बोला, हे पर्वतो ! तुम धन्य और आश्चर्यरूप दीखते हो; और सुवर्ण रत्न और सम्पूर्ण धातुओंकी ॥ ५६ ॥ खानोंवाले हो; तब स्थावरोंमें श्रेष्ठ वनोंसे शोभित पर्वत मेरे वचन सुन ॥ ५७ ॥ शांतियुक्त वचन बोले; हे ब्रह्मर्षे ! हम धन्य नहीं हैं; और हमारे आश्चर्यभी नहीं है किन्तु प्रजाका पति ब्रह्मा धन्य है; और सम्पूर्ण देव-ताओंमें आश्चर्यरूप है ॥ ५८ ॥ तब मैं यह सुन सम्पूर्ण जगत्के उत्पन्न करनेवाले अव्यय ब्रह्माके पास जाकर उनके वचनकी पूर्णता करके ॥ ५९ ॥

इस प्रकार जगत्के कारण चतुर्मुख ब्रह्माके पास जाय शिरको नवाय नम्र हो ब्रह्माकी स्तुति करने लगा॥६०॥तब अपने वाक्यकी पूर्णताके अर्थ मैं ब्रह्माको सुनाने लगा कि, तुम इस जगत्के गुरु हो और तुमही आश्चर्य और धन्यरूप हो ॥ ६१ ॥ हे भगवन्! इस उत्पन्न हुए जगत्को तुमसे अन्य मैं नहीं देखता सो यह स्थावर और जंगम दो प्रकारका जगत् तुमसेही उत्पन्न हुआ है ॥६२॥ देवता दानव मनुष्य और सम्पूर्ण जगत् ये सब तुम्हारी दृष्टिसे उत्पन्न होते हैं ॥ ६३ ॥ इसीसे आप देवताओंके सनातन देव हो.आप आदिमें उत्पन्न हुए लोकोंके बनानेवाले हो ॥ ६४ ॥ यह वचन

सोऽहं पितामहं देवं लोकयोनिं चतुर्मुखम् ॥ स्तोतुं पश्चादुपगतः प्रणतोऽवनताननः ॥ ६० ॥ सोऽहं वाक्यसमाप्त्यर्थं श्रावये पद्मयोनिजम् ॥ आश्चर्यं भगवानेको धन्योऽसि जगतो गुरुः ॥ ६१ ॥ न किंचिदन्यत्पश्यामि भूतं यद्भवता समम् ॥ त्वत्तः सर्वमिदं जातं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६२ ॥ सदेवदानवा मर्त्या लोकभूतेन्द्रियात्मका ॥ भवन्ति सर्वं देवेश दृष्ट्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६३ ॥ तेन खल्वसि देवानां देवदेवः सनातनः ॥ तेषामेवासि यत्स्रष्टा लोकानामादिसम्भवः ॥ ६४ ॥ ततो मां प्राह भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ धन्याश्चर्याश्रितैर्वाक्यैः किं मां नारद भाषसे ॥६५॥ आश्चर्यं परमं वेदा धन्या वेदाश्च नारद ॥ ये लोकान् धारयन्ति स्म वेदास्तत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ६६ ॥ ऋक्सामयजुषांसत्यमथर्वणि च यन्मतम् ॥ तन्मयं विद्धि मां विप्र धृतोऽहं तैर्मया च ते॥६७॥पारमेष्ठ्येन वाक्येन नोदितोऽहं स्वयंभुवा ॥ वेदोपस्थानिकां चक्रे मतिसंस्थानविस्तरात् ॥६८॥ सोऽहं स्वयंभूवचना-द्वेदान्वै समुपस्थितः ॥ अवोचं तांश्च चतुरो मन्त्रप्रवचनान्वितान् ॥ ६९ ॥

सुन सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मा मुझसे बोले ॥ ६५ ॥ हे नारद! आश्चर्य और धन्यरूप तो वेद है क्योंकि लोकोंको तत्त्व अर्थको धारण कराते हैं ॥ ६६ ॥ ऋग् साम यजु अथर्व इन चारों वेदोंमें मुझे तन्मय जानो; और तिन वेदोंने मुझे धारण कर रक्खा है और वे वेद धारण कर रक्खे हैं ॥ ६७ ॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माके वचनसे प्रेरण किया मैं बुद्धिकर वेदोंके पास गया ॥ ६८ ॥ और ब्रह्माके वचनसे मंत्रोंसहित चारों

वेदोंके पास जाय मैं कहने लगा ॥ ६९ ॥ कि हे वेदो ! तुम धन्य हो और पवित्र हो आश्चर्यसे भूषित हो और ब्राह्मणोंके आधार हो यह ब्रह्माने कहा है ॥ ७० ॥ प्रश्नमें तुम ब्रह्मासेभी परे निर्मित हुए हो श्रुति वा तपमें तुमसे कोई परे नहीं है ॥ ७१ ॥ तब वे वेद इस प्रकार वचन सुन अगाडी स्थित हुए मुझसे बोले, कि आश्चर्य और धन्यरूप तो परमेश्वरसंबन्धी यज्ञ है ॥ ७२ ॥ क्योंकि यज्ञोंके अर्थ हमको ब्रह्माने रचा है; इससे हमसे श्रेष्ठ यज्ञ हैं और यज्ञोंसे श्रेष्ठ हम नहीं हैं ॥ ७३ ॥ ब्रह्मासे श्रेष्ठ वेद हैं और वेदोंसे श्रेष्ठ यज्ञ हैं, तब मैं वेदोंके वचनको सुन और मैं गंभीर वाणीसे यज्ञोंसे

धन्या भवन्तः पुण्याश्च नित्यमाश्चर्यभूषिताः ॥ आधाराश्चैव विप्राणामेवमाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥ स्वयंभुवोपीह परं भवत्सु प्रश्नमागतम् ॥ युष्मत्परतरं नास्ति श्रुत्या वा तपसापि वा ॥ ७१ ॥ प्रत्यूचुस्ते ततो वाक्यं वेदा मामभितः स्थिताः ॥ आश्चर्याश्चैव धन्याश्च यज्ञाश्चात्मपरायणाः ॥ ७२ ॥ यज्ञार्थे च वयं सृष्टा धात्रा येन स्म नारद ॥ तदस्माकं परो यज्ञो वयं च स्ववशे स्थिताः॥ ७३ ॥ स्वयंभुवः परा वेदा वेदानां क्रतवः पराः ॥ ततोऽहमब्रुवं यज्ञान् बृहद्वाग्भिः पुरस्कृतान् ॥ ७४ ॥ भो यज्ञाः परमं तेजो युष्मासु खलु लक्ष्यते ॥ ब्रह्मणाभिहितं वाक्यं यच्च वेदैरुदीरितम् ॥ ७५ ॥ आश्चर्यमन्यल्लोकेऽस्मिन्भवद्भ्यो नाभिगम्यते ॥ धन्याः खलु भवन्तो ये द्विजातीनां स्ववंशजाः ॥ ७६ ॥ तेऽपि खल्वग्नयस्तृप्तिं युष्माभिर्यान्ति तर्पिताः ॥ भागैश्च त्रिदशाः सर्वे मन्त्रैश्चैव महर्षयः ॥७७॥ अग्निष्टोमादयो यज्ञा मम वाक्यादनन्तरम् ॥ प्रत्यूचुर्मां ततो वाक्यं सर्वे यूपध्वजाः स्थिताः ॥ ७८ ॥ आश्चर्यशब्दो नास्मासु धन्यशब्दोऽपि वा मुने ॥ आश्चर्यं परमं विष्णुः स ह्यस्माकं परा गतिः ॥ ७९ ॥

बोला ॥ ७४ ॥ हे यज्ञो ! तुममें परमतेज दीखता है, क्योंकि ब्रह्माके कहे हुए वाक्य वेदोंने मुझसे प्रगट किये हैं ॥ ७५ ॥ इस लोकमें तुमसे अन्य आश्चर्य और किसीमें नहीं दीखता है; सो ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होनेवाले तुम धन्य हो ॥ ७६ ॥ क्योंकि तुम्हारे तृप्त किये हुए होमोंसे अग्नि और भागोंसे देवता और मंत्रोंसे महर्षि ॥ ७७ ॥ तृप्तिको प्राप्त होते हैं; ऐसे कहनेके उपरान्त मेरे वचनसे वे यूप ध्वजाओंसहित अग्निष्टोमादि यज्ञ कहने लगे ॥ ७८ ॥ हे मुने ! आश्चर्य और धन्य शब्द हमारेमें नहीं है; और आश्चर्यरूप तो एक विष्णु भगवान् हैं सो वे हमारी परमगतिरूप है ॥ ७९ ॥

अग्निमें होमे हुए घृतको जो हम भोजन करते हैं उस सपूणको लोकमूर्ति विष्णुभगवान् प्राप्त कर देते हैं ॥८०॥ यह यज्ञोंके वचन सुन विष्णुक प्राप्तिकी इच्छा कर मैं पृथ्वीपर आया और तुमसे युक्त हुए श्रीकृष्णको मैने देखा ॥८१॥ और कहा है;हे भगवन्! तुम आश्चर्य और धन्यरूप हो ऐसे जो मैंने कहा था सो हे राजाओ! वह आश्चर्य और धन्यरूप तुममें स्थित हुए श्रीकृष्ण हैं ॥८२॥ इसके ऊपर श्रीकृष्णने मुझसे कहा है कि मैं दक्षिणासहित यज्ञोंकी गति हूं॥८३॥ दक्षिणासहित संपूर्ण यज्ञोंकी गति विष्णुभगवान् हैं; और दक्षिणासहित आश्चर्य और धन्यरूप हैं,यह मेरा

यदाज्यं वयमश्नीमो हुतमग्निषु पावनम् ॥ तत्सर्वं पुण्डरीकाक्षो लोकमूर्तिः प्रयच्छति ॥ ८० ॥ सोऽहं विष्णोर्गतिं प्रेप्सुरिह संपतितो भुवि ॥ दृष्टश्चायं मया कृष्णो भवद्भिरिह संवृतः ॥ ८१ ॥ यन्मयाभिहितो ह्येष त्वमाश्चर्यं जनार्दन ॥ धन्यश्चासीति भवतां मध्यस्थो ह्यत्र पार्थिवाः ॥ ८२ ॥ प्रत्युक्तोऽहमनेनाद्य वाक्यस्यास्य यदुत्तरम् ॥ दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम ॥८३॥ यज्ञानां हि गतिर्विष्णुः सर्वेषां सहदक्षिणः ॥ दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रश्नो मम समाप्तवान् ॥ ८४ ॥ कूर्मेणाभिहितं पूर्वं पारम्पर्यादिहागतम् ॥ सदक्षिणेऽस्मिन्पुरुषे तद्वाक्यं प्रतिपादितम् ॥८५॥ यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति वाक्यस्यास्य विनिर्णयम् ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं साधयामि यथागतम् ॥८६॥ नारदे तु गते स्वर्गं सर्वे ते पृथिवीभुजाः ॥ विस्मिताः स्वानि राष्ट्राणि जग्मुः सबलवाहनाः ॥८७॥ जनार्दनोऽपि सहितो यदुभिः पावकोपमैः ॥ स्वमेव भवनं वीरो विवेश यदुनन्दनः ॥८८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि धन्योपाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

प्रश्न था सो समाप्त हुआ॥८४॥जो कूर्मने मुझसे कहा उसके वचनसे मैं परंमपरासे यहां प्राप्त हुआ हूं; सो उन्होंने दक्षिणासहित उस वाक्यका प्रतिपादन किया ॥ ८५ ॥ जो प्रश्न तुमने मुझसे पूछा उसका निर्णय मैं तुम्हारे अगाडी कह चुका अब मैं जाता हूं ॥ ८६ ॥ यह कह नारदमुनि स्वर्गको गये;सेना और वाहनोंसहित संपूर्ण राजाभी अपने २ देशोंको गये ॥ ८७ ॥ और अग्निके तुल्य उपमावाले यादवोंसहित यदुनंदन श्रीकृष्णभी भवनमें प्राप्त हुए ॥ ८८ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरि० विष्णुप० भाषायां धन्योपाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०

जन्मेजय बोले; हे महाबाहो ! फिरभी म बडी भुजावाले कृष्णके माहात्म्य सुननेकी इच्छा करता हूं. हे द्विजश्रेष्ठ ! ॥ १ ॥ उन पुराणपुरुष परमात्माके कर्मोंका अनुक्रम सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ वैशंपायन बोले; हे महाराज ! गोविंदका प्रभाव तो कोई सौ वर्षमेंभी नहीं कह सकता परन्तु जो मुझे स्मरण है सो आप इस अद्भुतको श्रवण कीजिये ॥३॥ शरशय्यापर पडे हुए भीष्मसे प्रेरित हुए अर्जुनने जो केशवका माहात्म्य ॥४॥ हे महाराज ! राजोंके बीचमें ज्येष्ठ भ्राताके प्रति कहा है हे शत्रुजेता कौरव ! वह आप युधिष्ठिरके प्रति कही वार्ता सुनिये ॥ ५ ॥ अर्जुन

जनमेजय उवाच ॥ भूय एव महाबाहो कृष्णस्य जगतां पतेः ॥ माहात्म्य श्रोतुमिच्छामि परम द्विजसत्तम॥१॥ नहि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतस्तस्य धीमतः ॥ कर्मणामनुसन्धानं पुराणस्य महात्मनः ॥२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नान्तः शक्यः प्रभावस्य वक्तुं वर्ष-शतैरपि ॥ गोविन्दस्य महाराज श्रूयतामिदमद्भुतम् ॥३॥ शरतल्पे शयानेन भीष्मेण परिचोदितः ॥ गाण्डीवधन्वा बीभत्सुर्मा-हात्म्यं केशवस्य यत् ॥४॥ राज्ञां मध्ये महाराज ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥ युधिष्ठिरं जितामित्रमिति तच्छृणु कौरव ॥५॥ अर्जुन उवाच ॥ पुराहं द्वारकां यातः संबन्धीनवलोककः ॥ न्यवस पूजितस्तत्र भोजवृष्ण्यन्धकोत्तमैः ॥ ६ ॥ ततः कदाचिद्धर्मात्मा दीक्षितो मधुसूदनः ॥ एकाहेन महाबाहुः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥७॥ ततो दीक्षितमासीनमभिगम्य द्विजोत्तमः ॥ कृष्णं विज्ञापयामास त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ रक्षाधिकारो भवतः परित्रायस्व मां विभो ॥ चतुर्थांशं हि धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ॥ ९ ॥

बोले; एक समय मैं अपने सम्बन्धी जनोंके देखनेको द्वारकामें गया था वहां भोजवंशी तथा अन्धकोंसे पूजित हो निवास करने लगा ॥ ६ ॥ एक समय महात्मा कृष्ण शास्त्रविधिके अनुसार एकसूक्तवाले सोमयागमें दीक्षित हुए ॥ ७ ॥ उस समय दीक्षित हुए कृष्णके पास एक ब्राह्मण आनकर कहने लगा कि मेरी रक्षा करो मेरी रक्षा करो ॥ ८ ॥ ब्राह्मण बोला; तुम्हारा रक्षामें अधिकार है सो मेरी रक्षा करो, रक्षा करनेवाला उसके धर्मके चतुर्थांश फलको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे ब्राह्मण ! भय मत करो तुमको कहांसे भय है, कहो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा तेरा मंगल हो जो दुष्करभी हो उसे कहो ॥१०॥ ब्राह्मण बोला; हे पापरहित ! उत्पन्न होते ही मेरे पुत्र हरण हो जाते हैं, सो तीन तो हरण हो चुके. हे कृष्ण ! अब चौथेकी आप रक्षा करिये ॥११॥ ब्राह्मणीके प्रसूतिका समय है सो अब आप रक्षा कीजिये. हे जनार्दन ! जिस प्रकार मेरा पुत्र बचे सो उपाय करो ॥ १२ ॥ अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा कि मैं तो यज्ञमें दीक्षित हूं और सब प्रकारसे इस ब्राह्मणकी रक्षा करनी चाहिये ॥१३॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णके वचन सुनकर मैं बोला; हे गोविंद ! इस ब्राह्मणकी रक्षामें आप मुझको नियुक्त कीजिये मैं इस ब्राह्मणको दुःखसे मुक्त कर दूंगा ॥ १४ ॥ यह कहने

वासुदेव उवाच ॥ न भेतव्यं द्विजश्रेष्ठ रक्षामि त्वां कुतो भयम् ॥ ब्रूहि तत्त्वेन भद्रं ते यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ १० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ जातो जातो महाबाहो पुत्रो मे ह्रियतेऽनघ ॥ त्रयो हृताश्चतुर्थं त्वं कृष्ण रक्षितुमर्हसि॥११॥ब्राह्मण्याः सूतिकालोद्य तत्र रक्षा विधीयताम् ॥ तथा ध्रियेदपत्यं मे तथा कुरु जनार्दन ॥१२॥ अर्जुन उवाच ॥ ततो मामाह गोविन्दो दीक्षितोऽहं क्रता-विति ॥ रक्षा च ब्राह्मणे कार्या सर्वावस्थांगतैरपि ॥ १३ ॥ श्रुत्वाहमेवं कृष्णस्य वचोऽवोचं नराधिप ॥ मां नियोजय गोविन्द रक्षिष्येऽहं द्विजं भयात् ॥१४॥ इत्युक्तः स स्मितं कृत्वा मामुवाच जनार्दनः रक्षसीत्येवमुक्तस्तु व्रीडितोऽस्मि नराधिप ॥१५॥ ततो मां व्रीडितं मत्वा पुनराह जनार्दनः ॥ गम्यतां कौरवश्रेष्ठ शक्यते यदि रक्षितुम् ॥ १६ ॥ त्वत्पुरोगाश्च रक्षन्तु वृष्ण्यन्ध-कमहारथाः ॥ ऋते राम महाबाहुं प्रद्युम्नं च महाबलम्॥१७॥ततोऽहं वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः तमग्रतो द्विजं कृत्वा प्रयातः सह सेनया ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

पर हँसते हुए श्रीकृष्णनेमुझसे कहा, क्या तुम रक्षा करोगे ? मैं यह सुनकर लज्जित हो गया ॥ १५ ॥ फिर मुझे लज्जित जानकर श्रीकृष्ण बोले; हे कौरवश्रेष्ठ ! यदि रक्षा करनेमें समर्थ हो तो जाओ ॥१६॥ तुमसे आगे होकर महारथी वृष्णि और अंधक रक्षा करें केवल बलराम और महाबली प्रद्युम्नजी नहीं जांयगे ॥ १७ ॥ तब मैं बहुतसी वृष्णि अंधकवंशियोंकी सेनाको लेकर सेनासहित उस ब्राह्मणको आगे करके चला ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

अर्जुन बोले, हे राजन् ! हम एक मुहूर्तमें उस ग्राममें प्राप्त होकर विश्रान्तवाहन होकर वहां ठहरनेकी इच्छा करने लगे ॥१॥ हे कुरुनन्दन ! तब मैं और चारों ओर वृष्णिवंशियोंकी सेनासे युक्त था ॥ २ ॥ उस समय दीप्तिमान् पक्षी और मृग क्रूर शब्द करने लगे और दीप्तिमान दिशामें प्राप्त हुए मुझे भय सूचित करने लगे ॥ ३ ॥ संध्याका रंग जपाकुसुमकी समान हो गया सूर्य प्रभाहीन हो गये आकाशसे उल्कापात और पृथ्वी कंपित होने लगी ॥ ४ ॥ उन दारुण रोम खडे करनेवाले महाउत्पातोंको देखकर मैंने उत्सुकचित्त हो सेनाके तैयार होनेकी आज्ञा

अर्जुन उवाच ॥ मुहूर्तेन वयं ग्रामं तं प्राप्य भरतर्षभ ॥ विश्रान्तवाहनाः सर्वे निवासायोपसंस्थिता ॥१॥ ततो ग्रामस्य मध्येऽहं निविष्टः कुरुनन्दन ॥ समन्ताद्वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः ॥२॥ ततः शकुनयो दीप्ता मृगाश्च क्रूरभाषिणः ॥ दीप्तायां दिशि वाशन्तो भयमावेदयन्ति मे॥३॥सन्ध्यारागो जपावर्णो भानुमांश्चैव निष्प्रभः ॥ पपात महती चोल्का पृथिवी चाप्यकम्पत ॥४॥ तान्समीक्ष्य महोत्पातान्दारुणाँल्लोमहर्षणान् ॥ योगमाज्ञापयंस्तत्र जनस्योत्सुकचेतसः॥५॥युयुधानपुरोगाश्च वृष्ण्यन्धकमहारथाः॥ सर्वे युक्तरथाः सज्जाः स्वयं चाहं तथाभवम् ॥६॥ गतेऽर्द्धरात्रसमये ब्राह्मणो भयविक्लवः ॥ उपागम्य भयादस्मादिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥ कालोऽयं समनुप्राप्तो ब्राह्मण्याः प्रसवस्य मे तथा भवन्तस्तिष्ठन्तु न भवेद्धर्षणं यथा ॥८॥ मुहूर्तादेव चाश्रौषं कृपणं रुदितस्वनम् ॥ तस्य विप्रस्य भवने ह्रियतेऽह्रियतेति च ॥९॥ अथाकाशे पुनर्वाचमश्रौषं बालकस्य च ॥ ऊँहेति ह्रियमाणस्य नच पश्यामि राक्षसम् ॥ १० ॥

दी ॥ ५ ॥ सात्यकीको आगे करके वृष्णि अंधक महारथी रथ आदिमें बैठकर सज्जित हो गये और मैं भी सज्जित हो गया ॥ ६ ॥ जब आधी रात हुई तब भयसे व्याकुल हो ब्राह्मणने मेरे पास आनकर इस प्रकारके वचन कहे ॥ ७ ॥ अब मेरी ब्राह्मणीके पुत्र होनेका समय प्राप्त हुआ है, सो आप इस प्रकार सावधान हूजिये कि वह हरण न हो ॥ ८ ॥ तब एकही मुहूर्त्तमें मैंने दीनतासे रोनेका शब्द सुना, उस ब्राह्मणके घरसे सुनाई आया यह ले चले ले चले ॥ ९ ॥ फिर आकाशमें भी मैंने बालककी वाणी सुनी परन्तु जो हरण

कर ले गया उस राक्षसका वचन मैंने न सुना ॥ १० ॥ हे तात ! तब हमने बाणोंकी वर्षासे सब दिशा आच्छादित कर दीं तथापि वह बालक हरण हो गया ॥११॥ उस कुमारके हरण होनेपर वह ब्राह्मण दुःखका शब्द करके उस समय मुझे तीक्ष्ण वचन सुनाने लगा॥ १२ ॥ तथा वृष्णिवंशवाले हतसंकल्प और मैं नष्ट चित्तवाला हो गया तब वह ब्राह्मण विशेषकर मुझसेही कहने लगा ॥१३॥ तैंने कहा कि मैं रक्षा करूंगा और फिर रक्षा न कर सका, हे दुर्मति ! जिनके तू योग्य है उन वचनोंको श्रवण कर॥१४॥तू महाबुद्धिमान् कृष्णसे वृथाही स्पर्धा करता है जो यहां

ततोऽस्माभिस्तदा तात शरवर्षैः समन्ततः ॥ विष्टम्भिता दिशः सर्वा हृत एव स बालकः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोर्तस्वरं कृत्वा हृते तस्मिन्कुमारके ॥ वाचः स परुषास्तीव्राः श्रावयामास मां तदा ॥ १२ ॥ कृष्णयो हतसंकल्पास्तथाहं नष्टचेतनः ॥ मामेव हि विशेषेण ब्राह्मणः प्रत्यभाषत ॥१३॥ रक्षिष्यामीति चोक्तं ते नच रक्षितवानसि ॥ शृणु वाक्यमिदं शेषं यावमर्हसि दुर्मते॥१४॥ वृथा त्वं स्पर्द्धसे नित्यं कृष्णेनामितबुद्धिना ॥ यदि स्यादिह गोविन्दो नैतदत्यहितं भवेत् ॥ १५ ॥ यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ॥ पापस्यापि तथा मूढ मागं प्राप्नोत्यरक्षिता ॥ १६ ॥ रक्षिष्यामीति चोक्तं ते नच शक्तोऽसि रक्षितुम् ॥ मोघं गाण्डीवमेतत्ते मोघं वीर्यं यशश्च ते ॥ १७ ॥ अकिञ्चिदुक्त्वा तं विप्रं ततोऽहं प्रस्थितस्तथा ॥ सह वृष्ण्यन्धकसुतैर्यत्र कृष्णो महाद्युतिः ॥१८॥ ततो द्वारवतीं गत्वा दृष्ट्वा मधुनिघातिनम् ॥ व्रीडितः शोकसन्तप्तो गोविन्देनोपलक्षितः ॥ १९ ॥ स तु मां व्रीडितं दृष्ट्वा विनिन्दन् कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण होते तो यह मेरा अहित नहीं होता ॥१५॥ जिस प्रकार रक्षा करनेवाला धर्मके चौथे भागका फल पाता है इसी प्रकार रक्षाका करनेवाला मूर्ख पापके चौथे भागके फलको पाता है ॥ १६ ॥ तैंने कहा था रक्षा करूंगा और रक्षा करनेको समर्थ न हुआ तेरा गांडीव धनुष पराक्रम यश मोघ अर्थात् थोडे पराक्रमवाला है ॥१७॥ तब मैं उस ब्राह्मणसे विना कुछ कहे वहांसे चला और वृष्णि अंधक पुत्रादिभी महाद्युतिमान् कृष्णके समीप गये ॥१८॥ द्वारकापुरीमें जाकर मधुसूदनको देखकर मैं लज्जित हुआ तब श्रीकृष्णने मुझे शोकयुक्त देखा ॥ १९ ॥ वह ब्राह्मण मुझे लज्जित देख

श्रीकृष्णके सन्मुख मेरी निन्दा करता हुआ बोला कि मेरी मूर्खताको तो देखो जो मैंने इस क्लीबके वचनमें विश्वास किया॥२०॥प्रद्युम्न अनिरुद्ध बलराम कृष्णभी जिसकी रक्षा करनेमें समर्थ न हुए फिर कौन दूसरा बचा सकता है॥२१॥गर्जन करना जो वृथा हो उस गर्जनको धिक्कार है वृथा श्लाघा-वाले तेरे धनुषको धिक्कार है जो मूर्खतासे दैवहत होकर उसमें पौरुष करता है वह दुर्मति है॥२२॥इस ब्राह्मणके इस प्रकारको सुन शनैःसे मैं वैष्णवी-विद्यामें स्थित हो जहां भगवान् यम रहते हैं उस संयमूनी पुरीको गया॥२३॥वहां ब्राह्मणके पुत्र न देखकर इन्द्रकी पुरीको गया फिर अग्निकी निर्ऋ-

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो नच केशवः ॥यत्र शक्ताः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवनेश्वरः ॥२१॥ धिग्गर्जनं वृथानादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवापसृष्टो यो मौर्ख्यादागच्छति च दुर्मतिः ॥ २२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय वैष्णवीम् ॥ ययौ संयमिनीं वीरो यत्रास्ते भगवान् यमः ॥ २३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यामुदीचीं वारुणीं तथा ॥२४॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ततोऽलब्ध्वा द्विजसुतमनिस्तीर्णप्रतिश्रवः ॥ २५ ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रद्युम्नेन निषेधितः ॥ दर्शये द्विजसूनुं ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ कीर्तिं त एते विपुलां स्थापयिष्यन्ति मानवः इति संभाष्य मां स्नेहात्समाश्वास्य च माधवः ॥२७॥ सान्त्वयित्वा तु तं विप्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ सुग्रीवं चैव शैब्यं च मेघपुष्पबलाहकौ ॥२८॥ योजयाश्वानिति तदा दारुकं प्रत्यभाषत ॥ आरोप्य ब्राह्मणं कृष्णो ह्यवरोप्य च दारुकम् ॥ २९ ॥

तिकी चन्द्रकी वरुणकी उदीची पुरीको गया ॥ २४ ॥ पाताल स्वर्ग तथा दूसरे स्थानमें आयुध धारण किये मैं गया परन्तु ब्राह्मणके पुत्रको न देख भ्रष्टप्रतिज्ञा होकर॥२५॥अग्निमें प्रवेश करने लगा तब कृष्ण और प्रद्युम्नने निवारण किया और कहा अपनी अवज्ञा मत करो मैं तुमको ब्राह्मणके पुत्रोंको दिखाऊंगा ॥२६॥ मनुष्य तेरी महाकीर्तिको स्थापन करेंगे इस प्रकार स्नेहसे श्रीकृष्ण मुझसे कहकर और समझा कर ॥ २७ ॥ उस ब्राह्मणको धीरज दे यह वचन बोले; सुग्रीव शैब्य मेघपुष्प बलाहक॥२८॥यह चारों घोडे रथमें जोतो इस प्रकार दारुकसे कहा और दारुकके रथपरसे बैठने

उतारकरब्राह्मणको और मुझे बैठाकर॥२९॥श्रीकृष्णने मुझसे कहा तुम रथके सारथीबनो तब मैं कृष्णऔर वह ब्राह्मण रथमें बैठकर;हेकौरवश्रेष्ठ!सौम्य उदीची दिशाको वहांसे चले॥३०॥इति श्रीमहाभारतेखिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणिभाषायां वासुदेवमाहात्म्येकृष्णस्य उदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽ-ध्यायः॥११२॥अर्जुनने कहा; तब पर्वतसमूह नदीसमूह देखता हुआ मैं वरुणालय सागरको अतिक्रमण करने लगा॥१॥तब अर्घ्य लिये साक्षात् सागरने जनार्दनके निकट आकर हाथजोड कर कहा कि मैं क्या करूं॥२॥जनार्दन उस पूजाको स्वीकार कर सागरसे बोले;हे नदीपते!हमारे रथके जाने योग्य

मामुवाच ततः शौरिः सारथ्यं क्रियतामिति॥ततः समास्थाय रथं कृष्णोऽहं ब्राह्मणः स च॥प्रयाताः स्म दिशं सौम्यामुदीचीं कौरव-र्षभ ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णस्य उदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽ ध्यायः॥११२॥अर्जुन उवाच॥ ततः पर्वतजालानि सरितश्च वनानि च॥अपश्यं समतिक्रम्य सागरं वरुणालयम्॥१॥ततोऽर्घमुदधिः साक्षादुपनीय जनार्दनम्॥ स प्राञ्जलिः समुत्थाय किं करोमीति चाब्रवीत्॥२॥प्रतिगृह्य स तां पूजां तमुवाच जनार्दनः॥ रथपन्था-नमिच्छामि त्वया दत्तं नदीपते ॥ ३॥ अथाब्रवीत्समुद्रस्तु प्राञ्जलिर्गरुडध्वजम् ॥ प्रसीद भगवन्नैवमन्योऽप्येवं गमिष्यति ॥४॥ त्वयैव स्थापितः पूर्वमगाधोऽस्मि जनार्दन॥ त्वया प्रवर्तिते मार्गे याष्यामि गमनीयताम्॥५॥ अन्येऽप्येवं गमिष्यन्ति राजानो दर्पमोहिताः॥ एवं संचिन्त्य गोविन्द यत्क्षमं तत्समाचर ॥६॥ वासुदेव उवाच ॥ ब्राह्मणार्थं मदर्थं च कुरु सागर मद्वचः॥मद्दते न पुमान्कश्चिदन्यस्त्वां धर्षयिष्यति ॥७॥ अथाब्रवीत्समुद्रस्तु पुनरेव जनार्दनम् ॥ अभिशापभयाद्भीतो बाढमेवं भविष्यति॥८॥

मार्ग प्रदान कर ॥ ३ ॥ तब सागर हाथ जोडभगवान्से बोला;हे भगवन् ! प्रसन्न हो ऐसा मत कहो, नहीं दूसरे भी इसीप्रकार गमन करेंगे ॥ ४ ॥ हे जनार्दन ! आपहीने मुझको अगाध स्थापन किया है तुम्हारे प्रवर्त किये मार्गसे जाता हूं आपभी वैसेही चलिये ॥५॥ दूसरेभी राजा अभिमानसे मोहित हो इसी प्रकार जांयगे. हे गोविंद!यह विचार कर जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥६॥ श्रीकृष्ण बोले; हे सागर ! मेरे और इस ब्राह्-मणके निमित्त मेरा वचन मानो मेरे सिवाय दूसरा कोई पुरुष तुम्हारी धर्षणा नहीं कर सकेगा॥७॥समुद्र फिर श्रीकृष्णसे बोला मैं शापसे डरता हूं

जो आप कहते हैं यही होगा ॥८॥ हे कृष्ण ! मैं उतने मार्गको सुखाय देता हूं जिस पर आप चले जाँयगे. हे कृष्ण ! इस प्रकार आप रथ सूत और ध्वजाके सहित चले जाइये॥९॥श्रीकृष्ण बोले;यह प्रथम हमसे वर पा चुका है इससे सूख नहीं सकता और ऐसा होनेसे मनुष्य अनेक प्रकारके रत्नसंचयको जान लेंगे ॥ १० ॥ हे साधु ! इस कारण तुम जलको स्तंभित करो उसपर हमारा रथ चला जायगा इससे कोईभी मनुष्य तुम्हारे रत्नोंका प्रमाण नहीं जान सकेगा ॥११॥ सागरके ऐसाही हो कहनेपर हम फिर जलके ऊपर चलने लगे उस समय वह मणिवर्णके समान कांतिमान् जल स्तंभित हो गया ॥ १२ ॥ फिर सागरको उतर कर उत्तरकुरु तथा गन्धमादनको क्षणमें पार कर गये ॥ १३ ॥ फिर सात पर्वत श्रीकृष्णके

शोषयाम्येष मार्गं तं येन त्वं कृष्ण यास्यसि ॥ रथेन सह सूतेन सध्वजेन तु केशव ॥ ९ ॥ वासुदेव उवाच ॥ मया दत्तो वरः पूर्वं न शोषं यास्यसीति ह ॥ मानुषास्ते न जानीयुर्विविधान्रत्नसञ्चयान् ॥ १० ॥ जलं स्तम्भय साधो त्वं ततो यास्याम्यहं रथी ॥ नच कश्चित्प्रमाणं ते रत्नानां वेत्स्यते नरः ॥ ११ ॥ सागरेण तथेत्युक्ते प्रस्थिताः स्मो जलेन वै ॥ स्तम्भितेन पथा भूमौ मणिवर्णेन भास्वता ॥ १२ ॥ ततोऽर्णवं समुत्तीर्य कुरूनत्युत्तरान्वयम् ॥ क्षणेन समतिक्रान्ता गन्धमादनमेव च ॥१३॥ ततस्तु पर्वताः सप्त केशवं समुपस्थिताः ॥ जयन्तो वैजयन्तश्च नीलो रजतपर्वतः॥१४॥महामेरुः सकैलास इन्द्रकूटश्च नामतः ॥ बिभ्राणा वर्णरूपाणि विविधान्यद्भुतानि च ॥ १५ ॥ उपस्थाय च गोविन्दं किं कुर्मेत्यब्रुवस्तदा ॥ तांश्चैवं प्रतिजग्राह विविधान्मधुसूदनः ॥१६॥ तानुवाच हृषीकेशः प्रणामावनतान्स्थितान् ॥ विवरं गच्छतो मेऽद्य रथमार्गः प्रदीयताम् ॥१७॥ ते कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रतिगृह्य च पर्वताः ॥ प्रददुः कामतो मार्गं गच्छतो भरतर्षभः ॥ १८ ॥

निकट उपस्थित हुए जयन्त वैजयन्त नील पर्वत रजत ॥१४॥ महामेरु कैलास इन्द्रकूट यह अपने अनेक प्रकारके वर्णरूप वृक्षादिसहित धारे ॥१५॥ श्रीकृष्णके निकट आनकर कहने लगे; हे गोविन्द ! हम आपका क्या प्रिय करें मधुसूदन उनको विधिपूर्वक ग्रहण कर ॥ १६ ॥ उनको प्रणाम कर स्थित हुए उनसे श्रीकृष्ण कहने लगे; तुम अपने अपने स्थानोंमें विवर (छिद्र) दो जिसके द्वारा हमारा रथ चला जाय ॥ १७ ॥ वे पर्वत श्रीकृष्णके वचन सुन उसको ग्रहण कर उन जाते हुएके निमित्त यथेच्छ मार्ग देते हुए ॥ १८ ॥

और वे सब वहीं अन्तर्ध्यान हो गये. हे राजन् ! यह बडा आश्चर्य हुआ और मेघसमूहमें सूर्यके समान वह रथ अव्याहत गतिसे गमन करने लगा ॥१९॥ सप्त द्वीप सप्त सागर सात सात पर्वत तथा लोकालोक पर्वतोंके पार हो महाअंधकारमें प्रविष्ट हुए ॥२०॥ तब घोडे बडे कष्टसे रथको वहन करने लगे. हे राजन् ! वह अंधकार ऐसा घना था कि वहां स्पर्शसे कोई दूसरेको जानता था ॥ २१ ॥ जब वह पर्वतके समान महाअंधकारको प्राप्त हुए; हे राजन् ! तब वे घोडे यत्नहीन होनेसे वहांही स्थित हुए ॥ २२ ॥ तब श्रीकृष्णने चक्रसे अंधकारको दूरकर

तत्रैवान्तर्हिताः सर्वे तदाश्चर्यंतरं मम ॥ असक्तं च रथो याति मेघजालेष्विवांशुमान् ॥ १९ ॥ सप्त द्वीपान्ससिन्धूंश्च सप्त सप्त गिरीनथ ॥ लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥२०॥ ततः कदाचिद्दुःखेन रथमूहुस्तुरङ्गमाः ॥ पङ्कभूतं हि तिमिरं स्पर्शाद्विज्ञायते नृप ॥२१॥ अथ पर्वतभूतं तत्तिमिरं समपद्यत ॥ तदासाद्य महाराज निष्प्रयत्ना हयाः स्थिताः ॥ २२ ॥ ततश्चक्रेण गोविन्दः पाटयित्वा तमस्तदा ॥ आकाशं दर्शयामास रथपन्थानमुत्तमम् ॥२३॥ निष्क्रम्य तमसस्तस्मादाकाशे दर्शिते तदा भविष्यामीति संज्ञा मे भयं च विगतं मम ॥ २४ ॥ ततस्तेजः प्रज्वलितमपश्यं तत्तदाम्बरे ॥ सर्वलोकं समाविश्य स्थित पुरुषविग्रहम् ॥२५॥ तं प्रविष्टो हृषीकेशो दीप्तं तेजोनिधिं तदा ॥ रथ एव स्थितश्चाहं स च ब्राह्मणसत्तमः ॥२६॥ स मुहुर्तात्ततः कृष्णो निश्चक्राम तदाप्रभुः॥चतुरो बालकान् गृह्य ब्राह्मणस्यात्मजांस्तदा ॥२७॥प्रददौ ब्राह्मणायाथ पुत्रान्सर्वान् जनार्दनः ॥ त्रयःपूर्वं हृता ये च सद्यो जातश्च बालकः॥२८॥ प्रहृष्टो ब्राह्मणस्तत्र पुत्रान्दृष्ट्वा पुनः प्रभो ॥ अहं च परमप्रीतो विस्मित श्चाभवंस्तदा ॥ २९ ॥

आकाश और रथका मार्ग दिखाया ॥ २३ ॥ उस अंधकारसे निकलने और आकाशके देखनेसे मुझे चेत हुआ कि म जीता हूं और भय गया ॥ २४ ॥ तब आकाशमें एक प्रज्वलित तेज देखा जो सब लोकोंको आक्रमण किये पुरुषाकार था ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण उस प्रकाशमान तेजके निधानमें प्रवेश कर गये वह ब्राह्मण और मैं रथपरही स्थित रहे ॥ २६ ॥ तब एक मुहूर्तमें श्रीकृष्ण उस तेजमेंसे निकले और ब्राह्मणके चारों बालकोंको लेते आये ॥२७॥ श्रीकृष्णने वे सब पुत्र उस ब्राह्मणको दे दिये तीन पहले और एक तुरतका हरण किया हुआ ॥२८॥ हे राजन् !

अपने पुत्रोंको देखकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ, मैंभी परम प्रसन्न हो विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ तब हम और वे सब ब्राह्मणके पुत्र हे राजन् ! इसी प्रकार रथपर स्थित हो उस स्थानसे लौटे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एकक्षणमात्रमें हम द्वारकापुरीको लौट आये, और देखनेसे विदित हुआ कि आधा दिन न बीता है ॥ ३१ ॥ महायशस्वी कृष्णने ब्राह्मणको पुत्रसहित भोजन कराकर बहुत धन देकर उसको विदा किया ॥ ३२ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ अर्जुन बोला; तब श्रीकृष्ण सैंकडों ब्राह्मणोंको जिमा

ततो वयं पुनः सर्वे ब्राह्मणस्य च ते सुताः ॥ यथागता निवृत्ताः स्म तथैव भरतर्षभ ॥३०॥ ततः स्म द्वारकां प्राप्ताः क्षणेन नृपसत्तम ॥ असंप्राप्तेऽर्द्धदिवसे विस्मितोऽहं पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ सपुत्रं भोजयित्वा तु द्विजं कृष्णो महायशाः ॥ धनेन वर्षयित्वा च गृहं प्रस्थापयत्तदा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ततः कृष्णो भोजयित्वा शतानि सुबहूनि च ॥ विप्राणामृषिकल्पानां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१॥ ततः सह मया भुक्त्वा वृष्णिभोजैश्च सर्वदा ॥ विचित्राश्च कथा दिव्याः कथयामास भारत ॥ २ ॥ ततः कथान्ते तत्राहमभिगम्य जनार्दनम् ॥ अपृच्छं तद्यथावृत्तं कृष्णं यद्दृष्टवानहम् ॥ ३ ॥ कथं समुद्रः स्तब्धोदः कृतस्तु कमलेक्षण ॥ पर्वतानां च विवरं कृतं तत्कथमच्युत ॥ ४ ॥ तमस्तच्च कथं घोरं घनं चक्रेण पाटितम् ॥ तच्च यत्परमं तेजः प्रविष्टोऽसि कथं च तत् ॥ ५ ॥ किमर्थं तेन ते बालास्तदा चापहृताः प्रभो ॥ यच्च ते दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तत्कथं पुनः ॥ ६ ॥

कर जो ऋषियोंकी समान थे कृतकृत्य हुए ॥ १ ॥ तब वह वृष्णि और भोजवंशी सदा मेरे साथ भोजन करके हे राजन् ! अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र कथा कहने लगे ॥ २ ॥ तब कथाके अन्तमें मैं श्रीकृष्णके निकट जाकर वह वृत्तान्त श्रीकृष्णसे पूंछा जो मैंने देखा था ॥ ३ ॥ हे कृष्ण ! वह सागर किस प्रकारसे स्तंभित हो गया और वह पर्वतोंमें छिद्र किस प्रकारसे किये ॥ ४ ॥ वह घोर अंधकार चक्रसे किस प्रकार नष्ट कर दिया और उस महातेजमें आप कैसे प्रवेश कर गये ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! उस तेजने उन बालकोंको किस प्रकारसे और क्यों हरण किया था, और वह महादीर्घ मार्ग किस-

प्रकार संक्षिप्त हो गया ॥ ६ ॥ इतने थोडे समयमें वह आना जाना किस प्रकार हो गया. हे केशव ! यह सब वृत्तान्त आद्योपान्त कीर्तन कीजिये ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले; उस महात्मा तेजःपुंजने मेरे दर्शनके निमित्त उन बालकोंका हरण किया था कि, कृष्ण ब्राह्मणके निमित्त आवेंगे अन्यथा नहीं आवेंगे ॥ ८ ॥ हे अर्जुन ! वह जो तुमने महान् ब्रह्ममें तेज देखा था वह मेराही सनातन तेज है ॥ ९ ॥ वह महत्तत्त्वनामक पराशक्ति व्यक्त अव्यक्त सनातनी प्रकृति है जिसमें प्रवेश कर योगी जन मुक्त हो जाते हैं ॥ १० ॥ हे अर्जुन ! वह सांख्य और योगवालोंकी गति है वह परब्रह्मका पद है जो चित्‌अ-

कथं चाल्पेन कालेन कृतं तत्तद्गतागतम् ॥ एतत्सर्वं यथावृत्तमाचक्ष्व मम केशव ॥ ७ ॥ वासुदेव उवाच ॥ मद्दर्शनार्थं ते बाला हृतास्तेन महात्मना ॥ विप्रार्थमेष्यते कृष्णो नागच्छेदन्यथेति ह ॥ ८ ॥ ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं महद्यद्दृष्टवानसि ॥ अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत्सनातनम् ॥ ९ ॥ प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ॥ यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः ॥ १० ॥ सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम् ॥ तत्पदं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत् ॥ ११ ॥ मामेव तद्घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत ॥ समुद्रः स्तब्धतोयोऽहमहं स्तम्भयिता जलम् ॥ १२ ॥ अहं ते पर्वताः सप्त ये दृष्टा विविधास्त्वया ॥ पङ्कभूतं हि तिमिरं दृष्टवानसि यद्धि तत् ॥ १३ ॥ अहं तमो घनीभूतमहमेव च पाटकः ॥ अहं च कालो भूतानां धर्मश्चाहं सनातनः ॥ १४ ॥ चन्द्रादित्यौ महाशैलाः सरितश्च सरांसि च ॥ चतस्रश्च दिशः सर्वा ममैवात्मा चतुर्विधः ॥ १५ ॥ चातुर्वर्ण्यं मत्प्रसूतं चातुराश्रम्यमेव च ॥ चातुर्विध्यस्य कर्ताहमिति बुध्यस्व भारत ॥ १६ ॥

शसे जडोंको पृथक् करता है ॥ ११ ॥ हे भारत ! वह तेज तुम मेराही घन मानो वह जो जलका स्तंभन किया वहभी मैंनेही किया है ॥ १२ ॥ और जो अनेक प्रकारके सात पर्वत देखे वहभी मैंही हूं और वह जो महाघना अंधकार देखा था ॥ १३ ॥ मैंही अंधकाररूप और मैंही उसका नाश करनेवाला हूं मैंही भूतोंका काल और मैंही सनातन धर्म हूं ॥ १४ ॥ चन्द्रमा आदित्य महापर्वत नदी सरोवर और चार दिशा यह सब मेराही रूप है ॥ १५ ॥

चार वर्ण चार आश्रम मुझसेही उत्पन्न हैं और हे भारत! चारविधिका कर्ताभी मैंही हूं॥१६॥ अर्जुन बोले; हे भगवन्! सर्व भूतपति मैं आपके जाननेकी इच्छा करता हूं. हे पुरुषोत्तम! मैं आपसे पूछता हूं आपकी शरण हूं आप कहिये॥१७॥ श्रीकृष्ण बोले; हे भारत! ब्रह्म और ब्राह्मण तप और सत्य उग्र और बृहत् अर्थात् उग्र अनेक क्लेश करनेवाला बृहत्तम अखण्डानंदरूप यह सब मुझसेहीहुए हैं. हे धनंजय! तुम मेरे प्रिय और मैं तुम्हारा प्रिय हूं ॥१८॥ इससे मैं तुमसेकहता हूं अन्यथा नहीं कहता. मैंही ऋक् यजु साम अथर्व वेद हूं ॥ १९ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! ऋषि देवता यज्ञ यह सब मेराही तेज है

अर्जुन उवाच भगवन्सर्वभूतेश वेत्तुमिच्छामि ते प्रभो ॥ पृच्छामि त्वां प्रपन्नोऽहं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१७॥ वासुदेव उवाच ॥ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव तपः सत्यं च भारत ॥ उग्रं बृहत्तमं चैव मत्तस्तद्विद्धि पाण्डव ॥ प्रियस्तेऽहं महाबाहो प्रियो मेऽसि धनञ्जय ॥१८॥ तेन ते कथयिष्यामि नान्यथा वक्तुमुत्सहे ॥ अहं यजूंषि सामानि ऋचश्चाथर्वणानि च ॥१९॥ ऋषयो देवता यज्ञा मत्तेजो भरतर्षभ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ २० ॥ चन्द्रादित्यावहोरात्रं पक्षा मासास्तथर्तवः ॥ मुहूर्ताश्च कलाश्चैव क्षणाः संवत्सरास्तथा ॥२१॥ मन्त्राश्च विविधाः पार्थ यानि शास्त्राणिकानिचित् ॥ विद्याश्च वेदितव्यं च मत्तः प्रादुर्भवन्ति हि ॥२२॥ मन्मयं विद्धि कौन्तेय क्षयं सृष्टिं च भारत ॥ सच्चासच्च ममैवात्मा सदसच्चैव यत्परम् ॥ २३ ॥ अर्जुन उवाच एवमुक्तोऽस्मि कृष्णेन प्रीयमाणेन वै तदा ॥ तथैव च मनो नित्यमभवन्मे जनार्दने ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुतं च दृष्टं च माहात्म्यं केशवस्य मे ॥ यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र भूयांश्चातो जनार्दनः ॥ २५ ॥

पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति ॥२०॥ चन्द्रमा सूर्य दिन रात पक्ष मास ऋतु मुहूर्त कला क्षण संवत्सर ॥२१॥ हे पार्थ ! अनेक प्रकारके मंत्र और जो कोई शास्त्र हैं विद्या और जो कुछ जानने योग्य है वह सब मुझसेही प्रादुर्भूत होते हैं॥२२॥ हे अर्जुन ! सृष्टिकी उत्पत्ति और नाश मेरेही आधीन है. सत् असत् सब मेराही आत्मा है और जो सदसत्से परे है सोभी मैं ही हूं ॥२३॥ अर्जुन बोले; प्रसन्न होकर कृष्णने जब यह वचन कहे तबसे मेरा मन श्रीकृष्णमें लग गया ॥२४॥ यह केशवका माहात्म्य मैंने देखा और सुना है. हे राजेन्द्र ! जो आपने मुझसे पूछा सो मैंने

कहा ॥२५॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! यह वचन श्रवण कर धर्मराजयुधिष्ठिर धर्मात्माने पुरुषोत्तम गोविंदका पूजन किया ॥ २६ ॥ और सब सहोदर भाइयोंके सहित राजा विस्मित हुए उससे आये हुए बहुतसे राजाभी स्थित थे ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ जन्मेजय बोले; हे भगवन् ! फिरभी आप बुद्धिमान् यदुश्रेष्ठका माहात्म्य मुझसे वर्णन करिये मैं उनके अद्भुत कर्मोंके सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ हमने उन महात्माके आश्चर्ययुक्त कर्म श्रवण किये हैं वे असंख्य दिव्य और

वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा कुरुश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ पूजयामास धर्मात्मा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ॥२६॥ विस्मितश्चाभवद्राजा सह सर्वैः सहोदरैः ॥ राजभिश्च समासीनैर्ये तत्रासन्समागताः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥जनमेजय उवाच ॥ भूय एव द्विजश्रेष्ठ यदुसिंहस्य धीमतः ॥ कर्माण्यपरिमेयानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥ श्रूयन्ते विविधानि स्म अद्भुतानि महाद्युतेः॥असङ्ख्येयानि दिव्यानि प्रकृतान्यपि सर्वशः ॥२॥ यान्यहं विविधानस्य श्रुत्वा प्रीये महामुने ॥ प्रब्रूयाः सर्वशस्तात तानि मे शृण्वतोऽनघ ॥३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बहून्याश्चर्यभूतानि केशवस्य महात्मनः ॥ कथितानि महाबाहो नान्तं शक्यं हि कर्मणाम् ॥ ४ ॥ गन्तुं हि भरतश्रेष्ठ विस्तरेण समन्ततः॥ अवश्यं हि मया वाच्यं लेशमात्रेण भारत ॥ ५ ॥ विष्णोरमितवीर्यस्य प्रथितोदार कर्मणः ॥ आनुपूर्व्यात्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥६॥ द्वारवत्यां निवसता यदुसिंहेन धीमता ॥ राष्ट्राणि नृपमुख्यानां क्षोभितानि महात्मनाम् ॥ ७ ॥

प्रकृतिसे युक्त हैं॥ २ ॥ जिन अनेक चरित्रोंको श्रवण कर मेरा मन प्रसन्न होता है. हे तात ! पापरहित वह सब चरित्र आप मुझसे कथन कीजिये ॥३॥ वैशम्पायन बोले; महात्मा केशवके आश्चर्यके करनेवाले अनेक कर्म हैं जो ऋषियोंने कहे हैं उन सबको कोई वर्णन नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ हे राजन् ! विस्तारसे कहनेको कोई समर्थ नहीं. हे भारत ! उसमें कुछ लेशमात्र मैं वर्णन करता हूं ॥ ५ ॥ अमितपराक्रमी विष्णु जिनके उदारकर्म हैं उनके चरित्र अनुक्रमसे कहता हूं एकमन होकर श्रवण करो ॥ ६ ॥ द्वारकापुरीमें निवास करते हुए बुद्धिमान् श्रीकृष्णने जिस प्रकार मुख्य राजोंके

राज्यको क्षुभित कर दिया ॥७॥ यदुवंशियोंके अन्तरको देखनेवाले विचक्र नाम दानवको मार दिया वह महात्मा प्रथम प्राग्ज्योतिष पुरमें गये॥८॥ और समुद्रके बीचमें नरकदानवको मारा और इन्द्रको युद्धमें जीतकर पारिजात ले आये ॥ ९ ॥ लोहित ह्रदमें भगवान्‌ने वरुणको जीता दक्षिणा-पथमें दन्तवक्र और कारूषका वध किया॥१०॥और सौ अपराध पूर्ण होनेपर शिशुपालका वध किया और शोणितपुरमें जाकर शंकरसे अभिरक्षित ॥११॥ बलिका पुत्र महाबाहु सहस्रभुजावाला महासंग्राम कर जीत उसे जीता हुआ छोड दिया ॥१२॥ गिरि अर्थात् मेरुके बीचमें इन महात्माने

यदूनामन्तरप्रेप्सुर्विचक्रो दानवो हतः ॥ पुरं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनस्तेन महात्मना ॥ ८ ॥ समुद्रमध्ये दुष्टात्मा नरको दानवो हतः ॥ वासवं च रणे जित्वा पारिजातो हृतो बलात् ॥ ९ ॥ वरुणश्चैव भगवान् निर्जितो लोहिते ह्रदे ॥ दंतवक्रश्च कारूषो निहतो दक्षिणापथे ॥१०॥ शिशुपालश्च संपूर्णे किल्बिषैकशते हतः ॥ गत्वा च शोणितपुरं शंकरेणाभिरक्षितः ॥ ११ ॥ बलेः सुतो महावीर्यो बाणो बाहुसहस्रभृत् ॥ महामृधे महाराज जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १२ ॥ निर्जितः पावकश्चैव गिरिमध्ये महात्मना ॥ शाल्वश्च विजितः सङ्ख्ये सौभश्च विनिपातितः ॥१३॥ विक्षोभ्य सागरं चैव पाञ्चजन्यो वशीकृतः ॥ हयग्रीवश्च निहतो नृपाश्चान्ये महाबलाः ॥१४॥ जरासन्धस्य निधने मोक्षिताः सर्वपार्थिवाः ॥ रथेन जित्वा नृपतीन्गान्धारतनया हृताः ॥१५॥ भ्रष्टराज्याश्च शोकार्ताः पाण्डवाः परिरक्षिताः ॥ दाहितं च वनं घोरं पुरुहूतस्य खाण्डवम् ॥१६॥ गाण्डीवं चाग्निना दत्तमर्जुनायोपपादितम् ॥ दौत्यं च तत्कृतं घोरे विग्रहे जनमेजय ॥ १७ ॥

अग्निको जीता युद्धमें शाल्वको जीतकर सौभको निपातित किया ॥१३॥ सागरको क्षुभित कर पंचजन्यको ले आये हयग्रीव तथा दूसरे राजोंका वध किया ॥१४॥ जरासंधका निधन कराय बंधनसे सब राक्षसोंको छुडाया और रथपर चढ राजोंको जीत गान्धारीके पुत्रोंको ले आये॥ १५ ॥ राज्यभ्रष्ट हो जानेसे शोकित पाण्डवोंकी रक्षा की इन्द्रका घोर खाण्डव वन जलवा दिया ॥ १६ ॥ अग्निसे गांडीव धनुष अर्जुनको दिला दिया. हे

जन्मेजय ! उस घोर भारतके युद्धमें कृष्णने स्वयं दूतपन किया ॥१७॥ इन्होंनेही यदुवंशकी महावृद्धि की और कुन्तीके सामने पाण्डवोंके रक्षणकी प्रतिज्ञा की ॥ १८ ॥ कि भारतका युद्ध हो जानेपर मैं तेरे पुत्रोंको अक्षत तुझे सौंप दूंगा उन्हींने महातेजस्वी नृगको शापसे मुक्त किया ॥ १९ ॥ और युद्धमें कालयवनका वध किया और महाबली मैंद और द्विविद वानर युद्धमें जीते॥२०॥तथा जाम्बवंतको पराजित किया सान्दीपनके पुत्र और तुम्हारे पिता ॥२१॥ वैवस्वत यमलोकको प्राप्त हो चुके थे सो उन्होंने जीवित किया संग्राममें राजोंका घोर नाश हुआ था ॥ २२ ॥ वहां अनेक

अनेन यदुमुख्येन यदुवंशो विवर्धितः ॥ कुन्त्याश्च प्रमुखे प्रोक्ता प्रतिज्ञा पाण्डवान्प्रति ॥१८॥ निवृत्ते भारते युद्धे प्रतिदास्यामि तत्सुतान् ॥ मोक्षितश्च महातेजा नृगः शापात्सुदारुणात् ॥१९॥ यवनश्च हतः संख्ये काल इत्यभिविश्रुतः ॥ वानरौ च महावीर्यौ मैन्दौ द्विविद एव च ॥२०॥ विजितौ युधि दुर्द्धर्षौ जाम्बवांश्च पराजितः ॥ सान्दीपनेस्तथा पुत्रस्तव चैव पिता तथा ॥२१॥ गतौ वैवस्वतवशं जीवितौ तस्य तेजसा ॥ सङ्ग्रामा बहवः प्राप्ता घोरा नरवरक्षयाः ॥२२॥ निहताश्च नृपाः सर्वे कृत्वा तज्जयमद्भुतम् ॥ जनमेजयास्य युद्धेषु यथा ते वर्णिता मया ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ जनमेजय उवाच ॥ भूय एव महाहोर्यदुसिंहस्य धीमतः ॥ कर्माण्यपरिमेयानि श्रुतानि द्विजसत्तम ॥ १ ॥ त्वत्तः श्रुतवतां श्रेष्ठ वासुदेवस्य धीमतः ॥ यत्त्वया कथितं पूर्वं बाणं प्रति महासुरम् ॥२॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ कथं च देवदेवस्य पुत्रत्वमसुरो गतः ॥३॥ योऽभिगुप्तः स्वयं ब्रह्मन् शङ्करेण महात्मना ॥ सहवासं तेनैव सगणेन गुहेन तु ॥ ४ ॥

राजोंका वध कराकर उत्तम जयकी प्राप्ति कराई. हे जन्मेजय ! वह युद्ध मैं तुमसे वर्णन कर चुका हूं ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ जन्मेजय बोले; हे महाबाहो ! फिरभी आप हमारे प्रति यदुश्रेष्ठके कर्मोंको वर्णन कीजिये उनके मैंने अपरिमेय कर्म श्रवण किये हैं॥१॥मैंने आपसे वासुदेवका माहात्म्य श्रवण किया जो आपने महाबली बाणासुरका वर्णन किया॥२॥ हे तपोधन ! सो मैं विस्तारसे सुननेकी इच्छा करता हूं वह बाणासुर देवदेवके पुत्रत्वको कैसे प्राप्त हुआ॥३॥स्वयं योगियोंके शिरोमणि महात्मा शंकरसे

रक्षित हो उनके गणोंके सहित संगतिको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ जो बलिके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ था सहस्रबाहुसे युक्त इन्द्रके समान तेजस्वी था ॥ ५ ॥ असंख्य महाकाय और सैंकडों महाबलसे युक्त उसको संग्राममें श्रीकृष्णने किस प्रकार मारकर पराजित किया ॥ ६ ॥ और महाक्रोधी युद्धार्थी वह किस प्रकार जीवित बचा. वैशंपायन बोले; हे राजन् ! सावधान होकर महापराक्रमी श्रीकृष्णके चरित्र सुनो॥७॥जैसे मनुष्यलोकमें बाणासुरसे महा-संग्राम हुआ जिस रुद्रस्कंदकी सहाययुक्तभी इसको वासुदेवने ॥ ८ ॥ जीतकरभी इस युद्धकी इच्छावालेको जीता छोड दिया और महात्मा शंकरने

बलेर्बलवतः पुत्रो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य यः ॥ वृतो बाहुसहस्रेण दिव्यास्त्रशतधारिणा ॥५॥ असङ्ख्यैश्च महाकायैर्महाबलशतैर्वृतः ॥ वासुदेवेन स कथं बाणः सङ्ख्ये पराजितः ॥६॥ संरब्धश्चैव युद्धार्थी जीवन्मुक्तः कथं च सः ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्कृष्णस्यामिततेजसः ॥ ७ ॥ मनुष्यलोके बाणेन यथाभूद्विग्रहो महान् ॥ वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान् ॥ ८ ॥ बलिपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥ तथा चास्य वरो दत्तः शंकरेण महात्मना ॥९॥ नित्यं सांनिध्यतां चैव गाणपत्यं तथाक्षयम् ॥ यथा बाणस्य तद्युद्धं जीवन्मुक्तो यथा च सः ॥१०॥ यथा च देवदेवस्य पुत्रत्वं सोऽसुरो गतः ॥ यदर्थं च महद्युद्धं तत्सर्वमखिलं शृणु ॥११॥ दृष्ट्वा ततः कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मनः ॥ बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः ॥१२॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम् ॥ रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्यां यथा सुतः ॥ १३ ॥

जिस प्रकार इसको वर दिया था ॥ ९ ॥ जिस प्रकार गणोंके सहित वह इसके नित्य सहायकारी रहे जैसे बाणसे युद्ध हुआ और वह जीवन्मुक्त होकर विचरा ॥१०॥ और जैसे वह देवदेवका पुत्र हुआ और जिस कारणसे युद्ध हुआ वह सब श्रवण करो ॥११ ॥ कार्तिकेयकी अनेक प्रकारकी रुद्रकी आराधनाकी क्रीडाको देख महाबली बलिपुत्र परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ तब उसकी बुद्धिमें कठिन तप करनेकी इच्छा हुई कि रुद्रका आराधन करके जैसे यह देवका पुत्र है ऐसेही मेरे हो ॥ १३ ॥

तब तपसे अपने आपको कृशित कर मैं महातपस्वी हूं ऐसा विचार कर तपकिया और उमासहित देवभी परम संतुष्ट हुए॥ १४॥ और शिव बहुत प्रसन्न हो उसके समीप जाकर कहने लगे तेरे मंगल हो, जो तेरे मनमें इच्छा है सो वर मांग॥ १५॥ तब देवदेव महेश्वरसे बाणासुर बोला; हे त्रिलोचन ! आपका तथा देवीका किया हुआ पुत्रत्व पानेकी इच्छा करता हूं ॥ १६॥ बहुत अच्छा यह कहकर शिवने रुद्राणीसे कहा कि इसको कार्तिकेयसे छोटे पुत्रत्वमें स्वीकार करो ॥ १७ ॥ जहां कार्तिकेयकी अग्निसे उत्पत्ति हुई थी उस शोणितपुरमें इसका स्थान होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १८॥ और उसका उत्तम

ततोऽग्लपयदात्मानं तपसा श्लाघते च सः ॥ देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया ॥ १४॥ नीलकण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत् ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ १५ ॥ अथ बाणोऽब्रवीद्वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् ॥ देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन ॥ १६॥ शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ कनीयान्कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १७ ॥ यत्रोत्थितो महासेनः सोऽग्निजो रुधिरे पुरे ॥ तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः ॥ १८॥ नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम् ॥ मयाभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित्प्रसहिष्यति ॥ १९ ॥ ततः स निवसन्बाणः पुरे शोणितसाह्वये ॥ राज्यं प्रशासते नित्यं क्षोभयन्सर्वदेवताः ॥ २० ॥ अवतीर्य मदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान् ॥ अचिन्तयन्देवगणान्युद्धमाकांक्षते सदा ॥ २१ ॥ ध्वजं चास्य ददौ प्रीतः कुमारो ह्यग्नितेजसम् ॥ वाहनं चैव बाणस्य मयूरं दीप्ततेजसम् ॥ २२ ॥ न देवा नच गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः ॥ तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा ॥ २३ ॥

शोणितपुर नाम होगा और मुझसे रक्षित उस देशमें कोई भी आक्रमण नहीं कर सकेगा॥ १९॥ तब वह बाणासुर शोणितपुरमें निवासकरने लगा और सम्पूर्ण देवताओंको क्षुभित कर नित्य राज्य करने लगा ॥ २० ॥ वह सहस्र भुजावाला बाणासुर महादुर्मद हो देवताओंकोभी कुछ न गिनकर सदा युद्धकी इच्छा करता था ॥ २१ ॥ कुमारने प्रसन्न होकर इसके निमित्त ध्वजा दे दी थी जो अग्निके समान तेजवाली थी और महातेजस्वी मोर वाहनभी इसके निमित्त दिया था ॥ २२ ॥ देवता गन्धर्व यक्ष सर्प देवदेवके तेजसे युक्त उस बाणासुरके सामने खडे नहीं होसकते ॥ २३ ॥

शिवसे रक्षित होकर वह महाअसुर अभिमानको प्राप्त हो युद्ध करनेको प्राणी ढूंढता हुआ शिवके पास आया॥२४॥ रुद्रके पास आय प्रणाम कर वह बलिका पुत्र इस प्रकार शिवसे पूछने लगा ॥ २५ ॥ एकही वारमें साध्य मरुद्गणसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया आपके आश्रयसेही सेनासहित मैंने यह महाकर्म किया है ॥ २६ ॥ इस देशमें आकर सुखसे निवास करते हैं और वे देवता आदि पराजयसे व्याकुल हो हमारे जीतनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २७ ॥ स्वर्गको प्राप्त होकर सुखसे निवास करते हैं सो मैं युद्धमें निराश हो अब जीनेकी इच्छा नहीं करता हूं॥ २८ ॥ विना युद्धके सहस्र

त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुरः ॥ भूयो मृगयते युद्धं शूलिनं सोऽभ्यगच्छत ॥ २४ ॥ स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ बलिसूनुरिदं वाक्यं पप्रच्छ वृषभध्वजम् ॥२५॥ असकृन्निर्जिता देवाःससाध्याः समरुद्गणाः ॥ मया मद्बलोत्सेकात्ससैन्येन तवाश्रयात् ॥२६॥ इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम् ॥ ते पराजयसंत्रस्ता निराशा मत्पराजये ॥२७॥ नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथासुखम् ॥ सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये ॥ २८ ॥ अयुध्यतो वृथा ह्येषां बाहूनां धारणं मम ॥ तद्ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत् ॥ २९ ॥ न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे ॥ ततः प्रहस्य भगवानब्रवीद्वृषभध्वजः ॥ ३० ॥ भविता बाण युद्धं वै यथा तच्छृणु दानव ॥ ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति ॥ स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणस्तु बहुशो मुदा ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत् ॥ दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम ॥ ३२ ॥

भुजाओंका धारण वृथा है सो कहिये तो कोई मुझे युद्ध करनेवाला मिलेगा या नहीं ॥ २९ ॥ हे देव ! युद्धके विना मुझे प्रसन्नता न होगी सो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, तब भगवान् वृषध्वज हँसते हुए बोले ॥ ३० ॥ हे दानव ! जिस प्रकार युद्ध होगा वह तुम सुनो.हे तात ! जिस समय यह तुम्हारी ध्वजा टूट जायगी तब युद्ध होगा यह जैसे अब है ऐसे अपने स्थानमें स्थित न रहेगी ॥ ३१ ॥ यह सुनते ही बाणने प्रसन्न होकर हास्य किया और प्रसन्नमुख हो शिवजीके चरणोंमें गिरकर बोला;भागसेही मेरी सहस्र भुजाओंका धारण करना वृथा नहीं है ॥ ३२ ॥

॥३४४॥

और भागसेही इन्द्रका जीतनेवाला मैं फिर संग्राममें हूंगा.इस प्रकार वह शत्रुका मारनेवाला नेत्रोंमें आनंदके आंसू भरकर पांच सौ अंजलिसे शिवका पूजन कर पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ ॥ ३३ ॥ ईश्वर बोले;हे बाण ! उठ उठ बाहुओंके और अपने कुलके अनुसारही तू महायुद्धको प्राप्त होगा ॥३४॥ वैशंपायन बोले; जब महात्मा त्र्यम्बकने बाणासुरके प्रति यह वचन कहे तब महाप्रसन्न हो शिवको प्रणाम कर ॥३५॥ और शिवजीसे विदा दिया हुआ वह शत्रुके पुरका मर्दन करनेवाला अपने घरको गया जहां वह बडी ध्वजा थी ॥ ३६ ॥ वहां प्रविष्ट हो कुंभाण्ड नाम अपने

दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे ॥ आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्यामरिमर्दनः ॥ पञ्चाञ्जलिशतैर्देवं पूजयन्पतितो भुवि ॥३३॥ ईश्वर उवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मनः स्वकुलस्य तु ॥ सदृशं प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिमं महत् ॥ ३४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥ हर्षेणात्युच्छ्रितं शीघ्रं नत्वा स वृषभध्वजम् ॥ ३५ ॥ शितिकण्ठविसृष्टस्तु बाणः परपुरंजयः ॥ ययौ स्वभवनं तत्र यत्र ध्वजगृहं महत् ॥ ३६ ॥ तत्रोपविष्टः प्रहसन्कुम्भाण्डमिदमब्रवीत् ॥ प्रियमावेदयिष्यामि भवतो यन्मनोगतम् ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणमप्रतिमं रणे ॥ प्रोवाच राजन्किं त्वेतद्वक्तुकामोऽसि मत्प्रियम् ॥ ३८ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रहर्षादिव भाषसे ॥ त्वत्तः श्रोतुमिहेच्छामि वरं किं लब्धवानसि ॥३९॥ शितिकण्ठप्रसादेन स्कन्द गोपायनेन च ॥ कच्चित्त्रैलोक्यराज्यं ते व्यादिष्टं शूलपाणिना ॥ ४० ॥ अस्य चक्रभयत्रस्ता निवसन्ति जलाशये ॥ कच्चिच्छार्ङ्गगदापाणेः स्थितस्य परमाहवे ॥ ४१ ॥

मंत्रीसे बोला जो हमारे मनका प्रिय है सो तुमसे कहूंगा ॥३७॥ यह कहनेसे वह युद्धमें महाबली बाणासुरसे हँसता हुआ बोला; हे राजन् ! वह क्या है प्रियकी इच्छासे हमसे कहिये ॥ ३८ ॥ विस्मयसे तुम्हारे नेत्र खिल रहे हैं प्रसन्नतासे तुम बोलते हो सो मैं तुमसे सुननेकी इच्छा करता हूं कि तुमने कौनसा वर पाया है ॥३९॥ शिवके प्रसाद और स्कन्दकी रक्षासे क्या तुमको शिवजीने त्रिलोकीका राज्य दे दिया है ॥४०॥ जिनके चक्रभयसे व्याकुल हुए दैत्य जलाशयमें निवास करते हैं क्या उन गदापाणि शार्ङ्गधनुषधारी शिवजीने युद्धमें स्थिति लाभकी है ॥ ४१ ॥

क्या तुम्हारे भयसे इन्द्र पातालको चला जायगा क्या दैत्य विष्णुके त्राससे छूट जांयगे ॥ ४२ ॥ या तुम्हारे भयसे पातालका रहना छोडकर तुम्हारे बाहुबलके आश्रय हो दैत्य स्वर्गमें वास करेंगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पिताको जो वामनजीने बांधा था सो क्या जलसे निकल कर अपने राज्यको प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ दिव्य माला धारण किये दिव्य गंध और अनुलेपन लगाये माला पहरे क्या हम तुम्हारे पिता विरोचन-पुत्रको देखेंगे ॥ ४५ ॥ जो कि हे प्रभो ! तीन परिक्रमासे इस लोकको हरण कर लिया था सो हम सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर उसे फिर

कच्चिदिन्द्रस्तव भयात्पातालमुपयास्यति ॥ कच्चिद्विष्णुपरित्रासं विमोक्ष्यन्ति दितेः सुताः ॥ ४२ ॥ पातालवासमुत्सृज्य कच्चित्तव बलाश्रयात् ॥ विबुधावासनिरता भविष्यन्ति महासुराः ॥ ४३ ॥ बलिर्विष्णुपराक्रान्तो बद्धस्तव पिता नृप ॥ सलिलौघाद्विनिष्क्रम्य कच्चिद्राज्यमवाप्स्यति ॥ ४४ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धलेपनम् ॥ कच्चिद्वैरोचनिं तात द्रक्ष्यामः पितरं तव ॥ ४५ ॥ कच्चित्त्रिभिः क्रमैः पूर्वं हृताँल्लोकानिमान्प्रभो ॥ पुनः प्रत्यानयिष्यामो जित्वा सर्वान्दिवौकसः ॥ ४६ ॥ स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं शंखस्वनपुरोजवम् ॥ कच्चिन्नारायणं देवं जेष्यामः समितिंजयम् ॥ ४७ ॥ कच्चिद्वृषध्वजस्तात प्रसादसुमुखस्तव ॥ यथा ते हृदयोत्कम्पः साश्रुबिन्दुः प्रवर्तते ॥ ४८ ॥ कच्चिदीश्वरतोषेण कार्तिकेयमतेन च ॥ प्राप्तवानसि सर्वेषामस्माकं राज्यसम्पदम् ॥ ४९ ॥ इति कुम्भाण्डवचनैश्चोदितः सोऽसुरोत्तमः ॥ बाणो वाणीमसंसक्तां प्रोवाच वदतां वरः ॥५०॥ बाण उवाच ॥ चिरात्प्रभृति कुम्भाण्ड न युद्धं प्राप्यते मया ॥ ततो मया मुदा पृष्टः शितिकण्ठः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥

फेर लावेंगे ॥ ४६ ॥ स्निग्ध गंभीर शब्दसे युक्त शंखके शब्दसे बढे हुए क्या सबके जीतनेवाले नारायण देवको हम जीत लेंगे ॥ ४७ ॥ हे तात ! क्या तुमको कोई शिवकी नवीन प्रसन्नता प्राप्त हुई है. जो तुम्हारे हृदयमें कंप और नेत्रोंमें जल विद्यमान है ॥ ४८ ॥ क्या शिवने कार्तिकेयकी सम्मतिसे हमारी और सबकी अधिष्ठता तुमको प्रदान की है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार वह असुरोत्तम कुंभाण्डके वचन सुन वह बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ बाणासुर वचन बोला ॥ ५० ॥ बाणासुर बोला; हे कुंभांड ! बहुत दिनोंसे कोई मुझे युद्ध करनेवाला नहीं मिला

तब मने प्रतापी शंकरके निकट जाकर पूछा ॥ ५१ ॥ हे देव ! मुझको युद्धकी महान् इच्छा है सो म तुष्टि पानेवाले युद्धकी अभिलाषा करता हूं ॥५२॥ तब शत्रुघाती देवदेव शिवने हँसकर कुछ समय उपरान्त मुझसे कहा; हे बाण ! तुम्हारे साथ अनुपम और महान् युद्ध होगा ॥ ५३ ॥ हे असुर ! जब तुम्हारी मयरध्वजा टूट जायगी तब हे दैत्य ! तुमको बड़ा युद्ध करनेवाला प्राप्त होगा ॥५४॥ तब मैं महाप्रसन्न हो भगवान् शिवको शिरसे प्रणाम कर तुम्हारे समीप आया हूं ॥ ५५ ॥ यह कहनेपर कुंभाण्ड राजासे बोला; हे राजन् ! यह जो वचन आपने कहा सो अच्छा नहीं

युद्धाभिलाषः सुमहान् देव संजायते मम ॥ अभिप्राप्स्याम्यहं युद्धं मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥ ५२ ॥ ततोऽहं देवदेवेन हरेणामित्रघातिना ॥ प्रहस्य सुचिरं कालमुक्तोऽस्मि वचनं प्रियम् ॥ प्राप्स्यसे सुमहद्युद्धं त्वं बाणाप्रतिमं महत् ॥ ५३ ॥ मयूरध्वजभङ्गस्ते भविष्यति यदासुर ॥ तदा त्वं प्राप्स्यसे युद्धं सुमहद्दितिमन्दन ॥५४॥ ततोऽहं परमप्रीतो भगवन्तं वृषध्वजम् ॥ प्रणम्य शिरसा देवं तवान्तिकमुपागतः ॥५५॥ इत्येवमुक्तः कुम्भाण्डः प्रोवाच नृपतिं तदा ॥ अहो न शोभनं राजन्यदेवं भाषसे वचः ॥५६॥ एवं कथयतोस्तत्र तयोरन्योन्यमुच्छ्रितः ॥ ध्वजः पपात वेगेन शक्राशनिसमाहतः ॥५७॥ तं तथा पतितं दृष्ट्वा सोऽसुरो ध्वजमुत्तमम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे मेने चाहवमागतम् ॥५८॥ ततश्चकम्पे वसुधा शक्राशनिसमाहता ॥ ननादान्तर्हितो भूमौ वृषदंशो जगर्ज च ॥ ५९ ॥ देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत वासवः ॥ शोणितं शोणितपुरे सर्वतः परमं ततः ॥ ६० ॥ सूर्यं भित्वा महोल्का च पपात धरणीतले ॥ स्वपक्षे चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत् ॥ ६१ ॥

है ॥ ५६ ॥ वे दोनों यह वचन कहतेही थे कि बडे वेगसे वह ऊंची ध्वजा गिर पडी जैसे इन्द्रका वज्र ॥ ५७ ॥ वह असुर इस प्रकार पतित हुई उस ध्वजाको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और जाना कि अब युद्ध समीप प्राप्त है ॥ ५८ ॥ तब मानो इन्द्रके वज्रसे हत हुई पृथ्वी कंपित होने लगी और पृथ्वीमेंसे शब्द होने लगा बिलाव बोलने लगे॥५९॥देवताओंके देवता इन्द्र वर्षा करने लगे शोणितपुरमें चारों ओर रुधिरकी वर्षा होने लगी॥६०॥ सूर्यको भेदकर महाउल्का पृथ्वीपर गिरी अपने पक्षसे प्रेरित हुए सूर्यने भरणीको पीडित किया अर्थात् देवनक्षत्रमें उदय हुआ कृत्तिकामें प्रविष्ट हुआ.

बाणका जन्म नक्षत्र रोहिणी, भरणी (२६) का नक्षत्र अभिषेकका था उसको बिद्ध करनेसे देहपीडा सूचित की ॥ ६१ ॥ चैत्य वृक्षोंमें अकस्मात् सहस्रों धारा रुधिरकी पात होने लगीं और तारापात होने लगे॥६२॥ हे राजन् ! विषमगति होकरभी राहुने विना पर्वके सूर्यको ग्रास किया. लोक क्षय करनेवाले समयमें वारंवार उल्कापात होने लगे॥६३॥दक्षिणदिशामें धूमकेतु स्थित हुआ और रात दिन दारुण पवन चलने लगी॥६४॥ श्वेत और चारों ओरसे लाल ग्रीवास्थानमें श्याम बिजलीके समान प्रकाशमान तीनवर्णका घेरा सूर्यके चारोंओर होगया जिसने संध्याके रागकोभी

चैत्यवृक्षेषु सहसा धाराः शतसहस्रशः ॥ शोणितस्यास्रवन्घोरा निपेतुस्तारका भृशम् ॥६२॥ राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ॥ लोकक्षयकरे काले निर्घातश्चापतन्महान् ॥ ६३ ॥ दक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितोऽभवत् ॥ अनिशं चाप्यविच्छिन्ना ववुर्वाताः सुदारुणाः ॥ ६४ ॥ श्वेतलोहितपर्यन्तः कृष्णग्रीवस्तडिद्द्युतिः ॥ त्रिवर्णपरिघो भानुः सन्ध्यारागमथावृणोत् ॥६५॥ वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयंकरः ॥ बाणस्य जन्मनक्षत्रं भर्त्सयन्निव सर्वशः ॥ ६६ ॥ अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले ॥ अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम् ॥ ६७ ॥ एवं विविधरूपाणि निमित्तानि निशामयन् ॥ बाणो बलमदोन्मत्तो निश्चयं नाधिगच्छति ॥ ६८ ॥ विचेतास्त्वभवत्प्राज्ञः कुंभाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् ॥ बाणस्य सचिवस्तत्र कीर्तयन्बहु किल्बिषम् ॥ ६९ ॥ उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥ तव राज्यविनाशाय भविष्यन्ति न संशयः ॥ ७० ॥

॥२४६॥

ढक लिया ॥६५॥ और मंगल कृत्तिका नक्षत्रपर वक्री हो गया वह सर्व प्रकारसे मानो बाणासुरके जन्मनक्षत्रकी भर्त्सना करने लगा ॥ ६६ ॥ अनेक दूसरे वृक्ष तथा चैत्यनगरसूचक वृक्ष पृथ्वीमें गिर पडे जो महात्मा दानवोंकी कन्यासे पूजित हुए थे ॥ ६७ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके कुशकुन सुनते हुए बलसे मत्त हुआ बाणासुर कुछ निश्चय न कर सका ॥ ६८ ॥ उस महापंडित कुंभांडने यह सब देखकर शोच किया और बाणासुरका मंत्री होनेके कारण यह सब पापका कारण दिखलाया ॥ ६९ ॥ कि यह जो उत्पात दीखते हैं सो भला नहीं कहते हैं यह

तुम्हारे राज्यनाशके निमित्त होंगे इसमें संदेह नहीं ॥७०॥ हम तथा दूसरे सेवक मंत्री जो तुम्हारे अनुगामी हैं वे सब राजाकी दुर्नीतिसे नाश हो जांयगे॥७१॥जैसे चक्र ध्वजा स्थापित किये हुए वृक्षका उसके घमण्डसे पतन हो जाता है इसी कारण बलकी इच्छा करनेवाले बाणका मोहसे पतन होगा ॥ ७२ ॥ शिवके प्रसादसे त्रिलोकी जीती है परन्तु यह बलसे जो गर्वित हुआ है और युद्धकी इच्छा करता है तो इसका नाश होगा॥७३॥ बाणसे प्रसन्न होकर इस मदको पान किया है जो दैत्य दानवकी स्त्रियोंके साथ उत्तम विक्रमवाले ॥७४॥ चिन्ता करते हुए कुंभाण्ड राजघरमें प्रविष्ट हुए

वयं चान्ये च सचिवा भृत्या ये च तवानुगाः ॥ क्षयं यास्यन्ति न चिरात्सर्वे पार्थिवदुर्नयात् ॥७१॥ यथा शक्रध्वजतरोः स्वदर्पात्पतनं भवेत् । बलमाकांक्षतो मोहात्तथा बाणस्य नर्दतः ॥ ७२ ॥ देवदेवप्रसादात्तु त्रैलोक्यविजयं गतः ॥ उत्सेकाद्दृश्यते नाशो युद्धाकांक्षी ननर्द ह ॥ ७३ ॥ बाणः प्रीतमनास्त्वेवं पपौ पानमनुत्तमम् ॥ दैत्यदानवनारीभिः सार्द्धमुत्तमविक्रमः ॥ ७४ ॥ कुम्भाण्डश्चिन्तयाविष्टो राजवेश्माभ्ययात्तदा ॥ अचिन्तयच्च तत्त्वार्थं तैस्तैरुत्पातदर्शनैः ॥७५॥ राजा प्रमादी दुर्बुद्धिर्जितकाशी महासुरः ॥ युद्धमेवाभिलषते न दोषान्मन्यते मदात् ॥७६॥ महोत्पातभयं चैव न तन्मिथ्या भविष्यति ॥ अपीदानीं भवेन्मिथ्या सर्वमुत्पातदर्शनम् ॥७७॥ इह त्वास्ते त्रिनयनः कार्तिकेयश्च वीर्यवान् ॥ तेनोत्पन्नोऽपि दोषो नः कच्चिद्गच्छेत्पराभवम् ॥ ७८ ॥ उत्पन्नदोषप्रभवः क्षयोऽयं भविता महान् ॥ दोषाणां न भवेन्नाश इति मे धीयते मतिः ॥७९॥ नियतं दोष एवायं भविष्यति न संशयः ॥ दौरात्म्यान्नृपतेरस्य दोषभूता हि दानवाः ॥ ८० ॥

और उन उन उत्पातोंके देखनेसे उस तत्वार्थको विचारने लगा ॥७५॥ यह राजा प्रमादी दुर्बुद्धि जितश्रम और महाअसुर है युद्धकीही अभिलाषा करता और मदके कारण दोष नहीं मानता है ॥७६॥ यह महाउत्पात और भय जो होते हैं सो मिथ्या न होंगे क्या यह सब उत्पातका दर्शन अब मिथ्या हो जायगा ॥ ७७ ॥ यहां साक्षात् शिव और कार्तिकेय निवास करते हैं क्या उनकी स्थितिसे यह दोष पराभवको प्राप्त हो जांयगे॥७८॥ जो यह महादोषोंकी उत्पत्ति क्षय हो जाय तोभी दोषोंका नाश न होगा यह मेरी निश्चित बुद्धि है॥७९॥अवश्य कुछ दोष होगा इसमें सन्देह नहीं इस

राजाकी दुरात्मतासे दानवभी दोषभूत हो रहे हैं ॥ ८० ॥ जो प्रभु देव दानव और भुवनोंका कर्ता है वह भगवान् कार्तिकेय उस लोहितपुरमें स्थित किये हैं ॥८१॥ गुह शिवके नित्य प्राणोंके समान प्रिय है उनके साथ बाणभी शिवको प्रिय होंगे ॥८२॥ इसने पाखण्डके आश्रित हो अपने नाशके निमित्त शिवजीसे वर मांगा है जो युद्धका हेतु है हम जानते हैं कि यह सर्वथा न बचेगा ॥ ८३ ॥ यदि विष्णुको आगे किये इन्द्रादि देवतोंकी यहां प्राप्ति होगी तो शिवसे पराजित होंगे॥८४॥इन कुमार और शिवको जो बाणासुरकी सहायता करनेकी इच्छा करते हैं कौन युद्ध दे सकता है॥८५॥

देवदानवसङ्घानां यः कर्ता भुवनप्रभुः ॥ भगवान्कार्तिकेयश्च कृतवाँल्लोहिते पुरे॥८१॥प्राणैः प्रियतरो नित्यं भविष्यति गुहः सदा ॥ तद्विशिष्टश्च बाणोऽपि शिवस्य सततं प्रियः ॥८२॥ दर्पोत्सेकात्तु नाशाय वरं याचितवान्भवम् ॥ युद्धहेतोः स लुब्धस्तु सर्वथा न भविष्यति ॥८३॥ यदि विष्णुपुरोगानामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ भवित्री ह्यभवत्प्राप्तिर्भवहस्ताकृतं भवेत् ॥८४॥ एतयोश्च हि को युद्धं कुमारभवयोरिह ॥ शक्तो दातुं समागम्य बाणसाहाय्यकांक्षिणोः ॥८५॥ न च देववचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ॥ भविष्यति महद्युद्धं सर्वदैत्यविनाशनम् ॥८६॥ स एवं चिन्तयाविष्टः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् ॥ स्वस्तिप्रणिहितां बुद्धिं चकार स महासुरः ॥८७॥ ये हि देवैर्विरुध्यन्ते पुण्यकर्मभिराहवे ॥ यथा बलिर्नियमितस्तथा ते यान्ति संक्षयम्॥८८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ क्रीडाविहारोपगतः कदाचिद्भवद्भवः ॥ देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ॥ १ ॥

॥२४७॥

देवका वचनभी कभी मिथ्या नहीं होगा इससे सब दैत्योंका नाशक महायुद्ध होगा॥८६॥तत्त्वदर्शी कुंभांड इस प्रकार चिन्ताकर राजाके कल्याण प्राप्त होनेकी बुद्धि करने लगा ॥८७॥जो पुण्यकर्मद्वारा देवतोंसे संग्राममें विरोध करते हैं वे बलिके समान नियमित हो क्षयको प्राप्त होते हैं॥८८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषाटी० बाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥ वैशंपायन बोले; एक समय पार्वतीके सहित

शिवजी क्रीडा विहार करनेको शोभायमान नदीके तटपर गये ॥१॥ वहां परस्पर सैंकडों अप्सरा विहार करती थीं और वह तटका वन सब ऋतुओंसे युक्त था गन्धर्वपति भी वहां विद्यमान थे ॥ २ ॥ पारिजात और संतानके फूलोंकी गन्धि आकाश और वायुमें तथा नदीके किनारे सब ओर फैल रही थी ॥ ३ ॥ वेणु वीणा मृदंग पणव यह सहस्रों बाजे बज रहे और उन अप्सराओंके गीत सुनाई आते थे ॥ ४ ॥ सूत मागधके समान अप्सराओंके गण स्तुति करते थे उस समय देवदेवका मनोहर शरीर था लाल वस्त्र और माला पहरे थे ॥ ५ ॥ वे सब अप्सरा आदि मनोरम देवदेवकी पूजा करती थीं, उस समय चित्ररेखा नामक श्रेष्ठ अप्सरा देवीके रूपसे ॥ ६ ॥ शिवजीको प्रसन्न करने लगी (शिवका इस कर्मसे

शतानि तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समन्ततः ॥ सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ॥२॥ कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः सन्तानकस्य च ॥ गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥३॥ वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः ॥ वाद्यमानैः स शुश्राव गीतमप्सरसां तदा ॥४॥ सूतमागधकल्पैश्च स्तुवन्नप्सरसां गणाः ॥ देवदेवं सुवपुषं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥५॥ श्रीमदेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् ॥ ततस्तु देव्या रूपेण चित्रलेखा वराप्सराः ॥ ६ ॥ भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत्तदा ॥ प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ॥७॥ भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः ॥ देव्या ह्यनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥ अथते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः ॥ महादेवस्य रूपेण तच्चिह्नं रूपमास्थिताः ॥ ९ ॥ ततो देव्या सुरूपेण लीलया वदनेन च ॥ देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा ॥ ततः किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समन्ततः ॥ १० ॥

उसके ऊपर कुछ कोप हुआ इसी कारण चित्रलेखा अपने अंशसे कुंभांडके उत्पन्न हुई) इस कर्मसे पार्वतीको हँसी आ गई शिवको प्रसन्न करने लगी और अप्सराके गण हँसने लगे ॥ ७ ॥ शिवजीके नानारूप जो दिव्य पार्षद थे देवीकी आज्ञासे वह जहां तहां शिवरूपसे क्रीडा करने लगे ॥ ८ ॥ तब वे सब पार्षद एकान्तमें महादेवके रूप और चिन्हसे क्रीडा करने लगे ॥ ९ ॥ (यह रूप चित्ररेखाको भ्रान्त करनेको धारण किये) तब देवीके रूप और उनके लीला मुखसे देवीने हास्य किया तब सम्पूर्ण अप्सरा भी हँसी उस समय चारों ओरसे किलकिला शब्द होने

लगा ॥१०॥ तब प्रसन्न हो शिवजीने महासुख माना उस समय उषा नामक बाणासुरकी कन्या ॥ ११ ॥ देवको देवीसहित नदीके किनारे रमण करते देखकर कि उनका बारह सूर्यके समान तेज दीप्तिमान हो रहा है ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारका शरीर किये देवीके प्रियकी इच्छासे पार्वतीके समीप शिवको देख उषा मनोरथ करने लगी ॥ १३ ॥ वह धन्य है जो इस प्रकार स्वामीके निकट रमण करती है यह ऊषाने मनमेंही संकल्प किया और सखियोंसे कहा था ॥१४ ॥ तब ऊषाके अभिप्रायको जानकर पार्वती ऊषाको शनैः २ प्रसन्न करती हुई कहने लगी ॥ १५ ॥ हे ऊषे!

प्रहर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा ॥ बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी ॥११॥ देवं संक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदी-गतम् ॥ दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम् ॥ १२ ॥ नानारूपं वपुः कृत्वा देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥ उषा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः सन्निधौ तथा ॥१३॥ धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येवं समागता ॥ मनसा त्वथ संकल्पमुषया भाषितं तथा ॥ १४ ॥ विज्ञाय तमभिप्रायमुषायाः पर्वतात्मजा ॥ प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ॥ १५ ॥ उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि ॥ यथा देवो मया सार्द्धं शङ्करः शत्रुनाशनः ॥१६॥ एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा ॥ उषा भावं तदा चक्रे भर्त्रा रंस्ये कदा सह ॥ १७ ॥ तदा हैमवती वाक्यं संप्रहार्येदमब्रवीत् ॥ उषे शृणुष्व वाक्यं मे यदा संयोगमेष्यसि ॥ १८ ॥ वैशाखे मासि हर्म्यस्थां द्वादश्यां त्वां दिनक्षये ॥ रमयिष्यति यः स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति ॥ १९ ॥ एवमुक्ता दैत्यसुता कन्यागणसमावृता ॥ अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥ २० ॥

तूभी इसी प्रकार शीघ्र भर्ताके साथ रमण करेगी जैसे शत्रुनाशक हमारे स्वामी हमसे रमण करते हैं॥१६॥ जब देवीने यह कहा तब चिन्ता नेत्र-वाली ऊषाने यह भाव प्रगट किया कि तुम्हारे यह वाक्य कब पूर्ण होंगे ॥१७॥ तब हँसकर प्रसन्न हो गिरिनन्दिनी बोली; हे उषे ! जब संयोग होगा सो समय सुनो॥१८॥ वैशाख महीनेकी द्वादशीकी रात्रिको महलके ऊपर शयन करते हुए जिसके साथ तू स्वप्नमें रमण करेगी वही तेरा स्वामी होगा ॥ १९ ॥ यह सुनतेही दैत्यराजकी पुत्री अनेक कन्याओंके साथ प्रसन्न हो वहांसे चली गई और विहार करने लगी ॥ २० ॥

फिर सखीजनोंके साथ हास्य करती हुई खिले नेत्रवाली ताली बजाकर एक दूसरेको प्रसन्न करने लगी॥२१॥किन्नरी यक्षकन्या औरभी अनेक दैत्योंकी कन्या अप्सराओंके गण और कन्या यह उषाकी सखी हुईं॥२२॥और वे सब कहने लगीं; हे वरानने ! जैसा देवीने कहा है वैसा तुम्हारा स्वामी बहुत शीघ्र मिलेगा ॥२३॥ देवीका वचन कदाचित् मिथ्या नहीं होगा. रूपयौवनयुक्त तुम्हारे पतिकी उन्होंने कल्पना की है ॥२४॥ऊषा सखीजनोंके उस वाक्यका यथाविधि सत्कार करके जो मनोरथकी वस्तु देवीने दी थी उसीका ध्यान करने लगी ॥ २५ ॥ फिर उमाके सहित

ततः सखीभिर्हास्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना ॥ तालिकासन्निपातैश्च ह्यन्योन्यमभ्यवर्तत ॥ २१ ॥ किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैतेयकन्यकाः ॥ अप्सरोगणकन्याश्च उषायाः सखितां गताः ॥२२॥ उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने ॥ भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकल्पितः ॥२३॥ नहि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ॥ रूपाभिजनसंपन्नः पतिस्ते कल्पितस्तया ॥२४॥ उषा सखीनां तद्वाक्यं प्रतिपूज्य यथाविधि ॥ यत्तन्मनोरथं देव्या भावयन्ती व्यवस्थिता ॥२५॥ ततः क्रीडाविहारं तमनुभूय सहोमया ॥ गतेऽहनि ततः सर्वा नार्यस्ताः परमाद्भुताः ॥ २६ ॥ ययुः स्वानालयान् सर्वा देवी चादर्शनं गता ॥ काश्चिदश्वैस्तथा यानैर्गजैरन्या तथा रथैः॥२७॥ पुरं प्रविविशुर्हृष्टाः काश्चिदाकाशमास्थिताः ॥ ततः प्रभृति सा देवी काममोहं गता विभो ॥२८॥ देव्यास्तु वचनं स्मृत्वा संस्मरन्ती पतिं तदा ॥ निद्रां न भजते रात्रौ न दिवा भोजनं तथा ॥२९॥ स्मरन्ती पतिभावं सा विललाप नृपात्मजा ॥ निन्दन्ती शशिनं नार्के सेवती न च चन्दनम् ॥ ३० ॥

क्रीडाविहारको अनुभव करके दिन जानेपर वह सब परम अद्भुत स्त्री ॥ २६ ॥ अपने २ स्थानको गईं और देवीभी अदर्शनको प्राप्त हुई कोई घोडेकी सवारी कोई सुखपाल कोई रथमें ॥२७॥ बैठ प्रसन्न हो अपने पुरमें आई, कोई आकाशमें स्थित हुई उस दिनसे लेकर वह देवीके कामसे मोहको प्राप्त हो ॥२८॥ वचन स्मरण कर पतिका ध्यान करती हुई रात्रिमें निद्रा नहीं आती और दिनमें भोजन नहीं करती थी ॥ २९ ॥ केवल पतिके भावकाही स्मरण करती हुई वह विलाप करती थी स्वर्गमें चन्द्रमाको देख उसकी निन्दा करती चन्दनको सेवन न करती थी ॥३०॥

हे राजन् ! कामसे पीडित हो वह बाला मोहित हो गई यद्यपि कोई व्याधि नहीं थी परन्तु व्याधियुक्त हो गई सखीजन उसकी सेवा करती थी॥३१॥ चंदनके लगानेसे उसका हृदय तापित हो जाता था कपोलोंमें मंडित चिन्ह और नेत्रोंमें जल भरा रहता था ॥३२॥ जँभाई और स्वप्न उसकी देहमें बढने लगा कमलिनीके कंदके चूर्ण शीतल जल वारंवार॥३३॥सखी उसके हृदयमें लगातींपरन्तु वह कामाग्निसे पीडित थी. सखी वारंवार पंखा करती और उससे पूछती थी ॥ ३४ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारे शरीरमें क्या व्यथा है यह क्या हुआ ? हे चन्द्रमुखि ! तुम्हें क्या अच्छा लगता है सो कहो

सा बाला मोहिता राजन् कामेन परिपीडिता ॥ उपचर्यन्ति तां सख्यो विज्वरामपि सज्वराम्॥३१॥तप्यते हृदयं तस्या लेपितं चन्दनेन च ॥ कपोले पाण्डिमा चिह्नं नेत्रे जलसमन्विते ॥३२॥ जृम्भणं च तथा स्वापो देहे तस्या व्यवर्धत ॥ पद्मिनीकन्द-चूर्णानि शीतलानि मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ क्षिपन्ति सख्यो हृदये पीडिते मन्मथाग्निना ॥ व्यजनानि प्रकुर्वन्ति पृच्छन्ति च पुनः पुनः ॥३४॥ का व्यथा किं शरीरं ते किमिदं तव भामिनि ॥ किं तुभ्यं रोचते देवि तदाख्याहि वरानने ॥ ३५ ॥ कस्मादिदं समुत्पन्नं दुःखसाध्यं मनोरमे ॥ त्वन्मनोऽनुगतं वाक्यं वदन्त्येतास्तु सारिकाः ॥३६॥ शुका नीलतमाः सुभ्रु पठन्ति हि पुमा-निव ॥ प्रह्लादजननं वाक्यं किमर्थं नाद्य भाषसे ॥ ३७ ॥ तव तातो महावीरो देवानामपि दुर्जयः ॥ तस्याग्रे तिष्ठते कोऽपि न भूमौ वरवर्णिनि ॥३८॥ बलेः पुत्रो महावीरो बाणो हि दुरतिक्रमः ॥ जित्वामरावतीकं च नगरं शोणिताह्वयम् ॥ यत्र संतिष्ठते देवः शूलहस्तो महेश्वरः ॥ ३९ ॥

तो॥३५॥हे मनोरमे ! किसके द्वारा यह ऐसा दुःख तुमको प्राप्त हुआ है यह मैना तुम्हारे मनके अनुगत वचनोंको बोलती है॥३६॥हे सुन्दर भौंवाली ! यह नीलवर्ण शुक (तोते) पुरुषोंके समान पढते हैं इनके वाक्योंसे प्रसन्नता होती है सो तू इनसे क्यों नहीं बोलती है॥३७॥तुम्हारे पिता महाबली देवताओंको भी दुर्जय हैं. हे मनोहारिणि ! उनके आगे पृथ्वीमें कोई स्थित नहीं हो सकता॥३८॥बलीका पुत्र महावीर दुरतिक्रमणीय बाणासुर अम-

रावतीको जीत शोणितपुरमें निवास करता है जहां उसके निकट शूलधारी महादेव रहते हैं ॥ ३९ ॥ जिन्होंने पार्वतीसे कहा है कि तुम इसको अपना पुत्र जानो बाणके प्रति महादेवने ऐसा कहा है. हे ऊषे ! वह तुम्हारे तात हैं यह मुझसे सुनो ॥ ४० ॥ तुमको क्या व्यथा है जो मुख और नासिकाके अग्रभागमें शरदमें कमलपर ओसकी बूंदके समान जलके बिन्दु दीखते हैं ॥ ४१ ॥ वह तुम्हारा पूर्णचन्द्रमाके समान मुख बादलमें ढके चन्द्रमाके समान कान्तिरहित शोभित नहीं होता इसका कारण कहो ॥ ४२ ॥ हे बाले ! तू क्यों स्वांस लेती है विश्रामको नहीं प्राप्त होती जो तेरे मनमें इच्छा हो वह दिव्य भोजन स्वीकार कर ॥ ४३ ॥ पहले तुमको पान अच्छा लगता था अब क्यों नहीं

पुत्रोऽयमिति जानीहि गिरिजां योऽब्रवीद्धरः ॥ बाणं प्रति महादेवस्तव तातमुषे शृणु ॥ ४० ॥ का व्यथेति मुखे चेदं नासाग्रे च विराजते ॥ नीहारबिन्दवः पद्मे राजन्ते शरदागमे ॥ ४१ ॥ संपूर्णचन्द्रप्रतिमं मुखं चन्द्रो यथा घने ॥ न शोभते तु विच्छायं किमर्थं कारणं वद ॥४२॥ श्वासान्मुञ्चसि बाले त्वं न रतिं यासि भावतः ॥ गृहाण भोजनं दिव्यं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४३ ॥ ताम्बूलं रोचते पूर्वं तत्किमर्थं न गृह्यते ॥ मिष्टानि यानि वस्तूनि दुर्लभानीतरैर्जनैः ॥ ४४ ॥ गृहाण देवि उत्तिष्ठ वद पीडां शरीरजाम् ॥ इति कोलाहलं श्रुत्वा उषा वेश्मसमुद्भवम् ॥४५॥ दासीभिः कीर्तितं तत्र मातुरग्रे पृथक् पृथक् ॥ राजपुत्री यदा देवि समायाता गृहे सती ॥४६॥ जलक्रीडाविहाराच्च मूकेव परिलक्ष्यते ॥ अतो दासीजना देवि वदामस्त्वां वयं जनाः ॥४७॥ को मोहः किमिदं मौनं कः स्वापो म्लानता कथम् ॥ विचार्य भिषजो देवि दिश्यन्तां कष्टशान्तये ॥ ४८ ॥

अच्छा लगता जो मिष्टान्न दूसरे मनुष्योंको दुर्लभ है ॥ ४४ ॥ हे देवि ! उठकर ग्रहण करो अपने शरीरकी पीडा हमसे कहो. इस प्रकारका कोलाहल ऊषाके घरमें सुनकर ॥ ४५ ॥ दासियोंने सब उसकी माताके आगे वर्णन किया कि जबसे राजपुत्री देवीके घरसे आई है ॥ ४६ ॥ जलक्रीडा विहारसे आनेके उपरान्त वह मूकसी हो रही है. इस कारण हम दासीजन यह वार्ता तुमसे निवेदन करती हैं ॥ ४७ ॥ क्या मोह है क्यों मौनता है क्यों निद्रा और मलीनता क्यों है वह वैद्योंसे विचार कराय कष्टशांतिके निमित्त औषधी देनी चाहिये ॥ ४८ ॥

जो उसका शिरसके फूलके समान कोमल शरीर है.हे देवि!वह व्याधिका भार कैसे सह सकता है॥४९॥यहवचन सुनतेही हंसगामिनी देवी ऊषाके स्थानमें जाकर कहनेलगी यह क्यों कष्ट हो रहा है॥५०॥अपने पल्लवके समान हाथोंसे उसके हाथको छूकर और उंगलीको पकड चटकाने लगी॥५१॥ और बोली; हे कल्याणि!यह क्या है तुम्हारे शरीरमें क्या व्यथा है और यह वैद्य आकर पूछते हैं॥५२॥वैद्यबोले;कि राजपुत्री सखियोंके सहित जलक्रीडा करनेको गई थी और पार्वतीके साथ क्रीडा करी थी इससे कुछश्रम होगया यह हमजानते हैं॥५३॥श्रमसे ग्लानि होकर जँभाई आनेलगी है उसीसे निद्रा

शिरीषपुष्पसदृशं यच्छरीरं सुकोमलम् ॥ तत्कथं सहते देवि व्याधिभारं वरानने ॥४९॥ इति श्रुत्वा तदा देवी सत्वरा हंसगामिनी प्राप्य देशमुषा यत्र किमिदं कष्टलक्षणम् ॥ ५० ॥ पल्लवाकृतिहस्तेन कोमलं तत्करं तदा ॥ स्पृष्ट्वाङ्गुलीरनायासं स्फोटयामास भाविनी ॥ ५१ ॥ ॥ किमस्ति तव कल्याणि का व्यथा तव वर्तते ॥ एते वैद्याः समागत्य पृच्छन्ति भवतीं हि तत् ॥ ५२ ॥ वैद्या ऊचुः ॥ जलक्रीडां गता तत्र राजपुत्री सखीगणैः ॥ पार्वत्याः क्रीडितं तत्र जानीमः श्रमसंभवम् ॥ ५३ ॥ श्रमाद्ग्लानिः समुत्पन्ना जृम्भणं च पुनः पुनः ॥ स्वापश्च जायते तेन मा भयं कर्तुमर्हसि ॥५४॥ देव्युवाच ॥ हृदये निहितं वैद्याश्चन्दनं हिमसंधुतम् ॥ अमात्याः किमिदं शीघ्रं किमिदं बुद्बुदायते ॥५५॥ अतिदाहो महान्स्वेदः पिपासा न बुभुक्षते ॥ प्रलाप एव किं तस्यां शास्त्रतो ब्रूत निश्चितम् ॥ ५६ ॥ वैद्या ऊचुः ॥ क्रीडाविहारे मिलिताः स्त्रीजना देवसन्निधौ ॥ रूपेणाप्रतिमा देवी राजपुत्री च भाविनी ॥५७॥ दृष्टिपातः कृतस्ताभिस्तेन पुत्र्यां व्यथाभवत् ॥ रक्षामन्त्रैस्तथा पीतैः सर्षपैस्तां कुमारिकाम् ॥ ५८ ॥

हुई है तुम कुछ भयमत करो॥५४॥देवी बोली;हे वैद्यो!जो चंदन इसके हृदयमें रक्खा जाता है सो उसमेंगरमीकेसे बुदबुदे क्यों उठने लगते हैं॥५५॥ अतिदाह महास्वेद होता है प्यास भूख कुछ नहीं लगती और प्रलाप है इसका शास्त्रसे निश्चय करके कहो॥५६॥वैद्य बोले;स्त्रीजन क्रीडा विहारमें देवके समीप मिली यह राजपुत्रीभी रूपमें अलौकिक है ॥५७॥ इनको दूसरी स्त्रियोंकी दृष्टि लगी है इस कारण इनके शरीरमें व्यथा हुई है इस कुमारीकी

मंत्र पढी सरसोंसे रक्षा करनी चाहिये॥५८॥और मंत्र पढे जलोंसे अभिषेक करनेसे शान्ति होगी यह कहकर वैद्यराज घरसे बाहर आये ॥५९॥ फिर सब कामसे उत्पन्न हुई व्यथाको सूचन करने लगे कुछ दिनके उपरान्त माताके पूछने पर उस बालाने कहा ॥ ६० ॥ वह रोती हुई मातासे लज्जायुक्त बोली; हे माता ! मुझे वार्ता और भोजन अच्छा नहीं लगता ॥६१॥ कोई प्रसन्नता नहीं होती हृदय सदा दग्ध होता रहता है, यह कहकर ऊषा फिर चुप हो रही॥६२॥ तब वे सब स्त्री परस्पर उसका मुख देखने लगीं कारण कि स्त्रियोंका यौवन लज्जाके अनुकरणवाला होता है ॥६३॥

पानीयैरभिषेकेण परा शान्तिर्भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा भिषजः सर्वे निवृत्ता नृपवेश्मतः ॥५९॥ सूचयन्तः पुनः सर्वे कामाभिप्रायजां व्यथाम् ॥ मातृपृष्टा वरारोहा चिरकालमुवाच सा ॥६०॥ लज्जावती महाभागा मातरं रुदती भृशम् ॥ मातर्न रोचते नित्यं भाषणं न च भोजनम् ॥६१॥ न चाप्युत्सवकं मातः सदाहं हृदयं शृणु ॥ इत्युक्त्वा विरराामाथ ह्युषा नारी वरानना ॥ ६२ ॥ सर्वाभिः स्त्रीभिरारब्धमन्योन्यं मुखवीक्षणम् ॥ लज्जानुकारि नारीणां यौवनं हि भवेदिति ॥६३॥ इयं च राजकन्या हि भर्तृयोग्या किमुच्यते ॥ पितुः प्रसादान्मातुश्च प्राप्नुयात्सदृशं वरम् ॥६४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे उषाविरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रस्थाः परमा नार्याश्चित्रेण परमाद्भुताः ॥ ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम्॥१॥द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा॥यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम्॥२॥

यह राजकन्या क्या भर्ताके योग्य नहीं है? पितामाताकी प्रसन्नतासे उचित वरको पावेगी ॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां बाणयुद्धे ऊषाविरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ वैशंपायन बोले;वहां स्थित हुई बडी चतुर स्त्री आश्चर्यमें प्राप्त हुई फिर एक दिन महलमें शयन करते वैशाखके महीनेमें ॥ १ ॥ शुक्लपक्षकी द्वादशीको जब कि सखीजन उसके चारों ओर स्थित थीं पार्वतीके कहे

अनुसार स्वप्नमें कोई पुरुष उसको रमाने लगा ॥२॥ देवीके वचनसे वह प्रेरित हो चेष्टा करती हुई उसके साथ रमण करने लगी तब रजसे युक्त हो रोती हुई एक साथ उठ बैठी ॥ ३ ॥ उसको रोती देखकर सखी भयको प्राप्त हुई तब चित्रलेखा कोमल वचन कहने लगी ॥ ४ ॥ हे ऊषा ! मत डरो क्यों तू रोकर परितापित होती है तू बलिके पुत्रकी पुत्री होकर क्यों डरती है ॥ ५ ॥ हे सुन्दर भौंवाली ! लोकमें तुझे कहींसे भय नहीं है तुझे अभय है क्यों कि तुम्हारे पिता युद्धमें देवताओंको नष्ट कर सकते हैं ॥ ६ ॥ हे शुभे ! तुम्हारा मंगल हो उठो विषाद मत करो.हे वरानने ! ऐसे स्थानोंमें तुमको कहींसे भय नहीं है ॥ ७॥ एकवारही इन्द्राणीका पति इन्द्र नगरमें न आने देते हुए तुम्हारे पिताने पराजित किया है ॥ ८ ॥ यह

विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता ॥ सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता ॥ शोणिताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि ॥३॥ तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता ॥ चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम् ॥४॥ उषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे ॥ बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता ॥५॥ न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषः ॥ अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे ॥६॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं मा कृथाः शुभे॥ नैवंविधेषु वासेषु भयमस्ति वरानने ॥७॥ असकृद्देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः ॥ अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे ॥८॥ अयं देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव ॥ महासुरवरः श्रीमान्बलेः पुत्रो महाबल ॥९॥ एवं साभिहिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी ॥ स्वप्ने रूपं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिन्दिता ॥१०॥ उषोवाच ॥ एवं सन्धर्षिता साध्वी कथं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिन्दमम् ॥ एवं संदूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः ॥१२॥ श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम् ॥ ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषो विगतो हि मे॥१३॥

तुम्हारे पिता सम्पूर्ण देवताओंके भय देनेवाले हैं. यह महाअसुर श्रीमान् महाबली बलिके पुत्र हैं ॥ ९ ॥ जिस समय उस सखीने बाणपुत्रीसे यह वचन कहे तब वह निन्दारहित स्वप्नमें देखे हुए रूपकी निन्दा करने लगीं ॥ १० ॥ ऊषा बोली; इस प्रकार धर्षित हुई साध्वी स्त्री कैसे जीवन धारण कर सकती है ॥ ११ ॥ उन देवशत्रु शत्रुनाशी पितासे मैं क्या कहूंगी मैं उस महापराक्रमी पिताके वंशके दूषण करनेहारी हूं ॥ १२ ॥ मेरा मरनाही अच्छा है जीना नहीं, जो कोई पुरुष मेरा इष्ट था सोभी चला गया ॥१३॥

जो जाग्रतमें मेरी यह अवस्थाकी गई रातमेंभी मुझ जागती हुईकी यहदशा किसनेकी उस प्रकार की हुई कौन कन्या जीनेकी इच्छा करेगी॥१४॥ कुलकी नष्ट करनेवाली कुलांगारी निराश्रया नारीश्रेष्ठ स्त्रियोंके आगेस्थित होनेको समर्थ नहीं हूं॥१५॥ इस प्रकार नेत्रोंमें जल भरे सखीजनोंके साथ बैठी कमललोचनी ऊषा विलाप करने लगी॥१६॥ सब सखी उसको अनाथके समान रोती हुई देखकर विचेत हुईं और वे सब आनकर रोती हुई ऊषासे बोलीं ॥ १७ ॥ कामवाले मनसे शुभ वा अशुभ जो कुछ किया जाता है, हे देवि ! वही पाप वा पुण्य गिना जाता है अनिच्छासे नहीं ॥१८॥

जाग्रतीव यथा चाहमवस्थेयं कृता मम ॥ निशायां जाग्रतीवाहं नीता केन दशामिमाम् ॥ कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे ॥ १४ ॥ कुलोपक्रोशनकरी कुलाङ्गारी निराश्रया ॥ जीवितुं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामग्रतः स्थिता ॥ १५ ॥ इत्येवं बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा ॥ विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना ॥ १६ ॥ अनाथवत्तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः ॥ ऊचुरश्रुपरिताक्षीमुषां सर्वाः समागताः ॥१७॥ दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ क्रियते न च ते सुभ्रु किंचिद्दुष्टं मनः शुभे ॥ १८ ॥ प्रसभं दैवसंयोगाद्यदि भुक्तासि भामिनि ॥ स्वप्नप्रयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ॥ १९ ॥ व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद्व्यतिक्रमः ॥ न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि ॥२०॥ एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञाः कथयन्ति वै ॥ मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः ॥ दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥ न च ते दृश्यते भीरु मनः प्रचलितं सदा ॥ कथं त्वं दोषसंदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी ॥ २२ ॥

हे भामिनि! दैवसंयोगसे यदि तू बलात्कारसे भोगी गई है तो हे कल्याणि! इस स्वप्नयोगकी वार्तासे तेरा व्रत लोप नहीं होगा॥१९॥ हे देवि ! तुमको व्यभिचारदोष नहीं लगता है. हे देवि ! मर्त्यलोकमें स्वप्नकृत दोष नहीं लगता है॥२०॥ हे देवि ! यह वचन धर्मात्मा विप्र और महर्षियोंने कहे हैं. मन वचन कर्मसे विशेष करके जो इन तीनसे दुष्ट हो वह पापयुक्त कहाता है ॥ २१ ॥ हे भीरु ! हम कभी तुम्हारा मन चलायमान नहीं देखती हैं सो

सदा ब्रह्मचर्य करनेवाली तू कैसे दोषसे दुष्ट हो सकती है ॥२२॥ हे सती साध्वी चतुर! जो तू शुद्धभावसे सोई थी और इस अवस्थाको प्राप्त होगई तो तेरा धर्म लोप नहीं होगा ॥ २३ ॥ जिसका मन दुष्ट हो और फिर कोई कर्म हो जाय उसीको असती कहते हैं. हे भामिनि! तू तो सती है ॥ २४ ॥ अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई रूपसम्पन्न सदा धर्म और ब्रह्मचर्यमें तत्परभी यदि इस दशाको प्राप्त हुई तो हम जानती हैं कि कालही बडा दुस्तर है॥२५॥ इस प्रकार आंसू भरी हुई उससे कहकर कुंभांडकी पुत्री यह वचन बोली ॥२६॥ हे विशालाक्षि ! शोकको त्यागन कर तू पापरहित है. जो मैंने सुना है सो यथार्थ-

यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी ॥ इमामवस्थां प्राप्ता त्वं नैव धर्मो विलुप्यते ॥२३॥ यस्या दुष्टं मनः पूर्वं कर्मणा चोपपादितम् ॥ तामाहुरसतीं नाम सती त्वमसि भामिनि ॥ २४ ॥ कुलजा रूपसंपन्ना नियता ब्रह्मचारिणी ॥ इमामवस्थां नीतासि कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २५ ॥ इत्येवमुक्त्वां रुदतीं बाष्पेणावृतलोचनाम् ॥ कुंभाण्डदुहिता वाक्यं परमं त्विदमब्रवीत् ॥२६॥ त्यज शोकं विशालाक्षि अपापा त्वं वरानने ॥ श्रुतं मे यदिदं वाक्यं यथातथ्येन तच्छृणु ॥२७॥ उषे यदुक्ता देव्यासि भर्तारं ध्यायती तदा ॥ समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद्वचः ॥२८॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि ॥ हर्म्ये शयानां रुदतीं स्त्रीत्वं समुपनेष्यति ॥ २९ ॥ भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रुनिबर्हणः ॥ इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥ ३० ॥ न हि तद्वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम् ॥ सा त्वं किमिदमत्यर्थं रोदिषीन्दुनिभानने ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवीवचस्ततः ॥ अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा ॥ ३२ ॥

तासे तू सुन ॥ २७ ॥ हे ऊषे ! जो देवीके समीप तुम्हारी वार्ता भर्ताको ध्यान करते हुई थी उस वचनको तो स्मरण करो ॥ २८ ॥ कि वैशाख-मासके शुक्लपक्षकी रातको जो महलपर शयन करते हुए तुझ रोती हुईको ग्रहण करेगा ॥२९॥ वही तेरा स्वामी होगा वह शूर और शत्रुनाशी होगा यह बात प्रसन्न हो देवीने तुम्हारे मनकी बात जानकर कही ॥ ३० ॥ जो कुछ देवीने कहा है वह वचन मिथ्या न होगा. हे चन्द्रमुखि ! अब तू किस निमित्त रुदन करती है ॥ ३१ ॥ जिस समय उसने यह वचन कहे उसी समय बाणपुत्रीका शोक जाता रहा ॥ ३२ ॥

ऊषा बोली; क्रीडाके समय देवीने जो वचन कहा था वह मुझे स्मरण हो आया जो कहा था वही सब मुझको प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ जो लोकनाथकी भार्याने यह मेरा स्वामी नियत किया है अब वह कैसे जाना जाय उसमें कार्यका विधान करना उचित है॥३४॥यह वचन सुनकर कुंभांडकी कन्या यथायोग्य अर्थतत्त्वके जाननेवाली वह फिर वचन बोली॥३५॥हे देवी ! जब कि तू उसका कुल कीर्ति पुरुषार्थ तत्त्वसे नहीं जानती तो क्यों मोहित होती है॥३६॥हे शुभे ! जो कि तुमने स्वप्नमें अदृष्ट और अश्रुत पुरुषको देखा है. हे भीरु ! तो हम उस रतिचोरको कैसे जानसकती हैं ॥३७॥

उषोवाच ॥ स्मरामि भामिनि वचो देव्याः क्रीडागते भवे ॥ यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया ॥ ३३ ॥ भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया ॥ व्यादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवमुक्ते वचने कुम्भांडदुहिता पुनः ॥ व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥ ३५ ॥ नहि तस्य कुलं देवि न कीर्तिर्नापि पौरुषम् ॥ कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे ॥ ३६ ॥ अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च यः शुभे ॥ कथं ज्ञेयो भवेद्भीरु सोऽस्माभी रतितस्करः ॥ ३७ ॥ येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिनि विक्रमात् ॥ रुदती प्रसभं भुक्ता प्रविश्यान्तः पुरं सखि ॥ ३८ ॥ स ह्यसौ प्राकृतः कश्चिद्यः प्रविष्टः प्रसह्य ते ॥ नगरं लोकविख्यातमेकः शत्रुनिबर्हणः ॥ ३९ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसो ॥ न शक्ताः शोणितपुरं प्रवेष्टुं भीमविक्रमाः ॥ ४० ॥ सोऽयमेतैः शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदनः ॥ प्रविष्टः शोणितपुरं बाणमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ४१ ॥ यस्या नैवंविधो भर्ता भवेद्युद्धविशारदः ॥ कस्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वास्त्यम्बुजेक्षणे ॥ ४२ ॥

हे सखि ! जिसने अन्तःपुरमें प्रवेश करके तुमसी मत्तकाशिनी बालाको बलसे भोग किया ॥३८॥ जिसने बलसे प्रवेश किया है वह कोई प्राकृत पुरुष न होगा उसका लोकविख्यात नगर और वह एकही शत्रुनिषूदन होगा ॥३९॥ आदित्य वसु रुद्र महापराक्रमी अश्विनीकुमार यह भीमकर्मा तो शोणितपुरमें प्रवेश नहीं कर सकते ॥ ४० ॥ सो इनसे कोई सौ गुणा महाबली शत्रुसूदन बाणके शिरपर चरण रखकर इस स्थानमें प्रविष्ट हुआ है ॥ ४१ ॥ हे कमललोचनि ! जिसका इस प्रकार युद्धमें विशारद स्वामी न हो उसके जीने वा भोगोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ४२ ॥

तू धन्य और अनुगृहीत है जिसका पति ऐसा है वह कामकी समान पराक्रमी देवीके प्रसादसेही प्राप्त हुआ है ॥ ४३ ॥ अब जो करना उचित है सो मेरे कहे वचन सुन जिसके द्वारा जाना जायगा कि यह किसका पुत्र क्या नाम और किस कुलवाला है ॥ ४४ ॥ यह वचन कहनेपर कामसे मोहित हो ऊषा कुंभांडकी सुतासे बोली; हे सखि ! मैं उसे कैसे जानूंगी ॥ ४५ ॥ हे सखि ! वही विचार कर इसमें मुझे कोई उत्तर विदित नहीं होता लोक अपने कार्यमें मोहित हो जाते हैं अब मैं जिस प्रकार अपने जीवनको प्राप्त हूं ॥ ४६ ॥ वह करो. यह वचन वह कुंभां-

धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते पतिरीदृशः ॥ प्राप्तो देव्याः प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रमः ॥४३॥ इदं तु यत्कार्यतमं शृणु त्वं तन्मयेरितम् ॥ विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च सः ॥ ४४ ॥ इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता ॥ उवाच कुम्भाण्डसुतां कथं ज्ञास्याम्यहं सखि ॥४५॥ त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रतिभाति मे ॥ स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम् ॥४६॥ उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः ॥ उवाच रुदतीं चोषां कुम्भाण्डदुहिता सखी ॥ ४७ ॥ कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा सन्धिविग्रहे ॥ अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि ॥ ४८ ॥ अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा ॥ एवमुक्ता तदैवोषा हर्षेणागत विस्मया ॥ ४९ ॥ तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ॥ कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥ सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम् ॥ आश्वासयामास सखी बाणपुत्रीं यशस्विनीम् ॥५१॥ ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम् ॥ चित्रलेखामप्सरसं प्रणयात्तां सखीमिदम् ॥ ५२ ॥

डकसुता रामा सुनकर उस रोती हुई ऊषासे बोली ॥ ४७ ॥ हे विशालाक्षि ! वह तुम्हारी चित्ररेखा सखी सब कार्यमें संधिविग्रहमें कुशल है उसे इस कार्यमें नियुक्त करो ॥ ४८ ॥ क्योंकि विशेष करके यह त्रिलोकीके सब स्थानोंको जानती है. यह सुन उषा प्रसन्न और विस्मत हुई ॥ ४९ ॥ उस प्रिया सखी चित्ररेखा अप्सराको बुलाकर हाथ जोडकर दीन ऊषा कहने लगी ॥ ५० ॥ वह ऊषाके उस वृत्तान्तको सुनकर अपनी सखी बाणपुत्रीको धीरज देने लगी ॥ ५१ ॥ तब वह विस्मयको प्राप्त हो दूसरेके न कहने योग्य वचनको अपनी प्रियसखी चित्रलेखासे प्रणयपूर्वक बोली ॥ ५२ ॥

हे भामिनि ! जो मैं कहती हूं उस मेरे वचनको सुनो, यदि तुम मेरे प्रियभर्ताको अब न लाओगी ॥ ५३ ॥ जो कि मनोहर कमललोचन मत्तमातंगगामी है तो उसके न मिलनेसे मैं शीघ्र अपने प्राणोंको त्याग दूंगी ॥ ५४ ॥ तब वह ऊषाको सहज २ प्रसन्न करती हुई ऊषासे बोली; हे भामिनि ! यह अर्थ तो मैं जान नहीं सकती हूं ॥ ५५ ॥ कुल वर्ण शील रूप देश जिसका नहीं जाना है वह तुम्हारा चोर है उसका जानना कठिन है ॥ ५६ ॥ किन्तु बुद्धिसे कुछ कर सकती हूं जिससे कार्य सिद्ध होगा सो मैं तुमसे कहती हूं ॥ ५७ ॥ देव दानव यक्ष गंधर्व उरग

परमं शृणु मे वाक्यं यत्त्वां वक्ष्यामि भामिनि ॥ भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम् ॥ ५३ ॥ कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्तमातङ्गगामिनम् ॥ त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात्तनुमध्यमे ॥ ५४ ॥ चित्रलेखाब्रवीद्वाक्यमुषां हर्षयंती शनैः ॥ नैषोऽर्थः शक्यतेस्माभिर्वेत्तुं भामिनि सुव्रते ॥ ५५ ॥ न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः ॥ न देशतश्च विज्ञातः स हि चोरो मया सखि ॥५६॥ किंतु कर्तुं यथा शक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि ॥ प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममवाप्स्यसि॥५७॥देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ॥५८॥ यथाप्रभावं तान्सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि॥मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः॥५९॥सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम् ॥ ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपत्स्यसे॥६०॥ सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषा हितचिकीर्षया॥ क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ॥६१॥ ततः कुशलहस्तत्वाद्यथालेख्यं समन्ततः ॥ इत्युक्ता सप्तरात्रेण कृत्वालेख्यगतांस्तु तान् ॥ ६२ ॥

राक्षस जो प्रभाव और रूपमें विख्यात हैं ॥ ५८ ॥ हे सखि ! मैं उन प्रभावयुक्तोंका यथायोग्य चित्र लिखूंगी और जो मनुष्य लोकमें भी विख्यात बली हैं ॥५९॥ सात रातमें उन सबको मैं तुम्हें दिखाऊंगी तब तू चित्रमें अपने स्वामीको देखकर प्राप्त होगी॥६०॥वह ऊषाके हितकी इच्छासे चित्रलेखाने जो कुछ कहा सो ऊषा बोली यही करो॥६१॥तब वह कुशल हाथसे यथायोग्य सात दिनमें उन चित्रोंको सम्पूर्ण लिख चुकी॥६२॥

उन मुख्यमुख्यको चित्रमें लिखकर ऊषाके समीप लाई तब वह चित्रलेखा अपने लिखे चित्रपटको फैलाकर ॥ ६३ ॥ और उपाय करके विशेष कर सखियोंको दिखाती हुई.ये देवता और दानवोंके वंशमें मुख्य हैं ॥ ६४ ॥ किन्नर उरग यक्ष राक्षसोंके सम्मत गन्धर्व असुर दैत्य तथा दूसरे भोगी ॥ ६५ ॥ और सब मनुष्योंमें जो श्रेष्ठ गिने जाते हैं उन सबको देख जो यह मैंने लिखे हैं ॥ ६६ ॥ हे सखि ! जो तेरा भर्ता जैसे रूपका है सो मैंने लिखा है सो जिसे तैंने स्वप्नमें देखा है उसे पहिचान ले॥ ६७ ॥ तब वह मत्तगामिनी क्रमसे उन सबको देखती हुई. देव दानव

चित्रपट्टगतान् मुख्यानानयामास शोभना ॥ ततः प्रास्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयं कृतम् ॥६३॥ उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः ॥ एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः ॥ ६४ ॥ किन्नरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः ॥ गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः ॥६५॥ मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नरः ॥ तातेतान्पश्य सर्वास्त्वं यथैव लिखितान्मया॥६६॥ यस्ते भर्ता यथारूपो स मया लिखितः सखि ॥ तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि ॥६७॥ ततः क्रमेण सर्वास्तान्दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी ॥ देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ ॥ अतीत्य च यदून् सर्वान् ददर्श यदुनन्दनम् ॥ ६८ ॥ तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै सखि ॥६९॥ येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती ॥ सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्कर ॥ ७० ॥ चित्रलेखे वदस्वैनं तत्त्वतो मम शोभने ॥ कुलशीलाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि ॥ ततः पश्चाद्विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥ ७१ ॥

गन्धर्व विद्याधरोंके समूह देखनेके उपरान्त यादवोंमें यदुनन्दनका चित्र देखा ॥६८॥ तब विस्मयसे उत्फुल्लनेत्र हो चित्रलेखासे बोली; हे सखि ! यही मेरा चोर है ॥६९॥ जिसने महलमें सोते हुए स्वप्नमें आकर मुझे दूषित किया है सो मैंने जान लिया. सखि ! यह रतितस्कर कौन है॥ ७० ॥ हे चित्रलेखे ! मुझे तत्त्वसे इसका वृत्तान्त सुनाओ. इसका कुल शील और नाम बताओ पीछे इस कार्यकानिश्चय किया जायगा ॥ ७१ ॥

चित्रलेखा बोली; यह त्रिकोकींनाथ श्रीकृष्णका पोता है. हे विशालनेत्रवाली! तुम्हारा भर्ता प्रद्युम्नका पुत्र महापराक्रमी है॥७२॥यह अनिरुद्धनामवाला है इसकी बराबर त्रिलोकीमें कोई पराक्रमी नहीं है यह पर्वतोंको उठाकर पर्वतोंसे चूर्ण कर सकता है ॥७३॥तू धन्य और अनुग्रहीत है जिसका ऐसा पति है. पार्वतीने तुम्हारे सदृशही पतिका विधान किया है॥७४॥ऊषा बोली; हे विशालाक्षि ! इस कार्यके करनेमें भी तूही योग्य है. मुझे अनाथकी तूही गतिहै दूसरी नहीं ॥ ७५ ॥ तू कामरूपिणी योगिनी आकाशमें चल सकती है इस उपायमें कुशल है शीघ्र मेरे स्वामीको ला ॥ ७६ ॥

चित्रलेखोवाच ॥ अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः ॥ भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः ॥७२॥ न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे ॥ उत्पाट्य पर्वतानेष पर्वतैरेव शातयेत् ॥७३॥ धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते यदुपुङ्गवः ॥ त्र्यक्षपत्न्या समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः ॥७४॥ उषोवाच ॥ त्वमेवात्र विशालाक्षि योग्या भव वरानने ॥ न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव ॥ ७५ ॥ अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी कामरूपिणी ॥ उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम् ॥७६॥ उपायश्चिन्त्यतां भीरु सप्रतर्क्यं प्रिये सुखम् ॥ सिद्धार्था संनिवर्तस्व येनोपायेन सुन्दरि ॥ ७७ ॥ भवेदापत्सु यन्मित्रं तन्मित्रं शस्यते बुधैः ॥ कामार्ता चास्मि सुश्रोणि भव मे प्राणधारिणी ॥७८॥ यद्येनं मे विशालाक्षि भर्तारममरोपमम् ॥ अद्य नानयसि क्षिप्रं प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं शुभे ॥७९॥ उषाया वचनं श्रुत्वा चित्रलेखाब्रवीद्वचः ॥ श्रोतुमर्हसि कल्याणि वचनं मे शुचिस्मिते ॥८०॥ यथा बाणस्य नगरी रक्ष्यते देवि सर्वशः ॥ द्वारकापि तथा भीरु दुराधर्षा सुरैरपि ॥ ८१ ॥

हमारे प्रियमें सुखकी इच्छा कर उपाय विचारो. जिस उपायसे सिद्धार्थ होकर लौट सको ॥ ७७ ॥ जो आपदामें मित्र हो पंडितोंने उसीको मित्र कहा है, हे सुश्रोणि ! मैं कामार्त हूं तू मेरे प्राणोंकी धारनेवाली हो ॥ ७८ ॥ हे विशालनेत्रे ! जो अब देवताके तुल्य पराक्रमी मेरे भर्ताको तुम नहीं लाओगी तो मैं प्राण त्यागन कर दूंगी ॥ ७९ ॥ ऊषाके वचन सुनकर चित्रलेखा बोली; हे कल्याणि ! मेरे वचन सुनो ॥ ८० ॥ हे देवि ! जिस प्रकार सदा यह बाणकी नगरी रक्षित होती है. हे भीरु ! इसी प्रकार सुर असुरोंसे द्वारका भी धर्षित करनेके योग्य नहीं है ॥ ८१ ॥

लोहेके बने द्वारेके कपाटोंसे युक्त द्वारकापुरके रहनेवाले मनुष्य और यदुकुमारोंसे रक्षित है॥८२॥वह विश्वकर्माकी बनाई हुई चारों ओर जलसे व्याप्त है. श्रीकृष्णकी आज्ञासे घोर पुरुष उसकी रक्षा करते हैं ॥ ८३ ॥ चारों ओर पर्वतोंका परिकोटा खाईसे युक्त प्रवेश करनेके अयोग्य दुर्गम मार्गवाली है धातुमण्डित पर्वतोंके सात परकोटोंसेयुक्त है ॥ ८४ ॥ विना जाने प्राणी द्वारकापुरीमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं. मुझे अपनेको और विशेषकर पिताकी रक्षा कर ॥ ८५ ॥ ऊषा बोली; योगके प्रभावसे तू वहां प्रविष्ट हो सक्ती है बहुत विलापसे क्या है. जो इसमें कारण है सो सुनो ॥ ८६ ॥

अयस्मयप्रतिच्छन्ना गुप्तद्वारा च सा पुरी ॥ गुप्ता वृष्णिकुमारैश्च तथा द्वारकवासिभिः ॥ ८२ ॥ प्रान्ते सलिलसंयुक्ता विहिता विश्वकर्मणा ॥ रक्ष्यते पुरुषैर्घोरैः पद्मनाभस्य शासनात् ॥८३॥ शैलप्राकारपरिखादुर्गमार्गप्रवेशिनी ॥ सप्तप्राकाररचिता पर्वतैर्धातुमण्डितैः ॥८४॥ नच शक्यमविज्ञातैः प्रवेष्टुं द्वारकापुरीम् ॥ आत्मानं मां च रक्षस्व पितरं च विशेषतः ॥८५॥ उषोवाच ॥ तव योगप्रभावेण शक्यं तत्र प्रवेशनम् ॥ किं मे वहुविलापेन श्रूयतां सखि कारणम्॥८६॥अनिरुद्धस्य वदनं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ यद्यहं तन्नपश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥८७॥ दूतमासाद्य कार्याणां सिद्धिर्भवति भामिनि ॥ तस्माद्दौत्येन मे गच्छ जीवन्तीं मां यदीच्छसि ॥७८॥ यदि त्वं मे विजानासि सख्य प्रेम्णा च भाषितम् ॥ क्षिप्रमानय मे कान्तं तवास्मि शरणं गता ॥८९॥ जीवितस्य हि संदेहः क्षयं चैव कुलस्य च ॥ कामार्ता हि न पश्यन्ति कामिन्यो मदविक्लवाः ॥९०॥ प्रयत्नो युज्यते कार्येष्विति शास्त्रनिदर्शनम् ॥ ९१ ॥

अनिरुद्धका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान कान्तिवाला है जो मैं उसे न देखूंगी तो यमलोकको प्राप्त हो जाऊंगी ॥८७॥ हे भामिनि ! दूतत्वको प्राप्त होकर कार्यकी सिद्धि होतीहै. इससे जो मेरे जीनेकी इच्छा करे तो तू मेरी दूत बनकर जा ॥ ८८ ॥ जो प्रेमवचन बोलनेवाली तू मुझे अपनी सखी जानती है तो शीघ्र मेरे स्वामीको ला मैं तेरी शरणमें प्राप्त हूं ॥ ८९ ॥ जीवितका भी संदेह और कुलका नाश मदसे व्याकुल कामार्ता स्त्री नहीं देखती हैं ॥९०॥कार्यमें प्रयत्न करनेसेही सिद्धि है यह शास्त्रका निर्णय है ॥ ९१ ॥

हे विशालाक्षि ! द्वारकामें प्रवेश करनेको तू समर्थ है. हे भीरु ! मैंने तेरी स्तुति की है तू मेरा प्रिय कर ॥९२॥ चित्रलेखा बोली; तैंने सर्वथा अमृतभरी वाणीसे मेरी स्तुति की है और प्यारे वचन बोलकर मेरा उद्योग कराया है ॥९३॥ हे भीरु ! यह मैं बहुत शीघ्र द्वारकापुरीको जाती हूं. वृष्णि कुलमें उत्पन्न तुम्हारे भर्ताको अभी लाती हूं उस महाबाहु अनिरुद्धको द्वारकासे लाती हूं ॥ ९४ ॥ वह अशिव दानवोंका भय देनेहारा सत्यवचन कहकर मनके समान वेगवाली चित्रलेखा अन्तर्धान हो गई ॥९५॥ इधर ऊषा सखियोंके साथ चिन्ता करती हुई स्थित हुई. तीसरे मुहूर्तमें वह बाणके

त्वं च शक्ता विशालाक्षि द्वारकायाः प्रवेशने ॥ संस्तुतासि मया भीरु कुरु मे प्रियदर्शनम् ॥ ९२ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ सर्वथा संस्तुता तेऽहं वाक्यैरमृतसोदरैः कारिता च समुद्योगं प्रियैः कान्तैश्च भाषितैः ॥ ९३ ॥ एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारकां पुरीम् ॥ भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम् ॥ अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारकां पुरीम् ॥ ९४ ॥ सा वचस्तथ्यमशिवं दानवानां भयावहम् ॥ उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा ॥९५॥ सखीभिः सहिता ह्यूषा चिन्तयती तु सा स्थिता॥ तृतीये तु मुहूर्ते सा नष्टा बाणपुरात्तदा ॥९६॥ सखीप्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान् ॥ क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ ९७ ॥ कैलासशिखराकारैः प्रासादरुपशोभिताम् ॥ ददर्श द्वारकां रम्यां दिवि तारामिव स्थिताम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे चित्रलेखाया द्वारकागमनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ द्वारवतीं प्राप्य स्थिता सा भवनान्तिके ॥ प्रवृत्तिहरणार्थाय चित्रलेखा व्यचिन्तयत् ॥ १ ॥

पुरसे चलकर ॥९६॥ सखीके प्रियकी इच्छा किये तपस्वियोंको पूजन करती क्षणमात्रमें कृष्णपालित द्वारकामें प्राप्त हुई ॥९७॥ जो कैलासके समान शिखरवाले महलोंसे शोभित स्वर्गमें तारेके समान स्थित थी उसे देखने लगी ॥ ९८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि ऊषाहरणे चित्रलेखाया द्वारकागमनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले, द्वारकापुरीमें प्राप्त हो वह महलके निकट स्थित

हुई और हरण करनेका विधान चित्रलेखा सोचने लगी॥१॥इस प्रकार अर्थके निश्चयवाली बुद्धिको विचारती हुई वह जलके निकट ध्यान करते नारदमुनिको देखने लगी ॥२॥ चित्रलेखा उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई निकट जा प्रणाम कर नीचे मुख कर स्थित हुई ॥३॥ नारदजी आशीष देकर चित्रलेखासे बोले; तू यहां कैसे आई है यह मेरे जाननेकी इच्छा है ॥ ४ ॥ तब उन लोकपूजित दिव्य देवर्षि नारदसे हाथ जोडकर चित्रलेखा बोली ॥५॥ हे भगवन् ! सुनिये.मैं दूत होकर इस स्थानमें आई हूं.हे मुने ! अनिरुद्धके लेनेको जिस कारण आई हूं सो सुनो ॥६॥ शोणितपुर

अथ चिन्तयती सा तु बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयम् ॥ अपश्यन्नारदं तत्र ध्यायन्तमुदके मुनिम् ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु हर्षेणोत्फुल्ललोचना ॥ उपसृत्याभिवाद्याथ तत्रैवाधोमुखी स्थिता ॥ ३ ॥ नारदस्त्वाशिषं दत्त्वा चित्रलेखामथाब्रवीत् ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ देवर्षिमथ तं दिव्यं नारद लोकपूजितम् ॥ कृताञ्जलिपुटा भूत्वा चित्रलेखा त्वथाब्रवीत् ॥५॥ भगवन् श्रूयतां वाक्यं दौत्येनाहमिहागता ॥ अनिरुद्धं मुने नेतुं यदर्थं च शृणुष्व मे ॥६॥ नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः ॥ तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोषेति च विश्रुता ॥ ७ ॥ भगवन्सानुरक्ता च प्राद्युम्निं पुरुषोत्तमम् ॥ देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः ॥८॥ तं च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं विधत्स्व मे ॥ मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगरं शोणिताह्वयम् ॥९॥ प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाख्येया महामुने ॥ अवश्यं भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः ॥ बाणस्य सुमहान्संख्ये दिव्यो हि स महासुरः ॥१०॥ न च शक्तोऽनिरुद्धस्तं युद्धे जेतुं महासुरम् ॥ सहस्रबाहुमायान्तं जयेत्कृष्णो महाभुजः ॥ ११ ॥

नगरमें बाणनाम महाअसुर रहता है उसकीश्रेष्ठ कन्या ऊषानामसे विख्यात है॥७॥वह पुरुषश्रेष्ठ अनिरुद्धके ऊपर मोहित होगई है.पार्वतीके वरदानसे यही उसके पति नियत हुए हैं॥८॥उनके लेनेको मैं यहां आई हूं इसमें आप सिद्धि बनाइये मैं अनिरुद्धकोशोणितपुरमें ले जाऊंगी तो ॥ ९ ॥ यह वार्ता तुम श्रीकृष्णसे कह देना तो अवश्यकृष्णके साथ उसका विग्रह होगा वहभी असुर दिव्यबलयुक्त है इससे महासंग्राम होगा॥१०॥अनिरुद्ध उस

महाअसुरके जीतनेको समर्थ नहीं है महाभुज कृष्ण उसे संग्राममें जीत लेंगे ॥११॥ तुम्हारे निकट मैं जिस कारणसे आई हूं यह बात पुण्डरीकाक्ष कैसे जान सकेंगे ॥१२॥ हे मुने ! तुम्हारे प्रसादसे मुझे कृष्णसे भय नहीं है क्योंकि वेतत्त्वके ज्ञाता हैं परन्तु अनिरुद्धका हरण किस प्रकारसे हो ॥१३॥ वह महाबाहु क्रोधकर त्रिलोकीको जला सकते हैं और पौत्रके शोकसे शाप देकर वह मुझे भस्म कर देंगे ॥१४॥ हे भगवान् ! इसमें आप कोई उपाय विचारिये जिससे ऊषा अपने पतिको प्राप्त हो और मैंभी अभय हूं ॥ १५ ॥ यह वचन सुन नारदजी ऊषासे बोले;तू भयमत कर और मेरे वचन

भगवन्सन्निकर्षं ते यदर्थमहमागता ॥ कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिदं भवेत् ॥ १२ ॥ त्वत्प्रसादाच्च भगवन्न मे कृष्णाद्भयं भवेत् ॥ स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत् ॥१३॥ क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् ॥ पौत्रशोकाभिसंतप्तः शापेन स दहेत माम् ॥१४॥ तत्रोपायं च भगवन् चिन्तितुं वै त्वमर्हसि ॥ यथा ह्युषा लभेत्कान्तं मम चैवाभयं भवेत् ॥१५॥ इत्येवमुक्तो भगवांश्चित्रलेखां स नारदः ॥ उवाच स शुभं वाक्यं मा भैस्त्वमभयं शृणु ॥१६॥ त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते ॥ यदि युद्धं भवेत्तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते ॥१७॥ ममैष परमः कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे ॥ तद्दृष्ट्वा च महाप्रीतिः प्रवृत्तिश्च दृढा भवेत् ॥ १८ ॥ गृह्यतां तामसी विद्या सर्वलोकप्रमोहिनी ॥ कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्यां ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ एवमुक्ते वचने नारदेन महर्षिणा ॥ तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा ॥ २० ॥

सुन ॥१६॥ जब तू अनिरुद्धको ले जाकर कन्याके भवनमें प्रवेशित करेगी जो वहां युद्ध हो तो हे मन्दहास्यवाली!वहां मेरा स्मरण करना॥१७॥ हे मनोरमे ! युद्ध देखनेकी मेरी सदा बडी इच्छाहै उसके देखनेसे महाप्रीति और युद्ध करानेकी महाप्रवृत्ति होती है ॥१८॥ यह सब लोककी मोहनेहारी तामसी विद्या ग्रहण करो.हे देवी ! कृतकृत्य होगी. मैं तुमको यह विद्या दूंगा ॥ १९ ॥ यह वचन नारदमहर्षिके कहनेपर चित्रलेखा मनके

समान गमन करनेहारी वचन बोली बहुत अच्छा॥२०॥फिर ऋषिश्रेष्ठ नारदजीको अभिवादन कर आकाशमार्गसे वह अनिरुद्धके मन्दिरमें गई॥२१॥ द्वारकापुरीके बीचमें प्रद्युम्नके सुन्दर घरके समीपमें स्थित अनिरुद्धके घरमें प्रविष्टहुई॥२२॥जहाँ सुवर्णकी वेदी औरस्तम्भ थे.सुवर्ण और वैडूर्य मणि तोरणमें लगी थीं माला तहां जहां लटक रहीं जलसे पूर्ण घडे धरे हुए ॥२३॥ मयूरके कंठक समान ग्रीवा अनेक प्रासादोंके संचयोंसे युक्त मणि-प्रवालसे विस्तीर्ण देवगंधर्वोंसे शब्दायमान ॥ २४ ॥ सुखसे रहनेवाले अनिरुद्धका घर देखा तब सहसा उस महाभवनमें प्रवेश कर ॥२५॥ वह श्रेष्ठ

अभिवाद्य महात्मानमृषीणां नारदं वरम् ॥ सा जगामानिरुद्धस्य गृहं चैवान्तारिक्षगा ॥ २१ ॥ ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भवनं शुभम् ॥ तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह ॥२२॥ सौवर्णवेदिकास्तम्भं रुक्मवैडूर्यतोरणम् ॥ माल्यदामावसक्तं च पूर्णकुम्भोपशोभितम् ॥२३॥ बर्हिकण्ठनिभग्रीवं प्रासादैरेकसंचयैः ॥ मणिप्रवालविस्तीर्णं देवगन्धर्वनादितम् ॥२४॥ ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत्सुखम् ॥ ततः प्रविश्य सहसा भवनं तस्य तन्महत् ॥२५॥ तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः ॥ मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥ २६ ॥ क्रीडाविहारे नारीभिः सेव्यमानमितस्ततः ॥ पिबन्तं मधु माध्वीकं श्रिया परमया युतम् ॥२७॥ परासनगतं तत्र यथा चैडविलं तथा ॥ वाद्यते समतालं च गीयते मधुरं तथा ॥२८॥ नच तस्य मनस्तत्र तमे-वार्थमचिन्तयत् ॥ स्त्रियः सर्वगुणोपेता नृत्यन्ते तत्र तत्र वै ॥२९॥ न चास्य मनसस्तुष्टिं चित्रलेखा प्रपश्यति ॥ न चाभिरमते भोगैर्न चापि मधु सेवते ॥३०॥ व्यक्तमस्य हि तत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते ॥ इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा ॥३१॥

अप्सरा वहां अनिरुद्धको देखने लगी कि तारारूप स्त्रियोंके बीचमें चन्द्रमाकी समान शोभित हैं ॥२६॥ क्रीडाविहारमें स्त्रियोंसे चारों ओर सेवित और परमशोभासे युक्त माध्वीक नामा मधुपान करते हुए॥२७॥ कुबेरके समान सुन्दरशय्यापर स्थित सम ताल बजाये जातेऔर मधुर गाया जाता था ॥२८॥उनका मन वहां नहीं लगता था वह उसी ऊषाको ध्यान करते थे क्योंकि उसे स्वप्नमें देखा था वे सब गुणोंसे युक्त स्त्री जहां तहां नृत्य करती थीं ॥२९॥ चित्रलेखाने इनका मन संतुष्ट न देखा कि भोगोंमें मन नहीं लगता है न मधु सेवते हैं॥३०॥ जाना कि अवश्य इनका हृदय भी

उसी ओर लगा हुआ है यह वार्ता उसने बुद्धिसे निश्चय कर ली ॥ ३१ ॥ उनको परम स्त्रियोंके बीचमें इन्द्रध्वजकी समान देख बुद्धिमती चित्रलेखा मनमें विचारने लगी ॥ ३२ ॥ यह काम कैसे किया जाय और किस प्रकारसे मंगल हो यह विचार कर यशस्विनी चित्रलेखा अन्तर्धान हुई ॥ ३३ ॥ अनिरुद्धके सिवाय उन सबको मोहिनी विद्यासे आच्छादन किया फिर आकाशसे यह महलके ऊपर आई ॥ ३४ ॥ और मनोहर वचनसे अनिरुद्धसे बोली, उनकी ओर देख और अपना रूप दिखाकर॥ ३५ ॥ एकान्तदेशमें उनसे कहने लगी; हे यदुनन्दन ! तुम्हारे सब प्रकारसे कुशल है ॥ ३६ ॥

सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम् ॥ चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी ॥ ३२ ॥ कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति भवेदिति ॥ सान्तर्हिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी ॥ ३३ ॥ तामस्या छादयामास विद्यया शुभलोचना ॥ ततोऽन्तरिक्षादे-वाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता ॥३४॥ प्राद्युम्निं वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मानि दर्शनम् ॥३५॥ विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत् ॥ अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन ॥ ३६॥ अहस्तावत्प्रदोषो वा कश्चिद्गच्छति ते सुखम् ॥ शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत ॥ ३७ ॥ उषाया मम सख्यास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावं चापि भाविता ॥ ३८ ॥ बिभर्ति हृदये या त्वामुषया प्रेषिता त्वहम् ॥ रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः॥३९॥ त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनी परितप्यते ॥ यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्याति जीवितम् ॥ ४० ॥

तुम्हारी रात और दिन सुखसे बीतते हैं क्या ? हे रतिपुत्र ! आप हमारी विनय सुनिये ॥ ३७ ॥ मैं अपनी सखी उषाकी बात तत्त्वसे कहती हूं जो तुमने स्वप्नमें स्त्री देखी है और उसमें मन लगाया है ॥ ३८॥ जो उषा तुमको हृदयमें धारण करती है उसीने मुझको भेजा है वह वारंवार रोती जँभाती और स्वांस लेती है ॥ ३९ ॥ हे सौम्य ! वह कामिनी तुम्हारे दर्शनके निमित्त परितापित होती है. हे वीर ! यदि तुम उसके निकट जाओगे तो वह अपना जीवन धारण करेगी ॥ ४० ॥

विना तुम्हारे देखे वह अवश्य मर जायगी इसमें संदेह नहीं है यदुनंदन ! यदि सहस्र नारी तुम्हारे हृदयमें स्थित हैं ॥४१॥ तो इच्छा करनेवाली स्त्रीकाभी हस्त धारण करना चाहिये और पार्वतीने उसके मनके अनुसार तुमकोही उसका वर निर्मित किया है ॥ ४२ ॥ मैंने तुम्हारी तस्वीर खैंचकर उसे दी है उसीको देखकर वह जीती है आपको उसके मनोरथपर दया करनी चाहिये॥४३॥हे यदुनन्दन ! मैं और उषा आपके चरणोंमें अपना शिर रखती हैं. सुनिये आपसे मैं उसकी उत्पत्ति कुल और शीलको कहती हूं ॥४४॥ उसकी स्थिति प्रकृति और पिताका नामभी कहती हूं वैरोचनिका पुत्र महाबली बाणासुर

अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः ॥ यदि नारीसहस्रं ते हृदिस्थं यदुनन्दन ॥ ४१ ॥ स्त्रियाः कामयमानायाः कर्तव्या हस्तधारणा ॥ त्वं च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या मनोरथः ॥ ४२ ॥ चित्रपट्टं मया दत्तं त्वच्चिह्नं दृश्य जीवति ॥ सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे ॥ ४३ ॥ उषा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन ॥ श्रूयतां चोद्भवस्तस्याः कुलं शीलं च यादृशम् ॥ ४४ ॥ संस्थानं प्रकृतिं चास्याः पितरं च ब्रवीमि ते ॥ वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुरः ॥ ४५ ॥ स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता ॥ त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मयं चापि जीवितम् ॥ ४६ ॥ मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न संशयः ॥ त्वत्संगमात्सा सुश्रोणी प्राणान् धारयते शुभा ॥ ४७ ॥ चित्रलेखावचः श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्तः शृणु शोभने ॥ ४८ ॥ रूपं कान्तिं मतिं चैव संयोगं रुदितं तथा ॥ एवं सर्वमहोरात्रं मुह्यामि परिचिन्तयन् ॥ ४९ ॥ यद्यहं समनुग्राह्यो यदि सख्यं त्वमिच्छसि ॥ नयस्व चित्रलेखे मां द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम् ॥ ५० ॥

है ॥४५॥ वह शोणितपुरका राजा है उसकी कन्या आपकी इच्छा करती है तुम्हारेमें मन लगाये हुए तुम्हारेही आधीन उसका जीवन है ॥४६॥ यह निश्चय मनोरथ किया वर देवीने दिया है तुम्हारे संगसे वह सुश्रोणि प्राणोंको धारण करती है ॥४७॥ चित्रलेखाके वचन सुनकर अनिरुद्ध कहने लगे. हे शोभने ! मैंनेभी उसको स्वप्नमें देखा है सो मुझसे सुनो ॥ ४८ ॥ उसका रूप कान्ति संयोग तथा रुदन यह सब दिन रात विचारता हुआ मैं मोहित होता हूं ॥ ४९ ॥ जो मेरे ऊपर उसकी अनुग्रह है और तू सख्यताकी इच्छा करती है. हे चित्रलेखे ! मुझे तू वहां ले चल मैं उसके देख-

नेकी इच्छा करता हूं ॥ ५० ॥ प्रियाके संगमकी इच्छा करता हुआ मैं कामके संतापसे संतप्त हूं मैं हाथ जोडता हूं कि तुम हमारे स्वप्नको सत्य करो ॥ ५१ ॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ चित्रलेखा यह उनके श्रेष्ठ वचन सुन बोली; जो आपने मुझे सखी माना तो मेरा परिश्रम सफल हुआ ॥ ५२ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार चित्रलेखा अनिरुद्धके मनोरथको जानकर प्रसन्न हो बोली बहुत अच्छा ॥५३॥ महलकी स्त्रियोंके बीच उनको अन्तर्धान करके युद्धमें दुर्मद अनिरुद्धको लेकर वह आकाशमार्गसे ऊपर चली ॥ ५४ ॥ वह सिद्ध चारणोंसे सेवित मार्गको प्राप्त हो मनके समान वेग किये सहसा

कामसन्तापसन्तप्तः प्रियासङ्गमकामतः ॥ एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः सत्यं स्वप्नं कुरुष्व मे ॥ ५१ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सराः सफलोऽद्य मम क्लेशः सख्या मे यत्प्रयाचितम् ॥ ५२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ईप्सितं तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी ॥ चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं कृत्वा चान्तर्हितं तदा ॥ उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युम्निं युद्धदुर्मदम् ॥ ५४ ॥ सा तमध्वा नमागम्य सिद्धचारणसेवितम् ॥ सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ॥ ५५ ॥ अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी ॥ अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति ॥ ५६ ॥ उषाया दर्शयच्चैनं चित्राभरणभूषितम् ॥ चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम् ॥ ५७ ॥ तत्रोषां विस्मितां दृष्ट्वा हर्म्यस्थां सखिसन्निधौ ॥ प्रवेशयामास च तं तदा सा स्वगृहं ततः ॥ ५८ ॥ प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वार्थकोविदा ॥ सा हर्म्यस्था तमर्घेण यादवं समपूजयत् ॥ ५९ ॥ चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियाख्यानैरतोषयत ॥ त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखां भयातुरा ॥ ६० ॥

शोणितपुरमें प्रविष्ट हुई ॥ ५५ ॥ वह कामरूपिणी मायासे उसको छिपाये महाभागवाली ऊषाके स्थानको चली ॥ ५६ ॥ और चित्र आभरणोंसे युक्त इनको उषाके प्रति दिखाया, चित्र अम्बर धारण किये देवरूप उनको दिखाया ॥ ५७ ॥ सखियोंके बीचमें उषाको विस्मित देखकर तब वह उनको अपने घरमें प्रवेश कराती हुई ॥ ५८ ॥ वह अपने प्रियको देख सफल मनोरथ होनेसे बहुत प्रसन्न हुई और महलमें पहुँचे यादवनंदनको उसने अर्घ देकर पूजन किया ॥ ५९ ॥ चित्ररेखाको हृदयसे लगाय प्रियवचन कह बहुत संतुष्ट किया और भयको प्राप्त हो बहुत शीघ्र चित्रलेखासे

बोली ॥ ६० ॥ हे काम करनेमें चतुर ! वह उपाय गुप्तरीतिसे करो क्योंकि छिपाकर वह कार्य करनेमें मंगल है और प्रगट होनेमें जीवनका क्षय है ॥ ६१ ॥ यह कहकर शीघ्रता करती हुई वह गुह्यदेशमें अलंकृत हो अपने स्वामीके साथ महाभयसे स्थित हुई ॥ ६२ ॥ चित्रलेखा वचन बोली; हे सखि ! तू निश्चय सुन कि पुरुषकारसे दैवबल नाश हो जाता है ॥ ६३ ॥ यदि देवीका प्रसाद तुम्हारे प्रति अनुकूल होगा तो जो बात हम मायाकरके छिपावेंगी उसे कोई मनुष्य जान नहीं सकेगा ॥ ६४ ॥ सखीके यह वचन सुन वह स्थिर हो बोली ऐसाही हो यह वचन अनिरुद्धके प्रति कहा ॥ ६५ ॥

सखीदं वै कथं कार्यं गुह्यं कार्यविशारदे ॥ गुह्ये कृते भवेत्स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता ॥ कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ॥ ६२ ॥ चित्रलेखाब्रवीद्वाक्यं शृणु त्वं निश्चयं सखि ॥ कृतं पुरुषकारेण दैवं नाशयते सखि ॥ ६३ ॥ यदि देव्याः प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति ॥ अद्य मायाकृतं गुह्यं न कश्चिज्ज्ञास्यते नरः ॥ ६४ ॥ सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना ॥ एवमेतादिति सानिरुद्धमिदं वचः ॥ ६५ ॥ दिष्ट्या स्वप्नगतश्चोरो दृश्यते सुभगः पतिः ॥ यत्कृते तु वय खिन्ना दुर्लभप्रियकांक्षया ॥ ६६ ॥ कच्चित्तव महाबाहो कुशलं सर्वतोगतम् ॥ हृदयं हि मृदु स्त्रीणां तेन पृच्छाम्यहं तव ॥ ६७ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा उषायाः श्लक्ष्णमर्थवत् ॥ सोऽप्याह यदुशार्दूलः शुभाक्षरतरं वचः ॥ ६८ ॥ हर्ष-विप्लुतनेत्रायाः पाणिनाश्रु प्रमृज्य च ॥ प्रहस्य सस्मितं प्राह हृदयग्राहकं वचः ॥ ६९ ॥ कुशलं मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि ॥ त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते ॥ ७० ॥ अदृष्टपूर्वश्च मया देशोऽयं शुभदर्शने ॥ निशि स्वप्ने यथा दृष्टः सकृत्कन्यापुरे तथा ॥ ७१ ॥

भागसेही स्वप्नका चोर पतिरूपमें सन्मुख दीखता है जिस दुर्लभ प्रियपतिके पानेकी इच्छासे मैं महाखिन्न हुई थी ॥ ६६ ॥ हे महाबाहो ! आपके यहां सब प्रकारसे कुशल है स्त्रियोंका हृदय मृदु होता है इस कारण मैं तुमसे पूछती हूं ॥ ६७ ॥ यह उषाके मनोहर अर्थ युक्त वचन सुनकर वह यदुशार्दूल अत्यन्त मनोहर वचन बोले ॥ ६८ ॥ उस हर्षसे जल भरे नेत्रवालोंके मुखको हाथसे पोंछकर प्रसन्न हो हँसते हुए हृदयग्राहक वचन बोले ॥ ६९ ॥ हे वरारोहे ! सर्वत्र मित बोलनेवाली तुम्हारे प्रसादसे मेरे सब कुशल हो मैं तुम्हारे प्रति प्रियवार्ता कहता हूं ॥ ७० ॥ हे शुभदर्शने ! मैंने यह देश कभी देखा नहीं है. रातमें जो

स्वप्नमें अनेकों कन्यापुरमें देखा था ॥ ७१ ॥हे भीरु ! सो मैं तुम्हारे प्रसादसे यहां आगया हूं वह रुद्रपत्नीके वचन मिथ्या नहीं होंगे ॥ ७२ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारे प्रियके निमित्त देवीसे तुम्हारी प्रीति जानकर मैं तुम्हारे निकट प्राप्त हुआ हूं.अब तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो म शरणको प्राप्त हूं॥७३॥ यह कहकर शीघ्रता करती हुई गुह्यदेशमें अलंकृत हुई.वह पतिके साथ संयुक्त हो महाभयसे स्थित हुई ॥७४॥ तब उन दोनोंने अपना विवाह गन्धर्वरीतिसे किया और परस्पर स्थित हो चकवा चकवीक समान रमण करने लगे ॥ ७५ ॥ वह वर स्त्री पतिके साथ बडे प्रसन्नतासे प्रसन्न हुई वह दिव्य

एवमेवमहं भीरु त्वत्प्रसादादिहागतः ॥ न च तद्रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति ॥ ७२ ॥ देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि ॥ अनुप्राप्तोऽस्मि चाद्यैव प्रसीद शरणं गतः ॥७३॥ इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता ॥ कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ॥७४॥ ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः ॥ अन्योन्यं रेमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा ॥७५॥ पतिना सानिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना ॥ कान्तेन सह संयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ॥७६॥ रममाणानिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा ॥ तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः ॥ ७७ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ॥ ७८ ॥ ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदितं द्रुतम् ॥ यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ॥ ७९ ॥ ततः किङ्करसैन्यं तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा ॥ बलेः पुत्रेण वीरेण बाणेनामित्रघातिना ॥ ८० ॥ गच्छध्वं सहिताः सर्वे हन्यतामेव दुर्मतिः ॥ येन नः कुलचारित्रं दूषितं दूषितात्मना ॥ ८१ ॥

वस्त्रोंमें सुगन्ध लगाये पतिसे युक्त हुई॥७६॥तब वह अविज्ञात रीतिसे अनिरुद्धके साथ रमण करने लगी उस क्षणके प्राप्त होनेमें वह यदुवंशियोंमें बली ॥७७॥ दिव्य माला वस्त्र धारे दिव्य माला गंध लगाये उषाके सहित बाणासुरके रक्षकोंने उनको जाना ॥ ७८ ॥ तब उन दूत पुरुषोंने जानकर बाणासुरसे यह बात निवेदन करनेको पयान किया जैसा कि उन्होंने कन्याका अतिक्रम देखा था॥७९॥तब यह सुनकर उस भीमकर्माने किंकरोंकी महासेनाको आज्ञा दी वह बलिका पुत्र वीर शत्रुघाती बोला ॥८०॥ तुम सब जाकर उस दुर्मतिको शीघ्र मार डालो जिस पापिष्ठने हमारे कुलचारि-

त्रको दूषित किया है ॥८१॥ उषाके धर्षित करनेसे उसने हमारे कुलकी धर्षना की जिसने नहीं दिये पदार्थकोभी ग्राह होकर भक्षण किया॥८२॥ इस दुरात्माका बल वीर्य और ढीठपन तो देखो.जो हमारे पुरमें प्रवेश कर वह मूर्ख अन्तःपुरमेंभी आया ॥ ८३ ॥ यह कह उन किंकरोंको बहुत शीघ्रतासे प्रेरणा की वह उनकी आज्ञा पाय तैयार होकर चले वे महाबली अनिरुद्धके स्थानको चले ॥ ८४ ॥ नाना प्रकारके शस्त्र उठाय नाना रूप किये भयंकर क्रोध किये दानव अनिरुद्धके मारनेकी इच्छासे चले ॥८५॥ वह यशस्विनी बाणपुत्री उस सेनाको देखकर अनिरुद्धके वधसे भीत हो

उषायां धर्षितायां हि कुलं नो धर्षितं महत् ॥ असंप्रदत्तां योऽस्माभिः स्वयंग्राहमधर्षयत् ॥ ८२ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धार्ष्ट्यं च दुर्मतेः ॥ यः पुरं भवनं चेदं प्रविष्टो न स बालिशः ॥ ८३ ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तांस्तु किङ्करांश्चोदयद्भृशम् ॥ ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसंनद्धा विनिर्ययुः ॥ यत्रानिरुद्धो ह्यभवत्तत्रागच्छन्महाबलाः ॥ ८४ ॥ नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयंकराः ॥ दानवाः समभिक्रुद्धाः प्राद्युम्निवधकांक्षिणः ॥८५॥ रुरोद तद्बलं दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना ॥ प्राद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥८६॥ ततस्तु रुदतीं दृष्ट्वा तां सुतां मृगलोचनाम् ॥ हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥ ८७ ॥ अभयं तेऽस्तु सुश्रोणि मा भैस्त्वं हि मयि स्थिते ॥ संप्राप्तो हर्षकालस्ते नेहास्ति भयकारणम् ॥८८॥ कृत्स्नोऽयं यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि ॥ आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम् ॥८९॥ तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाभ्यागच्छतस्ततः ॥ सहसैवोत्थितः श्रीमान्प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन् ॥ ९० ॥

रुदन करने लगी ॥८६॥ उस मृगलोचनी बाणकन्याको रुदन करते देखकर जो हा प्रिय कहकर रुदन करती थी उससे अनिरुद्ध बोले ॥ ८७ ॥ हे सुश्रोणि ! अभय हो मेरे रहते रुदन करनेकी कोई बात नहीं है.यह तो प्रसन्नताका समय है इसमें भय करनेकी क्या बात है ॥८८॥ हे यशस्विनि ! यदि सम्पूर्णभी बाणासुरकी सेना आ जाय तो मुझे कुछ भय नहीं होगा तुम मेरा पराक्रम देखो ॥८९॥ उसकी सेनाके आनेके शब्दको सुनकर अनि-

रुद्ध यह कहकर तत्काल उठ खडे हुए कि यह क्या है ॥ ९० ॥ तब उन्होंने अनेक प्रकारके प्रहारोंसे उद्यत सेनाको देखा कि उस घरको चारों ओरसे घेर कर स्थित है ॥ ९१ ॥ तब यह शीघ्रतासे उससमय सेनाके निकटगये और अपने बलमें स्थित होक्रोधके मारे दातोंसे दांतोंको काटने लगे ॥ ९२ ॥ तब बाणासुरकी सेनाका युद्धशब्द सुनकर उस चित्रलेखाने नारदजीका स्मरण किया ॥ ९३ ॥ तब एक निमेषमात्रमें मुनिश्रेष्ठ नारदजी प्राप्त हुए जब कि चित्रलेखाने शोणितपुरमें स्मरण किया ॥ ९४ ॥ तब आकाशमें स्थित हो नारदजी बोले;हे सौम्य ! किसी प्रकारसे

अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ स्थितं समं ततस्तत्र परिवार्य गृहं महत् ॥९१॥ ततोऽभ्यगच्छत्त्वरितो यत्र तद्वेष्टितं बलम् ॥ क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद्दशनच्छदम् ॥ ९२ ॥ ततो योद्धुमपोढानां बाणेयानां निशम्य तु ॥ सा चित्रलेखास्मरत नारदं देवदर्शनम् ॥ ९३ ॥ ततो निमेषमात्रेण संप्राप्तो मुनिपुङ्गवः ॥ स्मृतोऽथ चित्रलेखायाः पुरं शोणितसाह्वयम् ॥ ९४ ॥ अन्तरिक्षे स्थितस्तत्र सोऽनिरुद्धमथाब्रवीत् ॥ मा भयं स्वस्ति ते वीर प्राप्तोऽस्म्यद्य पुरं तव ॥ ९५ ॥ ततश्च नारदं दृष्ट्वा सोऽभिवाद्य महाबलः ॥ प्रहृष्टमानसो भूत्वा युद्धार्थमभिवर्तत ॥ ९६ ॥ ततस्तेषां स्वनं श्रुत्वा सर्वेषामेव गर्जताम् ॥ सहसैवोत्थितः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ९७ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संदष्टौष्ठं महाभुजम् ॥ प्रासादाच्चावरोहन्तं भयार्ता विप्रदुद्रुवुः ॥ ९८ ॥ अन्तःपुरद्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम् ॥ वधाय तेषां चिक्षेप नानायुद्धविशारदः ॥ ९९ ॥

भय मत करो. मैं तुम्हारे पुरको अभी जाता हूं तुम्हारा मंगल हो ॥ ९५ ॥ तब वह महाबली नारदजीको देख उन्हें अभिवादन कर प्रसन्न मनसे युद्ध करनेको उद्यत हुए ॥ ९६ ॥ तब उन युद्ध करनेवालोंके शब्द सुनकर और गर्जन सुनकर वह वीर अर्दित हुए हाथीके समान तत्काल उठकर खडा हुआ ॥ ९७ ॥ उन होठ काटते हुए महाभुजावालेको आता देखकर कि महलपरसे उतरते हैं वह सेना डरके मारे पलायन करने लगी ॥ ९८ ॥ तब अन्तःपुरके द्वारेमें आय महाभयंकर परिघको उठाय अनेक प्रकारके युद्ध जाननेवालोंमें चतुरउन्होंने उनके वधके निमित्त शूलको फेंका ॥९९॥

वे सब बाणवर्षा गदा और मूसलोंसे असि शक्ति और शूलोंसे उनको मारने लगे ॥१००॥ वह चारों ओर नाराच और परिघसे ताडित होने लगे, शस्त्र चलानेमें चतुर क्रोधित दानवोंके प्रहार करने परभी ॥१॥ वह अनिरुद्ध क्षुभित न हुए ग्रीष्मकालीन मेघके समान शब्द करते हुए घोर परिघ ले उनके बीचमें स्थित हुए और मेघरूपी दानवोंके बीचमें सूर्यके समान विचरने लगे ॥ २ ॥ दण्ड और कृष्ण अजिन वस्त्र धारे प्रसन्नचित्त नारदजी अनिरुद्धको धन्य धन्य कहने लगे ॥३॥ वे सब दैत्य उन महापराक्रमीके परिघसे ताडित हो वर्षाकालके मेघ पवन लगनेसे जैसे नष्ट होते हैं वैसे भाग

ते सर्वे बाणवर्षैश्च गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ असिभिः शक्तिभिः शूलानजघ्नू रणगोचरे ॥ १०० ॥ स हन्यमानो नाराचैः परिघैश्च समन्ततः ॥ दानवैः समिति क्रुद्धैः प्राद्युम्निः शस्त्रकोविदैः ॥१॥ नाक्षुभ्यत्सर्वभूतात्मा नदन्मेघ इवोष्णगे ॥ आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत ॥ सूर्यो दिवि चरन्मध्ये मेघानामिव सर्वशः ॥२॥ दण्डकृष्णाजिनधरो नारदो हृतमानसः॥साधु साध्विति वै तत्र सोऽनिरुद्धमभाषत ॥ ३ ॥ ते हन्यमाना रौद्रेण परिघेनामितौजसा ॥ प्राद्रवन्त भयात्सर्वे मेघा वातेरिता यथा॥ ४ ॥ विद्राव्य दानवान्वीरः परिघेन सुविक्रमः ॥ अनिरुद्धो रणे हृष्टः सिंहनादं ननाद च ॥ घर्मान्ते तोयदे व्योम्नि नदन्निव महास्वनः ॥ ५ ॥ तिष्ठध्वमिति चुक्रोश दानवान्युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥ प्राद्युम्निर्व्यहनच्चापि सर्वान् शत्रुनिबर्हणः ॥ तेन ते समरे सर्वे हन्यमाना महात्मना ॥७॥ यतो बाणस्ततो भीता ययुर्युद्धपराङ्मुखाः ॥ ततो बाणसमीपस्थाः श्वसन्तो रुधिरोक्षिताः ॥८॥ न शर्म लेभिरे दैत्या भयविक्लवचेतसः ॥ मा भैष्ट मा भैष्ट इति राज्ञा ते तेन चोदिताः ॥ ९ ॥

गये ॥४॥ वह बली परिघसे दानवोंको भगाकर बडे प्रसन्न हो युद्धमें सिंहनाद करने लगे.जैसे वर्षाकालमें मेघ आकाशमें शब्द करते हैं ॥ ५ ॥ तब वह युद्धमें दुर्मद दानवोंसे बोले; खडे रहो ॥ ६ ॥ शत्रुघाती प्राद्युम्नि उन सबको मारने लग उन महात्मासे वे महात्मा ताडित होकर ॥ ७ ॥ युद्धसे पराङ्मुख हो बाणासुरके निकट गये तब वे रुधिर चुआते श्वास लेते ॥ ८ ॥ व्याकुल होगये और उनको मंगलकी प्राप्ति न हुई तब राजा बाणने

उनसे कहा, किसी प्रकार मत भय करो॥९॥दे दानवश्रेष्ठो ! आस छोडकर तुम युद्ध करो फिर उन भयसे व्याकुल नेत्रवालोंसे बाणासुर बोला॥११०॥ यह क्या है जो तुम अपना लोकविख्यात यश दूर करके क्लीब पुरुषोंकी समान व्याकुल हो गये हो ॥११॥ वह क्या भय है जो अनेक तुम एकके भयसे व्याकुल होते हो. सब तुम श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न युद्ध करनेमें चतुर हो ॥ १२ ॥ अब युद्धकी सहायवाले तुमसे मेरा कुछ कार्य नहीं है. तुम नपुंसकके समान बोलते हो मेरे समीपसे दूर हो ॥१३॥ इस प्रकार वह बली उनको वाणीसे त्रास देता हुआ औरभी सहस्रों वीरोंको युद्धमें जानेकी

त्रासमुत्सृज्य चैकस्था युद्ध्यध्वं दानवर्षभाः ॥ तानुवाच पुनर्बाणो भयविस्रस्तलोचनाम् ॥ ११० ॥ किमिदं लोकविख्यातं यशः उत्सृज्य दूरतः ॥ भवन्तो यान्ति वैक्लव्यं क्लीबा इव विचेतसः ॥११॥ कोऽयं यस्य भयत्रस्ता भवन्तो यान्त्यनेकशः ॥ कुलापदेशिनः सर्वे नानायुद्धविशारदाः ॥१२॥ भवद्भिर्न हि मे कार्यं युद्धसाहाय्यमद्य वै ॥ अब्रवीद्ध्वंसतेत्येवं मत्समीपाच्च नश्यत॥१३॥ अथ तान्वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयन्बहुधा बली ॥ व्यादिदेश रणे शूरानन्यानयुतशः पुनः ॥ १४ ॥ प्रमाथमणभूयिष्ठं व्यादिष्टं तस्य निग्रहे ॥ अनीकं सुमहारौद्रं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ १५ ॥ अथान्तरिक्षे बहुधा विद्युद्भिरिवाम्बुदैः ॥ बाणानीकैः समभवद्व्याप्तं संदीप्तलोचनैः ॥ १६ ॥ केचित्क्षितिस्थाः प्राक्रोशन्गजा इव समन्ततः ॥ अन्तरिक्षे व्यराजन्त घर्मान्ते इव तोयदाः ॥ १७ ॥ ततस्तत्सुमहत्सैन्यं समेतमभवत्पुनः ॥ तिष्ठ तिष्ठेति च तदा वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥ १८ ॥ अनिरुद्धो रणे वीरः स च तानभ्यवतर्त ॥ तदाश्चर्यं समभवद्यदेकस्तु समागतः ॥ १९ ॥

आज्ञा देने लगा॥१४॥ और बडे बडे प्रमथगणोंको उनके निग्रहकी आज्ञा दी और अनेक प्रहार करनेमें उद्यत सेनाको आज्ञा दी ॥ १५ ॥ उस समय आकाशमें मेघबिन्दुके समान चारों ओरसे बाणासुरकी सेना व्याप्त हो गई और उनके नेत्र चमकने लगे ॥ १६ ॥ कोई पृथ्वीमें स्थित हो हाथीकी समान शब्द करने लगे और उष्णतासे व्याप्त मेघकी समान आकाशमें विराजमान होने लगे ॥१७॥ तब वह फिर बडी सेना एकत्र हो गई. खडे हो खडे हो यही वार्ता चारों ओरसे सुनाई आने लगी ॥१८॥ वह अनिरुद्ध वीरयुद्धमें उनके सन्मुख हुआ जब यह एकयुद्धके निमित्त स्थित

हुए तब बडा आश्चर्य हुआ ॥१९॥ यह युद्धमें महाबली दानवोंके साथ युद्ध करने लगे.उनके परिघ और तोमरोंको ग्रहण करने लगे ॥ १२० ॥ वह महाबली युद्धमें उन्हींसे सेनाको मारने लगा फिर परिघको छोड असि ग्रहण कर युद्धभूमिमें ॥ २१ ॥ वह एकही समर स्थानमें भ्रमण करने लगे. भ्रांत उद्भ्रान्त आदिको कूद कूदकर मारने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे विचारते हुए वह एकही सहस्रके समान दीखने लगे ॥ २३ ॥ मुख फैलाये हुए कालके समान युद्धमें दीखने लगे तब उनसे ताडित हो सेनाके लोग रुधिरसमूहसे व्याप्त हो गये ॥ २४ ॥ और भग्न

अयुध्यत महावीर्यैर्दानवैः सह संयुगे ॥ तेषामेव च जग्राह परिघांस्तोमरानपि ॥१२०॥ तैरेव च तदा युद्धे तान् जघान महाबलः॥ पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्द्धनि ॥ २१ ॥ स तेन विचरन्मार्गानेकः शत्रुनिबर्हणः ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम् ॥ २२ ॥ इति प्रकारान्द्वात्रिंशद्विचरन्नाभ्यदृश्यत ॥ एकं सहस्रशश्चात्र ददृशू रणमूर्धनि ॥ २३ ॥ क्रीडन्तं बहुधा युद्धे व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ततस्तेनाभिसंतप्त रुधिरौघपरिलुप्ताः ॥२४॥ पुनर्भग्ना प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः॥ गजवाजि-रथौघैस्ते चोह्यमानाः समन्ततः ॥ २५ ॥ कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः ॥ एकैकस्योपरि तदा तेऽन्योन्यं भयपी-डिताः ॥२६॥ वमन्तः शोणितं जग्मुर्विषादाद्विमुखा रणे ॥ न बभूव पुरा देवैर्युद्ध्यतां तादृशं भयम् ॥ २७ ॥ यादृशं युद्ध्य-मानानामनिरुद्धेन संयुगे ॥ केचिद्वमन्तो रुधिरं ह्यपतन्वसुधातले ॥ २८ ॥ दानवा गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणयः ॥ ते बाण-मुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुलाः ॥ १२९ ॥

॥३६२॥

होकर फिर बाणासुरके निकट गये.वे चारों ओर हाथी घोडे और रथोंपर चढे हुए ॥ २५ ॥ आर्त शब्द करते दिशाओंमें पलायन कर गये. तब वे भयभीत हो एकएकके ऊपर ॥ २६ ॥ रुधिर वहाते गिरने लगे और परम विषादसे युद्धसे पलायन करने लगे पहले युद्धमें देवतोंसेभी उन्हें ऐसा भय नहीं हुआ था ॥ २७ ॥ जैसा युद्धमें अनिरुद्धसे भय हुआ. कोई रुधिर वहाते पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २८ ॥ गदा शूल हाथमें लिये पर्वत·

शृंगके समान वे दानव बाणादि सबको छोडकर युद्धमार्गसे पलायन कर गये॥२९॥ विशाल आकाशतलमें वे दानव निर्जित हो गये.उस वाहिनीको अत्यन्त नष्ट देखकर॥१३०॥बाण ऐसे क्रोधसे प्रज्वलित हो गया जैसे यज्ञमें अग्नि उस समयआकाशमेंसे चारों ओरसे साधुवाद करते हुए ॥३१॥ उस युद्धमें अनिरुद्धसे प्रसन्नहो नारदजी नृत्य करने लगे. इसी समय बाणासुरको परम क्रोध हुआ ॥३२॥और कुंभांडको वह महाबली रथके ऊपर बैठाकर जहां युद्धमें असि लिये अनिरुद्ध थे वहां गया॥३३॥पट्ट असि गदा शूल फरसे लिये हुए वह सहस्रों सेनाके साथ ऐसा शोभित

विशालमाकाशतलं दानवा निर्जितास्तदा ॥ निःशेषभग्नां महतीं दृष्ट्वा तां वाहिनीं तदा ॥ १३० ॥ बाणः क्रोधात्प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्ततः ॥ ३१ ॥ नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य संयुगे ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव बाणः परमकोपनः ॥ ३२ ॥ कुम्भाण्डसंगृहीतं तु रथमास्थाय वीर्यवान् ॥ ययौ यत्रानिरुद्धो वै उद्यतासी रथे स्थितः ॥ ३३ ॥ पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान् ॥ बभौ बाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥ ३४॥ बद्धगोधाङ्गुलित्रैश्च बाहुभिः स महाभुजः ॥ नानाप्रहरणोपेतः शुशुभे दानवोत्तमः ॥ ३५ ॥ सिंहनादं नदन् क्रुद्धो विस्फारितमहाधनुः ॥ अब्रवीत्तिष्ठ तिष्ठेति क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३६ ॥ वचनं तस्य संश्रुत्य प्राद्युम्निरपराजितः बाणस्य वदनं संख्ये समुद्वीक्ष्य ततोऽहसत् ॥३७॥ किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ऋष्यचर्मावनद्धाङ्गं दशनल्वं महारथम् ॥३८॥ तस्य वाजिसहस्रं तु रथे युक्तं महात्मनः ॥ पुरा देवासुरे युद्धे हिरण्यकशिपोरिव ॥ ३९ ॥

हुआ जैसे ध्वजाके सहित इन्द्र ॥ ३४ ॥ गोधा अंगुलीमें बांधे और बाहुओंके सहित वह महाभुजावाला अनेक प्रकारके प्रहारोंसे युक्त हो वह दानव शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ क्रोध कर सिंहनाद करता हुआ अपना महाधनुष फैलाये हुए क्रोधसे लाल नेत्र कर खडे हो २ कह कर बोला ॥ ३६ ॥ अपराजित अनिरुद्ध उसके यह वचन सुन और युद्धमें बाणका मुख देखकर हँसे ॥ ३७ ॥ सौ किंकिणीके शब्दसे युक्त लाल ध्वजा और पताकासे युक्त ऋष्यमृगके चर्मसे बंधा चार सौ हाथके प्रमाणवाला ॥ ३८ ॥ महारथ जिसमें सहस्र घोडे जुते थे जैसे पहले देवासुरके युद्धमें हिरण्यकश्यपके

था ॥ ३९ ॥ यदुश्रेष्ठने उस दानवको आता हुआ देखा तब युद्धमें प्रसन्न हो तेजसे पूर्ण हुआ ॥ १४० ॥ असि और चर्म धारे वह वीर संग्रामकी लालसासे स्थित हुआ जैसे पहले नृसिंह आदिदैत्यके वधमें उद्यत हुए थे ॥ ४१ ॥ उन खड्ग चर्मधारी पैदलको आता हुआ देखकर बाणासुर ॥ ४२ ॥ प्राद्युम्निके वधकी इच्छासे बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि वखतरहीन खड्ग हाथमें लिये थे ॥ ४३ ॥ उसे अजेयभी मानकर युद्धमें सन्मुख स्थित हुआ बाणासुर संग्रामजित् और महाबली था वह युद्धमें अनिरुद्धको देख ॥ ४४ ॥ बोला इसको पकड लो मार डालो संग्राममें प्राद्युम्नि उसके यह

तमापतन्तं ददृशे दानवं यदुपुङ्गवः ॥ संप्रहृष्टस्ततो युद्धे तेजसा चाप्यपूर्यत ॥ ४० ॥ असिचर्मधरो वीरः स्वस्थः सङ्ग्रामलालसः ॥ नरसिंहो यथा पूर्वमादिदैत्यवधोद्यतः ॥ ४१ ॥ आपतन्तं ददर्शाथ खड्गचर्मधरं तदा खड्गचर्मधरं तं तु दृष्ट्वा बाणः पदातिनम् ॥ ४२ ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे प्राद्युम्निवधकांक्षया ॥ तनुत्रेण विहीनश्च खड्गपाणिश्च यादवः ॥ ४३ ॥ अजेय इति तं मत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबलः ॥ ४४ ॥ वाचं चोवाच संक्रुद्धो गृह्यतां हन्यतामिति ॥ वाचं च ब्रुवतस्तस्य श्रुत्वा प्राद्युम्निराहवे ॥ ४५ ॥ बाणस्य ब्रुवतः क्रोधाद्धसमानोऽभ्युदैक्षत ॥ उषां भयपरित्रस्तां रुदतीं तत्र भामिनीम् ॥ ४६ ॥ अनिरुद्धः प्रहस्याथ समाश्वास्य च तां स्थितः ॥ अथ बाणः शरौघाणां क्षुद्रकाणां समन्ततः ॥४७॥ चिक्षेप समरे क्रुद्धो ह्यनिरुद्धवधेप्सया ॥ अनिरुद्धस्तु चिच्छेद कांक्षंस्तस्य पराजयम् ॥ ४८ ॥ ववर्ष शरजालानि क्षुद्रकाणां समन्ततः ॥ बाणोऽनिरुद्धशिरसि कांक्षंस्तस्य रणे वधम् ॥ ४९ ॥

वचन सुनकर ॥ ४५ ॥ कहते हुए, क्रोधसे बाणासुरको हँसते हुए देखने लगे ऊषा भयसे व्याकुल हो रो रही थी ॥ ४६ ॥ अनिरुद्धने हँसकर उसको आश्वासन किया तब बाणासुर चारों ओरसे क्षुद्रक बाणोंका प्रहार करने लगा ॥ ४७ ॥ वह युद्धमें अनिरुद्धके वधकी इच्छासे बाण छोडने लगा अनिरुद्धने उसके पराजयकी इच्छासे उसका छेदन किया ॥४८॥ फिर बाणासुर अनिरुद्धके शिरपर उनके वधकी इच्छासे बाणवर्षा करने लगा ॥४९॥

तब वह ढालसे बाणासुरके सहस्रों बाणोंको नष्ट करके सूर्यउदयके समान उसके सन्मुख स्थित हुए ॥१५०॥ इस प्रकार यदुनंदन युद्धमें बाणासुरका तिरस्कार कर स्थित हुए जैसे सन्मुख हाथीको स्थित देख सिंह खडा होता है ॥ ५१ ॥ तब बाणासुरने मर्मभेदी बाणोंसे तथा दूसरे तीक्ष्ण बाणोंसे अनिरुद्धको विद्ध किया॥५२॥तब वह बाणोंसे तिरस्कृत हो खड्ग चर्म धारण किये आये. उनको आता देखकर वह बाणोंसे निवारण करने लगा॥५३॥ वह महाबाहु सन्नत पर्वबाणोंसे महाविद्ध होकर दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे क्रोधसे प्रज्वलित हो गये॥५४॥शरीरसे रुधिर निकलता था और चारों

ततो बाणसहस्राणि चर्मणा व्यवधूय सः ॥ बभौ प्रमुखतस्तस्य स्थितः सूर्य इवोदये ॥ १५० ॥ सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दनः ॥ सिंहः प्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेकं यथा वने ॥ ५१ ॥ ततो स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः प्राद्युम्निमपराजितम् ॥ ५२ ॥ समाहतस्ततो बाणैः खड्गचर्मधरोऽपतत् ॥ तमापतन्तं निशितैरभ्यघ्नन्सायकैस्तथा ॥५३॥ सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ क्रोधेनाभिप्रजज्वाल चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ॥ ५४ ॥ रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षैः समाहितः ॥ अभिभूतः सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति ॥ ५५ ॥ असिभिर्मुशलैः शूलैः पट्टिशैस्तोमरैस्तथा ॥ सोऽतिविद्धः शरौघैश्च प्राद्युम्निर्न व्यकम्पत ॥ ५६ ॥ आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेषां तस्य सोऽच्छिनत् ॥ जघान चाश्वान् खड्गेन बाणस्य रणमूर्द्धनि ॥ ५७ ॥ तं पुनः शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि ॥ चकारान्तर्हितं बाणो युद्धमार्गविशारदः ॥ ५८ ॥ हतोऽयमिति विज्ञाय प्रणदन्नैर्ऋता गणाः ॥ ततोऽवप्लुत्य सहसा रथपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ५९ ॥

ओरसे बाणवर्षा होती थी तथापि क्रोध किये बाणासुरके रथके समीप गये॥५५॥असि शूल मूसल तोमर पट्टिश और बाणोंसेभी महाविद्ध होकर प्रद्युम्नि कंपित न हुए॥५६॥फिर अकस्मात् साहससे इसके रथपर आकर इस बाणसे रथके घोडोंको नष्ट कर दिया॥५७॥तब युद्धमार्गमें विशारद बाणासुरने शरवर्षा तोमर और पट्टिशके प्रहारसे अनिरुद्धको आच्छादित कर दिया ॥५८॥ यह मरे ऐसा जानकर राक्षस नाद करने लगे, तब यह सहसा कूदकर

रथके पार्श्वमें स्थित हुए ॥५९॥ तब क्रोधकर बाणासुरने घोररूप महाशक्तिको जो घंटा और मालासे युक्त घोररूप थी युद्धमें ग्रहण किया ॥१६०॥ ज्वलित होते हुए सूर्यके समान उग्रदर्शनवाले यमदण्डके समान जलती हुई उल्काके समान सम्बन्ध न विचारकर उस शक्तिको फेंका ॥ ६१ ॥ उस जीवनका अन्त करनेवाली शक्तिको आता देखकर कूदकर पुरुषोत्तमने उस शक्तिको ग्रहण किया ॥६२॥ और उस शक्तिसे बाण असुरकोही विद्ध किया वह शक्ति उसके देहको भेदकर धरणीतलमें प्रविष्ट हुई ॥ ६३ ॥ वह उससे गाढ विद्ध हो ध्वजाकी यष्टि ग्रहण कर स्थित हुआ

शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपां भयानकाम् ॥ जग्राह ज्वलितां घोरां घण्टामालाकुलां रणे ॥६०॥ ज्वलनादित्यसंकाशां यमदण्डोग्रदर्शनाम् ॥ प्राहिणात्तामसङ्गेन महोल्का ज्वलितामिव ॥६१॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य जीवितान्तकरीं तदा ॥ सोऽभिलुप्त्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥ ६२ ॥ निर्बिभेद ततो बाणं तया शक्त्या महाबलः ॥ सा भित्त्वा तस्य देहं वै प्राविशद्धरणीतलम् ॥ ६३ ॥ स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ततो मूर्च्छाभिभूतं तं कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥ उपेक्षसे दानवेन्द्र किमेव शत्रुमुद्यतम् ॥ लब्धलक्षो ह्ययं वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते ॥६५॥ मायामाश्रित्य युद्धयस्व नायं वध्योऽन्यथा भवेत् ॥ आत्मानं मां च रक्षस्व प्रमादात्किमुपेक्षसे ॥६६॥ वध्यतामयमद्यैव न नः सर्वान्विनाशयेत् ॥ अन्याश्च शतशो हत्वा उषां नीत्वा व्रजिष्यति ॥ ६७ ॥ कुम्भाण्डवचनैरेवं दानवेन्द्रः प्रणोदितः ॥ वाचं रूक्षामभिक्रुद्धः प्रोवाच वदतां वरः ॥ ६८ ॥ एषोऽहमस्य विदधे मृत्युं प्राणहरं रणे ॥ आदास्याम्यहमेतं वै गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६९ ॥

तब मूर्च्छित हुए बाणसे कुंभांड बोला॥६४॥हे दानवेन्द्र ! ऐसे उद्यत हुए शत्रुकी क्यों उपेक्षा करते हो. यह वीर लब्धलक्ष्य होकरभी निर्विकार दीखता है ॥६५॥ मायामें स्थित होकर युद्ध करो नहीं तो यह वीर मृतक न होगा. मुझे और अपनेको रक्षण करो प्रमादसे क्यों उपेक्षा करते हो॥६६॥ इसे अभी मारो नही तो यह हम सबका नाश कर देगा औरभी सैंकडोंको मार उषाको लेकर चला जायगा॥६७॥कुंभांडके वचनसे प्रेरित हो दानवेन्द्र क्रोध करके रूखे वचन कहने लगा ॥ ६८ ॥ यह मैं युद्धमें इसके प्राण हरणका विधान करता हूं और जैसे गरुड सर्पको पकडता है वैसे मैं इसको

ग्रहण करूंगा ॥६९॥ यह कहकर रथ ध्वज अश्व सारथि सहित गन्धर्व नगरके समान वहांही अन्तर्धान हो गया ॥१७०॥ और छिपकर वह बली तीक्ष्ण बाणोंको छोडने लगा. अनिरुद्धजी उसको अन्तर्ध्यान हुआ जानकर॥ ७१ ॥ महापुरुषार्थको प्राप्त हो दशों दिशामें देखने लगे और तामसी वियामें स्थित हो वह महाबली महाक्रुद्ध हुए ॥७२॥ और गुप्त हो वह तीक्ष्ण बाण छोडने लगा तब अनिरुद्ध उन बाणोंसे विद्ध हुए जो सर्पाकार उनको चारों ओरसे लिपट गये ॥७३॥ उसका देह चारों ओरसे सर्पराशियोंसे वेष्टित हो गया. इस प्रकार वह सर्वांगमें युद्धमें विद्धहुए ॥७४॥

इत्येवमुक्त्वा सरथः सध्वजः साश्वसारथिः ॥ गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥ मुमोच निशितान्बाणान् छन्नो मायाधरो बली ॥ विज्ञायान्तर्हितं बाणं प्राद्युम्निरपराजितः ॥७१॥ पौरुषेण समायुक्तः संप्रैक्षत दिशो दश ॥ आस्थाय तामसीं विद्यां तदा क्रुद्धो महाबलः ॥७२॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्छन्नो मायाधरो बली ॥ प्राद्युम्निर्विशिखैर्बद्धः सर्पभूतैः समन्ततः ॥७३॥ वेष्टितो बहुधा तस्य देहः पन्नगराशिभिः ॥ स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्धः प्राद्युम्निराहवे ॥७४॥ निष्प्रयत्नः कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वतः ॥ ज्वालावलीढवदनैः सर्पभोगैर्विचेष्टितः ॥७५॥ अभितः पर्वताकारः प्राद्युम्निरभवद्रणे ॥ निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्पवक्त्रमयैः शरैः ॥ ७६ ॥ न विव्यथे स भूतात्मा सर्वतः परिवेष्टितः ॥ ततस्तं वाग्भिरुग्राभिः संरब्धस्समतर्जयत् ॥ ७७ ॥ बाणो ध्वजं समाश्रित्य प्रोवाचामर्षितो वचः ॥ कुम्भाण्ड वध्यतां शीघ्रमयं वै कुलपांसनः ॥ ७८ ॥

तब मैनाकपर्वतके समान प्रयत्नरहित स्थित हुए और मुखसे अग्निनिकालनेवाले सर्पोंसे वेष्टित हो गये ॥ ७५॥ तब अनिरुद्ध घिरे हुए पर्वतके समान युद्धमें हो गये सर्पमुखवाले बाणोंसे वह निष्प्रयत्न गति होकर भी ॥ ७६ ॥ सब ओरसे वेष्टित हुए भूतात्माके समान व्यथित नहीं हुए, तब क्रोधित हो उनको तीक्ष्ण बाणीसे तर्जन करने लगे ॥ ७७ ॥ तब बाण ध्वजाके आश्रित होकर क्रोधसे वचन बोला. हे कुंभांड ! इस कुलपांसनको शीघ्र मार डालो ॥ ७८ ॥

जिस दूषितात्माने हमारे चरित्रको दूषित किया है यह कहनेपर कुंभांड बोला॥७९॥हे राजन्!जो मैं कहता हूं सोसुन यदि तुम्हारीइच्छा हो तो यह पहले जानना चाहिये कि यह कौन किसका पुत्र यहां आया है ॥१८०॥ और इस इन्द्रतुल्य पराक्रमीको यहां किसने लाया है. हे राजन्! युद्धमें लडते हुए मैंने इसके बहुत रूप देखे हैं॥८१॥ यह क्रीडा करता हुआ युद्धमें देवपुत्रके समान दीखता है यह बलवान् सत्त्वयुक्त सब शास्त्रमें पंडित है ॥८२॥ हे दैत्यसत्तम!यह वधके अपराधकेप्राप्त होने योग्य नहीं है क्योंकि इसने गंधर्वविवाहसे तुम्हारी कन्यासे संगति की है ॥ ८३ ॥

चारित्रं येन मे लोके दूषितं दूषितात्मना ॥ इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥ राजन्वक्ष्याम्यहं किंचित्तन्मे शृणु यदीच्छसि ॥ अयं विज्ञायतां कस्य कुतो वायमिहागतः ॥ १८० ॥ केन वायमिहानीतः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मयायं बहुशो राजन्दृष्टो युध्यन्महारणे ॥८१॥ क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत् ॥ बलवान्सत्त्वसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥८२॥ नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम ॥ गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ॥८३॥ अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु ॥ विज्ञाय च वधं वास्य पूजां वास्य करिष्यसि ॥ ८४ ॥ वधे ह्यस्य महान्दोषो रक्षणे सुमहान्गुणः ॥ अयं हि पुरुषोत्कृष्टः सर्वथा मानमर्हति ॥८५॥ सर्वतो वेष्टिततनुर्न व्यथत्येष भोगिभिः ॥ कुलशौण्डीर्यवीर्यैश्च सत्त्वेन च समन्वितः ॥८६॥ पश्य राजन्महावीर्यैरन्वितः पुरुषोत्तमः ॥ न नो गणयते सर्वान्वधं प्राप्तोऽप्ययं बली ॥८७॥ यदि मायाप्रभावेण नात्र बद्धो भवेदयम् ॥ सर्वान्सुरगणान्संख्ये योधयेन्नात्र संशयः ॥८८॥ सर्वसङ्ग्राममार्गज्ञो भवेद्वीर्याधिकस्तव॥शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नागभोगैश्च वेष्टितः॥८९॥

वह अदेय और ग्रहणके अयोग्य है इससे विचारकर वध करना चाहिये. इसका कुलादि जानकर वध या सत्कार करना चाहिये॥८४॥वधमें इसके महादोष और रक्षामें गहागुण होगा. यह उत्कृष्ट पुरुष सब प्रकार मानके योग्य है॥८५॥क्योंकि सर्पोंसे वेष्टित शरीर होकरभी यह व्यथित नहीं होता है. कुल शूरता वीरतासे यह युक्त है ॥ ८६ ॥ हे राजन्! देखो यह पुरुषोत्तम महापराक्रमसे युक्त है. यह बंधनको प्राप्त होकरभी हम सबको कुछ नहीं गिनता है ॥८७॥ जो मायाके प्रभावसे यह बांधा नहीं जाता तो दानव क्या सम्पूर्ण देवताओंसेभी युद्धमें अवध्य है ॥ ८८ ॥ यह सम्पूर्ण संग्रामके

मार्गका जाननेवाला वीर्यमें तुमसे अधिक होता रुधिरसे और सर्पोंसे वेष्टित शरीर ॥८९॥टेढी भौं किये अबभी हमको कुछ नहीं गिनता है. इस अवस्थाको प्राप्त होनेसेभी अपनी बाहुबलके आश्रित हो ॥ १९० ॥ हे राजन् ! अबभी तुमको कुछ नहीं गिनता इससे बली और कौन होगा सहस्र-बाहुके युद्धमें यह दो भुजावाला सन्मुख स्थित रहा है यह पराक्रम और मदसे स्थित हो कुछभी तुम्हारे पराक्रमको नहीं विचारता है ॥ ९१ ॥ हे राजन् ! यदि आप उचित समझे तो इस बलीको जानो और इससे संगत हुई यह कन्या दूसरेको किसी प्रकार न प्राप्त होगी॥९२॥यदि यह किसी

त्रिशिखां भ्रकुटिं कृत्वा न चिन्तयति नः स्थितान् ॥ इमामवस्थां नीतोऽपि स्वबाहुबलमाश्रितः ॥१९०॥ न चिन्तयति राजं-स्त्वां वीर्यवान्कोऽप्यसौ युवा॥सहस्रबाहोः समरे द्विबाहुः समवस्थितः ॥ न चिन्तयति ते वीर्यमयं वीर्यमदान्वितः॥९१॥उचितं यदि ते राजन् ज्ञेयो वीर्यबलान्तितः ॥ कन्या चेयं न चान्यस्य निर्यात्येतेन संगता॥९२॥यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्म-नाम् ॥ ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम ॥९३॥ रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव तथास्त्विति च तस्थिवान् ॥ एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेनमहात्मना॥९४॥तथेत्याह च कुम्भाण्डं बाणः शत्रुनिषूदनः ॥ संरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमतः ॥९५॥ ययो स्वमेव भवनं बलेः पुत्रो महायशाः ॥ संयतं मायया दृष्ट्वा अनिद्धं महाबलम् ॥९६॥ ऋषीणां नारदः श्रेष्ठोऽव्रजद्द्वारवतीं प्रति ॥ ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवतीं गतः ॥९७॥ गते ऋषीणां प्रवरे सोऽनिरुद्धो व्यचिन्तयत् ॥ नष्टोऽयं दानवः क्रूरो युद्धमेष्य-त्यसंशयः ॥ ९८ ॥

महात्माके वंशका है. हे असुरोत्तम ! वीर तो यह सत्कार पानेके योग्य है ॥९३॥ इसकी रक्षा करो यह कहकर वह स्थित हुआ तब महात्मा कुंभां-डके यह वचन सुनकर ॥९४॥ बहुत अच्छा यह बात बाणने कुंभांडसे कही, तब अनिरुद्धको रक्षा करनेवालोंको देकर॥९५॥ वह महायशस्वी बलिपुत्र घरको चला गया. महाबली अनिरुद्धको मायासे बंधा हुआ देखकर ॥९६॥ऋषिश्रेष्ठ नारदजी द्वारकापुरी को गये फिर आकाशमार्गसे वह मुनि द्वारकापुरीको गये ॥ ९७ ॥ ऋषिके जानेपर अनिरुद्धजी विचार करने लगे. यह क्रूर दानव युद्धमें अवश्यही नष्ट होगा ॥ ९८ ॥

वह नारद वहां गदा धारण करनेवालेको अवश्य समाचार कहेंगे और वह तत्त्वसे इस बातको जानेंगे संदेह नहीं ॥ ९९ ॥ उषा अनिरुद्धको नागोंसे चेष्टाहीन देखकर आंसुओंकी धारासे व्याकुल हो रोने लगी उस रोती हुईसे अनिरुद्ध बोले॥२००॥हे मृगलोचनि ! तुम किस कारणसे रोती हो तुम भय मत करो. हे सुश्रोणि! देखना कि मेरे निमित्त श्रीकृष्ण आवेंगे॥१॥जिनके शंखकी ध्वनि सुनकर तथा बाहुबलको देख दानव और असुरोंकी स्त्रियोंके गर्भ नष्ट हो जाँयगे ॥२॥ वैशंपायन बोले; अनिरुद्धके यह कहनेपर उषा शान्त हुई और वह सुमध्यमा अपने नृशंस

स गत्वा नारदस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ज्ञापयिष्यति तत्त्वेन इममर्थं न संशयः ॥ ९९ ॥ नागैर्विचेष्टितं दृष्ट्वा उषा प्राद्युम्निमातुरा ॥ रुरोद बाष्परुद्धाक्षी तामाह रुदतीं पुनः ॥ २०० ॥ किमिदं रुद्यते भीरु मा भैस्त्वं मृगलोचने ॥ पश्य सुश्रोणि संप्राप्तं मत्कृते मधुसूदनम् ॥ १ ॥ यस्य शङ्खध्वनिं श्रुत्वा बाहुशब्दं बलस्य च ॥ दानवा नाशमेष्यन्ति गर्भाश्चासुरयोषिताम् ॥२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तानिरुद्धेन उषा विश्रम्भमागता ॥ नृशंसं पितरं चैव शोचते सा सुमध्यमा ॥ २०३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणानिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यदा बाणापुरे वीरः सोऽनिरुद्धः सहोषया ॥ संनिरुद्धो नरेन्द्रेण बाणेन बलिसूनुना ॥१॥ तदा देवीं कोटवतीं रक्षार्थं शरणं गतः ॥ यद्गीतमनिरुद्धेन देव्याः स्तोत्रमिदं शृणु ॥२॥ अनन्तमक्षयं दिव्यमादिदेवं सनातनम् ॥ नारायणं नमस्कृत्य प्रवरं जगतां प्रभुम् ॥ ३ ॥ चण्डीं कात्यायनीं देवीमार्यां लोकनमस्कृताम् ॥ वरदां कीर्तयिष्यामि नामभिर्हरिसंस्तुतैः ॥ ४ ॥

पिताको शोच करने लगी॥२०३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां बाणानिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥११९॥ वैशंपायन बोले; जिस समय बलिपुत्र बाणद्वारा उसके पुरमें उषासहित बद्ध हुए ॥ १ ॥ तब वह रक्षाके निमित्त कोटवती देवीकी शरणमें गये, जो अनिरुद्धने देवीका स्तोत्र कहा है वह सुनो ॥२॥ अनन्त अक्षय दिव्य सनातन आदिदेव जगत्के प्रभु नारायणको नमस्कार करके ॥ ३ ॥ चंडी

कात्यायनो देवी लोकनमस्कृत आर्या वरदायक देवीकी हरिसे कीर्तन किये नामोंसे स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥ ऋषि और देवताओंने जो वाणीरूपी फूलोंसे देवीकी स्तुति की है.उस सब देहमें स्थित देवीकी मैं प्रार्थना करता हूं ॥५॥ अनिरुद्ध बोले;महेन्द्र विष्णुकी भगिनीको हितके निमित्त नमस्कार करता हूं, मनसे शुद्धभावसे कर जोड उसकी स्तुति करता हूं ॥६॥ गौतमीकंसकी भय देनेहारी यशोदाके आनंदके बढानेहारी पवित्र गोकुलमें उत्पन्न हुए नंदगोपकी आनंद देनेवाली॥७॥बुद्धियुक्त चतुर शिवा सौम्यरूप दनुपुत्रकी नाशकरनेवाली उस सब प्राणियोंके देहमें स्थित सब प्राणि-

ऋषिभिर्दैवतैश्चैव वाक्पुष्पैरार्चितां शुभाम् ॥ तां देवीं सर्वदेहास्थां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ ५ ॥ अनिरुद्ध उवाच ॥ महेन्द्रविष्णुभगिनि नमस्यामि हिताय वै ॥ मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः ॥६॥ गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्द्धिनीम् ॥ मेध्यां गोकुलसंभूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम् ॥७॥ प्रज्ञां दक्षां शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम् ॥ तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम् ॥८॥ दर्शनीं पूरणीं मायां वह्निसूर्यशशिप्रभाम् ॥ शान्तिं ध्रुवां च जननीं मोहिनीं शोषणीं तथा ॥९॥ सेव्यां देवैः सर्षिगणैः सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम् ॥ १० ॥ कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम् ॥ सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम् ॥ ११ ॥ यूथस्याद्यां महाभागां शकुनीं रेवतीं तथा ॥ तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥१२॥ सप्तविंशतिऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश ॥ नगरोपवनोद्यानद्वाराट्टालकवासिनीम् ॥१३॥ ह्रीं श्रीं गङ्गां च गन्धर्वां योगिनीं योगदा सताम् ॥ कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शां नमस्यामि सरस्वतीम् ॥ १४ ॥

योंसे नमस्कृत ॥८॥ दर्शनयोग्य पूरणी माया अग्नि सूर्य चन्द्रमाके समान कान्तिमान् शान्ति और ध्रुवा और जननी मोहिनी शोषणी॥९॥देवता ऋषिगणोंसे सेवितसब देवताओंसे नमस्कृत कालीकात्यायनी देवी भयदायक भयनाशिनी॥१०॥कालरात्रि यथेच्छाचारिणीतीननेत्रवाली ब्रह्मचारिणी विद्युत मेघवत् शब्दवाली वेताली विपुलमुखवाली ॥ ११ ॥ यूथके आदिमें स्थित महाभाग्ययुक्त शकुनी रेवतीरूप तिथियोंमें पंचमी षष्ठी चौदश पूनोरूप ॥ १२ ॥ सात नक्षत्ररूप नदी दशों दिशा नगर उपवन उद्यान द्वार और अटारियोंपर रहनेवाली ॥ १३ ॥ ह्री श्री गंगा गन्धर्वा योगिनी सत्पुरु-

षोंको योग देनेवाली कीर्ति आशा दिशा स्पर्शरूप रसवतीको नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ वेदोंकी माता भक्तवत्सला सावित्री तपस्विनी शान्तकरी एकअंशयुक्त सनातनी ॥१५॥ कौटीर्य मदिरा चंडाइला मलयवासिनी प्राणियों भूतोंकी माता भयकरी कूष्माण्डी पुष्पप्रिया॥१६॥दारुणी मदिरावासा विंध्याचल और कैलासकी निवास करनेवाली वरांगना सिंहरथी बहुरूपा वृषध्वजा ॥ १७ ॥ दुर्लभ दुर्जय दुर्गा निशुंभकी भय देनेहारी देवताओंकी प्रिय सुरादेवी वज्रपाणि इन्द्रकी अनुजा शिवा ॥ १८ ॥ किराती चीरवसनवाली चोरसेनासे नमस्कृत आज्यपा सोमपा सौम्यरूप सब पर्व-

वेदानां मातरं चैव सावित्रीं भक्तवत्सलाम् ॥ तपस्विनीं शान्तिकरीमेकानंशां सनातनीम् ॥ १५ ॥ कौटीर्यां मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम् ॥ भूतधात्रीं भयकरीं कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम् ॥१६॥ दारुणीं मदिरावासां विन्ध्यकैलासवासिनीम् ॥ वराङ्गनां सिंहरथीं बहुरूपां वृषध्वजाम् ॥ १७ ॥ दुर्लभां दुर्जयां दुर्गां निशुम्भभयदर्शिनीम् ॥ सुरप्रियां सुरां देवीं वज्रपाण्यनुजां शिवाम् ॥ १८ ॥ किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृताम् ॥ आज्यपां सोमपां सौम्यां सर्वपर्वतवासिनीम् ॥ १९ ॥ निशुम्भशुम्भमथनीं गजकुम्भोपमस्तनीम् ॥ जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचारणसेविताम् ॥२०॥ चरां कुमारप्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम् ॥ पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च ॥ २१ ॥ कद्रुपुत्रसहस्रस्य पुत्रपौत्रवरस्त्रियः ॥ माता पिता जगन्मान्या दिवि देवाप्सरोगणैः ॥२२॥ ऋषिपत्नीगणानां च यक्षगन्धर्वयोषिताम् ॥ विद्याधराणां नारीषु साध्वीषु मनुजासु च ॥२३॥ एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया ह्यसि ॥ नमस्कृतासि त्रैलोक्ये किंनरोद्गीतसेविते ॥ २४ ॥

तोंपर निवास करनेवाली ॥१९॥ निशुंभ शुंभको मारनेवाली गजकुंभकी समान स्तनवाली सिद्धसेन कार्तिकेयकी माता सिद्धचारणसे सेवित ॥२०॥ फिरनेहारी कुमारकी प्रभव करनेवाली पार्वती पर्वत आत्मजा पचास देवकन्या और देवगणोंकी पत्नी ॥ २१ ॥ कद्रुके सहस्रों पुत्रपौत्र और उनकी श्रेष्ठ स्त्रियोंकी मातापिता जगत्की मान्य स्वर्गमें देवता और अप्सरागणोंसे सेवित॥२२॥ऋषिपत्नीगणोंकी यक्ष गन्धर्वकी स्त्रियोंकी विद्याधरोंकी स्त्री सती मनुष्यकी स्त्रियोंमें ॥ २३ ॥ तथा और भी सब प्राणियोंमें तुम आश्रयरूप हो त्रिलोकीमें तुम नमस्कृत हो किन्नरोंके स्तुति वचनोंसे सेवित

हो ॥२४॥ तुम अचिन्त्य और अप्रमेय हो तुमको प्रणाम करते हैं ! हे गौतमि ! यह नाम तथा दूसरे नामोंसे तुम कीर्तन की गई हो ॥ २५ ॥ तुम्हारे प्रसादसे निर्विघ्न हम बंधनसे शीघ्र छुट सकते हैं. हे विशालाक्षि ! हमको कृपादृष्टिसे देखो. हम तुम्हारी शरणको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ तुम सम्पूर्ण बंधनोंको मुक्त कर सकती हो. ब्रह्मा विष्णु रुद्र चन्द्र सूर्य अग्नि मरुत॥२७॥अश्विनीकुमार वसु धाता भूमि दशों दिशा मरु पर्जन्य धाता भूमि ॥२८॥ गौ नक्षत्र ग्रह नदी ह्रद सरित सागर नाना विद्याधर सर्प॥२९॥नाग गरुड गन्धर्व अप्सरा यह सब जगत् देवीके नामानुकी-

अचिन्त्या ह्यप्रमेयासि यासि सासि नमोऽस्तु ते ॥ एभिर्नामभिरन्यैश्च कीर्तिता ह्यसि गौतमि ॥२५॥ त्वत्प्रसादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येय बन्धनात् ॥ अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे ॥२६॥ सर्वेषामेव बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्निमारुताः ॥ २७ ॥ अश्विनौ वसवश्चैव धाता भूमिर्दिशो दश ॥ मरुता सह पर्जन्यो धाता भूमिर्दिशो दश ॥२८॥ गावो नक्षत्रवंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा ॥ सरितः सागराश्चैव नानाविद्याधरोरगाः ॥२९॥ तथा नागाः सुपर्वाणो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं देव्या नामानुकीर्त्तनात् ॥ ३० ॥ देव्याः स्तवमिमं पुण्यं यः पठेत्सुसमाहितः ॥ सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्र्यं प्रयच्छति ॥३१॥ अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता ॥ हारशोभितसर्वांगी मुकुटोज्ज्वलभूषणा ॥३२॥ कात्यायनी स्तूयसे त्वं वरमग्र्यं प्रयच्छसि ॥ अतः स्तवीमि तां देवीं वरदे वामलोचने ॥ ३३ ॥ नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदा भव ॥ प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम् ॥ ३४ ॥

र्तनसेही कहा है ॥ ३० ॥ जो सावधान हो देवीके पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है वह सातवें महीनेमें उसको बडा वरप्रदान करती है ॥ ३१ ॥ देवी अठारह भुजायुक्त दिव्य आभरण पहरे हुए हारसे शोभित सर्वांग उज्ज्वल मुकुट और भूषण पहरे॥३२॥कात्यायनी स्तुति करनेवालेको श्रेष्ठ वर देती है इस कारण हे वरदेनेवाली वामलोचने ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं॥ ३३ ॥ हे महादेवि ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं. तुम मेरे ऊपर

सदा प्रसन्न हो वर आयु पुष्टि और धृति मुझको सदा दो ॥ ३४ ॥ मैं इस बंधनसे मुक्त हूं. यह तुमसे सत्य कहता हूं. वैशंपायन बोले; इस प्रकार महापराक्रमी दुर्गा स्तुतिको प्राप्त हो ॥३५॥ अनिरुद्धके बंधनके निकट प्राप्त हुई. अनिरुद्धके हितके निमित्त वह शरणवत्सला देवी॥३६॥बाण-पुरमें बंधे हुए अनिरुद्धको छुडाती हुई और क्रोधी वीर अनिरुद्धको छुडाया॥३७॥तब प्रतापी वीर अनिरुद्धने देवीका पूजन किया. अनिरुद्धको दर्शन दे बंधनमें प्रसन्नता की ॥३८॥ नागपाशमें बंधे उषासे चित्त हरे उनके वज्रकी समान बंधनको देवीने कराग्रसे तोडकर ॥ ३९ ॥ बाणपुरमें

बन्धनस्थो विमुच्येयं सत्यमेतद्भवेदिति ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं स्तुता महादेवी दुर्गा दुर्गपराक्रमा ॥३५॥ सांनिध्यं कल्पयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ॥ अनिरुद्धहितार्थाय देवी शरणवत्सला ॥३६॥ बद्धं बाणपुरे वीरमनिरुद्धं व्यमोक्षयत ॥ सान्त्वयामास तं वीरमनिरुद्धममर्षणम् ॥ ३७ ॥ पूजयामास तां वीरः सोऽनिरुद्धः प्रतापवान् ॥ प्रसादं दर्शयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ॥ ३८ ॥ नागपाशेन बद्धस्य तस्योषाहृतचेतसः ॥ स्फोटयित्वा कराग्रेण पञ्जरं वज्रसन्निभम् ॥ ३९ ॥ रुद्धं बाणपुरे वीरं सानिरुद्धमभाषत ॥ सान्त्वयन्ती वचो देवी प्रसादाभिमुखी तदा ॥४०॥ श्रीदेव्युवाच ॥ चक्रायुधो मोक्षयिताऽनिरुद्धं त्वां बन्धनादाशु सहस्व कालम् ॥ छित्त्वा स बाणस्य सहस्रबाहुं पुरीं निजां नेष्यति दैत्यसूदनः ॥४१॥ ततोऽनिरुद्धः पुनरेव देवीं तुष्टाव हृष्टः शशिकान्तवक्त्रः॥ अनिरुद्ध उवाच ॥नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे नमोऽस्तु ते देवि सुरारिनाशिनि ॥४२॥नमोऽस्तु ते कामचरे सदाशिवे नमोऽस्तु ते सर्वहितैषिणि प्रिये ॥ नमोऽस्तुते भयकरि विद्विषां सदा नमोऽस्तु ते बन्धनमोक्षकारिणि॥४३॥

॥३६८॥

रुद्ध हुए वीरको प्रसन्नतासे समझाती हुई देवी कहने लगी॥४०॥देवी बोली;हे अनिरुद्ध ! बहुत शीघ्रतासे आकर श्रीकृष्ण तुमको इस कष्टसे छुडा-वेंगे थोडे दिनों तुम यह कष्ट सहो वह दैत्यसूदन बाणासुरकी सहस्र भुजा छेदन कर तुमको अपनी पुरीमें ले जायंगे ॥ ४१ ॥ तब चन्द्रकी समान मुखवाले अनिरुद्धजी फिर प्रसन्न हो देवीसे बोले; (अनिरुद्ध बोले) वरदाता सुरारिनाशिनी देवीको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ यथेच्छचारिणी सदा

मंगलरूप सबकी हित करनेवाली प्रिये ! शत्रुओंको भय देनेवाली बंधन मुक्त करनेवाली तुमको सदा नमस्कार है ॥४३॥ ब्रह्माणी इन्द्राणी रुद्राणी भूतोंकी उत्पन्न करनेवाली शिवे ! मुझे सब भयोंसे छुडाओ हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ जगत्की स्वामिनि प्रिय दान्त महाव्रत धारण करनेवाली भक्तोंको प्यार करनेवाली जगत्की माता शैलपुत्रि वसुंधरा ॥ ४५ ॥ हे विशालाक्षि नारायणि ! मेरी रक्षा करो मैं तुमको नमस्कार करता हूं. हे दानवोंको भय देनेवाली ! सब दुःखोंसे मेरी रक्षाकर ॥ ४६ ॥ हे रुद्रप्रिये महाभागवाली भक्तोंका भय नाश करनेवाली ! मैं

ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्यभवे शिवे ॥ त्राहि मां सर्वभीतिभ्यो नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ नमोऽस्तु ते जगन्नाथे प्रिये दान्ते महाव्रते ॥ भक्तप्रिये जगन्मातः शैलपुत्रि वसुंधरे ॥ ४५ ॥ त्राहि मां त्वं विशालाक्षि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ त्रायस्व सर्वदुःखेभ्यो दानवानां भयंकरि ॥४६॥ रुद्रप्रिये महाभागे भक्तानामार्तिनाशिनि ॥ नमामि शिरसा देवीं बन्धनस्थो विमोक्षितः॥४७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत्सुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ बन्धनस्थो विमुच्येत सत्यं व्यासवचो यथा ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदुः सर्वयोषितः ॥ प्रियं नाथमपश्यन्त्यः कुरर्य इव सङ्घशः ॥ १ ॥

देवीको शिरसे नमस्कार करता हूं जो कि मुझे बंधनसे छुडाया॥४७॥वैशंपायन बोले; जो कोई सावधान हो इस आर्यास्तोत्रको पढता है, वह सब पापसे छूटकर विष्णुलोकको जाता है और बंधनमें स्थित हुआ मुक्त हो जाता है यह व्यासवचनके समान सत्य है ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥ वैशंपायन बोले; तब अनिरुद्धके घरमें सब स्त्री रुदन करने लगीं वह अपने प्रियस्वामीको न देख कुररीके समान रोईं ॥ १ ॥

अहो धिक्कार है कि स्वामी कृष्णके उपस्थित होतेभी हम अनाथके समान भयपीडित हो रुदन करती हैं ॥२॥ जिसके इन्द्रको आदि लेकर देवता आदित्य मरुत आदि बाहुकी छायाका आश्रयकर स्वर्गमें वसते हैं ॥ ३ ॥ उस लोकके भय देनेवालेकोभी यह महाभय उपस्थित हुआ है. उसका वीर अनिरुद्ध पोता किसीने हरण कर लिया ॥४॥ अहो उस दुर्मतिको लोकमें भय नहीं है जो वासुदेवको दुस्सह क्रोध उत्पन्न कराता है ॥ ५ ॥ वह मुख फैलाये हुए मृत्युके दंष्ट्राग्रमें वर्तता है वह शत्रु मोहसेही युद्धमें वासुदेवके सन्मुख उपस्थित हुआ है ॥६॥ इस प्रकारका श्रीकृष्णके साथ

अहो धिक्किमिदं नाथ नाथे कृष्णे व्यवस्थिते ॥ अनाथा इव संत्रस्ता रुदिमो भयपीडिताः ॥२॥ यस्येन्द्रप्रमुखा देवाः सादित्याः समरुद्गणाः ॥ बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि देवताः ॥ ३ ॥ तस्योत्पन्नमिदं लोके भयदस्य महाभयम् ॥ तस्यानिरुद्धः पौत्रस्तु वीरः केनापि नो हृतः ॥ ४ ॥ अहो नास्ति भयं नूनं तस्य लोके सुदुर्मतेः ॥ वासुदेवस्य यः क्रोधमुत्पादयति दुःसहम् ॥५॥ व्यादितास्यस्य यो मृत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते ॥ स वासुदेवं समरे मोहादभ्युदियाद्रिपुः॥६॥ इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुङ्गवे ॥ कथं जीवन्विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः ॥ ७ ॥ हृतनाथाः स्म शोच्या स्म वयं नाथं विना कृताः ॥ विप्रयोगेन नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः ॥ ८ ॥ इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुनः पुनः ॥ नेत्रजं वारि मुमुचुरशिवं परमाङ्गनाः ॥९॥ तासां बाष्पाम्बुपूर्णाणि नयनानि चकाशिरे ॥ सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे ॥ १० ॥ तासां मरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च ॥ रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे ॥ ११ ॥

विप्रिय कर साक्षात् इन्द्रभी किस प्रकार जीता बच सकता है ॥ ७ ॥ नाथके हर जानेसे हम शोच करती हैं कि हम नाथरहित हो गई हैं. नाथके वियोगसे हम कालके वशमें हुईं ॥ ८ ॥ इस प्रकार वह कहती हुई और रोती हुई अमंगलका जल वे स्त्रिय नेत्रोंसे त्यागने लगीं ॥ ९ ॥ आंसुओंसे पूर्ण हुए उनके नेत्र प्रकाशित हुए जैसे जलके आगममें कमलपर बूंद हो ॥ १० ॥ उनके पलकोंके बाल

शोभित थे और रुधिरसे लाल हुए नेत्र विदित होते थे ॥ ११ ॥ महलमें रहनेवाली उन स्त्रियोंके रुदनके शब्दसे वह महल पूर्ण हो गया था जैसे सहस्रों कुररी रुदन करती हों ॥ १२ ॥ उस घोर रोनेके शब्द और आये हुए अपूर्व भयको सुनकर सब पुरुष सहसा अपने अपने घरोंसे चले आये ॥ १३ ॥ कहने लगे कि यह अनिरुद्धके घरमें रोनेका कैसा शब्द है कृष्णसे रक्षित स्थानमें कहांसे भय हुआ ॥ १४ ॥ स्नेहसे व्याकुल हो वे परस्पर कहने लगे; और अधर्षित सिंहके समान गुहारूपी गुहोंसे निकले ॥ १५ ॥ उस समय सबके एकत्र होनेके निमित्त भेरी नाद

तासां हर्म्यतलस्थानां पूर्ण आसीन्महास्वनः ॥ कुररीणामिवाकाशे रुदतीनां सहस्रशः ॥ १२ ॥ तं श्रुत्वा निनदं घोरमपूर्वं भयमागतम् ॥ उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषर्षभाः ॥१३॥ कस्मादेशोनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः ॥ गृहे कृष्णाभिगुप्तानां कुतो नो भयमागतम् ॥१४॥ इत्येवमूचुस्तेऽन्योन्यं स्नेहविक्लवगद्गदाः ॥ अधर्षिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव निःसृताः ॥ १५ ॥ सन्नाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा ॥ यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः ॥१६॥ किमेतदिति तेऽन्योन्यं समपृच्छन्त यादवाः ॥ अन्योन्यस्य हिते सर्वे यथावृत्तमवेदयन् ॥ १७ ॥ ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ निःश्वसन्तो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥१८॥ तूष्णींभूतेषु सर्वेषु विप्रथुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥ किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र भवानिह ॥ तव बाहुबलप्राणा स्वास्थिताः सर्वयादवाः॥२०॥ भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः ॥ तथैव बलवान् शक्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ ॥ २१ ॥

किया गया जिसके बजतेही वे सब आकर एकत्र हुए॥१६॥यह क्या है इस प्रकार वे सब यादव परस्पर पूछने लगे तब सबने एक दूसरेके निमित्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥ तब वे आंसू भरे क्रोधसे लाल नेत्र किये युद्धसे दुर्मद यादव स्थित हुए ॥ १८ ॥ जब सब शान्त हो गये तब विप्रथुने वचन कहे, उन्होंने प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ वारंवार श्वास लेते हुए श्रीकृष्णसे कहा ॥१९॥ हे पुरुषेन्द्र ! आप किस प्रकारसे चिन्ता करते हो तुम्हारे बाहुबलसेही सब यादवोंके प्राण स्थित हैं ॥२०॥ हम सब विभागको प्राप्त हुए आपहीके आश्रित हैं इसी प्रकार इन्द्रनेभी अपनी जय

पराजय आपहीमें स्थित कर दी है ॥ २१ ॥ तुम्हारे बलसे वह निःशंक सोता है आपको किस प्रकारकी चिन्ता हुई है सब तुम्हारी जातिके अक्षोभ्य शोकसागरमें प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ हे महाभुज ! उन शोकसागरमें डुबे हुओंको आप उद्धार कीजिये आप ऐसी चिन्तामें क्यों मग्न हो कि कुछभी नहीं बोलते ॥ २३ ॥ हे माधव ! आप वृथा चिन्ता मत कीजिये ऐसा सुन श्रीकृष्ण वारंवार श्वास लेते हुए ॥ २४ ॥ बृहस्पतिकी समान वचन कहने लगे श्रीकृष्ण बोले; हे विप्रथु मैं इसी कार्यकी चिन्ता करता हूं ॥ २५ ॥ मैं इस कार्यको विचारता हुआभी इसकी गतिको प्राप्त नहीं

सुखं स्वपिति निःशङ्कः कथं त्वं चिन्तयान्वितः ॥ शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥ २२ ॥ तान्मज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज ॥ किमेवं चिन्तयाविष्टो न किंचिदपि भाषसे ॥ २३ ॥ चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव ॥ इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निःश्वस्य सुचिरं बहु ॥ २४ ॥ प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ विप्रथो चिन्तयाविष्टो ह्येतत्कार्यमचिन्तयम् ॥ २५ ॥ विचिन्तयंस्त्वहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम् ॥ तथाहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित् ॥ २६ ॥ दाशार्हगणमध्येऽहं वदाम्यर्थवतीं गिरम् ॥ शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम् ॥ २७ ॥ अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ अशक्ता इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान्स्वबान्धवान् ॥ २८ ॥ आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन वै पुरा ॥ प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नश्चापि नो बालः शम्बरेण हृतो ह्यभूत् ॥ स तं निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥ ३० ॥ इदं तु सुमहत्कष्टं प्राद्युम्निः क्व प्रवासितः ॥ नैवंविधमहं दोषं न स्मरे मनुजर्षभाः ॥ ३१ ॥

होता हूं, इस कारण तुम्हारे कहनेका मैंने कोई उत्तर नहीं दिया है ॥२६॥ दाशार्हजनोंके बीचमें मैं अर्थवती वाणीको बोलता हूं हे यादवो ! जो मुझे चिन्ता है सो आप सब सुनो ॥ २७ ॥ अनिरुद्ध जब इस प्रकार हरे गये हैं तब पृथ्वीके सब राजा हमको असमर्थ जानेंगे ॥ २८ ॥ पहले हमारे आहुक राजाको शाल्व हरण करके ले गया था; हम बडा दारुण युद्धकर उसको लाये थे ॥ २९ ॥ हमारे बालक प्रद्युम्नकोभी शम्बर हरकर ले गया वह रुक्मिणीनंदन स्वयं उसको युद्धमें मारकर घर आये थे ॥ ३० ॥ अब यह बडा कष्ट प्राप्त हुआ है कि अनिरुद्ध कहां गये मैं यह दोष

कहांसे हुआ या कभी पहले हुआ था सो स्मरण नहीं करता हूं ॥ ३१ ॥ जिसने भस्मसे आच्छादित चरण हमारे शिरपर धरा है मैं युद्धमें अवश्य कुटुम्बसहित उसका जीवन हरण करूंगा ॥३२॥ कृष्णके यह वचन सुनकर सात्यकीने वचन कहे. हे कृष्ण ! अनिरुद्धकी खोज करनेको दूत भेजे जाय वह पर्वत वनको उद्देश्यसहित इस पृथ्वीको खोजें॥३३॥उसके वचनको सुनकर कृष्ण भगवान्‌ने आहुकसे यह करनेकी आज्ञा दी. हे राजन् ! अन्तर बाहर जानेवाले दूतोंको आज्ञा दो ॥ ३४ ॥ वैशंपायन बोले; आहुकके वचन सुन केशव कहने लगे कि; हमने अनिरुद्धकी खोज करनेको

भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः ॥ तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवितं रणे ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ चाराः कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे ॥ सपर्वतवनोद्देशां मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३ ॥ आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा ॥ आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्तां चरा नृप॥३४॥वैशम्पायन उवाच॥केशवस्य वचः श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽब्रवीत् ॥ अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान्दिष्टवांस्तदा ॥ ३५ ॥ ततश्चारास्तु व्यादिष्टाः पार्थिवेन यशस्विना ॥ हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना ॥ आभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥ वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम् ॥ ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥ ३७ ॥ एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च ॥ यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समन्ततः ॥ ३८ ॥ हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः ॥ आरुह्य त्वरिताःसर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥ ३९ ॥

दूतोंको आज्ञा दी है ॥३५॥ उन यशस्वी राजाकी वे दूत आज्ञा पाकर हाथी घोडे रथ आदिपर चढकर चले, राजाने कहा कि तुम अन्तर बाहर सब स्थानमें खोज करो ॥३६॥ जिस प्रकार वेणु लतायुक्त रैवतक पर्वत है और घोडोंसहित ऋक्षवान् पर्वतकी खोज करना ॥ ३७ ॥ एक एक बगीचे वन वहांपर ढूंढना और सब उद्यानोंमें निःशंक जाना ॥३८॥ सहस्र घोडे और अनेक रथ शीघ्रतासे लेकर जाओ और इनको ढूंढो ॥३९॥

तब अनाधृष्टि सेनापतिने यह वचन अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे भीत होकर कहे॥४०॥हे कृष्ण ! हमारे वचन सुनो. यदि आपको यह भले लगें तो करो बहुत कालसे मेरी कहनेकी इच्छा थी॥४१॥असिलोमा पुलोमा निसुन्द और नरकासुर मारे गये सौभ शाल्व मैन्द द्विविदनिहत हुए॥४२॥ महान् हयग्रीवकोभी कुटुम्बसहित आपने मारा वह देवताओंके निमित्त जब बडा भारी विग्रह हुआ था ॥ ४३ ॥ रणमें यह संपूर्ण कर्म पूर्ण हो गये. हे गोविंद ! आपने सब कुछ कर लिया है अब कोई पार्ष्णिग्राह नहीं रहा है॥४४॥हे श्रीकृष्ण! आपने अनुबंधसहित यह बडा कार्य किया

सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत् ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥ ४० ॥ शृणु कृष्ण वचो मह्यं रोचते यदि ते प्रभो ॥ चिरात्प्रभृति मे वक्तुं भवन्तं जायते मतिः ॥ ४१ ॥ असिलोमा पुलोमा च निसुन्दनरकौ हतौ ॥ सौभः शाल्वश्च निहतौ मैन्दो द्विविद एव च ॥४२॥ हयग्रीवश्च सुमहान्सानुबन्धस्त्वया हतः ॥ तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतोः सुदारुणे ॥ ४३ ॥ सर्वाण्येतानि कर्माणि निःशेषाणि रणेरणे ॥ कृतवानसि गोविन्द पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ते ॥ ४४ ॥ इदं कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्धं महत्कृतम् ॥ पारिजातस्य हरणे यत्कृतं कर्म दुष्करम् ॥ ४५ ॥ तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगतः ॥ निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारदः ॥ ४६ ॥ तेन वैरं त्वया सार्द्धं कर्तव्यं नात्र संशयः ॥ वैरानुबन्धश्च महांस्तेन कार्यस्त्वया सह ॥ ४७ ॥ तत्रानिरुद्धहरणं कृतं मघवता स्वयम् ॥ न ह्यन्यस्य भवेच्छक्तिर्वैरनिर्यातनं प्रति ॥ ४८ ॥ इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् ॥ उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम् ॥ ४९ ॥

है जो आपने पारिजातके हरणमें दुष्कर कर्म किया है ॥४५॥ हे कृष्ण ! उस समय आपने ऐरावतपर चढे हुए इन्द्रको अपनी बाहुबलसे जीत लिया ॥४६॥ कदाचित् वही तुम्हारे साथ वैर करता हो उनके साथ आपका बडा वैर है॥४७॥ कदाचित् स्वयं इंद्रने अनिरुद्धका हरण किया हो ऐसी वैर लेनेकी शक्ति दूसरेसे नहीं होगी ॥४८॥ यह वचन सुन नागके समान श्वास लेते हुए कृष्ण उस महाबली अनाधृष्टिसे बोले ॥४९॥

हे सेनानी ! ऐसे वचन मत कहो देवता क्षुद्रकर्मवाले नहीं होते अकृतज्ञ क्लीब अवलिप्त और मूर्ख नहीं होते ॥५०॥ मेरा यत्न दानवोंके नष्ट करने और देवताओंके हितके निमित्त है. उन्हीके प्रिय करनेको बडे २ दानवोंको मैं नष्ट करता हूं॥५१॥मैं उन्हीमें मन लगाये उनका भक्त और उनके कार्यसाधनमें तत्पर हूं. इस प्रकारका हितकारी मुझे जानकर देवता क्यों पाप करेंगे॥५२॥अक्षुद्र सत्यवादी नित्य भक्तोंपर दया करनेवाले हैं उन्हें पाप लगाना एक मूर्खताकी बात है ॥५३॥ अथवा कदाचित् किसी पुंश्चली स्त्रीने अनिरुद्धका हरण किया हो तो हो परंतु देवता और महेन्द्र

सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः ॥ नाकृतज्ञा नच क्लीबा नावलिप्ता न बालिशाः॥५०॥देवतार्थं च मे यत्नो महान्दानवसंक्षये ॥ तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान्महाबलान्॥५१॥तत्परस्तन्मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये रतः ॥ कथं पापं करिष्यन्ति विज्ञायैवंविधं हि माम् ॥५२॥ अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्तानुकम्पिनः ॥ तेभ्यो न विद्यते पाप बालिशत्वात्प्रभाषसे ॥५३॥ कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् ॥ देवेषु समहेन्द्रेषु नैतत्कर्म विधीयते ॥५४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं चिन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽब्रवीद्वचः ॥ ५५ ॥ मधुरं श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्यविशारदः ॥ यच्छक्रस्य प्रभो कार्यं तदस्माकं विनिश्चितम् ॥५६॥ अस्माकं चापि यत्कार्यं तद्धि कार्यं शचीपतेः ॥ संरक्ष्याश्च वयं देवैरस्माभिश्चापि देवताः ॥ देवतार्थे वयं चापि मानुषत्वमुपागताः ॥ ५७ ॥

ऐसा कर्म नहीं करेंगे ॥५४॥ वैशंपायन बोले; अद्भुतकर्मा श्रीकृष्ण इस प्रकारसे विचार करते थे कि उस समय उनके वचन सुन अक्रूरजी बोले ॥५५॥ मीठी चिकनी वाणी वह अर्थ और वाक्यके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ कहने लगे हे प्रभो ! जो इन्द्रका कार्य है वह हमने निश्चय कर लिया है ॥ ५६ ॥ जो हमारा कार्य है वही इंद्रका कार्य है. देवताओंकी रक्षा हमको और हमारी रक्षा देवतोंको करनी चाहिये. क्योंकि देवताओंके हितके निमित्तही हम मनुष्य हुए हैं ॥ ५७ ॥

इस प्रकार अक्रूरके वचनसे प्रेरित हुए श्रीकृष्ण स्निग्ध गम्भीर वाणीसे फिर कहने लगे; ॥ ५८ ॥ देव गंधर्व यक्ष राक्षस किसीने हमारे पुत्रको हरण नहीं किया किंतु यह कार्य पुंश्चली स्त्रीका है॥५९॥दैत्य दानवोंकी स्त्री मायां बहुत जानतीहैं उन्होंनेही हरण किया होगा इसमें संदेह नहीं दूसरेसे भय नहीं हो सकता ॥६०॥ वैशंपायन बोले; जब महात्मा कृष्णने ऐसा कहा तो तब तत्त्वसे यदुमंडलमें वार्त्ताके जाननेवाले ॥६१॥ सूत मागध बन्दी सबको प्रसन्न करते हुए. जिनका मधुर शब्द श्रीकृष्णके स्थानमें सुनाई देता था॥६२॥वे दूत सब ओरसे सभाद्वारमें आये और गद्गदवचनसे शनैः२

एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदनः ॥ स्निग्धगम्भीरया वाचा पुनः कृष्णोऽभ्यभाषत ॥५८॥ नायं देवैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः॥ प्रद्युम्नपुत्रोपहृतः पुंश्चल्या नु महायशाः ॥५९॥ मायाविदग्धाः पुंश्चल्यो दैत्यदानवयोषितः ॥ ताभिर्हृतो न संदेहो नान्यतो विद्यते भयम् ॥६०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना ॥ अथावगम्य तत्त्वेन यद्भूतं यदुमण्डले ॥ ६१ ॥ हर्षयन्स तु सर्वेषां सूतमागधवन्दिनाम् ॥ मधुरः श्रूयते घोषो माधवस्य निवेशने ॥६२॥ ते चाराः सर्वतः सर्वे सभाद्वारमुपागताः शनैर्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥६३॥ उद्यानानि गुहाः शैलाः सभा नद्यः सरांसि च ॥ एकैकं शतशो राजन्मार्गितं न च दृश्यते ॥६४॥ अन्ये कृष्णं चरा राजन्नुपागम्य तदाब्रुवन् ॥ सर्वे नो विदिता देशाः प्राद्युम्निर्न च दृश्यते ॥६५॥ यदन्यत्सं-विधातव्यं विधानं यदुनन्दन ॥ तदाज्ञापय नः क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे ॥ ६६ ॥ ततस्ते दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः ॥ अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतः कार्यमुत्तरम् ॥ ६७ ॥

कहने लगे।६३॥उद्यान गुहा शैल नदी सरोवर यह एक एक सौ सौ वार देखे परन्तु हे राजन् ! कहीं अनिरुद्ध नहीं दीखते ॥६४॥ दूसरे चार आकर बोले; हे कृष्ण ! सब देश हमने देखे परन्तु अनिरुद्ध कहीं नहीं विदित हुए॥६५॥ हे यदुनंदन! अब कोई और उपाय कीजिये और अनि-रुद्धकी खोज जिस प्रकार करे सो आज्ञा कीजिये॥६६॥तब वे सब बाष्पाकुल दृष्टिसे दीन होकर परस्पर कहने लगे कि यह क्या कार्य हुआ॥६७॥

कोई होठ काटने लगे कोई नेत्रोंमें जल भरे रह गये कोई भौं चढाकर इसका विचार करने लगे ॥ ६८ ॥ इस प्रकार बहुत प्रकारके वचन कहते और विचार करते हुए अनिरुद्ध कहां गये यह बडा संभ्रम हुआ ॥ ६९ ॥ क्रोधित हुए यादव एक दूसरेको देखते थे, उस रात्रिमें अनिरुद्धको हरण किया यह वार्ता हुई परन्तु कोई निश्चय न हुआ ॥ ७० ॥ उनकें ऐसा विचार करते ही रजनी प्रभात हो गई उस समय तूर्यके निनाद और शंखोंके शब्दोंसे श्रीकृष्णके मंदिरमें जागरण हुआ ॥ ७१ ॥ फिर विमल प्रभात और सूर्यके उदय होनेमें एक नारदजी हँसते हुए सभामें प्रविष्ट

सदंष्टोष्ठपुटाः केचित्केचिद्बाष्पाकुलेक्षणाः ॥ केचिद्भ्रुकुटिमास्थाय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये॥६८॥एवं चिन्तयतां तेषां बह्वर्थमभिभाषितम् ॥ ॥ अनिरुद्धः कुतश्चेति संभ्रमः सुमहानभूत् ॥६९॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्ते यादवा जातमन्यवः ॥ तां निशां विमनस्कास्ते गमयेयुः कथंचन ॥ अनिरुद्धो हृतश्चेति पुनः पुनररिन्दम ॥ ७० ॥ एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा ॥ ततस्तूर्यनिनादैश्च शंखानां च महास्वनैः ॥ प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये ॥ ७१ ॥ ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे ॥ प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव ॥७२॥ दृष्ट्वा तु यादवान्सर्वान्कृष्णेन सह संगतान् ॥ ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत् ॥७३॥ यथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समिति दुर्जयः ॥ मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः ॥ ७४ ॥ सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते ॥ सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत् ॥७५॥ नारद उवाच ॥ किमेवं चिन्तयाविष्टा निःसङ्गागतमानसाः ॥ उत्साहहीनाः सर्वे वै क्लीबा इव समासते ॥ ७६ ॥

हुए ॥ ७२ ॥ सब यादवोंको कृष्णके साथ स्थित देखकर जयशब्दसे कृष्णका पूजन किया ॥ ७३ ॥ तब बुद्धिमान् दुर्जय श्रीकृष्ण विमन हो उठे मधुपर्क और गौ नारदके प्रति प्रभुने दान की ॥ ७४ ॥ सब आस्तरणसे युक्त विमल आसनके ऊपर नारदजी बैठे तब सुखसे बैठे हुए नारदजी यथान्याय वचन कहने लगे ॥ ७५ ॥ नारद बोले; यह निःसंग कहीं अन्यस्थानमें मन लगाये तुम सब किस विचारमें हो तुम सब उत्साहहीन क्लीबोंके समान हो रहे हो ॥ ७६ ॥

जब महात्मा नारदने यह वचन कहे तब वासुदेव बोले; हे नारदजी ! सुनिये ॥७७॥ हे सुव्रत नारदजी!रात्रिमें किसीने अनिरुद्धका हरण किया उन्हींके निमित्त हम सब चिन्तासे व्याकुल होरहे हैं॥७८॥हे मुने!यह वृत्तान्त आपने कहीं देखा वा सुना है.हे पापरहित!वह शीघ्र आप हमारे प्रति कहिये॥७९॥जब महात्मा केशवने यह वचन कहे तब वे हँसकर बोले;हे मधुसूदन!श्रवणकीजिये॥८०॥इकले अनिरुद्धसेही देवासुरके समान बाणसे

इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना॥ वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम् ॥७७॥ अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन्केनापि निशि सुव्रत यस्यार्थे सर्व एवास्म चिन्तयाविष्टचेतसः ॥७८॥ एष ते यदि वृत्तान्तः श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने ॥ भगवन्कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥ ७९ ॥ इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना ॥ प्रहस्यैतद्वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन ॥ ८० ॥ निवृत्तं सुमहद्युद्धं देवासुरसमं महत् ॥ अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे ॥८१॥ उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः ॥ तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सराः॥८२॥उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् ॥ प्राद्युम्निबाणयोः संख्ये बलिवासवयोरिव॥८३॥ अस्माभिश्चापि तद्युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम् ॥ अनिरुद्धो भयात्तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥८४॥ बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः ॥ व्यदिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ॥ ८५ ॥ तं निवारितवान्मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तस्य ह ॥ कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन संयुगे ॥ ८६ ॥

बडा युद्ध हुआहै॥८१॥उस महापराक्रमी बाणासुरकी उषा नाम कन्या है उसके निमित्तचित्रलेखा अप्सरा उनको हर ले गई है ॥८२॥ बाण और अनिरुद्धका बडा दारुण संग्राम हुआ है जसे कभीबलि और इन्द्रका हुआ था॥८३॥हमनेभी उस बडे अद्भुत युद्धको देखा संग्रामसेनहीं लौटनेवाले इस दैत्यने अनिरुद्धके भयसे॥८४॥ मायामें स्थित हो उनको बांध लिया. हे गरुडध्वज ! तब बाणासुरने उनके मारनेकी आज्ञा दी ॥८५॥ तब

उनको कुंभाण्ड नाम मंत्रीने निवारण किया इस प्रकार कुमार अनिरुद्ध संग्राममें बचे।।८६।।तब बाणने मायाके बाणोंसे जो सर्पोंके आकार थे उनको बंधनमें किया है इससे आप शीघ्र जयके निमित्त उठिये।।८७।।हे तात ! जीतनेवालोंके प्राणरक्षण करनेका यह समय नहीं है वीर प्राणके जानेमेंभी भयको प्राप्त स्थित नहीं होते किन्तु धीरतासे स्थित होते हैं ।।८८।। वैशंपायन बोले; यह वचन सुनतेही श्रीकृष्णने सेना सजानेके निमित्त आज्ञा दी ।।८९।। तब चन्दनसे पूर्ण और चारों ओर खीलोंकी वर्षाको देखते हुए महाबाहु जनार्दन उस स्थानसे चले ।। ९० ।। तब नारदजी बोले;आप

बाणेन मायामास्थाय सर्पैर्नियमनं कृतम् ।। उत्तिष्ठतु भवान् शीघ्रं यशसे विजयाय च ।।८७।। नायं संरक्षितुं कालः प्राणांस्तात जयैषिणाम् ।। प्राणैः किंचिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ।।८८।। वैशम्पायन उवाच ।। इत्येवमुक्ते वचने वासुदेवः प्रतापवान् ।। प्रायात्रिकान्वै संभारानाज्ञापयत वीर्यवान् ।। ८९ ।। ततश्चन्दनपूर्णैश्च लाजैश्चैव समन्ततः ।। निर्ययौ स महाबाहुः कीर्यमाणो जनार्दनः ।। ९० ।। नारद उवाच ।। स्मरणं वैनतेयस्य कर्तुमर्हसि माधव ।। न ह्यन्येन तदध्वानं शक्यं गन्तुं महाभुज ।। ९१ ।। आकर्णय तमध्वानं गन्तव्यमतिदुर्जयम् ।। एकादश सहस्राणि योजनानां जनार्दन ।। ९२ ।। तदितः शोणितपुरं प्राद्युम्निर्यत्र साम्प्रतम् ।। मनोजवोमहावीर्यो वैनतेयः प्रतापवान् ।। ९३ ।। समाह्वयस्य गोविन्द स हि त्वां तत्र नेष्यति ।। एकेन सुमुहूर्तेन बाणं संदर्शयिष्यति ।।९४।। वैशम्पायन उवाच ।। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार गरुडं तदा ।। स कृष्णपार्श्वमागम्य प्राञ्जलिर्गरुडः स्थितः ।।९५।। प्रणम्याथ वचः प्राह वैनतेयो महाबलः ।। वासुदेवं महात्मानं श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।।९६।। गरुड उवाच ।। पद्मनाभ महाबाहो किमर्थं संस्मृतो ह्यहम् ।। कृत्यं ते यदिहात्रास्ति श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।। ९७ ।।

गरुडका स्मरण करिये.दूसरेसे उतना मार्ग चलना कठिन है।।९१।।यह वचन सुनकर कि ग्यारह सहस्र योजन मार्ग चलना होगा।।९२।। जहांपर शोणितपुरमें अनिरुद्ध स्थित हैं मनके समान वीर्यवाले प्रतापी गरुडजीको।।९३।।हे गोविन्द ! आप बुलाओ वह आपको वहां ले जांयगे और एक मुहूर्तमें बाणको दिखा देंगे।।९४।।वैशंपायन बोले; यह वचन सुन श्रीकृष्णने गरुडका स्मरण किया.तब वह तत्काल श्रीकृष्णके निकट उपस्थित हुए ।। ९५ ।। महाबली गरुड प्रणाम कर महात्मा वासुदेवसे मनोहर वाणीसे बोले ।। ९६ ।। गरुड बोले; हे महाभुज ! हे पद्मनाभ ! आपने मुझे क्यों

स्मरण किया है जो आपको कृत्य करना है उसके सुननेकी मुझे इच्छा है॥९७॥हे प्रभो ! पंखोंके प्रहारसे किसकी पुरीको नष्ट कर दूं ! हे गोविन्द ! तुम्हारे प्रभावसे कौन मेरे बलको नहीं जानता है॥९८॥ हे वीर!तुम्हारी गदाका वेग और चक्रकी अग्नि कौन मूढात्मा न जानकर अभिमानसे नाश हुआ चाहता है ॥९९॥बलरामजी किसके ऊपर सिंहमुख हलका प्रहार करेंगे. हे प्रभो ! किसका शरीर भिन्न हो पृथ्वीमें पडेगा॥१००॥हे माधव ! शंखके शब्दसे किसको आप मोहित करेंगे ! आज परिवारसहित कौन यमके लोकको जायगा ॥१॥ जब बुद्धिमान् गरुडने इस प्रकारके वचन कहे

कस्य पक्षपरिक्षेपैर्नाशयामि पुरीं प्रभो ॥ प्रभावात्तव गोविन्द को न विद्याद्बलं मम ॥९८॥ गदावेगं च ते वीर चक्राग्निं च महाभुज ॥ नावबुध्यति मूढात्मा को दर्पान्नाशमेष्यति ॥९९॥ हलं सिंहमुखं कस्य वनमाली नियोक्ष्यति ॥ कस्य देहस्तु निर्भिन्नो मेदिनीं यास्यति प्रभो ॥१००॥ कस्य शङ्खरवैः प्राणान्मोहयिष्यसि माधव ॥ कोऽयं सपरिवारोऽद्य यास्यते यमसादनम् ॥ १ ॥ एवमुक्ते तु वचने वैनतेयेन धीमता ॥ वासुदेवो वचः प्राह शृणु त्वं वदतां वर ॥ २ ॥ बलेः पुत्रेण बाणेन प्राद्युम्निरपराजितः ॥ उषायाः कारणे बद्धो नगरे शोणिताह्वये ॥ अनिरुद्धस्तु कामार्तो बद्धो नागैर्विषोल्बणैः ॥ ३ ॥ तस्य मोक्षार्थमाहूतो मया त्वं पतगेश्वर ॥ तव वेगसमो नास्ति पक्षिणां प्रवरो भवान् ॥ अशक्यं च तदध्वानं गन्तुमन्येन काश्यप ॥४॥ तत्र प्रापय मां शीघ्रं यत्र प्राद्युम्निरावसत् ॥ वैदर्भी ते स्नुषा वीर रुदती पुत्रगृद्धिनी ॥ ५ ॥

तब वासुदेवने कहा हे गरुडजी ! सुनो ॥ २ ॥ बलिके पुत्र बाणासुरने नहीं हारनेवाले अनिरुद्धको शोणितपुरमें उषाके निमित्त बांध रक्खा है वह कामार्त अनिरुद्ध तीक्ष्ण विषैले बाणोंसे बांधे गये हैं ॥ ३ ॥ हे गरुड ! उनके छुडानेके निमित्त मैंने तुम्हारा आह्वान किया है तुम्हारे वेगके समान दूसरोंका वेग नहीं है तुम पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो.हे गरुड ! वह मार्ग शीघ्र उल्लंघन करना अशक्य है ॥ ४ ॥ वहां मुझे शीघ्र प्राप्त कराओ जहां प्रद्युम्नके पुत्र है. हे वीर ! तुम्हारी स्नुषा वैदर्भी उस पुत्रके निमित्त रुदन करती है ॥ ५ ॥

तुम्हारे प्रसादसे यह भामिनी पुत्रके सहित स्थित हो. हे पन्नगनाशन ! प्रथम आपने अमृत हरण किया था ॥ ६ ॥ हे महाभुज! उस समय मेरे साथ स्थित होकर तुम मेरे ध्वजारूप सब वृष्णिवंशी तुम्हारे भक्त हैं.हे पतगेश्वर ! इस समय तुम सख्यता और भक्तिको मानो ॥७॥ कोई पक्षी तुम्हारी बराबर वेग नहीं रखता.हे सुपर्ण सर्पनाशक ! मैं पुण्यसे आपकी सौगन्ध कर कहता हूं ॥८॥ आपने इकलेही दासीभावको प्राप्त हुई माताको छुडाया तुमने बहुतोंको अपने पंखोंके विक्षेपसेही नष्ट कर दिया है ॥ ९ ॥ आप अपने पराक्रमसे सब देवताओंको पीठपर बैठाकर अगम्य देशोंमें जाते हो

त्वत्प्रसादाद्भवत्येषा पुत्रेण सह भामिनी ॥ अमृतं तु हृतं पूर्वं त्वया पन्नगनाशन ॥६॥ मया सह समागम्य तस्मिन्काले महाभुज ॥ अभवन्मे ध्वजश्चैव त्वद्भक्ताः सर्ववृष्णयः ॥ सखित्वं मानयस्वाद्य भक्तिं च पतगेश्वर ॥ ७ ॥ तव वेगसमो नास्ति पक्षिणो नच ते समाः ॥ सुपर्ण सुकृतेन त्वां शपे पन्नगनाशन ॥८॥ दासीभावं गता माता मोक्षितैकाकिना पुरा ॥ पक्षविक्षेपमाश्रित्य हता योधास्त्वया पुरा ॥९॥ भवान्सुरगणान्सर्वान्पृष्ठमारोप्य विक्रमात् ॥ गच्छसे ह्यगमान् देशान् विजयश्च तत्राश्रयात् ॥१०॥ गुरुत्वान्मेरुतुल्यस्त्वं लघुत्वात्पवनोपमः ॥ भूते भव्ये भविष्ये च न ते तुल्योऽस्ति विक्रमे ॥११॥ सत्यसंध महाभाग वैनतेय महाद्युते ॥ अनिरुद्धेक्षणेनाद्य साहाय्यमुपकल्प्यताम् ॥१२॥ गरुड उवाच ॥ अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव कृष्ण महाभुज ॥ त्वत्प्रसादाच्च विजयः सर्वत्रैव महाभुज ॥ १३ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि संस्तवान्मधुसूदन ॥ स्तोतव्यस्त्वं मया कृष्ण स्तौषि मां त्वं महाभुज ॥ १४ ॥

और तुम्हारे आश्रयसे जय होती है॥१०॥हे गरुत्मन् ! तुम गुरुतामें मेरुके तुल्य हो.लघुतामें पवनके तुल्य हो पराक्रममें भूत भविष्य वर्तमानमें कोई तुम्हारे तुल्य नहीं है ॥ ११ ॥ हे सत्यसंध महाभाग वैनतेय महाकान्तिमान्!इस समय तुमसे अनिरुद्धके सहाय कल्पना की जायगी ॥१२॥ गरुड बोले; हे महाभुज कृष्ण ! तुम्हारे अतिअद्भुत वचन हैं. हे महाभुज ! तुम्हारे प्रसादसे सर्वत्र विजय होगी १३ ॥ हे मधुसूदन ! आपने मेरी स्तुति की इससे मैं धन्य और अनुगृहीत हूं हे कृष्ण ! मुझे आपकी स्तुति करनी चाहिये थी, न कि मेरी आप स्तुति करें ॥ १४ ॥

वेदके अध्यक्ष देवताओंके अध्यक्ष होकर आप सब कामनाओंके देनेहारे हैं आप अमोघदर्शन हो और वरके अर्थियोंको वर देनेवाले ॥ १५ ॥ चतुर्भुज चतुर्मूर्ति चतुर्होत्रके प्रवृत्त करनेवाले चार आश्रमके होता चक्षुर्नेता महाकवि ॥ १६ ॥ धनुर्धर चक्रधारी भगवान् शंखधारी हो, हे भूमिधर प्रभु ! आप त्रिलोकीमें विख्यात हो ॥ १७ ॥ लांगली शूली चक्री देवकीपुत्र आप चाणूरके मथन करनेवाले गोप्रिय कंसारि आप हो ॥ १८ ॥ गोवर्द्धनधारी मल्लारि मल्लभावन मल्लप्रिय महामल्ल महापुरुष हो ॥ १९ ॥ विप्रप्रिय विप्रके हितकारी विप्रके ज्ञाता ब्रह्मण्य वरेण्य आप

वेदाध्यक्षः सुराध्यक्षः सर्वकामप्रदो भवान् ॥ अमोघदर्शनस्त्वं हि वरार्थीनां वरप्रदः ॥१५॥ चतुर्भुजश्चतुर्मूर्तिश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः ॥ चातुराश्रम्यहोता च चतुर्नेता महाकविः ॥१६॥ धनुर्धरश्चक्रधरो भवान् शङ्खधरो महान् ॥ भवान्पूर्वेषु देहेषु ख्यातो भूमिधरः प्रभो ॥१७॥ लाङ्गली मुसली चक्री देवकीतनयो भवान् ॥ चाणूरमथनश्चैव गोप्रियः कंसहा भवान् ॥ १८ ॥ गोवर्धनधरश्चैव मल्लारिर्मल्लभावनः ॥ मल्लप्रियो महामल्लो महापुरुष इत्यपि ॥१९॥ विप्रप्रियो विप्रहितो विप्रज्ञो विप्रभावनः ॥ ब्रह्मण्यश्च वरेण्यश्च भवान्दामोदरः स्मृतः ॥ प्रलम्बमथनश्चैव केशिहा दानवान्तकः ॥१२०॥ असिलोम्नश्च हन्ता च तथा रावणनाशनः ॥ विभीषणस्य भगवान्राज्यदो वालिनाशनः ॥२१॥ सुग्रीवराज्यदाता त्वं बलिराज्यापहारकः ॥ रत्नहर्ता महारत्नं समुद्रोदरसंभवः ॥२२॥ वरुणश्च भवान्ख्यातो भवांश्च सरिदुद्भवः ॥ भवान्खड्गधरो धन्वी धनुर्धरवरो महान् ॥२३॥ दाशार्ह इति विख्यातो महाधन्वा धनुःप्रियः ॥ गोविन्द इति विख्यात उदधिस्त्वं च सुव्रत ॥ २४ ॥

दामोदररूप हो प्रलम्बके मथन करनेहारे केशी दानवके मारनेवाले हो ॥ १२० ॥ असिलोमा और रावणके मारनेहारे हो आप विभीषणके राज्य देनेवाले और वालिके नाश करनेवाले हो ॥ २१ ॥ सुग्रीवको राज्य देनेवाले बलिके राज्यके हरनेवाले हो रत्नहरता महारत्नरूप धन्वन्तरिरूप हो ॥ २२ ॥ आपही वरुण और मेरुरूप हो तुम खड्ग और धनुषके धारण करनेवाले हो ॥ २३ ॥ महाधन्वा धनुप्रिय आप दाशार्ह नामसे विख्यात हो. आप गोविंद और उदधि नामसे विख्यात हो॥ २४ ॥

आकाश तप समुद्ररूप आप हो, आप बहुत फल देनेवाले स्वर्गरूप और स्वर्गचर हो ॥२५॥ तुम महामेघ और सबके बीजरूप हो त्रिलोकीके मथन करनेवाले और क्रोध लोभ रूपसे जगत्को मथित करते हो ॥२६॥ आप सब काम देनेवाले सब काम और सब धनुषधारी हो आप संवर्त वर्तन प्रलय और अनिलरूप हो ॥ २७ ॥ हिरण्यगर्भरूपज्ञ रूपवान् मधुसूदन और ईश महादेव असंख्य गुणयुक्त हो ॥२८॥ हे यदूत्तम! आप स्तुतिके योग्य हो मेरी स्तुति करनेकी क्यों इच्छा करते हो जो आपने अपने घोर नेत्रसे प्राणी देखे हैं ॥२९॥ वह तिर्यङ् नरकगामी यमदण्डसे हत हुए हैं

आकाशश्च तपश्चैव समुद्रमथनो भवान् ॥ भवान् स्वर्गो बहुफलो भवान्स्वर्गचरो महान् ॥ २५ ॥ त्वमेव च महामेघो बीजनिष्पत्तिरेव च ॥ त्रैलोक्यमथनस्त्वं च क्रोधलोभमनोरथाः ॥ २६ ॥ भवान्कामप्रदश्चैव कामः सर्वधनुर्धरः ॥ संवर्तो वर्तनश्चैव प्रलयो निलयो महान् ॥ २७ ॥ हिरण्यगर्भो रूपज्ञो रूपवान्मधुसूदनः ॥ ईशस्त्वं च महादेव असंख्येयगुणान्वितः ॥ २८ ॥ स्तोतुमिच्छसि मां देव स्तोतव्यस्त्वं यदूत्तम ॥ चक्षुषा ये त्वया घोराः प्राणिनो हि निरीक्षिताः ॥ २९ ॥ हतास्ते यमदण्डेन तिर्यङ्निरयगामिनः ॥ ये त्वया परमप्रीत्या प्राणिनो वै निरीक्षिताः ॥ १३० ॥ इह च प्रेत्य ते सर्वे सर्वथा स्वर्गगामिनः ॥ एष तेऽहं महाबाहो वशगः शासने स्थितः ॥ ३१ ॥ जयस्थानं ततः कृत्वा गरुडः प्राह केशवम् ॥ अयमस्मि स्थितो वीर आरुहस्व महाबल ॥३२॥ ततः कण्ठे परिष्वज्य माधवो गरुडं ततः ॥ सखे शत्रुविनाशाय अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३३ ॥ दत्त्वार्घं परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ आरुरोह महाबाहुः सुपर्णं पुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥

और जो आपने कृपादृष्टिसे निहारे हैं॥१३०॥ वे यहां मरकर अवश्य स्वर्गको जांयगे. हे महाबाहो ! यह मैं आपकी आज्ञामें सदा स्थित हूं ॥३१॥ इस प्रकार जयस्थान करके गरुडने श्रीकृष्णसे कहा; हे वीर ! यह मैं स्थित हूं आप सवार हूजिये ॥३२॥ तब गरुडको माधवने गलेसे लगाकर कहा; हे सखे ! शत्रुविनाशके निमित्त यह अर्घ आप ग्रहण कीजिये ॥३३॥ शंख चक्र गदा पद्मधारी नारायण परमप्रीतिसे अर्घ देकर वह पुरुषो-

त्तम गरुडपर चढे॥ ३४ ॥कृष्णके निकट आकर वह प्रसन्नतासे स्थित हुए कृष्णकेश बलराम विष्णु कृष्ण ॥ ३५ ॥ चार दंष्ट्रा चार बाहु चार वेद और षडंगके जाननेवाले श्रीवत्सांक अरविंदाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचावाले॥३६॥समान अंगुलि समान नख रक्त अंगुली नखान्तर स्निग्ध गंभीर शब्द-वाले गोल बाहु महाभुज ॥ ३७ ॥ लम्बी बाहु ताम्रमुख सिंहके समान पराक्रमवाले सहस्र सूर्यके समान दीप्तिमान् ॥ ३८ ॥ विश्वात्मा भूतभावन भगवान् प्रकाशित होते हैं जिसको प्रसन्न हो प्रजापतिने आठ गुणा ऐश्वर्य दिया है प्रजापति साध्य और देवताओंसे ॥३९॥ तथा निरन्तर दिव्य सूत

कृष्णस्य पार्श्वमागम्य हर्षादेवास्थितोऽभवत ॥ कृष्णकेशः प्रबलयो विष्णुः कृष्णश्च वर्णतः ॥ ३५ ॥ चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्बाहुश्चतुर्वे-दषडङ्गवित् ॥ श्रीवत्साङ्कोऽरविन्दाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचः ॥ ३६ ॥ समांगुलिः समनखो रक्तांगुलिनखान्तरः ॥ स्निग्धगम्भी-रनिर्घोषो वृत्तबाहुर्महाभुजः ॥ ३७ ॥ आजानुबाहुस्ताम्रास्यः सिंहविस्पष्टविक्रमः ॥ सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानः प्रकाशते ॥ ३८ ॥ यः प्रभुर्भाति विश्वात्मा भूतानां भावनो विभुः ॥ यस्याष्टगुणमैश्वर्यं ददौ प्रीतः प्रजापतिः ॥ प्रजापतीनां साध्यानां त्रिदशानां च शाश्वतः ॥ ३९ ॥ स्तूयमानः स्तवैर्दिव्यैः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ऋषिभिश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ १४० ॥ संविधानमथाज्ञाप्य द्वारकायां महाबलः ॥ गमनाय मतिं चक्रे वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ४१ ॥ आस्थितो गरुडं देवस्तस्य चानु हलायुधः ॥ पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्नः शत्रुकर्षणः ॥४२॥ जय बाणं महाबाहो ये चास्यानुगता रणे ॥ न हि ते प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो महामृधे ॥ ४३ ॥ प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे ॥ विजेष्यसि रणे शत्रुं दैत्येन्द्रं सहसैनिकम् ॥ ४४ ॥

मागध बंदियोंसे स्तुतिको प्राप्त हो और वेदवेदांगके पारगामी ऋषियोंके विधानको जानकर ॥ १४० ॥ पुर रक्षणकी आज्ञा दे वह महाबली वासुदेव द्वारकासे जानेकी इच्छा करने लगे ॥४१॥ प्रथम गरुडपर कृष्ण फिर बलराम फिर शत्रुनाशन प्रद्युम्न गरुडपर स्थित हुए ॥ ४२ ॥ हे महाबाहो ! आप बाणको जीतो और उसके अनुचरोंको जीतो युद्धमें कोई आपके सन्मुख स्थित होनेको समर्थ नहीं है ॥ ४३ ॥ आपके प्रसादमें ध्रुवा लक्ष्मी

और पराक्रममें विजय है आप सेनासहित रणमें उस दैत्येन्द्र शत्रुको जीतेंगे॥४४॥इस प्रकार सिद्ध चारण और महर्षियोंके समूहकी आकाशमें वाणी सुनते हुए श्रीकृष्ण गये ॥१४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां कृष्णप्रयाणं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥ वैशंपायन बोले; तब बाजोंके शब्द और शंखोंके महाशब्दसे और सहस्रों बंदि मागध सूतोंके शब्दोंसे ॥१॥ ऊपरको मुखकर जयके आशीर्वाद देते हुए मनुष्योंसे स्तुतिको प्राप्त होते श्रीकृष्णका रूप चन्द्र सूर्य शुक्रके समान प्रकाशित हुआ ॥ २ ॥ उनके आकाशमें चलनेसे रूप अधिक

सिद्धचारणसङ्घानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ शृण्वन् वाचोऽन्तरिक्षे वै प्रययौ केशवो रणे ॥१४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णप्रयाणं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः ॥ बन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥१॥ स तून्मुखैर्जयाशीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः ॥ बभार रूपं सोमार्कशुक्राणां प्रतिमं तदा ॥२॥ अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिष्यतः ॥ वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा ॥३॥ अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसंनिभः ॥ विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकांक्षन्बाणसंक्षयम् ॥४॥ असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः॥ चर्म शार्ङ्गं तथा चापं शङ्खं चैवास्य वामतः ॥५॥ शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना ॥ सहस्रं चैव कायानां वहन्संकर्षणस्तदा ॥६॥ श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कैलास इव शृङ्गवान् ॥ प्रथितो गरुडेनाथ उद्यन्निव दिवाकरः ॥ ७ ॥

शोभित हुआ और नारायणके तेजसे गरुडका रूपभी महाप्रकाशित हुआ॥३॥आठ भुजायुक्त श्रीकृष्ण पर्वतके समान शरीर किये बाणके क्षयकी इच्छा करते हुए पुण्डरीकाक्ष महाशोभित हुए ॥४॥ असि चक्र गदा बाण दक्षिणपार्श्वमें स्थित थे ढाल शार्ङ्गधनुष शंख वाम धारे थे ॥५॥ उस समय शार्ङ्गधनुषधारी सहस्र शिरसे युक्त विदित होते थे और सहस्र शरीर बलरामजी विदित होते थे॥६॥ श्वेतके प्रहार करनेवाले अधृष्य कैलासके शृंगके समान उदित हुए सूर्यके समान भगवान्ने प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

उस समय महात्मा सनत्कुमारका शरीर प्रगट हुआ,जो महाबाहु प्रद्युम्नजी संग्राममें बडे पराक्रमी हैं॥८॥वह गरुड अपने पक्षोंके बलविक्षेपसे बडे बडे पर्वतोंको कंपित करते हुए पवनकाभी तिरस्कार करते वह बलवान् मार्गमें गमन करने लगे॥९॥तब गरुडजी अपनी गतिसे वायुकोभी पीछा करते सिद्ध चारणोंके सुन्दर मार्गमें प्राप्त हुए ॥ १० ॥ तब युद्धमें बली श्रीकृष्णसे बलरामजी बोले;हे कृष्ण ! अपनी कांतिसे हम हीन कैसे हो गये ॥ ११ ॥ सब हम सोनेके समान कांतिवाले हो गये हैं. इसमें संदेह नहीं क्या हम सुमेरुपर्वतके समीपमें प्राप्त हुए यह तुम वर्णन करो॥१२॥श्रीकृष्ण कहने लगे;

सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मनः प्रद्युम्नस्य महाबाहोः संग्रामे विक्रमिष्यतः ॥८॥ स पक्षबलविक्षेपैर्विधुन्वन्पर्वतान्बहून् ॥ जगाम मार्गं बलवान्वातस्य प्रतिषेधयन् ॥९॥ अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा ॥ सिद्धचारणसङ्घानां शुभं मार्गमवातरत् ॥१०॥ अथ रामोऽब्रवीद्वाक्यं कृष्णमप्रतिमं रणे ॥ स्वाभिः प्रभाभिर्हीनाः स्म कृष्ण कस्मादपूर्ववत् ॥११॥ सर्वे कनकवर्णाभाः संवृत्ताः स्म न संशयः ॥ किमिद ब्रूहि नस्तत्त्वं किं मेरोः पार्श्वगा वयम् ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मन्ये बाणस्य नगरमभ्याशस्थमरिंदम ॥ रक्षार्थं तस्त निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन् ॥ १३ ॥ अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः ॥ तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुध ॥१४॥ श्रीराम उवाच ॥ यदि स्म सन्निकर्षस्था यदि निष्प्रभतां गताः ॥ तद्विधत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदत्रानन्तरं हितम् ॥१५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम् ॥ त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम् ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम् ॥ चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबलः ॥१७॥

हे अरिंदम ! बाणासुरके नगरके समीपमें हम आ गये हैं.तिसकी रक्षाके निमित्त प्रकाशमान स्थित हुई यह अग्नि निकली है॥१३॥हे राम ! आहवनीय अग्निकी कांतिसे हम सब दग्ध होते हैं;इस कारण हमारे वर्ण बिगड गये हैं ॥१४॥ बलदेवजी बोले;जो बाणासुरकी पुरीके समीपमें आ गये हैं; और अपनी कांतिसे रहित हो गये हैं, तो जो कुछ यहां हित हो वह करना चाहिये॥१५॥श्रीकृष्ण बोले; हे गरुड ! यहां जैसा होना उचित है वह कार्य तुम करो, जब तुम विधान कर लोगे तब उत्तम कार्य मैं करूंगा ॥१६॥ वैशंपायन बोले;इस प्रकार श्रीकृष्णके वचनको सुन महाबली

गरुडजीने सहस्र मुखोंको धारण किया; क्योंकि कामरूपी थे ॥ १७ ॥ और शीघ्रतासे गंगाजीमें प्राप्त हो उस आकाशगंगामें स्नानकर बहुतसे जलका पानकर ॥ १८ ॥ आकाशमें स्थित हो तिस जलकी वर्षा करने लगे;ऐसे वह अग्नि गरुडजीने शांत ॥ १९ ॥ की ऐसे आकाशगंगाके जलसे शांत हुई हवनीय अग्निको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए गरुड कहने लगे ॥ २० ॥ कि प्रलयकालमें यही अग्नि दग्ध करता है; इसका बडा पराक्रम है ॥ २१ ॥ परन्तु कृष्ण बलदेव प्रद्युम्न यह तीनों तीन लोकोंकोभी दग्ध करनेको समर्थ हैं, क्योंकि इनका ऐसा ही प्रकाश है ॥ २२ ॥

गङ्गामुपागमत्तूर्णं वैनतेयो महाबलः ॥ आप्लुत्याकाशगङ्गायामापीय सलिलं बहु ॥ १८ ॥ प्रववर्षोपरि गतो वैनतेयः प्रतापवान् ॥ तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान्विनतात्मजः ॥ १९ ॥ अग्निराहवनीयस्तु ततः शान्तिमुपागमत् ॥ तं दृष्ट्वाहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गया ॥ परमं विस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥ अहो वीर्यमथाग्नेस्तु यो दहेद्युगसंक्षये ॥२१॥ यदेव वर्णवैरूप्यं चक्रे कृष्णस्य धीमतः ॥ त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ॥ कृष्णः संकर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥२२॥ ततः प्रशान्ते दहने संप्रसस्थे स पक्षिराट् ॥ स्वपक्षबलविक्षेपं कुर्वन्घोरं महास्वनम् ॥२३॥ तं दृष्ट्वा विस्मय तत्र रुद्रस्यानुचराग्नयः ॥ आस्थिता गरुडं ह्येते नानारूपा भयावहाः ॥२४॥ किमर्थमिह संप्राप्ताः के वापीमे जनास्त्रयः ॥ निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नयः ॥ २५ ॥ प्रावर्तयंश्च संग्रामं तैस्त्रिभिः सह यादवैः ॥ तेषां युद्धप्रसक्तानां संनादः सुमहान भूत् ॥ २६ ॥

पीछे जब अग्नि शांत होगया; तब गरुडजी अपने पंखोंके विक्षेपसे महाशब्दको करते हुए चले ॥ २३ ॥ पीछे नाना प्रकारके रूपोंको धारण करनेवाले इन तीनोंको देखकर महादेवके अनुचर अग्नि कहने लगे ॥ २४ ॥ किस कारण यह तीनों इस स्थानमें प्राप्त हुए हैं: और यह कौन हैं; इस प्रकार निश्चयको वे अग्नि नहीं प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ तब तीनों यादवोंके संग संग्राम प्रवृत्त हुआ; जब युद्ध होने लगा तब महाशब्द प्रगट हुआ ॥ २६ ॥

तिस सिंहके समान गर्जनेके शब्दको सुनकर अङ्गिरा नाम अग्नि अपने पुरुषको भेजने लगा॥२७॥कि जहां यह युद्ध होता है तहां तुम गमन करो, देर मत करो;और देखकर तुम यहां शीघ्रआओ॥२८॥इस प्रकारसे कहा हुआ वह पुरुषवेगसे जाकर युद्धको देखने लगाकि सब अग्नियोंका श्रीकृष्णके संग युद्ध हो रहा है ॥२९॥ अर्थात् कल्माष कुसुम दहन शोष तपन इन नामोंवाले पांच अग्नि ॥३०॥ स्वाहाकारके विषयमें विख्यात स्थित हो रहे हैं और भी दूसरे सेनाके जन॥३१॥पिठर पतंग स्वर्ण स्वागाध भ्राज स्वधाकारके आश्रित हुए पांच अग्नि अपनी२सेनाओंको लिये युद्ध कर रहे

तं च श्रुत्वा महानादं सिंहानामिव गर्जताम् ॥ अथाङ्गिराः स्वपुरुषं प्रेषयामास बुद्धिमान् ॥२७॥यत्र तद्वर्त्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम् ॥ दृष्ट्वा तत्सर्वमागच्छ इत्युक्तः प्रहितस्त्वरन् ॥ २८ ॥ तथेत्युक्त्वा स तद्युद्धं वर्तमानमवैक्षत ॥ अग्नीनां वासुदेवेन संसक्तानां महामृधे ॥२९॥ ते जातवेदसः सर्वे कल्माषः कुसुमस्तथा ॥ दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महबलः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्चवह्नयः ॥ अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः ॥३१॥ पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च ॥स्वधाकारश्रयाः पञ्च अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः ॥ ३२ ॥ ज्योतिष्टोमविभागौ च वषट्काराश्रयौ पुनः ॥ द्वावग्नी संप्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती ॥ ३३ ॥ आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम् ॥ तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे ॥ ३४ ॥ स्थितमङ्गिरसं दृष्ट्वा विमुञ्चन्तं शितान् शरान् ॥ कृष्णः प्रोवाच संक्रुद्धः स्मयन्निव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ तिष्ठध्वमग्नयः सर्वे एष वो विदधे भयम् ॥ ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुताः ॥ अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत ॥ ३६ ॥

हैं ॥३२॥ और ज्योतिष्टोम विभाग इन नामोंवाले वषट्कारके आश्रित हुए दोनों अग्नि युद्ध कर रहे हैं ॥३३॥ ऐसे भेजे हुए पुरुषके वचनको सुन अग्निरूप रथमें स्थित हो और प्रकाशरूप बाणकोउठा ज्योतिष्टोम और विभागइन दोनोंअग्नियोंके मध्यमें अङ्गिरा अग्निभी आकर प्राप्त हुआ॥३४॥ तब पैने बाणोंको छोडते हुए अङ्गिरा अग्निसे क्रोधको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण विस्मय करानेके समान वारंवार कहने लगे ॥३५॥कि सब अग्नि स्थित रहो अब मैं तुमको भय देता हूं;मेरे अस्त्रके तेजसे दग्धहुए तुम दिशा और विदिशामें भागकर जाओगे;तब प्रकाशित त्रिशूलको हाथमें धारण कर

अङ्गिरा अग्नि धावमान हुआ॥३६॥और क्रोधसे कृष्णके प्राणोंकोहरनेकी इच्छावाला अङ्गिरा अग्नि जब वेगसे युद्धमें श्रीकृष्णके सन्मुख हुआ, तब अर्द्धचंद्र और पैने और सूर्य अग्निके समान कांतिवाले बाणोंसे श्रीकृष्णने अङ्गिरा अग्निके समान प्रकाशितरूप त्रिशूलको काटकर॥३७॥ स्थूणा-कर्णरूप प्रकाशित दीप्तमान बाणसे अङ्गिरा अग्निकी छातीको वेधन किया ॥३८॥ तब रुधिरसे भीजे हुए गात्रोंसे विष्टब्धशरीर अङ्गिराअग्नि विह्व-लके समान वेगसे पृथ्वीमें गिरा॥३९॥और शेष वे सब अग्नि और चारों ब्रह्माके पुत्ररूप अग्नि युद्धसे भागकर बाणासुरके पुरमें गये ॥४०॥ पीछे

आददान इव क्रोधात्कृष्णप्राणान्महामृधे ॥ त्रिशूलं तस्य दीप्तं तु चिच्छेद परमेषुभिः ॥ अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभो-पमैः ॥३७॥ स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामनाः ॥ विव्याधान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरस ततः ॥ ३८ ॥ रुधिरौघप्लुतैर्गा-त्रैरङ्गिरा विह्वलन्निव ॥ विष्टब्धगात्रः सहसा पपात धरणीतले ॥ ३९ ॥ शेषास्ततोऽग्नयः सर्वे चत्वारो ब्रह्मणः सुताः ॥ आधाव-न्तस्तदा शीघ्रं बाणस्य पुरमन्तिकात् ॥ ४० ॥ आथागमत्ततः कृष्णो यत्र बाणापुरं ततः ॥ अथ बाणपुरं दृष्ट्वा दूरात्प्रोवाच नारदः ॥४१॥ एतत्तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज ॥ अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्या सहितोऽवसत् ॥ ४२ ॥ गुहश्च बाण-गुप्त्यर्थं सततं क्षेमकारणात् ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णः संप्रहसन् ब्रवीत् ॥४३॥ क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयतां च महामुने ॥ यदि वाऽवतरेद्रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति ॥ ४४ ॥ शक्तितो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै ॥ एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयो-स्तदा ॥४५॥ प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते ॥ ततः शङ्खं समाधाय वदने पुष्पकरेक्षणः ॥ ४६ ॥

जहां बाणासुर था तहां श्रीकृष्णभी आये तब बाणासुरके पुरको देख दूरसे नारद मुनि बोले ॥ ४१ ॥ हे महाभुज ! यह शोणितपुर है तिसको तुम देखो; यहां महातेजवाले महादेव पार्वतीके संग वसते हैं ॥ ४२ ॥ और बाणासुरकी रक्षाके अर्थ निरन्तर स्वामिकार्तिकभी रहते हैं; ऐसे नारदके वचनको सुन श्रीकृष्ण हँसकर कहने लगे ॥ ४३ ॥ हे मुने ! एक क्षण विचार करो, जो बाणासुरकी रक्षाके अर्थ महादेवजी आवेंगे तो ॥ ४४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार हमभी महादेवजीके संग युद्ध करेंगे; ऐसे कृष्ण और नारदके कहते हुए ॥ ४५ ॥ बाणासुरके पुरपर आय

पहुँचे, तब अपने शंखको मुखमें धारण कर श्रीकृष्णने बजाया ॥ ४६ ॥ तब वायुके वेगके समान चढते हुएके समान चंद्रमाको मानो मेघोंने उगल दिया है ऐसी शोभा हुई और दैत्योंको भय उत्पत्ति करके ॥४७॥ महाबली अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्ण बाणासुरके पुरमें प्रवेश कर तहां शंखके शब्द और नक्कारोंके शब्दोंसे॥४८॥अनेक प्रकारके शब्दहोते सुने; तब भयसे युद्धमें किंकरोंकी सेनाको आज्ञा दी गई ॥ ४९ ॥ और बहुतसे करोंडो दीप्त प्रहारोंवाले योधा स्थित हैं और संख्यासे रहित और बडे २मेघोंके समान कांतिवाले ॥ ५० ॥ और नील पर्वतके समान अविनाशी अप्रमेय दीप्त

वायुवेगसमुद्धूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन् ॥ ततः प्रध्माप्य तं शङ्खं भयमुत्पाद्य वीर्यवान् ॥४७॥ प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः ॥ ततः शङ्खप्रणादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥ ४८ ॥ बाणानीकानि सहसा संनह्यन्त समन्ततः ॥ ततः किंकरसैन्यं तु व्यादिष्टं समरे भयात् ॥ ४९ ॥ कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा ॥ तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रघनसंनिभम् ॥ ५० ॥ नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम् ॥ दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥५१॥ प्रमाथगणमुख्याश्च आयुध्यन्कृष्णमव्ययम् ॥ सर्वतस्तैः प्रदीप्तास्यैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः ॥ ५२ ॥ अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥५३॥ तद्बलं तु समासाद्य बलभद्रो महाबलः ॥ प्रोवाच वचनं तत्र परस्य बलनाशनः ॥ ५४ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो विधत्स्वैषां महद्भयम् ॥ इति संचोदितः कृष्णो बलभद्रेण धीमता ॥५५॥ तेषां वधार्थमाग्नेयं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥ अस्त्रमस्त्रविदां श्रेष्ठो यमान्तकसमप्रभः ॥ प्रविधूयासुरगणान्क्रव्यादानस्त्रतेजसा ॥ ५६ ॥

प्रहारोंवाले दैत्य दानव राक्षस ॥५१॥ प्रमथगण श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे;और चारों ओरसे प्रकाशित मुखोंवाले यक्ष राक्षस किन्नर लतावाली अग्नियोंकी तरह कांतिके समान होकर ॥ ५२ ॥ वे यक्ष राक्षस किन्नर महाउग्र स्वरूप किये कृष्ण आदि चारोंके रुधिर पीनेको युद्धमें स्थित हुए ॥ ५३ ॥ तब उस सेनामें प्राप्त हो शत्रुनाशी महाबलवाले बलदेवजी कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे महाभुज ! इसको तुम देखो; हे कृष्ण!हे महाबाहो ! इनको तुम बडा भय प्राप्त करो;महात्मा बलदेवजीसे प्रेरित हो ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णने तिनके नाशके अर्थ आग्नेय अस्त्र ग्रहण किया; जब अस्त्र

जाननेवालोंमें श्रेष्ठने वह अस्त्र ग्रहण किया तब वह कालान्तकके समान क्रव्यादरूपी असुरगणोंको नष्ट करके॥५६॥जहां तहां वह सेना दीखती थी; तहां २ वेगसे गिरने लगा, अर्थात् शूल पट्टिश शक्ति रिष्टि धनुष परिघसे युक्त ॥ ५७ ॥ सेना पृथ्वीमें गिरने लगीं; पीछे पर्वत और मेघके समान कांतिवाले नानाप्रकारके रूपोंवाले,और भयानक वाहनों पर स्थित हुए;बहुतसे योधा युद्धमें प्राप्त होने लगे॥५८॥ तब वायुसे प्रेरे हुए मेघोंके समान तथा प्रकीर्ण पर्वतोंके समान दृढ़ धनुष मूसल तलवार गदा परिघोंसे युद्ध करनेवाले वीरोंसे संग्रामभूमि शोभित हुई ॥ ५९ ॥ और वे वीर

प्रययौ त्वरया युक्तो यत्र दृश्येत तद्बलम् ॥ शूलपट्टिशशक्त्यृष्टिपिनाकपरिघायुधम् ॥५७॥ प्रमाथगणभूयिष्ठं बलं तदभवत्क्षितौ ॥ शैलमेघप्रतीकाशैर्नानारूपैर्भयानकैः ॥ वाहनैः सङ्घशः सर्वे योधास्तत्रावतस्थिरे ॥ ५८ ॥ वातोद्धूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः ॥ शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्दृढधन्विभिः ॥ मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा ॥ ५९ ॥ अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् ॥ ततः संकर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ॥६०॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद्दृश्यते बलम् ॥ एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम॥६१॥श्रीकृष्ण उवाच ॥ ममाप्येषैव संजाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् ॥ एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥६२॥ युद्ध्यतः प्राङ्गमुखस्यास्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः॥ सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् ॥ रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन्घोरे महामृधे ॥६३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं ब्रुवन्तस्तन्योन्यमधिरूढाः खगोत्तमम् ॥ गिरिशृङ्गनिभैर्घोरैर्गदामुसललाङ्गलैः॥६४॥

अस्त्रोंसे पीडा देनेवाले स्थित होने लगे तब ऐसी सेनाको देख बलदेवजी श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥ ६० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे पुरुषोत्तम ! हे महाबाहो ! यह जो सेना दीखती है इसके संग युद्ध करनेको मैं इच्छा करता हूं ॥ ६१ ॥ तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि; हे प्रिय ! इन श्रेष्ठ योधाओंके संग युद्ध करनेकी मेरीभी इच्छा है ॥ ६२ ॥ सो युद्ध करनेके समय पूर्वको मुख करनेवाले मेरे अगाडी गरुडजी रहेंगे; और बांई ओर प्रद्युम्न और दाहिनी ओर आप स्थित रहो इस प्रकार इस घोर युद्धमें परस्पर रक्षा करो ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार परस्पर कहते हुए

वे गरुडपर स्थित हुए और पर्वतके शृङ्गके समान गदा मूसल हल इन्होंसे युद्ध करनेवाले ॥६४॥ बलदेवजीका युद्धमें भयानकरूप हुआ,जैसे प्रलय-कालमें सब प्राणियोंको दग्ध करनेवाले कालका रूप हो जाता है ॥ ६५ ॥ तब हलसे सेनाको खेंच और मूसलसे मार युद्धमार्गमें चतुर बलदेवजी विचरने लगे ॥६६॥ और युद्ध करते हुए दैत्योंको पुरुषश्रेष्ठ महाबली प्रद्युम्न बाणोंसे चारों ओर वींधने लगे ॥६७॥ स्निग्ध अंजनके समान कांति-वाले शंख चक्र गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्ण बहुत प्रकारसे शंखको बजाकर युद्ध करने लगे ॥६८॥ और गरुडजीने पंखोंके प्रहारसे नख तथा

युध्यतो रोहिणेयस्य रौद्ररूपमभूत्तदा ॥ युगान्ते सर्वभूतानां कालस्येव दिधक्षितः ॥६५॥ आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेनावपोथ-यत ॥ चचारातिबलो रामो युद्धमार्गविशारदः॥६६॥प्रद्युम्नः शरजालैस्तान्समन्तात्पर्यवारयत् ॥ दानवान्पुरुषव्याघ्रो युध्यमाना न्महाबलः ॥६७॥ स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शंकचक्रगदाधरः ॥ प्रध्माय बहुशः शंखमयुध्यत जनार्दनः ॥ ६८ ॥ पक्षप्रहारनिहता नखतुण्डाग्रदारिताः ॥ नीता वैवस्वतं पुरं वैनतेयेन धीमता॥६९॥तैर्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम् ॥ अभज्यत तदा संख्ये बाणवर्षसमाहतम् ॥ ७० ॥ भज्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकामः समभ्ययात् ॥ ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ॥ ७१ ॥ भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ नदन्मेघसहस्रेण तुल्यो निर्घातनिःस्वनः ॥७२॥ निश्वसन् जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनु र्भृशम् ॥ नेत्राभ्यामाकुलं वक्रं मुहुः कुर्वन्भ्रमन्मुहुः ॥७३॥ संहृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन् ॥ हलायुधमभिक्रुद्धः साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

मुखसे दारित किये बहुतसे योधा यमलोकको गये॥६९॥तिनसे हन्यमान हो दैत्योंकी सेना बाणोंकी वर्षासे मरने लगी ॥ ७० ॥ जब सेना मरने लगी तब रक्षा करनेके अर्थ तीन पैरोंवाला और तीन शिरोंवाला और छः भुजाओंवाला और नौनेत्रोंवाला॥७१॥भस्मका प्रहार करनेवाला भया-नक कालके समान तथा सहस्रमेघोंके समान शब्द करनेवाला ॥७२॥ ऊंचे श्वास लेने और जंभाई लेनेवाला, और अतिनिद्रासे युक्त शरीरवाला और नेत्रोंसे आकुलरूप मुखको वारंवार करनेवाला ॥ ७३ ॥ और वारंवार भ्रमनेवाला, खडे रोमोंवाला, ग्लानरूप नेत्रोंवाला, भग्नचित्तके समान

श्वांस लेनेवाला, क्रोधको प्राप्त हुआ ज्वर बलदेवजीसे आक्षेपपूर्वक वचन कहने लगा ॥७४॥ तुम बलसे ऐसे मत्त हो जो युद्धमें मुझे नहीं देखते, स्थित हो स्थित हो इस युद्धमें हमसे तुम जीते नहीं बचोगे ॥७५॥ इस प्रकार कहकर हँसता हुआ प्रलयकालकी अग्निके समान घोररूप भयको जनाता हुआ मुट्ठी बांधे हुए ज्वर बलदेवजीके सन्मुख दौडा ॥७६॥ और युद्धमें सहस्रों मंडलोंको करनेवाले बलदेवजीके सन्मुख प्राप्त हुआ ॥ ७७ ॥ अतिबलवाले ज्वरने बलदेवजीके शरीरपर भस्मका प्रहार किया तब शीघ्रतासे पर्वतके समानशरीरवाले बलदेवजीकी छातीपर भस्म गिरी॥७८॥

किमेवं बलमत्तोऽसि न मां पश्यसि संयुगे॥ तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥७५॥इत्येवमुक्त्वा प्रहसन्हलायुधमुपाद्रवत्॥ युगान्ताग्निनिभैर्घोरैर्मुष्टिभिर्जनयन् भयम् ॥७६॥ चरतस्तत्र संग्रामे मण्डलानि सहस्रशः ॥रौहिणेयस्य शीघ्रेण नावस्थान महश्यत ॥७७॥ तस्य भस्म तदा क्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा॥ शैघ्र्याद्वक्षोनिपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥७८॥ तद्भस्म वक्षसस्तस्य मेरोः शिखरमागतम्॥ प्रदीप्तं पतितं तत्र गिरिशृङ्गं व्यदारयत् ॥७९॥शेषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वजः ॥ निःश्वसन् जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम् ॥ ८० ॥ नेत्रयोराकुलत्वं च मुहुः कुर्वन्भ्रमंस्तथा ॥ संहृष्टरोमा ग्लानाक्षः क्षिप्तचित्त इव श्वसन् ॥८१॥ ततो हलधरो भग्नः कृष्णमाह विचेतनः ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रदीप्तोऽस्म्यभयं कुरु ॥८२॥दह्यामि सर्वतस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम ॥ इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा ॥ ८३ ॥

उनकी छातीसे वह भस्म मेरुके शिखरतक प्राप्त हुई;और प्रकाशित हो उसने पर्वतके शिखरको दारण किया ॥७९॥ और शेष भस्मसे बलदेवजी जलने लगे.तब भग्न हुए और मूर्छित हुए बलदेवजीवारंवार श्वास और जंभाई लेने लगे और निद्रायुक्त हो गये॥८०॥नेत्र व्याकुल. हो गये वारंवार भ्रम हुआ रुयें खडे होगई, नेत्र कातर हुए विक्षिप्त चित्त हो श्वांस लेते हुए ॥८१॥ भग्नचित्त बलरामजी श्रीकृष्णसेकहने लगे; हे कृष्ण ! हे कृष्ण! हे महाबाहो मैं जलता हूं मुझे अभय दो ॥ ८२ ॥ हे प्रिय ! मैं चारों ओरसे दग्ध होता हूं मेरी शांति कैसे हो; इस प्रकार महा-

तेजस्वी बलरामजीके वचन सुन॥८३॥प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण हँसकर बोले कि; हे प्रिय ! डरो मत भय मत मानो. ऐसे कह बलदेवजीसे श्रीकृष्ण मिले ॥८४॥ तब स्नेहसे मिलनेके कारण बलदेवजीका दाह शांत हुआ;इस प्रकार श्रीकृष्णने दाहसे बलदेवजीको छुडाकर॥८५॥ श्रीकृष्णने ज्वरसे कहा;हे ज्वर! तू यहां आ, और जो तेरेमें शक्ति हो तो अपनी शक्तिके अनुसार मुझसे युद्ध कर ॥ ८६ ॥ और जो तुझमें पौरुष हो वह मुझे दिखा; इस प्रकार दाहने और वांये दोनों भुजाओंको फडकाकर श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ८७ ॥ तब महाबल बली ज्वरने

प्रहस्य वचनं प्राह कृष्णः प्रहरतां वरः॥ न भेतव्यमितीयुक्त्वा परिष्वक्तो हलायुधः॥८४॥ कृष्णेन परमस्नेहात्ततो दाहात्प्रमुच्यत॥ मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात्तु मधुसूदनः ॥८५॥ प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वर तदा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे ॥ ८६ ॥ यच्च ते पौरुषं सर्वं तद्दर्शयतु नो भवान् ॥ सव्येतराभ्यां बाहुभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ॥ ८७ ॥ चिक्षेपैनं महद्भस्म ज्वालागर्भं महाबलः॥ततः प्रदीप्तगात्रस्तु मुहूर्तमभवत्प्रभुः ॥८८॥ कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः शमं चाग्निर्गतस्ततः॥ ततस्तैर्भुजगाकारैर्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा ॥ ८९ ॥ जघान कृष्णं ग्रीवायां मुष्टिनैकेन चोरसि ॥ स संप्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥९०॥ ज्वरस्य तु महायुद्धे कृष्णस्य तु महौजसः ॥ पर्वतेषु पतन्तीनामशनीनामिव स्वनः ॥९१॥ कृष्णज्वरभुजाघातैर्युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ नैवमेवं प्रहर्त्तव्यमिति तत्र महास्वनः ॥ मुहूर्त्तमभवद्युद्धमन्योन्यं तु महात्मनोः ॥ ९२ ॥

गर्भरूप भस्मको श्रीकृष्णकी ओर फेंका, तब एक मुहूर्ततक तो श्रीकृष्णका शरीर प्रज्वलित हो गया ॥ ८८ ॥ पीछे प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके शरीरकी अग्नि शान्त हो गई; तब सर्पोंके आकारवाली तीन बाहुओंसे ॥ ८९ ॥ ज्वरने एक मुक्का श्रीकृष्णकी ग्रीबापर मारा; और श्रीकृष्णने ज्वरकी छातीमें एक मुक्का मारा ऐसे दोनों सिंहरूप पुरुषोंका प्रहार हुआ ॥९०॥ परस्पर दोनोंके महाप्रहार करनेसे पर्वतमें पडते हुए वज्रके समान शब्द होनेलगा॥९१॥तब दोनोंके मुक्कोंके घातोंसे उग्र युद्ध होनेलगा; और ऐसे प्रहार मत करो इस प्रकार उस स्थानमें शब्द होने

लगा; दोनोंका परस्पर एक मुहूर्ततक युद्ध हुआ॥९२॥तब आकाशमें विचरनेवाले ज्वरको तिस युद्धमें सोनेके विचित्र भूषणोंसे भूषित भुजासे जगत्का क्षय करनेवाले और शरीरको धारण करनेवाले ईश्वररूप श्रीकृष्ण पीडित करने लगे॥९३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां कृष्णज्वरयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशंपायन बोले;पीछे मृतप्राय ज्वरको जानकर शत्रुओंको सूक्ष्म करनेवाले श्रीकृष्ण हाथोंके बलसे ज्वरको पृथ्वीमें पटकने लगे॥१॥ तब ज्योंही श्रीकृष्णकी भुजाओंसे अलग हुआ त्योंही वह ज्वर अतिबलवाले श्रीकृष्णके शरीरमें प्रवेश कर

ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं न्यपीडयद्भुजवलयेन संयुगे ॥ जगत्क्षयं समुपनयन् जगत्पतिः शरीरधृग्गगनचरं महामृधे ॥९३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णज्वरयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशंपायन उवाच ॥ मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदनः ॥ कृष्णो भुजबलाभ्यां तु चिक्षेपाथ महीतले ॥१॥ मुक्तमात्रः स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह ॥ अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः ॥२॥ स ह्याविष्टस्तदा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा ॥ कृष्णः स्खलन्निव मुहुः क्षितौ गाढं व्यवर्त्तत ॥ ३ ॥ जम्भते श्वसते चैव वल्गते च पुनः पुनः ॥ रोमाञ्चोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते ॥ ४ ॥ ततः स्थैर्यं समालम्ब्य कृष्णः परपुरंजयः ॥ विकुर्वति महायोगी जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥ ५ ॥ ज्वराभिभूतमात्मानं विज्ञाय पुरुषोत्तमः ॥ सोऽसृजज्ज्वरमन्यं तु पूर्वज्वरविनाशनम्॥६॥घोरं वैष्णवमत्युग्रं सर्वप्राणिभयंकरम्॥संसृष्टवान्स तेजस्वी तं ज्वरं भीमविक्रमम्॥७॥

गया और महाबली श्रीकृष्णका शरीर न छोडा ॥२॥ तब अतिबलवाले ज्वरसे आविष्ट हुए श्रीकृष्ण वारंवार चलायमानके समान पृथ्वीमें अत्यन्त भ्रमने लगे ॥ ३ ॥ कभी जंभाई ले, कभी बुरी चेष्टा करें,और कभी रोमावली खड़ी होके निद्रासे व्याप्त हों ऐसे विकारोंको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ और वारंवार जंभाईको लेते हुए महायोगी श्रीकृष्ण धीरज धारण कर ॥ ५ ॥ ज्वरसे अभिभूत जानकर पूर्वज्वरको नाश करनेवाले दूसरे ज्वरको रचते हुए॥६॥जो घोररूप वैष्णवतेजसे रचा हुआ और अतिउग्र सब प्राणियोंको भय देनेवाला, और भीमपराक्रमवाला था ऐसे ज्वरको श्रीकृष्णने रचा॥७॥

श्रीकृष्णसे रचे हुए ज्वरने तिस पूर्वोक्त ज्वरको अपने बलसे ग्रहण कर श्रीकृष्णको दिया तब श्रीकृष्ण उसे ग्रहण कर॥८॥महाबली अतिक्रोधको प्राप्त हुए; श्रीकृष्णने अपने शरीरसे तिस पूर्वोक्त ज्वरको अपने ज्वरके संग निकाला॥९॥और तिस पूर्वोक्त ज्वरको पकड कर पृथ्वीमें सौ टुकडे करनेकी श्रीकृष्णने इच्छा की; तब ज्वर बडा शब्द कर बोला; हे भगवन् ! तुम मेरी रक्षा करनेके योग्य हो॥१०॥जब श्रीकृष्णने उस ज्वरको पकडा तब शरीरसे रहित आकाशवाणी बोली॥११॥हे कृष्ण २ ! हे महाबाहो ! हे यादवोंको आनंदके देनेवाले ! इस ज्वरको तुम मत मारो; हे अनघ ! तुम

ज्वरः कृष्ण विसृष्टस्तु गृहीत्वा तं ज्वरं बलात् ॥ कृष्णाय हृष्टः प्रायच्छत्तं जग्राह ततो हरिः ॥८॥ ततस्तं परमक्रुद्धो वासुदेवो महाबलः ॥ स्वगात्रात्स्वज्वरेणैव निष्क्रामयत वीर्यवान् ॥९॥आविध्य भूतले चैनं शतधा कर्तुमुद्यतः ॥ व्याघोषत ज्वरस्तत्र भोः परित्रातुमर्हसि ॥ १० ॥ आविध्यमाने तस्मिंस्तु कृष्णेनामिततेजसा ॥ अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षादभाषत ॥ ११ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन ॥ मा वधीर्ज्वरमेनं तु रक्षणीयस्त्वयानघ ॥१२॥ इत्येवमुक्ते वचने तं मुमोच हरिः स्वयम् ॥ भूतभव्यभविष्यस्य जगतः परमो गुरुः ॥१३॥ कृष्णस्य पादयोर्मूर्ध्ना शरणं सोऽगमज्ज्वरः ॥ एवमुक्तो हृषीकेशं ज्वरो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १४ ॥ शृणुष्व मम गोविन्द विज्ञाप्यं यदुनन्दन ॥ यो मे मनोरथो देव तं त्वं कुरु महाभुज ॥ १५ ॥ अहमेको ज्वरस्तात नान्यो लोके ज्वरो भवेत् ॥ त्वत्प्रसादाद्धि देवेश वरमेनं वृणोम्यहम् ॥ १६ ॥

इसकी रक्षा करनेके योग्य हो॥१२॥ऐसे आकाशवाणीको सुन त्रिकालको जाननेवाले जगत्के गुरु श्रीकृष्णने ज्वरको छोड दिया ॥ १३ ॥ तब कृष्णके चरणारविन्दोंमें मस्तकसे नमस्कार कर शरणागत हो ज्वर कहने लगा ॥ १४ ॥ हे गोविंद ! मेरे वचनको सुन, और कुछ आज्ञा करो, जो मेरा मनोरथ है तिसको हे देव ! तुम करो ॥ १५ ॥ हे तात ! मैं एक ज्वर हूं और इस लोकमें दूसरा ज्वर न रहे; तुम्हारे प्रसादसे हे देवेश ! यह वर मांगता हूं ॥ १६ ॥

तब श्रीकृष्ण कहनेलगे, हेज्वर! जो तू चाहता है सो तेरा मनोरथ पूर्ण होगा; क्योंकि मैं वर मांगनेवालोंको वर देताहूं और तू तो मेरीशरण होगया॥ १७॥ इस कारण पूर्वके समान तू ज्वररह और मेरा रचा हुआ यह ज्वर मेरेही विषे लीन हो जायगा ॥ १८॥ वैशंपायन बोले; ऐसे ज्वरसे वचन कहकर महायशवाले और प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण फिर वचन कहने लगे॥ १९॥ वासुदेव बोले कि; हे ज्वर! मेरी शिक्षाको सुन जैसे तू इस लोकमें विचरेगा और सब जातियोंमें स्थावर जंगममें निवास करेगा॥ २०॥ अर्थात् जो मेरे प्यारकी इच्छा करे है; तो अपनी आत्माके तीन विभाग कर;

देव उवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते यथा त्वं ज्वर कांक्षसे ॥ वरार्थिनां वरो देयो भवांश्च शरणं गतः ॥ १७ ॥ एक एव ज्वरो लोके भवानस्तु यथा पुरा ॥ योऽयं मया ज्वरः सृष्टो मय्येवैष प्रलीयताम् ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्ते तु वचने ज्वरं प्रति महायशाः ॥ कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ १९॥ वासुदेव उवाच ॥ शृणुष्व ज्वर संदेशं यथा लोके चरिष्यसि ॥ सर्वजातिषु विश्रब्धं यथा स्थावरजंगमे ॥ २० ॥ त्रिधा विभज्य चात्मानं मत्प्रियं यदि कांक्षसे ॥ चतुष्पादान्भजैकेन द्वितीयेन च स्थावरान् ॥ २१॥ तृतीयो यश्च ते भागो मानुषेषूपपत्स्यते ॥ त्रिधाभूतं वपुः कृत्वा पक्षिषु त्वं भव ज्वर ॥ २२॥ चतुर्थो यस्तृतीयस्य भविष्यति स ते ध्रुवम् ॥ एकान्तरस्तृतीयस्तु स वै चातुर्थिको ज्वरः ॥ २३ ॥ मानुषेष्वभिभेदेन वस त्वं प्रविभज्य वै ॥ जातिष्वथावशेषासु निवस त्वं शृणुष्व मे ॥ २४ ॥ वृक्षेषु कीटरूपेण तथा संकोचपत्रकः ॥ पाण्डुपत्रश्च विख्यातः फलेष्वातुर्यमेव च ॥ २५ ॥ अपां तु नीलिकां विद्याच्छिखोद्भेदेन बर्हिणाम् ॥ पद्मिन्यादौ हिमो भूत्वा पृथिव्यामपि चोषरः॥ २६॥

एक विभागसे चौपायोंको पीडित कर और दूसरे भागसे स्थावरोंको पीडित कर ॥ २१॥ और तीसरे भागसे मनुष्योंको पीडित कर; इस प्रकार शरीरके तीन भागकर पक्षियोंको ॥ २२॥ तीसरे भागके चौथे हिस्सेसे पीडित कर और एकांतर तृतीयक चातुर्थिक इन भेदोंसे विभाग कर॥ २३ ॥ मनुष्योंमें वस; और सब जातियोंमें वसनेके योग्य है सो तू सुन॥ २४॥ वृक्षोंमें कीटरूपसे तथा संकुचित पत्तोंवाला; तथा पीले रंगके पत्तोंवाला होकर तू वस; और फलोंमें एक प्रदेशगत जालसे संकोचित हुआ तू वस॥ २५॥ और जलमें काई रूप होकर वस; और मयूरके शरीरमें शिखाके दुभेदरूपसे

वस और कमलिनीमें हिमरूप होकर वस और पृथ्वीमें ऊषररूप होकर वस॥२६॥गायोंमें अपस्मारक और खुरोंका रोग होकर तू वस॥२७॥ ऐसे बहुतरूपोंसे पृथ्वी तलमें मेरेप्रसादसे निवास करेगा;और दर्शनसे स्पर्शनसे प्राणियोंको मारेगा॥२८॥देवता और मनुष्योंके विना तुझे अन्य कोई नहीं सह सकेगा. वैशंपायन बोले; कृष्णकेवचनको सुन प्रसन्न हुआ ज्वर॥२९॥ नमस्कार कर और अंजलिको बांध कहने लगा,हे माधव!सब जातिका स्वामी आपने मुझे किया इससे मैं धन्य हूं ॥३०॥ हे पुरुषोत्तम ! फिरभी तुम्हारे वचन करनेकी मेरी इच्छा है. हे गोविंद ! इस कारण आज्ञा दो

गौरिकः पर्वतेष्वेव मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ गोष्वपस्मारको भूत्वा खोरकश्च भविष्यसि ॥२७॥ एवं त्वं बहुरूपेण भविष्यसि ॥ महीतले॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि प्राणिनां वधमेष्यसि ॥ २८ ॥ ऋते देवमनुष्याणां नान्यस्त्वां विसहिष्यति ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ज्वरो हृष्टमना ह्यभूत् ॥ २९ ॥ प्रोवाच वचनं किंचित् प्रणमित्वा कृताञ्जलिः॥ज्वर उवाच॥ सर्वजातिप्रभुत्वेन कृतो धन्योस्मि माधव ॥३०॥ भूयश्च ते वचः कर्त्तुमिच्छामि पुरुषर्षभ ॥ तदाज्ञापय गोविन्द किं करोमि महाभुज ॥३१॥ अहमसुरकुलप्रमाथिना त्रिपुरहरेण हरेण निर्मितः ॥ रणशिरसि विनिर्जितस्त्वया प्रभुरसि देव तवास्मि किंकरः ॥ ३२ ॥ धन्योऽस्म्येनुगृहीतोऽस्मि यत्त्वया मत्प्रियं कृतम् ॥ आज्ञापय प्रियं किं ते चक्रायुध करोम्यहम् ॥३३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा वासुदेवोऽब्रवीद्वचः ॥ अभिसंधिं शृणुष्वाद्य यत्त्वां वक्ष्यामि निश्चयात् ॥३४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ महाहवे तव मम च द्वयोरिमं पराक्रमं भुजबलकेवलाश्रयोः ॥ प्रणम्य मामेकमनाःपठेत्तु यःस वै भवेज्ज्वर विगतज्वरो नरः॥३५॥

मैं क्या करूं ॥३१॥दैत्योंके कुलको नाशनेवाले त्रिपुरासुरको मारनेवाले महादेवजीने मुझे रचा था और युद्धमें तुमने जीत लिया इस कारण तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा दास हूं॥३२॥मैं धन्य हूं और अनुग्रहीत हूं जो तुमने मुझे प्यार किया है इस कारण हे चक्रायुध ! मुझे आज्ञा दो तुमको प्रिय हो सो मैं करूं॥३३॥वैशंपायन बोले, कि ऐसे ज्वरके वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, जो मेरेसे प्यार चाहता है, तो मेरे कहनेको कर ॥३४॥ श्रीकृष्ण कहने लगे कि जो मनुष्य महायुद्धमें तेरे इस पराक्रमरूप आख्यानको पढेगा; और मुझे एकांत मनसे नमस्कार करे वह मनुष्य ज्वरसे छूट

जायगा॥३५॥ तीन पैरोंवाला, भस्मरूप प्रहार करनेवाला, तीन शिरोंवाला नौ नेत्रोंवाला और सब रोगोंका पति ज्वर प्रसन्न हुआ मुझे सुख दे॥३६॥ आद्यंतवाले कवि पुराण सूक्ष्म बडे और शिक्षा देनेवाले अनिरुद्ध प्रद्युम्न बलदेव श्रीकृष्ण यह चारों मेरे ज्वरोंका नाश करो; जो मनुष्य ऐसे प्रार्थना करे उसकेभी ज्वर दूर हो जांगे॥३७॥ वैशंपायन बोले; कि ऐसे महात्मा श्रीकृष्णने ज्वरसे कहा तब ज्वर श्रीकृष्णसे कहने लगा कि महाराज ऐसाही होगा ॥३८॥ ऐसे श्रीकृष्णसे वरको प्राप्त हो और प्रतिज्ञाको कर श्रीकृष्णको शिरसे नमस्कार कर प्रसन्न हुआ ज्वर युद्धसे भाग चला गया॥३९॥ इति श्रीमहाभारते

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा नवलोचनः ॥ स मे प्रीतः सुखं दद्यात्सर्वामयपतिर्ज्वरः ॥३६॥ आद्यन्तवन्तः कवयः पुराणाः सूक्ष्मा बृहन्तोऽप्यनुशासितारः ॥ सर्वान् ज्वरान्घ्नन्तु ममानिरुद्धप्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ एवमुक्तस्तु कृष्णेन ज्वरः साक्षान्महात्मना ॥ प्रोवाच यदुशार्दूलमेवमेतद्भविष्यति ॥ ३८ ॥ वरं लब्ध्वा ज्वरो हृष्टः कृष्णाच्च समयं पुनः ॥ प्रणम्य शिरसा कृष्णमपक्रान्तस्ततो रणात् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि ज्वरकृष्णसंवादो नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्ते त्वरिताः सर्वे त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ वैनतेयमथारुह्य युध्यमाना रणे स्थिताः ॥ १ ॥ ततःसर्वाण्यनीकानि बाणवर्षैरवाकिरन् ॥ अर्दयन्वैनतेयस्था नन्दतोऽतिबलाद्रणे ॥ २ ॥ चक्रलाङ्गलपातैश्च बाणवर्षैश्च पीडितम् ॥ संचुकोप महानीकं दानवानां दुरासदम् ॥३॥ कक्षेऽग्निरिव संवृद्धः शुष्केन्धनसमीरितः ॥ कृष्णबाणाग्निरुद्भूतो विवृद्धिं परमां गतः ॥४॥ दानवानां सहस्राणि तस्मिन्समरमूर्द्धनि ॥ युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्दहमानो व्यराजत ॥५॥

खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां ज्वरकृष्णसंवादो नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥ वैशंपायन बोले; पीछे वे तीनों अग्निके समान प्रकाशित हुए गरुडजीपर चढकर रणमें युद्ध करने लगे॥१॥ तब बाणोंकी वर्षासे सब सेनाओंको पीडित करते हुए और अतिशब्द करते हुए शोभित होने लगे ॥२॥ चक्र हल वायु बाणोंकी वर्षासे पीडित हुई दैत्योंकी सेनाको पकडने लगे ॥३॥ तब जैसे सूखे काष्ठमें अग्नि पडतेही बढकर प्रकाश करती है तैसे श्रीकृष्णके बाणोंसे उपजा हुआ अग्नि बढकर ॥ ४ ॥ प्रलयकी अग्निके समान युद्धमें सहस्रों दैत्योंकी सेनाको दग्ध करता हुआ शोभित

होने लगा ॥५॥ ऐसे नानाप्रकारके प्रहारोंसे पीडित और जलती हुई सेनाको प्राप्त हो बाणासुर भागते हुएसे वचन कहने लगा॥६॥इस लाघवको प्राप्त होकर भयसे विक्लव और दैत्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले तुम इस महायुद्धमें कैसे भागते हो॥७॥और कवच तलवार ,गदा प्रास ढाल फरसोंको त्याग २ कर आकाशचारीभी होकर कैसे तुम भागते हो॥८॥अपना वास अपनी जाति और महादेवजीके संसर्गको माननेवालोंको भागना उचित नहीं है, अब मैं युद्धमें स्थित हूं ॥ ९ ॥ऐसे बाणासुरके वचनको सुनकर भयसे मोहित दैत्य फिर उलटे युद्धमें प्राप्त हुए ॥१०॥ और प्रमथ-

तां दीप्यमानां महतीं नानाप्रहरणार्दिताम् ॥ सेनां बाणः समासाद्य वारयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ लाघवं समुपागम्य किमर्थं भयविक्लवाः ॥ दैत्यवंशसमुत्पन्नाः पलायध्वं महाहवात् ॥७॥ कवचासिगदाप्रासखड्गचर्मपरश्वधान् ॥ उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति किं भवन्तोऽन्तरिक्षगाः ॥ ८ ॥ स्वजातिं चैव भावं च हरसंसर्गमेव च ॥मानयद्भिर्न गन्तव्यमेषो ह्यहमवस्थितः ॥ ९ ॥ एवमुच्चरितं वाक्यं शृण्वन्तस्तदचिन्तयन् ॥ अपक्रामन्त ते सर्वे दानवा भयमोहिताः ॥१०॥ प्रमाथगणशेषं तु तदनीकमतिष्ठत ॥ भग्नावशेषं युद्धाय पुनश्चक्रे मनस्तदा ॥ ११ ॥ कुंभाण्डो नाम बाणस्य सखामात्यश्च वीर्यवान् ॥ भग्नं स्वबलमालोक्य इदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥ एष बाणः स्थितो युद्धे शंकरोऽयं गुहस्तथा ॥ किथर्मं बलमुत्सृज्य भवन्तो यान्ति मोहिताः ॥प्राणांस्त्यक्त्वा पलायन्त सर्वे दानवपुङ्गवाः ॥ १३ ॥ एवं कुम्भाण्ड वाक्यं ते शृण्वन्तो भयविह्वलाः ॥ एकान्ते भय वित्रस्ताः सर्वे यान्ति दिशो दश॥१४॥ भग्नं बलं ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामिततेजसा ॥ संरक्तनयनः स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥ १५ ॥

गणोंकी सेना स्थित रही; और उनमें अविशेष रहा सोई युद्धमें मन करता हुआ॥११॥बाणासुरका मित्र और मंत्री अतिवीर्यवान् कुंभांड अपनी सेनाको कटती हुई देख कहने लगा ॥१२॥ कि युद्धमें यह बाणासुर स्थित होरहा है;और यह महादेवजी स्थित हो रहे हैं; और यह स्वामी कार्तिकजी स्थित हो रहे हैं सो बलको त्याग मोहित हुए तुम कहां जाते हो॥१३॥इस प्रकार कुंभांडके वचनको सुनते हुए और भयसे विह्वल हुए बहुतसे दैत्य दशों दिशाओंको एकांतमें प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ ऐसे कृष्णसे कटती हुई सेनाको देख लालनेत्रोंवाले महादेव युद्ध करनेको स्थित हुए ॥ १५ ॥

पीछे बाणासुरकी रक्षा करनेके अर्थ अग्निके समान रथमें स्वामिकार्तिकजी स्थित होकर ॥१६॥ नंदीश्वरसे युक्त रथमें बैठ वीर्यवान् और ओष्ठोंके पुटको दशनेवाले महादेवजी जहां श्रीकृष्ण स्थित थे वहां गये ॥१७॥ मानो आकाशका पान करते हुए,और पौर्णमासीमें मेघसे युक्त चंद्रमा होता है तैसे॥१८॥महादेवजीका रथ प्रकाशित हुआ; पीछे नानाप्रकारके रूपोंवाले भयदेनेवाले नानाप्रकारके शब्दोंको करनेवाले सहस्रों गणोंसे युक्तरथ दशों दिशाओंको शोभित करनेलगा॥१९॥कितनेक सिंह सरीखे मुखोंवाले, और कितने एक बघेराके मुखके समानमुखवाले और कितने एक सर्प अश्व ऊंट हाथीके मुखोंके समान मुखवाले॥२०॥औरकितने एक सर्परूप यज्ञोपवीतोंवाले,और कितने एक खरोंकेसमान मुखोंवालेऔर कितने एकअति-

बाणसंरक्षणं कर्त्तुं रथमास्थाय सुप्रभम् ॥ देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै ॥१६॥ नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान्॥ संदष्टौष्ठपुटो रुद्रः प्राधावत यतो हरिः ॥१७॥ पिबन्निव तदाकाशं सिंहयुक्तो महास्वनः ॥ रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्यां यथा शशी ॥१८॥ ततो गणसहस्रैस्तु नानारूपैर्भयावहैः ॥ नदद्भिर्विविधान्नादान्रथो देवस्य शोभयन् ॥१९॥ केचित्सिंहमुखा-स्तत्र तथा व्याघ्रमुखाः परे ॥ नागाश्वोष्ट्रमुखास्तत्र प्रवेपुरतिपीडिताः ॥ २० ॥ व्यालयज्ञोपवीताश्च केचित्तत्र महाबलाः ॥ खरो-ष्ट्रगजवक्त्राश्च अश्वग्रीवाश्च संस्थिताः ॥ २१ ॥ छागमार्जारवक्त्राश्च मेषवक्त्रास्तथा परे ॥ चीरिणः शिखिनश्चान्ये जटिलोर्ध्वशि-रोरुहाः ॥२२॥ लग्नाः परिपतन्ति स्म शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ केचित्सौम्यमुखास्तत्र दिव्यैः शस्त्रैरलंकृताः ॥२३॥ नानापुष्प-कृतापीडा नानाप्रहरणायुधाः ॥ वामना विकटाश्चैव सिंहव्याघ्रपरिच्छदाः ॥ २४ ॥

बलवाले;और कितने एक अश्वकी ग्रीवाके समान ग्रीवावाले॥२१॥ और कितने एक बकरे मेंढा बिलावके मुखोंके समान मुखवाले और कितने एक चीरोंको धारण करनेवाले;और कितने एक चोटियोंवाले,और कितने एकजटाको धारण करनेवाले;और कितने एक ऊर्ध्वगत बालोंवाले॥२२॥और कोई शंख नक्कारोंके शब्द करके आपसमें संसक्त हुए और कोई सौम्य मुखवाले और कोईदिव्य शस्त्रोंसे अलंकृत॥२३॥और कितने एक नानाप्रकारके पुष्पोंसे गुथे हुए मुकुट और नानाप्रकारके प्रहार करनेके योग्य हथियारोंको धारण करनेवाले और कितनेक वामनेत्र और कितनेक विकट और

कितने एक रुधिरसे भीजे हुए मुखोंकरके सिंह और वघेरेके परिच्छेदवाले॥२४॥कोई महादंष्ट्रोंवाले, कोई बलिको देखकर प्यार करनेवाले संग्रामके सन्मुख अनेक प्रकारकी लीला करते हुए शत्रुनाशी महादेवजीके चारों ओर स्थित हुए ॥ २५ ॥ और संग्रामकी इच्छासे अनेक लीलाकर स्थित हुए,पीछे अक्लिष्ट कर्म करनेवाले महादेवजीके दिव्य रथको देखकर॥ २६ ॥ गरुडपर चढे श्रीकृष्ण रुद्रके संग युद्ध करनेको प्राप्त हुए,तब गरुडपर स्थित हुए और बाणोंको छोडनेवाले और अग्रणी श्रीकृष्णको आते हुए देख ॥२७॥ कुपित हुए महादेव सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको वींधते हुए; तब

रुधिरार्द्रैर्महावक्त्रैर्महादंष्ट्रा बलिप्रियाः ॥ देवं संपरिवार्याथ महाशत्रुप्रमर्दनम् ॥२५॥ लीलायमानास्तिष्ठन्ति सङ्ग्रामाभिमुखोन्मुखाः ॥ ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः ॥२६॥ कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे ॥ वैनतेयस्थमास्यन्तमायान्तमग्रणीं हरिम् ॥२७॥ विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां शतेन सः ॥ स शरैरर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २८ ॥ हरिर्जग्राह कुपितो ह्यस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम् ॥ प्रचचाल ततो भूमिर्विष्णुरुद्रप्रपीडिता ॥ २९ ॥ नागाश्चोर्ध्वमुखास्तत्र विचेलुरभिपीडिताः ॥ पर्वताः पतितास्तत्र जलधाराभिराप्लुताः ॥ ३० ॥ केचिन्मुमुचिरे तत्र शिखराणि समन्ततः ॥ दिशश्च प्रदिशश्चैव भूमिराकाशमेव च ॥३१॥ प्रदीप्तानीव दृश्यन्ते स्थाणुकृष्णसमागमे ॥ समन्ततश्च निर्घाताः पतन्ति धरणीतले॥ ३२ ॥ शिवाश्चैवाशिवान्नादान्नदन्ते भीमदर्शनाः ॥ वासवश्चानदन्घोरं रुधिरं चाप्यवर्षत ॥ ३३ ॥

महादेवके शरोंसे पीडित हुए श्रीकृष्णने॥२८॥कोपको प्राप्त हो पार्जन्य अस्त्रकोग्रहण किया;तब पृथ्वी विष्णु रुद्रसेपीडित हो कपने लगी॥२९॥ ऊर्ध्वमुखवाले सर्प चलायमान होने लगे;और जलोंकी धारासे डूबते हुए पर्वत चलायमान होने लगे ॥ ३० ॥ कितनेक पर्वत अपने शिखरोंको छोडने लगे;और दिशा विदिशा पृथ्वी आकाश ॥ ३१ ॥ ये सब महादव और कृष्णकेसमागममें प्रकाशितके समान दीखने लगे;और वज्रपात पृथ्वीपर पडने लगे ॥ ३२ ॥ और भयानक दर्शनोंवाले जीव गीदड आदि अच्छे बुरे शब्द करने लगे; और इन्द्र घोरशब्द और रुधिरकी वर्षा करने

लगा ॥ ३३ ॥ और बाणासुरकी सेनापर पुच्छसे विस्तृत हो उल्का स्थित हुई; और पवन चलने लगा; और सब तारागण आकुलताको प्राप्त होने लगे ॥३४॥ और सब औषधियें प्रभासे हीन हो गईं; और आकाशमें विचरनेवाले बंध हो गये, और सब देवताओंके सहित ब्रह्माजी उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ महादेवजीको संग्राममें उद्यत जानकर समीपमें आये और गंधर्व अप्सरा यक्ष विद्याधर ॥ ३६ ॥ सिद्ध चारणोंके समूह युद्ध देखनेको आकाशमें स्थित हुए तब विष्णुने महादेवके अर्थ पार्जन्य अस्त्र छोडा॥३७॥जहां रुद्रका रथ स्थित था तहां प्रकाशित हुआ अस्त्र गया तब सहस्रों

उल्का च बाणसैन्यस्य पुच्छेनावृत्य तिष्ठति ॥ प्रववौ मारुतश्चापि ज्योतींष्याकुलतामियुः ॥ ३४ ॥ प्रभाहीनास्तथौषध्यो न चरन्त्यन्तरिक्षगाः ॥ एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्वृतः ॥ ३५ ॥ त्रिपुरान्तकमुद्युन्तं ज्ञात्वा रुद्रमुपागमत् गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा विद्याधरास्तथा ॥३६॥ सिद्धचारणसंघाश्च पश्यन्तोऽथ दिवि स्थिताः ॥ ततः पार्जन्यमस्त्रं तत्क्षिप्तं रुद्राय विष्णुना ॥३७॥ ययौ ज्वलन्नथ तदा यतो रुद्रो रथस्थितः ॥ ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३८ ॥ निपेतुः सर्वतो दिग्भ्यो यतो हररथः स्थितः ॥ अथाग्नेयं महारौद्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३९ ॥ मुमोच रुषितो रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततो विशीर्णदेहास्ते चत्वारोऽपि समन्ततः ॥४०॥ नादृश्यन्त शरैश्छन्ना दह्यमानाश्च वह्निना ॥ सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्व एवासुरोत्तमाः ॥४१॥ हतोऽयमिति विज्ञाय आग्नेयास्त्रेण वै तदा ॥ ततस्तद्विषहित्वाजौ ह्यस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ४२ ॥

पैने बाण ॥ ३८ ॥ सब दिशाओंसे गिरने लगे; जहां महादेव रथमें स्थित थे तब अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महादेवजीने उग्ररूप आग्नेय अस्त्र ॥३९॥क्रोधकर छोडा तब यह अद्भुतके समान हुआ;तब गरुड श्रीकृष्ण बलदेव प्रद्युम्न यह चारों सब ओरसे विदीर्णदेह हो ॥ ४० ॥ अग्निसे दग्ध होते हुए शरोंसे आच्छादित हुए तब सब दैत्य सिंहके समान शब्द करने लगे ॥ ४१ ॥ और सबने यह जाना कि आग्नेयास्त्रसे यह श्रीकृष्ण मारे

गये तब अस्त्रोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठरूप श्रीकृष्णजी संग्राममें उस अस्त्रको सहन कर ॥४२॥ प्रतापवान् श्रीकृष्णने वारुणास्त्रको ग्रहण किया, जब अतितेजस्वी वारुणास्त्र छोडा ॥ ४३ ॥ तब उस वारुणास्त्रसे आग्नेयास्त्र शान्त हो गया; तब वासुदेवसे युद्धमें उस अस्त्रको शान्त हुआ देख ॥४४॥ महादेवजीने प्रलयकी अग्निके समान पैशाच राक्षस रौद्र आंगिरसनामोंवाले चार अस्त्र छोडे ॥४५॥ श्रीकृष्णनेभी वायव्य सावित्र वासव मोहन इन नामोंवाले चार अस्त्र महादेवजीके अस्त्रोंको निवारण करनेको छोडे॥४६॥ऐसे चार अस्त्रोंसे महादेवजीके अस्त्रोंका निवारण कर श्रीकृष्णने विस्तृत

जग्राह वारुणं सोऽस्त्रं वासुदेवः प्रतावान् ॥ प्रत्युक्ते वासुदेवेन वारुणास्त्रेऽतितेजसि ॥४३॥ आग्नेयं प्रशमं यातमस्त्रं वारुणतेजसा॥ तस्मिन्प्रतिहरते त्वस्त्रे वासुदेवेन संयुगे ॥४४॥ पैशाचं राक्षसं रौद्रं तथैवाङ्गिरसं भवः॥मुमोचास्त्राणि चत्वारि युगान्ताग्निनिभानि वै ॥४५॥ वायव्यमथ सावित्रं वासवं मोहनं तथा ॥ अस्त्राणां वारणार्थाय वासुदेवो व्यमुञ्चत ॥ ४६॥ अस्त्रैश्चतुर्भिश्चत्वारि वारयित्वाशु माधवः॥ मुमोच वैष्णवं सोऽस्त्रं व्यादितास्यान्तकोपमम्॥४७॥ वैष्णवास्त्रे प्रयुक्ते तु सर्व एवासुरोत्तमाः॥भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः॥४८॥ दिशः सर्वाः प्राद्रवन्त भयमोहेन विक्लवाः॥प्रमाथगणभूयिष्ठे दीर्णे सैन्ये महासुरः॥४९॥निर्जगाम ततो बाणो युद्धयाभिमुखस्त्वरन् ॥ भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्यैश्च सुमहाबलैः ॥ वृतोमहारथैर्वीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः॥५०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जपैश्च होमैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः॥ स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥५१॥

मुखवाले कालप्रभुके समान उपमावाले वैष्णवअस्त्रको छोडा ॥४७॥ वैष्णवास्त्र छोडा गया तब भूत यक्षगण तथा बाणासुरकी सब सेना ॥ ४८ ॥ भय और मोहसे विकल हुए सब दिशाओंको भागने लगे; सेनाके नष्ट होनेसें वह महाअसुर प्रमथगण और ॥ ४९ ॥ युद्ध करनेके अर्थ भयानक प्रहारोंवाले और घोर और महावलवाले और महारथी दैत्योंसे युक्त बाणासुर वेगसे युद्धके निमित्त सन्मुख प्राप्त हुआ, जैसे देवताओंके गणोंसे युक्त इन्द्र ॥५०॥ वैशंपायन बोले; जप होम औषधियोंसे महात्मा ब्राह्मण बाणासुरका स्वस्तिवाचन करने लगे;पीछे वस्त्र,सुन्दर गाय,फल;पुष्प, सोनेकी

॥२८६॥

अशरफीको ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणोंके अर्थ दान देता हुआ बाणासुर कुबेरके समान प्रकाशित हुआ, फिर सहस्र सूर्योंवाला बहुतसे बाजोंसे संयुक्त अनमोले रत्न और सोनेसे चित्रित ॥५२॥ और सहस्र चंद्रमा और तारागणोंसे युक्त महाअग्निके समान प्रकाशित बडी ध्वजावाले रथमें धनुषको धारण करनेवाला बाणासुर स्थित होकर॥५३॥यादवोंके जीवनके निमित्त भयानक रूपको धारण कर महाक्रोधित हो सागररूप दैत्योंकी सेनाको ले युद्धमें प्राप्त हुआ ॥ ५४ ॥ जैसे वातसे बढा हुआ और तरंगोंसे व्याप्त संसारनाश करनेके लिये समुद्र बढता है उसी प्रकारसे भयंकर शरीर

बलेः सुतो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्विराजते तेन तथा धनेशः ॥ सहस्रसूर्यो बहुकिंकिणीकः परार्ध्यजाम्बूनदरत्नचित्रः ॥ ५२ ॥ सहस्रचन्द्रायुततारकश्च रथो महानग्निरिवावभाति ॥ तमास्थितो दानवसंगृहीतं महाध्वजं कार्मुकधृक् स बाणः ॥५३॥ उद्वर्त्तयिष्यन्यदुपुङ्गवानामतीव रौद्रं स बिभर्तिरूपम्॥स मन्युमान्वीररथौघसंकुलो विनिर्ययौ तान्प्रति दैत्यसागरः ॥५४॥ वातप्रवृद्धस्तु तरङ्गसंकुलो यथार्णवो लोकविनाशनाय ॥ भीमानि संत्रासकरैर्वपुर्भिस्तान्यग्रतो भान्ति बलानि तस्य ॥५५॥ महारथान्युच्छ्रितकार्मुकाणि सपर्वतानीव वनानि राजन् ॥ विनिस्सृतः सागरतोयवासादत्यद्भुतश्चाहवद्रष्टुकामः ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अन्धकारीकृते लोके प्रदीप्ते त्र्यम्बके तथा ॥ न नन्दी नापि च थो न रुद्रः प्रत्यदृश्यत ॥१॥ द्विगुणं दीप्तदेहस्तु रोषेण च बलेन च ॥ त्रिपुरान्तकरो बाणं जग्राह सचतुर्मुखः ॥ २ ॥ संदधत्कार्मुकं चैव क्षेप्तुकामस्त्रिलोचनः ॥ विज्ञातो वासुदेवेन चित्तज्ञेन महात्मना ॥ ३ ॥

धारण किये उसकी सेना चली॥५५॥बडे रथोंमें बैठे धनुष चढाये पर्वत वनोंको प्रकाशित करते हुए सागरके निकटवाले अपने स्थानसे बाणासुर निकला यह बडा अद्भुत हुआ, क्योंकि संग्राम देखनेकी उसे महाइच्छा हुई ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥ वैशंपायन बोले, जब अंधकाररूप संसार हुआ, तब नंदीगण रथ और महादेव यह तीनों नहीं देखे॥१॥ तब क्रोध करके और बल करके दुगुने दीप्त हुए ब्रह्माजी सहित महादेवजीने बाण ग्रहण किया ॥२॥ उसपर बाणासुरको ग्रहण कर धनुषपर चढाय

जब फेंकनेकी इच्छा करने लगे तब श्रीकृष्णने उनके मनकी ॥ ३ ॥ बात जान पुरुषोत्तमने जृंभ नाम अस्त्र छोडा, उस शीघ्रकर्मी अस्त्रने महादेवजीको जृम्भित किया ॥ ४ ॥ शर धनुष बाणसहित महादेव जृम्भित हुए तब असुर राक्षसोंके जीतनेवाले महादेव संज्ञाको प्राप्त ॥ ५ ॥ बलसे उत्पन्न हुए बाणासुरने वारंवार महादेवजीको उद्यत किया तब भूतात्मा स्निग्ध और गंभीररूप वाणीसे शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ तब श्रीकृष्णने भी पांचजन्य शंखको व शार्ङ्गधनुषको बजाया, शंखके शब्द और धनुषके शब्दको सुन ॥ ७ ॥ विजृम्भितरूप महादेवजीको देखकर सब प्राणी उद्वेगको प्राप्त हुए इसी अंतरमें युद्धमें महादेवजीके पार्षद ॥ ८ ॥ मायायुद्धके आश्रय हो प्रद्युम्नजीके चारों ओर प्राप्त हुए; तब प्रद्युम्नजी सब शत्रुओंको

जृम्भणं नाम सोऽप्यस्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥ हरं संजृम्भयामास क्षिप्रकारी महाबलः ॥४॥ सशरः सधनुश्चैव हरस्तेनाशु जृम्भितः॥ संज्ञां न लेभे भगवान्विजेतासुररक्षसाम् ॥ सशरं सधनुष्कं च दृष्ट्वात्मानं विजृम्भितम् ॥ ५ ॥ बलोन्मत्तोऽथ बाणोऽसौ शर्वं चोदयतेऽसुकृत् ॥ ततो ननाद भूतात्मा स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥६॥ प्रध्मापयामास तदा कृष्णः शंखं महाबलः ॥ पाञ्चजन्यस्य घोषेण शार्ङ्गविस्फूर्जितेन च ॥ ७ ॥ देवं विजृम्भितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र रुद्रस्य पार्षदा रणे ॥ ८ ॥ मायायुद्धं समाश्रित्य प्रद्युम्नं पर्यवारयन् ॥ सर्वांस्तु निद्रावशागान्कृत्वा मकरकेतुमान् ॥९॥ दानवान्नाशयत्तत्र शरजालेन वीर्यवान् ॥ प्रमाथगणभूयिष्ठांस्तत्र तत्र महाबलान् ॥ १० ॥ ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ज्वाला प्रादुरभूद्वक्त्राद्दहतीव दिशो दश ॥११॥ ततस्तु धरणी देवी पीड्यमाना महात्मभिः ॥ ब्रह्माणं विश्वधातारं वेपमानाभ्युपागमत् ॥१२॥ पृथिव्युवाच॥ देव देव महाबाहो पीड्यामि परमौजसा ॥ कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः ॥ १३ ॥

निद्राके वशमें प्राप्त कर ॥ ९ ॥ वह बली बाणोंके जालसे दैत्य और पार्षदगणोंको नाश करने लगे ॥ १० ॥ और बडे २ प्रमथगणोंको नष्ट करने लगे तब महादेवजीके मुखसे दश दिशाओंको दग्ध करती हुई ज्वाला प्रकट हुई ॥ ११ ॥ तब बडी आत्मावालोंसे पीडित हो पृथ्वी कापती हुई जगत्पति ब्रह्माजीके समीपमें गई ॥ १२ ॥ और कहने लगी; हे देवदेव ! हे महाबाहो ! परमबलसे मैं पीडित हूं तेजस्वी कृष्ण और महादेवके भारसे आक्रान्त हो रही हूं एकार्णवरूप हुई जाती हूं ॥ १३ ॥

हे पितामह ! यह भार मुझसे सहा नहीं जाता है इस कारण जैसे म हलकी होकर इस चराचरको धारण करूं तैसे विचार करो ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजी पृथ्वीसे कहने लगे कि; एक मुहूर्ततक आत्माको धारणकर तू शीघ्र हलकी हो जायगी ॥ १५ ॥ वैशंपायन बोले; यह देखकर ब्रह्माजी महादेवजीसे कहने लगे;कि आपहीने महादैत्योंका वध रचा है, फिर कैसे रक्षा करते हो ॥ १६ ॥ हे महाबाहो! कृष्णके साथ तुम्हें युद्ध करना उचित नहीं है औरें अपनेही दूसरे आत्मारूप श्रीकृष्णको क्या तुम नहीं जानते हो ॥१७॥ तब शरीरके योगसे अविनाशी शिवने हृदयमें प्रवेश कर चराचरसहित

अविषह्यमिमं भारं चिन्तयस्व पितामह ॥ लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं चराचरम् ॥१४॥ ततस्तु काश्यपीं देवीं प्रत्युवाच पितामहः ॥ मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वीभविष्यसि॥१५॥वैशम्पायन उवाच ॥ दृष्ट्वा तु भगवान्ब्रह्मा रुद्रं वचनमब्रवीत्॥सृष्टो महासुरवधः किं भूयः परिरक्षसे ॥१६॥ न च युद्धं महाबाहो तव कृष्णेन रोचते ॥ न च बुद्ध्यसि कृष्णं त्वमात्मानं तु द्विधाकृतम् ॥१७॥ ततः शरीरयोगाद्धि भगवानव्ययः प्रभुः ॥ प्रविश्य प्रश्यते कृत्स्नांस्त्रीँल्लोकान्सचराचरान् ॥१८॥ प्रविश्य योगं योगात्मा वरांस्ताननुचिन्तयन् ॥ द्वारवत्यां यदुक्तं च तदनुस्मृत्य सर्वशः ॥ जगाद नोत्तरं किंचिन्निवृत्तोऽसौऽभवत्तदा ॥ १९ ॥ आत्मानं कृष्णयोनिस्थं पश्यत ह्येकयोनिजम् ॥ ततो निःसृत्य रुद्रस्तु न्यस्तवादोऽभवन्मृधे ॥२०॥ ब्रह्माणं चाब्रवीद्रुद्रो न योत्स्ये भगवन्निति ॥ कृष्णेण सह संग्रामे लघ्वीभवतु मेदिनी ॥२१॥ ततः कृष्णोऽथ रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम् ॥ परां प्रीतिमुपागम्य संग्रामादपजग्मतुः ॥२२॥ नच तौ पश्यते केचिद्योगिनौ योगमागतौ ॥ एको ब्रह्म तथा कृत्वा पश्यँल्लोकान्पितामहः ॥ २३ ॥

त्रिलोकीको देखा ॥१८॥ योगमें प्रवेश कर वे योगात्मा महादेवजी वरोंका चिंतवन कर और जो द्वारावतीमें कहा गया था तिसको स्मरणकर महादेवजीन कुछभी उत्तर नहीं दिया, और निवृत्त हुए ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णको और अपने आत्माको एकरूप जानकर युद्धसे निकल अपनी प्रतिज्ञाको त्यागते हुए ॥२०॥ पीछे ब्रह्माजीसे महादेवजी कहने लगे कि; हे भगवन् ! मैं कृष्णके संगमें युद्ध नहीं करूंगा; यह पृथ्वी लघु हो जाय ॥ २१ ॥ तब कृष्ण और महादेव परस्पर मिलकर परमप्रीतिको प्राप्त हो युद्धसे अलग हो गये ॥ २२ ॥ उन दोनोंको योगसे एकरूप देखते हुए ब्रह्माजीने लोकोंको

एक ब्रह्मरूप जाना ॥२३॥ समीपमें स्थित दीर्घदर्शी नारदसहित मार्कंडेयजीको जानकर पूछने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी कहने लगे; हे ब्रह्मन्! मंदराचलके समीपमें नलिनीमें रात्रिमें स्वप्नान्तरमें शिव और कृष्णको मैंने देखा ॥२५॥ शिवको हरिरूपसे और नारायणको शिवरूपसे देखा शंख चक्र गदा हाथमें धारण किये पीले वस्त्रोंकी पहरे ॥२६॥ गरुडपर स्थित ऐसे महादेव देखे और त्रिशूल पट्टिश व्याघ्रचर्मको धारण किये बैलपर चढे श्रीकृष्णको मैंने देखा ॥२७॥ इस परमाद्भुतको देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ. हे भगवन्! सुव्रत तुम इसे यथार्थसे वर्णन करो ॥ २८ ॥ मार्कंडेयजी बोले; शिव विष्णुरूप हैं, विष्णु शिवरूप हैं इन दोनोंमें अंतर नहीं है इस कारण शिव और विष्णु मेरे मंगलको दें ॥२९॥ और आदि मध्य अंतरहित अक्षर अविनाशी हरिहरात्मक रूपको तेरे निमीत्त कहता हूं॥३०॥जो विष्णु है वह रुद्र है जो रुद्र है वह ब्रह्मा है यह तीनों देवता एकमूर्ति हैं, और महादेव विष्णु ब्रह्मा यह तीनों देव हैं ॥ ३१ ॥ और वरके देनेवाले और लोकके कर्ता,लोकके स्वामी और आपही उत्पन्न होनेवाले ऐसे यह तीनों देव अर्धनारीश्वर हो व्रतमें स्थित हैं ॥३२॥ जैसे जलमें गेरा हुआ जल जलरूप हो जाता है; तैसे महादेवमें प्रवेश हुए विष्णु महादे-

उवाचैतत्समुद्दिश्य मार्कण्डेयं सनारदम् ॥ पार्श्वस्थं परिपप्रच्छ ज्ञात्वा वै दीर्घदर्शिनम् ॥२४॥ पितामह उवाच ॥ मन्दरस्य गिरेः पार्श्वे नलिन्यां भवकेशवौ ॥ रात्रौ स्वप्नान्तरे ब्रह्मन्मया दृष्टो हराच्युतौ ॥२५॥ हरं च हरिरूपेण हरिं च हररूपिणम् ॥ शंखचक्रगदापाणिं पीताम्बरधरं हरम् ॥२६॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मधरं हरिम् ॥ गरुडस्थं हरं चापि हरिं च वृषभध्वजम् ॥ २७ ॥ विस्मयो मे महान्ब्रह्मन् दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ॥ एतदाचक्ष्व भगवन् याथातथ्येन सुव्रत ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ॥ यथान्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम् ॥२९॥ अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम् ॥ तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम्॥३०॥ यो विष्णुः सतु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः ॥ एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥ ३१ ॥ वरदा लोककर्त्तारो लोकनाथाः स्वयंभुवः ॥ अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः ॥३२॥ यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु तद्भवेत् ॥ रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत् ॥ ३३ ॥

वरूप हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ और जैसे अग्निमें मिला अग्नि अग्निरूप हो जाता है तैसे विष्णुमें मिले हुए महादेव विष्णुरूप हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ और अग्निरूप महादेव हैं और सोमरूप विष्णु हैं इस कारण यह स्थावर जंगम जगत् अग्निसोमात्मक है ॥ ३५ ॥ और स्थावर जंगमरूप जगतके कर्ता हर्ता जगत्के शुभकर्ता और प्रभु विष्णु और महेश्वर ॥३६॥ कर्ता कारण कारक भूत भव्य भव इन्होंको जाननेवाले ऐसे यह दोनों विष्णु और शिव हैं ॥ ३७ ॥ यह तीनों ब्रह्माशिव विष्णु मेघरूप हो वर्षतेहैं, और वायुरूपसे विचरतेहैं, और सूर्यरूपसे प्रकाश करते हैं. हे ब्रह्मन् !

अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत् ॥ तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत ॥३४॥ रुद्रमग्निमयं विद्याविष्णुः सोमात्मकः स्मृतः ॥ अग्नीषोमात्मकं चैव जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३५ ॥ कर्त्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु ॥ जगतः शुभकर्त्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरो ॥ ३६ ॥ कर्तृकारणकर्त्तारौ कर्तृकारणकारकौ ॥ भूतभव्यभवौ देवौ नारायणमहेश्वरौ ॥ ३७ ॥ एते चैव प्रवर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ॥ एतत्परतरं गुह्यं कथितं ते पितामह ॥३८॥ यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः ॥ प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णुरुद्रप्रसादजम् ॥ ३९ ॥ देवौ हरिहरौ स्तोष्ये ब्रह्मणा सह संगतौ ॥ एतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाप्ययौ ॥४०॥ रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः ॥ एक एव द्विधाभूतो लोके चरित नित्यशः ॥ ४१ ॥ न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः ॥ तास्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा ॥नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहतचारिणे॥४२॥

यह अतिगुह्य बात तुमसे कही है ॥ ३८ ॥ जो इसका नित्यप्रति पाठ करता है और जो नित्यप्रति इसको सुनता है वह विष्णु और महादेवके प्रसादसे उत्तम स्थानमें प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इस कारण ब्रह्माजीसहित विष्णु और शिव इन दोनों देवताओंकी स्तुति करता हूं, यह दोनों देव जगत्की उत्पत्तिके हेतु हैं और अविनाशी हैं ॥ ४० ॥ और महादेवके परमरूप विष्णु हैं और विष्णुके परमरूप शिव हैं; एकही आत्मा द्विधाभूत हुआ लोकमें विचरता है ॥ ४१ ॥ इस कारण महादेवके विना विष्णु नहीं हैं; इस कारण विष्णु और शिव

एकही हैं अब हरिहरात्मक स्तोत्र वर्णन करते हैं, रुद्र कृष्ण संहतचारिके निमित्त नमस्कार है॥४२॥नौ नेत्र तीन नेत्र पिंगल नेत्र पद्मनेत्रके निमित्त नमस्कार है ॥४३॥ कुमार और प्रद्युम्नके गुरु धरणीधर गंगाधरके निमित्त नमस्कार है॥४४॥मयूरपुच्छ केयूरधारीके निमित्त नमस्कारहै, कपालमाला वनमालाधारीके निमित्त नमस्कार है ॥ ४५ ॥ त्रिशूलहस्त, चक्रधारी कनकदंड ब्रह्मदंड धारीके निमित्त नमस्कार है ॥ ४६ ॥ धर्मनिवासी पीतवस्त्रधारीके निमित्त नमस्कार है, लक्ष्मीपति उमापतिके निमित्त नमस्कार है॥४७॥खट्वांग शूलधारी भस्मांगराग कृष्णांगधारीके निमित्त

नमः षडर्द्धनेत्राय सद्विनेत्रया वै नमः ॥ नमः पिङ्गलनेत्राय पद्मनेत्राय वै नमः ॥ ४३ ॥ नमः कुमारगुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः ॥ नमो धरणीधराय गङ्गाधराय वै नमः ॥४४॥ नमो मयूरपिच्छाय नमः केयूरधारिणे ॥ नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः ॥४५॥ नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः ॥ नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने ॥ ४६ ॥ नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे ॥ नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः ॥४७॥नमः खट्वाङ्गधाराय नमो मुसलधारिणे ॥ नमो भस्माङ्गरागाय नमः कृष्णाङ्गधारिणे ॥४८॥ नमः श्मशानवासाय नमः सागरवासिने ॥ नमो वृषभवाहाय नमो गरुडवाहिने ॥४९॥ नमस्त्वनेकरूपाय बहुरूपाय वै नमः ॥ नमः प्रलयकर्त्रे च नमस्त्रैलोक्यधारिणे ॥ ५० ॥ नमोऽस्तु सौम्यरूपाय नमो भैरवरूपिणे ॥ विरूपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च ॥५१॥ दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च ॥ नमः पर्वतवासाय नमः सागरवासिने ॥५२॥ नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ॥ नमोऽस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने ॥ ५३ ॥

नमस्कार है ॥ ४८ ॥ स्मशानवासी सागरवासी वृषभवाहन गरुडवाहनके निमित्त नमस्कार है ॥ ४९ ॥ एकरूप बहुरूप प्रलय करनेवाले त्रिलोकधारीको नमस्कार है ॥५०॥ सौम्यरूप भैरवरूप विरूपाक्ष सौम्यरूपवालेके निमित्त नमस्कार है॥५१॥दक्षक यज्ञ नाश करनेवाले बलिका नियमन करनेवाले पर्वत तथा सागरवासीको नमस्कार है॥५२॥सुररिपु और त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले नरकासुर और कामांग नाश करनेवालेको नमस्कार

है ।।५३।। अंधक और कैटभके मारनेवाले सहस्र हस्त असंख्य भुजावालेको नमस्कार है ।।५४।। सहस्र शिर बहुत शिरवालेके निमित्त नमस्कार है; दामोदर देव मुंज मेखलाधारीको नमस्कार है ।।५५।। भगवान् विष्णु और शिवको नमस्कार है; हे भगवन्! देवदेवपूजित ! आपको नमस्कार है ।।५६।। कर्मोंके कर्म अतिपराक्रमी हृषीकेश सुवर्णकेश आपके निमित्त नमस्कार है।।५७।। रुद्र और विष्णुके इस स्तोत्रको जो मनुष्य पढे और सब ऋषियोंकरके स्तुति किये विष्णु और शिव इन दोनोंकी स्तुति करें।।५८।।वेदको जाननेवाले वेदव्यासने और नारदने भारद्वाजने गर्गने और

नमस्त्वन्धकनाशाय नमः कैटभनाशिने ॥ नमः सहस्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे ॥ ५४ ॥ नमः सहस्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः ॥ दामोदराय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ॥ ५५ ॥ नमस्ते भगवन्विष्णोनमस्ते भगवन् शिव ॥ नमो भगवते देव नमस्ते देवपूजित ॥ ५६ ॥ नमस्ते कर्मिणां कर्म नमोऽमितपराक्रम ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्णकेश नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥ इमं स्तवं यो रुद्रस्य विष्णोश्चैव महात्मनः ॥ समेत्य ऋषिभिः सर्वे स्तुतो स्तौति महर्षिभिः ॥ ५८ ॥ व्यासेन वेदविदुषा नारदेन च धीमता ॥ भारद्वाजेन गर्गेण विश्वमित्रेण वै तथा ॥ ५९ ॥ आगस्त्येन पुलस्त्येन धौम्येन तु महात्मना ॥ य इदं पठते नित्यं स्तोत्रं हरिहरात्मकम् ॥ ६० ॥ अरोगो बलवांश्चैव जायते नात्र संशयः ॥ श्रियं च लभते नित्यं नच स्वर्गान्निवर्तते ॥ ६१ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥ गुर्विणी शृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते ॥ ६२ ॥

विश्वामित्रसे स्तुति किये।।५९।। अगस्त्य पुलस्त्य धौम्यसे स्तुति किये दोनों देवोंकी जो स्तुति करे और जो इस हरिहरात्मक स्तोत्रको नित्यप्रति पाठ करे।।६०।।वह मनुष्य रोगसे रहित और बलवान् हो जाता है इसमें संशय नहीं;और नित्यप्रति लक्ष्मीको प्राप्तहोता है और स्वर्गसे निवृत्त नहीं होता ।।६१।। अपुत्र पुत्रको प्राप्त होता है और कन्या सत्पतिको प्राप्त होती है,और गर्भवाली स्त्री इस स्तोत्रका पाठ सुने तो उत्तम पुत्रको

जनती है ॥ ६२ ॥ और राक्षस पिशाच विघ्नविनायक यह सब भय नहीं करते हैं; जहां इस स्तोत्रका पाठ होता है ॥६३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां हरिहरात्मकस्तवो नाम पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥ जन्मेजय बोले; जब श्रीकृष्ण और महादेवजी युद्धसे अलग २ हो गये, तब फिर किनका रोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; कुंभांडसे संग्रहीत किये रथमें स्थित हुआ स्वामिकार्तिक श्रीकृष्ण बलदेव प्रद्युम्नके सन्मुख धावमान हुआ ॥ २ ॥ उग्ररूप सैंकडों बाणोंसे क्रोधको प्राप्त हुए गुहने तीनोंको विद्ध किया और बडे

राक्षसाश्च पिशाचाश्च विघ्नानि च विनायकाः ॥ भयं तत्र न कुर्वन्ति यत्रायं पठ्यते स्तवः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हरिहरात्मकस्तवो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥ जनमेजय उवाच ॥ अपयाते ततो देवे कृष्णे चैव महात्मनि ॥ पुनश्चासीत्कथं युद्धं परेषां लोमहर्षणम् ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कुम्भाण्डसंगृहीते तु रथे तिष्ठन्गुहस्तदा ॥ अभिदुद्राव कृष्णं च बलं प्रद्युम्नमेव ॥२॥ ततः शरशतैरुग्रैस्तान्विव्याध रणे गुहः ॥ अमर्षरोषसंक्रुद्धः कुमारः प्रवरो नदन् ॥३॥ शरसंवृत गात्रास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः शोणितौघप्लुतैर्गात्रैः प्रायुध्यन्त गुहं ततः ॥ ४ ॥ ततस्ते युद्धमार्गज्ञास्त्रयस्त्रिभिरनुत्तमैः ॥ वायव्याग्नेयपार्जन्यैर्बिभिदुर्दीप्ततेजसः ॥ ५ ॥ शैलवारुणसावित्रैस्तान्स विव्याध कोपवान् ॥ तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ६ ॥ शरौघानस्त्रमायाभिर्ग्रसन्ति स्म महात्मनः ॥ यदा तदा गुहः क्रुद्धः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ ७ ॥

वेगसे शब्द किया ॥ ३ ॥ बाणोंसे कटे हुए गात्रोंवाले तीन अग्नियोंके समान प्रकाशमान रुधिरसमूहसे भीजे हुये गात्रोंवाले तीनों स्वामिकार्तिकके संग युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ युद्धमार्गके जाननेवाले तीनों वायव्य अस्त्र आग्नेय अस्त्र पार्जन्य अस्त्रसे भेदन करने लगे ॥ ५ ॥ शैल वारुण सावित्र अस्त्रोंसे क्रोधित हो स्वामिकार्तिक उन तीनोंको भेदन करने लगा, जब प्रकाशित बाणोंके समूहवाले और प्रकाशित धनुषको धारण करनेवाले ॥ ६ ॥ स्वामिकार्तिकके बाणोंके समूहको अस्त्र मायासे तीनों ग्रसने लगे; तब क्रोधको प्राप्त हुए तेजसे प्रज्वलित स्वामिकार्तिकने ॥ ७ ॥

दांतोंसे होठ काटकर कालके समान दुर्द्धर्ष लोकके क्षयको करनेवाला ब्रह्मशिर अस्त्र युक्त किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तब हाहाकार करते हुए सब योधा भागने लगे; और केशिको मथनेवाले श्रीकृष्णने ॥ १० ॥ सब अस्त्रोंके वीर्यको वारण और घातन करनेवाले सुदर्शनचक्रको ग्रहण किया जो चक्र अपने बलसे विख्यात है ॥ ११ ॥ तिस चक्रने अपने बलसे ब्रह्मशिर अस्त्र प्रभासे रहित कर दिया; जैसे वर्षाऋतुमें बादलोंसे सूर्यका मंडल प्रभाहीन हो जाता है ॥ १२ ॥ जब अतिबलवाला ब्रह्मशिर अस्त्र प्रभा और वीर्यसे रहित हो गया तब क्रोधसे लालनेत्रोंवाले स्वामिकार्तिक

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम कालकल्पं दुरासदम् ॥ सदष्टौष्ठपुटः संख्ये जगृहे पावकिः प्रभुः ॥८॥ प्रयुक्ते ब्रह्मशिरसि सहस्रांशुसमप्रभे॥ उग्रे परमदुर्धर्षे लोकक्षयकरे तथा ॥९॥ हाहाभूतेषु सर्वेषु प्रधावत्सु समन्ततः ॥ केशवः केशिमथनश्चक्रं जग्राह वीर्यवान् ॥१०॥ सर्वेषामस्त्रवीर्याणां वारणं घातनं तथा ॥ चक्रमप्रतिचक्रस्य लोके ख्यातं महात्मनः ॥ ११ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तेन निष्प्रभं कृत-मोजसा ॥ घनैरिवातपापाये सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १२ ॥ ततो निष्प्रभतां याते नष्टवीर्ये महौजसि ॥ तस्मिन् ब्रह्मशिरस्यस्त्रे क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१३॥ गुहः प्रजज्वाल रणे हविषेवाग्निरुल्बणः ॥ शत्रुघ्नीं ज्वलितां दिव्यां शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ॥१४॥ तां प्रदीप्तां महोल्काभां युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ घण्टामालाकुलां दिव्यां चिक्षेप रुषितो गुहः॥१५॥ ननाद बलवच्चापि नादं शत्रु-भयंकरम् ॥ सा च क्षिप्ता तदा तेन ब्रह्मण्येन महात्मना ॥१६॥ जृम्भमाणेव गगने संप्रदीप्तमुखी तदा ॥ आधावत महाशक्तिः कृष्णस्य वधकांक्षिणी ॥१७॥ भृशं विषण्णः शक्रोऽपि सर्वामरगणैर्वृतः ॥ शक्तिं प्रज्वलितां दृष्ट्वा दग्धः कृष्णेति चाब्रवीत् ॥१८॥

॥ १३ ॥ अतिशय प्रज्वलित हुए जैसे घृतसे बढा हुआ अग्नि; तब शत्रुओंको नाशनेवाली प्रकाशित और दिव्य सोनेसे बनी हुई शक्ति ग्रहण की ॥ १४ ॥ वह महाउल्काके समान प्रकाशवाली और प्रलयकी अग्निके समान कांतिवाली; घंटेकी मालाओंसे आकुल शक्तिको कुपित हुए स्वामिकार्तिकने छोडी ॥ १५ ॥ और शत्रुको भय देनेवाला उग्र शब्द करने लगे; तब ब्रह्मण्य और महात्मारूप स्वामिकार्तिककी छोडी शक्ति ॥ १६ ॥ प्रदीप्त मुखवाली आकाशमें फैली हुई,और कृष्णके वधनेकी आकांक्षा करनेवाली धावमान हुई ॥ १७ ॥ तब विषण्ण हो सब

देव गणोंसे युक्त इन्द्र प्रज्वलितशक्तिको देखकर कृष्ण दग्ध हुए इसप्रकार कहने लगे॥१८॥समीपमें प्राप्त हुई शक्तिको महाहुंकर शब्दसे झिडककर श्रीकृष्णने पृथ्वीतलमें गिरा दिया॥१९॥ जब महाशक्ति गिर पडी तब सब ओरसे साधु साधु वाद होने लगा;इन्द्र आदि सब देवते सिंहके समान शब्द करने लगे॥२०॥पीछे जब सब देवता अच्छी तरह शब्दकरने लगे तब अतिप्रतापवाले श्रीकृष्णने दैत्योंको नाशनेके योग्य सुदर्शन चक्रको फिर ग्रहण कर छोडनेका विचार किया ॥२१॥ जब श्रीकृष्णने चक्र छोडनेकी इच्छा की तबस्वामिकार्तिककी रक्षाके अर्थ सुन्दरशरीरको धारण करनेवाली ॥ २२ ॥ कपडोंसे नंगी और देवके वचनोंसे प्रविष्ट कोटवी और लंबमाना महाभागा पार्वतीजीके अष्टमभागसेउपजी हुई ॥२३॥ चित्रा कनकशक्ति

तां समीपमनुप्राप्तां महाशक्तिं महामृधे ॥ हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले ॥१९॥ पातितायां महाशक्त्यां साधु साध्विति सर्वशः ॥ सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ २० ॥ ततो देवेषु नर्दत्सु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ पुनश्चक्रं स जग्राह दैत्यान्तकरणं रणे ॥ २१ ॥ व्याविध्यमाने चक्रे तु कृष्णेनाप्रतिमौजसा ॥ कुमाररक्षणार्थाय बिभ्रती सुतनुं तदा ॥ २२ ॥ दिग्वासा देववचनात्प्रविष्टा तत्र कोटवी ॥ लम्बमाना महाभागा भागो देव्यास्तथाष्टमः ॥२३॥ चित्रा कनकशक्तिस्तु सा च नग्ना स्थितान्तरे ॥ अथान्तरात्कुमारस्य देवीं दृष्ट्वा महाभुजः ॥ पराङ्मुखस्ततो वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपगच्छापगच्छ त्वं धिक्त्वामिति वचोऽब्रवीत् ॥ किमेवं कुरुषे विघ्नं निश्चितस्य वध प्रति ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वैवं वचनं तस्य कोटवी तु तदा विभो ॥ नैव वासः समाधत्त कुमारपरिरक्षणात् ॥२६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपवाह्य गुहं शीघ्रमपयाहि रणाजिरात् ॥ स्वस्ति ह्येवं भवेदद्य योत्स्यतो योत्स्यता मया ॥ २७ ॥

बाणासुरकी माता नग्न होकर बीचमें प्राप्त हुई पीछे स्वामिकार्तिकके और श्रीकृष्णके बीचमें स्थित हुईको देख स्वामिकार्तिककी रक्षा करनेवाली तिस नंगी देवीको देख मुख फेर श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ २४ ॥ भगवान् बोले; हे देवि ! परे हट जा परे हट जा तुझको धिक्कार है; कि निश्चित कियेके वधके प्रति ऐसे विघ्न क्यों करती है॥२५॥वैशंपायन बोले; श्रीकृष्णके वचनको सुन कोटवीदेवीने स्वामिकार्तिककी रक्षाके अर्थ वस्त्रोंको नहीं धारण किया ॥ २६ ॥ तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि;स्वामिकार्तिकको त्यागकर शीघ्र युद्धसे अलग हो और मेरे संग युद्ध करनेसे इसका कल्याण होगा ॥ २७ ॥

जब वह देवी नहीं हटी और स्थितही रहीं तब युद्धमें श्रीकृष्णने अपने चक्रको फेर लिया ॥ २८ ॥ जब देव श्रीकृष्णसे स्वामिकार्तिककी रक्षा करी तब कुमारको युद्धसे अलग कर देवी महादेवजीके समीपमें प्रदीप्त हुई ॥ २९ ॥ इस अंतरमें महाभय उत्पन्न हुआ और देवीने स्वामिकार्तिककी रक्षा करी तब वहां बाणासुर आया ॥३०॥ और कृष्णके युद्धसे स्वामिकार्तिकको भागा हुआ जानकर बाणासुर चिंतवन करने लगा कि अब मैं श्रीकृ-ष्णके संग स्वयं युद्ध करूंगा ॥ ३१ ॥ वैशंपायन बोले; भूतयक्षोंके समूह और बाणासुरकी बहुतसी सेना यह सब भयसे मोहित नेत्रोंवाले होकर

तां च दृष्ट्वा स्थितां देवो हरिः संग्राममूर्द्धनि ॥ संजहार ततश्चक्रं भगवान्वासवानुजः ॥ २८ ॥ एवं कृते तु कृष्णेन देवदेवेन धीमता ॥ अपवाह्य गुहं देवी हरसान्निध्यमागता ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव वर्तमाने महाभये ॥ कुमारे रक्षिते देव्या बाणस्तं देशमाययौ ॥ ३० ॥ अपयान्तं गुहं दृष्ट्वा मुक्तं कृष्णेन संयुगात् ॥ बाणश्चिन्तयते तत्र स्वयं योत्स्यामि माधवम् ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः ॥ दिशः प्रदुद्रुवः सर्वे भयमोहितलोचनाः ॥ ३२ ॥ प्रमाथगण-भूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुरः ॥ निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन् ॥ ३३ ॥ भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्येन्द्रैः सुमहारथैः ॥ महा बलैर्महावीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः ॥ ३४ ॥ पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तस्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः ॥ जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्म-हात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥३५॥ ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणां तु महास्वनैः ॥ सिंहनादैश्च दैत्यानां बाणः कृष्णमभिद्रवत् ॥३६॥

दिशाओंके प्रति भागने लगे ॥ ३२ ॥ और महादेवजीके पार्षदोंकी सेना जब कटने लगी तब वेगसे युद्धके अर्थ अभिमुख हुआ बाणासुर घरसे निकला ॥ ३३ ॥ और भीम प्रहार करनेवाले घोर महारथी महाबलवाले महावीर दैत्येन्द्रोंको संग लेकर बाणासुर इन्द्रके समान युद्ध करनेको तैयार हुआ ॥ ३४ ॥ तब शत्रुके वधको कहते हुए पुरोहित और श्रुतिशीलसे बढे हुए अन्य ब्राह्मण यह जप मंत्र औषधिसे बाणासुरका स्वस्तिवा-चन कराने लगे॥३५॥पीछे नक्कारोंके शब्दोंसे और भेरियोंके महाशब्दोंसे दैत्योंके सिंहके समान शब्दोंसे बाणासुर श्रीकृष्णके सन्मुख चला॥३६॥

युद्ध करनेके अर्थ आते हुए बाणासुरको देखकर श्रीकृष्णभी गरुडपर चढ बाणासुरके सन्मुख चले॥ ३७॥ गरुडपर चढे यदुश्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीकृष्णको आता देख ॥ ३८॥ बाणासुर क्रोधको प्राप्त हो सन्मुख स्थित श्रीकृष्णसे शीघ्रतासे बोला; मुझसे बचकर अब तुम जीते नहीं जाओगे; और द्वारकापुरीको और द्वारकावासी मित्रोंको नहीं देखोगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे माधव ! मेरेसे अभिभूत और युद्धमें मरनेकी इच्छावाले कालसे प्रेरित सोनेके वर्णवाले वृक्षके अग्रभागोंको तुम देखोगे[1] ॥४१॥ हे गरुडध्वज ! अब सहस्र बाहुओंवाले मेरे संग तुम आठ भुजावाले कैसे युद्ध करोगे ॥४२॥

दृष्ट्वा बाणं तु निर्यातं युद्धायैव व्यवस्थितम् ॥ आरुह्य गरुडं कृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ ॥ ३७ ॥ आयान्तमथ तं दृष्ट्वा यदूनामृषभं रणे ॥ वैनतेयमथारूढं कृष्णमप्रतिमौजसम् ॥ ३८ ॥ अथ बाणस्तु तं दृष्ट्वा प्रमुखे प्रत्युपस्थितम् ॥ उवाच वचनं क्रुद्धो वासुदेवं तरस्विनम् ॥३९॥ बाण उवाच ॥ तिष्ठ तिष्ठ न मेऽद्य त्वं जीवन्प्रतिगमिष्यसि ॥ द्वारकां द्वारकास्थांश्च सुहृदो द्रक्ष्यसे न च ॥४०॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षाग्रानद्य द्रक्ष्यसि माधव ॥ मयाभिभूतः समरे मुमूर्षुः कालनोदितः ॥४१॥ अद्य बाहुसहस्रेण कथमष्टभुजो रणे ॥ मया सह समागम्य योत्स्यसे गरुडध्वज ॥ ४२ ॥ अद्य त्वं वै मया युद्धे निर्जितः सहबान्धवः ॥ द्वारकां शोणितपुरे निहतः संस्मरिष्यसि ॥ ४३ ॥ नानाप्रहरणोपेतं नानाङ्गदविभूषितम् ॥ अद्य बाहुसहस्रं मे कोटिभूतं निशामय ॥४४॥ गर्जतस्तस्य वाक्यौघा जलौघा इव सिन्धुतः ॥ निश्चरन्ति महाघोरा वातोद्धूता इवोर्मयः ॥ ४५ ॥ रोषपर्याकुले चैव नेत्रे तस्य बभूवतुः ॥ जगद्दिधक्षन्निव खे महासूर्य इवोदितः ॥ ४६ ॥

आज तुम बांधवोंसहित मुझसे युद्धमें जीते हुए इस शोणितपुरमें मरनेके समय द्वारकाका स्मरण करोगे ॥ ४३ ॥ और नानाप्रकारके बाजूबंदोंसे भूषित सहस्र बाहुओंको अब तुम किरोड संख्यासे युक्त देखो ॥४४॥ गर्जते हुए बाणासुरके वाक्योंके समूह ऐसे निकलने लगे जैसे महाघोर वायुसे उद्धत तरंगोंवाले जलके समूह समुद्रसे ॥४५॥ निकलते हैं; और क्रोधसे आकुल हुए दोनों नेत्र बाणासुरके ऐसे हुए मानो जगत्को दग्ध करनेवाला

1 आसन्नमृत्युवाले मनुष्योंको ऐसा दीखता है.

महासूर्य आकाशमें उदित हुआ है ॥ ४६ ॥ बाणासुरके गर्वित वचनको सुनकर आकाशको भेदन करनेके समान नारदजी बडे शब्दसे हँसे ॥ ४७ ॥ जो योग बलको प्राप्त हो युद्ध देखनेके अथ आकाशमें स्थित हुए थे कौतूहलसे फूले नेत्र हो विचरते रहते हैं ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्ण कहने लगे; हे बाणासुर ! मोहसे क्यों गर्जता है. शूरवीरोंका गर्जना अच्छा नहीं है; यहां आकर युद्ध कर तेरे इस वृथा गर्जनेसे क्या है ॥ ४९ ॥ हे दैत्य ! जो वचनोंहीसे युद्ध सिद्ध होते होवे तो तूभी नित्यप्रति असंबंधि वचनोंको कह ॥ ५० ॥ इससे हे बाणासुर ! यहां आकर मुझको जीत

तच्छ्रुत्वा नारदस्तस्य बाणस्यात्यूर्जितं वचः ॥ जहास सुमहाहासं भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥४७॥ योगपट्टमुपाश्रित्य तस्थौ युद्धदिदृक्षया ॥ कौतूहलोत्फुल्लदृशः कुर्वन्पर्यटते मुनिः ॥४८॥ कृष्ण उवाच ॥ बाण किं गर्ज्जसे मोहाच्छूराणां नास्ति गर्जितम् ॥ एह्येहि युध्यस्व रणे किं वृथा गर्जितेन ते ॥४९॥यदि युद्धानि वचनैः सिद्धेयुर्दितिनन्दन ॥ भवानेव जये नित्यं बह्वबद्धं प्रजल्पति॥५०॥ एह्येहि जय मां बाण जितो वा वसुधातले ॥ चिरायावाङ्मुखो दीनः पतितः शेष्यसेऽसुरैः ॥५१॥ इत्येवमुक्त्वा बाणं तु मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ निर्बिभेद तदा कृष्णस्तममोघैर्महाशरैः ॥ ५२ ॥ विनिर्भिन्नस्तु कृष्णेन मार्गणैर्मर्मभेदिभिः ॥ स्मयन्बाणस्ततः कृष्णं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५३ ॥ ज्वलद्भिरिव संयुक्त तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः ॥ ५४ ॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव छादयामास केशवम् ॥ स तु बाहुसहस्रेण गर्वितो दैत्यसत्तमः ॥ ५५ ॥

अथवा मेरेसे जीता हुआ नीचेको मुखवाला दीन पतित हुआ तू दैत्योंके संग शयन करेगा ॥ ५१ ॥ ऐसे बाणासुरको कहकर मर्मको भेदन करनेवाले शीघ्र चलनेवाले अमोघ बाणोंसे बाणासुरको श्रीकृष्णने वींधा ॥ ५२ ॥ जब पैने बाणोंसे श्रीकृष्णने बाणासुरका वींधा, तब आश्चर्य मानता हुआ बाणासुरभी श्रीकृष्णपर बाणोंकी वर्षा करके ॥ ५३ ॥ उस दारुण युद्धमें प्रज्वलित परिघ निस्त्रिंश गदा भाला शक्ति ॥ ५४ ॥ मूसल पट्टिश शस्त्रोंसे आच्छादित करता हुआ, और सहस्र बाहुओंसे गर्वित बाणासुर ॥ ५५ ॥

दो बाहुवाले श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा, पीछे श्रीकृष्णके लाघवसे क्रोधको प्राप्त हुआ बाणासुर ॥ ५६ ॥ परम दिव्य और तपसे रचा हुआ और युद्धमें अप्रतिहत सब शत्रुओंको नाशनेवाला ॥ ५७ ॥ साक्षात् ब्रह्माजीसे रचा हुआ अस्त्र बाणासुरने छोडा; तब सब दिशा अंधकारसे व्याप्त हो गई ॥ ५८ ॥ और सहस्रों हजारों घोररूप जीव प्रकट हो गये; और अंधकारसे आच्छादित संसारमें कुछ भी नहीं दीखा ॥ ५९ ॥ और साधु २ कहकर बाणासुरको दैत्य पूजने लगे; और हाहा धिक् धिक् ऐसे देवताओंकी वाणी सुनाई आने लगी ॥ ६० ॥ अस्त्रके बलके वेगसे

योधयामास समरे द्विबाहुमथ लीलया ॥ लाघवात्तस्य कृष्णस्य बलिसूनू रुषान्वितः ॥५६॥ ततोऽस्त्रं परमं दिव्यं तपसा निर्मितं महत् ॥ यदप्रतिहतं युद्धे सर्वामित्रविनाशनम् ॥५७ ॥ ब्रह्मणा विहितं दिव्यं तन्मुमोच दितेः सुतः ॥ तस्मिन्मुक्ते दिशः सर्वास्तमः पिहितमण्डलाः ॥ ५८ ॥ प्रादुरासन्सहस्राणि सुघोराणि च सर्वशः ॥ तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ ५९ ॥ साधु साध्विति बाणं तु पूजयन्ति स्म दानवाः ॥ हा हा धिगिति देवानां श्रूयते वागुदीरिता ॥ ६०॥ ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः ॥ घोररूपा महाघोरा निपेतुर्बाणवृष्टयः ॥ ६१ ॥ नैव वाताः प्रवायन्ति न मेघाः संचरन्ति च ॥ अस्त्रे विसृष्टे बाणेन दह्यमाने च केशवे ॥६२॥ ततोऽस्त्रं सुमहावेगं जग्राह मधुसूदनः ॥ पार्जन्यं नाम भगवान् कालान्तकनिभं रणे ॥ ६३ ॥ ततो वितिमिरे लोके शराग्निः प्रशमं गतः ॥ दानवा मोघसंकल्पाः सर्वेऽभूवंस्तदा भृशम् ॥६४॥ दानवास्त्रं प्रशान्तं तु पार्जन्यास्त्रेऽभिमंत्रिते ॥ ततो देवगणाः सर्वे नदन्ति च हसन्ति च ॥ ६५ ॥

दारुण घोररूप ऐसी बाणोंकी वर्षा होने लगी ॥ ६१ ॥ उस समय न पवन चली थी न मेघ चलते थे; बाणासुरके अस्त्रसे जब श्रीकृष्ण दग्ध होने लगे ॥ ६२ ॥ तब महावेगवाले और कालान्तकके समान कांतिवाले पार्जन्य अस्त्रको भगवान्ने ग्रहण किया ॥ ६३ ॥ जब अंधकारका नाश होके शर अग्नि शांत हो गई; और दैत्योंका संकल्प बिगड गया ॥ ६४ ॥ इस प्रकार दानवके अस्त्र शांत होने और पार्जन्य अस्त्रके अभिमंत्रित होनेमें सब देवता हँसकर सिंहनाद करने लगे ॥ ६५ ॥

हे महाराज ! शस्त्रके हत होनेसे क्रोधसे मूर्च्छित हो फिर बाणासुर गरुडपर स्थित हुए श्रीकृष्णको ॥ ६६ ॥ मुसल पट्टिशसे आच्छादित करने लगा, तब बाणासुरकी बाणवृष्टिको ॥ ६७ ॥ हँसते हुए श्रीकृष्णने निवारण किया; इस प्रकार केशवके साथ महासंग्राम हुआ ॥ ६८ ॥ शार्ङ्ग धनुषपर चढाकर छोडे हुए बाणोंसे श्रीकृष्णने बाणासुरके रथ ध्वजा घोडे पताकाओंको खंड २ कर दिया और कवच मुकुट धनुष महातेजस्वीने टुकडे कर दिये ॥ ६९ ॥ और हँसकर एक बाण बाणासुरकी छातीमें मारा, तब मर्मवेध होनेसे बाणासुर युद्धमें मूर्च्छित हुआ ॥ ७० ॥ तब प्रहारसे पीडित और

हते शस्त्रे महाराज दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ भूयः संच्छादयामास केशवं गरुडे स्थितम् ॥ ६६ ॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव छादयामास केशवम् ॥ तस्य तां तरसा सर्वां बाणवृष्टिं समुद्यताम् ॥ ६७ ॥ प्रहसन्वारयामास केशवः शत्रुसूदनः ॥ केशवस्य तु बाणेन वर्त्तमाने महाहवे ॥ ६८ ॥ तस्य शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैरशनिसंनिभैः ॥ तिलशस्तद्रथं चक्रे साश्वध्वजपताकिनम् ॥ ६९ ॥ चिच्छेद कवचं काया'मुकुटं च महाप्रभम् ॥ कार्मुकं च महातेजा हस्तचापं च केशवः ॥ ७० ॥ विव्याध चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव ॥ स मर्माभिहतः संख्ये प्रमुमोहाल्पचेतनः ॥ ७१ ॥ तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं बाणं प्रहारपरिपीडितम् ॥ प्रासादवरशृङ्गस्थो नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ७२ ॥ उत्थायापश्यत तदा कक्षास्फोटनतत्परः ॥ वादयानो नखांश्चैव दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ ७३ ॥ अहो मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ दृष्टं मे यदिदं चित्रं दामोदरपराक्रमम् ॥ ७४ ॥ जय बाणं महाबाहो दैतेयं देवाकिल्बिषम् ॥ यदर्थमवतीर्णोऽसि तत्कर्म सफलीकुरु ॥ ७५ ॥

मूर्च्छित बाणासुरको देखकर ऊंचे महलके शिखरपर स्थित हुए नारदजी ॥ ७१ ॥ अपनी कांखोंको बजाते नखोंसे विणाको बजाते, मंगल हुआ मंगल हुआ ऐसे कहने लगे ॥ ७२ ॥ अहो हमारा जन्म अब सफल हुआ, मेरा जीवन अब सफल हुआ जो मैंने यह चित्ररूप श्रीकृष्णका पराक्रम देखा ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे महाबाहो ! देवताओंके वैरी दितिके वंशमें उपजनेवाले बाणासुरको जीतो जिसके अर्थ अवतार लिया है तिस कर्मको सफल करो ॥ ७५ ॥

ऐसे श्रीकृष्णकी स्तुति कर गिरते हुए बाणोंसे आकाशको प्रकाशित करते हुए नारदमुनि युद्धमें विचरने लगे ॥ ७६ ॥ और इन दोनोंकी ध्वजाओंका परस्पर संग्राम हुआ. इस प्रकार देवता और दैत्योंके युद्धमें विचित्रता हुई ॥ ७७ ॥ पीछे बाणासुरका वाहन मयूर और श्रीकृष्णका वाहन गरुड ये दोनों पक्ष तुण्ड पैरनखके ॥ ७८ ॥ प्रहारोंसे परस्पर युद्ध करने लगे; तब क्रोधको प्राप्त हुए गरुडने दीप्ततेजवाले मयूरका ॥ ७९ ॥ शिर ग्रहणकर तुंडसे पतन कर पंखोंसे फेंककर ताडन किया ॥८०॥और पैर पांसुओंके अभिघातसे अनेक प्रकारकी चोट मार और बडे बलसे खैंचकर ॥८१॥

एवं स्तुत्वा तदा देवं बाणैः खं द्योतयन् शितैः ॥ इतस्ततः संपतद्भिर्नारदो व्यचरद्रणे ॥७६॥ प्रयुध्येतां ध्वजौ तत्र तावन्योन्यमभिद्रुतौ ॥ युद्धं त्वभूद्वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः ॥७७॥ गरुडस्य च संग्रामो मयूरस्य च धीमता ॥ पक्षतुण्डप्रहारैस्तु चरणास्यनखैस्तथा ॥७८॥ अन्योन्यं जघ्नतुः क्रुद्धौ मयूरगरुडावुभौ ॥ वैनतेयस्ततः क्रुद्धो मयूरं दीप्ततेजसम् ॥७९॥ जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिपतंस्तदा ॥ उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्यां निजघान महाबलः ॥ ८० ॥ पद्भ्यां पार्श्वाभिघाताभ्यां कृत्वा घातान्यनेकशः ॥ आकृष्य चैनं तरसा विकृष्य च महाबलः ॥८१॥ निःसंज्ञं पातयामास गगनादिव भास्करम् ॥ मयूरे पतिते तस्मिन्पपातातिबलो भुवि ॥ ८२ ॥ बाणः समरसंविग्नश्चिन्तयन्कार्यमात्मनः ॥ मयातिबलमत्तेन न कृतं सुहृदां वचः ॥ ८३ ॥ पश्यतां देवदैत्यानां प्राप्तोऽस्म्यापदमुत्तमाम् ॥ तं दीनमनसं ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्लवम् ॥८४॥चिन्तयद्भगवान् रुद्रो बाणरक्षणमातुरः ॥ ततो नन्दीं महादेवः प्राह गम्भीरया गिरा ॥ ८५ ॥

संज्ञासे रहित मयूरको आकाशसे गिरा दिया; जैसे आकाशसे सूर्य गिरा. जब मयूर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ८२ ॥ तब अतिबली बाणासुरभी अनेक कार्यका चिंतवन कर पृथ्वीमें गिरकर कहने लगा कि, बलके मदसे मैंने मित्रोंका वचन नहीं माना ॥८३॥ सो देवता और दैत्योंके देखते हुए मैं बडी आपदको प्राप्त हुआ हूं; तब दीनमनवाला और युद्धमें विकल बाणासुरको जानकर॥८४॥बाणासुरकी रक्षाके अर्थ चिंतवन करते हुए महादेव फिर गंभीर वाणीसे नंदिकेश्वरसे कहने लगे ॥ ८५ ॥

हे प्रिय ! जहां बाणासुर युद्धमें स्थित है तहां दिव्य और सिंहोंसे युक्त प्रकाशित ॥ ८६ ॥ रथद्वारा बाणासुरको युद्धके अर्थ प्राप्त कर मैं प्रमथगणोंके मध्यमें स्थित हूं मेरा मन ठीक नहीं है ॥ ८७ ॥ इस कारण युद्ध नहीं करता हूं, बाणासुरकी रक्षाके अर्थ शीघ्र गमन करो ऐसे महादेवके वचनको ग्रहण कर नंदिकेश्वर रथमें बैठ ॥ ८८ ॥ जहां बाणासुर स्थित था तहां जाकर शनैः कहने लगे; हे दैत्य ! हे महाबल ! इस रथमें शीघ्र चढो ॥ ८९ ॥ पीछे दैत्योंके नाश करनेवाले श्रीकृष्णसे युद्ध करो तब महादेवके रथमें बाणासुर स्थित हो ॥ ९० ॥ उस ब्रह्मनिर्मित रथमें प्राप्त होकर महातेजस्वी

नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः ॥ रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता ॥ ८६ ॥ बाणे संयोजयाशु त्वमलं युद्धाय वानघ ॥ प्रमाथगणमध्येऽहं स्थास्यामि नहि मे मनः ॥ ८७ ॥ योद्धुं वितरते ह्यद्य बाणं संरक्ष्य गम्यताम् ॥ तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिनां वरः ॥ ८८ ॥ यतो बाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम् ॥ दैत्यामुं रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबल ॥ ८९ ॥ ततो युध्यस्व कृष्णं वै दानवान्तकरं रणे ॥ आरुरोह रथं बाणो महादेवस्य धीमतः ॥ ९० ॥ आरूढः स तु बाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेजसः ॥ ९१ ॥ प्रादुश्चक्रे महारौद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम् ॥ दीप्तं ब्रह्मशिरो नाम बाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान् ॥ ९२ ॥ प्रदीप्ते ब्रह्मशिरसि लोकाः क्षोभमुपागमन् ॥ लोकसंरक्षणार्थं वै तत्सृष्टं ब्रह्मयोनिना ॥ ९३ ॥ तच्चक्रेण निहत्यास्त्रं प्राह कृष्णस्तरस्विनम् ॥ लोके प्रख्यातयशसं बाणमप्रतिमं रणे ॥ ९४ ॥ कथितानि क्व ते तात बाण किं न विकत्थसे ॥ अयमस्मि स्थितो युद्धे युद्धयस्व पुरुषो भव ॥ कार्तवीर्यार्जुनो नाम पूर्वं बाहुसहस्रवान् ॥ ९५ ॥

शिवजीके दिये हुए रथमें चढ ॥ ९१ ॥ सब अस्त्रोंका घात करनेवाले महाघोर ब्रह्मशिर नामवाले अस्त्रको उस महाबलीने प्रगट किया ॥ ९२ ॥ जब ब्रह्मशिर अस्त्र प्रदीप्त हुआ तब सब लोक क्षोभको प्राप्त हुए कारण कि लोककी रक्षाके अर्थ जो अस्त्र रचा गया है ॥ ९३ ॥ तिस अस्त्रको श्रीकृष्णने अपने चक्रसे काटा, और संसारमें विख्यात यशवाले और युद्धमें कुशल और वेगमें कुशल ॥ ९४ ॥ बाणासुरसे श्रीकृष्ण कहने लगे, हे बाण ! जो तैंने

पहले वचन कहे थे वे अब फिर क्यों नहीं कहता; अब मैं युद्धमें स्थित हो रहा हूं तू पुरुष होकर मेरे संग युद्ध कर पहले सहस्र बाहुओंवाला महाबली कार्तवीर्यार्जुन ॥ ९५ ॥ परशुरामजीने पहले युद्धमें दो बाहुओंवाला कर दिया है, तैसेही तुझे भी बाहुओंके वीर्यके उपजा गर्व है ॥ ९६ ॥ सो इस तेरे गर्वकी शांति इस युद्धमें करता हूं, और जबतक तेरे गर्वकी अपनी भुजासे शांति करूं ॥ ९७ ॥ तबतक तू यहीं स्थित रह, मुझसे तू इस युद्धमें बचेगा नहीं, तब परमदारुण और अतिदुर्लभ तिस युद्धको देखकर ॥ ९८ ॥ देवता असुरोंके निकट नारद मुनि युद्धमें चलने लगे

महाबलः स रामेण द्विबाहुः समरे कृतः ॥ तथा तवापि दर्पोऽयं बाहूनां वीर्यसंभवः ॥९६॥ एष ते दर्पशमनं करोमि रणमूर्द्धनि ॥ यावत्ते दर्प्पशमनं करोम्यद्य स्वबाहुना ॥९७॥ तिष्ठेदाना न मेऽद्य त्वं मोक्ष्यसे रणमूर्द्धनि ॥ अथ तद्दुर्लभं दृष्ट्वा युद्धं परमदा-रुणम् ॥९८॥ तत्र देवासुरसमे युद्धे नृत्यति नारदः ॥ निर्जिताश्च गणाः सर्वे प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ९९ ॥ निक्षिप्तवादा युद्धस्य देवदेव गताः पुनः ॥ स तच्चक्रं सहस्रारं नदन्मेघ इवोष्णगे ॥१००॥ जग्राह कृष्णस्त्वरितो बाणान्तकरणं रणे ॥ तेजो यज्ज्यो-तिषां चैव तेजो वज्राशनेस्तथा ॥१॥ सुरेशस्य च यत्तेजस्तच्चक्रे पर्यवस्थितम् ॥ त्रेताग्नेश्चैव यत्तेजो यच्च वै ब्रह्मचारिणाम् ॥२॥ ऋषीणां च ततो ज्ञानं तच्चक्रे समवस्थितम् ॥ पतिव्रतानां यत्तेजः प्राणाश्च मृगपक्षिणाम् ॥३॥ यच्च चक्रधरेष्वस्ति तच्चक्रे संनिवे-शितम् ॥ नागराक्षसयक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ४ ॥

और प्रद्युम्नजीने तिस समयमें सब गणभी जीत लिये ॥ ९९ ॥ तब युद्धसे भाग महादेवजीके पार्षद महादेवजीके समीपमें गये पीछे सहस्र आरोंवाला सुदर्शन चक्र वर्षाके मेघके समान गर्जता हुआ ॥१००॥ बाणासुरके नाशके अर्थ श्रीकृष्णने ग्रहण किया. पीछे सब तारांगणोंका तेज और वज्रका तेज ॥ १ ॥ इन्द्रका तेज इनको चक्रमें व्यवस्थित कर त्रेताग्निका तेज ब्रह्मचारियोंका तेज ॥ २ ॥ मुनियोंका ज्ञान यह सब चक्रमें व्यवस्थित कर, पतिव्रता स्त्रियोंका तेज मृग और पक्षियोंके प्राण ॥ ३ ॥ और नाग राक्षस यक्ष गंधर्व अप्सरा इनका तेज ॥ ४ ॥

और त्रिलोकीका बल प्राण इन सबोंको श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रमें स्थापित किया, तिस तेजसे संयुक्त और सूर्यके समान प्रकाशित॥५॥और अति-तेजवाले शरीरसे व्याप्त चक्र बाणासुरके समीपमें श्रीकृष्णने स्थित किया.तेजसे दीप्तमान उस चक्रकरके युद्धमें॥६॥अप्रमेय और किसीसे न कटे ऐसा त्रिलोकीमें जीतनेके योग्य चक्र जब श्रीकृष्णने धारण किया ॥ ७ ॥ तब उमादेवी महादेवजीसे कहने लगी;हे देव ! जबतक यह चक्र नहीं छूटे तबतक तुम बाणासुरकी रक्षा करो महादेवके वचन सुन लंबादेवीसे शिव कहने लगे ॥ ८ ॥ हे लंबे ! बाणकी रक्षाके अर्थ शीघ्र जाओ,तब पार्वती योगको

त्रैलोक्यस्य च यत्प्राणं सर्वं चक्रे व्यवस्थितम् ॥ तेजसा तेन संयुक्तं ज्वलन्निव च भास्करः ॥५॥ वपुषा तेज आधत्ते बाणस्य प्रमुखे स्थितम् ॥ ज्ञात्वातितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे ॥६॥ अप्रमेयं ह्यविहतं रुद्राणी चाब्रवीच्छिवम् ॥ अजेयमेतत्त्रैलोक्ये चक्रं कृष्णेन धार्यते ॥ ७ ॥ बाणं त्रायस्व देव त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति ॥ ततस्त्र्यक्षो वचः श्रुत्वा देवीं लम्बामथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ गच्छैहि लम्बे शीघ्रं त्वं बाणसंरक्षणं प्रति ॥ ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता ॥ ९ ॥ कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शयन्पार्श्वमागता ॥ चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा भगवन्तं रणाजिरे ॥१०॥ अन्तर्द्धानमुपागम्य त्यज्य सा वाससी पुनः ॥ परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः ॥ ११ ॥ प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासा कोटवी स्थिता ॥ तां दृष्ट्वाथ पुनः प्राप्ता देवीं रुद्रस्य संमताम् ॥ १२ ॥ लम्बां द्वितीयां तिष्ठन्तीं कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ भूयः सामर्षताम्राक्षी दिग्वस्त्रावस्थिता रणे ॥ १३ ॥ बाणसंरक्षणपरा हन्मि बाणं न संशयः ॥ एवमुक्ता तु कृष्णेन भूयो देव्यब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

प्राप्त हो अदृश्यरूप ॥ ९ ॥ अकेले कृष्णको अपने रूपको दिखानेवाली और अन्योंसे अदृश्य होकर श्रीकृष्णके समीपमें प्राप्त हुई और चक्रको हाथमें धारण करनेवाले श्रीकृष्णको युद्धमें देखकर॥१०॥लंबा अंतर्धानको प्राप्त हो अपने कपडोंको त्याग बाणासुरकी रक्षाके अर्थ अपने कपडोंको फिर त्याग श्रीकृष्णके सन्मुख स्थित हुई ॥११॥ तब फिर प्राप्त हुई रुद्रकी मानी हुई देवीको ॥१२॥ और दूसरी लंबाको स्थित हुई देख श्रीकृष्ण कहने लगे कि; हे देवि ! फिर तू बाणासुरकी रक्षाके अर्थ कपडोंको त्यागकर युद्धमें मेरे सन्मुख स्थित हुई ॥१३॥ मैं इस बाणासुरको मारूंगा इसमें

संशय नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके वचनको सुनकर बाणासुरकी रक्षा करनेवाली देवी मधुरवाणीसे श्रीकृष्णसे कहने लगी॥ १४॥ कि सब लोकोंको रचनेवाले और पुरुषोंमें उत्तम और महाभाग महादेव अनंत नील अव्यय॥ १५॥ पद्मनाभ हृषीकेश लोकोंकी आदिमें उत्पन्न होनेवाले तुमको मैं जानती हूं. हे देव ! युद्धमें इस बाणासुरको मारनेके योग्य तुम नहीं हो॥ १६॥ इस बाणासुरको अभयदान करो, और मैंने बाणासुरकी माताके अर्थ यह वर दिया है कि तेरा पुत्र सदा जीता रहेगा ॥ १७॥ इस कारण फिर मैं रक्षा करती हूं; सो हे माधव ! मेरे उद्योगको मिथ्या करनेको तुम योग्य नहीं हो, ऐसे देवीके वचनको सुन शत्रुनाशी ॥ १८॥ श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे भामिनि ! तू सत्यवचनको सुन, सहस्र बाहुओंसे गर्वित हुआ बाणासुर शब्द करता

जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम् ॥ महाभागं महादेवमनन्तं लीनमव्ययम् ॥ १५ ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसंभवम् ॥ नार्हसे देव हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रथे ॥ १६ ॥ प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीवपुत्री त्वमेव च ॥ मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते ॥ १७ ॥ न मे मिथ्या समुद्योगं कर्तुमर्हसि माधव ॥ एवमुक्ते तु वचने देव्या परपुरंजयः ॥ १८ ॥ कृष्णः प्रभाषते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि ॥ बाणो बाहुसहस्रेण नर्दते दर्पमाश्रितः ॥ १९ ॥ एतेषां छेदनं त्वद्य कर्तव्यं नात्र संशयः ॥ द्विबाहुना च बाणेन जीवपुत्री भविष्यसि ॥१२०॥ आसुरं दर्पमाश्रित्य नच मां संश्रयिष्यति ॥ एवमुक्ते तु वचने कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २१ ॥ प्रोवाच देवी बाणोऽयं देवदत्तो भवेदिति ॥ अथ तां कार्तिकेयस्य मातरं सोऽभिभाष्य वै ॥ २२ ॥ प्रोवाच बाणं समरे वदतां प्रवरः प्रभुः ॥ युध्यतां युध्यतां संख्ये भवतां कोटवी स्थिता ॥ २३ ॥ अशक्तानामिव रणे धिग्बाण तव पौरुषम् ॥ एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तच्चक्रं परमात्मवान् ॥ २४ ॥

है ॥ १९ ॥ इस कारण इसकी बाहुओंका छेदन करना आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं; परन्तु दो बाहुओंवाले बाणासुरसे तूजीवितपुत्रिणी होगी ॥१२०॥ दैत्यपनेके गर्वको प्राप्त हो यह मेरा आश्रय नहीं लेगा; इस प्रकार अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णके वचनको सुन ॥२१॥ देवी कहने लगी कि हे देवदेव ! यह बाणासुर तुम्हारे आश्रित रहेगा; पीछे पार्वतीजीसेभी ऐसेही श्रीकृष्ण कहकर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ प्रभुने बाणासुरसे कहा ॥२२॥ युद्ध करो तुम्हारी कोटवी देवी स्थित हो रही है ॥२३॥ असमर्थोंकी नांई हे बाणासुर ! तेरे पौरुषको धिक्कारहै, ऐसे कहकर श्रीकृष्णने उस महाब-

लयुक्त चक्रको ले ॥ २४ ॥ नेत्रोंको मीच महाबली श्रीकृष्णने छोडा; जिसके छोडनेसे स्थावर जंगम लोक मोहको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ और मांसोंको खानेवाले प्राणी युद्धमें तृप्त होते हैं; सूर्यके समान कांतिमान् ॥२६॥ वह चक्र जब गदाधरने ग्रहण किया तब वह अपने तेजसे दानवोंका तेज हरता हुआ ॥२७॥ बाणासुरकी बाहुओंको काटने लगा; और जलते हुए काष्ठके समान शीघ्र युद्धमें भ्रमता हुआ ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णसे युद्धमें छोडा हुआ दूसरे सूर्यकी समान विष्णुका चक्र ऐसी शीघ्रतासे भ्रमने लगा कि, जिसकी शीघ्रतासे रूपभी नहीं दीखता था ॥२९॥ तब बाणासुरकी

निमीलिताक्षो व्यसृजद्बाणं प्रति महाबलः ॥ क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥ २५ ॥ क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे ॥ तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥ २६ ॥ चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः ॥ स मुष्णन्दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥ २७ ॥ चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः परमौजसा ॥ अलातचक्रवत्तूर्णं भ्राम्यमाणं रणाजिरे ॥ २८ ॥ क्षिप्तं तु वासुदेवेन बाणस्य रणमूर्द्धनि ॥ विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शघ्र्याद्रूपं न दृश्यते ॥२९॥ तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुनः पुनः ॥ बाणस्य च्छेदनं चक्रे तच्चक्रं रणमूर्द्धनि ॥ १३० ॥ कृत्वा द्विबाहु तं बाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ॥ पुनः कराग्रे कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कृतकृत्ये तु संप्राप्ते चक्रे दैत्यनिपातने ॥ स्रवता तेन कायेन शोणितौघपरिप्लुतः ॥३२॥ अभवत्पर्वताकारश्छिन्नबाहुर्महासुरः ॥ असृङ्मत्तश्च विविधान्नादान्मुञ्चन्घनो यथा ॥३३॥ तस्य नादेन महता केशवो रिपुसूदनः॥ चक्रं भूयः क्षेप्तुकामो बाणनाशार्थमुद्यतः॥ तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽब्रवीत् ॥३४॥

सहस्र बाहुओंको क्रमसे काट उस चक्रने ॥३०॥ दो बाहुओंवाला कटी हुइ शाखावाले वृक्षके समान बाणासुरको कर दिया; तब फिर सुदर्शन चक्र श्रीकृष्णके हाथमें प्राप्त हुआ॥३१॥वैशंपायन बोले; जब सुदर्शन चक्र कृष्णके हाथमें प्राप्तहुआ; और वहते हुए लोहूके समूहसे भींगता हुआ॥३२॥ पर्वतके आकार छिन्न बाहुओंवाला और महाबली लोहूसे मत्त मेघके समान अनेक प्रकारके शब्दोंको बाणासुर करने लगा॥३३॥ तब बाणासुरके महाशब्दसे क्रोधको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण फिर बाणासुरके नाशके अर्थ सुदर्शनचक्रको छोडनेलगे; तब स्वामिकार्तिकसहित महादेवजीआकर उनसे कहने

लगे ॥ ३४ ॥ महादेव बोले; हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे पुरुषोत्तम ! हे मधुकैटभको मारनेवाले ! हे देव ! हे सनातन ! तुमको म जानता हूं ॥३५॥ हे देव ! लोकोंकी तुम गति हो; तुमसे यह जगत् रचा गया है, देवता दैत्य सर्प तीन प्रकारके प्राणियोंसे तुम जीतनेमें नहीं आ सकते ॥ ३६ ॥ इस कारण दिव्य और उद्यतरूप इस सुदर्शनचक्रको आप मत छोडो; आपंनिवारण और संहारके योग्य रणमें शत्रुओंको भय देनेवाले हो ॥ ३७ ॥ हे केशिनिषूदन ! इस बाणासुरको मैंने अभय दिया है सो मेरा मिथ्या वाक्य न हो; इस कारण तुमसे मैं क्षमा कराता हूं ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम् ॥ मधुकैटभहन्तारं देवदेवं सनातनम् ॥ ३५ ॥ लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुरपन्नगैः ॥ ३६ ॥ तस्मात्संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम् ॥ अनिवार्यमसंहार्यं रणे शत्रुभयंकरम् ॥ ३७ ॥ बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदन ॥ तन्मे न स्याद्वृथा वाक्यमतस्त्वां क्षामयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ जीवतां देव बाणोऽयमेतच्चक्रं निवर्तितम् ॥ मान्यस्त्वं देवदेवानामसुराणां च सर्वशः ॥ ३९ ॥ नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि यत्कार्यं ते महेश्वर ॥ न तावत्क्रियते तस्मान्मामनुज्ञातुमर्हसि ॥१४०॥ एवमुक्त्वा महादेवं कृष्णस्तूर्णं महामनाः ॥ जगाम तत्र यत्रास्ते प्राद्युम्निः सायकैश्चितः ॥ ४१ ॥ गते कृष्णे ततो नन्दी बाणमाह वचः शुभम् ॥ गच्छ बाण प्रसन्नस्य देवदेवस्य चाग्रतः ॥ ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा नन्दिवाक्यं तु बाणोऽगच्छत शीघ्रगः ॥ छिन्नबाहुं ततो बाणं दृष्ट्वा नन्दी प्रतापवान् ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण बोले; हे देव! यह बाणासुर जीता रहे; यह चक्र मैंने निवृत्त किया क्योंकि देवताओंके देवता और दैत्योंके तुम मान्य हो ॥३९॥ तुम्हारे अर्थ नमस्कार है जो मेरा कार्य है तिसके अर्थ मैं गमन करता हूं इस कारण आप मुझे आज्ञा दीजिये जो आपका कार्य है सो कहिये ॥१४०॥ महादेवजीसे यह कह गरुडजीके संग श्रीकृष्ण जहां बाणोंसे संयुक्त अनिरुद्ध स्थित थे श्रीकृष्ण तहां गये ॥ ४१ ॥ जब श्रीकृष्ण चले गये तब नंदीश्वर बाणासुरसे कहने लगे; हे बाण ! ऐसेही प्रसन्न महादेवजीके अगाडी स्थित हो ॥ ४२ ॥ तब नंदीश्वरके वचनसुन बाणासुर शीघ्र चलनेको

तैयार हुआ; तब कटी हुई बाहुओंवाले बाणासुरको प्रतापवान् नंदीने देख ॥ ४३ ॥ रथमें स्थितकर जहां महादेवजी स्थित थे; तहां जाकर प्राप्त किया; फिर नंदीश्वर बाणासुरसे कहने लगे ॥ ४४ ॥ हे बाण ! महादेवजीके अगाडी नृत्य कर इसमें तेरा कल्याण होगा, यह देव तेरेपर प्रसन्न होंगे ॥ ४५ ॥ तब लोहूके समूहसे भीजे हुए अंगोंवाला, और नंदीश्वरके वाक्यसे प्रेरित जीनेकी इच्छावाला बाण शिवके सन्मुख ॥ ४६ ॥ भयसे संविग्न और बिगडे मन कृपणअवस्थाको प्राप्त हुआ भयसे विक्लव नेत्र किये महादेवजीके सन्मुख नाचने लगा; तब भयसे उद्विग्न और नृत्य करता हुआ

अपवाह्य रथेनैनं यतो देवस्ततो ययौ ॥ ततो नन्दी पुनर्बाणं प्रागुवाचोत्तरं वचः। ।४४॥ बाण बाण प्रनृत्यस्व श्रेयस्तव भविष्यति॥ एष देवो महादेवः प्रसादसुमुखस्तव ॥४५॥ शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नन्दिवाक्यप्रचोदितः ॥ जीवितार्थी ततो बाणः प्रमुखे शंकरस्य वै ॥४६ ॥ अनृत्यद्भयसंविग्नो दानवः स विचेतनः ॥ तं दृष्ट्वा च प्रनृत्यन्तं भयोद्विग्नं पुनः पुनः ॥ ४७ ॥ नन्दिवाक्यप्रजवितं भक्तानुग्रहकृद्भवः ॥ करुणावशमापन्नो महादेवोऽब्रवीद्वचः ॥ ४८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरं वृणीष्व बाण त्वं मनसा यदभीप्ससि ॥ प्रसादसुमुखस्तेऽहं प्रियोऽसि मम दानव ॥४९॥ बाण उवाच ॥ अजरश्चामरश्चैव भवेयं सततं विभो ॥ एष मे प्रथमो देव वरोऽस्तु यदि मन्यसे ॥१५०॥ देव उवाच ॥ तुल्योऽसि दैवतैर्बाण न मृत्युस्तव विद्यते ॥ अथापरं वृणीष्वाद्य अनुग्राहोऽसि मे सदा ॥५१॥ बाण उवाच ॥ यथाहं शोणितैर्दिग्धो भृशार्तो व्रणपीडितः ॥ भक्तानां नृत्यतां देव पुत्रजन्म भवेद्भव ॥ ५२ ॥

देख ॥४७॥ नंदीश्वरके वाक्यसे वेगवाले बाणासुरके प्रति भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले दयासे सम्पन्न महादेवजी कहने लगे ॥ ४८ ॥ शिवजी बोले; हे बाण ! जो तेरे मनमें हो सो वर मांग. मैं तुझपर प्रसाद करनेवाला हूं, यह प्रेमका समय प्राप्त हुआ है ॥ ४९ ॥ बाणासुर बोला; हे विभो ! जो आप बर देते हो तो मैं अजर और अमर हो जाऊं प्रथम यह वरदान दो ॥१५०॥ महादेवजी बोले कि हे बाण ! तू देवताओंके समान है तेरी मृत्यु नहीं है अन्य वरको मांग मुझसे तू अनुग्रह पानेके योग्य है ॥ ५१ ॥ बाणासुर बोला; जैसे लोहूसे भीजा हुआ अतिपीडित घावोंसे दुःखित मैं

नृत्य करता हूं; जो भक्तजन ऐसे तुम्हारे अगाडी नृत्य करें तिनके पुत्रकी उत्पत्ति हो ॥ ५२ ॥ महादेव बोले; भोजनको त्यागनेवाले क्षमासे संयुक्त सत्य और आर्जवमें परायण मेरे भक्त जो नृत्य करेंगे तिनके पुत्रकी उत्पत्ति निश्चय होगी॥५३॥हे बाण! जो तेरे हृदयमें स्थित हो. सो तीसरे वरको मांग; हे पुत्र! तुझे मैं दूंगा और तू सफल होगा ॥ ५४ ॥ बाणासुर बोला कि; हे शिव ! जो मेरे चक्रके लगनेसे घोर और तीव्र पीडा हो रही है यह शांत हो जाय; तीसरा वर मैंने यह मांगा॥५५॥महादेवजी बोले;कि दैत्यसत्तम ! सुदर्शन चक्रके काटनेसे जो घोररूप पीडा तुझे उपजी है वह तेरे शरीरमें नहीं

श्रीहर उवाच ॥ निराहाराः क्षमावन्तः सत्यार्जवसमाहिताः ॥ मद्भक्ता येऽपि नृत्यन्ति तेषामेवं भविष्यति ॥५३॥ तृतीयं त्वमथो बाण वरं वर मनोगतम् ॥ तद्विधास्यामि ते पुत्र सफलोऽस्तु भवानिह ॥५४॥ बाण उवाच ॥ चक्रताडनजा घोरा रुजा तीव्रा हि मेऽनघ ॥ वरेणासौ तृतीयेन शान्तिं गच्छतु मे भव ॥५५॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते न रुजा प्रभविष्यति ॥ अक्षतं तव गात्रं तु स्वस्थावस्थं भविष्यति ॥ ५६ ॥ चतुर्थं ते वरं दद्मि वृणीष्व यदि कांक्षसि ॥ न तेऽहं विमुखस्तात प्रसादसुमुखो ह्यहम् ॥५७॥ बाण उवाच ॥ प्रमाथगणवंश्यस्य प्रथमः स्यामहं विभो ॥ महाकाल इति ख्यातिं गच्छेयं शाश्वतीः समाः॥५८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं भविष्यतीत्याह बाणं देवो महेश्वरः ॥ दिव्यरूपोऽक्षतो गात्रे नीरुजस्तु ममाश्रयात्॥५९॥ ममातिसर्गाद्बाण त्वं भव चैवाकुतोभयः ॥ भूयस्ते पञ्चमं दद्मि प्रख्यातबलपौरुषम् ॥ पुनर्वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ १६० ॥

रहेगी और तू बलवान् हो जायगा ॥५६॥ हे असुर ! मनोवांछित चौथे वरकोभी मैं तुझे देता हूं; जो वरणीयोंमें इच्छा हो सो मांग मैं तुझसे विमुख नहीं हूं ॥५७॥ बाणासुर बोला; हे विभो ! प्रमथगणके वंशमें प्रथम हूं और बहुत वर्षोंतक महाकाल नामसे विख्यात हूं ॥५८॥ वैशम्पायन बोले; महादेवजीने यहभी वरदान बाणासुरको दिया,और फिर कहने लगे कि मेरे आश्रयसे इन अंगोंसे दिव्यरूप और पीडासे रहित ॥ ५९ ॥ और सब प्रकारके भयोंसे रहित अतिकीर्तिवाला हो जायगा, फिरभी मैं तुझे पांचवां बलपौरुषयुक्त वर देता हूं तू मांग अर्थात् जो तेरे मनमें इच्छा हो सो तू

मांग॥१६०॥बाणासुर बोला कि हे देवसत्तम!मेरे अंगोंकी विरूपता कभी न हो;और दो बाहु होनेपरभी रूपसे रहित मेरा देह न हो अर्थात् सुन्दर रूपवाला देह हो जाय ॥६१॥ महादेवजी बोले;हे दैत्यराज!जो तू इच्छा करता है वह संपूर्ण हो जायगा; और तू मेरा भक्त है मेरे कोई वस्तु ऐसी नहीं जो भक्तोंको अदेय हो॥६२॥वैशंपायन बोले;पीछेसमीपमें स्थित हुए बाणासुरसे महादेवजी बोले जो तैंने कहा है वह संपूर्ण तेरा होगा॥६३॥ ऐसे कहकर अपने गणोंसे संयुक्त महादेव सब प्राणियोंको देखते हुए तहांसे अंतर्धान होगये॥१६४॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि

बाण उवाच ॥ वैरूप्यमङ्गजं यन्मे माभूद्देव कदाचन ॥ द्विबाहुरपि मे देहो न विरूपो भवेद्भव ॥६१॥ श्रीहर उवाच ॥ भविता सर्वमेतत्ते यथेच्छसि महासुर ॥ भवत्वेवं न चादेयं भक्तानां विद्यते मम ॥६२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽब्रवीन्महादेवो बाणं स्थितमथान्तिके ॥ एवं भविष्यते सर्वं यत्त्वया समुदाहृतम् ॥६३॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्त्रिनेत्रो गणसंवृतः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत ॥१६४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे बाणासुरवरप्रदानं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एव वरान्बहून्प्राप्य बाणः प्रीतमनाभवत् ॥ जगाम सह रुद्रेण महाकालत्वमागतः ॥ १ ॥ वासुदेवोऽपि बहुधा नारदं पर्यपृच्छत ॥ क्वानिरुद्धोऽस्ति भगवन्संयतो नागबन्धनैः ॥२॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन स्नेहक्लिन्नं हि मे मनः ॥ अनिरुद्धे हृते वीरे क्षुभिता द्वारका पुरी ॥ ३ ॥ शीघ्रं तं मोक्षयिष्यामो यदर्थं वयमागताः ॥ अद्य तं नष्टशत्रुं वै द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ॥ ४ ॥

भाषायां बाणवरप्रदानं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥ वैशंपायन बोले; ऐसे बहुतसे वरोंको प्राप्त हो प्रसन्न हुआ बाणासुर महाकालत्वको प्राप्त हुआ महादेवके संग चला गया ॥१॥ और युद्धसे निवृत्त हुए कृष्णभी नारदसे पूछने लगे;हे भगवन् ! नागोंसे बंधे हुए अनिरुद्ध कहां स्थित हैं॥२॥यह सुननेकी मेरी इच्छा है; और स्नेहसे गीला मेरा मन हो रहा है; जबसे अनिरुद्ध हरे गये हैं तबसे द्वारकावासी दुःखित हो रहे हैं॥३॥ अब उस अनिरुद्धको शीघ्र छुटावेंगे जिसके अर्थ हमप्राप्त हुए हैं और अब नष्ट शत्रुवाले अनिरुद्धको हम देखनेकी इच्छा करते हैं॥४॥सो अब जहां

अनिरुद्ध स्थित है उस देशको तुम जानते हो,ऐसे श्रीकृष्णके वचनको सुन नारदजी वचन कहने लगे॥५॥हे माधव!नागोंसे बंधे हुए अनिरुद्ध कन्या-पुरमें स्थित हैं,पीछे इसी अंतरमें चित्ररेखाभी आनकर प्राप्त हुई॥६॥और कहने लगी.हे देव!उत्तम पराक्रमवाले दैत्योंके इन्द्र बाणासुरका यह अंतः-पुर है, इसमें तुम प्रवेश करो॥७॥तब अनिरुद्धको छुटानेके अर्थ बलदेव गरुडजी श्रीकृष्ण प्रद्युम्ननारद यह भीतर गये॥८॥तब गरुडजीको देखकर जो अनिरुद्धके शरीरको शररूप महासर्प वेष्टित कर रहे थे ॥९॥वे सब देहसे निकल पृथ्वीके भीतर प्रवेश कर गये;और शर प्रकृतिमें स्थित रहे॥१०॥

स प्रदेशस्तु भगवन्विदितस्तव सुव्रत ॥ एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदः प्रत्यभाषत ॥५॥ कन्यापुरे कुमारोऽसौ बद्धो नागैश्च माधव॥ एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं चित्रलेखा ह्युपस्थिता ॥६॥ बाणस्योत्तमशर्वस्य दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥ इदमन्तःपुरं देव प्रविशस्व यथा-सुखम् ॥७॥ ततः प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य मोक्षणे ॥ बलः सुपर्णः कृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा ॥ ८ ॥ ततो दृष्ट्वैव गरुडं येऽनिरुद्धशरीरगाः ॥ शररूपा महासर्पा वेष्टयित्वा तनुं स्थिताः ॥९॥ ते सर्वे सहसा देहात्तस्य निःसृत्य भोगिनः ॥ क्षितिं सम-भिवर्तित्वा प्रकृत्यावस्थिताः शराः ॥१०॥ दृष्टः स्पृष्टश्च कृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायशाः ॥ स्थितः प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जलिर्वा-क्यमब्रवीत् ॥११॥ देवदेव सदा युद्धे जेता त्वमसि केशव ॥ न शक्तः प्रमुखे स्थातुं साक्षादपि शतक्रतुः ॥१२॥ ततो महाबलं देवं बलभद्रं यशस्विनम् ॥ अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः ॥१३॥ माधवं च महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ खगोत्तमं महावीर्यं सुपर्णमभिवाद्य च ॥१४॥ ततो मकरकेतुं च चित्रबाणधरं प्रभुम् ॥ पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभिवादयत् ॥ १५ ॥

तब श्रीकृष्णने अनिरुद्धको देखा और स्पर्श किया तब प्रसन्न होकर अंजली बांध अनिरुद्ध कहने लगे॥११॥हे देवदेव!सदा युद्धमें तुम जीतनेवाले हो; तुम्हारे सन्मुख इन्द्र भी युद्धमें स्थित होनेको समर्थ नहीं है॥१२॥फिर महाबली यशस्वी बलभद्रजी प्रसन्न हो महामना अनिरुद्धने अभिवादन किया ॥१३॥ महात्मा माधवको हाथ जोड प्रणामकर खगोंमें श्रेष्ठ महाबली गरुडको प्रणाम कर॥१४॥मकरकेतु प्रद्युम्न चित्रबाण धारण करनेवाले अपने

पिताके निकट आ अनिरुद्धने प्रणाम किया ॥१५॥ सखीगणोंके सहित उषा अपने भवनमें स्थित हुई; बल अतिबल और दुर्जय वसुदेवको॥१६॥ असंख्यात गति गरुडको प्रणाम कर महालज्जासे प्रद्युम्नको प्रणाम किया॥१७॥तब इन्द्रके वचनसे परमद्युतिमान् नारदजी वासुदेवके समीप आ हँसते हुए बोले ॥ १८ ॥ शत्रुओंको जीतनेवाले गोविंदकी बडाई करते कहने लगे कि हे गोविंद ! अनिरुद्धके समागमसे तुमवृद्धिको प्राप्त हुए, यह बडी मंगलकी बात है ॥ १९ ॥ पीछे अनिरुद्धसहित चारोंने नारदमुनिको प्रणाम किया;तब आशीर्वादोंसे चारोंको बढाकर नारदमुनि श्रीकृष्णसे कहने

सखीगणवृता चैव सा चोषा भवने स्थिता ॥ बलं चातिबलं चैव वासुदेवं सुदुर्ज्जयम् ॥१६॥ असंख्यातगतिं चैव सुपर्णमभिवाद्य च ॥ पुष्पबाणधरं चैव लज्जमानाभ्यवादयत् ॥ १७ ॥ ततः शक्रस्य वचनान्नारदः परमद्युतिः ॥ वासुदेवसमीपं स प्रहसन्पुनरा- गतः ॥१८॥ वर्द्धापयति तं देवं गोविन्दं शत्रुसूदनम् ॥ दिष्ट्या वर्द्धसि गोविन्द अनिरुद्धसमागमात् ॥ १९ ॥ ततोऽनिरुद्धस- हिता नारदं प्रणताः स्थिताः ॥ आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा च देवर्षिः कृष्णमब्रवीत् ॥ २० ॥ अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां विभो ॥ जम्बूलमालिकां द्रष्टुं श्रद्धा हि मम जायते ॥२१॥ ततः प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात्॥ कृष्णः प्रोवाच भगव- न्क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तात कुंभाण्डः समुपस्थितः ॥ वैवाहिकांस्तु संभारान्गृह्य कृष्णं नमस्य तु ॥२३॥ कुम्भाण्ड उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो भव त्वमभयप्रदः ॥ शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसीदैषोऽञ्जलिस्तव ॥ २४ ॥

लगे ॥ २० ॥ कि हे विभो ! वीर्याख्यनामसे विख्यात विवाह अनिरुद्धका करो,और विवाहके अनन्तर वरपक्षी स्त्रियोंके परंपरा व्योहारको देखनेकी मेरी इच्छा है ॥ २१ ॥ तब नारदके वचनोंको सुनकर सब हँसने लगे और श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे भगवन् ! आप शीघ्रता कीजिये देर मत करो ॥ २२ ॥ इसी अंतरमें विवाह सम्बन्धी सब सामग्रियोंको ग्रहण कर और श्रीकृष्णको नमस्कार कर कुंभांड प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ कुंभांड कहने लगा कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! तुम अभय देनेवाले हो; हे देव ! मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं इस कारण प्रसन्न हो,यह तुम्हारे अर्थ

अंजलि है ॥२४॥ सो नारदके वचनको सुनकर पहलेही श्रीकृष्णने कुंभांडको अभय दिया था ॥२५॥ और कहने लगे हे मंत्रियोंमें श्रेष्ठ कुंभांड ! तुझपर मैं प्रसन्न हुआ और तेरे सुकृतको मैं जानता हूं;जब कि बाणासुर शिवलोकको चला गया तो इस देशका पति तू रहा,तू बाणासुरका मंत्रि ज्ञातिका पुरुष है,सुख और निवृत्तिरूप है ॥ २६ ॥ इस कारण मैंने तुझे राज्य दिया सो मेरे आश्रयसे तू चिरकालतक जीता रहे, ऐसे महात्मा कुंभांडको राज्य दे ॥ २७ ॥ ऊषाके संग अनिरुद्धका विवाह कराने लगे तब पीछे साक्षात् अग्निदेवभी आपहीसे अनिरुद्धके विवाहमें प्राप्त

नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वं प्रागेव चाच्युतः ॥ अभयं यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥ २५ ॥ कुम्भाण्ड मन्त्रिणां श्रेष्ठ प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत ॥ सुकृतं ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह ॥ सुज्ञातिपक्षः ससुखी निवृत्तोऽस्तु भवानिह॥२६॥ राज्यं च ते मया दत्तं चिरं जीव ममाश्रयात् ॥ एवं दत्त्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥ २७ ॥ विवाहमकरोत्तस्यानिरुद्धस्य जनार्दनः ॥ ततस्तु भगवान्वह्निस्तत्र स्वयमुपस्थितः ॥२८॥ स विवाहोऽनिरुद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत् ॥ ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुकं कर्तुमुद्यतः ॥२९॥ स्नातस्त्वलंकृतस्तत्र सोऽनिरुद्धः स्वभार्यया ॥ ततः स्निग्धैः शुभैर्वाक्यैर्गन्धर्वाश्च जगुस्तदा ॥ ३० ॥ नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुपशोभयन् ॥ ततो निर्वर्त्तयित्वा तु विवाहं शत्रुसूदनः ॥३१॥ अनिरुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ आमन्त्र्य वरदं तत्र रुद्रं देवनमस्कृतम् ॥३२॥ चकार गमने बुद्धिं कृष्णः परपुरंजयः ॥ द्वारकाभिमुखं कृष्णं ज्ञात्वा शत्रुनिषूदनम् ॥ ३३ ॥

हुए ॥ २८ ॥ और अप्सराओंके गणभी तहां आश्चर्यके कौतुक करनेको प्राप्त हुए ॥२९॥ तब सुन्दरजलसे स्नानकर गहनोंसे अलंकृत हो अनिरुद्ध ऊषाभार्याके संग स्थित हुआ;तब स्निग्ध और शुभवाक्योंसे गंधर्व गाने ॥३०॥ और विद्याधरोंके गण विवाहमें शोभा करनेके अर्थ गान करने लगे.इस प्रकार विवाहकार्यको निवृत्त करके मधुसूदन ॥ ३१ ॥ अतिबुद्धिवाले सब देवताओंसे परिवृत्त और शत्रुओंके पुरोंको जीतनेवाले वरके देनेवाले महा देवजीको नमस्कार कर ॥ ३२ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनेवाले श्रीकृष्णने जानेकी इच्छा की तब शत्रुनिषूदन कृष्णको द्वारकामें जाता

देख ॥ ३३ ॥ प्रीति बढानेको कुंभांड हाथ जोड श्रीकृष्णसे कहने लगा कि; हे कमलसरीखे नेत्रोंवाले मधुसूदन ! कुछ आज्ञा कीजिये, बाणासुरकी बहुतसी गायें वरुणजीके समीपमें स्थित हैं ॥३४॥ हे माधव ! वे गायें अमृतके समान दूध देती हैं, जिस दूधके पीनेसे अतिबलवान् और दुर्जय पुरुष हो जाता है ॥३५॥ ऐसे कुंभांडके वचनको सुन श्रीकृष्णजीने आनंदित हो गमन करनेकी मनसा कर सबोंको गमन करनेकी आज्ञा दी ॥३६॥ तब ब्रह्मलोकके वासियोंसहित भगवान् ब्रह्माजी श्रीकृष्णको 'वरं ब्रूहि' कहकर ब्रह्मलोकको गये ॥ ३७ ॥ मरुद्गणोंसे संयुक्त इन्द्रभी श्रीकृष्णको

कुम्भाण्डो वचनं प्राह प्राञ्जलिर्मधुसूदनम् ॥ बाणस्य गावस्तिष्ठन्ति हस्ते तु वरुणस्य वै ॥३४॥ यासाममृतकल्पं वै क्षीरं क्षरति माधव ॥ तत्पीत्वातिबलश्चैव नरो भवति दुर्जयः ॥ ३५ ॥ कुम्भाण्डेनैवमाख्याते हरिः प्रीतमनास्तदा ॥ गमनाय मतिं चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम् ॥३६॥ ततस्तु भगवान्ब्रह्मा वर्यांप्य स तु केशवम् ॥ जगाम ब्रह्मलोकं स वृतः स्वभवनालये ॥ ३७ ॥ इन्द्रो मरुद्गणयुतो द्वारकाभिमुखो ययौ ॥ यतः कृष्णस्ततः सर्वे गच्छन्ति जयकांक्षिणः ॥ ३८ ॥ वाहनेन मयूरेण सखीभिः परिवारिता ॥ द्वारकाभिमुखी ह्यूषा देव्या प्रस्थापिता ययौ ॥ ततो बलश्च कृष्णश्च प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥ ३९ ॥ आरूढवन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान ॥ प्रस्थितश्च स तेजस्वी गरुडः पततां वरः ॥ ४० ॥ उन्मूलयस्तरुगणान् कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥ आकुलाश्च दिशः सर्वा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम् ॥ ४१ ॥ गरुडे संप्रयातेऽभून्मन्दरश्मिर्दिवाकरः ॥ ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः ॥ ४२ ॥ आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा बाणं महौजसम् ॥ ततोऽम्बरतलस्थास्ते वारुणीं दिशमास्थिताः ॥४३॥

प्यार देनेको श्रीकृष्णजीके संग द्वारकाके सन्मुख गमन करने लगे; जहां कृष्ण थे वहीं सब जयकी इच्छावाले गमन करने लगे ॥ ३८ ॥ अपनी मातासे प्यार कर सखीगणोंसे युक्त ऊषाभी मयूरवाहनपर चढ द्वारकाको गमन करती हुई पीछे बलदेवजी श्रीकृष्णजी, महाबली प्रद्युम्नजी ॥३९॥ अनिरुद्धजी यह चारों गरुडवाहनपर चढे तब सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ और अतितेजवाले गरुड ॥४०॥ मार्गके वृक्षोंको गिराते पृथ्वीको कँपाते और सब दिशाओंको व्याकुल करते हुए चलने लगे,तब धूलीसे आकाशमें अंधेरा हो गया ॥ ४१ ॥ बाणको जीतकर गरुडपर चढे अम्बरतलमें स्थित चारों

पुरुष पश्चिम दिशामें गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वहां उन महात्माओंने दिव्य दूधकी गौ देखी तो सहस्रों नानावर्णकी वेलावनमें चरती थीं ॥ ४४ ॥ और कुंभांडके वचनके अनुसार उन्हें जानकर प्रहार करनेवालोंमें उत्तम और तत्वसे अर्थको जाननेवाले॥४५॥ श्रीकृष्णने बाणासुरकी गायोंको सुन ग्रहण करनेको मनकर गरुडपर स्थित हुए और सब लोकके आदि और अविनाशी श्रीकृष्ण गरुडसे कहने लगे ॥४६॥ हे गरुड! जहां बाणासुरकी गायोंका समूह है तहां गमन करो, जिनका दूध पीकर मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त होता है ॥४७॥ क्योंकि सत्यभामाने मुझसे बाणकी गाय

अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपयः प्रदाः ॥ वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः ॥४४॥ अवज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रयात् ॥ कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठस्तत्त्वतोऽर्थविशारदः ॥ ४५ ॥ निशम्य बाणगावस्तु तासु चक्रे मनस्तदा ॥ आस्थितो गरुडं प्राह सतु लोकादिरव्ययः ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्र बाणस्य गोधनम् ॥ यासां पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात् ॥४७॥ आह मां सत्यभामा च बाणगावो ममानय ॥ यासां पीत्वा किल क्षीरं न जीर्यन्ति महासुराः ॥४८॥ विजराश्च जरा त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तवः ॥ ता आनयस्व भद्र ते यदि धर्मो न लुप्यते ॥४९॥ अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मनः कृथाः ॥ इति मामब्रवीत्सत्या ताश्चैता विदिता मम ॥ ५० ॥ गरुड उवाच ॥ दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा मां वरुणालयम् ॥ विशन्ति सहसा सर्वाः कार्यमत्र विधीयताम् ॥५१॥ इत्युक्त्वा चैव गरुडः पक्षवातेन सागरम् ॥ सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम् ॥ ५२ ॥

मांगी है तिसको तुम लाओ ॥४८॥ क्योंकि इन बाण गायोंके दूधको पीनेसे असुर बुढापेको प्राप्त नहीं होते हैं ॥४९॥ इस दूधके पीनेसे ज्वरपीडित मनुष्य अर्थात् तत्काल ज्वरसे रहित हो जाते हैं;इस कारण तुम्हारा मंगल हो,तुम उन गायोंको प्राप्त करो, यदि धर्मका लोप न हो और जो कार्यका लोप होता जानो तो गायोंके लानेमें चित्तको मत धरो ऐसे मुझसे सत्यभामाने कहा है;सो वे गायें मैंने जानी हैं ॥५०॥ तब गरुडजीने कहा कि हे स्वामिन्! यह सब गायें मुझे देखकर वरुणलोकमें प्राप्त होती हैं; इस कारण शीघ्र कार्य करना उचित है ॥ ५१ ॥ ऐसे गरुडजी कहकर

अपने पंखकी पवनसे समुद्रको क्षोभित करने लगे और वरुणके स्थानमें प्रवेश कर गये ॥ ५२ ॥ तब वेगसे आते हुए गरुडजीको वरुणके स्थानमें देख वरुणलोकमें वसनेवाले गण भ्रमको प्राप्त हो चलने लगे ॥ ५३ ॥ और वरुणकी समस्त सेना अनेक प्रकारके शस्त्रोंको ग्रहण कर श्रीकृष्णके सन्मुख आई, तब श्रीकृष्णके सामने उस सेनाका और गरुडजीका घोर युद्ध होने लगा ॥ ५४ ॥ और युद्धमें स्थित हुए वरुणगणोंके सहस्रों शिर महात्मा श्रीकृष्णजीने काट दिये ॥५५॥ तब हत हुए सेनागण वरुणालयमें प्राप्त होने लगे, अर्थात् ६६००० हजार रथोंमें ॥५६॥ अनेक प्रकारके शस्त्रोंको ग्रहण करे हुए वरुणलोकवासियोंकी सेना बलदेव तथा श्रीकृष्णके बाणोंसे चारों ओर पीडित और भग्न होती हुई कहीं भी रक्षाको न प्राप्त हुई॥५७॥

दृष्ट्वा जवेन गरुडं प्राप्तं वै वरुणालयम् ॥ वारुणाश्च गणाः सर्वे विभ्रान्ताः प्राचलंस्तदा॥५३॥ततस्तु वारुणं सैन्यमभिज्ञातुं सुदुर्ज्ज-यम् ॥ प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं वारुणैः पन्नगारिणा॥५४॥ तेषामापततां सख्ये वारुणानां सहस्रशः॥ भग्नं बलमनाधृष्यं केशवेन महात्मना ॥ ५५ ॥ ततस्ते प्रद्रुता यान्ति तमेव वरुणालयम् ॥ षष्टिं रथसहस्राणि षष्टिं रथशतानि च ॥५६॥ वारुर्णानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि संयुगे ॥ तद्बल बलिभिः शूरैर्बलदेवजनार्दनैः ॥५७ ॥ प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन गरुडेन च सर्वशः ॥ शरौघैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानं समन्ततः ॥५८॥ ततो भग्नं बलं दृष्ट्वा कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ वरुणस्त्वथ संक्रुद्धो निर्ययौ यत्र केशवः ॥ ५९ ॥ ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ संस्तूयमानो बहुधा वरुणः प्रत्यदृश्यत ॥ ६० ॥ छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण वपुष्मता । सलिलस्राविणा श्रेष्ठं चापमुद्यम्य धिष्ठितः ॥ ६१ ॥

अतिबलवाले शूरवीर बलदेवजी श्रीकृष्ण प्रद्युम्न अनिरुद्ध और गरुडने अनेक प्रकारके तीक्ष्णबाणोंसे बहुतसी सेनाका नाश किया ॥ ५८ ॥ तब अक्लिष्टकर्मवाले श्रीकृष्णके हाथसे अपनी सेनाका नाश देख महाक्रोध कर वरुणदेव जहां श्रीकृष्ण स्थित थे तहां गये ॥५९॥ ऋषि देव गंधर्व अप्सराओंके गणसे बहुत प्रकार स्तुतिको प्राप्त होते हुए, वरुण दिखाई दिये ॥ ६० ॥ अतिप्रिय तेजसंयुक्त और श्वेतपानीके किंकणोंको गिरानेवाले छत्रको धारण करे धनुषको हाथमें लिये ॥ ६१ ॥

अपने बेटे और पोतोंकी सेनासे संयुक्त अतिक्रोधको धारण किये वरुण सावधान होकर धनुषको टंकार करते हुए युद्धके अर्थ बलदेव श्रीकृष्ण आदिको बुलाने लगे॥६२॥और अपने शंखको बजाता हुआ वरुण शत्रुओंके सन्मुख धावमान हुआ, बाणोंके जालोंसे आच्छादित करने लगा जैसे श्रीकृष्णको महादेवजीने बाणजालसे आच्छन्न किया था॥६३॥पश्चात् पांचजन्य शंखको बजाकर श्रीकृष्णनेभी हस्तलाघवतासे बाणोंके जालोंसे सब दिशाओंको आच्छादित कर दिया॥६४॥पश्चात् अनेक प्रकारके बाणोंसे युद्धमें पीडित हुआ वरुण श्रीकृष्णको आश्चर्य दिखाता हुआ युद्ध करने लगा॥६५॥ तब

अपांपतिरतिक्रुद्धः ॥ पुत्रपौत्रबलान्वितः ॥ आह्वयन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनुः॥६२॥स तु प्रधमापयच्छङ्खं वरुणः समधावत॥ हरिं हर इव क्रुद्धो बाणजालैः समावृणोत् ॥ ६३ ॥ ततः प्रध्माय जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः ॥ बाणजालैर्दिशः सर्वास्ततश्चक्रे महाबलः ॥६४॥ ततः शरौघैर्विमलैर्वरुणः पीडितो रणे ॥ स्मयन्निव ततः कृष्णं वरुणः प्रत्ययुध्यत ॥ ६५ ॥ ततोऽस्त्रं वैष्णवं घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः ॥ वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं प्रमुखे तस्य धीमतः ॥६६॥ इदमस्त्रं महाघोरं वैष्णवं शत्रुसूदनम् ॥ मयोद्यतं वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव ॥६७॥ ततोऽस्त्रं वरुणो देवो ह्यस्त्रं वैष्णवमुद्यतः ॥ वारुणास्त्रेण संयोज्य विननाद महाबलः॥६८॥ तस्यास्त्रे वितता ह्यापो वरुणस्य विनिःसृताः ॥ वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्त्तते समितिंजय ॥ ६९ ॥ आपस्तु वारुणास्तत्र क्षिप्ता क्षिप्ता ज्वलन्ति वै दह्यन्ते वारुणास्तत्र ततोऽस्त्रे ज्वलिते पुनः ॥ ७० ॥

युद्धमें स्थित श्रीकृष्णजीभी घोररूप वैष्णव अस्त्रको अभिमंत्रित कर उत्तम बुद्धिवाले वरुणजीके सन्मुख कहने लगे॥६६॥कि यह महाघोररूप और शत्रुओंको मर्दन करनेवाला वैष्णव अस्त्र तेरे वध करनेको मैंने प्रस्तुत किया है, अब तू स्थित हो॥६७॥और स्थिरभावको प्राप्त हो,ऐसे वचन सुन वरुणभी वरुणास्त्रसे वैष्णवास्त्रको संयुक्त कर अतिशब्द करने लगा॥६८॥हे युद्धको जीतनेवाले जन्मेजय ! ऐसे रचे हुए वरुणास्त्रके झिरते हुए जलसे वैष्णवास्त्रकी अग्निको शांत करने लगे॥६९॥परन्तु वैष्णवास्त्रकी अग्नि शांत नहीं हुई;किन्तु ज्यों ज्यों वरुणास्त्रसे जल त्यागा जाता था त्यों त्यों

वरुणलोकके वासी सब दग्ध होते ॥७०॥ सब दिशाओंमें दौडने लगे, तब प्रज्वलितरूप वैष्णवास्त्रको देख वरुण श्रीकृष्णजीसेकहने लगा ॥७१॥
हे महाभाग! अव्यक्तरूप और व्यक्तलक्षणोंवाली अपनी पूर्वकी प्रकृतिको स्मरण करो; तमोगुणको दूर करो; आप तमोगुणसे कैसे मोहित होते हैं ॥ ७२ ॥
सत्त्वगुणमें स्थित हो; हे योगेश्वर महामते ! आप निरंतर आशीर्वादरूप हैं; इस कारण पंचमहाभूतोंसे उपजे दोषोंको और अहंकारको त्यागो ॥ ७३ ॥
और यह जो आपकी वैष्णवीमूर्ति है इसमें हे विभो! मैं ज्येष्ठ हूं; अतएव बडे के भावसे मान करने योग्य मुझको कैसे दग्ध करनेकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥
अग्नि अग्निके प्रति पराक्रम नहीं करती है; इस कारण हे योधाओंमें श्रेष्ठ ! आप कोपको त्यागो; और तुम्हारे विषे हम प्रभु अर्थात् समर्थ नहीं

वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुवुः ॥ तद्बलं ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमब्रवीत् ॥७१॥ स्मर स्वप्रकृतिं पूर्वामव्यक्तां व्यक्त लक्षणाम् ॥ तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम् ॥ ७२ ॥ सत्त्वस्थो नित्यमाशीस्त्वं योगीश्वर महामते ॥ पञ्चभूताश्रयान् दोषानहंकारं च वर्जय ॥ ७३ ॥ या या ते वैष्णवी मूर्तिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव ॥ ज्येष्ठभावेन मान्यं तु किं मां त्वं दग्धु-मिच्छसि ॥७४॥ क्षाग्निर्विक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोपं युधां वर ॥ त्वयि न प्रभविष्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि ॥७५॥ पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका ॥ धर्मिणी बीजभावेन पूर्वधर्म समाश्रिता ॥७६॥ आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यैवेदमादितः ॥ त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तसे ॥७७॥ अजेयः शाश्वतो देवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ अक्षरं च क्षरं चैव भावाभावौ महा-द्युते ॥७८॥ रक्ष मां रक्षणीयो हं त्वयानघ नमोऽस्तु ते ॥ आदिकर्त्तासि लोकानां त्वयैतद्बहुलीकृतम् ॥ ७९ ॥

हैं क्योंकि तुम चराचर जगत्के उत्पत्तिस्थान हो; अर्थात् आपसे सब जगत् उपजा है ॥ ७५ ॥ पहलेही आपने बीजधर्मवाली और पूर्वधर्मके आश्रयरूप भूत विकारवालीप्रकृति रची है ॥७६॥ और आदिमें स्वभावसे अग्नि गुणसंयुक्त और सौम्यगुण संयुक्त सब जगत् आपने रचा है इस कारण मेरे विषे आप क्यों मोहको प्राप्त होते हैं॥७७॥आप अजेय अर्थात् जीतनेमें नहीं आते हैं; निरंतररूप हैं, औरआपदिव्यस्वरूप हैं और स्वतः होनेवाले हैं; और प्राणियोंको उपजानेवाले हैं; आप अविनाशीहैं और अक्षयरूप हैं; और भावरूपहैं और अभावरूप हैं॥७८॥हे महाप्रकाशवाले! मेरी रक्षा

करो.हे अनघ!मैं आपके रक्षा करनेके योग्य हूं;औरआपको मेरा प्रणाम हो;और लोकोंके आप आदिकर्ता हो;आपने यह बहुत कुछकिया है॥७९॥ हे महादेव!आप यह बालकोंके समान क्या क्रीडा करते हैं और मैं आपका प्रकृतिसे वैरी नहीं हूं,और प्रकृतिको दूषित करनेवालाभी नहीं हूं॥८०॥ जो प्रकृति विकारोंको उपजाती है; हे पुरुषर्षभ ! तिन विकारोंको शांत करनेके यथार्थ कर आप वर्तते हो॥८१॥और हे अनघ! आपके विकारभी विकारके अर्थ नहीं हैं,क्योंकि अधर्मको जाननेवाले और मंदभावोंको विकारित करते हो॥८२॥जबयह प्रकृति रजोगुणसे रची हुई और तमोगुणसे

विक्रीडसि महादेव बालक्रीडनकैरिव ॥ न ह्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः ॥८०॥ प्रकृतिर्या विकारेषु वर्त्तते पुरुषर्षभ ॥ तस्या विकारशमने वर्त्तसे त्वं महाद्युते ॥ ८१ ॥ विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ ॥ तानधर्मविदो मन्दान् भवान्विकुरुते सदा ॥८२॥ इदं प्रकृतिजैर्दोषैस्तमसा मुह्यते यदा ॥ रजसा वापि संस्पृष्ट्वा तदा मोहः प्रवर्तते ॥ ८३ ॥ परावरज्ञः सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितः ॥ किं मोहयसि नः सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम् ॥८४॥ वरुणेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायणः ॥ भावज्ञः सर्वकृद्धीरस्ततः प्रीतमना ह्यभूत् ॥८५॥ इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गावः प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम ॥८६॥ इत्येवमुक्ते कृष्णेन वाक्य वाक्यविशारदः ॥ वरुणो ह्यब्रवीद्भूयः शृणु मे मधुसूदन ॥८७॥ वरुण उवाच ॥ बाणेन सार्धं समयो मया देव कृतः पुरा ॥ कथं च समयं कृत्वा कुर्यां विफलमन्यथा ॥ ८८ ॥

संयुक्त होतीहै, तबमोहको उपजाती है॥८३॥आप परावरके जाननेवाले हैं,सर्वज्ञ हो;ईश्वर हो इस कारण प्रजापतिके समान हमको कैसे मोहितकरते हो॥८४॥ऐसे वरुणके वचनसुन लोककीरक्षा करनेवाले और भावोंको जाननेवाले सर्वज्ञधीर श्रीकृष्णजी प्रसन्न होकर॥८५॥हँसते हुए वचन कहने लगे श्रीकृष्णबोले;कि हे देव!हे भीमविक्रम!शांतिके निमित्त मुझे गायोंको दीजिये॥८६॥ऐसे कृष्णके वचनको सुन बोलनेमेंअतिकुशलवरुण फिर कहनेलगा,कि हे मधुसूदन ! मेरे वचनको सुनो ॥८७॥ वरुणजी बोले; हे देव ! पहले मैंने बाणासुरके साथ प्रतिज्ञा की है सो उस प्रतिज्ञाको कैसे

मिथ्या करूं ॥८८॥ और आप सब प्रकारकी प्रतिज्ञाके भेदोंको जानते हो;कि प्रतिज्ञाकी हानि सत्पुरुषोंको अच्छी नहीं है ॥८९॥ और प्रति-ज्ञाको छोडनेवाला मनुष्य धर्मोंसे रहित होकर हे मधुसूदन ! उत्तम लोकोंको प्राप्त नहीं होता है, किन्तु महापापी हो जाता है ॥९०॥ हे मधुसूदन ! मुझपर आप प्रसन्न हो,और मेरे धर्मका लोप न हो;हे माधव ! प्रतिज्ञाकी हानि करानेके निमित्त मुझको युद्ध करानेके योग्य आप नहीं हो ॥९१॥ हे वृषभेक्षण ! जीवता हुआ मैं गाय नहीं दूंगा, किन्तु मुझे मारकर गायोंको ले जाओ ऐसी प्रतिज्ञा मैंने पहले करी है।॥९२॥हे मधुसूदन ! ऐसे समय

त्वमेव वेद सर्वस्य यथा समयभेदकः ॥ चारित्रं दुष्यते तेन नच सद्भिः प्रशस्यते ॥८९॥ धर्मभागीश्वरो नित्यं वर्ज्यते मधुसूदन ॥ नच लोकानवाप्नोति पापः समयभेदकः ॥ ९० ॥ प्रसीद धर्मलोपश्च मा भून्मे मधुसूदन ॥ न मां समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव ॥९१॥ जीवन्नाहं प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण ॥ हत्वा नयस्व मां गाव एष मे समयःपुरा ॥ ९२ ॥ एतच्च मे समाख्यातं समयं मधुसूदन ॥ सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर॥९३॥यद्येवाहमनुग्राह्यो रक्ष मां मधुसूदन॥ अथवा गोषु निर्बन्धो हत्वा नय महाभुज ॥ ९४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूनां वंशवर्द्धनः ॥ अभेद्यं समयं मत्वा न्यस्तवादो गवां प्रति ॥९५॥ स प्रहस्य ततो वाक्यं व्याजहारार्थकोविदः ॥ तस्मान्मुक्तोऽसि यद्येवं बाणेन समयः कृतः ॥९६॥ प्रसृतैर्मधुरैर्वाक्यैस्त-त्त्वार्थमधुभाषितैः ॥ कथं पापं करिष्यामि वरुण त्वय्यहं प्रभो ॥ गच्छ मुक्तोऽसि वरुण सत्यसंधोऽसि नो भवान् ॥ ९७ ॥

आपके प्रति मैंने कही है;हे महाबाहो ! यह सत्य रहनी चाहिये; हे सुरेश्वर ! मिथ्या नहीं होगी ॥९३॥ हे मधुसूदन ! जो मुझपर कृपा करो तो मेरी रक्षा करो; यदि गायोंकी ले जानेकी इच्छा हो तो हे महाभुज ! मुझे मारकर ले जाओ॥९४॥वैशंपायन बोले;ऐसे बरुणके वचनको सुन श्रीकृष्णजीने गायसंबंधी वादको दूर किया ॥ ९५ ॥ और अभेद्यप्रतिज्ञाको जान हँसकर कहने लगे; हे वरुण ! जो आपने बाणासुरके संग प्रतिज्ञा की है; इस कारण आप छोडे जाते हो ॥ ९६॥ अनेक प्रकारके प्रियरूप वचन आपने कहे तिन्होंसे आनंदित हुआ हे वरुण ! हे विभो ! मैं तुम्हारे संग कैसे

अनिष्ट करूं इस कारण हे वरुण ! अपने स्थानपर जाओ और आप सत्यवादी हो॥९७॥और तुम्हारे प्यारके अर्थ मैंने बाणगायभी छोडी हैं, इसमें संशय नहीं पश्चात् तुरही भेरी आदिको बजवाता हुआ वरुण ॥९८॥अर्घ ग्रहणकर श्रीकृष्णकी पूजा करने लगा॥९९॥श्रीकृष्णजी बलदेवजीकी पूजा करने लगे, पश्चात् वरुणके अर्थ अभय देकर अतिप्रतापवाले प्रभु ॥ १०० ॥ इन्द्रकी सहायतासे युक्त श्रीकृष्णजीने द्वारकापुरीके सन्मुख गमन किया तहां देव मरुद्गण साध्य सिद्ध चारण ॥१॥ गंधर्व अप्सरा किन्नर यह सब आकाशमार्गसे अविनाशी श्रीकृष्णके संग चलने लगे ॥ २ ॥ आदि-

त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता बाणगावो न संशयः ॥ ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥९८॥ अर्घमादाय वरुणः केशवं प्रत्यपूजयत् ॥ केशवोऽर्घं तदा गृह्य वरुणाद्यदुनन्दनः॥ ९९ ॥ बलं चापूजयद्देवः कुशलीव समाहितः॥ वरुणायाभयं दत्त्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १०० ॥ द्वारकां प्रस्थितः शौरिः शचीपतिसहायवान् ॥ तत्र देवाः समरुतः ससाध्याः सिद्धचारणाः ॥ १ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किंनराश्चान्तरिक्षगाः ॥ अनुगच्छन्ति भूतेशं सर्वभूतादिमव्ययम् ॥ २ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षराक्षसाः ॥ विद्याधरगणाश्चैव ये चान्ये सिद्धचारणाः ॥ गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशसा विजयेन च ॥३॥ नारदश्च महाभागः प्रस्थितो द्वारकां प्रति ॥ तुष्टो बाणजयं दृष्ट्वा वरुणं च कलिप्रियः ॥४॥ कैलासशिखरप्रख्यैः प्रासादैः कन्दरैः शुभैः ॥ दूरान्निशाम्य मधुहा द्वारकां द्वारमालिनीम् ॥५॥ पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं चक्रे चक्रगदाधरः ॥ संज्ञां प्रयच्छते देवो द्वारकापुरवासिनाम् ॥ ६ ॥

त्यसंज्ञक देवता, सब वसु सब रुद्र अश्विनीकुमार यक्ष राक्षस विद्याधरोंके गण और शेष रहे सिद्ध चारण यश और विजयसे सब श्रीकृष्णके संग आकाशमार्गसे चले ॥ ३ ॥ महाभाग नारदजीभी द्वारकाके प्रति गमन करने लगे; और बाणासुरका जीतना और वरुणके संग प्यारका करना इससे बहुत प्रसन्न हुए ॥४॥ और कैलासके शिखरके समान सुन्दर और ऊंचे स्थानोंसे संयुक्त द्वारकाको देख दूरसेही मधुसूदन श्रीकृष्णजीनेदेख ॥ ५ ॥ पांचजन्य शंखको बजाया; गदाधर कृष्णने इससे उनको अपना आगमन सूचित किया ॥ ६ ॥

और देवताओंका आगमन तथा पांचजन्य शंखके शब्दको सुन द्वारकापुरीमें अतिआनंद होने लगा ॥७॥ पूर्ण कलश धानकी खील अनेक प्रकारके फूलोंकी मालासे द्वारकापुरीके दरवाजे सजाये गये ॥ ८ ॥ पुरीकी सब गलियोंमें पानीका छिडकाव कराया गया; और शोभयमान बहुतप्रकारके रत्नोंसे द्वारकापुरी शोभित की गई; और द्वारकापुरीमें प्रवेश करते हुए श्रीकृष्णजीके अर्थ उत्तम कुलके ब्राह्मण अर्घको ग्रहण कर ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके जयशब्दोंसे गरुडजीपर स्थित नीले पर्वतके समान कांतिवाले श्रीकृष्णजीकी पूजा करने लगे ॥ ११० ॥ और महालक्ष्मीसे

देवानुयाननिर्घोषं पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ श्रुत्वा द्वारवतीं सर्वे प्रहर्षमतुलं गताः ॥ ७ ॥ पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहुविन्यस्त-विस्तरैः ॥ द्वारोपशोभितां कृत्वा सर्वां द्वारवतीं पुरीम् ॥ ८ ॥ सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम् ॥ विप्राश्चार्घं समादाय यथैव कुलनैगमाः ॥ ९ ॥ जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम् ॥ वैनतेये तमासीनं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥११०॥ ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम् ॥ तमानुपूर्व्या वर्णाश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥ ११ ॥ अनन्तं केशिहन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः ॥ ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणैश्च समन्ततः ॥ १२ ॥ स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः ॥ तदाश्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमाः ॥ १३ ॥ प्रहर्षमतुलं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम् ॥ बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्तमम् ॥ १४ ॥ द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा ॥ प्राप्ते कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे ॥ १५ ॥ गत्वा च दूरमध्वानं सुपर्णो द्रुतमागतः ॥ धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो येषां वै जगतः पिता ॥ १६ ॥

युक्त श्रीकृष्णजीको प्रणाम करने लगे; पश्चात् क्रमसे तीनों वर्णके मनुष्यभी श्रीकृष्णजीको पूजने लगे ॥११॥ ऋषि देवगण गंधर्व चारण ये सब द्वारकापुरीके समीपमें स्थित ॥१२॥ श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे;तब सब यदुवंशी मनुष्य इस आश्चर्यको देख ॥१३॥ अतिबलवाले बाणासुरको जीतकर आते हुए श्रीकृष्णको देख अतिआनंदित हुए ॥१४॥महाभाग श्रीकृष्णके आनेसे द्वारकावासियोंके मुखोंसे अनेक प्रकारकी वाणी निकलने लगी ॥१५॥ बहुत दूरगमन कर गरुडजीपर चढे हुए श्रीकृष्णजीको आते हुए देख कहने लगे;हमको धन्यहै और अतिअनुग्रहीत है जिन्होंके

स्वामी ॥११६॥ रक्षिता और दीर्घबाहु और महाबली श्रीकृष्णजी हैं,यह दुर्जयरूप बाणासुरको जीतकर गरुडपर सवार हो ॥११७॥ हमारे मनोंको आनंदित करते हुए प्राप्त हुए,उत्तम कुशलताकी बात है; ऐसे वचन बोलते हुए द्वारकावासियोंके ॥११८॥ महारथोंके समूह श्रीकृष्णजीके मंदिरमें प्रवेश करने लगे, तब गरुडपरसे श्रीकृष्ण बलदेव ॥११९॥ प्रद्युम्न अनिरुद्ध सब उतर अपने२गृहमें प्रवेश करते हुए,पश्चात् आकाशमार्गमें विचरते हुए देवताओंके विमान ॥१२०॥ नानारूपवाले हंस ऋषभ मृग हाथी घोडा सारस मोरोंसे संयुक्त और प्रकाशमान सहस्रों विमान आकाशमें स्थित दीखने लगे

रक्षिता चैव गोप्ता च दीर्घबाहुर्महाभुजः ॥ वैनतेयं समारुह्य जित्वा बाणं सुदुर्जयम् ॥ ११७ ॥ प्राप्तोऽयं पुण्डरीकाक्षो मनांस्याह्लादयन्निव ॥ एवं कथयतामेव द्वारकावासिनां तदा ॥ ११८ ॥ वासुदेवगृहं देवा विविशुस्ते महारथाः ॥ अवतीर्य सुपर्णात्तु वासुदेवो बलस्तदा ॥ ११९ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च गृहान् प्रविविशुस्तदा ॥ ततो देवविमानानि संचरन्ति तदा दिवम् ॥ १२० ॥ अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वशः ॥ हंसर्षभमृगैर्नागैर्वाजिसारसबर्हिणैः ॥ भास्वन्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रशः ॥ १२१ ॥ अथ कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं कुमारांस्तान्सहस्रशः ॥ प्रद्युम्नादीन्समस्तांस्तु श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ १२२ ॥ एते रुद्रास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि ॥ साध्या देवास्तथान्ये च वन्दध्वं च यथाक्रमम् ॥१२३॥ सहस्राक्षं महाभागं दानवानां भयंकरम् ॥ वन्दध्वं सहिताः शक्रं सगणं नागवाहनम् ॥ १२४ ॥ सप्तर्षयो महाभागा भृग्वाङ्गिरसमाश्रिताः ॥ ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्वं च यथासुखम् ॥ १२५ ॥ एते चक्रधराश्चैव तानवन्दत सर्वशः ॥ सागराश्च ह्रदाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागताः ॥ १२६ ॥

॥ १२१ ॥ तब श्रीकृष्णजी सहस्रों द्वारकापुरीके बालकोंको और प्रद्युम्न आदि सबोंको प्रियवाणीसे कहने लगे ॥ १२२ ॥ कि तुम सबरुद्र और सब आदित्य और सब वसु अश्विनीकुमार साध्य देवताओंको यथाक्रमसे प्रणामकरो ॥१२३॥ सहस्रनेत्रोंवाले और महाभाग्यवाले दैत्योंको भय देनेवाले और हाथीपर सवार होनेवाले और अपने गणोंसे सहित इन्द्रजीकोभी प्रणाम करो ॥ १२४ ॥ और महाभाग्यवाले महात्मा भृगु अंगिरा आदि सात ऋषियोंको भी यथाक्रमसे प्रणाम करो ॥ १२५ ॥ और चक्रको धारण करनेवाले ये सब स्थित हैं इन्होंको भी प्रणाम करो; सब समुद्र सब ह्रद ॥ १२६ ॥

मेरे प्रियको जो प्राप्त हुए हैं इन सबोंको दिशा और विदिशाकोभी प्रणाम करो; अतिबलवाले वासुकीसे आदि ले सब सर्प ॥ २७ ॥ सब प्रकारकी गायें मेरे प्रियको प्राप्त हुई हैं, इन सबोंकोभी प्रणाम करो, और सत्ताईस नक्षत्रोंके सहित सब प्रकारके तारागण और यक्ष राक्षस किन्नर ॥२८॥ यह सब मेरे प्रियको प्राप्त हुए हैं. इन सबोंकोभी प्रणाम करो; श्रीकृष्णजीके वचन सुनकर विनयमें स्थित सब बालक ॥ २९ ॥ यथाक्रमसे सब देवताओंको नमस्कार करने लगे. सब देवताओंको देखकर सब द्वारकावासी आश्चर्यमें प्राप्त हो ॥ १३० ॥ पूजाके अर्थ सब साम-

दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्वं च यथाक्रमम् ॥ वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहाबलाः ॥२७॥ गावश्च मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम् ॥ ज्योतींषि सह नक्षत्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥२८॥ आगता मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम् ॥ वासुदेववचः श्रुत्वा कुमाराः प्रणताः स्थिताः ॥२९॥ यथाक्रमेण सर्वेषां देवतानां महात्मनाम् ॥ सर्वान् दिवौकसो दृष्ट्वा पौरा विस्मयमागताः॥१३०॥ पूजार्थमथ संभारान्प्रगृह्य द्रुतमागताः ॥ अहो सुमहदाश्चर्य वासुदेवस्य संश्रयात् ॥ ३१ ॥ प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचश्च-रन्त्युत ॥ ततश्चन्दनचूर्णैश्च गन्धपुष्पैश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥ किरन्ति पौराः सर्वांस्तान्पूजयन्तो दिवौकसः ॥ लाजैः प्रणामैर्धूपैश्च वाग्बुद्धिनियमैस्तथा ॥ ३३ ॥ द्वारकावासिनः सर्वे पूजयन्ति दिवौकसः ॥ आहुकं वासुदेवं च साम्बं च यदुनन्दनम् ॥ ३४ ॥ सात्यकिं चोल्मुकं चैव विप्रथुं च महाबलम् ॥ अक्रूरं च महाभागं तथा निषधमेव च ॥ ३५ ॥

ग्रीको इकठी कर तत्काल प्राप्त हुए और कहने लगे आश्चर्य है कि श्रीकृष्णके प्रभावसे ॥ ३१ ॥ सब देवताओंके दर्शन हमको प्राप्त हुए, इस वाणीको कहकर पीछे चंदनकी बूटी दे फूलोंकी ॥३२॥ गंधसे द्वारकावासी सब देवताओंको पूजने लगे; और धानकी खील और नमस्कार धूप वाणी बुद्धि नियमसे ॥ ३३ ॥ सब द्वारकावासी देवताओंको पूजने लगे, पश्चात् आहुक वसुदेव सांब ॥ ३४ ॥ सात्यकी उल्मुख विप्रथु श्रीकृष्ण बलदेवजी अक्रूर महाभाग निषध ॥ ३५ ॥

इन सबोंसे मिलकर तथा इन सबोंके मस्तकको सूंघकर अंधक यादवका सन्मान कर सब यादवोंके प्रति महाभाग इन्द्र यदुओंके सामने ॥३६॥ केशिनिषूदनकी स्तुति कर कहने लगा कि यदुनंदन सर्व बलवालोंमें श्रेष्ठ हैं ॥३७॥ यह श्रीकृष्ण क्षणभरमें अपने पौरुषसे यशको बढाते हुए महादेवजी तथा स्वामिकार्तिकके सन्मुख ॥३८॥ बाणासुरको युद्धमें जीत उस राक्षसकी सहस्र बाहुओंको काट दो बाहु अवशेष रख ॥ ३९ ॥ दो भुजासे छोड द्वारकापुरीमें प्राप्त हुए हैं; जिस कार्यको मनुष्योंमें महात्मा श्रीकृष्णजीका जन्म है ॥१४०॥ सो सबको विदित है; इससे हम सबोंके

एतान्परिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाघ्राय वासवः ॥ अथ शक्रो महाभागः समक्षं यदुमण्डले ॥३६॥ स्तुवन्तं केशिहन्तारं तत्रोवाचोत्तरं वचः ॥ सात्त्वतं सात्त्वतामेष सर्वेषां यदुनन्दनम् ॥ ३७ ॥ भोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च ॥ महादेवस्य मिषतो गुहस्य च महात्मनः ॥३८॥ एष बाणं रणे जित्वा द्वारकां पुनरागतः ॥ सहस्रबाहोर्बाहूनां कृत्वा द्वयमनुत्तमम् ॥३९॥ स्थापयित्वा द्विबाहुत्वे प्राप्तोऽयं स्वपुरं हरिः यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मनः ॥ १४० ॥ तदप्यवसितं कार्यं नष्टशोका वयं कृताः ॥ पिबतां मधु माध्वीकं भवतां प्रीतिपूर्वकम् ॥४१॥ कालो यास्यत्यविरसं विषयेष्वेव त्यज्यताम् ॥ बाहूनां संश्रयात्सर्वे वयमस्य महात्मनः ॥४२॥ प्रणष्टशोका रंस्यामः सर्व एव यथासुखम् ॥ एवं स्तुत्वा सहस्राक्षः केशवं दानवान्तकम् ॥ ४३ ॥ आपृच्छ्य तं महाभागाः सर्वदेवगणैर्वृतः ततः पुनः परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् ॥ पुरंदरो दिवं यातः सह देवमरुद्गणैः ॥ ४४ ॥ ऋषयश्च महात्मानो जयांशीर्भिर्महौजसम् ॥ यथागतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ४५ ॥

शोक नष्ट हो गये, इस कारण माध्वीक मदिराको पानकर सब मनुष्य प्रीतिपूर्वक रमण करो ॥ ४१ ॥ और विषयोंमें आसक्त हो कालका निर्वाह करो; इन महात्मा श्रीकृष्णके प्रतापसे ॥ ४२ ॥ हम सब देवताभी सुखपूर्वक शोक त्याग रमण करेंगे इस प्रकार दैत्योंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णजीकी स्तुति करके ॥४३॥ इन्द्र सब देवगणोंसे युक्त और महाभाग श्रीकृष्णजीसे पूछ और लोकोंसे नमस्कृतरूप श्रीकृष्णजीसे मिलाप कर देवता और मरुद्गणोंके सहित इन्द्रभी स्वर्गलोकको गये ॥ ४४ ॥ तब महात्मा सब ऋषि जयरूप आशीर्वाद देकर अपने स्थानोंको गये; पीछे यक्ष राक्षस

किन्नरभी अपने स्थानोंमें गये ॥४५॥ जब इन्द्र स्वर्गलोकको चले गये तब अतिबलवंत अविनाशी श्रीकृष्णजी सबोंसे कुशलता पूछने लगे ॥४६॥ तब श्रीकृष्णचंद्रके मुखचंद्र देखनेको सहस्रों मनुष्यआये और उनके आनेका बडा किल किला शब्द हुआ; पापरहित श्रीकृष्ण उनसे प्रसन्न हुए॥४७॥ इस प्रकार द्वारकामें प्राप्त हो श्रीकृष्ण यदुवंशियोंके साथ रमण करने लगे और परमलक्ष्मीको प्राप्तहो अनेक सुखोंको भोगने लगे ॥१४८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥ वैशंपायन बोले;एक दिन महाबाहु

पुरंदरे दिवं याते पद्मनाभो महाबलः ॥ अपृच्छत महाभागः सर्वान्कुशलमव्ययम् ॥ ४६ ॥ ततः किलकिलाशब्दं निर्वमन्तः सहस्रशः ॥ गच्छन्ति कौमुदीं द्रष्टुं सोऽनघः प्रीयते सदा ॥४७॥ द्वारकां प्राप्य कृष्णस्तु रेमे यदुगणैः सह ॥ विविधान्सर्वकामार्थान् श्रियः परमया युतः ॥ १४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकायां गमने सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथाहुको महाबाहुः कृष्णं प्राह महाद्युतिः ॥ हर्षादुत्फुल्लनयनः श्रूयतां यदुनन्दन ॥ १ ॥ एवंगतेऽनिरुद्धस्य क्रियतां महदुत्सवः ॥ क्षेमात्प्रत्यागतं दृष्ट्वा सेव्यमानाः सहासते ॥ २ ॥ उषापि च महाभागा सखीभिः परिवारिता ॥ रमते परया प्रीत्या चानिरुद्धेन संगता ॥३॥ कुम्भाण्डदुहिता रामा उषायाः सखिमण्डले ॥ प्रवेश्यतां महाभागा वैदर्भी वर्द्धयत्युत ॥४॥ साम्बाय दीयतां रामा कुम्भाण्डदुहिता शुभा ॥ शेषाश्च कन्या न्यस्यन्तां कुमाराणां यथाक्रमम् ॥५॥

और आनंदसे प्रफुल्ल नयनवाले आहुक महाद्युतिवाले श्रीकृष्णजीसे कहने लगे; हे यदुनंदन ! श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ अब अनिरुद्धके विवाहका उत्सव करो क्योंकि सब प्रियोंसे सहित अनिरुद्धजीका आगमन कुशलतासे हुआ है ॥२॥ और महाभाग्यवाली ऊषाभी अपनी सखियोंसे युक्त अनिरुद्धके संग प्रीतिसे रमण करे ॥३॥ और कुंभांडकी पुत्री रामाको ऊषाके सखी मंडलमें प्रवेश कराओ, क्योंकि यह महाभाग्यवाली है वैदर्भी इसको बढावे॥ ४ ॥ तथा यही रामा कुंभांडकी पुत्री सांबके अर्थ दी जावे; और शेष रही सब कन्या सब कुमारोंके अर्थ यथाक्रमसे देनी चाहिये ॥ ५ ॥

और अनिरुद्धके स्थानमें तथा श्रीधन्वाके स्थानमें उत्सवका आरंभ करो ॥ ६ ॥ और इस पुरीमें सब मदवाली नारी बाजा बजावें और अप्सरा नृत्य करें; और शेष रही अप्सरा गान करें ॥ ७ ॥ कोई एक प्रसन्न हुई आपसमें प्रिय वचन कहें; और कोई स्त्री माला और सुन्दर वस्त्रोंको धारण करके क्रीडा करें ॥ ८ ॥ कोई परस्पर सन्मुख होती रहें और कितनी एक स्त्री मदके वश हुई आपकी क्रीडा करें;और कोई स्त्री हर्षसे फूले हुए नेत्रोंसे संयुक्त हो पांसोंसे चौसर खेले ॥ ९ ॥ और निज सखियोंसे युक्त देवीजीको प्रेषित की; ऊषा मयूरोंके रथमें स्थित होकर ॥ १० ॥

वर्त्तते सोत्सवस्तत्र अनिरुद्धस्य वेश्मनि ॥ गृहे श्रीधन्वनश्चैव शुभस्तत्र प्रवर्त्तते ॥६॥ वादयन्ति पुरे तत्र नार्यो मदवशं गताः ॥ नृत्यन्ते चाप्सरास्तत्र गायन्ति च तथापराः ॥७॥ काश्चित्प्रमुदितास्तत्र काश्चिदन्योन्यमब्रुवन् ॥ नानावर्णाम्बरधराः क्रीडमाना-स्ततस्ततः ॥ ८ ॥ अभियान्ति ततोऽन्योन्यं काश्चिन्मदवशात्स्वयम् ॥ क्रीडन्ति काश्चिदक्षैस्तु हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ९ ॥ मायूरं रथमारुह्य सखीभिः परिवारित ॥ उषा संप्रेषिता देव्या रुद्राण्या प्रतिगृह्यताम् ॥१०॥ इयं चैव कुलश्लाघ्या नाम्नोषा सुन्दरी वरा ॥ बाणपुत्री तव वधूः प्रतिगृह्णीष्व भामिनीम् ॥ ११ ॥ ततः प्रतिगृहीता सा स्त्रीभिराचारमङ्गलैः ॥ प्रवेशिता च सा वेश्म अनिरुद्धस्य शोभना ॥१२॥ देवकी रोहिणी चैव रुक्मिण्यथ विदर्भजा ॥ दृष्ट्वाऽनिरुद्धं रोदन्त्यः स्नेहहर्षसमन्विताः ॥ १३ ॥ रेवती रुक्मिणी चैव गृहमुख्यं प्रवेशयत् ॥ वधूर्वर्द्धसि दिष्ट्या त्वमनिरुद्धस्य दर्शनात् ॥ १४ ॥ ततस्तूर्यप्रणादैस्ता वरनार्यः शुभाननाः ॥ क्रियामारेभिरे कर्त्तुमुषा च गृहसंस्थिता ॥ १५ ॥

कुलमें श्लाघारूप ऊषा नामसे विख्यात महासुन्दरी बाणासुरकी पुत्री वधूको हे रुक्मिणि! ग्रहण करो ॥११॥ ऐसे उत्तम स्त्रीको ग्रहण करो; और मंगलाचारसे स्त्रियोंके द्वारा प्रवेशित करी ऊषा अनिरुद्धके स्थानमें रहे ॥ १२ ॥ और देवकी रुक्मिणी अनिरुद्धको देखकर स्नेहके आनंदसे संयुक्त हो ॥१३॥ रेवती रुक्मिणी मुख्य गृहमें प्रवेश करावें और अनिरुद्धको देखकर भाग्यसे वधूको बढावें ॥१४॥ तब अच्छे बाजोंके शब्दोंसे शुभमुखवाली

उत्तम नारियें क्रियाका आरंभ करें और अपने स्थानमें प्राप्त ऊषाभी क्रियाका आरंभ करे ॥ १५॥ पीछे सुंदरमहलमें यथायोग्य उपभोगोंसे अनिरुद्धके संग रमण करे ॥ १६॥ सुन्दरभ्रुकुटिवाली और अप्सराके रूपको धारण करनेवाली चित्रलेखा सखियोंके गणकी और ऊषाकी आज्ञा लेकर स्वर्गमें गई ॥ १७॥ जब सब सखियां चली गईं तब मायावती प्रद्युम्नकी स्त्रीने निमंत्रण दे ऊषाको अपने स्थानमें प्राप्त किया॥ १८॥ पीछे वही प्रद्युम्नकी स्त्री पुत्रकी वधूको देखकर वस्त्र अन्नपानसे ऊषाकी पूजा करती हुई ॥ १९॥ पीछे सब यदुकुलकी स्त्रियां क्रमसे आचारको देखती हुई अपने २

ततो हर्म्यतलस्था सा वृष्णिपुङ्गवसंस्थिता ॥ रमते सर्वसद्दृशैरुपभोगैर्वरानना ॥ १६॥ चित्रलेखा च सुश्रोणी अप्सराॡपधारिणी॥ आपृच्छ्य च सखीवर्गमुषां च त्रिदिवं गता ॥ १७ ॥ गतासु तासु सर्वासु सखीष्वसुरसुन्दरी ॥ मायावत्या गृहं नीता प्रथमं सा निमन्त्रिता ॥ १८॥ सा तु प्रद्युम्नगृहिणी स्नुषां दृष्ट्वा सुमध्यमा ॥ वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास सुन्दरीम् ॥ १९॥ ततः क्रमेण सर्वास्ता वधूमूषां यदुस्त्रियः ॥ आचारमनुपश्यन्त्यः स्वधर्ममुपचक्रिरे ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया कुरुकुलोद्वह ॥ यथा बाणो जितः संख्ये जीवन्मुक्तश्च विष्णुना ॥ २१ ॥ द्वारकायां ततः कृष्णो रेमे यदुगणैर्वृतः ॥ अन्वशासन्महीं कृत्स्नां परया संयुतो मुदा ॥ २२॥ एवमेषोऽवतीर्णो वै पृथिवीं पृथिवीपते ॥ विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवेतिविश्रुतः॥ २३॥ एतैश्च कारणैः श्रीमान्वसुदेवकुले प्रभुः ॥ जातो वृष्णिषु देवक्यां यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २४॥ निवृत्ते नारदप्रश्ने यन्मयोक्तं समासतः ॥ श्रुतास्ते विस्तराः सर्वे ये पूर्वं जनमेजय ॥ २५ ॥

धर्मोंको करने लगीं ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले; हे जन्मेजय!यह सब तुमसे मैंने कहा जैसे बाणासुरको युद्धमें श्रीकृष्णने जीता;और केवल जीवन्मात्र छोड दिया॥ २१॥ पीछे द्वारकापुरीमें यादवोंके समूहसे युक्त श्रीकृष्ण रमण करने लगे; और परम शोभासे संयुक्त हो सम्पूर्ण पृथ्वीभरमें शिक्षा देने लगे ॥ २२॥ हे राजन् ! पृथ्वीमंडलमें यदुवंशमें वासुदेवनामसे विष्णुने अवतार लिया ॥ २३ ॥ और इन कारणोंसे वसुदेवसे देवकीमें विष्णु उपजे हैं, जिनके जन्मको मुझसे आपने पूछा है ॥ २४ ॥ नारदजीके प्रश्नोंकी निवृत्तिके पीछे जो मैंने विस्तारसे कहा है सो हे जनमेजय !

आपने विस्तारसे सुना ॥ २५ ॥ विष्णुके माथुरकल्पमें जो तुमको बडा संशय था; वह वासुदेवका चारित्र सब मैंने कह दिया ॥२६॥ वासुदेवही सबसे श्रेष्ठ और वही सबकी गति है यह आश्चर्य है;और कुछ आश्चर्य नहीं है;किन्तु श्रीकृष्णही आश्चर्यरूप है; और सब आश्चर्य कल्पोंमें विष्णुसे रहित आश्चर्य नहीं है ॥ २७ ॥ धन्यपदार्थोंमें धन्य और धन्यके करनेवाले धन्यके भावन विष्णु हैं; देवतोंमें और दैत्योंमें विष्णुसे उत्तम अन्य नहीं है ॥२८॥ सब आदित्य रुद्र दोनों अश्विनीकुमार सब मरुद्गण आकाश पृथ्वी दिशा जल अग्नि ये सब विष्णुके रूप हैं ॥२९॥ यही विष्णु धाता

विष्णोस्तु माथुरे कल्पे यत्र ते संशयो महान् ॥ वासुदेवगतिश्चैव सा मया समुदाहृता ॥ २६ ॥ आश्चर्यं चैव नान्यद्धि कृष्णश्चाश्चर्य संनिधिः ॥ सर्वेष्वाश्चर्यकल्पेषु नास्त्याश्चर्यमवैष्णवम् ॥२७॥ एष धन्यो हि धन्यानां धन्यकृद्धन्यभावनः ॥ देवेषु तु स दैत्येषु नास्ति धन्यतरोऽच्युतात् ॥२८॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ॥ गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ॥ २९ ॥ एष धाता विधाता च संहर्ता चैव नित्यशः ॥ सत्यं धर्मस्तपश्चैव ब्रह्मा चैव पितामहः ॥ ३० ॥ अनन्तश्चैव नागानां रुद्राणां शंकरः स्मृतः ॥ जङ्गमाजङ्गमं चैव जगन्नारायणोद्भवम् ॥३१॥ एतस्माच्च जगत्सर्वं प्रसूयेत जनार्दनात् ॥ जगच्च सर्वं देवेशे तं नमस्कुरु भारत ॥ ३२ ॥ पूज्यश्च सततं सर्वैर्देवैरेष सनातनः ॥ इत्युक्तं बाणयुद्धं ते माहात्म्यं केशवस्य तु ॥ ३३ ॥ वंशप्रतिष्ठामतुलां श्रवणादेव लप्स्यसे ॥ ये चेदं धारयिष्यन्ति बाणयुद्धमनुत्तमम् ॥३४॥ केशवस्य च माहात्म्यं नाधर्मस्तान्भजिष्यति ॥ एषा ते वैष्णवी चर्या मया कात्स्न्येन कीर्तिता ॥ ३५ ॥

विधाता और संहर्ता है, काल हैं, सत्य धर्म, तप हैं, और सनातन ब्रह्मभी यही हैं ॥ ३० ॥ और सर्पोंमें शेषनाग हैं, और रुद्रोंमें महादेव हैं, यह स्थावर जंगम सब जगत् नारायणसे उपजा है ॥ ३१ ॥ सब जगत् इन श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुआ है; ऐसे विष्णुको हे जन्मेजय ! प्रणाम करो ॥३२॥ और सब देवोंके सनातनरूप ये पूज्य हैं,ऐसे बाणासुरका युद्ध और विष्णुका माहात्म्य तुमसे कहा ॥ ३३ ॥ इसके श्रवणसे मनुष्य वंशकी प्रतिष्ठाको प्राप्त होंगे;और जो बाणासुर युद्धको ॥ ३४ ॥ और विष्णुके माहात्म्यको धारण करेंगे;तिनको पाप न लगेगा. हे राजन् ! यह मैंने विष्णुकी

सब कथा तुमसे कही है ॥ ३५ ॥ हे जनमेजय ! जो इस यज्ञमें आपने पूछा वह कहा इस आश्चर्यरूप पर्वको जो धारण करेंगे ॥ ३६ ॥ वे सब पापोंसे रहित होकर विष्णुके लोकमें प्राप्त हो जावेंगे; जो मनुष्य सावधान होकर प्रभातमें उठ नित्यप्रति इसका कीर्तन करेंगे ॥ ३७ ॥ उनको इस लोकमें तथा परलोकमें कुछभी दुर्लभ नहीं होगा; और इसके कीर्तनसे विप्र सब वेदोंको जाननेवाला और क्षत्रिय विजयको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ वैश्य अतिधनवान् होगा; और शूद्र सद्गतिको प्राप्त होगा; उस मनुष्यको कुछ भी अशुभताकी प्राप्ति नहीं होगी, और आयुकी वृद्धि

पृच्छतस्तात यज्ञेऽस्मिन्निवृत्ते जनमेजय ॥ आश्चर्यपर्व निखिलं यो हीदं धारयेन्नृप ॥ ३६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स गच्छति ॥ कल्यमुत्थाय यो नित्यं कीर्त्तयेत्सुसमाहितः ॥३७॥ न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ॥ ब्राह्मणः सर्ववेदी-स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ ३८ ॥ वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः कामनवाप्नुयात् ॥ नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुर्लभेत सः ॥३९॥ सौतिरुवाच ॥ इति पारीक्षितो राजा वैशम्पायनभाषितम् ॥ श्रुतवानचलो भूत्वा हरिवंशं द्विजोत्तम ॥ ४० ॥ एवं शौनक संक्षेपाद्विस्तरेण तथैव च ॥ प्रोक्ता वै सर्ववंशास्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणसमाप्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ समाप्तमिदं विष्णुपर्व ॥

हो जायगी ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले; हे शौनक ! ऐसे जनमेजय राजा वैशंपायनजीके कहे हरिवंशको सुन प्रसन्नमन हुआ. हे द्विजोत्तम ॥४०॥ शौनक ! इस प्रकार विस्तारपूर्वक सब वंश तु कहे; अब फिर क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पंडितज्वालाप्रसादकृतभाषायाम् ऊषाहरणसमाप्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ विष्णुपर्व भाषाटीकासमाप्त ॥

दोहा—उन्निससे बावन सुभग, संवत आश्विन मास । नवमी शुक्ला भृगु दिवस, पूर्ण कियो सुखरास ॥ १ ॥
कृष्णचन्द्र मंगल करण, हरण सकल श्रमशूल । श्रोता वक्ता पर वही, रहें सदा अनुकूल ॥ २ ॥



॥ इति हरिवंशे भाषाटीकायुतं द्वितीयं विष्णुपर्वं समाप्तम् ॥



॥ अथ हरिवंशे भाषाटीकायुत तृतीयं भविष्यपर्व प्रारभ्यते ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा--कृष्णचंद्र आनंदघन, सकलसुमंगलमूल ॥ द्विज ज्वालाप्रसादपर, सदा रहहु अनुकूल ॥१॥ शौनकजी बोले; हे लोमहर्षण सुत! जन्मेजयके कितने पुत्र हैं और उनमें महात्मा पाण्डवोंका वंश किसमें प्रतिष्ठित रहा ॥ १ ॥ यह मेरे सुननेकी इच्छा है. इस वार्ताके सुननेका मुझे परम कुतूहल है आपके मुखसे मैं सब सुनकर जाननेकी इच्छा करता हूं ॥२॥ सौति बोले; काश्या नाम स्त्रीमें परीक्षितके पुत्र जन्मेजयके दो पुत्र हुए राजा चन्द्रापीड और मोक्षमार्गका जाननेवाला सूर्यापीड हुआ ॥ ३ ॥ चंद्रापीडके उत्तम धनुषधारी सौ पुत्र हुए उनका कुल जन्मेजय नामसे

श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ शौनक उवाच ॥ जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लौमहर्षणे ॥ कस्मिन्प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ त्वत्तः कथयतः सर्वं वेद्म्यहं तत्परिस्फुटम् ॥ २ ॥ सौतिरुवाच ॥ पारिक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ॥ चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ॥ ३ ॥ चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ जानमेजय इत्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥४॥ तेषां श्रेष्ठस्तु राजासीत्पुरे वाराणसाह्वये ॥ सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥५॥ सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्ण प्रतापवान् ॥ अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥६॥ तस्माद्वनगताद्गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ॥ सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी ॥ ७ ॥ स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ॥ अन्वगच्छद्गतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्युतम् ॥८॥ सा दृष्ट्वा संप्रयान्तं तं मानिनी पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ पथि सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम् ॥ ९ ॥ कुमारं तं परित्यज्य भर्त्तारं चान्वगच्छत ॥ पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन् ॥ १० ॥

पृथ्वीमें विख्यात हुआ ॥ ४ ॥ उनमें श्रेष्ठ राजा वाराणसीपुरीमें हुआ. महाबाहु सत्यकर्ण बडी दक्षिणाके यज्ञ करनेवाला हुआ ॥ ५ ॥ सत्यकर्णका पुत्र महाप्रतापी श्वेतकर्ण हुआ. वह धर्मात्मा अपुत्र होनेसे तपोवनमें प्रविष्ट हुआ॥६॥उस वन जानेवालेके गर्भको यादवीने धारण किया. यह सुचारुकी पुत्री सुन्दरभ्रूयुक्त भ्राताकी हितकारिणी मालिनी थी ॥७॥ वह उस गर्भके जन्मसे पहलेही श्वेतकर्ण राजा पूर्वपुरुषोंकी रीतिके अनुसार महाप्रस्थान करता हुआ ॥८॥ उसको जाता हुआ देख मालिनीभी पीछे पीछे चली मार्गमें उसके कमललोचन कुमारका जन्म हुआ॥९॥उस कुमारको छोड-

कर वह भर्ताके पीछे पीछे चली, वह महाभागा पतिव्रता इस प्रकारसे चली, जैसे द्रौपदी अपने पतियोंके पीछे गई थी॥१०॥वह राजकुमार गिरि-कुंजमें रोने लगा. उसके छाया करनेके निमित्त चारों ओरसे मेघ प्रगट हुए॥११॥श्रविष्ठाके दो पुत्र हुए थे, एक पिप्पलाद और कौशिक. इन दोनोंने वनमें देख कृपाकर उस बालकको ग्रहण किया और जलसे प्रक्षालित किया. जिस समय उस बालकके दोनों पार्श्वभाग रुधिरलिप्त शिलापर पोंछे गये ॥ १२ ॥ तो उसकी पशली श्याम हो गई अर्थात् छागके समान श्यामवर्ण हो गई और वृद्धिको उसी प्रकार प्राप्त हुई॥१३॥इस कारण उन

स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे रुरोद ह ॥ छायार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्समन्ततः ॥११॥ श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः ॥ दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तं प्रक्षालयतां जलैः ॥ निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥१२॥ अजश्यामौ तु पार्श्वौ ताबुभावपि समाहितौ ॥ तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् ॥१३॥ ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह ॥ स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः ॥ १४ ॥ वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत्पुत्रकारणात् ॥ वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ ॥१५॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्य जीविनः ॥ स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां प्रतिष्ठितः ॥१६॥ श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना ॥ जरासंक्रमणे पूर्वं भृशं प्रीतेन धीमता ॥ १७ ॥ आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः ॥ अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोनोंने उसका नाम अजपार्श्व रक्खा. उन दोनों ब्राह्मणोंने वेमक नाम ऋषिके आश्रममें उसकी रक्षा कर उसे बढाया ॥१४॥ वेमककी भार्याने उसको अपने पुत्रवत् पालन किया. वह वेमकीका पुत्र और वे दोनों ब्राह्मण उसके मंत्री हुए॥१५॥उनके पुत्र पौत्र एक साथ जीवनवाले हुए इस प्रकार यह पौरव वंश पाण्डवोंका प्रतिष्ठित है॥१६॥इसमें ययाति नहुष पुत्रने श्लोक गाये हैं जो कि जराके देनेसे परम प्रसन्न हुए थे॥१७॥कि जबतक चन्द्रमा सूर्य ग्रह स्थित रहेंगे तबतक यह भूमि पुरुवंशियोंके अधिकारमें रहेगी. कभी पौरववंशहीन न होगी॥१८॥इति श्रीमन्महाभारते

खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ शौनकजी बोले; जिस प्रकार व्यासशिष्य वैशंपायनने प्रथम हरिवंशके पर्व कहे हैं, वैसेही आपने हरिवंश और सब पर्व कहे हैं ॥१॥ आपका इतिहाससंयुक्त कथन अमृतके समान सुखदाई होकर हमारे सब पाप नष्ट करता है ॥ २ ॥ सुखश्रवण कथा होनेसे हमारे मनकी प्रसन्नता होती है. हे सूत ! जन्मेजय राजा इस उत्तम आख्यानको सुनकर सर्पसत्रके उपरान्त क्या करते हुए ॥३॥ सौति बोले; जन्मेजय उस आख्यानको श्रवण कर, सर्पसत्रके उपरान्त जो करते हुए सो सुनो ॥ ४ ॥

शौनक उवाच ॥ उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च ॥ यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता ॥ १ ॥ तत्कथ्यमानममितमितिहाससमन्वितम् ॥ प्रीणात्यस्मानमृतवत्सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ सुखश्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव नः ॥ जनमेजयस्तु नृपतिः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ॥ सौते किमकरोत्पश्चात्सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ३ ॥ सौतिरुवाच ॥ जनमेजयस्तु स नृपः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ॥ यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ४ ॥ तस्मिन्सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा ॥ यष्टुं स वाजिमेधेन संभारानुपचक्रमे ॥ ५ ॥ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह ॥ यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हयमुत्सृज्यतामिति ॥६॥ ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षितं तदा कृष्णो महात्मा सहसाजगाम ॥ पारीक्षितं द्रष्टुमदानसत्त्वं द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः ॥७॥ पारीक्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ॥ अर्घ्यपाद्यासनं दत्त्वा पूजयामास शास्त्रतः ॥८॥ तौ चोपविष्टावभितः सदस्यास्तस्य शौनक कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते वेदसंहिताः ॥९॥ ततः कथान्ते नृपतिर्नोदयामास तं मुनिम् ॥ पितामहं पाण्डवानामात्मनःप्रपितामहम् ॥ १० ॥

जब सर्पसत्र समाप्त हो चुका तब राजाने अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ ऋत्विक् पुरोहित आचार्यको बुलाकर राजाने कहा; मैं अश्वमेध यज्ञ करूंगा. घोडा छोडना उचित है ॥६॥ तब इनकी यह चेष्टा देखकर सब परावरके जाननेवाले महात्मा व्यासजी जन्मेजयके देखनेको आये ॥ ७ ॥ जन्मेजय राजाने उनको आया देखकर अर्घ्य पाद्य आसन दे शास्त्रद्वारा पूजन किया ॥ ८ ॥ उनके सभामें स्थित होनेसे हे शौनक ! वेदसम्बन्धी बहुतसी कथाकहने लगे ॥९॥ कथाके अन्तमें नृपतिने उन मुनिको प्रेरणाकी जोकि पाण्डवोंके पितामह औरअपने प्रपितामह थे ॥ १० ॥

आपका निर्मित बहुतसे श्रुतिके विस्तारसे युक्त महाभारत सुनकर वह समय निमेष मात्रके समान बीता॥ ११॥विभूतिका विस्तार करनेवाला सबको यशयुक्त करनेवाला है. हे ब्रह्मन्!वह आपका निर्मित शंखमें क्षीरके समान रक्खा है ॥१२॥ स्वर्गसुख और अमृतसे तृप्ति होती है,परन्तु इस भारती कथाके श्रवण करनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥१३॥ आपको सर्वज्ञ जानकर मैं पूछता हूं. मेरे मतमें कुरुवंशके नाशका कारण राजसूय यज्ञ है ॥१४॥ दुःसह राजोंका ध्वंस इस राजसूयके कारणही कल्पित हुआ है ॥ १५ ॥ हमने सुना है कि, पूर्वकाल सोमने राजसूय यज्ञ किया था उसीके अन्तमें

महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ॥ निमेषमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम्॥ ११ ॥ विभूतिविस्तारकरं सर्वेषां वै यशस्करम् ॥ त्वया सुविहितं ब्रह्मन् शङ्खे क्षीरमिवाहितम्॥ १२ ॥ अमृतेन तु तृप्तिः स्याद्यथा स्वर्गसुखेन च ॥ तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वेमां भारतीं कथाम् ॥१३॥अनुमान्य तु सर्वज्ञं पृच्छामि भगवन्नहम्॥हेतुःकुरूणां नाशस्य राजसूयो मतो मम॥१४॥ दुःसहानां यथा ध्वंसो राजन्यानामुपप्लवे ॥ राजसूयं तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम्॥१५॥ राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः ॥ तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम्॥१६॥आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः॥ देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ॥१७॥ हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् ॥ तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ॥ १८ ॥ ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः ॥ महाभारत आरम्भः सभृतोऽग्निरिव क्रतुः॥१९॥तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य तु॥राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः॥२०॥

तारकामय महासंग्राम हुआ था ॥ १६ ॥ उसके अन्तमें वरुणने महा यज्ञ किया था तब सर्वभूतक्षयकारी महान् देवासुरसंग्राम हुआ था ॥ १७ ॥ राजर्षि हरिश्चन्द्रने यह यज्ञ किया था उससमय अडीवक नाम महाभयंकर क्षत्रियनाशी युद्ध हुआ था.(आडी जलचर पक्षिविशेषरूप वसिष्ठ और बकरूप विश्वामित्र थे.ऋषिरूपसे लज्जाके कारण युद्ध न करसके.इसकारण इस रूपसे वर्णन किया.इनदोनोंके पक्षपातीराजोंमें संग्राम हुआ)॥१८॥ इसके उपरान्त पाण्डवोंने इस दुस्तर यज्ञका प्रारंभ किया इसमें अग्निके समान महाभारतका प्रारंभ हुआ॥१९॥ सो इस लोकक्षयकारी युद्धका मूल

राजसूय महायज्ञ किस कारण निवारण न किया ॥ २० ॥ राजसूय यज्ञ सर्वांगसहित होना कठिन है. यज्ञांगके मिथ्या प्रणीत होनेमें प्रजाओंका अवश्य नाश होता है ॥२१॥ आपभी सब पूर्वजोंके पितामह हैं. आप अतीत अनागतके स्वामी हमारे आदिकर्ता हो ॥२२॥ आपसे नेता होने-परभी वे बुद्धिमान नीतिसे किस प्रकार चलायमान हुए. अनाथ अथवा कुशिक्षकही पुरुष अपराध करते हैं ॥२३॥ व्यासजी बोले; तुम्हारे पूर्वपि-तामह कालानुसारही विपरीतकर्ता हुए थे न उन्होंने मुझसे भविष्य पूछा और विना पूछे मैं कहता नहीं हूं ॥ २४ ॥ भविष्यके निवृत्त करनेकी मुझे

राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः ॥ मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गे प्रजानां संक्षयो ध्रुवः ॥ २१ ॥ भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः ॥२२॥ ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात् ॥ अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवाः ॥२३॥ व्यास उवाच ॥ कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहाः ॥ न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टोऽब्रवी-म्यहम् ॥२४॥ सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने ॥ परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः ॥ २५ ॥ त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत् ॥ अतश्च बलवान्कालः श्रुत्वापि न करिष्यसि ॥ २६ ॥ न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे ॥ लेखा हि काललिखिताः सर्वथा दुरतिक्रमाः ॥२७॥ अश्वमेधः क्रतुः श्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः॥तेन भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति ॥२८॥ यदि तच्छक्यते राजन्परिहर्तुं कथंचन ॥ दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम् ॥ २९ ॥

सामर्थ्य नहीं है.कालकी विधान की हुई गतिको कोई नष्ट नहीं कर सकता है॥२५॥अब तुमने मुझसे पूछा है इस कारण मैं भावि अर्थको कहता हूं. इससे काल बलवान् है सुनकरभी कोई नहीं मेट सकता॥२६॥भय आरंभ उत्साह पुरुषार्थभी कोई कालकी गतिको मेट नहीं सकता. कालकी गति दुरतिक्रम है॥२७॥क्षत्रियोंके निमित्त अश्वमेध सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा है.इसी भावसे तुम्हारे यज्ञको इन्द्र धर्षित करेगा ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जो तुम उसे किसी प्रकार परिहरण करनेको समर्थ हो जो दैवको पुरुषकारसे मेटनेकी इच्छा करो तो इस यज्ञको मत यजन करो ॥ २९ ॥

इन्द्र वा तुम्हारे उपाध्यायगणोंका इसमें अपराध नहीं है न तुम यजमानका अपराध है. कालही दुरतिक्रम है ॥३०॥ उस परमेष्ठी कालकीही यह संस्था की हुई है यह प्रजासर्ग युगक्षयमें यथेष्ट गतिको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणभी इसी प्रकार यज्ञके फलके बेचनेवाले होंगे. यह त्रिलोकी चराचर कालकेही आधीन जानो ॥३२॥ अश्वमेधकी निवृत्तिमें क्या निमित्त होगा उसे सुनकर मैं इसको परिहार करूंगा यदि आप कहना उचित समझो तो इसे कहिये ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले; हे प्रभो ! इसमें ब्रह्मकोपही निमित्त होगा. सो इसके परिहारका यत्न करो तुम्हारा कल्याण

न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते॥ तव वा यजमानस्य कालोऽत्र दुरतिक्रमः॥३०॥तस्य संस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः ॥ यथादृष्टं प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये ॥ ३१ ॥ तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ॥ तत्प्रणेयं निबोधस्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति ॥ श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन्यदि मन्यसे ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मलोपकृतं प्रभो ॥ यतेथाः परिहर्तुं त्वमित्येतद्भद्रमस्तु ते ॥३४॥ त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेधं परंतप ॥ क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ३५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा ॥ अहं निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते ॥ ३६ ॥ कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जनः ॥ लोकानुत्सहते गन्तुं खं सपाश इव द्विजः ॥ ३७ ॥ यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमत्र प्रणाशनम् ॥ यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम् ॥ ३८ ॥

हो॥३४॥ हे परंतप ! यह तुम्हारा प्रवृत्त किया अश्वमेध पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका हर्ता होगा. अर्थात् तुम्हारे सिवाय फिर और कोई पृथ्वीपर आगे अश्वमेध यज्ञ न करेगा ॥ ३५ ॥ जन्मेजय बोले; अश्वमेधकी निवृत्तिमें ब्राह्मण शापरूप अग्निके तेजमें मैं निमित्त हूं. इसका मुझको महाभय उपजता है ॥३६॥ मुझसरीखा सुकृती मनुष्य किस प्रकार अकीर्ति कर कार्यमें प्रवृत्त हो उत्तम लोकमें जा सकता है. जिस प्रकार पाशबँधा पक्षी आकाशमें नहीं उड सकता ॥ ३७ ॥ और जो इसमें अनागत दीखता है अर्थात् जिस प्रकार इसमें नष्टता देखी है. फिर इस यज्ञका प्रारंभ

किस प्रकार किया जायगा इस वार्तासे मुझको आश्वासन दीजिये ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले; उपसंहार किया यह अश्वमेध देवता और ब्राह्मणोंमें ज्ञानरूपसे स्थित होगा. जिस प्रकार तेजसे व्याहत तेज अग्निमें स्थित होगा ॥ ३९ ॥ पृथ्वीके खोदनेमें कोई उद्भिज्ज कश्यपगोत्र सेनापति होगा. वह कलियुगमें फिर अश्वमेधको पूरा करेगा ॥४०॥ उस युगमें उसके कुलमें उपजा पुरुष राजसूय यज्ञ करेगा. हे राजेन्द्र ! वह प्रलयकाल श्वेतग्रहके उत्पातके समान हरणकर्ता होगा ॥ ४१ ॥ और वह बलके अनुसार क्रिया करनेवाले मनुष्योंको फल देगा और ऋषियोंके छिपाये हुए युगान्त

व्यास उवाच ॥ उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते ॥ तेजसा व्याहृतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते ॥ ३९ ॥ औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानीः काश्यपो द्विजः ॥ अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति ॥ ४० ॥ तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् ॥ आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः ॥४१॥ यथाबलं मनुष्याणां कर्तॄणां दास्यते फलम् ॥ युगान्तद्वारमृषिभिः सवृतं विच-रिष्यति ॥४२॥ तदाप्रभृति हास्यन्ति नृणां प्राणाः पुराकृतीः ॥ न निवर्तिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह ॥ ४३ ॥ तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान् ॥ चातुराश्रम्यशिथिलो धर्मः प्रविचलिष्यति ॥ ४४ ॥ तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवाः ॥ धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ जनमेजय उवाच ॥ आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे ॥ तस्माद्द्वापरसंविद्धं युगान्तं स्पृहयाम्यहम् ॥ १ ॥

द्वारमें विचरण करेगा ॥ ४२ ॥ उस समयसे लेकर मनुष्योंकी इन्द्रिय पुराकृत शिष्टाचारोंके पूर्ववृत्तान्तोंको त्यागन कर देगी. परन्तु वार्ताओंका आवर्त संसार निवृत्त नहीं होगा ॥ ४३ ॥ तब सूक्ष्मअतितेजवान् दुस्तर दानमूलवाला चारों आश्रमोंका धर्म शिथिल हो जायगा कुत्रचित् प्रकाशित होगा ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्य थोडेही तपसे सिद्धिको प्राप्त होंगे. हे जन्मेजय ! युगान्तमें जो धर्माचरण करेंगे वे बडे धन्य होंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ जन्मेजय बोले; यदि हम आसन्न और विप्रकृष्ट कालको नहीं

जानते हैं आगेका समय महाअधर्मयुक्त होगा तौ हम द्वापर सम्बद्ध कलिके सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ इस धर्मतृष्णासे हम उस कालको प्राप्त हुए हैं इस कारण अल्पकर्म करके सुखपूर्वक परम धर्मको प्राप्त होवेंगे ॥२॥ शौनक बोले; त्रास और उद्वेग करनेवाला युगांत प्राप्त हुआ है. हे धर्मज्ञ ! प्रनष्ट हुए धर्मको निमित्तद्वारा आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥ सौति बोले; इस प्रकार भविष्यकी गति तत्त्वसे चिन्तन करते हुए युगान्तके धर्मोंको भगवान् कहने लगे ॥४॥ व्यासजी बोले; प्रजाकी रक्षा करनेसे रहित बलिभाग ग्रहण करनेवाले अपनी रक्षामें निपुण राजा युगान्तमें उत्पन्न होंगे

प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया ॥ आदद्यात्परमं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ त्रासमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् ॥ प्रणष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥३॥ सौतिरुवाच ॥ पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् ॥ युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत्तदा ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ॥ युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ५ ॥ अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ६ ॥ काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च निष्क्रियाणि हवींष्यथ ॥ एकपंक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ७ ॥ शिल्पवन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः ॥ मित्रभार्यां भजिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥८॥राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः॥ भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ९ ॥ धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ॥ अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ राजा क्षत्रियवंशहीन और ब्राह्मण शूद्रोपजीवी होंगे और शूद्र कलियुगमें ब्राह्मणोंके आचारवाले होंगे ॥ ६ ॥ श्रोत्रिय ब्राह्मण बाणधारी होंगे. हवि पंचयज्ञहीन होंगे. हे जन्मेजय ! कलियुगमें सब एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करेंगे ॥ ७ ॥ कारीगरीसे युक्त असत्यभाषी मद्य-आमिष-प्रिय मनुष्य मित्रकी भार्यासे भोग करनेवाले मनुष्य कलियुगमें होंगे ॥ ८ ॥ चोर राजवृत्तिमें स्थित और राजा चोरोंसे हित करनेवाले होंगे. तथा युगक्षयमें भृत्य स्वामीका द्रव्य चुरानेवाले होंगे ॥ ९ ॥ धनकी श्लाघा होगी सत्पुरुषोंके आचरण कोई न करेगा तथा कोई

पतित होगा तथापि युगक्षयमें उसकी निन्दा न होगी ॥१०॥ धर्माधर्मके स्वरूपबोधसे रहित संन्यासी मुक्तकेश विधवा परस्पर मिलकर प्रजा उत्पन्न करेगी तथा दूसरे प्राणी सोलह वर्षसे पहलेही सन्तान उत्पन्न करेंगे॥११॥सब प्राणी अन्न बेचेंगे ब्राह्मण वेदके बेचनेवाले होंगे तथा स्त्री भग बेचनेवाली कलियुगमें होंगी ॥ १२ ॥ सबही ब्रह्मज्ञानी और सबही वाजसनेयि शाखावाले होंगे कारण कि और शाखाओंका लोप हो जायगा और कलियुगमें शूद्र 'भो भगवन्' आदि शब्दोंके उच्चारण करनेवाले होंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण तप और यज्ञके बेचनेवाले होंगे. युगक्षयमें विपरीत ऋतु

प्रणष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः ॥ ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा ॥११॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ॥ प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१२॥ सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः ॥ शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥१३॥ तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ॥ ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ॥ १४ ॥ शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥ शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः ॥१५॥ श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः ॥ स्वादूनां विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥ १६ ॥ अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः ॥ यथानिम्नं प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये ॥ १७ ॥ तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः ॥ चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१८॥ सर्वे चौरकुले जाताश्चौरयानाः परस्परम् ॥ स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति यत्किंचित्प्राप्य दुर्गताः ॥ १९ ॥

होंगी ॥१४॥ श्वेत दांत सूक्ष्मदृष्टिवाले मुंडी काषाय वस्त्र पहरे शाक्यमतकी उपजीविका करनेवाले शूद्र धर्मको करेंगे ॥ १५ ॥ हिंस्र जीव अधिक होंगे गौओंका क्षय होगा और युगान्तमें स्वादुरसोंकी हीनता होगी ॥ १६ ॥ अन्त्यजाति म्लेच्छादि मध्य कुरु पांचालादि देशोंमें निवास करेंगी और मध्यनिवासी अंत्यमें जा वसेंगे युगक्षयमें प्रजा अधोमार्गकोही प्राप्त होती जायगी॥१७॥किसान दो वर्षके बछडोंको नाथ डालेंगे तथा वधिया करेंगे तथा युगक्षयमें मेघ कहीं वर्षेंगे कहीं नहीं वर्षेंगे॥१८॥चोरोंके कुलमें जन्मते हुए सब चोरीही परस्पर करेंगे. थोडाही कुछ प्राप्त करनेसे दरिद्र अपनेको धनाढ्य

क्षयमें होगा ॥ ३८ ॥ पिताओंको पुत्र और बहुएं सासोंको कार्यमें नियुक्त करेंगी. नीच जातिकी स्त्रियोंसे सब वर्ण भोग करेंगे ॥ ३९ ॥ शिष्य गुरुओंको वाणीरूपी बाणसे जर्जरित करेंगे और प्रमत्तहो पुरुष स्त्रियोंके मुखोंमें भोग करेंगे॥४०॥बलि वैश्वदेव किये विनाही मनुष्य भोजन करेंगे भिक्षाबलिको विना दिये स्वयं पुरुष भोजन करेंगे॥४१॥सोते हुए पुरुषोंको त्याग स्त्री भोगार्थ अन्यपुरुषोंके पास जायंगी औरपुरुष सोई स्त्रियोंको त्याग परस्त्रियोंके निकट जायंगे ॥४२॥ सब मनुष्य व्याधितऔर शूलयुक्त होंगे तथा परस्पर बुराई करनेवाले होंगे. युगके क्षीण होनेमें कोई कृति

पितॄन्पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूंश्च कर्मसु ॥ वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तदा ॥ ३९ ॥ वाक्शरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरून् शिष्यास्तथैव च ॥ मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्ताश्च नरास्तदा ॥ ४० ॥ अकृताग्राणि भोक्ष्यन्ति नराश्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ भिक्षां बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ॥ ४१ ॥ पतीन्सुप्तान्वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥ पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रियम् ॥४२॥ नाव्याधितो नाप्यरुजो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः ॥ न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति॥४३॥ इति श्रीम० भवि० तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ एवं विलुलिते लोके मनुष्याः केन पालिताः ॥ निवत्स्यन्ति किमाचाराः किमाहारविहारिणः ॥ १ ॥ किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणः किमायुषः ॥ कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्ततः ॥ शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ते ह्रासमायुषः ॥३॥ आयुर्हान्या बलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता ॥ वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥ ४ ॥

और प्रतिकर्ता नहीं होगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ जन्मेजय बोले; जब इस प्रकार लोक लुलित होंगे तब मनुष्य किसके द्वारा पालितहोंगे. तब किस आचार और आहार विहारसे युक्त होंगे ॥ १ ॥ क्या कर्मवाले किस चेष्टा-वाले, किस प्रमाण और किस अवस्थाके मनुष्य होंगे. किस दशाको प्राप्त होकर वे सब युगको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ व्यासजी बोले; धर्महीन होनेसे सब प्रजा गुणहीन हो जायगी. शीलके व्यसनको प्राप्त होकर आयुके ह्रासको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ आयुकी हीनता होनेसे बलकी हानि और

बलहानि होनेसे विवर्णता, विवर्णतासे व्याधिपीडा और व्याधिपीडासे निर्वेद होता है॥४॥निर्वेदसे आत्मसंबोध, संबोधसे धर्मशीलता होती है. इस प्रकार पराकाष्ठाको प्राप्त हो प्राणी सतयुगको प्राप्त होंगे॥५॥कितने पुरुष किसी उद्देशसे धर्मशील होंगे. कोई मध्यस्थताको प्राप्त होंगे. कोई हेतुवादमें आश्चर्यकरने वाले ईर्षाशील होंगे॥६॥प्रत्यक्ष और अनुमानको निश्चय करनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाणही मानकर पंडिताईका अभिमान करेंगे॥७॥कोई मनुष्य वेदोक्त वाक्यको अप्रमाण करेंगे. स्त्रियोंका जीवन योनिसेही होगा॥८॥कोई धर्मलोप नास्तिक होंगे. मूढ और पंडितमानी मनुष्य कलिमें होंगे॥९॥प्राणियोंकी

निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता ॥ एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥ ५ ॥ उद्देशतो धर्मशीलः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥ विमर्षशीलाः केचित्तु हेतुवादकुतूहलाः ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं चेति निश्चिताः ॥ प्रमाणैकं करिष्यन्ति नेति पण्डितमानिनः ॥ ७ ॥ अप्रमाणं करिष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः ॥ तदा मुखभगाश्चैव भविष्यन्ति स्त्रियोऽपराः ॥८॥नास्तिक्यपरमाश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः॥भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः॥९॥तदात्वमात्रे श्रद्धेयाः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः ॥ दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति वादशीलकुतूहलाः ॥ १० ॥ तदा विचलिते धर्मे जनाः शेषपुरस्कृताः ॥ शुभान्येवाः चरिष्यन्ति दानसत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥ सर्वभक्षो ह्यसंगुप्तो निर्गुणो निरपत्रपः॥ भविष्यति तदा लोकस्तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥ विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरा जनाः ॥ प्रतिपत्स्यन्ति वृत्त्यर्थं तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १३ ॥ कषायोप्लुवे लोके ज्ञानविद्याप्रणाशने ॥ सिद्धिं स्वल्पेन कालेन यास्यन्ति निरुपस्कृताः ॥ १४ ॥

श्रद्धाके बल प्रत्यक्षमें होगी. शास्त्रज्ञानसे रहित होंगे. वे वादशील कुतूहलके परवश होकर दाम्भिक हो जायंगे॥१०॥इस प्रकार धर्मके चलायमान होनेसे शेष मनुष्य दान सत्यसे युक्त हो शुभ कार्योंको करेंगे॥११॥सब पदार्थोंके खानेवाले निर्गुणी निर्लज्ज लोक हो जायंगे यही कषायका लक्षण है॥१२॥ जब ब्राह्मणकी सदा रहनेवाली वृत्तिको शूद्र करने लगेंगे यही कषायका लक्षण जानना॥१३॥ज्ञानविद्याका नाश होनाही कलिका लक्षण है. परन्तु इस

कालमें थोडेही परिश्रमसे मनुष्य सिद्ध हो जाता है ॥ १४ ॥ महायुद्ध, महानाद, महावर्षा, महाभय युगके क्षीण होनेपर होगा. यही कलिका लक्षण है ॥ १५ ॥ ब्राह्मणके रूपमें राक्षस और चुगलीकी बात सुननेवाले राजा होंगे यही पुरुष युगान्तमें पृथ्वीको भोगेंगे ॥ १६ ॥ स्वाध्याय वषट्कारसे हीन अनीतियुक्त अभिमानी ब्राह्मण क्रव्यादरूपसे सर्वभक्षी और वृथा व्रत करनेवाले होंगे ॥१७॥ मूर्ख, स्वार्थी, लोभी, क्षुद्र, क्षुद्राशय, भोजनाच्छादनके व्यवहारमें तत्पर, सनातन धर्मसे पतित ॥ १८ ॥ पराई स्त्री और पराये रत्नोंको हरनेवाले, कामी, दुरात्मा, छली, साहसी ॥ १९ ॥ जब सब

महायुद्धं महानादं महावर्षं महाभयम् ॥ भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १५ ॥ विप्ररूपाणि रक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः ॥ पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥ १६ ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारा अनेयाश्चाभिमानिनः ॥ विप्राः क्रव्यादरूपेण सर्वभक्षा वृथाव्रताः ॥ १७ ॥ मूर्खाः स्वार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः ॥ व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माच्च शाश्वतात् ॥ १८ ॥ हर्तारः पररत्नानां परदारापहारकाः ॥ कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥१९॥ तेषु प्रभवमानेषु तुल्यशीलेषु सर्वतः ॥ अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥ २० ॥ उत्पन्ना ये कृतयुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः ॥ कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥ २१ ॥ शस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ॥ भक्ष्यभोज्यपहाराश्च करण्डानां च हारिणः ॥ २२ ॥ चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हर्तुर्भविष्यति ॥ चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥ २३ ॥ निःसारे क्षुभिते लोके निष्क्रिये व्यन्तरस्थिते ॥ नराः श्रयिष्यन्ति वनं करभारप्रपीडिताः ॥ २४ ॥

ओरसे इस प्रकारके मनुष्योंका प्रादुर्भाव हो जायगा तब मुनिरूपधारी बहुतसे मनुष्य होंगे ॥ २० ॥ जो सतयुगमें प्रधान पुरुषके आश्रयवाले उत्पन्न हुए हैं. कथाके योगसे मनुष्य उन सबका पूजन करेंगे ॥२१॥ खेती और बैल, वस्त्र, चोरी करनेवालेभी मनुष्य होंगे. भक्ष्य, भोज्य, स्नान, सामग्री तथा वंशपात्रके हरनेवाले होंगे ॥२२॥ चोरोंकी चोरी करनेवाले, मारनेवालोंके मारनेवाले मनुष्य कलियुगमें होंगे. चोरोंसे चोरोंका क्षय होनेपर क्षेम होगी ॥ २३ ॥ जब निःसार निष्क्रिय और क्षुभित संसार हो जायगा तब करभारसे पीडित हो मनुष्य वनको चले जायंगे ॥ २४ ॥

पुत्र सब कमामें पिताको आज्ञा देंगे. बहू सासुओंको युगान्तमें आज्ञा देंगी ॥ २५ ॥ शिष्य गुरुओंको वाणीरूपी बाणसे जर्जरित करेंगे. यज्ञके न होनेसे राक्षस, श्वापद ॥ २६ ॥ कीट, मूषक, सर्प मनुष्योंको धर्षित करेंगे. क्षेम सुभिक्ष आरोग्य बंधुओंमें ममता यह सब आशयसे होंगे ॥ २७ ॥ आपही पालना और आपही चोरी करनेवाले युगसंभारके धारण करनेवाले देशदेशमें मंडल बांधकर विचरण करेंगे ॥ २८ ॥ अपने देशोंसे भ्रष्ट हुए बंधुओंके सहित निस्सार हुए कालक्षयमें सब मनुष्य इस गतिके हो जांयगे ॥ २९ ॥ तब क्षुधासे व्याकुल हुए मनुष्य पुत्रोंको

पितनाज्ञापयिष्यन्ति पुत्राः कर्मणि सर्वशः ॥ स्नुषा श्वश्रूस्तथा चैव युगांते प्रत्युपस्थिते ॥ २५ ॥ वाक्शरैर्दर्षयिष्यन्ति गुरून् शिष्याः समन्ततः ॥ यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च ॥ २६ ॥ कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामर्थ्यं वापि बन्धुषु ॥ उद्देशतो नरश्रेष्ठ भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २७ ॥ स्वयंपालाः स्वयं चोरा युगसंभारसंभृताः ॥ मण्डलैः प्रचलिष्यन्ति देशे देशे पृथक् पृथक् ॥२८॥ स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्ट निःसाराः सह बन्धुभिः॥ नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥ २९ ॥ तदा स्कन्धे समाधाय कुमारान् विद्रुता भयात् ॥ कौशिकीं प्रतरिष्यन्ति नराःक्षुद्भयपीडिताः ॥३०॥ अङ्गान् वङ्गान्कलिङ्गाश्च काश्मीरानथ मेकलान् ॥ ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः ॥३१॥ कृत्स्नं वा हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः ॥ अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह ॥३२॥ नैव शून्या न चाशून्या भविष्यति वसुंधरा ॥ गोप्तार श्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शस्त्रिणः ॥३३॥ मृगैर्मत्स्यैर्विहंगैश्च श्वापदैःसर्पकीटकैः ॥ मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः॥३४॥

कंधोंपर चढाये भयसे कौशिकी नदीके पार होंगे ॥ ३० ॥ अंग वंग कलिंग काश्मीर मेकल ऋषिकान्त और गिरिद्रोणीको प्राप्त होंगे ॥३१॥ वा सम्पूर्ण हिमालयके पार्श्वमें वा लवणसागरके तटपर वनोंमें मनुष्य म्लेच्छगणोंके साथ निवास करेंगे ॥ ३२ ॥ न तो शून्य न अशून्य इस प्रकारकी पृथ्वी होगी. शस्त्रधारी रक्षक और अरक्षक दोनों प्रकारके होंगे ॥ ३३ ॥ मृग, मत्स्य, विहंग, श्वापद, कीट, मधु. शाक. फल, मूल इनसे मनुष्य अपनी आजीविका करेंगे ॥ ३४ ॥

चीर, अनेक प्रकारके पर्ण, वल्कल, अजिन यह सब मुनिजनोंके समान धारण करेंगे ॥३५॥ दर्शझीलादिमें हलके द्वारा बीज बोनेकी चेष्टा करेंगे और बकरी, भेड, ऊंट, गधें इनको यत्नसे पालेंगे ॥३६॥ तटपर आई हुई नदियोंके स्रोत बंद हो जांयगे. पक्वान्नका व्यवहार तथा वृक्षोंके मूलफलका परस्पर व्यवहार होगा ॥ ३७ ॥ जो सन्तान उत्पन्न होगी वह शुद्धिरहित और कुलके लक्षणोंसे हीन होगी और बहुत सन्तति होगी ॥ ३८ ॥ जब इस प्रकार कालकारित मनुष्य हो जांयगे तब प्रजामें धर्म हीनसेहीन दशाको प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥ उस समय मनुष्योंकी आयु तीस वर्षकी

चीरं पर्णं च बहुलं वल्कलान्यजिनानि च ॥ स्वयंकृतानि वत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा ॥ ३५ ॥ बीजानामाकृतिं निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशंकुभिः ॥ अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥३६॥ नदीं स्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रिताः ॥ पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥ ३७ ॥ तनूरुहैर्यथा जातैः समूलान्तरसंवृतैः ॥ बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुललक्षणवर्जिताः ॥ ३८ ॥ एवं भविष्यन्ति तदा मनुष्याः कालकारिताः ॥ हीनाद्धीनं तदा धर्मं प्रजाः समनुवर्त्स्यति ॥३९॥ आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति ॥ दुर्बला विषयग्लाना रजसा समविप्लुताः ॥४०॥ भविष्यति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः ॥ आयुः प्रक्षयसंरोधाद्विषादः प्रभविष्यति ॥ ४१ ॥ शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः ॥ सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात् ॥ ४२ ॥ भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः ॥ करिष्यन्ति च संकोचं स्वपक्षक्षयपीडिताः ॥४३॥ एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राणाभिरक्षणे ॥ चतुष्पादः प्रवृत्तश्च धर्मः श्रेयोऽभिपत्स्यते ॥ ४४ ॥

बहुत होगी. दुर्बल विषयोंसे ग्लानियुक्त रजोगुणसे व्याप्त होंगे ॥४०॥ रोगोंसे उनके इन्द्रियोंका क्षय होगा और आयुक्षयके संरोधसे परम विषादको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ उस समय साधुओंके दर्शन और टहलकी इच्छा होगी व्यवहारकी निवृत्ति होनेसे सत्य वचनको बोलने लगेंगे ॥ ४२ ॥ कामके न होनेसे धर्मशील हो जांयगे. भयसे पिडित हो दुराचारताके कारण संकोच करेंगे ॥ ४३ ॥ दान सत्य और प्राणोंकी रक्षामें इस प्रकार

सुश्रूषा करनेवाले जब होंगे तब चतुष्पाद धर्म उनको मंगलकारी होगा ॥४४॥ उनको जब अन्वय व्यतिरेकसे धर्माधर्म फलोंके मध्यमें प्रवृत्तता होगी धर्मके सिवाय और कोई वस्तु साधु नहीं तब वह धर्मही कहेंगे ॥४५॥ जैसे क्रमसे हानि प्राप्त हुई है इसी प्रकार क्रमसे वृद्धि होगी सबके धर्म ग्रहण करनेमें सतयुग प्रवृत्त होगा ॥४६॥ सतयुगमें साधु वृत्त होनेसे कलिकी हानि होती है,वह एकही काल हीन वर्णके चन्द्रमाके समान होता है ॥४७॥ अर्थात् जैसे वही चन्द्रमा अंधकारसे आवरण होनेके कारण सब नहीं दीखता इसी प्रकार कलि है और अंधकारसे हीन पूर्ण-चन्द्रमाके समान सतयुग है ॥४८॥ परब्रह्म अर्थवाद है. यह वेदार्थ कहा गया है. इसको विना जाने इस प्रकार होता है जैसे मृत्तिकामें मिला

तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् ॥ स्वादु किं न्विति विज्ञाय धर्म एवं वदिष्यति ॥४५॥ यथा हानिः क्रमात्प्राप्ता तथा वृद्धिः क्रमाद्गता ॥ प्रगृहीते यतो धम प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥४६॥ साधु वृत्तं कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते ॥ एक एव तु कालः स हीनवर्णो तथा शशी ॥४७॥ छन्नो हि तमसा सोमो यथा कलियुगे तथा ॥ पूर्णश्च तमसा हीनो यथा कृतयुगे तथा ॥ ४८ ॥ अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः ॥ अनिर्णिक्तमविज्ञातं दायाद्यमिव धार्यते ॥ ४९ ॥ इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थावरं कृतम् ॥ गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणास्तथ्येन कर्मणा॥५०॥ आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी॥ युगे युगे यथाकालमृषिभिः समुदाहृता ॥५१॥ इह धर्मार्थकामानां देवतानां प्रतिक्रिया ॥ आशिषश्च शुभाः पुण्यास्तथैवायुर्युगे युगे ॥ ५२ ॥

हुआ सुवर्ण किसीके घर स्थित हो वह उसे विना जाने दारिद्रमानता है उसके जानेसे अपनेको धनवान् मानता है.इसीप्रकार ब्रह्मके जाननेसे सर्वै-श्वर्यसम्पन्न होता है ॥४९॥ इष्टवादही तप है.जिसमें स्वर्गादिका अभीष्ट कथन किया है.जो तप स्थावर अनादि अव्यभिचारी फलवान् शास्त्रमें कहा है वह देहादिद्वारा कर्मोंसे सिद्ध होता है.कर्मसत्यादि गुण देहादि कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती इस कारण शरीरको ब्रह्माश्रय करे ॥५०॥ एक कर्मसे फलप्राप्ति होती है.यह देशकालको देखकर मुनिजनोंने आशीर्वाद कही है.यह पुण्यरूप युगयुगमें वर्तती है ॥ ५१ ॥ धर्म अर्थ काम और

देवताओंकी प्रतिक्रिया और पुण्यरूप आशीर्वाद युगयुगमें वर्तते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे युगोंका चिरकालसे प्रवृत्त होना विधिके स्वभावसे चिरकालसे चला आता है इसी नियमसे यह लोक क्षय और उदयमें वर्तता हुआ क्षणकालकोभी स्थित नहीं होता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले; इस प्रकार राजा जन्मेजयको आश्वासन करते हुए ऋषिके अतीत अनागत वाक्योंको सभाने सुना ॥१॥ महर्षिके वाणीरूपी रससे अमृतके प्रवाह चन्द्रमाकी कान्तिके समान उनके श्रोत्र तृप्त हो गये ॥२॥ धर्म अर्थ कामसे

यथा युगानां परिवर्तनानि चिरं प्रवृत्तानि विधिस्वभावात् ॥ क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ सूत उवाच ॥ इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् ॥ अतीतानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम् ॥ १ ॥ अमृतस्येव संवाहः प्रभा चन्द्रमसो यथा ॥ अतर्पयत तच्छ्रोत्रं महर्षेर्वाङ्मयो रसः ॥ २ ॥ धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम् ॥ रमणीयं तदाख्यानं कृत्स्नं परिषदा श्रुतम् ॥३॥ केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा दध्युस्तथापरे ॥ इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम् ॥४॥ सदस्यान्सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ पुनर्द्रक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषिः ॥५॥ अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ॥ लोके प्रवदतां श्रेष्ठं ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥६॥ याते भगवति व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ ७ ॥ पन्नगानां सुघोराणां कृतानां वैरयातनाम् ॥ जगाम रोषमुत्सृज्य राजा विषमिवोरगः ॥ ८ ॥

संयुक्त करुणा वीर रसके हर्षतासे युक्त यह रमणीय आख्यान सब सभाने सुना ॥ ३ ॥ सुनकर कोई आंसू त्यागने लगे कोई ध्यान करने लगे ऋषिने उस इतिहासको हाथमें रखकर दिखा दिया ॥ ४ ॥ सभाकी आज्ञाको प्राप्त हो प्रदक्षिणा कर मैं फिर आऊंगा ऐसा कह ऋषिराज चले गये ॥५॥ तब उन ऋषिके पीछे पीछे जो कि बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ थे सब तपोधनभी गये.जो श्रेष्ठ थे ॥ ६ ॥ ब्रह्मर्षियोंके साथ भगवान् वेदव्यास-जीके जानेमें ऋत्विक और राजाभी सब अपने २ स्थानोंको गये ॥ ७ ॥ और राजा जन्मेजय भी घोर सर्पोंकी वैरयातनाको पूर्ण

कर सर्पविषके समान क्रोध त्यागन कर निवृत्त हुए ॥ ८ ॥ होत्र अग्निके समान दीप्तिमान् शिरवाले तक्षकको बचाकर वह महामुनि आस्तीक अपने आश्रमको गये ॥९॥ राजा अपने सुजनोंके सहित हस्तिनापुर गये और तबसे प्रसन्नताके सहित प्रजा पालन करने लगे ॥ १० ॥ कुछ समयके उपरान्त राजा जन्मेजयने बडी दक्षिणावाले यज्ञका अनुष्ठान किया ॥११॥ तब सुन्दररूप काशीके राजाकी पुत्री वपुष्टमा जन्मेजयकी स्त्री मृतक हुए अश्वके समीपमें स्थित हुई ॥१२॥ उस समय उस सब प्रकार अनिन्दित अंगवालीकी इन्द्रने इच्छा की. मृतक घोडेमें प्रवेश हो उसके

होत्राग्निदीप्तशिरसं परित्राय च तक्षकम् ॥ आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ॥९॥ राजापि हास्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः ॥ अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिताः प्रजाः ॥ १० ॥ कस्य चित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः ॥ दीक्षितो वाजिमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ११ ॥ संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा ॥ संविवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १२ ॥ तां तु सर्वानवद्याङ्गीं चकमे वासवस्तदा ॥ संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्रीबभूव सः ॥१३॥ तस्मिन्विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत् ॥ असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत् ॥ १४ ॥ अध्वर्युर्ज्ञानसंपन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम् ॥ कथयामास राजर्षेः शशाप स पुरंदरम् ॥१५॥ जनमेजय उवाच ॥ यद्यस्ति मे यज्ञफलं तपो वा रक्षतः प्रजाः ॥ फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम् ॥१६॥ अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थितम् ॥ क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यन्तीति शौनक ॥ १७ ॥ ऋत्विजश्चाब्रवीत्क्रुद्धः स राजा जनमेजयः ॥ दौर्बल्यं भवतामेतद्यदयं धर्षितः क्रतुः ॥ १८ ॥

साथ मैथुनमें प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥ यह विकार उत्पन्न होनेसे उसको तत्त्वसे जानकर राजाने अध्वर्युसे कहा. यह घोडा मृतक नहीं हुआ है इस कारण ध्वंस करनेके योग्य है॥ १४ ॥ ज्ञानसम्पन्न अध्वर्युने यह राजाकी चेष्टा जानकर राजासे कहा और इन्द्रको शाप दिया ॥ १५ ॥ जन्मेजय बोले; जो कुछ मुझे यज्ञफल प्राप्त है तथा जो मैंने प्रजारक्षा की है इस सबके फलसे जो मैं कहता हूं सो सब कोई सुनो ॥१६॥ आजसे इस अजितेन्द्रिय चंचलस्वभाव इन्द्रको कोई अश्वमेधसे पूजननहीं करेंगे ॥ १७ ॥ हे शौनक ! इस प्रकार क्रोधित हो जन्मेजयने ऋषियोंसे कहा कि यह

मेरे यज्ञमें विघ्न तुम्हारी दुर्बलतासे हुआ है ॥ १८ ॥ तुम हमारे राज्यमें मत बसो कुटुंबसहित चले जाओ यह कहनेपर क्रोधित हो ब्राह्मणोंने राजाको त्यागनकर दिया ॥ १९ ॥ तब तामसी जन्मेजय क्रोधकर पत्नीशालामें प्राप्त हुई स्त्रियोंसे बोले ॥ २० ॥ इस असती वपुष्टमारानीको हमारे घरसे निकाल दो जिसने धूरि भरे दोनों चरण मेरे मस्तकपर प्राप्त किये थे ॥२१॥ मेरी शूरता यश और मान सब नष्ट कर दिया. मलीन हुई मालाके समान मैं इसके देखनेकी इच्छा नहीं करता ॥ २२ ॥ जो पुरुष दूसरेकी मर्दन की हुई भार्याको फिर रख लेता है न वह स्वादु भोजन

विषये मे न वस्तव्यं गच्छध्वं सह बान्धवैः ॥ इत्युक्तास्ततयजुर्विप्रास्तं नृपं जातमन्यवः ॥१९॥ अमर्षादन्वशासच्च पत्नीशालागताः स्त्रियः ॥ राजा परमधर्मज्ञस्तामसो जनमेजयः ॥२०॥ असतीं वपुष्टमामेतां निर्यातयत मे गृहात् ॥ यया मे चरणौ मूर्ध्नि पतितौ रेणुगुण्ठितौ ॥ २१ ॥ शौण्डीर्यं मे मया भग्नं यशो मानश्च दूषितः ॥ न चैनां द्रष्टुमिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम् ॥२२॥ न स्वादु सोऽश्नाति नरः सुखं स्वपिति वा रहः ॥ अन्वास्ते यः प्रियां भार्यां परेण मृदितामिह ॥ २३ ॥ पुनर्नैवोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा ॥ एवमुच्चैः प्रभाषन्तं क्रुद्धं पारीक्षितं नृपम् ॥ गन्धर्वराजः प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः ॥२४॥ विश्वावसुरुवाच ॥ त्रिय-ज्ञशतयज्वानं वासवस्त्वां न मृष्यते ॥ अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा ॥२५॥ रम्भानामाप्सरा देवी काशिराजसुता मता॥ सैषा योषिद्वरा राजन् रत्नभूतानुभूयताम् ॥ २६ ॥ यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम् ॥ यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपमः ॥ २७ ॥

कर सकता है न एकान्तमें सुखसे सो सकता है॥२३॥जैसे कुत्तेकी छुई हुई हवि फिर नहीं खाई जाती है. ऐसे दूसरेकी भोगी स्त्री कामकी नहीं. उस प्रकार क्रोधसे परुष बात कहते हुए जन्मेजयको विश्वावसु गन्धर्वराज इस प्रकारसे कहने लगा ॥ २४ ॥ विश्वावसु बोले; हे राजन् ! तीन सौ यज्ञोंके करनेवाले तुमको इन्द्र सहन नहीं कर सकता है इस कारण उसने वपुष्टमारूपसे अप्सराको तुम्हारी पत्नी बना दिया॥२५॥यह रम्भा नाम अप्सरा काशिराजकी पुत्री हुई है. हे राजन् ! यह रत्नभूत स्त्रियोंमें श्रेष्ठ भोगनेके योग्य है ॥२६॥ यज्ञमें छिद्र देखकर इन्द्रने प्रवेश किया. हे कुरु-

श्रेष्ठ ! तू यज्ञका करनेवाला ऋद्धिमें इन्द्रके समान है ॥२७॥ हे राजन् ! तुम्हारे यज्ञफलसे तिरस्कार होनेके कारण इन्द्र तुमसे डरता है. हे प्रभो ! इस कारण इन्द्रने तुम्हारा यज्ञ आवर्तित किया ॥ २८ ॥ यह यज्ञमें विघ्न करनेवाले इन्द्रने मायाही प्रवृत्त करी है. घोडेको मृतक देख यज्ञमें विघ्न करनेको प्रवृत्त हुआ॥२९॥जिसे वपुष्टमा मानते हो. इन्द्रने उस रंभासेही रति की है और तीन सौ यज्ञ करानेवाले तुम्हारे गुरु शापित करा दिये हैं ॥ ३० ॥ तुम और ब्राह्मण बलसे इन्द्रकी समानतासे भ्रष्ट हुए हैं तुमसे और दुर्धर्ष तीन सौ यज्ञके करानेवालोंसे ॥३१॥ इन्द्र सदा डरता

बिभेत्यभिभवाच्छक्रस्तव क्रतुफलैर्नृप॥ तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो ॥२८॥ मायैषा वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता॥ क्रतोर्विवरमासाद्य संज्ञप्तं दृश्य वाजिनम् ॥२९॥ रतमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे यां वपुष्टमाम् ॥ अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३०॥ भ्रंशितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह ॥ त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३१॥ बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः ॥ एकेन वै तदुभयं तीर्णं शक्रेण मायया ॥३२॥ स एष स महातेजा विजिगीषुः पुरंदरः ॥कथमन्यैरनाचीर्णं नप्तुर्दारानतिक्रमेत् ॥३३॥ विश्वावसुरुवाच ॥ यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः॥ यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने ॥ तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥३४॥ मा वासवं मा च गुरुमात्मानं मा वपुष्टमाम् ॥ गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः ॥३५॥ ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः ॥ आनुकूल्येन देवस्य वर्तितव्यं सुखार्थिना ॥ ३६ ॥

है. एकही मायासे इन्द्रने वे दोनों कार्य पूर्ण किये ॥ ३२ ॥ नहीं तो यह महातेजस्वी जयशील राजा इन्द्र दूसरे साधारणोंके न करने योग्य कर्म पौत्रकी भार्याको कैसे भोग कर सकता है ॥ ३३ ॥ विश्वावसुने कहा जिस प्रकार परम बुद्धि परम धर्म परम दम परमैश्वर्य और परमकीर्ति इन्द्रमें विद्यमान है इसी प्रकार तीन सौ यज्ञ करनेवाले तुममें यह सब वस्तु विद्यमान हैं॥३४॥इन्द्र गुरु अपनेको और वपुष्टमाको दोष मत दो कालकी गति किसीसे नहीं जानी जाती ॥ ३५ ॥ अपने ऐश्वर्यमें प्राप्त होकर इन्द्रने तुमको क्रोधित किया है सुखार्थीको दैवके अनुकूल वर्तना

चाहिये ॥३६॥ जिस प्रकार नदीके प्रवाहमें प्रतिकूलतासे तरना बडा कठिन है इसी प्रकार कालकी गति है. इस पापरहित स्त्रीरत्नको आनंदसे भोगो ॥ ३७ ॥ अपापा स्त्रीके त्यागसे वे शाप देतीं हैं फिर जिसमें अदुष्ट और विशेष कर दिव्य स्त्री त्यागके योग्य नहीं है॥३८॥सूर्यकी प्रभा, अग्निकी शिखा, होताकी वेदी और आहुति स्त्री है स्त्रीकी इच्छाके विना बलात्कारसे भोगी स्त्री दूषित नहीं होती॥३९॥विद्वानोंको स्त्रीका ग्रहण सत्कार और पूजन सदा करना चाहिये. शीलवान् स्त्रियोंको नमस्कार और लक्ष्मीक समान पूजन करना चाहिये॥४०॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु

दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्रोतइवाम्भसः ॥ स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापां विगतज्वरः ॥ ३७ ॥ अपापास्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः ॥ अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन् दिव्यास्तु सविशेषतः ॥३८॥ भानोः प्रभा शिखा वह्नेर्वेदी होत्रे तथाहुतिः ॥ परामृष्टाप्य-संसक्ता नोपदुष्यन्ति योषितः ॥३९॥ ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः ॥ शीलवत्यो नमस्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः ॥४०॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंश भविष्यपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ सौतिरुवाच ॥ एवं स विश्वावसुना-नुनीतः प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः ॥ चकार मिथ्या व्यातिशङ्कितात्मा शान्तिं परां मानवधर्मदृष्टाम् ॥ १ ॥ श्रममभिविनिवर्त-मानसं सः समभिलषज्जनमेजयो यशः स्वम् ॥ विषयमनुशशास धर्मबुद्धिर्मुदितमना रमयन्वपुष्टमां ताम् ॥२॥ नहि विरमति विप्रपूजनान्न च विनिवर्तति यज्ञदानशीलात् ॥ न विषयपरिरक्षणाच्च्युतोऽभून्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ॥३॥ विधिविहि-तमशक्यमन्यथा हि यदृषिरचिन्त्यतया पुराब्रवीत्सः ॥ इति स नृपतिरात्मवांस्तदासौ तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः ॥ ४ ॥

हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सौति बोले; इस प्रकार जब उस राजाको विश्वावसुने समझाया तब वह वपुष्टमाके प्रति शान्त हुआ और मानवधर्मसे उसने मिथ्या शंकाको त्याग शांति ग्रहण की ॥ १ ॥ मनसे श्रम दूर कर वह जन्मेजय अपने यशकी अभिलाषा करता हुआ धर्मबुद्धिसे देशकी पालना करता हुआ प्रसन्न हो वपुष्टमाके साथ रमने लगा ॥२॥ ब्राह्मणोंकी पूजा और यज्ञ दान शीलसे कभी विरामको प्राप्त न होता देशरक्षासे कभी आलस्ययुक्त न हुआ और न कभी वपुष्टमाकी निन्दा की ॥३॥ जो प्रारब्धमें है उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता जो कि

॥ ११ ॥

अचिन्त्यतासे ऋषिनेउससे कहा था. इस प्रकार वह ज्ञानी राजा ऋषिकी कही वाणीको स्मरण कर क्रोधरहित हुआ ॥ ४ ॥ यहां महात्मा ऋषिका महाकाव्य पाठ करनेसे मनुष्य पूज्यतम हो जाता है वह दीर्घ आयुको प्राप्त हो केशवसे सर्वज्ञताके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ यह इन्द्रके पाप दूर करनेवाले इतिहासको जो मनुष्य पढते हैं, उनके सब पाप दूर हो जाते हैं और संपूर्ण कामनाओंको प्राप्त हो अरोगी शरीर होनेसे बहुत कालतक प्रसन्न रहता है ॥६॥ जैसे पुष्पके उपरान्त फल और उसके उपरान्त बीज और बीजसे फिर वृक्ष होते हैं इसी प्रकार महर्षियोंकी प्रगट की वाणी

इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः पठन्नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः ॥ प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ॥ ८ ॥ शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं पठन्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः ॥ तथैव कामान्विविधान्समश्नुते ह्यवाप्तकामश्च चिराय नन्दति ॥६॥ यथा हि पुष्पप्रभवं फलं द्रुमाः फलात्प्रजायन्ति पुनश्च पादपाः ॥ तथा महर्षिप्रभवा इमा गिरः प्रवर्द्धयन्ते तमृषिं प्रवर्द्धिताः ॥ ७ ॥ पुत्रानपुत्रो लभते सुवर्चसश्च्युतः पुनर्विन्दति चात्मनः स्थितिम् ॥ व्याधिं न चाप्नोति चिरं स बन्धनं क्रियां च पुण्यां लभते गुणान्वितः ॥ ८ ॥ पतिमभिलभते च सत्सु कन्या श्रवणमुपेत्य शुभा मुनेस्तु वाचः ॥ जनयति च सुतान्गुणैरुपेतान्स्व-जनहिते द्विषतां प्रमर्दनं च ॥ ९ ॥ विजयति वसुधां च राजवृत्तिर्धनमतुलं लभते द्विषज्जयं च ॥ विपुलमपि धनं लभेच्च वैश्यः सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिः ॥ १० ॥

दूसरोंको वृद्धित करती हैं॥७॥पुत्र पौत्र कान्तिकी प्राप्ति तथा आत्माकी स्थितिभी प्राप्त होती है तथा वह पुरुष व्याधि और बन्धनको प्राप्त नहीं होता और गुणयुक्त हो पवित्र क्रियाको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ कन्या श्रेष्ठपतिको प्राप्त होती है. जो यह मुनिकी सुवाणी कर्णगोचर करता है, वह गुणयुक्त श्रेष्ठ सन्तानोंको प्राप्त होकर सुजनोंका हित और शत्रुओंका नाश करता है ॥ ९ ॥ राजवृत्तिमान् पृथ्वीजय करता है तथा धन धर्म अधिक प्राप्त करता है अतुल धन और शत्रुओंसे जय होता है. वैश्य बहुत धन प्राप्त करता और इसके सुननेसे शूद्रजाति सुगतिको प्राप्त होती

है ॥ १० ॥ इस महात्माओंके चरित्रसे पूर्ण पुराणके सुननेसे नैष्ठिकी बुद्धि प्राप्त होती ह वह सब दुःख छोड़ संगरहित हो वीतराग हो पृथ्वीमें विचरता है ॥ ११ ॥ यह आख्यान आपसे वर्णन किया है. ब्राह्मणमंडलमें यह स्मरण करनेके योग्य है. जो स्थिरता धीरतासे इसे स्मरण करता है वह सुखपूर्वक इस लोकमें विचरता है ॥ १२ ॥ इस प्रकार यह महात्माओंके चरित्र ऋषिनिर्मित अद्भुत वीरताके कर्मसे युक्त हैं यह समास और विस्तारसे वर्णन किये अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥१३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषा० टी० भविष्यान्तर्ग्रन्थार्थ-प्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ जन्मेजय बोले; जिनकी नाभिमें जगत्का प्रपंचरूप कमल है उनका सृष्टि आदिके रचनेका प्रभाव कहो. जो

पुराणमेतच्चरितं महात्मनामधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ॥ विहाय दुःखानि विमुक्तसङ्गः स वीतरागो विचरेद्वसुंधराम् ॥११॥
इत्येतदाख्यानमुदाहृतं वै प्रतिस्मरन्तो द्विजमण्डलेषु ॥ स्थैर्येण धैर्येण पुनः स्मरन्तः सुखं भवन्तोऽनुचरन्तु लोकम् ॥१२॥
इति चरितमिदं महात्मनामृषिकृतमद्भुतवीर्यकर्मणाम् ॥ कथितमिदं हि समासविस्तरैः किमपरमिच्छसि किं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥
इति श्रीम०खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भविष्यान्तर्ग्रन्थार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥जनमेजय उवाच ॥ प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ॥ पुष्करे वै यथोद्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥१॥ एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदांपते ॥ शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरभिजायते ॥२॥ कियन्तं चैव कालं वै शयिता पुरुषोत्तमः ॥ किमर्थं शयते कालं तस्य कालस्य संभवः ॥३॥

महद्भूत अनन्तपार एक रसरूप सागरमें शयन करते हैं. जब कि सब चराचर नष्ट हो गया था उस समय केवल शुद्ध ब्रह्म वर्तमान थे. निर्वचन होनेसे ही सोना कहा है अर्थात् कैवल्यसमाधिमें लीयमान मायायुक्तका प्रभाव कहिये और ब्रह्माण्डमें देवता और ऋषि किस प्रकारसे उत्पन्न हुए हैं पुष्कररूपी अम्बरमें अर्थात् खम्ब्रह्मरूपी अमृत जो उस महानमें वर्तमान है उसमें देवऋषि इन्द्रिय प्राण सूत्रात्मा किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ हे सब योग और योगज्ञाताओंके पति ! यह आप मुझसे कहिये.उनकी कीर्ति सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ कितने कालतक वह पुरुषोत्तम शयन करते हैं किस निमित्त वह शयन करता है जिससे कालकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

वह सुराधिप कितने समयमें जागते हैं और वह भगवान् उठकर जगत्को किस प्रकार रचते हैं ॥४॥ हे तात ! हे मुने ! पूर्वकालमें कौन प्रजापति हुए हैं और सनातन भगवान्ने किस प्रकार विचित्र जगत्की रचना की ॥५॥ जब स्थावर जंगमके नष्ट होनेसे एकार्णव हो गया. जब देवता असुर गण उरग राक्षस नष्ट हो गये ॥६॥ अनल अनिल आकाश महीतलके नष्ट होनेमें महाभूतके विपर्यय होनेसे पंच महाभूताके गह्वरीभूत होनेमें॥७॥ हे मुने ! वह प्रभु महाभूतपति महातेजस्वी महाविस्तारवाले सुरगुरु किस प्रकारकी विधि धारण कर स्थित होते हैं ॥८॥ हे ब्रह्मन् ! यह वार्ता आप

कियता चैव कालेन प्रबुद्ध्यति सुराधिपः ॥ कथमुत्थाय भगवानसृजन्निखिलं जगत् ॥ ४ ॥ के प्रजापतयस्तात आसन्पूर्वं महामुने ॥ कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनः ॥५॥ एवमेकार्णवे लोके नष्टे स्थावरजंगमे ॥ नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे ॥ ६ ॥ नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले ॥ केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥ ७ ॥ प्रभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाततिः ॥ आस्ते सुरगुरुश्रेष्ठो विधिमाधाय कां मुने ॥ ८ ॥ तन्मे त्वमुपपन्नाय ब्रह्मन्नेतदसंशयम् ॥ वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम् ॥ ९ ॥ प्रादुर्भावं पुरस्कृत्य भूतं भव्यं महात्मनः ॥ श्रद्धानामुपविष्टानां भगवन्वक्तुमर्हसि ॥१०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नारायणयशोज्ञाने या भवेद्भवतः स्पृहा ॥ त्वद्वंशानघपूतस्य कार्यं कुरुकुलर्षभ ॥११॥ शृणुष्वादिपुराणेभ्यो देवताभ्यो यथाश्रुति ॥ ब्राह्मणानां च वदतां श्रुतोऽस्माभिर्महात्मनाम् ॥ १२ ॥ तथा च तपसा दृष्टो बृहस्पतिसमद्युतिः ॥ पाराशर्यस्ततः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

हमसे वर्णन कीजिये. हे धर्मिष्ठ ! नारायणात्मक यश आप हमसे वर्णन कीजिये॥९॥उन महात्मा भूत भविष्य वर्तमानात्मक प्रादुर्भाव हम श्रद्धावालोंके निमित्त आप वर्णन कीजिये॥१०॥वैशंपायन बोले; जो तुम्हारी इच्छा नारायणके यशके जाननेमें है सो आपके पवित्र वंशके योग्यही है. वही तुम पवित्र कार्य करते हो ॥ ११ ॥ जिस प्रकार आदिपुराणोंमें देवताओंके मुखसे कहते हुए तथा महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने सुना है सो कहता हूं सुनो ॥१२॥ तथा तपसे जो मैंने देखा है और बृहस्पतिके समान कांतिवाले पाराशरसे उत्पन्न श्रीमान् हमारे गुरु व्यासजीने जो कहा है ॥१३॥

वह बुद्धि और सुननेके अनुसार मैं तुमसे कहता हूं. क्योंकि मंत्रद्रष्टा ऋषिके सम्पूर्ण अर्थ जाननेको मैं समर्थ नहीं हूं॥१४॥शुद्ध सच्चिदानंद परमात्माको जो नारायण कहे जाते हैं कौनजान सकता है. जिसको तत्त्वसे विश्वात्मा ब्रह्माभी नहीं जान सक्के ॥१५॥ जो मैंने विश्वेदेवता और सब ऋषियोंका रहस्य सुना है वह उन तत्त्ववादियोंका संवाद ॥ १६ ॥ जो अध्यात्मवादियोंके विचारने योग्य, कार्मियोंका कारणरूप जो सब देवोंमें सद्रूपसे स्थित है, महाभाग्य ज्ञानरूप जिसके आनंदसे सब प्राणी जीते हैं॥१७॥जो भूतोंमें व्याप्त जो ब्रह्मर्षियोंका परम उपासनीय, जो सत्यस्वरूप, जिसको

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथा प्रज्ञं यथाश्रुतम् ॥ न विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण भारत ॥१४॥ कः समुत्सहते ज्ञातु परं नारायणात्मकम् ॥ विश्वात्मनो यं ब्रह्मापि न वेदयति तत्त्वतः ॥ १५ ॥ श्रुतं मे विश्वदेवानां यद्रहस्यं महर्षिणाम् ॥ तदिदं सर्वदेवानां तत्त्वतस्तत्त्ववादिनाम् ॥ १६ ॥ तदध्यात्मविदां चिन्त्यं कारणं चैव कर्मिणाम् ॥ अधिदैवं च यद्दैवं तद्दैवमिति संज्ञितम् ॥ १७ ॥ यद्भूतमधिभूतं च यत्परं च महर्षिणाम् ॥ यत्सत्यं देवदृष्टं च यत्तद्वेदविदो विदुः ॥१८॥ यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ॥ प्रधानं पुरुषः शास्ता एकस्तदभिशब्द्यते ॥ १९ ॥ कालः कालं स्वपयतिं द्रष्टा स्वाधीन एव च ॥ प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षय एव च ॥ २० ॥ उच्यते विविधैर्भावैस्तस्यैवानघ तत्परैः ॥ स एव भगवान्सर्वं करोति विकरोति च ॥२१॥ योऽस्माकान्कारयते कर्म तेनास्म व्याकुलीकृताः ॥ यजामहे तमेवेशं तमेवेच्छाम निर्वृताः ॥ २२ ॥

देवताही देखते हैं, जिसको वेदवादी तत्वरूप कहते हैं ॥१८॥ जो कर्ता कारक बुद्धिमान् और क्षेत्रज्ञरूप है; प्रधान पुरुष शास्ता वह एकही शब्दोंसे उच्चारण किया जाता है ॥१९॥ वही कालरूप कालको शयन करानेवाला द्रष्टा स्वाधीन पांच विधि प्राण ध्रुव अक्षय ॥२०॥ आदि अनेक भावोंसे उच्चारण किया जाता है.हे पापरहित ! वही अनेक भावोंसे कहा जाता है वही भगवान् सब सृष्टि और संहार करता है ॥ २१ ॥ जो हमसे अनेक कर्म कराता है जिससे हम व्याकुल हो रहे हैं उसी देवका हम यजन करते हैं. उससेही शान्तिकी इच्छा करते हैं ॥ २२ ॥

जो वक्ता और वक्तव्य है वह मैं सब तुमसे कहता हूं. इसको जो तुम सुनते हो तथा कल्याण वस्तु तथा और जो कुछ कहा जाता है ॥ २३ ॥ जो कथा और गह्वर श्रुति वर्तमान है विश्व विश्वपति देवता यह सब नारायणात्मक है॥ २४॥ जो सत्यअसत्य आदि अक्षर भूतभविष्य वर्तमान चराचर अव्यय त्रिलोकीमें है वह सब यह पुरुषश्रेष्ठही है॥ २५॥ इति श्रीमन्महाभारते खिले हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥ वैशम्पायन बोले; हे जन्मेजय ! चार सहस्र दिव्य वर्षोंका सतयुग होता है और आठ सौ वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १ ॥ उस समय धर्म चार

योवक्ता यश्च वक्तव्यो यश्चाहं तद्ब्रवीमि वः ॥ इदं शृणुत यच्छ्रेयो यच्चान्यत्परिजल्पथ ॥२३॥ याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ गह्वराः ॥ विश्वं विश्वपतिर्देवाः सर्वं नारायणात्मकम् ॥ २४ ॥ यत्सत्यं यदनृतमादिमक्षरं वै यद्भूतं भवति मिथश्च यद्भविष्यम् ॥ यत्किंचिच्चरमचराव्ययं त्रिलोके तत्सर्वं पुरुषवरः प्रभुर्वरिष्ठः ॥२५॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्कर-प्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छति संध्या द्विगुणा जनमेजय ॥१॥ तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः ॥ स्वधर्मनिरताः सन्तो यजन्ते चैव मानवाः ॥२॥ स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ॥ कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥३॥ सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते ॥ सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत् ॥ ४ ॥ एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत ॥ प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ॥ ५ ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ॥ तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ ६ ॥

चरणसे युक्त और अधर्म एकपाद होता है. मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो यजन करते हैं ॥ २ ॥ ब्राह्मण धर्म और राजा राजवृत्तिमें स्थित रहते हैं. वैश्य खेती और शूद्र शुश्रूषामें रत रहते हैं ॥३॥ सदा सत्य तप और धर्म बढता है जो सत्पुरुषोंका धर्म है वही किया जाता और आख्यान किया जाता है ॥ ४ ॥ हे भारत ! सतयुगमें यह सबका कृत्य होता है धर्मबुद्धि प्राणी तथा नीचयोनिवालेभी धर्म करते हैं ॥ ५ ॥ त्रेतायुग देवताओंके

तीन सहस्र वर्षोंका होता है और ६०० वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ ६ ॥ धर्मके तीन और अधर्मके दो चरण होते हैं. सतमें सत्य और सतगुण यह दोनों संपूर्णरूपसे वर्तते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु त्रेतामें इनमें कुछ विकार होता है कारण कि चारों वर्णोंमें धर्मकी फलभोगकी इच्छासे चंचलता होती है इससे दुर्बलता धर्ममें आती है ॥ ८ ॥ यह देवनिर्मित त्रेतायुगकी विधि है. अब द्वापरकी चेष्टाको सुनो ॥ ९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! दो सहस्र वर्षका द्वापर युग होता है और ४०० वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १० ॥ उसमें ब्राह्मण अर्थमें तत्पर ज्ञानी और

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ॥ तत्र सत्यं च सत्त्वं च कृते सर्वं प्रवर्तते ॥ ७ ॥ त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः ॥ चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रिताः ॥८॥ एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः ॥ द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९॥ द्वापरं द्वे सहस्रं तु वर्षाणां कुरुसत्तम ॥ तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥१०॥ तत्राप्यर्थपरा विप्रा ज्ञानिनो रजसावृताः ॥ शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव ॥११॥ द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ॥ विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः ॥१२॥ ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथास्तिक्यं विशीर्यते ॥ व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥१३॥ तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते तथा ॥ संध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्॥१४॥ तत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः ॥ कामनिष्ठास्तमश्छन्नाः जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १५ ॥

रजोगुणी होते हैं तथा शठताको धारण करनेवाले तुच्छ जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ धर्मके दो चरण और अधर्मके तीन चरण स्थित होते हैं. सतयुगकी धर्ममर्यादा शनैः २ विपरीत हो जाती है ॥१२॥ ब्राह्मण्य भाव नष्ट होकर आस्तिकता जहां तहां छिन्न होने लगती है द्वापरयुगमें व्रत और उपवास त्याग दिये जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त दिव्य एक सहस्र वर्षका कलि और दो सौ वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १४ ॥ यह क्रूर युग है. इसमें अधर्मके चार चरण और धर्म एक चरणमें स्थित रहता है. इसमें मनुष्य कामनिष्ठावाले अंधकारसे छन्न उत्पन्न होते हैं ॥१५॥

न कोई व्रती न साधु न सत्य वचन कहनेवाला होता है. कोई मनुष्य आस्तिक और ब्रह्मवक्ता नहीं होता ॥ १६ ॥ अहंकारयुक्त बांधवोंके स्नेहरहित होते हैं. ब्राह्मण शूद्राचारवाले और शूद्र श्रेष्ठ आचार करनेवाले होते हैं ॥ १७ ॥ आश्रम और वर्णधर्मोंके दूषण करनेवाले वर्णसंकरकर्ता कलियुगी पुरुष अगम्या स्त्रियोंमें रमण करनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ इस कारण द्वादश सहस्र वर्षोंका एक युग होता है और ऐसे इकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है ॥ १९ ॥ हे जन्मेजय ! जैसे यहां वस्तुका प्रादुर्भाव और क्षय देखा जाता है वैसेही अन्य लोकमेंभी

नैवोपवासकृत्कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक् ॥ आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥ १६ ॥ अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबान्धवाः ॥ विप्राः शूद्रसमाचाराः शूद्रास्त्वाचारलक्षणाः ॥ १७ ॥ दूषकास्त्वाश्रमाणां च वर्णानां चैव संकराः ॥ अगम्येष्वभिरंस्यन्ते वर्तन्त्येवं कलौ युगे ॥ १८ ॥ एवं द्वादशसाहस्रं तदेकं युगमुच्यते ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१९॥ त्रय्यां चैव न सन्देहो युगान्ते जनमेजय ॥ दिव्यं द्वादशसाहस्रं युगं तु कवयो विदुः ॥ एतत्सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥ २० ॥ ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकः संहारबुद्धिमान् ॥ २१ ॥ देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते ॥ दैत्यानां मानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥२२॥ देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजर्षिणामपि ॥ किन्नराणामप्सरसां भुजङ्गानां तथैव च ॥ २३ ॥ पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत ॥ तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम् ॥ २४ ॥ महाभूतपतिर्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत् ॥ जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥ २५ ॥

क्षय देखा जाता है इसमें संदेह नहीं. दिव्य बारह सहस्र वर्षका एक युग होता है. ऐसे सहस्र युगोंका एक ब्रह्माका दिन होता है ॥ २० ॥ उस दिनके समाप्त होनेमें सम्पूर्ण प्राणधारियोंकी निर्वृत्ति होती है तब लोकके शरीरकी निर्वृत्ति देखकर लोकसंहारकी इच्छासे बुद्धिमान् ॥२१॥ सब देवता और ब्राह्मण तथा दैत्य मनुष्य यक्ष गंधर्व राक्षस ॥२२॥ देवर्षि ब्रह्मर्षि राजर्षि किन्नर अप्सरा भुजंग ॥ २३ ॥ पर्वत नदी पशु तिर्यक्योनिमें प्राप्त हुए जीव मृगपक्षियोंको हे भारत !॥२४॥महाभूतपति देव पंच भूत और महाभूतके करनेवाले जगत् संहारके निमित्त महाबीभत्स व्यवहा-

रको करते हैं ॥२५॥ वही सूर्यरूप होकर नेत्रोंको ग्रहण करते हैं. वायुरूपसे सब प्राणियोंको संहार करते हैं. अग्नि होकर सब लोकोंको जलाते हैं. मेघरूप होकर फिर वर्षा करते हैं ॥२६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावेप्रश्नोत्तरं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ वैशंपायन बोले;योगी नारायण शुद्ध चिन्मात्र हो अग्निके समान होते हुए महत् अहंकार पंच तन्मात्रा शरीरसे प्रदीप्त होकर तीक्ष्ण ज्वालारूप किरणोंसे उस रूपादिरूपसागरको सुखाते हुए ॥१॥ सब नदी कूपादिके सहित सागरोंका पान करके अपनी रश्मियोंसे सम्पूर्ण पर्वतोंकाभी जलपान करके॥२॥

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः संहरन् प्राणिजातम् ॥ भूत्वा वह्निर्दह्यते सर्वलोकान्मेघोभूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत् ॥२६॥ इति श्रीम० ह० भवि० पुष्करप्रादुर्भावे प्रश्नोत्तरं नामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भूत्वा नारायणो योगी सप्त-मूर्तिर्विभावसुः ॥ गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥ १ ॥ पीत्वार्णवांश्च सर्वान्स नदीकूपांश्च सर्वशः ॥ पर्वतानां च सलिलं सर्वं पीत्वा च रश्मिभिः ॥ २ ॥ भित्त्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम् ॥ रसातलजलं कृत्स्नं पिबते रसमु-त्तमम् ॥ ३ ॥ अप्सु सृजन्क्लेदमन्यद्ददाति प्राणिनां ध्रुवम् ॥ तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ वायुश्च बलवा-न्भूत्वा स विधूयाखिलं जगत् ॥ प्राणोदयं सुराणां च वायुना कुरुते हरिः ॥ ततो देवगणानां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ ५ ॥ ये चेन्द्रियगणाः सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवाः ॥ पूयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीमाश्रिता गुणाः ॥ ६ ॥ जिह्वा रसश्च क्लेदश्च संश्रिताः सलिलं गुणाः ॥ रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः ॥ ७ ॥

सहस्रशः पृथ्वीके खण्डकर रसातलमें पहुँचाकर सब रससहित पातालका जलपान कर॥३॥जलके क्लेद तथा अन्य वस्तु जो प्राणियोंके निमित्त रची थी वह सब वस्तु कमलनयन पुरुषोत्तम धारण करते हैं ॥ ४ ॥ वह वायु जलवान् होकर सब जगत्को कंपित करके वायुद्वारा देवताओंके प्राणो-दयको करते हैं, तब देवगण और सम्पूर्ण देहधारियोंके ॥ ५ ॥ जो इन्द्रियगण हैं और जो विषय उनसे उद्भव हैं गंध घ्राणादि जो कार्यभूत गुण पृथ्वीमें आश्रित हैं ॥६॥ जिह्वा रस क्लेद जो जलमें स्थित हैं और रूप चक्षु विपाक जो गुण ज्योतिमें स्थित हैं ॥ ७ ॥ स्पर्श प्राण चेष्टा यह गुण

पवनमें स्थित हैं. परमेष्ठी वरेण्य यह सब इन्द्रियोंके पति नारायणमें स्थित हैं ॥८॥ तब उनको प्राप्त होकर भगवान् अन्तर्यामिरूपसे सूक्ष्म किरणोंसे वायुसे आकृष्यमाण हुए परस्परएकीभावको प्राप्तहोते हैं अर्थात् उत्तमोंकी गतिको कहकर यह मध्यमयोगियोंकी वायुनिरोध गति कहते हैं.वह बलवान् योगी मूलाधारादि सब चक्रोंके भेदनमें समर्थ होकर सम्पूर्ण जगत् पादादि जानुपर्यन्त भूस्थान आदिसे तंत्रोक्त दिशाकी भावना करशरीरमात्रको विधुवन नीचे नीचे लय करनेके प्रकारसे निरसन कर सहस्र भ्रमध्यमें वायुद्वारा योगी गमन करता है॥९॥देवगणोंके संहर्षसे उत्पन्न हुई अग्नि सौ प्रकारसे प्रज्वलित होती हुई सब लोकोंको जलाती प्रवृत्त होती है ॥ १० ॥ पर्वत सहित वृक्षगुल्म लता वल्ली तृण दिव्य विमान अनेक पुर ॥ ११ ॥ पुण्य

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः ॥ परमेष्ठिनं वरेण्यं च हृषीकेशं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ ततो भगवता तत्र रश्मिभिः परिवारिताः वायुनाकृष्यमाणाश्च रूपान्योऽन्यसमाश्रयात् ॥ ९ ॥ तेषां संघर्षजोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् ॥ अदहन्निखिलाँल्लोकानुग्रः संवर्तकोऽनलः ॥ १० ॥ सपर्वतांस्तरून्गुल्माँल्लतावल्लीस्तृणानि च ॥ विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ॥११॥ आश्रमांश्च तथा पुण्यान्दिव्यान्यायतनानि च ॥ यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥१२॥ भस्मीभूतांस्ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः ॥ भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा ॥१३॥ सहस्रदृङ् महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघनः ॥ दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥१४॥ ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ॥ शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥ १५ ॥

आश्रम दिव्य स्थान तथा अन्य स्थान (दहरादि)सबको भस्म करती है॥१२॥जब सब लोक भस्मीभूतहो जाते हैं तब लोकगुरु नारायण फिर जलसे उस अग्निको बुझाते हैं (योगी समाधिको प्राप्त हो जलयुक्त अविद्यासंस्कारसे जागृत हो देहपातपर्यन्त संसारमें स्थिति करता है)॥१३॥महातेजस्वी वही कृष्ण घनरूप सहस्रदृष्टि होकर दिव्य जलकीहविसे पृथ्वीको तृप्त करते हैं.(योगी विषयभेदमें सहस्र दृष्टिवाला होकर परंज्योतिरूपका संहर्ता होकर चन्द्रमंडलसे निकले जलसे शरीरको प्राप्त होता है अर्थात् पहले शरीरमें चेतना आती है)॥१४॥तब क्षीरके समान स्वादिष्ट उत्तम जलसे जोकि शिव और निर्माणरूप है पृथ्वीउससे परमतृप्त होती है.(योगीका शरीर स्वच्छनिर्मल होनेसे परमशान्तिको प्राप्त होता है जरामृत्युरहित होता है)॥१५॥

तब पर्वत आदिसहित यह पृथ्वी चारों ओर जलसे व्याप्त हो सब प्राणिरहित जलरूप हो जाती है (योगीकी दृष्टिमें बाह्यपदार्थभी ब्रह्मरूप दीखते हैं)॥ १६ ॥ सम्पूर्ण महाभूत उस महापराक्रमी परमात्मामें प्रविष्ट हो जाते हैं जब सूर्य पवन नष्ट होकर आकाश सूक्ष्मरूप जनरहित हो जाता है (योगीको सूक्ष्म शुद्धवस्तुही दृष्टिगोचर होती है पवन आदित्य आदि बाह्य पदार्थ दृष्ट नहीं आते)॥ १७ ॥ सबको शोष और पान करके एक सनातन देव निवास करते हैं यह बुद्धिमान् उस पुराणरूपमें स्थित होते हैं (सब वाणीसे परे योगी ब्रह्ममें स्थित होता है)॥ १८ ॥ वह योगी योगको प्राप्त हो एकार्णव जलमें स्थित होते हैं उस एकार्णव जलमें दश सहस्रों वर्ष स्थित होकर कोई व्यक्त अव्यक्त इनको जाननेको

ते नगा जलसंछन्नाः पयसः सर्वतोधराः ॥ एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिताः ॥१६॥ महाभूतान्यपि च तं प्रविष्टान्यमितौज-सम् ॥ नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते ॥१७॥ संशोषयित्वा पीत्वा च वसत्येकः सनातनः ॥ पौराणां रूपमास्थाय किम-प्यमितबुद्धिमान् ॥ १८ ॥ एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागतः अयुतानां सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि ॥ न चैनं कश्चि-दव्यक्त व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥ १९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ एकार्णवविधिः कोऽयं यश्चैव परिकीर्तितः क एष पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान् ॥२०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतावन्तमसौ कालमकार्णवविधिं प्रति ॥ करिष्यतीमं भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥ २१ ॥ न वै माता नच द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ॥ ततोऽवज्ञायते कश्चिद्दते तं देवमीश्वरम् ॥ २२ ॥

योग्य नहीं है (इसी प्रकार योगीको समाधिमें कोई कुछ नहीं जान सकता)॥ १९ ॥ जन्मेजय बोले; जो आपने एकार्णवविधि कही है यह क्या है यह पुरुष क्या है किस रूपका योग है और कौन योगवान् है अर्थात् उसका सम्बन्धी कौन है ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले; जो भगवान् इतने समयतक एकार्णवविधि करते हैं वह उस समय कोई नहीं जान सकता ॥ २१ ॥ न कोई उसका प्रमाता न दृश्य न पार्श्वमें चलनेवाला है. उस देव ईश्वरके सिवाय कुछभी विदित नहीं होता है ॥ २२ ॥

कौन योगवान् है इसपर कहते हैं. आकाश पृथ्वी पवनको प्रकाश करते प्रजापति भुवनचर सुरेश्वर पितामह श्रुतिके स्थान महामुनिको शासन करते प्रभुने शयनकी इच्छा की (इस प्रकार गुणयुक्त नारायणको योगी जीवरूप मनन करके अपने स्वरूपमें लय करता है)॥२३॥इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥९॥ वैशम्पायन बोले; इस प्रकार वह महायशस्वी एकार्णवभूतमें जलका उपसंहार कर शयन करते हैं अर्थात् वह हरि नारायण प्रभु शुद्ध चिन्मात्ररूपसे स्थित रहते हैं ॥१॥ महार्णवके समान महारजोगुणके मध्यमें रज-

नभः क्षितिं पवनमथ प्रकाशयन्प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम् ॥ पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं शशास भूः शयनमरोचयत्प्रभुः ॥२३॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाश्रुतिः ॥ प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ १ ॥ महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै ॥ विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः ॥ २ ॥ आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः ॥ त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः ॥३॥ पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम् ॥ यच्चान्यत्पुरुषाख्यं स्यात्सर्वं तत्पुरुषोत्तमः ॥४॥ ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः ॥ आत्मदेहात्पुराभूता यज्ञेभ्यः श्रूयता तद। ॥५॥ ब्रह्माणं परमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम् ॥ होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥ ६॥ ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः ॥ तन्मित्रं वरुणं सृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च ॥ ७ ॥

रहित महाबाहु जिसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं ॥ २ ॥ आत्माके प्रकाशसे तपसे संवृत हो वह प्रभु भूत भविष्य वर्तमानरूप तीन कालमें स्थित हो वह अविनाशी शयन कर गये ॥ ३ ॥ वह यज्ञपुरुष जो कि परम कहा जाता है और जो कुछभी पुरुष है वह सब पुरुषोत्तमरूप है ॥४॥ जो विप्र परमब्रह्ममें निष्ठावाले हैं रागादिशून्य ऋत्विक् है तथा तप आदिक वे अनादिसिद्ध उस पुरुषकी देहसे उत्पन्न हुए हैं उनको मुझसे सुनो ॥ ५ ॥ ब्रह्मा उद्गाता और सामगा तथा होताको प्रभुने मुखसे उत्पन्न किया और अध्वर्युको भुजासे उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवेत्ताको प्रस्तार तथा

मित्रावरुणको ब्रह्मत्वसे और प्रतिष्ठाता॥७॥तथा प्रतिहर्ता और पोता अच्छावाक् मन और नेष्टा॥८॥हाथसे आग्नीध्र सुब्रह्मण्य यज्ञियको तथा ग्रावणको उत्पन्न किया. उन्नेता यज्ञियको भुजाओंसे उत्पन्न किया अर्थात् ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु ब्राह्मणाच्छसी प्रस्तोता मैत्रावरुण प्रतिप्रस्थाता प्रतिहर्ता पोता अच्छावाक् नेष्टा आग्नीध्र सुब्रह्मण्य ग्रावस्तोता उन्नेता यह सोलह ऋत्विज हैं, यह यथाक्रमसे प्रणव तदर्थभावन सत्योक्ति प्राण जय धीतैक्ष्ण्य पूर्वस्मृति आचार अपानजय भाविदुःख चिन्ता ईशपूजा दान योगोत्साह सात्त्विक श्रद्धा वेदान्तश्रवण इन्द्रिय शौर्य योगांगोंकी ऊर्जता चिन्तन करते हैं॥ ९ ॥ इस प्रकारसे भगवान्ने सम्पूर्ण यज्ञके वक्ता ऋत्विजसंज्ञक सोलह ब्राह्मणोंको अपने अंगोंसे उत्पन्न किया है॥ १० ॥ यह यज्ञसम्मित पुरुष

उदरात्प्रतिहर्त्तारं पोतारं चैव भारत ॥ अच्छावाकमनोरूभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥८॥ पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम् ॥ ग्रावाणमथ बाहुभ्यामुन्नेतारं च यज्ञियम् ॥९॥ एवमेवैष भगवान् षोडशैतान् जगत्पतिः ॥ प्रवक्तॄन्सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥१०॥ तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंमितः ॥ वेदाश्च तन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ॥ ११ ॥ स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्तदा ॥ श्रूयते तद्यथावृत्त मार्कण्डेयो यदन्वभूत् ॥ १२ ॥ जीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः ॥ बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१३॥ इति तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरः ॥ आश्रमानपि पुण्यांश्च तीर्थान्यायतनानि च ॥ १४ ॥ देशान्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ॥ जपहोमरतः क्षान्तस्तपो घोरं समाश्रितः ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः ॥ निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानाते देवमायया ॥ १६ ॥

वेदमय हैं अंग उपनिषद्की क्रियासहित तन्मय वेद हैं ॥ ११ ॥ जिस समय वह एकार्णवमें शयन कर गये तब बडा आश्चर्य हुआ. उस समयका वृत्तान्त मार्कण्डेयने अनुभव किया है ऐसा सुना है ॥ १२॥ उन भगवान्की कुक्षिमें सर्व उपाधिरहित मुनि जीर्ण हो विचरे उनके वरदानसे उनकी बहुत सहस्र वर्षकी आयु हो गई ॥ १३ ॥ एक समय तीर्थप्रसंगसे पृथ्वीके तीर्थोंमें विचरते हुए पवित्र आश्रम और पवित्र तीर्थ ॥ १४ ॥ देश राज्य विविध पुर देखते हुए जप होममें प्रीति करनेवाले शान्त हो घोर तप करते ॥१५॥ शनैः शनैः मार्कण्डेयजी भगवान्के मुखसे निकले, निकल

कर देवमायासे उन्होंने अपनेको न जाना ॥ १६ ॥ उनके मुखसे निकलकर एकार्णव सागरमें मग्न हो गये तब मार्कण्डेयने देखा कि चारों ओर अंधकार व्याप्त हो रहा है॥१७॥तब उनको बडा भय और अपने जीवनमें संदेह उत्पन्न हुआ, तब देवके दर्शनसे प्रसन्न होकर बड़े विस्मयको प्राप्त हुए ॥१८॥ तब शंकित हो मध्यस्थमें स्थित हुए मार्कण्डेयजी विचारने लगे. यह मुझको मोह है या कोई स्वप्न प्रवृत्त हुआ है ॥१९॥ इसमें ठीकही मेरा भाव अन्य प्रकारका होगया है.इस प्रकारका अयुक्त असत्य किसी प्रकारसे सत्य हो नहीं सक्ता॥२०॥चन्द्रसूर्यके नष्ट होने पर्वत भूतलके छन्न

निष्क्रान्तस्तस्य वदनादेकार्णवमथो गतः ॥ सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयो निरीक्षते ॥१७॥ तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते ॥ देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत्परम् ॥१८॥ संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशङ्कितः॥ किंस्विद्भवेदियं चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥ १९ ॥ व्यक्तमन्यतमो भावो ह्यतेषां भविता मम ॥ नहीदृशमसंक्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति ॥ २० ॥ नष्टचन्द्रार्कपवने छन्नपर्वतभूतले ॥ कतमः स्यादयं लोक इति चिन्ताव्यवस्थितः ॥ २१ ॥ अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् ॥ तोयाढ्यमिव जीमूतं मध्ये मग्नं महार्णवे॥२२॥ तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा॥ जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ २३ ॥ स देवं प्रष्टुमायाऽपि को भवानिति विस्मयात् ॥ तथैव च शनैर्भूया मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः ॥ २४ ॥ स प्रविष्टः पुनः कुक्षौ मार्कण्डेयः सुनिश्चितः ॥ तथैव चरते भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम् ॥२५॥ स तथैव यथापूर्वं पृथिवीमटते पुनः ॥ पुण्यतीर्थानि पूतानि निरीक्षन्दिवि भूतले ॥ २६ ॥

होनेसे यह लोक किस प्रकार हो सकता है इस चिन्तासे व्याकुल हुए ॥२१॥ तब उन्होंने पर्वतके समान एक पुरुषको शयनकरते देखा. जिस प्रकार महासागरमें नील मेघ स्थित हो ॥ २२ ॥ तेजकी सम्पत्तिसे प्रकाशमान हो रहे थे कान्ति फैल रही थी गंभीरतासे जागते हुए सर्पके समान स्वांश लेते ॥ २३ ॥ देवको पूछनेको चले. आप कौन हो तब यह मुनि शनैः २ उनकी कुक्षिमें प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ कुक्षिमें प्रविष्ट हो मार्कण्डेयजी स्वप्नदर्शनके समान उसमें विचरने लगे ॥ २५ ॥ और वहां पूर्वकालके समान पृथ्वीमें विचरने लगे और स्वर्ग तथा पृथ्वीमें पवित्र

तीर्थ देखने लगे ॥ २६ ॥ बडी बडी दक्षिणाओंके यज्ञोंसे यजन करते हुए देवकी कुक्षिमें उन्होंने सैंकडों ब्राह्मणोंको देखा ॥२७॥ वे ब्राह्मणादि वर्ण सम्पूर्ण सद्वृत्तिमें स्थित थे. चारों आश्रम यथोक्त धर्मका अनुष्ठान करनेवाले थे ॥२८॥ सो सहस्र वर्षतक महामुनि मार्कण्डेयजी पृथ्वीमें विचरते हुए उस कुक्षिको सर्वथा न देख सके ॥ २९ ॥ फिर किसी समय वह उनके मुखसे निकले तब न्यग्रोधकी शाखामें सोते हुए एक बालकको देखा ॥ ३० ॥ एकार्णव जल जो कि नीहारसे व्याप्त था. अव्यक्त और सब प्राणियोंके विना लोक भयानक हो रहा था ॥ ३१ ॥ तब यह फिर

क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणैः ॥ पश्यते देवकुक्षिस्थान्यज्ञियाञ्छतशो द्विजान् ॥२७॥ सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ॥ चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टपदानुगाः ॥२८॥ वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कंडेयो महामुनिः॥ विचरन् पृथिवीं कृत्स्नां न च कुक्ष्यन्तमैक्षत ॥२९॥ ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्राद्विनिस्सृतः ॥ सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्षते ॥ ३० ॥ यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे ॥ अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥ ३१ ॥ स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ॥ बालमादित्यसंकाशं न शक्नोत्युपसर्पितुम् ॥ ३२ सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ॥ पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया ॥ ३३ ॥ अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन्मुनिः ॥ न शान्तिं लभते तत्र श्रमात्संत्रस्तविक्लवः ॥ ३४ ॥ तथैव भगवान्हंसो गतो योगेन बालताम् ॥ बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम् ॥ मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥ ३६ ॥

विस्मयको प्राप्त हो कौतूहलयुक्त होकर बालसूर्यकेसमान प्रकाशमान उनके निकट जानेको समर्थ न हुए ॥३२॥ तब वह एकान्तमें जलके निकट विचारने लगे मैंने यह पूर्व देखा है या नहीं इस प्रकार देवमायासे शंकित हुए ॥ ३३ ॥ अगाध और स्तब्धजलमें पैरते हुए महामुनि मार्कण्डेयजी श्रमसे व्याकुल हो शान्तिको किसी प्रकार प्राप्त न हुए ॥३४॥ इसी प्रकार भगवान् हंस योगमार्गसे बालअवस्थाको प्राप्त हुए, मेघके समान घोर स्वरसे पुरुषोत्तमने कहा ॥३५॥ श्रीभगवान् बोले; हे वत्स ! तुम मत डरो और हमारे समीपमें आओ. हे मार्कण्डेय मुनि ! तुम बालक हो.

हे धीर ! इस समय श्रमसे पीडित हो ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेय बोले;मेरे तपको तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर कौन बुलाता है. बहुत वर्षोंकी आयुको धर्षणा करता हुआ मेरी वय न्यून करता है ॥३७॥ यह आचार देवताओंमेंभी नहीं है. मुझको विश्वेश ब्रह्माभी दीर्घायु कह कर बोलते हैं ॥३८॥ आज कौन मेरे घोरतपको तिरस्कार कर मुझे मार्कण्डेय कहकर मृत्युके देखनेकी इच्छा करता है ॥ ३९ ॥ वैशंपायन बोले; जो मार्कण्डेय मुनिने जब क्रोधसे इस प्रकार कहा तब इनसे भगवान्‌ने फिर कहा॥४०॥श्रीभगवान् बोले;हे वत्स ! मैं तुम्हारा पिता हृषीकेश गुरु हूं

मार्कण्डेय उवाच ॥ को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन्मम ॥ बहुवर्षसहस्रायुर्द्धर्षयंश्चैव मे वयः ॥ ३७ ॥ न ह्येषु समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ॥ मां ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥३८॥ कस्तपोघोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ॥ मार्कण्डेयेति मां प्रोक्त्वा मृत्युमीक्षितुमिच्छति ॥३९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमाभाषते क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः॥अथैनं भगवान् भूयो बभाषे तत्परायणम् ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पितागुरुः ॥ आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पसे ॥ ४१ ॥ मां पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः ॥ पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रमुपाश्रितः ॥ ४२ ॥ ततस्त्वां घोरशिरसं दहनोपमतेजसम् ॥ दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥ ४३ ॥ तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भृत्यो ममात्मकः ॥ द्रष्टुमेयार्णवगतं क्रीडन्तं योगधर्मिणम् ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रसन्नवदनोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ ४५ ॥

वह आयुके देनेवाले मेरे निकट तुम क्यों नहीं आते ॥४१॥ प्रथम तुम्हारे पिता अंगिराऋषिने पुत्रकी इच्छासे बडे तीव्र तपको कर मेरी आराधना की थी ॥४२॥ तप अग्निके समान घार शिरवाले बडे तेजस्वी तुमको मैंने प्रदान किया और दीर्घ आयु प्रदान की ॥४३॥ जो मेरा भक्त नहीं है वह इस एकार्णव सागरके बीचमें क्रीडा करते हुए मुझे देखनेको समर्थ नहीं है.कारण कि योगधर्मके सिवाय इसे कोई नहीं जान सक्ता ॥४४॥ वैशंपायन बोले; तब प्रसन्न वदन विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्र हो शिरपर अंजली बांधे महातपस्वी मार्कण्डेयजी ॥ ४५ ॥

नाम गोत्र सुनकर दीर्घआयु लोकपूजित मार्कण्डेयजीने शिरसे प्रभुको नमस्कार किया ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले; हे पापरहित ! आपसे मैं इस मायाके जाननेकी इच्छा करता हूं. जो आप बालकरूप एकार्णवमें शयन करते हो ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! आप किस संज्ञासे लोकमें जाने जाते हो. आपको मैं महाभूत जानता हूं. इसमें भूत स्थित नहीं हो सक्ता ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान् बोले; मैं नारायण सब देहधारियोंका उत्पत्तिकारण हूं सब प्राणियोंका उत्पन्न करनेवाला सबका संहार करता हूं ॥ ४९ ॥ मैं इन्द्रपदमें इन्द्र ऋतुओंका वर्षरूप हूं. मैंही युगमें युगाक्ष

नामगोत्रे ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजितः ॥ अथाकरोन्नमस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम् ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इच्छेऽहं तत्त्वता मायामिमां ज्ञातुं तवानघ ॥ यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥४७॥ किं संज्ञः कश्च भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ ॥ तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह तिष्ठति ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं नारायणो ब्रह्मा संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ सर्वभूतोद्भवकरः सर्वभूतविनाशनः ॥४९॥ अहमैन्द्रे पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः ॥ अहं युगे युगाक्षश्च युगस्यावर्त्त एव च ॥५०॥ अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च ॥ भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥५१॥ अहं सहस्रशीर्षाद्यैर्यः पदैरभिसंवृतः ॥ आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः ॥ अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ॥५२॥ यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ॥ ५३ ॥ ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ॥ कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ॥ ५४ ॥ अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषां धर्मदर्शनः ॥ निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योतिः सनातनः ॥ ५५ ॥

और युगका आवर्तक हूं ॥५०॥ मैंही सम्पूर्ण जीव और सब देवतारूप हूं. सर्पोंमें शेष और पक्षियोंमें गरुड हूं ॥ ५१ ॥ मैं सहस्रशीर्षा आदि पदोंसे युक्त होकर आदित्य यज्ञपुरुष देवयज्ञमय मखस्वरूप अग्नि हव्यवाह जलपति अविनाशी हूं ॥५२॥ जो पृथ्वीमें तपसे भावितात्मावाले तथा बहुत जन्मपर्यन्त जप तप करनेवाले ब्राह्मणोंमें जो यति हैं सो मैं हूं ॥ ५३ ॥ ज्ञानवान् विश्वात्माका द्रष्टा योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सब प्राणियोंका अन्त करनेवाला सब जगत्का कालस्वरूप ॥५४॥ कर्म क्रिया जीव और सबका धर्म देखनेवाला मैं हूं. सब प्राणियोंमें क्रियारहित आत्मज्योति

सनातन मैं हूं ॥५५॥ प्रधानपुरुष देव आदि अक्षय अविनाशी मैं हूं. मैंही धर्मतपरूप सब आश्रमवासियोंका हूं॥५६॥मैंही हयशिर नामक देव महाक्षीरसागरमें स्थित हुआ ऋत सत्य परम प्रजापतिरूप मैं एकही हूं ॥ ५७ ॥ मैंही सांख्ययोग और परंपदरूप हूं. मैंही यजनके योग्य शिवस्वरूप विद्याधिप कहा जाता हूं ॥ ५८ ॥ मैं ज्योति वायु भूमि आकाश जल समुद्र नक्षत्र दशों दिशा वर्ष सोम पर्जन्य सूर्यरूप हूं॥५९॥ मैंही क्षीरसागर समुद्र वडवामुख हूं.मैंही संवर्त अग्नि होकर जलपान कर जाता हूं तथा रवि हूं ॥६०॥ मैंही पुराणपुरुष परम परायण हूं. मैंही भविष्यमें होनहा-

प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः ॥ अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥ ५६ ॥ अहं हयशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे ।। ऋतं सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥ अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परम पदम् ।। अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥ ५८ ॥ अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः ॥ अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ।। ५९ ॥ क्षीरोदः सागराश्चाहं समुद्रो वडवामुखः ॥ वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमहं रविः ॥६०॥ अहं पुराणं परमं तथैवेह परायणम् ॥ भविष्यं चैव सर्वत्र भविष्ये सर्वसंभवः ।।६१॥ यत्किंचित्पश्यसे चैव यच्छृणोषि च किंचन ॥ यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ॥ ६२ ॥ विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम ॥ युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाऽखिलं जगत् ॥ ६३ ॥ तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ शुश्रूषुर्मम धर्मेप्सुः कुक्षौ चर सुखी भव ॥ ६४ ॥ मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ॥ व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छापराजितम् ॥ ६५ ॥

रूप हूं ॥६१॥ जो कुछ देखा और सुना जाता है और जो कुछ लोकमें अनुभव किया जाता है वह सब मुझे जानो ॥६२॥ पहले मैंने जैसा विश्व रचा था देखो वैसाही अब रचूंगा. मुझे देखो. हे मार्कण्डेय ! युगयुगमें मैं जगत्की रचना करता हूं ॥ ६३ ॥ हे मार्कण्डेय ! यह सब वार्ता तुम विचार करो धर्मकी इच्छा सुननेकी इच्छासे मेरी कुक्षिमें सुखपूर्वक विचरो ॥६४॥ ब्रह्मा मेरे शरीरमें स्थित है. देवता ऋषियोंके सहित स्थित हैं. व्यक्त अव्यक्तसे योगद्वारा मुझे जानकर सुखी हो और अपराजित जानो ॥ ६५ ॥

मैंही अक्षर मंत्र त्र्यक्षररूप हूं. त्रिपद परम और त्रिवर्गके अर्थका निदर्शनरूप हूं ॥६६॥ वैशंपायन बोले;इस प्रकार महामुनि व्यासने वेदान्त और पुराणोंमें वर्णन किया है जो मार्कण्डेयजीके प्रति कहा गया है. तब महामुनि यह वचन सुन प्रसन्न हुए.उस समय महामुनिको ॥ ६७ ॥ विश्वरूप-धारी प्रभुने अपने जठरमें प्रवेश कराया तब मुनिश्रेष्ठ भगवान्‌की कुक्षिमें प्रवेश कर गये और अविनाशी हंसकीगाथा श्रवण करनेको सुखसे रमण करने लगे॥६८॥नाशरहित अनेक प्रकारके शरीर धारण करनेवाले चन्द्रसूर्यसे रहित महार्णवमें शनैः शनैः विचरण करते हंसनामक भगवान् प्रलयके अन्तमें

अहमेवाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः ॥ त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ॥६६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनिः ॥ वक्रं व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥ ६७ ॥ प्रवेशयामास ततो जठरं विश्वरूपधृक् ॥ ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥ रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ॥ ६८ ॥ तदक्षरं विविधमथाश्रितो वपुर्महार्णवे व्यपगत-चन्द्रभास्करे ॥ शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजज्जगद्विसृजति कालपर्यये ॥६९॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० दशमोऽ-ध्यायः ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः ॥ छादयित्वात्मनो देहमात्मना कुम्भसंभवः ॥ १ ॥ ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने ॥ महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत् ॥ २ ॥ तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भवितात्मनः ॥ निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ॥ ३ ॥ ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः ॥ सोऽनन्त रोर्मिणा सूक्ष्ममथच्छिद्रमभूत्तदा ॥ ४ ॥

जगत्‌की रचना करते हैं ॥६९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥ वैशंपायन बोले;वह हंसरूप विभु जलरूप वशिष्ठ होकर अर्थात् अपने कुंभसे उत्पन्न हुए अपने शरीरको समष्टि अभिमानवाले अपने आत्मासे आच्छादन कर तप करने लगे॥१॥तब उन महाबली महात्माने लोकके निर्माण करनेकी इच्छा की. महान् और पंच महाभूतकी चिंता करने लगा ॥ २ ॥ उन भावितात्मावालेके उस समय चिंता करनेपर आकाशरहित जलमय सूक्ष्म जगत्‌के होनेमें ॥३॥ जलमें स्थित हो उन्होंने सागरको यत्किंचित् क्षुभित किया. तब संकल्परूपी

लहरोंसे आकाश नामक सूक्ष्म छिद्र हुआ ॥ ४ ॥ तब वह ईश्वर अन्य संकल्पसे आकाशमें शब्दरूपसे गतिवाला होकर पवनरूप द्रवसे उत्पन्न हो आकाशको प्राप्त होकर अप्राप्त हुएके समान क्षोभसे रहित हो वायुरूपसे बढे ॥ ५ ॥ उन बलवान्‌के बढनेसे सागर क्षुभित हुआ तब एक दूसरेके वेगसे आहत हो ऊर्मी उसको मथन करने लगी ॥६॥ महार्णवके क्षुभित और जलके मथित होनेसे कांतिमान् वैश्वानराग्नि प्रभु प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ तब अग्निने बहुतसे जलको सुखा डाला. तब सागरमें सूखनेसे छिद्र हुआ उस समय आकाश निकला ॥ ८ ॥ आत्माके तेजसे उत्पन्न हुए

तत्र शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसंभवः ॥ स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्यो व्यवर्द्धत समीरणः ॥ ५ ॥ विवर्द्धता बलवता तेन संक्षोभितो- ऽर्णवः ॥ अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम् ॥ ६ ॥ महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यति ॥ कृष्णवर्त्मा सम- भवत्प्रभुर्वैश्वानरोर्चिमान् ॥ ७ ॥ तत्र संशोषयामास पावकः सलिलं बहु ॥ क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवन्निःसृतं नभः ॥ ८ ॥ आत्मतजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः ॥ आकाशं छिद्रसंभूतं वायुराकशसंभवः ॥ ९ ॥ आज्यसंघर्षणोद्भूतं पावकं चाज्यसंभवम् ॥ दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्ववित् ॥ ब्रह्मणो जन्म- सहितं बहुरूपो विचिन्वति ॥ ११ ॥ चतुर्युगादिसंख्यान्ते सहस्रयुगपर्यये ॥ यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुत्तमः ॥ ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ॥ १३ ॥

अमृतके रसके समान जल हुए और आकाशसे वायु प्रादुर्भूत हुआ ॥९॥ जलसे अग्नि अग्निसे जल प्रगट हुआ है. यह देखकर देव बहुत प्रसन्न हुए. इस प्रकार भूतभावन देव प्रसन्न होकर ॥ १० ॥ भूतोंको देख तत्त्वज्ञाता भगवान् लोककी सृष्टिके निमित्त ब्रह्माके जन्मको विचारने लगे ॥ ११ ॥ चार युगोंकी संस्थासे सहस्र वर्ष पर्यन्त जो पृथ्वीमें तप करके भावित आत्मावाले ॥ १२ ॥ बहुत जन्मोंमें निरुद्ध आत्मावाले पूर्वोक्त ब्राह्मणोंके मध्यमें उत्तम ज्ञानवान् विश्वात्मा योगियोंमें योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ १३ ॥

उस योगवान् जानने योग्य संपूर्ण ऐश्वर्य और विक्रमसे युक्त पुरुषको जो पूर्वसृष्टिमें सब प्रकारके योग्य था उसे विश्व और ब्रह्मायनानेके निमित्त ईश्वरने नियुक्त किया॥ १४ ॥तब उसमहाजलमें ब्रह्माके नियोगके अनन्तरनारायणअपने निर्विशेषरूपको प्राप्तहोकर शयन क्रीडा करते प्रसन्न रहते हैं और यह ब्रह्मा कर्मानुसार सृष्टि रचते हैं॥ १५ ॥नारायणनेअपनीनाभिसे एक कमल उत्पन्न किया जो रजरहित सहस्रदल सुवर्णके समान प्रकाशमान था॥ १६ ॥ अग्निकी जलती हुई शिखाकेसमान उज्ज्वलप्रभावालासुगंधियुक्तशरदकालके उज्ज्वलसूर्यके समान प्रकाशमान वहउदार कान्तिमान्कमल विराजमान

तं योगवन्तं विज्ञेयं संपूर्णैश्वर्यविक्रमम् ॥ देवो ब्रह्माणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥ १४ ॥ ततस्तस्मिन्महातोये हविषो हरिरच्युतः ॥ स्वपन् क्रीडंश्च विविधं मोदते चैष पावकिः ॥ १५ ॥ पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा ॥ सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥ हुताशनं ज्वलितशीखोज्ज्वलत्प्रभं सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम् ॥ विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥११॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ योगविदां श्रेष्ठ सर्वभूतमनोमयम् ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥ १ ॥ तस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते ॥ सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते ॥२॥ तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरुहमुत्तमम् ॥ नारायणाङ्गसंभूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ३ ॥ या तु पद्मासना देवी पृथिवीं तां प्रचक्षते ॥ ये गर्भसारांकुरतस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥ ४ ॥

होने लगा. कारण कि उन महात्माके शरीरसे प्रकाशित हुआ था और सुन्दर दर्शनीय था॥ १७ ॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥११॥ वैशम्पायन बोले;तब योगवालोंमें श्रेष्ठ सर्व प्राणियोंके मनोमय सब भूतोंके स्रष्टा सबओरसे मुखवाले ब्रह्माजी ॥ १ ॥ उस बहुत योजनोंके विस्तारवाले सुवर्णमय कमलमें जो सब तेजोंके गुणमय और सब लक्षणसे लक्षित था ॥ २ ॥ ऋषि और पुराणके जाननेवाले उस कमलको पृथ्वीरुह और नारायणके अंगसे उत्पन्न कहते हैं ॥ ३ ॥ और उस कमलकी आसन पृथ्वी देवी कही जाती हैं और उस कमलके अंकु-

रोंको दिव्य पर्वत कहते हैं ॥ ४ ॥ हिमालय मेरु नील निषध कैलास मुंजवान् गंधमादन ॥ ५ ॥ पवित्र त्रिशिखर कान्त मदर उदय कंदर विंध्य अस्ताचल पर्वत ॥ ६ ॥ यह देवगण और महात्मा सिद्धोंके आश्रम हैं. इन पर्वतोंमें इन पुण्यात्माओंके पवित्र आश्रम हैं ॥ ७ ॥ इनका इतर देश जम्बूद्वीप कहलाता है.यह जम्बूद्वीप कर्मभूमि है. यहीं यज्ञ होते हैं ॥ ८ ॥ जो स्वर्गके गर्भसे अमृतके रसके समान जल निर्गत होता है वही दिव्य तीर्थरूपसे युक्त देवनदी कहाती है ॥ ९ ॥ जो यह कमलके चारों ओर केशर है वही पृथ्वीमें असंख्यात धातु हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो कमलके

हिमन्वतं च मेरुं च नीलं निषधमेव च ॥ कैलासं मुञ्जवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम् ॥५॥ पुण्यं त्रिशिखरं चैत्र कान्तं मन्दरमेव च ॥ उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥६॥ एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ॥ आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्व-कामयुताद्रयः ॥७॥ एतेषामितरो देशो जम्बुद्वीप इति स्मृतः ॥ जम्बुद्वीपस्य संख्यानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे ॥ ८ ॥ गर्भाद्यत्स्रवते तोयं देवामृतरसोपमम् ॥ दिव्यतीर्थशतापाङ्ग्यस्ता दिव्याः सारतः स्मृताः ॥९॥ यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्ततः ॥ असंख्याताः पृथिव्यां तु विश्वे ते धातुपर्वताः॥१०॥ यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप॥ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥११॥ यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः ॥ दैत्यानामुरगाणां च पातालं तन्महात्मनाम् ॥१२॥ तेषाम-धोगतं यत्तदुदकेत्यभिसंज्ञितम् ॥ महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥ १३ ॥ पद्मस्यान्ते कुशं यत्तदेकार्णवजलं महत् ॥ प्रोक्तास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः ॥ १४ ॥ ऋषेर्नारायणस्यायं महापुष्करसंभवः ॥ प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंभवः ॥ १५ ॥

ऊपरके पत्र हैं, वेही दुर्गम पर्वत म्लेच्छ दशोंसे आवृत हैं॥११॥और जो कमलपत्र नीचेकी ओर है. वह दैत्य उरग और महात्मा लोगोंके रहनेका स्थान पाताल है॥ १२ ॥ उस कमलका नीचेका भाग जलरूप है. जहां महापाप करनेवाले मनुष्य डूबते हैं ॥ १३ ॥ पद्मके अन्तमें जो कुश है वह एकार्णव जल है और उसकी चारों दिशाओंमें जलके चार सागर हैं ॥ १४ ॥ यह नारायण ऋषिके महापुष्करका संभव है. उससे उत्पन्न होनेसे

पुष्कर नाम कहाता है ॥१५॥ इस कारणसे उसके जाननेवाले पुरातन ऋषियोंद्वारा तथा यज्ञ और वेदार्थ जाननेवालोंके द्वारा यज्ञमें उनका नाम पद्मचिती कथन किया गया है ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे भगवान्‌ने कमलमें विश्वकी परम विधि पर्वत नदी और देवता आदि बनाये हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार महाप्रभावयुक्त भगवान् महात्मा प्रभा करनेवाले स्वयंभूने जगत्‌की उत्पत्तिके समय जगन्मय कमलको अपने सामर्थ्यसे महार्णवमें प्रगट किया ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ वैशंपायन बोले; जिस समय

एतस्मात्कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः ॥ यज्ञियैर्वेददृष्टार्थैर्यज्ञे पद्मचिती कृतः ॥१६॥ एवं भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधिः पर्वतानां नदीनां च देवतानां च निर्मितः ॥१७॥ विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा ॥ स्वयं स्वयंभूः शयनेऽसृजत्तदा जगन्मयं पद्मनिधिं महार्णवे ॥१८॥ इति श्रीम० खि० ह० भ० पुष्करप्रादुर्भावे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ चतुर्युगादिसंभूतौ सहस्रयुगपर्यये ॥ विघ्नस्तमसि संभूतो मधुर्नाम महासुरः ॥१॥ तस्यैव च सहायोऽन्यो भूतो रजसि कैटभः ॥ तौ रजस्तमसाविष्टौ संभूतौ कामरूपिणौ ॥२॥ एकार्णवजलं सर्वं क्षोभयन्तौ महासुरौ ॥ कृष्णरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्ताग्रदंष्ट्रिणौ ॥३॥ उभौ मदकटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ ॥ महाविकृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ॥ ४ ॥ महच्छिरःसंहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ॥ नीलमेघाभ्रसंकाशावादित्यप्रतिमाननौ ॥ ५ ॥

सहस्र चतुर्युगी बीच गई उस समय तपकी प्रबलतासे लयरूपी मधु दैत्य प्रगट हुआ ॥ १ ॥ और उसके सहायरूप रजोगुणसे विक्षेप नामक विघ्नरूप कैटभ उत्पन्न हुआ. यह रजतमयुक्त संसारमें कामरूपी प्रगट हुए ॥ २ ॥ उन महाअसुरोंने सम्पूर्ण एकार्णवसागरको क्षोभित कर दिया वह कृष्ण और रक्त अम्बर धारण किये श्वेतद्वीप और उग्रदंष्ट्रावाले ॥ ३ ॥ दोनोंही मदके कटसे उदग्र केयूर वलय (कंकन) पहरे महाविकराल ताम्र नेत्र किये पुष्ट हृदय महाभुजावाले ॥ ४ ॥ महान् शिर और पीनस्कंधयुक्त जंगमपर्वतके समान नीले मेघके समान कान्तिमान् आदित्यकी

समान वर्णवाले ॥ ५ ॥ बिजली और बादलके समान ताम्रवर्ण हाथोंसे भयंकर चरणोंके संचारवेगसे सागरको उत्क्षिप्त करते हुए ॥ ६ ॥ शयन करते हुए नारायणको कंपित करते हुए वे दोनों उस कमलमें विचरने लगे ॥ ७ ॥ उन योगिजनोंमें श्रेष्ठ दीप्तिमान् नारायणकी आज्ञासे प्रजा रचनेको स्थित तथा देवता मनुष्य और मनसे ऋषियोंको उत्पन्न करते हुए ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीसे वे कहने लगे कारण कि वे दोनों महाअभिमानी क्रोधसे लाल नेत्र किये थे ॥ ९ ॥ वे कहने लगे तुम सफेद पगडी बांधे चार भुजावाले कौन हो ? तुम मोहसे हमको नहीं गिनते किस प्रकारसे स्थित हो और

विद्युदम्भोदताम्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ॥पादसंचारवेगाभ्यामुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् ॥६॥ कम्पयन्ताविव हरिं शयानमरिसूदनम्॥ तौ तत्र विहरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम् ॥७॥ पश्यतां दीप्तवपुषं योगिनां श्रेष्ठमुत्तमम् ॥ नारायणसमाज्ञप्तं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ॥ दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन् ॥ ८ ॥ ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ ॥ हृतो युयुत्सुकौ क्रुद्धौ रोषसंरक्तलोचनौ ॥ ९ ॥ कस्त्वं पुरुषमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्मुखः ॥ आवामगणयन्मोहादासे त्वं विगतज्वरः ॥१०॥ एह्यावयोर्बाहुयुद्धं प्रयच्छ कमलोद्भव ॥ आवाभ्यामतिवीराभ्यां न शक्यं स्थातुमाहवे ॥११॥ कस्त्वं कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासीह चोदितः॥ कः स्रष्टा कश्च वै गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते ॥१२॥ ब्रह्मोवाच ॥ यः क इत्युच्यते लोके ह्यविज्ञातः सहस्रशः॥तत्संभवं योगवन्तं किं मां नाभ्यवगच्छथः ॥१३॥ मधुकैटभावूचतुः ॥ नावयोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामते ॥ आवां छादयतो विश्वं तमसा रजसा तथा ॥ १४ ॥ रजस्तमोमयावावां यतीनां दुःखलक्षणौ ॥ छलकौ धर्मशीलानां दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥ १५ ॥

भय नहीं मानते ॥१०॥ हे कमलोद्भव ! आओ. हमारे साथ बाहुयुद्ध करो. हम वीरोंके साथ आप संग्राममें स्थित नहीं हो सक्के ॥११॥ कौन हो तुम किनसे उत्पन्न हो किससे प्रेरित हुए हो. कौन तुम्हारा निर्माता और रक्षक है किस नामसे तुम पुकारे जाते हो ॥१२॥ ब्रह्माजी बोले; जो लोकमें ब्रह्मनामसे विख्यात और सहस्रों प्रकारसेभी जाननेके अयोग्य योगरूप परमात्मासे उत्पन्न हुआ हमको जानो ॥१३॥ मधुकैटभ बोले; हे महामते ! लोकमें हमसे परे कोई वस्तु नहीं है. हमने तम और रजसे सारा जगत् आच्छादित कर रक्खा है ॥१४॥ हम रज और तमरूप हैं, सतरूपी यतियोंको

दुःखरूप हैं. हम धर्मशीलोंको छलरूप और सर्व प्राणियोंको दुस्तर हैं ॥ १५ ॥ हम दोनों उच्छ्रितोंसे सारा लोक युगयुगमें मोहित हो जाता है. और अर्थ काम तथा सर्व सामग्रियोंसहित यज्ञरूपभी हम दोनों हैं॥ १६॥जहां सुख आनंद लक्ष्मी और सब प्रकारकी निवृत्ति हो. इनमें जो जो वांछित हो वह हमसे चिन्तवन करना उचित है अर्थात् यह सब वस्तु हमारे आधीन है॥ १७॥ब्रह्माजी बोले; जो योगवालोंमें श्रेष्ठ है और जो मैंने अर्चित किया है वह सब प्रकारसे पुष्ट कर गुणवाला मैं सतोगुणमें स्थित हुआ हूं॥ १८॥योगयुक्तोंको जो पर अक्षर और सत्त्वरूप है. जो रज तमका निर्माता जिससे जीवका संभव है ॥१९॥ जिससे सात्त्विक तथा इतर प्राणी उत्पन्न होते हैं. वही वशी युद्धमें तुमको शान्त करेगा ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले;

आवाभ्यां मुह्यते लोक उच्छ्रिताभ्यां युगे युगे ॥ आवामर्थश्च कामश्च यज्ञाः सर्वपरिग्रहाः ॥१६॥ सुखं यत्र मुदो यत्र यत्र श्रीः सन्निवृत्तयः ॥ एषां यत्कांक्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्तद्योगवतां श्रेष्ठं यच्च सर्वं मयार्चितम् ॥ तत्समाधाय गुणवान्त्सत्त्वजोऽस्मि प्रतिष्ठितः॥१८॥यत्परं योगयुक्तानामक्षरं सत्त्वमेव च ॥ रजसस्तमसश्चैव यत्स्रष्टा जीवसंभवः ॥१९॥ यतो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च ॥ स एव युक्तः समरे वशी वां शमयिष्यति ॥२०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः शयानं श्रीमन्तं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणम्योवाचतावुभौ ॥२१॥ जानीवस्त्वां विश्वयोनिमेकं पुरुषसत्तमम् ॥ तवोपासनहेत्वर्थमिदं नौ विद्धि कारणम् ॥२२॥ अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विदुरीश्वरम् ॥ ततस्त्वामभितो देवः कांक्षावः प्रतिवीक्षितुम् ॥ २३ ॥ तदिच्छावो वरं दत्तं त्वया ह्यावामरिंदम ॥ अमोघं दर्शनं देव नमस्तेस्त्वजितंजय ॥ २४ ॥

तब शयन करते हुए श्रीमान् बहुत योजनके विस्तारवाले पद्मनाभ हृषीकेशको वे दोनों प्रणाम कर॥ २१॥बोले हम आपको विश्वयोनि एक सनातन पुरुष जानते हैं. आपकी उपासनाके निमित्तही हमारा कारण है॥ २२॥ आप अमोघदर्शन सत्यरूप हो हम तुमको ईश्वररूप जानते हैं. हे देव ! इसी कारण हम आपके देखनेकी इच्छा करते हैं ॥२३॥ हे शत्रुनाशक ! आपके दिये वरकी हम इच्छा करते हैं. हे अजित ! आपका अमोघ दर्शन है. आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् बोले; हे असुरश्रेष्ठ ! तुम किस वरकी इच्छा करते हो सो कहो. यदि जीनेकी इच्छा है तो मेरी दी हुई आयुसे तुम जियो ॥ २५ ॥ जो तुम्हारा यह यत्न है तो तुम महाबली हो इस कारण हमारे वध्य हो जाओ. यह वचन नारायणने उनसे कहे तब वे दोनों महात्मा बढे हुए क्षतसे वर्जित ॥ २६ ॥ मधुकैटभ कहने लगे;हे विभो ! जिस स्थानमें किसीकी मृत्यु नहीं हुई हो वहां हमारी मृत्यु हो, हे सुराधिप ! हम दोनों तुम्हारे पुत्र होनेकी इच्छा करते हैं ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले; निश्चयही कल्पके प्रारंभमें तुम मेरे पुत्र होंगे इसमें सन्देह नहीं यह मैं सत्य कहता हूं ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ कानिच्छतो द्रुतं ब्रूत वरानसुरसत्तमौ ॥ दत्तायुषौ मया भूयस्त्वहो जीवितुममिच्छथः ॥ २५ ॥ तस्माद्यदेष वां यत्नस्तत्प्राक्कृ (प्नु) त महाबलौ ॥ वध्यौ भवन्तौ तु स्यातां तावित्येवाब्रवीद्धरिः ॥ उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षतवर्जितौ ॥२६॥ मधुकैटभावूचतुः ॥ यस्मिन्न कश्चिन्मृतवांस्तस्मिन्देशे विभो वधम् ॥ इच्छावः पुत्रतां यातुं तव चैव सुराधिप ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच॥बाढं सुतौ मे प्रवरौ भविष्ये कल्पसंभवे ॥ भविष्यथो न संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम्॥२८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरोत्तमो विभुः ॥ रजस्तमोभ्यां भवभावनोपमौ ममन्थ तावूरुतले सुरारिहा ॥२९॥ इति श्रीमहा० हरिवंशे भ० मधुकैटभवरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ऊर्ध्वबाहुर्महाबाहुस्तपो घोरं समाश्रितः ॥१॥ ज्वलन्निव च तेजस्वी भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः ॥ बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुमान् ॥ २ ॥

वैशंपायन बोले; तब वह सनातन प्रभु उन असुरोंको वरप्रदान कर रजतमसे उत्पन्न हुए दोनों दैत्योंको ऊरुतलमें स्थितकर मथने लगे ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां मधुकैटभवरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वैशंपायन बोले;यह सब कथा वेदान्तपर है. ब्रह्मविदां वर ब्रह्माजी उस कमलमें स्थित होकर ऊर्ध्वबाहु महाबाहु घोरतपमें स्थित हुए ॥ १ ॥ वह तेजस्वी अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर

करते हुए सूर्यके समान कान्तिमान् धर्ममें स्थित हो शोभित हुए ॥ २ ॥ तब वह शंभु नारायण अविनाशी दूसरे रूपमें स्थित हो वह सनातन अचिन्त्यात्मा आत्मासे आत्माको दो भागकर ॥ ३ ॥ योगाचार्य महातेजस्वी आनकर प्राप्त हुए वह बुद्धिमान् सांख्याचार्य ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ कपिलजी थे ॥ ४ ॥ यह- और वेदज्ञाता ब्रह्माजी ब्रह्मर्षियोंसे स्थितिको प्राप्त हुए. यह दोनों महात्मा बडे ऊर्जित और क्षेत्रमें तत्पर थे ॥ ५ ॥ वे दोनों प्राप्त होकर महातेजस्वी ब्रह्माजीसे बोले; यह परअवरके विशेष जाननेवाले परमऋषियोंसे पूजित ॥ ६ ॥ बहुत वाक्यरूप होनेसे दृढपाद विश्वात्मा जगत्के स्थितिरूप सब

अथान्यद्रूपमास्थाय शंभुर्नारायणोऽव्ययः॥द्विधा कृत्वात्मनात्मानमचिन्त्यात्मा सनातनः ॥३॥ आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः ॥ सांख्याचार्यश्च मतिमान्कपिलो ब्राह्मणो वरः ॥४॥ देवर्षिभिः स्तुतावेतौ ब्रह्मब्रह्मविदां वरौ ॥ उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षेत्रतत्परौ ॥५॥ तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् ॥ परावरविशेषज्ञौ पूजितौ परमर्षिभिः ॥ ६ ॥ बहुत्वाद्दृढपादश्च विश्वात्मा जगतः स्थितिः ॥ ग्रामणीः सर्वलोकानां ब्रह्मा लोकगुरुर्वरः ॥७॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा तिस्रो व्याहृतयो जपन्॥ त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथाह ब्राह्मणी श्रुतिः ॥ ८ ॥ यत्र भूसंज्ञकं चैव समुत्पादितवान्प्रभुः ॥ ततोऽग्रे तद्गतस्नेहो ब्रह्मा मानसमव्ययम् ॥९॥ सोत्पन्नस्त्वग्रे ब्रह्माणमुवाच मानसः सुतः ॥ करोमि किं ते साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥१०॥ ब्रह्मोवाच ॥ य एष कपिलो नाम ब्रह्मा नारायणस्तथा ॥ वदते वरदस्त्वां तु तत्कुरुष्व महामते ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ब्रह्मणोक्तस्तदा भूयः संशयं समुपस्थितः ॥ शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं कुर्मीति कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥

लोकोंको वशमें रखनेवाले सब लोकके गुरु ब्रह्मा ॥ ७ ॥ उन दोनोंके वचन सुन तीनों बृहती जपते हुए उन्होंने यह तीन लोक उत्पन्न किये ऐसा ब्राह्मणकी श्रुतिमें लिखा है ॥ ८ ॥ तब प्रभुने भूसंज्ञक पुत्रको उत्पन्न किया तब वह सृष्टिके स्नेहवाले ब्रह्माके मनसे ॥ ९ ॥ उत्पन्न हो आगे खडे होकर ब्रह्मासे कहने लगा. हे भगवन् ! मैं आपको क्या सहायता करूं सो आप कहिये ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले; यह जो कपिल और नारायण हैं; हे महामते ! यह वरदाता जो कुछ तुझसे कहे सो तू कर ॥ ११ ॥ वैशंपायन बोले; ब्रह्माके यह वचन सुन वह परम सन्देहको

प्राप्त हुआ और हाथ जोड बोला; जो आप कहे वह आपकी आज्ञा सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १२ ॥ वे दोनों कपिलनारायण बोले; जो सत्य अक्षर परिणामरहित अमर अठारह प्रकारसे कहा जाता है अर्थात् सांख्यमतमें पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय प्राणपंचक वियदादि पांच काम कर्म अविद्यादिसे अतिरिक्त है उस पुरुष अधिकेश्वरसहित सब प्रपंचसे पृथक् परम वस्तु सब विशेषशून्य एकरसका तुम ध्यान करो ॥ १३ ॥ वैशंपायन बोले; यह वचन सुन वह उत्तरदिशाको गया और वहां जाकर ज्ञानदृष्टिसे ब्रह्मत्वको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माने भुव (सूत्रात्मा) नाम दूसरे पुरुषको निर्माण किया. वह महामना ब्रह्मा उसको मनसेही कल्पित कर चुके॥१५॥तब उसने पितामहसे कहा; मैं क्या करूं तब ब्रह्मा-

परमेश्वरावूचतुः ॥ यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशविधं स्मृतम् ॥ यत्सत्यममृतं चैव परं तत्समनुस्मर ॥१३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतद्वचो निशम्याथ स ययौ दिशमुत्तराम् ॥ गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥ ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः ॥ तं कल्पयित्वा मनसा मनसैव महामनाः ॥१५॥ ततः सोऽप्यब्रवीद्वाक्यं किं कुर्वेति पितामहम् ॥ पितामहसमाज्ञप्तो ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१६॥ ब्रह्मभ्यां सहितः सोऽथ भूयो भागवतीं गतः ॥ प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥१७॥ तस्मिन्नपि गते पुत्रं तृतीयमसृजत्प्रभुः ॥ मोक्षोपायेऽतिकुलं भूर्भुवं नाम तं विभुः ॥ १८ ॥ आससाद स तद्धर्मं तयोरेवागमद्गतिम् ॥ एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येते उक्ताः शंभोर्महात्मनः ॥१९॥ तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रययौ स्वां गतिं तथा ॥ नारायणोऽथ भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः ॥ २० ॥ यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तत्कालमेव तु ॥ तेपे घोरतरं भूयः स तपः संशितव्रतः ॥ २१ ॥

जीने कपिलनारायणकी आज्ञा माननेको कहा तब वह पितामहके पितर सांख्ययोगाचार्योंको प्राप्त हो॥१६॥ उनके निकट हो उनके सहित भागवती गतिको प्राप्त हुआ और उनके निकट प्राप्त होनेसे परमस्थानको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ उसके जानेसे ब्रह्माजीने तीसरा पुत्र उत्पन्न किया. वह भूर्भुव नाम (ईश्वर सत्त्वोपाधिमान्) मोक्षके उपायमें कुशल हुआ ॥ १८ ॥ यह पुत्रभी उन दोनोंके धर्म और गतिको प्राप्त हुआ अर्थात् " पुरुषान्नापरं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः " इस प्रकार महात्मा शंभुके यह तीन पुत्र परमगतिको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ यतीश्वर कपिल और भगवान् नारायण उन तीनों पुत्रोंको लेकर अपनी गतिको गये ॥२०॥ जितने कालमें वह लीन हुए उतने समयतक ब्रह्माभी घोर तप करते रहे. जब वह

शंसित व्रत घोर तप करते रहे॥२१॥तब इकले तप करनेके कारण उनका मन नहीं लगा तब उन्होंने अपने आधे शरीरसे सुन्दर भार्याको उत्पन्न किया॥२२॥ तप तेज कान्ति और नियमसे उन्होंने लोकके उत्पन्न करनेमें अपने समान भार्याको उत्पन्न किया॥२३॥वह तपोमय ब्रह्मा उसके संग रमते रहे तब उससे सब प्रजापति सागर और नदियोंको उत्पन्न किया॥२४॥ तब वेदमाता त्रिपदा गायत्रीको उत्पन्न किया उस गायत्रीसे चारों वेदोंको उत्पन्न किया॥२५॥पितामहने अपने वास्ते लोककर्ता पुत्रोंको बनाया. जो प्रजापति विश्वके देवता हैं जिनसे सब जगत् उत्पन्न हुआ

न रराम ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् ॥ शरीरार्द्धमथो भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम् ॥२२॥ तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च ॥ सदृशीमात्मनो भार्यां समर्थां लोकसर्जने ॥ २३ ॥ तया सह ततस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपोमयः ॥ सृजत्प्रजापतीन्त्सर्वान्त्सागरान् सरितस्तथा ॥ २४ ॥ ततोऽसृजद्वै त्रिपदां गायत्रीं वेदमातरम् ॥ अकरोच्चैव चतुरो वेदान् गायत्रिसंभवान् ॥ २५ ॥ आत्मार्थे चासृजत्पुत्राँल्लोककर्तॄन्पितामहः ॥ विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः ॥ २६ ॥ विश्वेशं प्रथमं नाम महातपसमात्मजम् ॥ सर्वाश्रमतमं पुण्यं नाम्ना धर्मः स सृष्टवान् ॥ २७ ॥ दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥ २८ ॥ अथर्वभूता इत्येते ख्याता ब्रह्ममहर्षयः ॥ त्रयोदशसुतानां तु ये वंशा वै महर्षिणाम् ॥ २९ ॥ अदितिर्दितिर्दनु काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः ॥ प्रवोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रुरेव च ॥ ३० ॥दक्षस्यैता दुहितरः कन्या द्वादश भारत ॥ नक्षत्राणि च भद्रं ते सप्तविंशतिरूर्जिताः ॥ ३१ ॥

है॥२६॥ब्रह्माजीने विश्वेश नामवाला महातपस्वी सब आश्रमोंमें तत्पर प्रथम पुत्रकी रचना की. तथा पवित्ररूप धर्म नाम दूसरे पुत्रको रचा॥२७॥ दक्ष मरीचि अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु वशिष्ठ गौतम भृगु अङ्गिरा मनु ॥२८॥ अथर्वभूत यह ब्रह्ममहर्षि विख्यात हैं. यह तेरह पुत्र महर्षियोंके वंशकर्ता हुए हैं ॥ २९ ॥ अदिति दिति दनु काला अनायु सिंहिका मुनि प्राधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रू॥३०॥यह बारह दक्षकी कन्या हुईं. तुम्हारा

मंगल हो यह सत्ताईस नक्षत्र जो आकाशमें शोभित हैं यह भी दक्षकी कन्या हुई॥३१॥मरीचि ऋषिके तपसे कश्यपजी पुत्र हुए.उनके निमित्त दक्षने पूर्वोक्त बारह कन्या प्रदान कीं ॥३२॥ और नक्षत्ररूप कन्याओंको दक्षने चन्द्रमाके निमित्त प्रदान किया.हे जन्मेजय ! यह रोहिणी आदि पवित्र कन्या थीं॥३३॥लक्ष्मी कीर्ति साध्या विश्वा कामा देवी मरुत्वती यह पहले ब्रह्माजीने निर्मित की थीं॥३४॥हे भारत!यह पांच श्रेष्ठ कन्या धर्म देखनेवाले ब्रह्माजीने सुरश्रेष्ठ धर्मराजके निमित्त प्रदान कीं॥३५॥और जो अपने आधे शरीरसे कामरूपिणी पत्नी निर्माण की थी,वह सुरभी

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः प्रभुः ॥ तस्मै कन्या द्वादशेमा दक्षस्ता अन्वमन्यत ॥ ३२ ॥ नक्षत्राख्यानि सोमाय वसवे दत्तवानृषिः ॥ रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि जनमेजय ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा साध्या विश्वा कामानुगा शुभा ॥ देवी मरुत्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥ ३४ ॥ एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय भारत ॥ दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्राह्मणा दृष्टधर्मणा ॥३५॥ या रूपार्द्धमयी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी ॥ सुरभिः सा तु गौर्भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ॥ ३६ ॥ ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः ॥ लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय भारत ॥३७॥ जज्ञे चैकादश सुतान्विपुलान्धर्मसंहितान् ॥ रक्तसंध्याभ्रसदृशान् दहनोपमतेजसः ॥३८॥ ते रुदन्तो द्रवन्तश्च भगवन्तं पितामहम् ॥ रोदनाद्द्रावणाच्चैव ततो रुद्रा इति स्मृताः ॥ ३९ ॥ निर्ऋतिश्चैव सर्पश्च तृतीयो ह्यज एकपात् ॥ मृगव्याधः पिनाकी च दहनोऽथेश्वरश्च वै ॥ ४० ॥ अहिर्बुध्न्यश्च भगावन्कपाली चापराजितः ॥ सेनानीश्च महातेजा रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ४१ ॥

गौरूप होकर ब्रह्माके निकट उपस्थित हुई॥ ३६ ॥ हे भारत ! तब लोकपूजित ब्रह्मा उस सृष्टिके हेतुको विचार उससे मैथुनधर्ममें प्रवृत्त हुए ॥ ३७ ॥ उससे धर्मयुक्त ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए जो लाल संध्याकी सदृश अग्निके समान तेजस्वी थे॥३८॥वे रोते और द्रवते हुए भगवान् पितामहके निकट आये रोदन और धावमान होनेसे रुद्र कहलाये ॥३९॥ निर्ऋति सर्प तीसरा अज एकपाद मृगव्याध पिनाकी दहन ईश्वर ॥४०॥ अहिर्बुध्न्य भग-

वान् कपाली अपराजित महातेजवाले सेनानी यह ग्यारह रुद्र कहलाते हैं ॥४१॥ उसी सुरभीसे गोवृष उत्पन्न हुए. आकृष्टमाष सिकता अक्षय प्रश्रय ॥ ४२ ॥ अज एकवंश उत्तम अमृत प्रवरादि औषधी यह सब उसीसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ४३ ॥ धर्मसे लक्ष्मी काम और साध्य नाम देवता उत्पन्न हुए. च्यवन प्रभव ईशान सुरभी ॥४४॥ अरुंधती अरुणी विश्वावसु बल ध्रुव महिष तनुज विज्ञान ॥ ४५ ॥ मत्सर विभूति यह सब सुरभीकी सन्तान हैं सुपर्वत विष नाग इन लोकपूजित देवतोंको साध्याने उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ देवीने वासवसे अनुगत हो इनको उत्पन्न किया धर प्रमथ

तस्यामेव सुरभ्यां तु जज्ञे गोवृषभस्तथा ॥ आकृष्टाश्च तथा माषाः सिकताः प्रश्रयोऽक्षताः ॥ ४२ ॥ अजाश्चैवैकवंशाश्च तथैवाभृतमुत्तमम् ॥ ओषध्यः प्रवरा याश्च सुरभ्यां ताः समुत्थिताः ॥ ४३ ॥ धर्माल्लक्ष्म्युद्भवः कामः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ च्यवनं प्रभवं चैवमीशानं सुरभीं तथा ॥४४॥ अरुन्धत्यारुणी चैव विश्वावसुबलध्रुवौ ॥ महिषं च तनूजं च विज्ञातमनसावपि ॥ ४५ ॥ मत्सरं च विभूतिं च सर्वाः सुरभिसूनवः ॥ सुपर्वतं विषं नागं साध्या लोकनमस्कृता ॥४६॥ वासवानुगता देवी जनयामास वै सुतान् ॥ धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् ॥४७॥ विश्वासुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥ पञ्चमं पर्वतं चैव योगेन्द्रं तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥ सप्तमं च ततो वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम् ॥ धर्मस्यापत्यमित्येवं सुरभ्यां समजायत ॥४९॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः ॥ दक्षयज्ञे महाबाहुर्वसुश्च सुत एव च ॥ सुधर्मा च महाबाहुः शङ्खपाच्च महाबलः ॥५०॥ उक्तश्चैव महाबाहुर्वपुष्मांश्च तथैव च ॥ चाक्षुषस्य मनोरेते तथानन्तमहीरणौ ॥ ५१ ॥ विश्वावसुसुपर्वाणौ विष्टरश्च महायशाः रुरुश्च ऋषिपुत्रो वै भास्करप्रतिमद्युतिः ॥ ५२ ॥

देव दूसरे अविनाशी ध्रुव ॥ ४७ ॥ तीसरे विश्वावसु चौथे ईश्वर सोम पांचवें पर्वत छटे योगेन्द्र ॥ ४८ ॥ सातवें वायु आठवें निर्ऋति वसु यह सुरभीमें धर्मके सन्तान हुए ॥ ४९ ॥ विश्वदेवा धर्मसे विश्वामें उत्पन्न हुए. दक्ष यज्ञ महाबाहु वसु सुत महाबाहु सुधर्मा महाबली शंखपाद ॥ ५० ॥ महावपुष्मान् अनन्त महीरण यह चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें ॥ ५१ ॥ विश्वावसु सुपर्वा यशस्वी विष्टर ऋषिपुत्र

सूर्यकी समान कांतिमान् हुए ॥५२॥ देवमाताने यह सब जगत्पति विश्वेदेवा निर्माण किये हैं. मरुत्वतीके मरुतसे देवता उत्पन्न हुए॥५३॥अग्निः चक्षुः हविः ज्योतिः सावित्र मित्र अमर शरवृष्टि संक्षय महाभुजावाले ॥ ५४ ॥ विरज शुक्र विश्वावसु विभावसु अश्मन्त चित्ररश्मि निष्कुपित नृप ॥५५॥ नहुष आहुति चारित्र बहुपन्नग बृहन्त बृहद्रूप परतापननाम पुत्र हुए. यह मरुतदेवता कहाये मरुत्वतीमें पहले धर्मसे दो पुत्र हुए ॥५६॥ अदितिमें कश्यपसे आदित्य हुए. इन्द्र विष्णु भग त्वष्टा वरुण अंशु अर्यमा रवि॥५७॥पूषा मित्र वरदायक मनु पर्जन्य यह बारह आदित्य देव-

विश्वेदेवान् देवमाता विश्वेशान् जनयत्सुतान् ॥ मरुत्वती मरुत्वन्तो देवानजनयच्छुभान् ॥ ५३ ॥ अग्निश्चक्षुर्हविर्ज्योतिः सावित्रो मित्र एव च ॥ अमरं शरवृष्टिं च संक्षयं च महाभुजम् ॥ ५४ ॥ विरजं चैव शुक्रं च विश्वावसुविभावसू ॥ अश्मन्तं चित्ररश्मिं च तथा निष्कुपितं नृपम् ॥ ५५ ॥ नहुषं चाहुतिं चैव चारित्रं बहुपन्नगम् ॥ बृहन्तं च बृहद्रूपं तथैव परतापनम् ॥ मरुत्वत्यां पुरा धर्माज्जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥ ५६ ॥ अदित्यां जज्ञिरे राजन्नादित्याः कश्यपादथ ॥ इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्यमा रविः ॥ ५७॥ पूषा मित्रश्च वरदो मनुः पर्जन्य एव च ॥ इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः ॥ ५८ ॥ आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥ रूपश्रेष्ठं बलश्रेष्ठं त्रिदिवे रूपिणां वरम् ॥ ५९ ॥ दनुस्तु दानवान् जज्ञे दितिर्दैत्यान् व्यजायत ॥ कालानुकालकेयांश्च ह्यसुरान्राक्षसांस्तथा ॥ ६० ॥ अनायुषायास्तनया व्याधयश्चाधयस्तथा ॥ सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः ॥ ६१ ॥ प्रबोधाप्सरसां माता सुरसायां सरीसृपाः ॥ क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव भारत ॥ ६२ ॥ तथा यक्षगणाश्चैव गुह्यकाश्च विशां पते ॥ चतुष्पदानि सर्वाणि ऋते गावस्तु सौरभाः ॥ ६३ ॥

ताओंमें श्रेष्ठ हैं॥५८॥ आदित्यके सरस्वतीमें दो पुत्र हुए. रूपश्रेष्ठ बलश्रेष्ठ स्वर्गवासियोंमें रूपवान् हुए ॥ ५९ ॥ दनुके दानव दितिके दैत्य हुए कालामें कालकेय संज्ञक असुर और राक्षस हुए ॥६०॥ अनायुषकी सन्तान आधि व्याधि हुई. सिंहिकामें राहु और मुनिमें गन्धर्व हुए ॥६१॥ प्रबोधाके अप्सरा सुरसाके सरीसृप हुए क्रोधाके सम्पूर्ण भूत और पिशाच हुए ॥६२॥ तथा यक्षगण और गुह्यक सब चौपाये गौको छोडकर सब

क्रोधाके हुए ॥ ६३ ॥ अरुण और गरुड विनतामें उपजे. कद्रूके महीधर सर्प नाग हुए ॥ ६४ ॥ इस प्रकार संसारमें लोक परस्पर वृद्धिको प्राप्त हुए हैं. हे राजन् ! इस प्रकार इस पुष्कर प्रादुर्भावमें उत्पत्ति हुई है ॥ ६५ ॥ यह पुष्कर उत्पत्ति पुराणोंमें जो व्यासजीसे सुनी है वह परमर्षियोंका कृत्य सब तुमसे वर्णन किया ॥ ६६ ॥ जो इस श्रेष्ठ पुराणको सदा अप्रमत्त होकर पढता है वह सब कामनाको प्राप्त कर शोकरहित हो परलोकमें स्वर्गफलोंको भोगता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अरुणो गरुडश्चैव विनतायां व्यजायत ॥ महीधरान्सर्पनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत ॥६४॥ एवं विवृद्धिमगमन्विश्वे लोकाः परस्परम् ॥ तदा पौष्करके राजन्प्रादुर्भावे महात्मनः ॥ ६५ ॥ पुराणं पौष्करं चैव मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् ॥ कथितं तेन पूर्वेण यत्कृतं परमर्षिभिः ॥ ६६ ॥ यश्चेदमग्र्यं प्रथमं पुराणं सदाप्रमत्तः पठते महात्मा ॥ अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र स स्वर्गफलानि भुंक्ते ॥६७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं नः परमं ब्रह्मन् स्ववंशचरितं महत् ॥ दिव्यमन्योन्यसंभूतं मानितं बहुभिर्गुणैः ॥ १ ॥ छन्दोभिर्वृत्तसञ्जातैः समासैश्च सविस्तरैः॥लघुभिर्मधुराभाषैर्ग्रथितं पदविग्रहैः ॥ २ ॥ त्रिवर्गेणाभिसंपन्नं धर्मेणार्थेन भोगिनाम् ॥ कामेन बहुरूपेण शरीरान्तर्गतेन च ॥ ३ ॥ ब्राह्मणानां प्रभावैश्च योधानां च पराक्रमैः ॥ वैरनिर्यातनैश्चैव प्रतिज्ञानां च पारगैः ॥ ४ ॥ रिपुस्तवसुसंपन्नैर्नानुबन्धः प्रचोदितः ॥ वंशयोर्निर्विनाशाय नृपेण द्विजविग्रहात् ॥ ५ ॥

जन्मेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! हमने अपने वंशका अद्भुत चरित्र सुना जो बडा दिव्य और बहुत गुणोंसे पूजित है ॥ १ ॥ वृत्तोंवाले छन्द विस्तारयुक्त समास लघुरूप मधुर वाणियोंसे ग्रथित पदोंके विग्रहसे युक्त ॥ २ ॥ धर्म अर्थ कामसे सम्पन्न शरीरके अन्तर विचरनेवाली इच्छासे सम्पन्न ॥३॥ ब्राह्मणोंके प्रभाव योधाओंके पराक्रम वैरनिर्यातनकी प्रतिज्ञाके पारगामी ॥ ४ ॥ रिपुकी स्तुतिसे संपन्न अनुबंधसे रहित ब्राह्मणकेविग्रहसे दोनों वंशोंके विनाशके निमित्त चरित्र सुना ॥ ५ ॥

जो उस महासंग्राममें राजा हत हुए थे. उनके राज्योंमें उनके पुत्र प्रतिष्ठित हुए. भगवान्‌की आज्ञा माननेवाले राजा युधिष्ठिर सिंहासनपर विराजे॥६॥ तीनों वर्णोंके संप्रदायका धर्म सुना. हे द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्गका हेतु शूरोंका धर्म सुना ॥ ७ ॥ सो प्राणियोंके अनुग्रहकेही निमित्त कहा. उद्वेगके निमित्त नहीं. चारों वर्णोंका धर्म पृथक् पृथक् अनेक प्रकारसे कहा ॥ ८ ॥ गर्भवासमें पडनेवाले प्राणियोंको प्रबोधका वर्णन किया. क्षीणपुण्य होनेपर देवसंचारभी कहा ॥ ९ ॥ दानका संयोगभी बहुत प्रकारसे कहा यह आपने मधुर वचनसे मुझसे कहा है॥१०॥वह भारतका अध्ययन करनेको मैं

ये च तस्मिन्महारौद्रे संग्रामे निहता नृपाः ॥ तेषां सर्वाणि राष्ट्राणि पुत्राः सर्वे प्रपेदिरे ॥ कौरवः प्रथितो राजा भगवच्छासनानुगः ॥६॥ धर्मश्च बहुधा प्रोक्तस्त्रयाणां वर्णसंपदाम् ॥ शूराणामपि विख्यातः स्वर्गहेतुर्द्विजर्षभ ॥ ७ ॥ अनुग्रहार्थं भूतानां नोत्सेकाय कथंचन ॥ चतुर्णां वर्णसंज्ञानां पृथक् पृथगनेकधा ॥८॥ गर्भवासे पतन्तश्च भूतानां संप्रबोधितः॥ पृच्छतां देवसंचारे क्षीणे पुण्ये च कर्मणि ॥९॥ दाने यश्चापि संयोगः स चापि बहुधा कृतः ॥ द्वाभ्यां संयोगविहितो मधुवाग्वचनं तयोः ॥१०॥ न तच्छक्यं महाख्यातुं भारताध्ययनं महत् ॥ एकाहेन महान् ब्रह्मन्नपि दिव्येन चक्षुषा ॥११॥ ब्रह्मणोऽह्नस्तु विस्तारं संक्षेपं च सुसंग्रहम् ॥ श्रोतुमिच्छामि भगवन्महत्कौतूहलं हि मे॥१२॥इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणुष्वैकमना राजन् पञ्चेन्द्रियसमाहितः ॥ कथां कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा ॥१॥ ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप ॥ पुरस्ताद्ब्रह्म संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ॥ २ ॥

समर्थ नहीं हूं हे ब्रह्मन् ! कोई दिव्य चक्षुसेभी एक दिनमें नहीं देख सक्ता॥११॥इस कारण ब्रह्माके दिनका विस्तार (ब्रह्मयज्ञ) का वर्णन संक्षेपसे मैं सुना चाहता हूं. हे भगवन् ! इसका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरीवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! पांचों इन्द्रियोंको सावधान कर एक मनसे सुनो. हे राजन् ! निर्विकार चित्तसे कथा सुनो ॥ १ ॥ यह कथा ब्रह्मसंबन्धसे संबन्धित कर्मसंबंधसे रहित है. ब्रह्म जाननेवालोंको पहलेही सिद्ध है, इसको सुनो ॥ २ ॥

जो अव्यक्त कारण नित्य सत् असत् आत्मक है. जो निष्कल पुरुष है उससे अहंकारयुक्त आत्मा ब्रह्महो हुआ है ॥ ३ ॥ वह सर्व भूतपति दिव्य विभु दिव्यशरीरसे प्रादुर्भूत हुआ है. अचिन्त्य अविनाशी युगोंकी उत्पत्ति करनेवाला अव्यय ॥ ४ ॥ न हुआ न उत्पन्न सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानताको प्राप्त हुआ. अव्यक्तसे परे जिसको नारायणके ज्ञाता तद्रूप कहते हैं ॥ ५ ॥ सब ओर हाथ चरणसे युक्त सब ओर नेत्र और शिरसे युक्त सब ओर कर्णवाला लोकमें सबको घेरे स्थित हो रहा है ॥ ६ ॥ सत् असत्का कारण व्यक्त अव्यक्त रूपमें स्थित जो चलता

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ निष्कलः पुरुषस्तस्मात्संबभूवात्मयोनिजः ॥ ३ ॥ दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः ॥ अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४ ॥ अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समतां गतः ॥ अव्यक्तात्परमं यत्तन्नारायणविदो विदुः ॥५॥ सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्वतः श्रुतिमँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६ ॥ असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् ॥ अव्यक्तो व्यक्तरूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते ॥ ७ ॥ विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रितः ॥ चरत्यचिन्त्यः सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥८॥ भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः ॥ ९ ॥ अपदात्तु पदो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत् ॥ अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः ॥ १० ॥ ब्रह्मभावे च तं विद्धि सशब्दं लब्धवान्प्रभुः ॥ प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥ ११ ॥

हुआभी नहीं दीखता है ॥ ७ ॥ विकार पुरुष व्यक्त और रूपसे रहित रूपमें आश्रित है। वह अचिन्त्य सबमें विचरण करता हुआ काठमें अग्निके समान स्थित हो रहा है ॥ ८ ॥ भूत भविष्य वर्तमानका उत्पन्न करनेवाला परमेष्ठी प्रजापति सब लोकका पति अहंनामवाला तत्त्वयुक्त ॥ ९ ॥ उस अपदसे अहंकार हुआ. उससे नारायण हुआ इस प्रकार वह ब्रह्म व्यक्त और अव्यक्तको प्राप्त होकर स्थावर जंगमका स्वामी ब्रह्मरूप हुआ ॥ १० ॥ उसको ब्रह्मभावसे जानो. उस ब्रह्मने शब्दका ग्रहण किया. वही स्थावर जंगम सब जगत्का पिता है ॥ ११ ॥

हे भारत ! वह अहंकारसे युक्त हो मैं प्रजा रचूंगा. ऐसा कहने लगे वही सब प्रजाओंके उत्पत्तिस्थान हैं. जिनकी यह प्रजा तन्तुरूप है ॥ १२ ॥ स्वभावसेही सब जगत् उत्पन्न होता है और स्वभावसेही पूर्वजन्मके वासना उपरान्त वैसा हुआ है. अहंकार स्वभावसे यह सब जगत् है ॥१३॥ सर्वव्यापी निरालम्ब अग्राह्य अज ध्रुव ब्रह्ममय ज्योति ब्रह्मशब्दसे कही जाती है॥१४॥अव्यक्तही व्यक्तिको प्राप्तहुआ है.वह व्यक्तता पांच तत्त्वोंके लक्षणसे हुई है. अनेक प्रकारके चिन्तनसे अनेक वस्तुओंको धारण करता हुआ ॥१५॥ ब्रह्मसे प्रेरित हुआ ब्रह्ममूर्तिको प्राप्त होकर जल निर्मित

अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत ॥ प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः ॥१२॥ स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाभवत् ॥ अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् ॥१३॥ सर्वव्यापी निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः ॥ एव ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥ १४ ॥ अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः॥धारयन् ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन् ॥१५॥ अथ मूर्तिं समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः ॥ ससर्ज सलिलं ब्रह्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥१६॥ वायुं पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः ॥ धारणाद्धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम् ॥ १७ ॥ तदेतद्वायुसंभूतं कृत्स्नं जगदभूत्पुरा ॥ एतद्देवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वति ॥ १८ ॥ पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता ॥ घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते ॥१९॥ फलत्वात्सीदमाना च सलिले सलिलोद्भवः ॥ व्याजहार शुभां वाणीं समन्तात्पूरयन्निव ॥ २० ॥

करते हुए. जिससे यह सब जगत् हुआ है ॥ १६ ॥ जलकी सृष्टिसे पहले वायुको देख मरीचि आदिने सतलोकमें संकेतित धातृशब्दको धारण किया ॥ १७ ॥ वायुके स्थूल अंश अग्नि आदिसे उत्पन्न हुआ यह जगत् पार्थिवताको प्राप्त हो तेजसे देव शमादिसे आक्रान्त हुआ समुद्रमें स्थित था ॥ १८ ॥ तब पृथ्वीकी इच्छावाले परमेश्वरने जलसे पृथ्वी अलग की वह घनी और द्रवरूप होनेसे पृथक्तासे युक्त हुई ॥ १९ ॥ कार्यरूप होनेसे जलमें सीदमान होता हुआ जलसे उद्धार होनेकी इच्छासे और चारों ओर वाणीको पूर्ण करता हुआ भूदेवता वाणीको बोला॥२०॥

मैं यहां दुःखी हुआ. बाहर आनेकी इच्छा करता हूं मुझे उद्धार करो इस गंभीर जलमें स्थित हो रहा हूं ॥२१॥जब मूर्तिधारा देवी सब प्राणियोंकी उत्पन्न करनेवाली यथायोग्य स्थानकी इच्छावाली स्थिरकी इच्छासे पुकारने लगी॥२२॥तब उसकी उससुभाषित वाणीको सुनकर वाराह रूप धारण कर नारायण सागरमें कूदे ॥२३॥ वह पृथ्वीको जलसे निकालकर इस महाकर्मको करके इसे स्थापित कर फिर लीन हो गये दिखाई न दिये॥२४॥ जो ब्रह्ममय ज्योति आकाशसंज्ञावाली है उसमें सब भूतोंके पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए॥२५॥अब भी सब योगके ज्ञाता विधातासे यह मनके द्वारा

ऊर्ध्वोऽहं स्थातुमिच्छामि संसीदाम्युद्धरस्व माम् ॥ गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिवीक्षोभितान्तरम् ॥२१॥ ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूत प्ररोहिणी ॥ यथायोगेन संभूता सर्वत्र विषयैषिणी ॥२२॥ श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च सुभाषिताम् ॥ बाराहरूपमास्थाय निपपात महार्णवे ॥२३॥ उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ समाधौ प्रलयं गत्वा प्रलीनो न च दृश्यते ॥ २४ ॥ एतद्ब्रह्ममयं ज्योतिराकाशमिति संज्ञितम् ॥ तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः ॥२५॥ अद्यापि मनसा धात्रा धार्यते सर्वयो-गिना ॥ ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजानां हितकाम्यया ॥ २६ ॥ भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम् ॥ तपनस्तूर्ध्वमातिष्ठन् रश्मिभिः स हसन्निव ॥ २७ ॥ तस्य मण्डलमध्यात्तु निःसृतं सोममण्डलम् ॥ स सनातनजो ब्रह्मा सौम्यं सोमत्वमन्वगात् ॥ २८ ॥ सोममण्डलपर्यन्तात्पवनः समजायत ॥ तदक्षरमयं ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन् ॥ २९ ॥ स तु योगमयाज्ज्ञानात्स्व-भावाद्ब्रह्मसंभवात् ॥ सृजते पुरुषं दिव्यं ब्रह्मयोनिं सनातनम् ॥ ३० ॥

कच्छ मच्छादि रूपसे धारण की जाती है अर्थात् सूक्ष्म ज्ञानयोगसे प्रजाके हितकी कामनासे॥२६॥पृथ्वीके मध्यभागको भेदन कर उत्पन्न होने-वाला सूर्य अपनी किरणोंसे जलको खैंचता हुआ प्रकट हुआ ॥ २७ ॥ उस सूर्यमण्डलके मध्यसे सोममण्डल निकला वह सनातन चन्द्रमा ब्रह्मरूप होनेसे ब्राह्मणोंका राजा है ॥ २८ ॥ सोममण्डलसे अक्षरात्मक ज्योतितेजसे पृथ्वीको बढाता हुआ पवन उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ वह सूर्यमण्डल

अधिदैविक अर्थोंका स्रष्टा सोमाख्य ईश्वरसे वेदको प्राप्त हो योगमय ज्ञानसे सनातन ब्रह्मयोनि और दिव्य पुरुषको रचता है ॥३०॥ द्रवरूप जल और घनरूप पृथ्वी है. छिद्र आकाश और ज्योति चक्षु है ॥३१॥ वायुसे स्पंदता और उसके संघातसे अग्नि होती है और ईश्वरसे पुरुष होकर ॥३२॥ सनातनरूप भूतात्मा पंचमहाभूतमय होके वसता है और यह सनातनरूप ब्रह्म बुद्धिरूप गुहाके विषय ज्ञानरूपसे जाना जाता है॥३३॥जो अग्नि देहधारियोंमें वसती है वह सूर्यकाही रूप है वह शरीरमें स्थित हुआ नित्य धातुओंमें रहता है॥३४॥वह स्वभावसेही क्षयको प्राप्त होकर स्वभावसेही बढता

द्रवं यत्सलिलं तस्य घनं यत्पृथिवी भवत् ॥ छिद्रं यच्च तदाकाशं ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ॥३१॥ वायुना स्पन्दते चैनं संघाताज्ज्योतिसंभवः ॥ पुरुषात्पुरुषो भावः पञ्चभूतमयो महान् ॥३२॥ भूतात्मा वै समे तस्मिंस्तस्मिन्देहः सनातनः ॥ गुहायां निहितं ज्ञानं योगाद्यज्ञः सनातनः ॥ ३३ ॥ तपनस्यैव तद्रूपं योऽग्निर्वसति देहिनाम् ॥ शरीरे नित्यशो युक्ते धातुभिः सह संगतः ॥ ३४ ॥ स्वभावात्क्षयमायाति स्वभावाद्व्ययमेति च ॥ स्वभावाद्विन्दते शान्ति स्वभावाच्च न विन्दति ॥३५॥ इन्द्रियैरतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे ॥ संभवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते ॥ ३६ ॥ यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपयातीह तत्त्वतः ॥ तावत्संसारमाप्नोति संभवांश्च पुनः पुनः ॥३७॥ इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित् ॥ तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति ॥ ३८ ॥ प्रतिषिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान् स भवत्युत ॥ न च रागव्ययंयाति न च सज्जति कर्हिचित् ॥३९॥ आगतिं त्वं गतिं चैव निधनं संभवं तथा॥भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः ॥ ४० ॥

है. स्वभावसेही शान्तिको प्राप्त होता और स्वभावसेही नहीं शान्त होता॥३५॥इन्द्रियोंसे मूढात्मा हो ब्रह्मपदमें मोहित हुआ उत्पत्ति और मरणको जीव प्राप्त होता है॥३६॥जबतक तत्त्वसे जीव ब्रह्मविषयको प्राप्त नहीं होता तबतक संसारको प्राप्त हो वारंवार जन्ममरणको प्राप्त होता है॥३७॥ जब यह योगज्ञाता इन्द्रियोंसे व्यतिरिक्त होता है तब यह ब्रह्मत्वको प्राप्त हो इन्द्रियादिकोंमें स्वरूपानंदकी प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है॥३८॥ब्रह्मज्ञानी इस निषिद्ध लोक और रागव्ययको कभी प्राप्त नहीं होता ॥३९॥ आना जाना उत्पत्ति नाश यह दूसरे प्राणियोंको देखकर सर्वज्ञ जानकर परम

सिद्धिको प्राप्त होता है॥४०॥विषयगोचर होनेमें आत्माकी गतिको देखकर कर्मसे निवृत्त हो ब्रह्मके पदमें प्रतिष्ठित होता है॥४१॥कामादिके लोभसे भिन्न हुई पूर्व यातना मनके द्वारा चित्तकी ग्रंथिको रोकती है और इस प्रकारसे भेदन करती है; जैसे सागर वायुसे भिन्न होता है॥४२॥वासनाको रोकनेसे कामादिसे मलीन हुई बुद्धि शुद्ध होती है वेदमें कहे ज्ञानसे यह जीव देहबंधनसे मुक्त हो जाता है॥४३॥तेजमूर्ति योगी विद्यासे लोक रचने और संहार करनेकी सामर्थ्य रखता है और इस लोकको रच सकता है॥४४॥तिर्यक्‌योनिमें प्राप्त हुए जीवोंको कर्म और नियमोंसे ब्रह्मयुक्त चित्त होनेके

आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरे ॥ पुरस्तात्कर्मनिर्वृत्तेः पदे ब्रह्म प्रतिष्ठितः ॥ ४१ ॥ चित्रग्रन्थींश्च मनसा रुन्ध्यात्पूर्वांश्च यातनाः ॥ भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥ पच्यते हृदयं नीलं परेभ्यो ज्ञानचक्षुषा ॥ ब्रह्मप्रोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात् ॥४३॥ सृजेदपि परं लोकं संहरेदपि विद्यया ॥ तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च संसृजेत् ॥४४॥ तिर्यग्योनौ गतांश्चैव कर्मभिर्नियमोपमैः ॥ तान्यपि प्रतिमुच्येत ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ॥ ४५ ॥ अक्षरं च क्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते ॥ न क्षरं विद्यते तत्र यद्ब्रह्म कर्मभिर्ध्रुवम् ॥४६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पृथिव्यां यत्कृतं छिद्रं तपनेन विवर्द्धता ॥ तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः ॥ १ ॥ पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् ॥ अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥२॥ तस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहार्द्धिमान् ॥ तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिसंभवः ॥ ३ ॥

कारण उनको कर्मबंधनसे छुटा सकता है॥४५॥मोक्ष और भोग दोनों वस्तु योगकर्मसे जानी जाती हैं. जो कर्मसे ब्रह्मगति मिलती है फिर उसका नाश नहीं होता ॥ ४६ ॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वैशंपायन बोले; सूर्यदेवने जो छिद्र पृथ्वीमें किया था वहां स्वभावसे निर्मित मैनाक पर्वत स्थित है ॥१॥ पर्व होनेसे इनको पर्वत कहते हैं. अचल होनेसे अचल और स्वभावसेही मेरु है ॥२॥ उस विस्तृत पर्वतके ऊपर महाऋद्धिमान् वह ज्योतिर्मय दीप्त शरीरवाला पुरुष उस परमात्माद्वारा स्वभावसेही स्थित किया गया है॥३॥

और उसके शिरपर जो ब्रह्ममय तेज स्थित है उसका ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष कहा गया है॥४॥वह मुखसे निकला हुआ तेजसे प्रकाशित चार मुख चार द्विजोत्तमोंके सहित प्रगट हुआ ॥ ५ ॥ उसके मुखसे वेद प्रगट हुआ है,वा तिस देवका मुख वेदसे प्रगट हुआ है इस कारण उस वेदके धारण करनेसे ब्रह्मा ब्राह्मण है. इस प्रकार यह महाभूत फिर पूज्यताको प्राप्त हो गये॥६॥जिन्होंने जलसे पृथ्वी देवीका उद्धार किया है वह ब्रह्माके स्थान (मुक्ति) मेरुपृष्ठको प्राप्त होकर अलोक होकर लोकताको प्राप्त हुआ॥७॥जिसकी पदसंधिमें ब्रह्मलोक मेरुशृंग स्थित है (यह ज्ञानपरत्व है पर्वत कल्पनामात्र है)

विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ॥ यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे ॥ तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम्॥४॥ वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च द्विजोत्तमैः ॥५॥ वक्रं ब्रह्मसमुद्भूतं ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावत्वमागतम् ॥६॥ उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात्सलिलाशयात् ॥ ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादालोको लोकतां गतः ॥७॥ पदसंधौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाभवत् ॥ उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ॥ ८ ॥ एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः ॥ अथवा नैव संख्यातुं शक्यं भूतेन केनचित् ॥ समाः सहस्रं बहुभिरपि दिव्येन तेजसा ॥ ९ ॥ चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसवृतैः ॥ नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः ॥ १० ॥ कोटिकोटिशतगुणैर्गुणितब्रह्मवादिभिः ॥ योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः ॥११॥ म रुद्भिः सह देवेन्द्रे रुद्रैर्वसुभिरेव च ॥ आदित्यैर्विश्वसहितै ररक्ष वसुधाधिपान् ॥ १२ ॥ ररक्ष पृथिवीं चैव भगवान्विष्णुना सह ॥ विवस्वद्वरुणाभ्यां च संघातं गमितां नृप ॥ १३ ॥

यह सौ सहस्र सौ योजन ऊंचा है ॥ ८ ॥ और इस प्रमाणसेभी चौगुना प्रमाण गिना जाता है अथवा कोई मनुष्य इसकी संख्या नहीं कर सकता. बहुत सहस्रों वर्षतक दिव्य तेजसे कोई नहीं जानता ॥ ९ ॥ जिस पर्वतमें सौ सौ योजनवाली धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यरूप चार शिला हैं ॥ १० ॥ उसमें करोड़ों२सौ ब्रह्मवादी योगयुक्त नित्य ब्रह्मपरायण निवास करते हैं ॥ ११ ॥ मरुत देवेन्द्र वसुओंके साथ आदित्य विश्वेदेवा सहित पृथ्वीके राजोंकी रक्षा की जाती है ॥ १२ ॥ यह सब भगवान् विष्णुके सहित पृथ्वीकी रक्षा करते हैं. सूर्य और वरुणके साथ मिले हुए अर्थात् जल अग्निसे

संघटित लिंगशरीरसे ब्रह्म निर्विशेषरूपकोप्राप्त होता है ॥१३॥ हे भारत ! उस ब्राह्मणशरीरसे ब्रह्मको प्राप्त होकर जो ब्रह्ममें तेज सब ओरसे समताको प्राप्त हो रहा है ॥ १४ ॥ वेदपारगामी ब्राह्मण जिसको ब्रह्म कहते हैं जो सत्यव्रतपरायण अनेक नियमोंसे प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार यह तीनों लोक ब्रह्माके दिनमें स्थित रहते हैं. उस दिनमें अव्यक्त प्रतिष्ठित ब्रह्मरूप प्रगट हो जीवरूप प्राणमें प्रतिष्ठित होता ह ॥१६॥ ईश्वरके प्रभावसे विश्वसित वेदके द्वारा प्रेरित किया जो नित्यकर्म है वह नियतकर्म शुद्धभावसे करनेसे ॥ १७ ॥ सदैव हित करनेवाला है यह वार्ता वेदपारगामी ब्राह्मणोंने कही है जो कर्मसे प्राप्त होता है वह ब्रह्मका पाद लेशमात्र कहा गया है ॥१८॥ और बहुरूप अर्थात् इन्द्र मित्र वरुणरूप होनेसे ब्रह्मभूत सत्य-

तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत ॥ यत्तद्विष्णुमयं तेजः सर्वत्र समतां गतम् ॥ १४ ॥ यत्तद्ब्रह्मेति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ नियमैर्बहुभिः प्राप्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ १५ ॥ एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽहनि समाहिताः ॥ अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेन प्रचोदितम् ॥ प्रवर्त्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम् ॥ १७ ॥ एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम् ॥ १८ ॥ बहुत्वाद्धिप्रभावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥ १९ ॥ विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन् ॥ एवं द्वन्द्वं स भगवान् प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥ २० ॥ स एव भगवान्विश्वो देव्या सह सनातनः ॥ विधाय विपुलान् भोगान् ब्रह्माचरति सानुगः ॥ २१ ॥ स एष भगवान् ब्रह्मा नित्यं ब्रह्मविदां वरः॥ निर्वाणमयगन्तॄणामकिंचनपथैषिणाम् ॥२२॥ सोमात्सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् ॥ यथाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥ २३ ॥

व्रतपरायण ब्राह्मणोंद्वारा विश्वरूप कहा जाता है ॥१९॥ विश्वरूप मनरूप बुद्धिरूप मानते हुए भगवान्ने प्रथम मिथुनको उत्पन्न किया है ॥२०॥ वह भगवान् विश्वसनातन देवीके साथ अनेक भोगोंको करता हुआ अनुचरों सहित विचरता है ॥ २१ ॥ यह भगवान् ब्रह्मा नित्य वेदके ज्ञाता निर्वाणमयको प्राप्त होनेवाले और अकिंचन मार्गकी इच्छावाले हैं ॥ २२ ॥ उमारूप विद्याके सहित ज्ञानशक्तिरूप परमेश्वरसे औषधीपति चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है, वह जलरूप धारा स्वर्गसे प्रादुर्भूत हुई है,जिससे महेश्वर भूतोंके आधिपत्यमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ २३ ॥

भूतेशको अभिषेक कर स्वाभाविक कर्म करके नाद करती है,इस कारण इसको नदी कहते हैं ॥२४॥ वह मार्गके रोकनेवाले पर्वतोंका तिरस्कार कर सहस्र प्रकारसे युक्त हो स्वर्गसे (गां) पृथ्वीमें प्राप्त होनेके कारण गंगा कहलाई, और गोदावरी आदि रूपसे समुद्र संगममें सात प्रकारकी हुई है ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकारसे यह सहस्र प्रकारोंसे वारंवार लोकको बढाती है. इस लोक परलोकको संभावित करती है ॥ २६ ॥ इसीसे सब प्राणी और महाभूत (जरायुजादि जीव) बढते हैं. इसीसे सब बुद्धिमानोंकी क्रियाका आरंभ होता है अर्थात् मनुष्यादि होकर उससे सब क्रिया बढती है॥२७॥ उस देवके चार मुखोंसे निकली हुई अक्षरमयी सिद्धि वेदरूप उपदेशपनेको प्राप्त हुई है ॥२८॥ उसका ज्ञानमय पुण्यरूप चतुष्पाद सनातन

अभिषिच्य भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः ॥ नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी ॥ २४ ॥ सा ब्रह्मलोकं संभाग्य अभिभूय सहस्रधा ॥ गां गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च ॥ २५ ॥ सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः ॥ इमं लोकमनुं चैव भावयन् क्षरसंभवम् ॥२६॥ ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च ॥ ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम् ॥ २७ ॥ चतुर्भिर्वदनैस्तस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ तदाक्षरमयी सिद्धिर्दिशत्वं समुपागता ॥ २८ ॥ तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम्॥ पतित्वेनाभद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥२९॥ पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत् ॥ ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥ ३० ॥ गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ॥ इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः ॥३१॥ न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले ॥ ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वताः ॥ ३२ ॥

है. यह पितामह ब्रह्मा देवताओंके अधिपति हुए ॥२९॥ धर्मके चार चरण हैं जिनसे यह जगत् धारण किया जाता है. ब्रह्मचर्य व्यक्तता और पवित्र गृहस्थधर्मसे स्थित है अर्थात् वह ईश्वर यज्ञरूप चार चरणवाला है. ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु यह चारों चरण हैं अर्थात् धर्मका एकपाद ब्रह्मचर्य आश्रम है. गृहस्थाश्रम दूसरा पाद है ॥ ३० ॥ वानप्रस्थ तीसरा और संन्यास चौथा पाद है. यह धर्मके चार चरण धर्मके कारण हैं और स्वर्गके हेतु कहे हैं ॥३१॥ न्याय और गुप्त धर्मसे ब्रह्माण्डमें चन्द्रसे अधिष्ठित मन बढता है और वेदके द्वारा प्रमाणित योगसे शाश्वत वेद-प्रवृत्त होते हैं ॥३२॥

पूर्वोक्त योगोंके जाननेवालोंसे पितर तृप्त होते हैं और ऋषिभी धर्मसे उस पर्वतके शिखरपर स्थित हैं॥३३॥उस मेरुपर्वतकी उत्तम शिखरको देखकर चरणोंसे वृषणको पीडित कर अर्थात् सिद्धासनसे स्थित हो विचार करते हैं॥३४॥ग्रीवाको निग्रह कर पृष्ठभागको निवारण कर हँसते हुए नाभिदेशमें हाथोंको रखकर (अंजलि बांधकर वाममुद्रा कर वामके ऊपर दक्षिण हाथ कर) सम्पूर्ण अंगोंको निग्रह करता हुआ ॥ ३५ ॥ मस्तकमें ब्रह्मको प्राप्त कर ब्रह्माने अधिकारी मनसे योगसे योगेश्वर विष्णुको सृजा ॥३६॥ इन्द्रियोंसे रहित बिंबसे बिंबके समान विष्णुको उद्धृत करनेसे

गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥ ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः ॥ ३३ ॥ नगस्य तस्य संपश्य मेरो शिखरमुत्तमम् ॥ पद्भ्यां संपीड्य वृषणावृषिभिस्तौर्विचार्यते ॥ ३४ ॥ ग्रीवां निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव ॥ नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वशोऽङ्गानि संक्षिपन् ॥ ३५ ॥ मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसापि पितामहः ॥ असृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ॥ ३६ ॥ व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद्बिम्बमिवोद्धृतः ॥ तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः ॥३७ ॥ रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः ॥ ३८ ॥ नोपलभ्यति मूढानां प्रत्यक्षं ब्रह्मशाश्वतम् ॥ ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ॥ ३९ ॥ ज्योतिश्चक्षुषि संबद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः ॥ बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ॥ ४० ॥ ब्रह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ॥ नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते ॥४१॥ हिंसायोगैरयोगात्मा सर्वप्राणचरैर्नृप ॥ भूतयो भुवि भूतेशो मोहप्राप्तेन चेतसा ॥ ४२ ॥

तेजकी मूर्ति धारण करनेवाला आकाशमें उदित चन्द्रमाके समान प्रगट होता है ॥३७॥ वह दूसरे सूर्यके समान ब्रह्मयोगसे शोभित हुए. वह प्रभु अपनी अतुलप्रभासे आकाशके मध्यमें शोभित हुए॥३८॥मूढोंको वह शाश्वत ब्रह्म प्रत्यक्ष नहीं होता है. वह क्रिया नियम्य और नियामक रूपसे ललाटके मध्यमें स्थित हैं ॥ ३९ ॥ नेत्रोंको प्रकाशित करनेवाली ज्योति सूर्य और चन्द्रमाका बिंब है. अध्यात्मज्ञानी इसको बुद्धिपूर्वक देखते हैं ॥४०॥ जो वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सत्यव्रतमें परायण हैं उन्हींको यह अध्यात्मज्ञान विदित होता है. दूसरे इसको नहीं जानते ॥४१॥ जो योगी पृथ्वीमें प्राणि-

योंकी निग्रह अनुग्रह करते हैं जिनका आत्मा हिंसायोगसे अयोग हो रहा है तथा ऐश्वर्यसे उपजे हुए मोहमें प्राप्त हुए चित्तसे अयोगात्मा ॥ ४२ ॥ कुत्सित कर्म और प्राणियोंके वधकी इच्छा करनेवाला अपने भोगोंके अर्थ ईश्वरको नहीं जानता ॥४३॥ हे ब्रह्मन् ! सावधान मनवाला मोक्षप्राप्तिके कारण चन्द्रमंडलके स्थानसे बडी चन्द्रसम्बन्धी ज्योतिमें ॥ ४४ ॥ हृदयमें प्रवेशकर सगुण ब्रह्मके हृदयके भीतर गर्भसे उपजनेवाले अकार उकार मकार और अर्द्धमात्रासे चार प्रकारवाला होकर ॥ ४५ ॥ ब्रह्मतेजयुक्त होकर शाश्वत ध्रुव अविनाशी इन्द्रियगुणोंसे अयुक्त तेजगुणोंसे युक्त ॥ ४६ ॥ चन्द्रकिरणके समान उज्ज्वल प्रकाशमान वर्णकी संज्ञावाले देवने नेत्रोंसे यजुके साथ ऋग्वेदको उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥

कर्मभिः कुत्सितैरन्यैः सर्वप्राणिवधैषिणाम् ॥ नराणां योगमाधाय स्वेषु मात्रेषु भारत ॥४३॥ समाहितमना ब्रह्मन् मोक्षप्राप्तेन हेतुना ॥ चन्द्रमण्डलसंस्थानाज्ज्योतिश्चान्द्रं महत्तदा ॥ ४४ ॥ प्रविश्य हृदयं क्षिप्रं गायत्र्यां नयनान्तरे ॥ गर्भस्य संभवो यश्च चतुर्धा पुरुषात्मकः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मतेजोमयो युक्तः शाश्वतोऽथ ध्रुवोऽव्ययः ॥ न चेन्द्रियगुणैर्युक्तो युक्तस्तेजोगुणेन च ॥ ४६ ॥ चन्द्रांशुविमलप्रख्यो भ्राजिष्णुर्वर्णसंस्थितः॥ नेत्राभ्यां जनयद्देवो ऋग्वेदं यजुषा सह ॥ ४७ ॥ सामवेदं च जिह्वाग्रादथर्वाणं च मूर्द्धतः ॥ जातमात्रस्तु ते वेदाः क्षेत्रं विन्दन्ति तत्त्वतः ॥ ४८ ॥ तेन वेदत्वमापन्ना यस्माद्विन्दन्ति तत्पदम् ॥ ते सृजन्ति तदा वेदा ब्रह्म पूर्वं सनातनम् ॥४९॥ पुरुषं दिव्यरूपाभं स्वैः स्वैर्भावैर्मनोभवैः॥अथर्वणस्तु यो योगः शीर्षं यज्ञस्य तत्स्मृतम् ॥५०॥

यह विश्व और तैजसरूप है. जिह्वाके अग्रभागसे सामवेद प्राज्ञरूप उत्पन्न हुआ शब्दमात्र गम्यत्व होनेसे जिह्वाग्रसे उत्पत्ति कही. मूर्धासे अथर्व हुआ अर्थात् इनसे सबसे विलक्षणरूप होनेसे जो मन नेत्रादि इन्द्रियोंके अगोचर है उस सब शुद्धके मूर्धासे हुआ. उत्पन्न होतेही यह वेद अपने क्षेत्रको प्रकाशकर उपाधिको ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ इसीसे यह वेदत्वको प्राप्त हुए हैं. कारण कि इनसे तत्पद जाना जाता है. यही वेद सनातन ब्रह्मको जो तुर्यातीत है प्रकाश करते हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दिव्यकान्तिवाले पुरुषको अपने २ मनोभवरूप भावोंसे प्रगट करते हैं. अथर्वणको तुर्य धारणायोगका शिर

कहा है ॥ ५० ॥ ग्रीवा और बाहुओंका अन्तर ऋग्भाग है.हृदय और पार्श्वभाग साम कहाता है ॥ ५१ ॥ बस्ति शिर कटि जंघा ऊरु चरण यह यज्ञकल्पित यजुर्भाग कहलाता है यह पुरुष दिव्यरूप कन्तिमान् चौथे अक्षरसे प्रादुर्भूत है ॥ ५२ ॥ यही वेदमय यज्ञ सब प्राणियोंको सुख देनेवाला है. वह हिंसारहित सनातन यज्ञ दोनों लोकोंका मंगल करनेवाला है अर्थात् सबीज निर्बीज नामसे दो प्रकारका योग है. पहला चार प्रकारका है. वितर्क विचार आनंद स्मृतिरूप जब बाह्यप्रतिमादिमें चित्त नियमन किया जाता है वह वितर्क ऋक्शब्दसे कहा जाता है और जब स्वप्नके समान अन्तरबुद्धिसे मनोमात्र प्रतिमादिमें कल्पना की जाती है वह विचार यजुशब्दसे कहा जाता है.जब इसको छोडकर तुर्यमें जानेकी इच्छासे मध्यमें लय होता है वह प्रकृति लीन सामशब्दसे कहा जाता है यह लयरूप होनेसे अयोग है और तुर्यपदको प्राप्त होनेपर जब सम्पूर्ण ऐश्वर्य सर्वज्ञादिका वर्णन किया जाता है

ग्रीवा बाह्वन्तरं चैव ऋग्भागः स भवेत्ततः॥हृदयं चैव पार्श्वं च सामभागस्तु निर्मितः॥५१॥बस्ति शीर्षं कटीदेशं जङ्घोरूचरणैः सह ॥ एवमेष यजुर्भागः संघातो यज्ञकल्पितः ॥ पुरुषो दिव्यरूपाभः संभूतो ह्यमरात् पदात् ॥५२॥ स हि वेदमयो यज्ञः सर्वभूतसुखावहः ॥ उभयोर्लोकयोस्तात हिंसावर्ज्यः सनातनः ॥५३॥ योगारम्भं कर्मसाध्यं ब्रह्मचर्यं सनातनम् ॥ प्रभवः सर्वभूतानां यो विन्दति स वेदवित् ॥५४॥ स सिद्धः प्रोच्यते लोके सिद्धिरेव न संशयः ॥ निर्मुक्तैः सर्वकर्मभ्यो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥५५॥ वैष्णवे यज्ञमित्येवं ब्रुवते वेदपारगाः ॥ ब्राह्मणा नियमश्रान्ता वेदोपनिषदे पदे ॥ ५६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राहस्य कामतः ॥ कारण श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने ॥ ५७ ॥

वह आनंद कहलाता है और जब अंधकारको छोडकर मैं हूं इस प्रकारका जो आनंद है वह स्मित है.यह दोनों अथर्वशब्दसे कहे जाते हैं. (विस्तार इसका भागवतमें वेदस्तुतिपर देखो)॥५३॥यह योगारंभ सनातन कर्म ब्रह्मचर्यसे सिद्ध होता है यही सम्पूर्ण भूतोंका उत्पत्तिरूप है जो इसे जानता है वही वेदवित् है॥५४॥वही लोकमें सिद्ध कहाता है उसेही सिद्धि है इसमें सन्देह नहीं. वेदके जाननेवाले मुनियों करके वह सब कर्मोंसे निर्मुक्त कहा गया है ॥५५॥ इस प्रकार वेदपारगामियोंने यही वैष्णवयज्ञ कहा है. यह वार्ता वेदके जाननेवाले वेद उपनिषदमें श्रान्त जन ब्राह्मण कहते हैं॥५६॥ जन्मेजय बोले; मनके ग्रहण करनेसे योग चित्तकी कामनासे उपलंभ होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! सो मैं इसके कारणके सुननेकी इच्छा करता हूं जैसा आप

मानते हैं ॥५७॥ वैशंपायन बोले; हे भारत ! इसका कारण कुछ बाह्य नहीं है. हे राजन् ! इसका कारण शरीरके अन्तर्गत मन है ॥ ५८ ॥ जिससे शंसित व्रतवाले ब्राह्मण वेद्य कहते हैं.उस अवेद्य और वेद्यको कर्मोंसे नहीं जान सकते॥५९॥हे राजन्!सदा ब्रह्मके सेवन करनेवाले विनीत ब्राह्मणद्वारा जो सिद्धिके निमित्त सदा तत्त्वको जानता है॥६०॥सदा पवित्र होकर नियत ब्रह्मकर्मसे युक्त हो हाथ जोडकर ब्राह्मण गुरुके निकट उपस्थित हो॥६१॥तत्त्वका जाननेवाला प्रभात और संध्यासमय मोक्षके कर्मोंको करे विनीत और ब्रह्मभावसे सावधान रहे॥६२॥ मनसे उत्तम वैष्णव पदको

वैशम्पायन उवाच ॥ न ह्यस्य कारणं किंचिद्बाह्यं भवति भारत ॥ अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप ॥ ५८ ॥ येनं वेद्यं विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा ॥ सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्महीपते ॥६०॥ सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा ॥ उपतिष्ठेत सद्गुरुं बद्धाञ्जलिपुटो द्विजः ॥६१॥ सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत् ॥ विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिर्मुनिः ॥ ६२ ॥ संप्रपद्येत मनसा वैष्णवं पदमुत्तमम् ॥ ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः ॥६३॥ गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा ॥ अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो भावबन्धनात् ॥६४॥ तदेवाक्षरमित्याहुर्यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ तर्हि तत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम् ॥६५॥ ब्राह्मणानां विनीतानां वैष्णवे पदसंचये ॥ सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविगर्हिणाम्॥६६॥अपुनर्भाविनो लोकाः कर्मयोगप्रतिष्ठिताः ॥ अनादानेन मनसा राजन्कर्मणि कर्मणि ॥६७॥ आदानाद्बध्यते जन्तुर्निरादानात्प्रमुच्यते ॥ ब्राह्मणेभ्यः क्रियावाप्तिर्जन्तोः पूर्वाज्जनाधिप॥६८॥

प्राप्त हो. इसप्रकार सावधान मतिवाला ब्राह्मण ध्यान करता हुआ प्रसन्न हो ॥६३॥ निर्विकारचित्तसे परब्रह्मको प्राप्त होकर फिर न लौटनेके भावका जाननेवाला निर्मम होकर भावबंधनसे पृथक् हुआ रहे॥६४॥जो सनातन ब्रह्म है उसको अक्षर कहते हैं. वहकर्म और विद्यायोगसे दीखता है॥६५॥ विनीत ब्राह्मणोंको वैष्णवपदके संचयके निमित्त सब द्रव्योंसे अतिरिक्तोंको जो कामयोगकी निन्दा करते हैं ॥ ६६ ॥ जो फिर संसारमें न आनेकी इच्छासे कर्मयोगमें प्रतिष्ठित हैं. हे राजन् ! वे कर्मोंमें फलके नहींचाहनेवाले मुक्त होते हैं ॥ ६७ ॥ प्राणी कर्मफलको ग्रहण करनेसे बंधता है त्यागनेसे

छूट जाता है. हे राजन् ! पूर्वजन्मके संस्कारसे ब्राह्मणोंके अर्थ क्रियाओंकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ इन्द्रिय बंधनसे मुक्त हुआ परम पदको प्राप्त होकर फिर मनुष्य शरीरमें नहीं आता ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जन्मेजय बोले; उपसर्ग योग और ध्यान करनेके योग पद इनके प्रतापसे मनुष्य देहको फिर प्राप्त नहीं हो सक्ता है ॥ १ ॥ वशंपायन बोले; जो तुम ब्रह्मादिक योगियोंकी अनेक प्रकारसे उत्पत्ति देखते हो उसे बुद्धिसे सुनो. जो मनसे ब्रह्मादिकी अनेक प्रकार प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ शब्दादि पांच सिद्धियोंके गुण त्यागन कर ब्रह्मको देखते हुए योगयुक्त मनसे पंचेन्द्रियनिवासी ब्रह्मको चिन्तन करनेसे ॥ ३ ॥ सनातन ब्रह्मयज्ञकी

मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्तश्च परमं पदम् ॥ न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥६९॥ इति श्रीमहाभारते खि० हरि० भविष्यपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम् ॥ न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया ॥ उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ॥२॥ पञ्च सिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणा नृप ॥ योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ॥३॥ ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् ॥ बहुरूपमनैश्वर्यात्प्रवर्त्तति निरोधनम् ॥ ४ ॥ पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत ॥ कामक्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ॥ ५ ॥ तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान् ॥ नीललोहितवर्णाभः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः ॥ ६ ॥

प्राप्ति होती है, बहुतरूप अनैश्वर्य वैराग्य बलके अभावसे ब्रह्मयज्ञ निरोधको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे भारत ! नौ द्वारयुक्त पंच इन्द्रिय समूह काम क्रोध लोभकी मेधासे रुका हुआ ग्रामरूप शरीरका योग अनैश्वर्यसे रुक जाता है ॥ ५ ॥ भृकुटि नासिकाके मध्यमें धारण किये तेजसे नेत्रोंके प्रणिधान किये चित्तको संयुक्त कर स्थित हुए योगीके धुआंरूप जल ओसके समान बहुतसा निकलता है. नील लोहित वर्णके समान कांतिवाले पीत श्वेत धातुओं द्वारा ॥ ६ ॥

मजीठके रंगके समान कबूतरके रंगके समान शुद्ध वैडूर्य और पद्मदलकी कान्तिके समान ॥७॥ स्फटिकमणिके वर्ण नागेशके सदृश इन्द्रगोपवर्णकी समान चन्द्रकिरण और जलके समान ॥ ८ ॥ इन्द्रधनुषके समान बहुत वर्णके धूमसमागमको प्राप्त होनेवाले एकसाथ मेघसम्पत्तिको प्राप्त होनेवाले ॥९॥ पक्षोंवाले पर्वतोंकी समान आकाशको रोकनेवालेधूमवर्ण मेघ जलके धारण करनेवाले जलसमूहको उगलते हुए पृथ्वीतलमें प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥ शिरमें परमयोगसे युक्त सैंकडों ज्वालाओंसे युक्त महान् अग्नि मनसे उपजी कंपित होती है ॥ ११ ॥ उसकी सहस्रों सैंकडों ज्वाला-

माञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा ॥ शुद्धवैडूर्यवर्णाभैः पद्मवर्णदलप्रभैः ॥ ७ ॥ स्फटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा ॥ इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ॥ ८ ॥ बहुवर्णैः सुधूमौघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः ॥ संपतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमे ॥ ९ ॥ निरुध्यन्त इवाकाशे पक्षवद्भिरिवाद्रिभिः॥ते धूमवर्णाः संघाता घनाः सलिलधारिणः॥निर्वेमुश्चैव तोयौघान्विविशुर्वसुधातले॥१०॥ मूर्ध्नि चैव महानग्निर्मानसो धूयते प्रभुः ॥ युक्तः परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृतः ॥ ११ ॥ तस्यार्चेर्विस्फुलिङ्गानां सहस्राणि शतानि च ॥ विसस्रुः सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगाग्नयः ॥ १२ ॥ यावन्त्यो वर्षधारास्तु यावन्त्योऽर्च्योऽनलस्य च ॥ समेयुर्वारिधाराभिर्विपुले वसुधातले ॥१३॥ वर्णाभ्यां युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान् ॥ दिव्यसिद्धगुणोद्भूतः सूक्ष्मप्राणविवर्द्धनः॥१४॥ वेगवान्भीमनिर्घोषो बलवान्प्राणगोचरः ॥ तैरेव चाग्निसंघातैर्धातुभिः सह संगतः ॥ १५ ॥ सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिं कृत्वा पृथग्विधाम् ॥ अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः ॥ १६ ॥

ओंके विस्फुलिंग प्रलयाग्निके समान जलते हुए सब शरीरसे निकलते हैं ॥ १२ ॥ जितनी जलकी धारा हैं उतनीही अग्निकी चिनगारी हैं वे विपुल पृथ्वीतलमें जलधारासे मिलते हैं ॥१३॥ श्वेत लोहित वर्णवाले दिव्य सिद्धगुणोंसे युक्त सूक्ष्म प्राणका बढानेवाला ॥१४॥ वेगवान् भयंकर शब्दवाला बलवान् प्राणगोचर उन्हीं अग्निके संघात और धातुओंसे मिला हुआ ॥ १५ ॥ सैकडों सहस्रों मूर्ति पृथ्वीमें पृथक् करके अग्नि वायु जल

भूमि धातु ब्रह्मसे पूरित हुए ॥ १६ ॥ समवायभावको प्राप्त हो बीजभूत ब्रह्मयोगसे संघातको प्राप्त हो धातुके कारणभावको प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ जो ब्रह्म चक्षुके मध्यमें सूक्ष्म विराट्पुरुष है वह सूक्ष्म विराट्से बहुतसे पुरुषोंको रचता है ॥ १८ ॥ यही भगवान् विष्णु सनातन व्यक्त और अव्यक्त है यही सब विद्याओंके आधार और प्रलयमें प्रलयान्त करनेवाले हैं ॥ १९ ॥ उनको शिरमें धातुओंसे नद्ध ब्रह्मसे प्रेरित जन प्रवेश करते हैं. वे अन्तर पुरुष सब सुखदुःखके ज्ञाता जीवमें प्रवेश करते हैं ॥ २० ॥ तब वे ब्रह्मसम्मित मूर्ति चेष्टा करने लगती हैं धरणी देवीको भेदन कर

समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते ॥ संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप ॥१७॥ यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट् ॥ तयोरन्यान्बहून्सूक्ष्मान्त्ससृजे पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ स एव भगवान्विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तकृत् ॥१९॥ तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशान्ति ब्रह्मचोदिताः ॥ तेऽन्तरा पुरुषाः सर्वे ज्ञातारः सुखदुःखयोः ॥ २० ॥ अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसंमिताः ॥ भित्त्वा च धरणीं देवीं प्रापद्यन्त दिशो दश ॥२१॥ इत्येते पार्थिवाः सर्वे ऋषयो ब्रह्मनिर्मिताः ॥ तत्रैव प्रलयं याताभूमित्वमुपयान्ति च ॥ २२ ॥ कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबंधनैः ॥ कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिंद्रियाणां च बन्धनात् ॥ २३ ॥ तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञतां कर्मगोचरैः ॥ क्षराद्धूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तपोमयाः ॥ २४ ॥ येन तन्तुरिवाच्छन्नो भावभावः प्रवर्तते ॥ धूमादभ्रास्तु संभूता अभ्रात्तोय सुनिर्मलम् ॥ २५ ॥

दशों दिशाओंमें प्राप्त होती हैं ॥ २१ ॥ यह सब पृथुभूतसे उत्पन्न होनेसे पार्थिवरूप सब ब्रह्मनिर्मित ऋषि फिर प्रलयको प्राप्त हुए भूमितलमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥२२॥ कर्म क्षय होनेसे छूट जाते हैं कर्मबंधनवाली धातुओंसे छूट जाते हैं कर्मक्षयसे इन्द्रियोंके बंधनसे छूट ॥ २३ ॥ अज्ञानतासे कर्मगोचर होनेके कारण उसी प्रकृतिको प्राप्त हो संसारमें आते हैं. अग्निहोत्रादि कर्म करनेवाले मनुष्य तपोमय कृच्छ्र चान्द्रायणादि कर्म करनेवाले होते हैं ॥२४॥ जिससे तंतुके समान अवच्छिन्न भाव अभाव प्रवृत्त होता है धूमसे मेघ और मेघसे निर्मल जल होता है ॥ २५ ॥

जलसे पृथ्वी होती है. पृथ्वीमें फल फलसे रस रससे शरीरधारियोंके प्राण होते हैं ॥२६॥ यज्ञोंमें जो सनातन ब्रह्महै तन्मय ब्रह्म चैतन्य रूप रस है. जो बहुतसे कारणोंसे प्रधान ब्रह्म कहा है वह तपसे श्रान्त तपव्रतमें परायण ब्राह्मणोंने प्रधानभूत कहा है ॥२७॥ हे भारत ! वहअपने भावसे अव्यक्तसे व्यक्तताको प्राप्त हुआ सब भूतोंके अन्तरमें विद्याके सहितविचरण करता है॥२८॥ कर्मकर्ताके विषयमें अनेक प्रकारसे स्थित तपसे दग्ध-पापवालोंकी चक्षुसे नहीं दीखता ॥२९॥ ब्रह्मवादी ज्ञानियोंको चक्षुसे दीखता है वह दोनों भृकुटिके मध्यसे मेघयुक्त सूर्यके समान निकलता है

जगती जलात्तु संभूता जगत्येव च यत्फलम् ॥ फलाद्रसस्तु संजज्ञे रसात्प्राणस्तु देहिनाम् ॥ २६ ॥ रसश्च तन्मयो जज्ञे यत्त द्ब्रह्म सनातनम् ॥ प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः कारणान्तरैः ॥ ब्राह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ २७ ॥ अव्यक्ताव्य-क्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत ॥ अन्तस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं विद्यया सह ॥२८॥ कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्तमनेकधा ॥ नोप-लभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ २९ ॥ उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ निःसृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान् ॥ ३० ॥ चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वैर्निष्परिग्रहैः ॥ योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम् ॥ ३१ ॥ प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निधनं तथा ॥ विधत्ते शतशो ब्रह्मा संक्षये च भवेत्तदा ॥ ३२ ॥ कर्मणः कर्मयोगज्ञो भूतेभ्यो नात्र संशयः ॥ अविनाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यायनेन च ॥ ३३ ॥ युगं द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसंहितम् ॥ एतद्ब्रह्मयुगं नाम युगानां प्रथमं युगम् ॥ ३४ ॥ सहस्रयुगयोरन्ते संहारः प्रलयान्तकृत् ॥ सूक्ष्मं भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम् ॥ ३५ ॥

॥ ३० ॥ वह लोकमें पक्षीके समान निर्द्वंद्व विचरता है. हे कौरव्य ! योगधर्मसे अवश्य फल मिलता है ॥ ३१ ॥ भूतोंका प्रादुर्भावक्षय और निधन ब्रह्माजी सैकडों वार करते हैं. प्रलयके उपरान्त सृष्टि होती है ॥ ३२ ॥ कर्मसे कर्मयोगोंका जाननेवाला भूतोंके कर्मोंका जाननेवाला लोकके अविनाश और धर्मकी पुष्टिके अर्थ ॥३३॥ बारह सहस्र युग सहस्रयुगके सहित अर्थात् तेरह सहस्र युगका ब्रह्माका युग प्रथम जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ सहस्र युगके अन्तमें प्रलयान्त करनेवाला संहार उपस्थित होता है. उस समय लोक निर्विकार अचेतन और सूक्ष्मरूप होता है॥ ३५ ॥

जब इस प्रकार सब सनातन जगत् प्रलयको प्राप्तहोता है तब अपने कारणगुणोंसे सूक्ष्म ब्रह्म स्थित होता है॥ ३६॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ जन्मेजय बोले; हे महामुने ! विस्तारसे मैं प्राग्वंश श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं. हे ब्रह्मन् ! जो सगुणब्रह्मको जाननेवाले आद्ययुगोंके विस्तारसे युक्त हैं॥ १॥वैशंपायन बोले;जोआप बुद्धिपूर्वक सुननेकी इच्छा करते हैं वह मुझसे सुनिये.देवके ऊपर विश्वास करनेवाले युक्तमनसे सुनिये ॥२॥ योगात्मा ब्रह्मसंभव भगवान् ऋद्धिको प्राप्त होकर प्राणियोंकी बहुतायत करते हुए॥ ३॥ब्रह्मासनके ऊपर बैठे

तथा प्रलयमापन्नं जगत्सर्वं सनातनम् ॥ ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निमित्तं कारणैर्गुणैः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्राग्वंशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने ॥ आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन् ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मां पृच्छसि मेधया ॥ उपपन्नेन मनसा दैवप्रत्ययसाधिना ॥२॥ ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ भूतानां बहुलत्वं च चकारेहेश्वरः प्रभुः ॥ ३ ॥ स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः ॥ अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥४॥ रक्तश्च मोक्षविषये सच ज्ञानमये पदे ॥ यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥ ५ ॥ ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगाद्वेदात्मकं सदा ॥ ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥ ६ ॥ ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ॥ ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितमिच्छता ॥ ७ ॥ तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते ॥ ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥ ८ ॥

॥ ३६ ॥

हुए ब्रह्मा प्रभु सहसा विक्षिप्त हुए. हे भारत ! उस समय उनका स्थाणुके समान अचलभाव हो रहा था॥४॥वह ज्ञानरूप मोक्षपदमें स्थित हुए थे कि जिससे सैंकडों पद निकल कर प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सब कालमें वेदात्मक ब्रह्मयज्ञको करते हैं उससे ब्रह्माका महाज्ञान और ऐश्वर्य बढता है ॥ ६ ॥ तब ब्रह्मभूत और प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माने प्रथम ऐश्वर्य प्रगट किया ॥ ७ ॥ निर्विकार कर्मसे ऐश्वर्यरूप आकाश

प्रवृत्त किया ॥ ८ ॥ तब निर्मल ब्रह्मरूप अविनाशी अन्तरिक्ष प्राप्त हुआ जो सब प्राणी और ब्रह्मवादियोंका संहाररूप है. जहां देहधारी योगके ध्रुव ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ आकाश ऐश्वर्यसे सम्पन्न संयुगमें ब्रह्मवादी और उससे प्रवर्तमान ऐश्वर्य वायुभावको करता है और बहुतसे विकारोंमें पडे हुए महाबलोंसे संवृत ॥ १० ॥ और इन विकारोंसे चारों ओर ढके और निरुद्ध हुए ध्रुव ऐश्वर्यको प्राप्त हो ब्राह्मण सिद्ध हो जाते हैं ॥११॥ तब वह शरीरादिसे निकलकर आकाशमें धावमान होता है. निरालम्ब अनालम्ब्य मनसे ॥ १२ ॥ ऐश्वर्यभूत

तदान्तरिक्षं संप्राप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम् ॥ संहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम् ॥ ध्रुवमैश्वर्ययोगानां प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥ ९ ॥ आकाशैश्वर्यभूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना ॥ प्रवर्त्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च ॥ विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः संपतद्भिर्महाबलैः ॥१०॥ एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्च समन्ततः ॥ ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥११॥ शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति ॥ निरालम्बो निरालम्बानालम्ब्य मनसा ततः ॥१२॥ ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन्दिवि न दृश्यते ॥ चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरंदरसमैरपि ॥१३॥ ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः ॥ विभक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते यं पश्यन्ति साधवः ॥१४॥ एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥ अन्तश्चरति भूतानां विद्धि चेतनया सह ॥१५॥ एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसंभवः ॥ वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ १६ ॥ अरूपी रूपसंपन्नो धातुभिः सह संगतः ॥ अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥ १७ ॥ एतत्पूर्वमनुध्याय मनसापूरयन्निव ॥ वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिणः ॥ १८ ॥

भूतात्मा चरता हुआ स्वर्गमें नहीं दीखता है. चाहे पुरन्दरके समान चक्षु भी क्यों न हों ॥१३॥ जो ब्राह्मणश्रेष्ठ मनसे ओंकारका ध्यान करते हैं वे महात्मा सब कर्मोंसे रहित होकर उनको देखते हैं ॥१४ ॥ ब्राह्मण मनीषियोंका यही परब्रह्म है. यह चेतनके सहित भूतोंके अन्तरमें फिरता है सो जानो ॥१५॥ यह शब्दरूपी महानाद पुरातन और ब्रह्मसंभव है यह वायुभूत अक्षरको प्राप्त है. इस प्रकार द्विजाति कहते हैं॥१६॥रूपरहित रूपसे सम्पन्न धातुओंसे संगत हुआ कामकर सब कुछ करनेवाला वशी प्राणियोंके अन्तःकरणमें चरता है ॥१७॥ यह प्रथम ध्यान कर मनसे पूर्ण

करता हुआ बुद्धिमान् वेदान्तयज्ञको चिन्ता करता हुआ ॥१८॥ पवित्र ब्राह्मण चतुर उसके यशको प्राप्त होता हुआ ब्रह्मलोकमें उत्तम वैष्णवपदकी इच्छा करता हुआ ॥ १९ ॥ उस पदप्राप्तिके निमित्त विगतज्वर होकर सब क्रिया करता है. हे राजन् ! यह जन्म देनेवाले संसारको इच्छा नहीं करते ॥२०॥ विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीनोंको समर्पण करनेवाले माल्य उपहार आदिसे सत्यपराक्रमवाले परमात्मा विष्णुको यजन करते हैं ॥२१॥ वे वेदप्रमाण युक्त यजन और विक्रम करके तथा ब्रह्माजी वेदोक्त वचनोंसे वैष्णवतेजको प्राप्त हो ॥२२॥ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण तथा ब्रह्मयज्ञ करनेवाले

ब्राह्मणाः शुचयो दान्ता यशोयुञ्जस्तदन्वया ॥ ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णवं पदमुत्तमम् ॥१९॥ पदहेतोः क्रिया सर्वाः कुर्वन्ति विगतज्वराः ॥ न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत॥२०॥ त्रिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजाः ॥ यजन्ति परमात्मानं विष्णु सत्त्वपराक्रमम् ॥२१॥ यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वा प्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप ॥२२॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मविद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः ॥ सत्यव्रतपरायणैः॥२३॥ धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा संप्रदृश्यते ॥ तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥ २४ ॥ रसात्मकं तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते ॥ घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥२५॥ संच्छाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः ॥ ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णाभिर्विकारतः ॥२६॥ महार्णवगतश्चैव दह्यते न च सज्जते ॥ मग्नश्चैव महानद्याः सलिले नैव सीदति ॥ २७ ॥ सीदमानश्च सलिले स शीते पात्यते बलात् ॥ आसनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः ॥ २८ ॥

ब्रह्मवादियोंद्वारा जो पवित्र कर्मसे निर्मुक्त और सत्यव्रतमें परायण हैं ॥ २३ ॥ तेजबलयुक्त ब्रह्मको मोक्षकालमें कोईही महात्मा देखते हैं. वही परम अद्भुत वैष्णवोंका परम स्थान है॥ २४ ॥ वह रसात्मक ऐश्वर्य प्रकारान्तमें दीखता है वे घोररूप विकार महात्माको दुःखित करते हैं ॥ २५ ॥ अत्यन्त जलसे आच्छादित और तरंगोंसे क्षुभित विचेतन जीव शीत उष्ण तरंगोंसे क्षुभित किया जाता है ॥२६॥ और महासमुद्रमें गत जीव दग्ध होता है और दग्ध हुई महानदीके जलसे दुःखित होवा है ॥ २७ ॥ वह जलमें दुःखी हुआ बलसे शीतमें डाला जाता है तब वह आसन

आच्छादनसे छूटा हुआ निचेतन हो ॥ २८ ॥ मेघमें प्राप्त हुआ जलसे सींचा जाता है और शुक्लवणवाले स्रोतोंसे शिरकी ओर वारंवार सींचा जाता हुआ ॥ २९ ॥ ऊर्ध्व ज्योति शुक्ल पीतसे बाधित होता है. गंभीर जलसे पूर्ण बिजलियोंसे प्रकाशित ॥ ३० ॥ इन विकारोंसे संवृत और अनेक प्रकारसे निरुद्ध ध्रुव ऐश्वर्यको प्राप्त होकर ब्राह्मण सिद्ध होता है ॥ ३१ ॥ वह रसात्मक ऐश्वर्य जिह्वाग्रसे निकला हुआ सहस्रधारायुक्त हो मेघत्वको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ सब प्राणियोंके हेतुभूत प्राप्तयोग करके धातुओंके अर्थ योगसे सिद्ध ईश्वर अनेक प्रकारके रसोंको सृजता है

श्वभ्रे प्रपद्यमानश्च तोयेन परिषिच्यते शुक्लवर्णेन बहुना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षंश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते ॥ वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः॥३०॥एतैर्विकारैः संवृत्तान्निरुद्धैश्चैव सर्वशः॥ ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः॥३१॥ रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम् ॥ सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम् ॥३२॥ रसांश्च विविधान्योगान्त्संसिद्धःसृजते प्रभुः ॥ धात्वर्थं सर्वभूतानां योगप्राप्तेन हेतुना ॥ ३३ ॥ तेजसो रूपकमश्वर्यं विकारैः सह वर्द्धते ॥ आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे ॥३४॥ उग्ररूपैर्विरूपैश्च हन्यते दण्डपाणिभिः ॥ घोररूपैः सुगम्भीरैः पिङ्गाक्षैर्नविग्रहैः ॥ ३५ ॥ नेत्रं समुद्धरन् भीमं जीह्वाग्रं चास्य विन्दति ॥ नन्दतियुगपन्नाद जृम्भमाणाः पुनः पुनः ॥३६॥ पुनरेवतदा भूत्वा बहुरूपास्तदाभवन् ॥ नृत्यमानाः प्रगायन्ति तर्पयन्तो विशेषतः ॥३७॥ स्त्रीभूताश्च ततः सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे ॥ कण्ठेषु बहुरूपत्वाद्विघ्नैश्चैव प्रलोभयन् ॥३८॥

॥ ३३ ॥ तेजरूप ऐश्वर्य और आत्माके विघ्न करनेवाले विकारोंके सहित बढता है और कारणमें स्वस्वरूप है ॥ ३४ ॥ उग्ररूप विरूप दण्डधारी घोररूप अतिगंभीर पिंगल नेत्रोंवाले पुरुषोंसे ताडित हुआ ॥ ३५ ॥ भयानक नेत्रोंको निकालता हुआ जिह्वाग्रको छेदन करता है और वारंवार जंभाई लेता हुआ एक साथ शब्द करता है ॥ ३६ ॥ फिर अनेकरूप होता है तब अनेकरूपसे नाचते गाते विशेषकर तृप्त करते हैं ॥ ३७ ॥ और वे सब स्त्रीरूप हुए बहुत रूपोंसे विघ्नोंसे लोभ देनेवाले कंठमें लटकते हैं ॥ ३८ ॥

और मधुर वचनोंसे डरे हुए पुरुषोंके समान नहीं बोलते हैं और एककालमें सब अपना शिर चरणोंमें रखते हैं ॥ ३९ ॥ योगके प्रसादकी आकांक्षा करनेवाले योगके भीतर बहुत प्रकारको कहनेवाले बहुत प्रकार नाचते हुए फिरते हैं ॥ ४० ॥ इन विकारोंसे सब प्रकारसे निरुद्ध और आच्छादित हुआ निश्चल ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ ब्राह्मण सिद्ध होता है ॥ ४१ ॥ वहां वे जलकी बूंदें सूर्यकी किरणोंके समान तेजरूप ऐश्वर्यको प्राप्त होतीहैं ॥ ४२ ॥ वही जल मेघरूप हो आकाशमें प्राप्त होकर लोकमें चन्द्रसूर्यकी गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो चन्द्रसूर्यात्मक सघन ज्योति है यही वह ध्रुव

मधुरैरभिधानैश्च व्याहरन्ति न भीतवत् ॥ पतन्ति युगपत्सर्वे पादयोर्मूर्धभिर्युताः ॥ ३९ ॥ प्रसादं काङ्क्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नतः ॥ बहुप्रकारं कथयन्नृत्यन्ति च तरन्ति च ॥ ४० ॥ एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ४१ ॥ तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः ॥ तेजोरूपकमैश्वर्यं जनितास्तेजबिन्दवः ॥ ४२ ॥ ज्योतींषि चैव संवृता आकाशे गुणसंवृताः ॥ चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ॥ ४३ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योति सघनमुत्तमम् ॥ एतद्विभ्राजते लोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ॥ ४४ ॥ अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सराण्यथ ॥ क्षणा लवा मुहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च ॥ ४५ ॥ अहोरात्रप्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा ॥ ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अथ पार्थिवमैश्वर्यं विकारग्रहसंभवम् ॥ योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता यान्त्यन्ते ह्यचलासनात् ॥ ४७ ॥ अलोभाच्छिद्यते सद्यो वेपमानो नु कीर्त्यते ॥ सीदते वसुधामध्ये विद्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

कालचक्र संसारमें प्रकाशित होता है ॥ ४४ ॥ आधे महीने, महीने, ऋतु, संवत्सर, क्षण, लव; मुहूर्त, कला, काष्ठा ॥ ४५ ॥ अहोरात्रका प्रमाण, निमेष, उन्मेष और विशेषकरके तारे और ग्रहोंकी गति । ४६ ॥ विकारोंके ऐश्वर्यसे उत्पन्न हुआ कालचक्र है. पार्थिव ऐश्वर्यको अभिग्रस्त हुए योगी अतुलरूप आसनसे गिराते हैं ॥ ४७ ॥ अलोभसे ऐश्वर्य छेदित करते हैं और विघ्नसेभी योगी कांपता है और पृथ्वीमें वारंवार भियमान हुआ दुःखी

होता है ॥४८॥ भूतोंको अनेकरूप और अन्य लोकवासियोंके विषयोंसे शीघ्र युक्त होता है और संक्षेपसे रुक जाता है ॥४९॥ फिर सब प्रकारसे पार्थिव ऐश्वर्यको सेवन करता हुआ मूर्तिवाली धातुओंसे मारा जाता है।।५०।।शक्ति तोमर निस्त्रिंश और अनेक प्रकारकी गदाओंसे तथा असि और अनेक प्रकारकी क्षुरधाराओंसे पातित किया जाता है।।५१।।और सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणग्रसे भेदन किया जाता है, इस प्रकारके विकारोंसे निवृत्त और सब प्रकारसे निरुद्ध हुआ ॥ ५२ ॥ ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ ब्राह्मण सिद्ध होता है तब फिर विकारसे पार्थिव ऐश्वर्यसे रहित है ।।५३।। योगी

भूतानां बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः ॥ विषयैर्युज्यते क्षिप्रं संक्षेपात्समवरुद्ध्यते ॥ ४९ ॥ ततः पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वतः ॥ मूर्तिमद्भिश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते ॥ ५० ॥ शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्यनेकधा ॥ असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रशः ॥५१॥ भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः ॥ एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ५२ ॥ ध्रुवमैश्वर्य मापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ततः पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारतः ॥ ५३ ॥ प्रादुर्भवति संजाते समाधौ प्रलयं गते ॥ दिव्यं गन्ध समाघ्राय दिव्यार्थांस्ताञ्छृणोति च ॥ ५४ ॥ दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते नच भिद्यते ॥ गच्छन्त्सुकृतिनां चान्तः प्रधानात्मा क्षरन्निव ॥५५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽन्यां धारणां गत्वा मनसा स पितामहः ॥ ब्रह्मकर्मसमारम्भं निर्मुक्तेनान्तरात्मना ॥ १ ॥ सर्वाङ्गधारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव ॥ ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते मनसा प्रजाः ॥ २ ॥

समाधिके नाशमें प्रगट होकर दिव्यगंधको सूंघता हुआ दिव्य पदार्थोंका श्रवण करता है।।५४।।दिव्य पुरुषोंसे छेदित होकरभी भेदको प्राप्त नहीं होता है और सुकृतियोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होता अर्थात् सबके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो जाता है ।।५५।। इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वैशंपायन बोले; फिर मनसे ब्रह्माजी दूसरी धारणाको प्राप्त हुए (अर्थात् योगी निर्मुक्त अन्तरात्मासे ब्रह्मकर्म समारंभको प्राप्त हो सर्वज्ञ हो जाता है) ॥ १ ॥ सर्वांगकी धारणा करते हुए ब्रह्मयोगसे ब्रह्मा मानसी प्रजा उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

चक्षुसे वह रूपसम्पन्न प्रभु प्रजा रचते हैं. नासिकाके अग्रभागसे गन्धर्व चित्र विचित्र वस्त्रवालोंको रचते हैं॥३॥और तुम्बरु आदि सैंकडों गन्धर्व नाचने बजानेमें कुशल सामगानमें चतुरोंको रचते हैं ॥ ४ ॥ उन योगके जाननेवाले स्वयंभू भगवान् प्रभुने सुन्दर नेत्र और सुन्दर केशोंवाली सुन्दर मुखवाली॥५॥शतपत्रके कमलसे विराजमान सुन्दर सुन्दर वाणीसे सेवनीय ब्राह्मीमूर्तिके आश्रय लक्ष्मीको॥६॥सब प्रकारसे समाधान चित्तसे निर्माण किया.इस प्रकार सब प्राणियोंके धारण करनेवाले भूतात्माने भावयोगसे रचना करके ॥७॥ नेत्रोंसे रूपसम्पन्न अप्सराओंको बनाया और नासिकाके

चक्षुषा रूपसंपन्ना ह्यप्सराः सृजते प्रभुः ॥ नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्त्सुचित्राम्बरवाससः ॥ ३ ॥ तुम्बरुप्रमुखान्त्सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ नृत्यवादित्रकुशलान्कुशलान्त्सामगीतिषु ॥ ४ ॥ ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयंभूर्भगवान्प्रभुः ॥ चारुनेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम् ॥५॥ पद्मेन शतपत्रेण चारुणा सुविराजिताम् ॥ स्वक्षां शुचिगिरं सेव्यां ब्राह्मीं मूर्तिमतीं श्रियम् ॥ ६ ॥ ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक् प्रोक्तेन चेतसा ॥ भावयोगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतां नृप ॥७॥ चक्षुषो रूपसंपन्नाः सृजत्सोऽप्सरसः प्रभुः ॥ नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुवासः सुप्रवादितान् ॥ ८ ॥ गानप्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः ॥ अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्म प्रभाषितम् ॥९॥ पद्भ्यां सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ नरकिन्नरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ॥ १० ॥ गजान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः ॥ तृणजातीश्च बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान् ॥ ११ ॥ ये तु हस्तान्निखादन्ति कर्मप्राप्तेन हेतुना ॥ हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा ॥ १२ ॥

अग्रभागसे सुवास श्रेष्ठ बजानेवाले गन्धर्वोंको निर्मित किया ॥८॥ सम्पूर्ण गन्धर्वोंके निमित्त गानविद्याका अधिकार दिया और ब्राह्मणोंके निमित्त सामवेदका गान विधान किया ॥९॥ चरणोंसे गतिवाले जीव उत्पन्न किये.नर किन्नर यक्ष पिशाच उरग राक्षस॥१०॥गज सिंह व्याघ्र सहस्रों मृग बहुतसी तृणजाति चौपाये तिनकोंसे जीनेवाले रचे॥११॥ जो प्राणी हाथमें लेकर भोजन करते हैं तिनको कर्महेतुसे ब्रह्माने अपने हाथोंसे रचा है और मनसे उनकी रचना की है ॥ १२ ॥

और प्राणियोंके सुखकी इच्छासे प्राणादि अनेक प्रकारके पवन कार्योंकी सृष्टि हुई ॥ १३ ॥ हृदयसे गौ और बाहोंसे पक्षियोंको निर्माण किया और भी विशेष जीव उन उन विशेष नटवत् वेषों द्वारा उत्पन्न किये हैं ॥ १४ ॥ और ज्वलित तेजस्वी अंगिरा ऋषि ब्रह्मवंश करनेवाले दिव्य छः इन्द्रियोंसे युक्तको शरीरसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ और योगेश्वर प्रभुने योगद्वारा भौंके अन्तरसे ब्रह्मवंशके करनेवाले परम धर्मात्मा भृगुको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ ललाटके मध्यसे प्रिय शरीर नारदजीको उत्पन्न किया. महायोगी पितामहने शिरसे सनत्कुमारको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ जो कि पितामहने

वायुना स विसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता ॥ उपतस्थे तदानंदं पञ्चेन्द्रियसमाधिना ॥ १३ ॥ हृदयादसृजद्गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा ॥ अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वेषैः पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥ ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम् ॥ १५ ॥ भ्रुवोन्तरादजनयद्योगाद्योगेश्वरः प्रभुः ॥ ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम् ॥ १६ ॥ ललाटमध्यादसृजन्नारदं प्रियविग्रहम् ॥ सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी पितामहः ॥ १७ ॥ अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः ॥ ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम् ॥ १८ ॥ तपसा महता युक्तो ग्रहैः सह निशाकरः ॥ चचार नभसो मध्ये प्रभाभिर्भासयन् जगत् ॥ १९ ॥ स गात्रैर्भगवान्योगान्मनसा सिद्धिमागतः ॥ ससृजे सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥ तत्र स्थानानि भूतानां योगांश्चैव पृथग्विधान् ॥ निधत्ते शतशो ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः ॥ २१ ॥ एष ब्रह्ममयो यज्ञो योगः सांख्यश्च तत्त्वतः ॥ विज्ञानं च स्वभावं च क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ॥ २२ ॥

सोमको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया यह रजनीचर ब्राह्मणोंके राज्यमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ १८ ॥ चन्द्रमा ग्रहोंके साथ बडे तपसे युक्त हो प्रभासे जगत्को प्रकाशित करता हुआ आकाशमें विचरने लगा ॥ १९ ॥ तब अपने शरीरसे भगवान् योगसे सिद्धिको प्राप्त हो स्थावर जंगम सब प्राणियोंको निर्मित करने लगे ॥ २० ॥ वहांके स्थान और प्राणी और अनेक प्रकारके योग सब भूतोंके पितामहने निर्मित किये ॥ २१ ॥ यही ब्रह्मय

यज्ञ योग सांख्य है.विज्ञान स्वभाव क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ है ॥ २२ ॥ एकपन पृथक्पन उत्पत्ति और निधनकाल कालक्षय आत्मानुभवविज्ञान जानना चाहिये ॥ २३ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ जन्मेजय बोले;हे भगवन् ! ब्रह्मप्राप्तिका कारण प्रथम सतयुग जिसमें सब धर्मका अन्तर्भाव है सुना. हे ब्रह्मन् ! अब क्षत्रियोंका योगधर्म सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ संक्षेप विस्तारके सहित बहुत नियमोंसे युक्त उपाय जाननेवालोंमें कथित और यज्ञोंसे शोभित कहो ॥ २ ॥ वैशंपायन बोले; यह वार्ता यज्ञकर्मोंसे अर्चित मैं तुमसे

एकत्वं च पृथक्त्वं च संभवो निधनं तथा ॥ कालः कालक्षयश्चैव ज्ञेयो विज्ञानमेव च॥२३॥इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं ब्रह्मयुगं ब्रह्मन्युगानां प्रथमं युगम् ॥ क्षत्रस्यापि युगं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १ ॥ ससंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम् ॥ उपायज्ञैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव शोभितम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञकर्मभिरर्चितम् ॥ दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३ ॥ तेऽङ्गुष्ठमात्रा मुनय अर्दिताः सूर्यरश्मिभिः ॥ मोक्षप्राप्तेन विधिना निराबाधेन कर्मणा ॥ ४ ॥ प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणा ॥ परायणस्य संगम्य ब्रह्मणस्तु महीपते ॥५॥ श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते ॥ चरितं ब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः ॥६॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलय गताः ॥ ब्राह्मणा वित्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः ॥ ७ ॥

कहूंगा जो अनेक प्रकारके दान धर्म और प्रजाओंसे शोभित है ॥ ३ ॥ वे ब्रह्मवृत्तियोंसे सम्पन्न ज्ञानसिद्ध सावधान चित्त होते हैं और सूर्यकी किरणोंसे अर्दित हुए अंगुष्ठमात्र मुनि मोक्षप्राप्तिके विधानसे प्रलयको प्राप्त होकर ॥ ४ ॥ यज्ञादि और शमादिमें प्रवृत्त ब्रह्मपरायण एकवेदमें परायण वेदोक्त कर्ममें तत्पर ॥ ५ ॥ वित्तसे सम्पन्न श्रीसंज्ञक साम और यजुर्वेदोंकी ऋचाओंसे सम्पन्न ब्रह्मचर्य और ब्रह्मज्ञानमें बोधित ॥ ६ ॥ पूर्णसहस्र युगके अन्तमें वित्तसे सम्पन्न और ज्ञानसिद्ध सावधान ब्राह्मण पूर्वकल्पमें लयको प्राप्त हुएही आगेके कल्पमें ब्राह्मण होते हैं ॥ ७ ॥

तिनमेंसे व्यतिरिक्त इन्द्रियवाले योगात्मा विष्णु ब्रह्मासे उत्पन्न हो दक्षप्रजापतिके रूपसे अनेक प्रजाकी सृष्टि करते हैं ॥८॥ अक्षरसे सौम्य ब्राह्मण और सत्त्वरजोगुण ब्रह्मसे क्षत्रिय रजोगुणके विकारसे वैश्य और तमसे शूद्र हुए हैं ॥ ९ ॥ और सत रज तम इन तीनों गुणोंसे विष्णुने ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णोंको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ वर्णत्वको प्राप्त हो प्रजा लोकमें चार प्रकारसे विभक्त हुई. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ॥ ११ ॥ एकलिंगवाले पृथक् धर्मवाले दो चरणवाले परम अद्भुत कर्मफलके भोगनेको सम्पन्न और सब कर्मोंकी गति जाननेवाले हैं ॥ १२ ॥ इनमें तीन

व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः ॥ ८ ॥ अक्षराद्ब्राह्मणाः सौम्याः क्षयत्क्षत्रियबान्धवाः ॥ वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूमविकारतः ॥ ९ ॥ श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः ॥ अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना ॥ १० ॥ ततो वर्णत्वामापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते ॥ ११ ॥ एकलिङ्गाः पृथग्धर्मा द्विपदाः परमाद्भुताः ॥ यातनायाभिसंपन्ना गतिज्ञाः सर्वकर्मसु ॥ १२ ॥ त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः ॥ तेन ब्राह्मणयोगेन वैष्णवेन महीपते ॥ १३ ॥ प्रज्ञया तेजसा योगात्तस्मात्प्राचेतसः प्रभुः ॥ विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः ॥१४॥ ततो निर्माणसंभूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः ॥ तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं नह्यत्र ब्रह्म विद्यते ॥ १५ ॥ यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया ॥ प्रादुर्भूतो विसर्पन्वै नोपयुञ्जति कर्मणि ॥ १६ ॥ एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कात्स्न्र्येन जन्मना ॥ नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥ १७ ॥

वर्णोंकी क्रिया वेदके आधीन है. हे राजन् ! उस वैष्णव ब्राह्मण योगसे॥१३॥तेज और ऐश्वर्यसे युक्त तथा योगसे युक्त दक्षजी विष्णुरूप महायोगी कर्मके अधिकारमें युक्त होकर सृष्टि करते हैं॥१४॥ निर्माणसे अर्थात् शिल्प और त्रिवर्णकी सेवासे सम्पन्न कर्मवर्जित शूद्र हुए हैं इस कारण शूद्र संस्कारके योग्य नहीं है कारण कि उसमें वेदकी प्रविष्ठा नहीं है ॥ १५ ॥ जैसे अरणीके मथनेसे धूमका संघात अग्निमें होता है. वह फैलता हुआ किसी कर्ममें नहीं प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ इसी प्रकार शूद्र जन्मसे पृथ्वीमें विचरते हुए वेदोक्त संस्कारके योग्य नहीं हैं॥ १७ ॥

तब फिर ब्रह्मयोनिवाले दूसरे पक्षके पुत्र हुए. वे बडे बली महाउत्साही महाबली महापराक्रमी हुए॥१८॥तब यज्ञकर्मा महात्मा दक्षजीने उनसे कहा; हे पुत्रो! मैं पृथ्वीका अन्त जाननेकी इच्छा करता हूं अथवा मैं तुम्हारे शरीरकी उत्पन्न करनेवाली धात्री(जननी)के सिद्धान्त सुननेकी इच्छा करता हूं. जैसा मैं बली हूं इस प्रकारकाही तुमको होना चाहिये॥१९॥तुम्हारी धात्रीके सिद्धान्तको सुन तुम्हारे बलाबलको जानकर प्रजाको विपुल बल प्रदान करूंगा और विपुल मायाके सारको जाननेवाले उन दक्षके पुत्रोंको॥२०॥उस देवीने नेत्रोंसे अपना रूप न दिखाया यद्यपि उन्होंने सार जाननेकी बडी

ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च संभूता ब्रह्मयोनयः ॥ बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः ॥ १८ ॥ पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा ॥ अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याः पुत्रा बलो ह्यहम् ॥१९॥ ततो विधास्ये तत्त्वज्ञः प्रजानां विपुलं बलम् ॥ विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः ॥२०॥ न तेषां दर्शयद्देवी चक्षुषा रूपमात्मनः ॥ प्रजापतिसुतानां वै विपुलासारमिच्छताम् ॥२१॥ आत्मानो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा ॥ जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा ॥२२ संवेद जननी धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता ॥ अणुतां तनुतां चैव जन्तूनां कर्मभोगिनाम् ॥२३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ जनमेजय उवाच ॥ साध्वहं श्रोतुमिच्छामि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तम ॥ यज्ज्ञात्वा सर्वविद्यानां परं पश्येयमव्ययम् ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दक्षस्तु पुनरालम्ब्य स्त्रीभावं पुरुषोत्तमः ॥ योगाद्योगेश्वरात्मानं विषण्णो गिरिमूर्द्धनि ॥२॥

इच्छा की थी॥२१॥तब तिन दक्षप्रजापतिके पुत्रोंको शुद्धसत्त्वमय भावसे चेतन द्वारा प्रेरित हुई माया अंडज और उद्भिज्जोंको उत्पन्न करनेवाली॥२२॥ कर्मके भोगनेवाले प्राणियोंको सूक्ष्म विस्तृतभावसे चेतनकी प्रेरित हुई माया प्राप्त करती हुई॥२३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकविंशोऽध्यायः॥२१॥ जन्मेजय बोले; इस समय त्रेतामें होनेवाले केवल प्रवृत्त्यात्मक यज्ञादिरूप धर्मके सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके जाननेसे सब विद्याओंका प्रतिपाद्य अविनाशी जाना जाता है॥१॥वैशम्पायन बोले; पुरुषोत्तम योगी दक्ष अपनी आत्मासे फिर स्त्रीको प्राप्त करके पर्वतशिख

रमें दुःखी हुए ॥ २ ॥ सुन्दर जानु पीन जंघा सुंदर भौं कमलके समान मुखवाली रक्तान्तनेत्र सब प्राणियोंको मनोहर उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ उसमें दक्ष प्रजापतिने कन्याओंको उत्पन्न किया. वे कमलके समान मुखवाली कन्या आधे देहके योगसे उत्पन्न कीं॥४॥ फिर दक्ष स्त्रीभावको त्याग पुरुषरूपसे सब भूतोंको दर्शनीय होता हुआ ॥५॥ हे राजन् ! दक्षजीने उन कन्याओंको ब्रह्मविवाहसे वेद विधिसे प्रदान किया ॥६॥ दश धर्मको तेरह कश्यपको और सताईस चन्द्रमाको प्रदान कीं ॥७॥ इस प्रकार दक्षजी उन कन्याओंको प्रदान कर ब्रह्मक्षेत्र (प्रयाग) को प्राप्त हो ब्रह्मासे

सुजानुः पीनजघना सुभ्रूः पद्मनिभानना ॥ रक्तान्तनयना कान्ता सर्वभूतमनोरमा॥३॥दक्षः प्राचेतसस्तस्यां कन्यायां जनयत्प्रभुः॥ देहार्धयोगविधिना कन्याः पद्मनिभाननाः ॥ ४ ॥ दक्षः पुरुषरूपेण स्त्रीरूपमहाय वै ॥ दर्शने सर्वभूतानां कान्तः कान्ततरोऽभवत् ॥ ५ ॥ ताः कन्याः प्रददौ दक्षः स्वयं प्राचेतसः प्रभुः ॥ ब्रह्मदेयेन विधिना ब्रह्मप्राप्तेन भारत ॥ ६ ॥ प्रददौ दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश॥ सप्तविंशति सोमाय पत्नीहेतोः समाहिताः ॥७॥ दक्षो दत्त्वाथ ताः कन्या ब्रह्मक्षेत्रं प्रपद्य च ॥ ब्रह्मणाध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः ॥ ८ ॥ तप्यमानो मृगैः सार्द्धं चचार वसुधां नृप ॥ तृणमूलफलैर्वृद्धो वृद्धश्च तपसासकृत् ॥ ९ ॥ मृगास्तु तस्य मोदन्ति फलं मोदन्ति ब्राह्मणाः ॥ दीक्षिताः पुण्यकर्माणस्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १० ॥ संग्रामकाले कालज्ञः शरीरादिपतिर्मुनिः ॥ कर्मयज्ञकृतां तत्र सिद्धिं पश्यति लक्षणम् ॥ ११ ॥

सेवित पवित्रदेशमें सावधान मनसे ॥ ८ ॥ मुनिरूपसे मृगोंके साथ तप करते पृथ्वीमें विचरने लगे. तृणमूलफलोंसे वृद्ध हुए तपसे बढने लगे, यह त्रेताका स्त्रीसंग्रहरूप धर्म है ॥ ९ ॥ उनके तपसे मृग प्रसन्न होते हैं और अहिंसाद्वारा तपके फलको प्राप्त हो ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं. वे पुण्यात्मा दीक्षित पवित्रकर्मा तपसे पाप दूर करनेवाले ॥ १० ॥ संग्रामकालमें कालके जाननेवाले योगसे चित्तके जीतनेवाले शरीरादिके पति मुनि कर्मयज्ञकी प्राप्त हुई सिद्धिको देखने लगे ॥ ११ ॥

दानमानमें प्रवीण उद्योगरहित आमिषभक्षणसे पृथक् स्त्रीसहित पुत्रवाले मृगोंके साथ जराको प्राप्त होते हैं अर्थात् इस देहको ब्रह्मक्षेत्र संज्ञक करते हैं ॥ १२ ॥ और वेदमंत्रोंसे सिद्ध ब्राह्मण प्रथम पद ओंकारमें स्थित ब्रह्मासे युक्त होनेसे वे ब्रह्मक्षेत्र कहाये जाते हैं ॥१३॥ कर्मोंसे मुक्त क्रोधरहित जितेन्द्रिय यतियोंके साथ पृथ्वीमें विचरते हुए. अकिंचन मार्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंने शरीरमें अध्यात्म प्रयागवर्णन किया है ॥ १४ ॥ और जो मानसी ब्रह्मचारिणी प्रजा पहले ईश्वरमें लय हुई थी वही यह स्वभावसे दुरतिक्रम प्रगटताको प्राप्त हुई ॥१५॥ अर्थात् स्वभावसे अतिक्रमण न

दानमानप्रवीराश्च निरुद्वेगा निरामिषाः ॥ मृगैः सह जरां यान्ति सपत्नीकाः सुपुत्रिणः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाः स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे प्रथमे पदे ॥ ब्रह्मणाध्युषितत्वाच्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते ॥ १३ ॥ यतिभिः कर्मभिर्मुक्तैर्जितक्रोधैर्जितेन्द्रियैः ॥ चरद्भिर्वसुधां विप्रैरकिंचनपथैषिभिः ॥१४॥ या प्रजा पूर्वमारूढी मानसी ब्रह्मचारिणी ॥ सैवैषा व्यक्तिमापन्ना स्वभावदुरतिक्रमा ॥ १५ ॥ अव्यक्ता व्यक्तमापन्ना स्वभावाद्दुरतिक्रमा ॥ व्यक्ताव्यक्तगतिश्चैषा कालधर्मान्महीपते ॥१६॥ स्थावरा जङ्गमाश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च भारत ॥ कालयोगेन कालज्ञा भवन्ति न भवन्ति च ॥ १७ ॥ एताश्चैताः प्रजाः सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे ॥ कश्यपेनाव्ययेनेह संयुक्ताः कालधर्मणा ॥१८॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ नागाश्चानेकशिरसः साध्या वै पन्नगास्तथा ॥१९॥ गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा सुपर्णाश्च तथाऽपरे ॥ गरुत्मान्त्सह यक्षैश्च किन्नराश्च सुवाससः ॥ २० ॥ गावः पशुगणैः सार्द्धं नाराश्च वसुधाधिप ॥ चराचराश्च वसुधा धर्त्तारश्च धराधराः ॥ २१ ॥

होकरभी व्यक्त अव्यक्त भावको प्राप्त हो कालधर्म (समाधि काल भेद लक्षणवाले) से व्यक्त अव्यक्तरूपवाली होती है ॥१६॥ हे भारत ! स्थावर जंगम स्थूल सूक्ष्म यह सब काल योगसे होते और नहीं होते हैं ॥१७॥ यह सब प्रजा दक्षकन्यामें उत्पन्न हुई है. अविनाशी कश्यपने इसको कालधर्मसे संयुक्त किया है ॥१८॥ आदित्य वसु रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण अनेक शिरके नाग और साध्य पन्नग ॥१९॥ गन्धर्व यक्ष किन्नर सुपर्ण गरुड और यक्षोंके सुन्दर वस्त्रवाले किन्नर ॥२०॥ हे राजन् ! गौ पशुगण मनुष्य चराचरके सहित पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत आदि ॥२१॥

गज सिंह व्याघ्र घोडे पक्षी गेंडे सींगोंवाले वृष मृग॥२२॥चार दांतके हाथी कमलकी समान कांतिवाले वर्णसे श्रेष्ठ सब लक्षणसे सम्पन्न कामरूपी प्राणी हुए ॥२३॥ उनके रूप शील पराक्रम शरीरसे सनातन धर्मक्षेत्र (भारतवर्ष) में फिर मुनि उत्पन्न हुए ॥२४॥ आत्मामें निष्ठावाले मनमें कल्पित लोकके ज्ञाता धर्मात्मा वेदगोचर ऋषि होते हैं जिनमें उत्पन्न हुए सब देवता स्वर्गलोकमें स्थित हैं॥२५॥और जो दूसरे तपसे सिद्ध गृहस्थ हैं वे ब्रह्म-चर्यको प्राप्त हो गुरुकी परिचर्या करते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन्! जो सिद्धिके निमित्त योगकी गतिको प्राप्त हुए हैं वे अधिक क्लेशसे प्राप्त हुई कर्मजन्य

गजाः सिंहाश्च व्याघ्राश्च हयाः पक्षधरास्तथा ॥ खड्गा विषाणिनश्चैव वृषभाश्च मृगास्तथा ॥२२॥ चतुर्विषाणा नागेन्द्रा पद्माभा वर्णतः शुभाः ॥ सर्वलक्षणसंपन्नाः प्राणिनः कामरूपिणः ॥ २३ ॥ तेषां रूपैस्तथा गात्रैस्तैः शीलैस्तैः पराक्रमैः ॥ मुनयः पुनरुद्भूता धर्मक्षेत्रे सनातने ॥२४॥ क्षेत्रज्ञा मानसे लोके धर्मिणो वेदगोचराः ॥ यत्रोद्भूताः सुरा सर्वे दिविलोके प्रतिष्ठिताः॥२५॥ ये चान्ये तपसा सिद्धा गृहस्था मनुजाधिप ॥ ब्रह्मचर्येण संसिद्धाः परिचर्यां गता गुरोः ॥२६॥ ये च योगगतिं प्राप्ताः सिद्धि-हेतोर्महीपते ॥ क्लेशाधिकैः कर्मजन्यैर्वृत्तिं लप्स्यन्ति वै द्विजाः ॥ २७ ॥ शिलोञ्छवृत्तयः ख्याताः सपत्नीका दृढव्रताः ॥ सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति चरितव्रताः ॥२८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पितामहं पुरस्कृत्य मेरुपृष्ठे समाहिताः ॥ जटाजिनधरा विप्रास्त्यक्तक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥१॥ पर्वतान्तर-संसिद्धे बहुपादपसंवृते ॥ धातुसंरञ्जितशिले समे निस्तृणकण्टके ॥ २ ॥

गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ जो सपत्नीक दृढव्रत होकर शिलोञ्छवृत्ति करते हैं वे व्रतधारी सब स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥ वैशंपायन बोले; जटा और अजिन वस्त्रके धारण करनेवाले क्रोधवर्जित जितेन्द्रिय ब्राह्मण ब्रह्माजीको आगे कर मेरुपृष्ठपर सावधान अर्थात् भ्रूघ्राणके मध्यमें समाधिको प्राप्त हुए कार्यके पिता कारणको आगे करके ॥ १ ॥ पर्वतान्तर (वंश कपाल अस्थि)से सिद्ध बहुत वृक्षों (योगसाधनके धर्म)से संयुक्त धातुओंसे रंजित शिलासमान कांटे और तृणोंसे रहित अर्थात् वातपित्तादि

धातु और मनशिलादिरूप नाडियोंसे युक्त अस्थिवाले जरारोगादि कंटकरहित ॥२॥ तीन वेदोंके पंचस्वरसे विराजित अर्थात् इडा पिंगला सुषुम्ना-रूप जीवोपाधिभूत प्राणमार्गके सम्बन्धी पांच प्राणोंकी वृत्तिभेदसे युक्त स्थानमें नित्य मंत्रयज्ञमें परायण (ओंकार जप निरत)नित्यव्रत(वायुजप)हित (आनंदरूप आत्मामें निरत) ॥३॥ वे सब ब्राह्मणश्रेष्ठ एकही अग्निको आधान कर सावधान चित्तसे मंत्रद्वारा तीन प्रकारसे भेदित करते हुए ॥४॥ तीन प्रकार ज्वलित होती हुई प्राणाग्निको रेचक पूरक कुंभक रूप नाडीमार्गोंसे विशेष करते हुए अर्थात् पूरकादि अभ्याससे आत्मतत्त्वको प्राप्त हुए वेदपारगामी मुनियोंसे तत्त्वको प्राप्त हुए तत्त्व जानते हैं॥५॥एकही वह प्राणाग्नि प्राणायाम अभ्यासवालेको हविद्वारा वृद्धिको प्राप्त करती है, अर्थात् योगयुक्त आहारसे प्राण बलिष्ठ होता है और कार्यसिद्धिके निमित्त होममंत्रके जाननेवाले नृप स्वधाकारसे मंत्रको करता हुआ जरारोगरहित होता है

त्रयाणां ब्रह्मवेदानां पञ्चस्वरविराजिते ॥ मन्त्रयज्ञपरा नित्यं नित्यं व्रतहिते रताः ॥३॥ एक एवाग्निमाधाय सर्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः॥ बिभिदुर्मन्त्रविषयैः सुसमाहितमानसाः ॥ ४ ॥ त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ अतस्ते तत्त्वमापन्ना यदेकस्त्रिविधः कृतः ॥५॥ एक एव महानग्निर्हविषा संप्रवर्तते ॥ स्वधाकारेण मन्त्रज्ञ मन्त्राणां कार्यसिद्धये ॥६॥ स्वयं च दक्षसंप्राप्तो भगवान् भूतसत्कृतः ॥ ब्रह्मा ब्राह्मणनिर्माता सर्वभूतपितामहः ॥७॥ दण्डी चर्मी शरी खड्गी शिखी पद्मनिभाननः ॥ अभवन्न्यस्तसंतापो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ यजते पुष्करे ब्रह्मा मेधया सह संगतः ॥ इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ ९ ॥

(इसका विशेष वर्णन हठयोगके ग्रंथोंमें देखो) ॥६॥ इस रूपसे प्राणियोंसे सत्कृत सूत्रात्मा सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न प्राप्त होता है अर्थात् ध्यानसे प्रथम उकारार्थभूत सूत्रात्माका साक्षात्कार होता है.इस प्रकारका दक्ष ब्रह्मा ब्राह्मणोंका निर्माण करनेवाला पितामह होता है॥७॥पूरकसमयमें नासिकानलिमें दंडाकार पूर्ण होनेसे दंडी कुंभक अवस्थामें चर्मधारी रेचक अवस्थामें शरयुक्त खड्गके समान तीक्ष्ण धारावाला संसारवृक्ष छेदनमें समर्थ शिखी प्राणाग्निरूप कमलके समान मुख प्रसन्नभाव होनेसे संतापरहित स्वभावसे क्रोधजित और जितेन्द्रिय होता है ॥ ८ ॥ दक्षरूप ब्रह्मा आत्मतीर्थमें शास्त्राचार्यसे प्राप्त हुई बुद्धिसे तन्निष्ठ होकर यजन करता है. जहां ब्रह्मवादियोंद्वारा इन्द्रके कहे साम (अहमन्नमहमन्न) इत्यादि गाये जाते हैं ॥ ९ ॥

घृत क्षीर यव व्रीहि यह सब परम हवि हैं. यह ब्रह्मपदके प्राप्त होने योग्य वेदप्रोक्त यज्ञका विधान है॥ १०॥अग्निसम्बन्धी अरणीको मथन कर जो शमीके गर्भसे प्रगट होती है अर्थात् परमेश्वरकी तिरोधान स्थानभूत अविद्याको नाश करके देहमें प्रगट हुए. कारण ब्रह्म अन्तर्यामी अग्निरूपको प्रवृत्त करे अर्थात् देहके अभिमानरहित होनेसे ब्रह्मरूप होता है; ब्रह्माने प्रथम उस सूत्रात्मामें अग्नि प्रवृत्त की॥ ११॥जिस प्रकार यज्ञकर्ममें अग्नि विधान किया जाता है उसी प्रकार अल्प द्रव्यसे अनेक प्रकारके द्रव्योंको ॥१२॥ और फलोंको योगके जाननेवाले ब्रह्मवादी मुनि हवि कल्पित कर यज्ञमें डालते हैं अर्थात् मानसिक यज्ञमें कल्पना की हुई मानसी सामग्री डालकर मनके अनुसार फलभागी होते हैं ॥१३॥ उस यज्ञमें छः महीने पर्यन्त बृहस्पतिजी चारों

धृतं क्षीरं यवा व्रीहिः सर्वं परमकं हविः ॥ वेदप्रोक्तं मखे न्यस्तं कल्पितं ब्रह्मणः पदे ॥१०॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ॥ स ब्रह्मा प्रथमं तस्मिन्नग्निमन्यं प्रवर्त्तयत् ॥ ११ ॥ नह्यल्पं विहितं द्रव्यं यथाग्निर्यज्ञकर्मणि ॥ प्रवर्तयेद्विभागैर्वा हुतद्रव्यमयं बलम् ॥१२॥ फलानि तैः प्रयुक्तानि हवींषि विततेऽध्वरे ॥ प्रयुञ्जते प्रयोगज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥ षण्मासांश्चतुरो वेदान्त्संबभाषे बृहस्पतिः ॥ ब्रह्मणो वितते यज्ञे परया ब्रह्मसम्पदा ॥१४॥ शिक्षाक्षरसमेताया मधुरायाः समन्ततः ॥ सानुस्वारितरामायाः सरस्वत्या प्रभासते ॥ १५ ॥ तेन ब्राह्मणशब्देन ब्रह्मप्रोक्तेन भारत ॥ विभाति स मखो व्यक्तं ब्रह्मलोक इवापरः ॥१६॥ मखो ब्रह्ममुखोत्तीर्णो ब्रह्मशब्दैरनामयैः ॥ प्रयोगैः संप्रयुक्तस्य जल्पन्निव विवर्द्धते ॥१७॥ समिद्भिः सोमकलशैः पात्रैश्चैव बर्हिः खलैः ॥ यवैर्व्रीहिभिराज्यैश्च पूर्णैश्च जलभाजनैः ॥ १८ ॥

वेदोंको पढते हैं, और उस ब्रह्मयज्ञमें अत्यन्त ब्रह्मसम्पदासे युक्त होते हैं अर्थात् छः महीनेके निरन्तर अभ्याससे सिद्धि होती है॥ १४॥तब अभ्यास किये उस वेदको शिक्षा अक्षरके सहित वहां सरस्वती कथन करती है जिससे उपनिषद् सहित और कर्म उपासनासहित वेद उनके शिष्योंको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ हे भारत ! उस ब्रह्मके कहे वेदशब्दसे वह आध्यात्मिक ब्रह्मलोकके समान प्रकाशित होता है ॥ १६ ॥ वह यज्ञ ब्रह्माके मुखसे निर्गत अनामय ब्रह्मशब्दोंसे और संदेहरहित प्रयोगोंसे कहे हुएके समान बढता है ॥१७॥ समिधा सोमके कलशे पात्र यव व्रीहि घृत और दूसरे पूर्ण जल-

पात्र ॥१८॥ कर्मके प्राप्त होने योग्य पशु और ब्रह्ममें अर्पणके योग्य कर्म दूधवाली गौ और कोमल वंश और सुवर्णसे युक्त ॥१९॥ हे भारत ! वेदशब्दसे बढा हुआ, दक्षिणासे बढा हुआ तपसे परिवर्द्धित ब्रह्मज्ञानमें वेदविद्यासे संगत हुआ ॥ २० ॥ मनसे कल्पना की हुई समिधादिसे क्रियामूर्ति यज्ञात्मा ब्रह्मा कल्पनाके विना स्वभावसे उत्पन्न हुई घृतादि सामग्रीसे मरुद्गणोंके साथ हवन करता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! तेजमूर्ति धारण करनेवाले चिन्मयरूप द्रव्य देवताओंद्वारा यागरूपसे प्राप्त ब्रह्मयज्ञ सबप्राणियोंके कर्मको स्पर्श न करता हुआ वेदमें कही विधिसे सबसे अधिक होता है॥२२॥ शमीके गर्भसे उठी अग्निदात्री अरणीको मथकर अग्निष्टोम यज्ञसे वह प्रभु यजन करता है ॥२३॥ उस यज्ञमें सभाके ब्राह्मण मधुरवाणी बोलते हैं

कर्मप्राप्तैश्च पशुभिः कर्मभिश्चापरान्वितैः ॥ गोभिः पयस्विनीभिश्च परिवंशैश्च कोमलैः ॥ १९ ॥ ब्रह्मवृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धश्च भारत ॥ ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया सह संगतः ॥२०॥ मानसैश्च क्रियामूर्तिर्ये च भूताः स्वयं नृप ॥ ब्रह्मा जुहोति तांस्तस्मान्मरुद्भिः सहितस्तदा ॥ २१ ॥ तेजोमूर्तिधरैरूपैर्नचं तत्कर्मणास्पृशत् ॥ वेदप्रोक्तेन विधिना सर्वप्राणभृतां वर ॥२२॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ॥ क्रतुना यजंते पूर्णमग्निष्टोमेन स प्रभुः ॥ २३ ॥ सदस्यैतत्सदो व्यक्तं शुशुभे यज्ञकर्मणि ॥ जल्पन्ति मधुरा वाचः सानुसाराः क्रियास्तथा ॥२४॥ कर्मभिश्च तपोयुक्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ सूर्येन्दुसदृशैः राजन्विरराज महाक्रतुः ॥ २५ ॥ ब्रह्मघोषेण महता ब्रह्मावास इवापरः ॥ वसुधामिव संप्राप्तैः सर्वैरेव दिवौकसैः ॥ २६ ॥ वेदवेदाङ्गविद्भिश्च विनीतैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ गतागतैस्तपः श्रान्तैः स्वर्गलोके महीयते ॥ २७ ॥

और अध्वर्यु आदिके सहित व्यक्त हुआ यज्ञ शोभाको प्राप्त होता है ॥२४॥ तप युक्त कर्म करनेवाले वेदवेदांगके पारगामी सूर्य चन्द्रमाके समान मुनिजनोंसे वह महायज्ञ शोभित हुआ ॥ २५ ॥ बडे भारी वेदके शब्दसे दूसरे ब्रह्मलोकके समान सब स्वर्गके देवताओं सहित पृथ्वीमें प्राप्त हुएके समान ॥२६॥ वेदवेदांगके जाननेवाले विनीत ब्रह्मवादी महात्माओंके जो तपसे पूर्ण हो गये हैं आने जानेसे स्वर्गलोकमें पूजित होता है और मनुष्य लोकमें अत्यन्त पूजित होता है ॥ २७ ॥

प्रकाशमान तीन ब्राह्मण और तीन यज्ञकी अग्नियोंकरके वह यज्ञ ब्रह्माके ब्रह्मलोकके समान प्रकाशित होताहै॥२८॥उनमें ब्रह्मवादी ब्राह्मण इन्द्रके कहे सामगान करते हैं और यजुके वचनप्रयोग किये जाते हैं जिससे यज्ञका विस्तार होता है ॥ २९ ॥ तपसे शान्त ब्रह्मपरायण सत्यव्रत क्रियामें सावधान सुनने मात्रसे मनके संकल्पसे आते हैं ॥३०॥ हे राजन्! यज्ञमें मूर्तिभेदसे होता और ब्रह्मा बृहस्पति हुए सब धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरातन ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाला यजमान॥३१॥यज्ञान्तमें विष्णुकी पूजा कर अर्थात् सब कर्म विष्णुको समर्पण कर यज्ञकी महिमासे अदितिके गर्भमें उत्पन्न होता

ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तैस्त्रिभिरेवाध्वरेऽग्निभिः ॥ ब्रह्मलोक इवाभाति ब्रह्मणः स महाक्रतु ॥ २८ ॥ इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गायन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ वचनानि प्रयुक्तानि यजूंषि विततेऽध्वरे ॥ २९ ॥ तपःशान्ता ब्रह्मपराः सत्यव्रतसमाहिताः ॥ आययुर्मुनयः सर्वे मनोभिः श्रोत्रवादिभिः ॥ ३० ॥ होता चैवाभवद्राजन् ब्रह्मत्वे च बृहस्पतिः ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः पुराणो ब्रह्मसंभवः ॥ ३१ ॥ यजमानश्च यज्ञान्ते विष्णोः पूजां प्रयुज्य च ॥ आदित्याः पश्चिमे गर्भे तपसा संवृत्ते नृप ॥ ३२ ॥ पदं विष्णुरजो ब्रह्मा निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहम् ॥ यतः पदसहस्राणि भविष्यन्त्युद्भवन्ति च ॥ ॥३३॥ अवन्ध्यं चाप्रमेयं च व्यतिरिक्तं च कर्मभिः ॥ आत्मापि यस्य मुनयो भवन्ति निष्परिग्रहाः ॥ ३४ ॥ परिग्रहाश्च विषया दोषप्राप्ता महीपते ॥ दोषाश्च युगपत्सर्वे छादयन्ति मनो बलात् ॥ ३५ ॥ इन्द्रियग्रामविषये चरन्तो निष्परिग्रहाः ॥ परिग्रहं शुभं धर्ममविद्यालक्षणं विदुः ॥ ३६ ॥

है॥३२॥इस प्रकार कर्मफल देवताभाव सुख दुःखरूपको कथनकर मोक्षपदरूप विष्णुपदका वर्णन करते हैं कि अजन्मा अर्थात् कर्मप्राप्त ब्रह्मा ब्रह्मवित् निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह जिससे सहस्रों इन्द्रादि पद हुए और होते हैं,उस विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है॥३३॥वह बंधरहित और अप्रमेय कर्मोंसे व्यतिरिक्त है. जिस विष्णुके परम पद और आत्माको मुनिजन एक कहते हैं॥३४॥हे राजन्! रूपादि सब विषयरागादि दोषोंसे कल्पित हुए एक कालमें बलसे मनको आच्छादित करते हैं ॥ ३५ ॥ इन्द्रियोंके समूहके रूपरसादि विषयोंमें निष्परिग्रह विचरते हुए मुनिजन परिग्रहवाले सुन्दर

धर्मको अपने विद्यालक्षणसे जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! विद्यालक्षणके संयोगसे मन आच्छादित नहीं होता है जो मुनि शब्दकरके ब्रह्मवादियोंने ग्रहण किया है ॥ ३७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उस ब्रह्मविद्याके व्रतमें स्नान किये नियममें तत्पर सत्पुरुषोंके स्थान दिव्यलोक हैं वही लोकोंके लोक हैं ॥ ३८ ॥ हे भारत ! जहांके हवि सेवन करनेवाले देवता क्षयको प्राप्त नहीं होते हैं और यजमान भी अपने भोगोंसे कर्मसे प्राप्त स्थानमें अपनी पत्नियोंके सहित दुःखरहित हो निवास करता है ॥३९॥ यज्ञके अवसानमें प्रभुने ब्राह्मणोंको शैल (दिव्य देह पित्र्य गान्धर्व प्राजापात्य वा ब्राह्म) स्थान दिया यह सब प्राणियोंपर दया करके निर्मल अन्तःकरण करके द्विजोंको दिया ॥४०॥ उस दिव्य देहरूपी शैलको जो सर्वगात्रात्मक क्षेत्र है

विद्यालक्षणसंयोगान्न मनश्छाद्यते नृप ॥ यदि चेन्मुनिशब्देन गृह्यते ब्रह्मवादिभिः ॥३७॥ वेदविद्याव्रतस्नातैर्नियतैः कुरुसत्तम ॥ दिवि लोकाः सतां स्थानं लोकानां लोक उच्यते ॥ ३८ ॥ यत्र देवाहव्यपुष्टा न क्षयं यान्ति भारत ॥ यजमानश्च भोगैः स्वैः कर्मप्राप्तोदिते पदे ॥ मोदते सह पत्नीभिर्विज्वरो वसुधाधिप ॥३९॥ यज्ञावसाने शैलेन्द्रं द्विजेभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥ दयया सर्वभूतानां निर्मलेनान्तरात्मना ॥४०॥ तं शैलं सर्वगात्राणि परस्परविशेषिणः ॥ न शेकुः प्रविभागार्थं भेत्तुं सर्वोद्यमैरपि ॥४१॥ ततस्ते ब्राह्मणगणा निषेदुर्वसुधातले ॥ श्रमेणाभिहताः सर्वे विवर्णवदना नृप ॥४२॥ सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु वाग्भिर्मधुरभाषिता अब्रवीत्प्रणतः सर्वाञ्छिरसा तान्द्विजोत्तमान् ॥४३॥ नहि शक्यो बलाद्भेत्तुं युष्माभिरसुसङ्गिभिः ॥ अपि वर्षशतैर्दिव्यैः परस्परविरोधिभिः ॥ ४४ ॥ एकीभूता यदा सर्वे भविष्यथ समाहिताः ॥ अविरोधेन युगपद्विभजिष्यथ निर्वृताः ॥ ४५ ॥

परस्पर भेददृष्टिसे परस्पर संघटित हुए ब्राह्मण क्षत्रियत्वादिके अभिमानसे सर्वोद्यम अर्थात् कर्मविद्यासे आत्मासे पृथक् निश्चय करनेको समर्थ न हुए ॥४१॥ तब वे सब ब्राह्मण श्रमसे व्याप्त विवर्णवदन हो पृथ्वीमें बैठे ॥ ४२ ॥ तब उस पर्वतके पार्श्वभागमें पाप छेदन करनेवालोंमें मुख्य वायु प्रणत हुए उन सब ब्राह्मणोंसे कहने लगा ॥४३॥ हे ब्राह्मणो ! यह देहाभिमानका पर्वत बल वा हठसे परस्पर विरोधके कारण देह इन्द्रियादिमें मन लगानेसे दिव्य सौ वर्षोंमेंभी भेदन नहीं कर सकते ॥ ४४ ॥ जब तुम समाधिमें सावधानतासे एकीभूत हो जाओगे और कोई विरोध न होगा

तब तुम इसको एकसाथ तोड सकोगे ॥४५॥ स्वाभाविक सामर्थ्यको राग और द्वेष नष्ट कर देते हैं और रागदोषसे रहित होनेसे ब्रह्मनिष्ठा बढती है ॥ ४६ ॥ जब मैं स्वर्गको भेदन करनेवाले यहां वहांके भोगसे रहित शिलाओंसे फैंके हुए और सानुओंके गिरनेसे धातुओंके फैलनेसे (अर्थात् गुहामें शयन करनेवाला मैं गुरु देहकी आरंभ करनेवाली धातु और उनके कार्य वाक् प्राण मनको विशीर्ण करूंगा ("अन्नमयं हि सौम्यं मनः आपां- मयः प्राणस्तेजोमयी वागिति श्रुतेः") और शिखररूप इन्द्रियोंको तापित करूंगा ॥४७॥ समीप स्थित स्त्री आदि जिन्होंने चित्तमें सर्पके समान प्रवेश किया है तथा नाग (श्वेतसांपके तुल्य शास्त्रादि व्यसन व्याल कृष्णसर्पके तुल्य कामादि व्यसनों)से विशीर्ण और प्रेरित हुएको जब गुरु नाशकर

बलं हि रागद्वेषाभ्यां वर्द्धते ब्रह्मसत्तमाः ॥ विमुक्तं रागदोषाभ्यां ब्रह्म वर्द्धति शाश्वतम् ॥ ४६ ॥ यदाहं भेदयिष्यामि स्वर्गभिन्नैः शिलाशतैः ॥ धातुभिश्च विसर्पद्भिः शिखरैश्चानुपातिभिः ॥४७॥ विशीर्णैः पार्श्वविवरैर्नागैश्च गलितैर्भुवि ॥ बहुभिर्व्यालरूपैश्च चोद्यमानो गुहाशतैः ॥४८॥ प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं शैलेन्द्रस्य सुभाषितम् ॥ तूष्णीं बभूवुस्ते सर्वे तदा ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलिहोमाश्च वर्द्धन्ते अहन्यहनि भारत ॥ द्विजानां तपसाढ्यानां गृहधर्मेषु तिष्ठताम् ॥१॥ देवतार्च्याश्च पूज्यन्ते तदाप्रभृति भारत ॥ तेषां ब्रह्मविदां राजन् पृथिव्यां ब्रह्मवादिभिः ॥२॥ तत्रैव ब्रह्मसदने समे निस्तृणकण्टके ॥ प्राज्येन्धनतृणे देशे पुण्ये पर्वतरोधसि ॥३॥

देता है तब यह कार्यसाधनमें समर्थ होता है ॥४८॥ इस प्रकार शैलेन्द्रके कहे उस वचनको स्वीकार करके वे सब ब्रह्मश्रेष्ठ मौन हुए अर्थात् वैराग्य न होनेसे आत्माको देहसे पृथक् करनेके व्यापारसे निवृत्त हुए॥४९॥इति श्रीमहा० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! उस समयसे प्रतिदिन तपसे युक्त गृहधर्ममें वर्तनेवाले शैलभेदमें असमर्थ कर्मवाले ब्राह्मणोंका ऋत्विजोंके साथ पृथ्वीमें बलि- होमादि कर्म बढने लगा ॥ १ ॥ हे भारत ! तबसे देवताओंकी पूजा उन ब्रह्मवादियों द्वारा पृथ्वीमें बढती है ॥ २ ॥ उसी पृथ्वीरूप ब्रह्मसदनमें "अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्" इति श्रुतेः। जो समान और तृणकंटकसे रहित है (भ्रू और घ्राणसन्धिके मध्यमें)

विन्ध्यके समीप घृत ईंधन तृणसे युक्त ॥ ३ ॥ भगवान्की गतागतिरूप क्रियाको देखकर निवास करते हैं तपके अर्थी महाभाग ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित॥४॥गृहस्थ धर्ममें निरत दानसे शुद्ध यतिभी वहां निवासकी इच्छा करते हैं॥५॥वनके मूलफलसे और कर्मफलसे रत ब्राह्मणश्रेष्ठ अग्निहोत्र व्रतमें पारगामी जितक्रोध सावधान चित्त ॥ ६ ॥ दैवयुक्त कर्मसे युक्त ब्राह्मणश्रेष्ठ चीरवल्कलधारी नियत जितेन्द्रिय॥७॥ दारुणव्रतमें स्थित हुए ब्रह्मचर्यमें स्थित हो इस क्रमसे सर्वथा वे महात्मा ॥ ८ ॥ क्रमसे पवित्र वेदके पवित्र संस्कारको प्राप्त हो जो कि पुरातन ब्रह्मचारियोंने आचरण किये

वासं यत्र प्रकुर्वन्ति दृष्ट्वा भगवतः क्रियाम् ॥ तपोऽर्थिनो महाभागा ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ॥ ४ ॥ गृहस्थधर्मनिरता दानप्राप्तेन चेतसा ॥ यतयश्चापि कांक्षन्ति धर्मेणेह विकांक्षिणः ॥५॥ वन्यैः कर्मफलैश्चैव रता ब्राह्मणपुङ्गवाः॥ अग्निहोत्रव्रतस्नाता जितक्रोधाः समाहिताः ॥६॥ दैवयुक्तेन वायुक्ताः कर्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ चीरवल्कलसंवीना नियता नियतेन्द्रियाः ॥७॥ चरन्तो ब्रह्मचर्यं च व्रतमास्थाय दारुणम् ॥ अनेन विधिना राजन् क्रमप्राप्तेन सर्वशः ॥८॥ क्रमाद्वै वेदसंस्कारं पुण्यं प्राप्ताः सनातनम्॥ पूर्वैराचरितं राजन्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥९॥ नावेदविद्वान्नागच्छेन्नापि रौद्रं व्रतं चरेत् ॥ नच त्यागेन गच्छेत गृहधर्मं न च त्यजेत् ॥ १० ॥ नैवं गच्छेत दुःस्थानमप्राप्तो वेदसंचयम् ॥ ऋचश्च संचयः पूर्वः सामगानां च भारत ॥ ११ ॥ ये चापि पुत्रिणो न स्युः श्रुत्वापि प्राप्नुयुः फलम् ॥ ब्राह्मणास्तपसा श्रान्ता गुरोश्च परिचर्यया ॥१२॥ यस्य नैव श्रुतं ब्रह्मन्न गृहीतं विशांपते ॥ कामं ते धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १३ ॥

हैं उनके स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ वेदका न जाननेवाला गृहस्थ धर्मको नहीं प्राप्त होता अर्थात् सम्पूर्ण वेदको विना जाने गृहस्थ धर्म न करे त्यागके विना संन्यास न करे. विना पुत्र उत्पन्न किये गृहस्थधर्मका त्याग न करे ॥१०॥ वेदसंचयके प्राप्त हुए विना संन्यासी न हो. हे भारत ! साम गानेवालोंको पहले ऋच और यजुका संचय करना चाहिये ॥ ११ ॥ और जो पुत्रवाले न हों वे वेदान्तको सुनकर उसके फलको प्राप्त होते हैं. ब्राह्मणजन तपसे श्रान्त हुए गुरुकी परिचर्यासे फलको पाते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जिसने वेदको न सुना न ग्रहण किया उस ब्राह्मणसे राजा शूद्रोंके

कर्म करावे ॥१३॥ जो ब्राह्मण होकर वेदका आदर न करे ऐसा तो होही नहीं सक्ता, जो वेदका अनादर करे वह ब्राह्मणही नहीं है, कारणकि ब्रह्मचारी और गृहस्थ दोनोंहीका अध्ययनकालमें मन वेदमें लगता है ॥ १४ ॥ इस कारण भूतिसे सम्पन्न अपनी विभूतिकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण वेदपूर्वक सब इन्द्रियोंके आरंभोंको सम्यक् प्रकारसे आचरण करे ॥ १५ ॥ इति श्रीमहा. खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ वैशंपायन बोले; वे नारद आदि गन्धर्व और ऋषि वैदिक कर्म श्रेयस्कर हैं और उसके न करनेमें राजदण्ड है इस प्रकार जानकर वेदप्रधान अपराधरहित नाग राजकी प्रकृति वाले चन्द्रमा और आदित्य (काल) को आगे करके ब्रह्मसे उत्पत्तिवाले देवता और ऋषियोंको वसु हवि

अथवा नैव विद्येत यद्ब्रह्म नाद्रियेद्द्विजः ॥ द्वाभ्यां तु श्रोत्रविषये मनः पूर्वं समाहितम् ॥ १४ ॥ एवं सर्वेन्द्रियारम्भान्वेदपूर्वान्त्समाचरेत् ॥ ब्राह्मणो भूतसंपन्नो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृताः॥ ब्राह्मणान्पूजयन्देवान्वसुभिर्ब्रह्मसंभवैः ॥ १ ॥ नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप ॥ कुर्वन्ति सततं यज्ञे क्रमप्राप्तं पितामहम् ॥ २ ॥ वचोभिर्मधुराभाषैः पञ्चेन्द्रियनिवासिभिः ॥ सर्वभूतप्रियकरैः सर्वभूतहितैषिभिः ॥ ३ ॥ स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितैः ॥ प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥ ४ ॥ ततः कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान्प्रभुः ॥ भवानपि सुतैः सार्द्धं यक्ष्यते वसुधातले ॥ ५ ॥ क्रतुभिः परमप्रातैः संपूर्णवरदक्षिणैः ॥ यक्षा सुराश्च ते सर्वे यथा प्रतिगुणैः प्रभोः ॥ ६ ॥

दाक्षिणादिके सहित पूजन करने लगे ॥१॥ हे राजन् ! वह नारद गंधर्वादि ऋषि ब्रह्माकी पूजाके क्रमसे ब्रह्माको पूजन करते हुए ॥ २ ॥ पंचेन्द्रियमें निवास करनेवाले मधुरवचनों और सब भूतोंके प्रिय करनेवाले सब प्राणियोंके हितकारी ॥ ३ ॥ वचनोंसे स्तुतिको प्राप्त हो यज्ञान्तमें पंचेन्द्रियसे सावधान उस यज्ञको देखकर ब्रह्माजी बोले; तुम धन्य हो भाग्यसेही तुम्हारी यज्ञमें इस प्रकार प्रवृत्ति है॥४॥ तब कश्यपसे संभाषण कर भगवान् प्रभुने कहा आपभी पृथ्वीतलमें पुत्रोंके सहित पूजित होंगे ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! सम्पूर्ण श्रेष्ठदक्षिणावाले यज्ञोंसे यक्ष असुर अपने २ सात्त्विक

राजसी तामसी गुणोंसे ॥ ६ ॥ पहले हम यजन करेंगे पहले हम यजन करेंगे, इस प्रकार बलसे दर्पित परस्पर विवाद करने लगे ॥ ७ ॥ देवता और दैत्य परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले अपनी विपुल भुजाओंके आश्रयसे युद्धके निमित्त स्थित हुए ॥८॥ तपसे पापरहित हुए ऋषियोंसे तथा दूसरे वेदवेदांगके पारगामी ऋषियोंके निवारण करनेपरभी वे॥९॥ गोकुलमें वृषके समान युद्ध करने लगे.वे देवता प्राण नामक सूत्रात्माके आश्रित हो कामादि असुरोंके जीतनेको सूत्रात्माकेजीतनेकी इच्छा करने लगे॥१०॥तब वे सब प्राणियोंके देखतेर मृत्युके विषयको प्राप्त हुए तब वे महा-

वयं यक्षामहे पूर्वं पूर्वं यक्षामहे वयम् ॥ एवमन्योन्यसरंम्भाद्विग्यन्ते बलदर्पिताः ॥ ७ ॥ दैतेयाश्चाप्यदैतेयाः परस्परजयैषिणः ॥ युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ ॥ ८ ॥ निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्ग-पारगैः ॥ ९ ॥ निवार्यमाणा युद्धयन्ते वृषभा इव गोकुले ॥ प्रयुद्धा युद्धसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः ॥ १० ॥ पश्यतां सर्व-भूतानां मृत्योर्विषयमागताः ॥ ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः ॥ ११ ॥ रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः ॥ चचाल वसुधा चैव पादाक्रान्ता च रोचिभिः ॥ १२ ॥ नौर्यथा पुरुषाक्रान्ता निषीदति महाजले ॥ पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्दमाना गजा इव ॥ १३ ॥ चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना ॥ ततः समभवद्युद्धं मधोर्विष्णोश्च भारत ॥ १४ ॥ युगा-न्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम् ॥ प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपौरुषम् ॥ १५ ॥

बलवाले अत्यन्त शब्द करके॥११॥ पंखवालेपर्वतके समान बाहुसे एक दूसरेको रोकने लगे (अर्थात् वैराग्येसे कामादिको निवारण करने लगे) उसमेंभी विघ्न हुआ उन विषयवासनाओंकी ज्वालासे योगभूमि चलायमान हो गई ॥१२॥ जैसे पुरुषोंसे आक्रान्त होकर नौका महाजलमें दुःखी होता है इसी प्रकार आसनबंधादिक पर्वतके तुल्य शब्द करते हुए हाथीके समान विशीर्ण होते हैं॥१३॥ पवनसे ताडित होकर महानदी (नाडी) चलायमान हो गई. हे भारत ! उस समय मधु और सत्त्वगुणरूप विष्णुका युद्ध होने लगा॥१४॥ वह घोर युद्ध युगान्तके समान सब प्राणियोंको

भयंकर हुआ तब विष्णुने दैत्यका समग्र बल और पौरुष नष्ट कर दिया॥१५॥जैसे अग्निके बलको जल शान्त कर देता है इसी प्रकार भगवान्‌से वह दैत्य शान्त हो गया ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचविंशतितमोऽध्यायः॥२५॥वैशंपायन बोले; वह भीम-पराक्रमी मोहरूपी दैत्य (वासनामय) पाशोंसे महेन्द्ररूपी आत्माको पर्वतान्तररूपी देहमें बांधता हुआ ॥१॥ और उसको हर्षरूपी प्रह्लादके वचनसे उसके अनुसारी द्वेषरूप लयके लक्षणवाले योगीका पूर्णसत्त्वके न जाननेसे उत्पन्न हुआ मोह इन्द्ररूप अपनी बुद्धिके क्षय होनेसे भविष्यद्वैतके अदर्शनरूप

वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा ॥ तथा प्रशामितं तेन भगवत्यपकारिणा ॥१६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि० पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलवान्त्स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रमः ॥ बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्रं पर्व-तान्तरे ॥ १ ॥ तं वै प्रह्लादवचनाल्लक्षणज्ञश्च भारत ॥ ऐश्वर्यमैन्द्रमाकांक्षन् भविष्यं बुद्धिसंक्षयात् ॥ २ ॥ बद्ध्वेन्द्रं सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितैः ॥ आयसैर्बहुभिश्चित्रैर्बलवद्भिर्विदारणैः ॥ ३ ॥ विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकोविदः ॥ मध्ये गणानां सर्वेषां कालस्य वशमागतः ॥४॥ द्वैधीभूताः काश्यपेया मधोर्वशमुपागताः ॥ युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदाः ॥ ५ ॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदाः॥प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रसहन्ति च सर्वशः ॥६॥ तन्त्रीभिः सुप्रयुक्ताभिर्मधुराभिः स्वभावताः ॥ मनो मधोर्विधुन्वन्ति युध्यमानस्य रागिणः ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यकी इच्छा करता हुआ सुषुप्तिरूप निर्विकल्पावस्थामें गिराता हुआ ॥ २ ॥ मर्मभेद करनेवाले पाशोंसे भिन्न लोहके समान दृढपाशोंसे इन्द्रको बांधकर ॥ ३ ॥ अग्रणी होकर विष्णु और रुद्रको कालके वशीभूत हो सबगणोंके मध्यमें बुलाने लगा ॥ ४ ॥ तब वह कश्यपकी सन्तान द्वैधीभूत होकर मधुके वशमें हो गई और बडी २ गदा ग्रहण कर मधुके सन्मुख धावमान हुई अर्थात् गन्धर्वादि रजप्रधान मधुका मोह नष्ट करने लगे ॥ ५ ॥ गंधर्व और किन्नर बाजे और गानेमें पंडित सब प्रकार नाचने गाने और हँसने लगे ॥ ६ ॥ और स्वभावसे मनोहर वीणा बजाते हुए युद्ध करते हुए

रागी मधुका मन विदीर्ण करने लगे ॥७॥ मधु दैत्य (तप्त) के विकारके निमित्त ब्रह्माके नियोगसे सत्यवादी गन्धर्व इन विकारोंको करते हैं ॥८॥ उस मधुदैत्यका मन उस गंधर्व विद्यामें आसक्त हो गया. दानव और असुर प्रत्यक्ष नाद करने लगे॥९॥इस प्रकार मधुका मन सब ओरसे विषयोंमें लगाकर योगरूपी नेत्रोंसे देखते हुए विष्णुजी सबका यत्न करते काष्ठमें स्थित अग्निके समान अन्तर्ध्यान हो गये ॥१०॥मंत्ररूप ऋषि परमात्मारूप विष्णुको अन्तर्हित देखकर व्याकुल हो गये और स्वयंभी पितामह आत्माको आगे करके अन्तर्ध्यान हो गये॥११॥अब विष्णु और दैत्यके मिससे

मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात्पद्मयोनि (गि) नः ॥ एतान्विकारान्कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः ॥ ८ ॥ तत्र शक्तो हि गन्धर्वे तस्मिञ्छब्दे मधुर्मनः ॥ दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ॥ ९ ॥ मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन्योगेन चक्षुषा ॥ मन्दरं प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥१०॥ ऋषयो दीप्तमनसं किंचिद्व्यथितमानसाः ॥ पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ॥११॥ विष्णुं सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः ॥ भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम् ॥ १२ ॥ विष्णुश्चाभ्यहनद्दैत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे ॥ स पपात महीं तूर्णं जानुभ्यां रुधिरं वमन् ॥१३॥ न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः ॥ बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाचिन्त्यपराक्रमः ॥ १४ ॥ इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठन् जानुभ्यां स महीतलात् ॥ मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ १५ ॥ परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्जतुः ॥ समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधैषिणौ ॥ १६ ॥

विवेक और मोहका युद्ध वर्णन करते हैं. मधुके समान नेत्रवाले मधुने क्रोधकर विष्णुको ताडित किया. वह उसकी मुष्टि शंखदेशमें लगनेसेभी विष्णुजी एकपदभी कंपित न हुए ॥१२॥ विष्णुने दैत्यकी छातीमें घूंसेका प्रहार किया तब वह जानुसे रुधिर बहाता पृथ्वीमें गिरा॥१३॥ युद्धविशारद विष्णुने उस पतित हुएको न मारा. कारण कि वह अचिन्त्यपराक्रमी बाहुयुद्धके समयको जानते थे ॥ १४ ॥ फिर वह पृथ्वीतलसे इन्द्रध्वजके समान जानुओंके बलसे उठा और क्रोधसे नेत्रोंद्वारा दग्ध करता आ ॥ १५ ॥ फिर दोनों कठोर वचन कहकर गर्जने लगे और परस्पर वधकी

इच्छासे बाहुयुद्ध करने लगे ॥१६॥ दोनों बाहुयुद्धमें बली दोनों तपसे शान्त दोनों सत्य पराक्रमी ॥१७॥ दृढप्रहारवाले दोनों वीर परस्पर एक दूसरेको खैंचने लगे और दो पंखवाले पर्वतके समान युद्ध करने लगे ॥१८॥ एक दूसरेको पृथ्वीमें पकडकर तिरस्कार करने लगे और दो हाथियोंके समान हाथके नखोंसे प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ तब शरीरमें व्रण हो जानेसे बहुत रुधिर निकला जैसे ग्रीष्मान्तमें कांचन धातुएं पर्वतसे निकलती हैं ॥२०॥ तब शरीरसे निकलते हुए रुधिरसे भीजे हुए दोनों पैरोंके अग्रभागसे पृथ्वीको विदीर्ण करने लगे ॥२१॥इस प्रकार वे दोनों

उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ॥उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ॥ १७ ॥ दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः ॥ शैलेन्द्राविव युद्धचन्तौ पक्षैः पाषाणसन्निभैः ॥ १८ ॥ विकर्षन्तौ वमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले ॥ गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतुः ॥१९॥ ततो व्रणमुखैश्चैव सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव काञ्चनम् ॥२०॥ संसिक्तौ रुधिरौघैश्च स्रवद्भिः समरञ्जितौ ॥ अथोद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयतां महीम् ॥२१॥ अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा ॥ पतङ्गाविव युध्येतां पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ ॥२२॥ शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे ॥ सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः परया वर्णसम्पदा ॥२३॥ स्तुतयो विष्णुसंयुक्ताः सत्याः सत्यपराक्रमे ॥ शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्तं चेतनेन च ॥ २४ ॥ तद्ब्रह्म इन्द्रियैर्युक्तं तेजोभूतं सनातनम् ॥ ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयतां गते ॥ २५ ॥

वीर परस्पर अनेक प्रकारसे प्रहार करके मांसके निमित्त दो पक्षीके समान युद्ध करने लगे ॥२२॥ तब आकाशमें सब प्राणी सिद्धोंके मुखसे निकली सत्यपराक्रमयुक्त विष्णुकी स्तुति सुनने लगे ॥ २३ ॥ जब सत्यपराक्रम विष्णुकी स्तुति की गई (देहादि अनात्मामें आत्माभिमानका जो मोह है उसके नाश करनेको आत्मासेही आत्माको विवेक स्थलपर आरूढ करे) जो शरीर धातुसंयुक्त और चेतनके साथ संयुक्त है ॥२४॥ वह सनातन तेजयुक्त ब्रह्म सनातन है. उस सूक्ष्म और लयको प्राप्त हुएमें सब भूत अवश्य स्थित होते हैं. अर्थात् माया नष्ट होनेसे ब्रह्मरूपसे स्थित होते हैं॥२५॥

फिर सब भूतोंका त्रिलोकीमें कामनाका देनेवाला सूक्ष्मरूप और अनेकरूप सब भूतोंसे उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ और वह सबका नियन्ता सुरूप और अनेकरूप होकर लोकोंमें विचरता है. अनेक कारणान्तरसे मानसी रूपमें स्थित होता है ॥२७॥ वह योगात्मा मानसीरूप शेष कूर्मादि धारण कर अनेक दुष्ट निग्रहरूप कारणसे शेषनागरूपसे पृथ्वीको धारण करके द्युलोकको धारण करे चार वेद और पांच तत्त्वको सूक्ष्मरूपसे धारण करता हुआ विचरता है ॥२८॥ ब्रह्मरूपसे ब्राह्मणोंमें युद्धरूपसे क्षत्रियोंमें प्रदानकर्मसे वैश्वोंमें और सेवाकर्मसे शूद्रोंमें वसता है ॥२९॥ क्षीरदानसे गौओंमें

पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा ॥ प्रबोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः ॥ २६ ॥ सुरूपो बहुरूपांस्ताँल्लोकान्त्संचरते वशी ॥ मानसीं तनुमास्थाय बहुभिः कारणान्तरैः ॥२७ योगात्मा धारयन्तुर्वीं नागात्मानं दिवंधरः ॥ ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥२८॥ ब्राह्मेण विप्रान्वसति युद्धेनैव च क्षत्रियान् ॥ प्रदानकर्मणा वैश्याञ्छूद्रान्परिचरेण च ॥ २९ ॥ गावः क्षीरप्रदानेन अश्वान्यज्ञेषु प्रोक्षणैः ॥ पितरश्चोष्मणा वेदहविर्भागेन देवताः ॥३० ॥ चतुर्भिर्व्यतिरिक्ताङ्गैस्त्रिभिरन्यैश्च धातुभिः ॥ सप्तभिः पितृभिर्नित्यैस्त्रींल्लोकान्परिरक्षति ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं नित्यं तद्रूपनिहतात्मकम् ॥ प्रकाशं चाप्रकाशं च निगूढं स्वेन तेजसा ॥३२॥ त्रयस्तु पितरो नित्यं वर्द्धयन्ति दिवाकरम् ॥ चतुर्भिः पितृभिश्चैव चन्द्रो वर्धति मण्डले ॥३३॥ त्रयः पितृगणा नित्यं पिण्डान्पश्चाददन्ति ते ॥ चत्वारोऽन्ये पितृगणाः सिद्धाः पश्चक आददे ॥ ३४ ॥

यज्ञोंसे प्रोक्षणकर्मद्वारा अश्वोंमें गरम भोजनके प्रदान करनेसे पितरोंमें हविर्भागसे देवताओंमें॥३०॥दर्श पौर्णमास पिण्डपितृयज्ञ इन चारमें और मन वाक् प्राण इन तीनमें इस प्रकार सात अन्नसे पितरोंके साथ तीन लोककी रक्षा करता है ॥३१॥ यह सप्तक चन्द्रसूर्यात्मक है. इसमें अर्चिरादि मार्ग प्रकाशरूप और धूमादि मार्ग आकाशरूप हैं. यह अपने तेजसे निगूढ कर रक्खा है॥३२॥मन वाक् प्राण यह तीनों पितर नित्य दिवाकर अर्थात् आर्चिरादि मार्गको वढाते हैं और दर्शादि चार पितरोंसे चन्द्रमण्डल (धूममार्ग)बढाया जाता है ॥ ३३ ॥ पूर्वोक्त तीन पितर नियमसे

नित्य फलभोगके अन्तमें स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंको संहार करते हैं अर्थात् मन वाक् और प्राण उपासनाको प्राप्त हो मुक्ति प्रदान करते हैं और दूसरे दर्शादिक पितरोंके गण शरीरके आकारसे परिणामको प्राप्त हो पंच विषयादिक होते हैं अर्थात् दर्शादिका फल देहान्तर प्राप्तिके निमित्त है ॥ ३४ ॥ हे विभो! तुमही तिन पांचों धर्मोंके रूप हो जैसे सुवर्णके कुंडलादि होते हैं. उस प्रकार सनातन दिव्य शाश्वत ब्रह्मसे सबका संभव है ॥ ३५ ॥ इस कारण आप उस तेजको ग्रहण करते हो. सब प्रकार अग्नि वायुरूप हो उसी कर्मसे तुम आदित्यरूप हो ॥ ३६ ॥ जो अपनी रश्मियोंसे जगत्को भस्म करते हुए भक्षण करते हो. युगान्तकालके प्राप्त होनेसे परम सिद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ पक्ष संधि पूर्णिमा और अमा-

त्वमेव पञ्च तान्धर्मांस्त्वमेवापञ्च तान्विभो ॥ सनातनमयो दिव्यः शाश्वतो ब्रह्मसंभवः ॥ ३५ ॥ तस्मात्तत्तेज आदत्ते अग्निर्वायुश्च सर्वशः ॥ अतस्त्वं कर्मणा तेन आदित्यः समपद्यत ॥ ३६ ॥ यदश्नासि जगत्सर्वं रश्मिभिः प्रदहन्निव ॥ युगान्तकाले संप्राप्ते परां सिद्धिमुपागतः ॥ ३७ ॥ पक्षसंधावमावास्यां लोकं चरसि मानुषम् ॥ ऋषिभिः सह गूढात्मा सूर्येन्दुवसुसंभवैः ॥ ३८ ॥ सफलं कर्म कुर्वाणं यजतां पुष्टिवर्धनम् ॥ हेतूनामविकाराय मा भूत्कर्मविपर्ययः ॥ ३९ ॥ वनस्पत्योषधीश्चैव युगपत्प्रतिपद्यसे ॥ बालभावाय वसुधां पक्षे पक्षे जनिस्तव ॥ ४० ॥ भूतानां भुवि भूतेश भाव्यर्थं वसुधातले ॥ वसु यद्भुवि किंचिच्च सर्वं तत्त्वमयं विभो ॥ ४१ ॥ त्वमेव विविधं धर्मं शाश्वतं वसुधातले ॥ देवयज्ञं मन्त्रवाक्यमात्मयज्ञं समानुषम् ॥ ४२ ॥ द्विविधः स्वर्गमार्गश्च सूर्यश्चन्द्रश्च निर्मलः ॥ चन्द्रमाः पितृयानश्च देवयानश्च भास्करः ॥ ४३ ॥

वसमें सूर्य चन्द्रमा वसुके संग गूढात्मा होकर मनुष्यलोकमें विचरते हो ॥ ३८ ॥ फलसहित कर्मको करते हुए पुष्टिवर्धन यजन करते हुए हेतुओंके अविकारके निमित्त कर्मका विपर्यय न हो ॥ ३९ ॥ वनस्पति और औषधियोंमें दर्शादिको पृथ्वीको चन्द्ररूपसे प्राप्त होते हो. बालभाव होनेसे प्रत्येक पक्षमें उत्पन्न होते हो ॥ ४० ॥ हे भूतेश ! भूत भविष्य वर्तमान अर्थोंमें जो कुछ भूतोंका द्रव्य है वह सब तत्त्वरूप है ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! पृथ्वी-तलमें आप विविध शाश्वत धर्म करते हो. आप देवयज्ञ मं वाक्य आत्मयज्ञ मानुषरूप हो ॥ ४२ ॥ सूर्यचन्द्रमाके भेदसे स्वर्गका दो प्रकारका मार्ग है चन्द्रमा पि यान मार्ग और सूर्य देवयान मार्ग है ॥ ४३ ॥

तुमही पृथ्वीरूप होकर प्राणिरूपसे मर्यादाके सहित विश्वमें विचरते हो. इन्द्रियादिके गुणोंको संक्षेप करके देहमात्ररूपसे दूसरे लोकमें गोचर होता है ॥ ४४ ॥ एकही आप पुराणपुरुष विराटरूप हो अक्षय अप्रमेय कर्मकर्ता वशी ॥ ४५ ॥ और तेजरूप होकर चक्षुओंके गोचर होते हो और आकाशचारी वायुभी तुम हो सात महत् अहंकार पंच तन्मात्राओंसे नित्य आच्छादित होकर स्थित होता है ॥ ४६ ॥ साधन निर्माण संहार प्रलय अर्थात् समाधिसाधनकालमें जीवरूपसे निर्वाणमें शुद्धरूपसे संहाररूप दिन प्रलयमें रुद्ररूपसे पालनमें विष्णुरूपसे दिशा वर्णाश्रम मर्यादा इक्षुइ-

त्वमेव वसुधायुक्तो विश्वं चरसि सीमया ॥ एकीकृत्य गणान्सर्वान्संक्षिप्यामुत्र संभवः ॥ ४४ ॥ एकस्त्वमसि संभूतः पुराणपुरुषो विराट्ट ॥ अक्षयश्चाप्रमेयश्च कर्मकारकरो वशी ॥ ४५ ॥ मूर्तस्तेजसि संभूतो वायुः पर्येति खेचरः ॥ सप्तभी रूपसंस्थानैर्नित्यमावृत्य तिष्ठति ॥ ४६ ॥ साधने चापि निर्माणे संहारे प्रलये तथा ॥ धाता धारणकाले च दिशश्चक्षुषि धारिणी ॥ ४७ ॥ सेव्यमानो मुनिगणैर्नित्यं विगतकिल्बिषैः ॥ कर्मभिः सत्यमापन्नैः समरागैर्जितेन्द्रियैः ॥ ४८ ॥ स्तूयमानैश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरैस्तथा ॥ सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ॥ ४९ ॥ कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः ॥ शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा तु हृदये स्थितः ॥ ५० ॥ आदित्या रश्मयो बालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ ॥ जंघे तु वसवः साध्याः सर्वसंधिषु देवताः ॥ ५१ ॥ जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती ॥ मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः ॥ ५२ ॥

न्द्रियमें चिद्रूपसे वर्तमान तुमही हो ॥ ४७ ॥ नित्य पापरहित कर्मोंद्वारा सत्यताको प्राप्त हुए शत्रुमित्रमें समान दृष्टि रखनेवाले जितेन्द्रिय मुनिजनोंसे सेवित॥४८॥देवता सिद्ध और मुनिजनोंसे स्तूयमान होकर (मधुसेवद्ध हुए महेन्द्र नामक जीवने स्तुतिव्याजसे सिद्ध हो सद्गुरुसे बोधित होकर हरिने)अपने सर्वात्मक देह हयशिरको स्मरण किया ॥४९॥ वह सर्वदेवमय अपना वेदमय रूप करते हुए शिरके मध्यमें महादेव और हृदयमें ब्रह्मा स्थित हुए ॥५०॥ सूर्यकी किरण बालचन्द्र सूर्य नेत्र हुए वसु साध्य जंघाओंमें और सम्पूर्ण संधियोंमें देवता हुए ॥ ५१ ॥ जिह्वामें अग्नि देवता सत्या

देवी वाणीरूप, मरुत और वरुण जानुदेशमें स्थित हुए॥५२॥इस प्रकार देवताओंको महाअद्भुत रूप करके क्रोधसे लाल नेत्र कर मोहरूपी असुरको पीडित किया॥५३॥उस समय मधुके मेदरूपी जलसे पूर्ण पृथ्वी दीखने लगी.जैसे घनकुचासे युक्त प्रमदा शुक्लवर्ण धारण किये शोभित होती है त्वचा रुधिर मांस मज्जा अस्थि मेद शुक्र धातुओंसे रचित शरीर मोहमें मेदमात्र पर्यन्त अवशिष्ट रहा अर्थात् अज्ञानलेशसे पूर्ण हुई पृथ्वी दीखने लगी ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! तबसे यह पृथ्वी स्निग्धरूपहो मेदिनीनामसे विख्यात हुई और सहस्रों दैत्योंद्वारा यह नाम प्रतिष्ठित किया गया है. यदि अज्ञान न हो तो ज्ञानके होतेही शरीरपात हो जाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत् ॥ असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ॥ ५३ ॥ मधोर्मेदोऽम्बूपूर्णा च पृथिवी समदृश्यत ॥ प्रमदेव घना चैव शुक्लांशुक निवासिनी ॥ ५४ ॥ मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम ॥ नामासुरसहस्रेण धरण्यां संप्रतिष्ठितम् ॥५५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥मधोर्निपतनं दृष्ट्वा सर्वभूतानि पुष्करे ॥ प्रहृष्टानि प्रगायन्ति प्रनृत्यंति च सर्वशः ॥१॥ सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु काञ्चनैः शिखरोत्तमः॥बहुधातुविचित्रैश्च खं लिखन्निव चाबभौ ॥ २ ॥ गिरयश्चाभिशोभन्ते धातुभिः समरञ्जिताः ॥ प्रांशुभिः शिखरा-ग्रैश्च सविद्युत इवाम्बुदाः ॥३॥ पक्षवातोद्धतो रेणुश्चूर्णैः साञ्जनवालुकैः ॥ छादयन्पर्वताग्राणि महामेघ इवाबभौ ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले;परम व्योमाख्य कारणब्रह्ममें अज्ञान मोहरूप दैत्यका पतन देखकर सम्पूर्ण प्राणी प्रसन्नहो नाचने और गाने लगे अर्थात् अब उपदेश लगकर कारण ब्रह्ममें प्रवेश हो सकेगा॥१॥वह पूर्वोक्त सुन्दर पार्श्ववाला गिरिमुख्य अर्थात् दिव्यदेहभी बहुतसी धातुसे विचित्र आकाशको लिखता हुआसा प्रकाशित हुआ॥२॥उसके निकट धातुओंसे रंजित दूसरे पर्वत शोभित होने लगे. उनके ऊंचे शिखर विजलीयुक्त बादलके समान शोभित हुए ॥३॥ पक्षपवनसे उठी हुई धूरि और चूर्ण और रेतके संग पर्वतके अग्रभागको आच्छादन करतीहुई महामेघके समान शोभित हुई ॥ ४ ॥

मेघोंसे छुए हुए शिखर पक्षसे विक्षिप्त वृक्ष कांचनके उद्भेदसे अधिकतर पर्वत आकाशमें स्थित हुए (आकाश हृदयाकाश) ॥ ५ ॥ पक्षवाले शिखरयुक्त सुवर्णकी धातुओंसे रंजित पवनसे समुद्भूत हुए विहंगमोंको त्रासित करते हैं ॥ ६ ॥ वे सम्पूर्ण सुवर्णके पर्वत स्फटिक मणियोंसे युक्त सूर्यकान्त चंद्रकांत मणियोंसे निर्मल ॥ ७ ॥ महापर्वत हिमवान् श्वेतधातुओंसे अर्चित सुवर्णकी समान प्रकाशित पर्वतोंके अग्रभाग और सूर्यकी किरणके समान प्रकाशित ॥ ८ ॥ पक्षान्तरसे निकले हुए प्रकाशमान मणियोंसे प्रकाशित ताम्रपुष्प युक्त शिखरोंद्वारा अपने तेजसे

मेघसंश्लिष्टशिखराः पक्षविक्षिप्तपादपाः ॥ काञ्चनोद्भेदबहुलाः खे तिष्ठन्तीव पर्वताः ॥ ५ ॥ पक्षवन्तः सशिखरा हेमधातुभिरञ्जिताः ॥ पवनेन समुद्भूतास्त्रासयन्ति विहङ्गमान् ॥६॥ काञ्चनाः पर्वताः सर्वे स्फटिकैर्मणिभिश्चिताः॥ सूर्यकांतैश्च बहुभिश्चन्द्रकान्तैश्च निर्मलाः ॥ ७ ॥ हिमवांश्च महाशैलः श्वेतैर्धातुभिराचितः ॥ कांचनैः शिखराग्रैश्च सूर्यपादप्रकाशितः॥ ८ ॥ मणिभिश्च प्रकाशद्भिः पक्षान्तरविनिःसृतैः ॥ ताम्रपुष्पैश्च शिखरैर्दीप्यमानैः स्वतेजसा ॥ ९ ॥ मन्दरश्चोग्रशिखरः स्फाटिकैर्मणिभिश्चितः ॥ वज्रगर्भो निरालम्बैः स्वर्गोपम इवाबभौ ॥१०॥ सहस्रशृङ्गः कैलासः शिलाधातुविभूषितः॥ तोरणैश्चैव निबिडैः प्रांशुभिश्चैव पादपैः ॥ ११॥ प्रवादयद्भिर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ॥ देवकन्याङ्गरागैश्च प्रक्रीडद्भिरिवाबभौ ॥ १२ ॥ मधुरैर्वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्चाभिनयोद्गतैः ॥ शृङ्गारैः साङ्गहारैश्च कैलासो मदनायते ॥ १३ ॥ आदित्याभासिभिः शृङ्गैर्भिन्नाञ्जनचयोपमैः ॥ विन्ध्यो नीलाम्बुदश्यामो विभिन्न इव तोयदः ॥ १४ ॥

प्रकाशमान ॥ ९ ॥ मन्दर उग्र शिखरवाला स्फटिकमणियोंसे शोभित वज्रगर्भ निरालम्ब स्वर्गकी समान शोभित हुआ ॥ १० ॥ सहस्रशृंग कैलास शिलाधातुओंसे भूषित बडी बडी घनी तोरणोंसे युक्त ऊंचे वृक्षोंसे व्याप्त ॥ ११ ॥ गन्धर्वोंसे गाया हुआ किन्नरोंके शब्दोंसे परिपूर्ण देवकन्याओंके अंगरागोंसे क्रीडा करते हुएकी समान शोभित हुआ ॥ १२ ॥ मधुर बाजे और गीतोंसे अभिनय करते हुएकी शृंगार और अंगहारद्वारा कैलास कामरूप हो रहा है ॥ १३ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशमान भिन्नांजनचयके समूहोंसे नीलमेघकी समान श्याम भिन्नमेघकी समान विंध्याचल

दीखने लगा. (मेरुपृष्ठरूप भ्रूमध्यमेंसे प्रकाश हो निकलता है)॥१४॥ महाबलिष्ठ मेरुपृष्ठमें सब प्राणियोंकी धातुके निमित्त मेघजालके समान उत्तम जलको उगलने लगे ॥१५॥ चित्रविचित्र शिला और बहुतरूपवाली धातुएं अपने गुहाद्वारसे स्फटिकमणिके समान निर्मल जल वहाने लगीं॥१६॥ ग्रीष्मान्तमें वायुसे संयुक्त हुए बिजलीसहित घनके समान पुष्पोंसे चित्रविचित्र हुए वृक्ष शोभित होने लगे ॥ १७ ॥ कनकअलंकारसे भूषित हाथी पक्षियोंकी कांतिसे लीन हुए लता और वृक्षोंमें आश्रय लेने लगे॥१८॥लम्बायमान वायुसे चलायमान फूलोंवाले वृक्ष वैशाखमासके समान॥१९॥

धात्वर्थं सर्वभूतानां मेरुपृष्ठे महाबले ॥ निर्वेमुर्विमलं तोयं मेघजालैरिवोत्तमैः ॥१५॥ शिलाभिर्बहुचित्राभिर्धातुभिर्बहुरूपिभिः ॥ प्रस्रवद्भिर्गुहाद्वारैः सलिलं स्फटिकप्रभम् ॥१६॥ ग्रीष्मान्ते वायुसंमूढा घना इव सविद्युतः ॥ चित्रैः पुष्पैस्तरुगणा शोभन्त इव भूषिताः ॥१७॥ नागाः कनकसंभूतैर्विचित्रैरिव भूषिताः ॥ विहंगमाभिर्लीनाश्च लतास्तरुसमाश्रिताः ॥१८॥ विलम्बन्त्यः सपुष्पाश्च नृत्यन्ते वायुघट्टिताः ॥ पवनेन समुद्धूता महता माधवेऽहनि ॥१९॥ मुमुचुः पुष्पसंघातं तोयं वेलेव वर्षति ॥ बलवद्भिश्च विपुलैः शाखास्कन्धावरोहिभिः ॥२०॥ पादपैर्वर्णबहुलैर्ध्रियते च वसुन्धरा ॥ मधुप्रिया मधुकरा मधुमत्ता विहङ्गमाः ॥ घोषयन्तीव गायन्तः कामस्यागमसंभवम् ॥ २१ ॥ विष्णुर्मधोर्निहन्ता च चकार मधुवाहिनीम् ॥ नदीं प्रस्रवनिर्भेदां सुतीर्थां बहुलोदकाम् ॥२२॥ अङ्गारवर्णसिकतां मधुतीर्थां मनोरमाम् ॥ विमलैरम्बुभिः पूर्णां पुष्पसंचयवाहिनीम् ॥२३॥ विवेश पुष्करं सा तु ब्रह्मणो वाक्यचोदिता ॥ ऋषिभिश्चानुचरितां ब्रह्मतन्त्रनिषेविभिः ॥ २४ ॥

फूलोंको त्यागने लगे. जैसे वेलामें जलवर्षा होती है और बडे बलवाले शाखा और स्कंधमें आरोहण करनेवाले ॥२०॥ बहुत सारे वृक्षोंसे पृथ्वी धारित होने लगी.मधुके प्रिय मधुकर मधुमत्त विहंगम गाते हुए मानो कामका आगमन सूचन करते हैं॥ २१ ॥ मधुहंता विष्णुने बहुत जलयुक्त मधुवाहिनी निर्भेद सुतीर्थ नदी निर्माण की॥२२॥जो अंगारवर्णवाली रेतसे युक्त सुतीर्थ और मनोरम उज्ज्वलजलसे पूर्ण पुष्पसमूहकी वहानेवाली थी ॥२३॥ इस प्रकार वह स्वप्नकल्पा मधुमती भूमि "नेह नानास्ति किंचन"इस श्रुतिसे प्रबोधित योगीके हृदयाकाशमें लीन हो गई जो ऋषिरूप

योगियोंद्वारा अनुसरण की गई थी ॥२४॥ इस प्रकार योगसे उपसर्ग विलीन होनेपर ब्रह्मवियासंज्ञक 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यवाली अन्तःकरणकी वृत्ति उदय होती है । धात्री (मूलप्रकृति) कपिल (त्रिगुणात्मकत्व मिश्ररूपसे) गौ (आत्मतत्व विद्यावृत्ति होकर) पयः क्षरते (ब्रह्मको प्रकाश करती है) मधुर (आनंदमात्र होनेसे) यज्ञे (योगके अधिक विस्तार होनेपर) ब्रह्मवाक्य (अहं ब्रह्मास्मि) से प्रेरित हुई प्रगट होती है ॥२५॥ फिर वह पृथ्वी कूटस्थ वस्तुको धारण करनेमें समर्थ होकरभी अपने उपादान जलके प्रति प्राप्त होकर गतवती होती हुई उस समय योगी ब्रह्मा निर्विकल्प समाधिसे आत्माको भजता है॥२६॥और वेदवाणीसे समुद्भूत ज्ञानमात्र अज्ञानका विरोधी ब्रह्म सर्वदा आकाशमें स्थित है अर्थात् आकाशभी उसके

धात्री कपिलरूपेण गौर्भूत्वा क्षरते पयः ॥ मधुरं वितते यज्ञे ब्रह्मणो वाक्यचोदिता ॥२५॥ शिरश्च पृथिवी भूतं संघातुं प्राप्तवान्महीम् ॥ शुद्धं च भजते लोक शाश्वतं परमाद्भुतम् ॥२६॥ सरस्वत्याः समुद्भूतं ब्रह्मक्षेत्रे तमोनुदम् ॥ मरुतीर्थमतिक्रम्य पुष्करेषु विसर्पति ॥२७॥ सुचारुरूपा धर्मज्ञा अजारूपेण छादयन् ॥ रूपं कनकवर्णाभं तपोयुक्तेन तेजसा ॥ २८ ॥ अजगन्धकृतोन्मुक्तः संभूतः पर्वतो महान् ॥ गुरुद्वारगुणप्राणः शाश्वतः सिद्धसेवितः ॥ २९ ॥ वेदिकाभिः सुचित्राभिः काञ्चनाभिर्विराजितः ॥ पुष्कराणि परीतानि त्वष्ट्रा विपुलदक्षिणः ॥ ३० ॥

आश्रितही है ॥२७॥ सुन्दररूप धर्मके जाननेवाली अजा (अहंकारादि रूपसे माया) कनकवर्ण ब्रह्मको आच्छादन करनेवाली है वह आच्छादन तपयुक्त चित्तसे होता है, यह अध्यास अदृष्टवशसे होता है ॥ २८ ॥ वह नदी सन्मात्र लेशसे मुक्त अर्थात् अहंकारादिकोंसे जाग्रत अवस्थामें सत्के समान भासमान महापर्वत (गुरुद्वार) शाश्वतरूप सिद्धजनोंसे शोभित सुवर्णके समान रूपको साक्षात् करती है ॥ २९ ॥ जो कहो कि सुषुप्तिआदिमें मनके संयोगाभावसे संसारी अहमर्थसे प्रकाशित होता है उस समय भी इसको अनात्मत्व नहीं होता उसपर कहते हैं कि वह पर्वत जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन क्रीडाके स्थानवाली वेदिकाओंसे विराजित है जो चित्रविचित्ररूप है. और अहंकारादि उत्थानकारण मूल अज्ञान

विचित्र जगत्के निर्माण करनेवाले ईश्वरसे व्याप्त है. हे राजन् ! चित्प्रकाश्य चित्स्वभावको नहीं भजता है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार उस महामेरु पर्वत (शरीर) का रूप पांच धातु (महाभूतशरीरके कारण) से व्याप्त है वह अहंकाररूपसे अद्भुत दर्शन होकर अनिर्वचनीय चेतनासे सम्पन्न होता है ॥ ३१ ॥ फिर शास्त्रदृष्टिसे ब्रह्मरूप हो " अहं मनुरभवम् " इति श्रुतेः। तत्त्वको कथन करता है. मैंही इस धर्मचारी देहको मनके संकल्पमात्रसे करूंगा सो केवल देहमात्रही नहीं किन्तु सम्पूर्ण लोकमात्रको कर सकता हूं. तथा पृथ्वी शरीरसम्बन्धिनी चेतनाको बहुतप्रकारसे कर सकता हूं. यह सब मनकेही संकल्पसे हो सकता है यह सब आत्मा है यह इसका तात्पर्य है ॥ ३२ ॥ सर्वज्ञता कहते हैं धातुलक्षणवाली पांच इन्द्रियोंसे तीनों

महामेरोर्यथा रूपं पञ्चभिर्धातुभिर्वृतः ॥ चेतनायाभिसंपन्नो रूपेणाद्भुतदर्शनः ॥३१॥ करिष्याम्यहमप्येतन्मनसा धर्मचारिणम् ॥ रूपं बहुविधं लोके पार्थिवीं चेतनां तथा ॥३२॥ त्रींश्च लोकान्प्रपद्येयं पञ्चभिर्धातुलक्षणैः ॥ षष्ठेन च ससर्जेयं मनसा धर्मचारिणीम् ॥३३॥ सङ्गेषु भावमोहाभ्यां पश्यन्ति च समृद्धयः ॥ विमुक्ताः सर्वसङ्गेभ्यो धारयन्ति परिग्रहान् ॥३४॥ न च विन्देत मां कश्चिन्मनसा कामरूपिणम् ॥ पञ्चधातुनिबद्धश्च नानाभाषितचोदनाः ॥ ३५ ॥ ये च विष्णुमधीयन्ते बहुधा कामविग्रहैः ॥ ते मां पश्येयुरव्यक्तं तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ३६ ॥

लोकोंको जानता हूं (आत्मज्ञान कहते हैं) और छटे मनसे धर्मचारिणी आत्माके सदृश असंग चिदाकार वृत्तिभी बना सकता हूं ॥ ३३ ॥ दीयमान विद्याके अधिकारियोंको कहते हैं. जो सम्यक् ऐश्वर्यमान् पुरुष है अर्थात् संकल्पमात्र भ्रमत्वसे सिद्धिको देखते हैं इसी कारण संपूर्ण संगोंसे विरक्त हुए बुद्धि इन्द्रिय मन प्राणोंको विषयोंसे रोकते हैं वे अधिकारी हैं ॥३४॥ कामरूपवाले मुझको मन करके कोईभी नहीं जान सकता कारण कि वे पंचेन्द्रियोंसे अनेक प्रकार बँध रहे हैं और "अपामसोममृता भवेम " आदि नानार्थवाद फलमें पडे हैं ॥३५॥ जो रामकृष्णादि अनेक रूप धारण करनेवाले विष्णुको प्रणवादि उच्चारण कर देखते हैं अर्थात् प्रथम स्थूल पूजासे अन्तर दृढ हो जाय इस कारण बाह्यसामग्रीका वर्णन किया

जब सब जगत् लीन हो जाय तब योगीको अव्यक्तरूपका भान हो जाता है ॥३६॥ जो धर्ममार्गमें स्थित हो मेरे विषे प्राप्त होंगे वे स्वर्गजित् होकर क्लमरहित हो मुझको देख सकते हैं ॥३७॥ और जो मेरुपृष्ठमें प्रांशुरूप पर्वत है अर्थात् भ्रूमध्यमें समष्टि अहकार है इसपर स्थित हो अविद्याके संग युद्धमें इन्द्रियरूप प्राणत्यागसे निर्मल हो ॥३८॥ अप्सराओंके साथ समागमको प्राप्त हो मनके समान वेगवान् होकर विचरें. इस प्रकार नंदन और काम्यक वनको प्राप्त हो ॥३९॥ इस विद्याको प्राप्त हुए मेरे भक्त अनेक प्रकारके बहुतसे व्रत करके शरीरको त्याग करेंगे ॥ ४० ॥ सिद्धिको प्राप्त हो वे मनुष्य इच्छानुसार कामनाओंको प्राप्त होते हैं उस लोक और इस लोकमें यथासुखसे जा सकते हैं ॥ ४१ ॥ जब तपसे उक्त

ये च मामभिरोहेयुर्नरा·धर्मपथे स्थिताः ॥ तेऽपि स्वर्गजितः सन्तः पश्येयुर्मां गतक्लमाः ॥ ३७ ॥ यश्चैव पर्वतः प्रांशुर्मेरुपृष्ठे व्यवस्थितः ॥ एतमारुह्य युध्येयुः प्राणत्यागेषु निर्मलाः ॥३८॥ अप्सरोभिः समागम्य विचरेयुर्मनोजवाः ॥ नन्दनं वनमारुह्य काम्यकं च महद्वनम ॥३९॥ इमां विद्यां समास्थाय मद्भक्ताः पुष्करेष्विह ॥ शरीरं क्षपयिष्यन्ति व्रतैर्बहुविधैः कृतैः ॥४०॥ सिद्धिं प्राप्य क्रमेयुस्ते कामैर्बहुविधैर्नराः ॥ इमं लोकममुं चैव संपतेयुयथासुखम् ॥४१॥ गौरा सिद्धेति व्याख्याता त्रिषु लोकेषु विद्यया ॥ प्रभावं तपसा वृत्तं दर्शयन्ति समाहिताः ॥४२॥ षण्णां ज्ञानाभिसंधीनामभिज्ञानात्ससग्रहाः ॥ भवेयुस्ते निरारम्भा धातुनिर्मुक्तबन्धनाः ॥ ४३ ॥ सहस्रगुणमप्यत्र दत्त्वा दानफलादिव ॥ अवमानेन विप्राणां मनः शुद्धेन कर्मणा ॥ ४४ ॥ सर्वत्रैवाप्रमेयेण अत्यन्तं फलमाप्नुयुः ॥ अमुष्मिंल्लोके धर्मज्ञा सह सर्वकुलोद्भवैः ॥ ४५ ॥

प्रकारका. प्रभाव हो जाता है तब विद्या अर्थात् शास्त्राचार्यके उपदेश ज्ञानसे गौरी परब्रह्मविदको त्रिलोकीमें सिद्ध हुई दीखती है ॥ ४२ ॥ वे योगी जन ज्ञानवृत्तिमें रहनेसे धातुनिर्मुक्त होते हैंअर्थात् उनका बंध छूट जाता है और वे ज्ञान होनेसे निरालम्ब हैं ॥ ४३ ॥ जैसे कोई अपराधी सहस्रगुण राजाको कर देकर दानफलसे राजाकी प्रीतिसे मुक्त होता है इस प्रकार शुद्धमन ब्राह्मणोंके सन्मानसे और शुद्ध कामरहित मनके बंधनसे मुक्त हो जाते हैं।।४४।।सब जगह असंकुचित मनसे अत्यन्त दुःखका परिहार परमेश्वरकी प्रीति ब्रह्मलोकमें पूर्वजोंके सहित उनको प्राप्त होती है जो धर्मज्ञ

हैं ॥४५॥ जिन यजमानोंका ब्राह्मणकुलके साथ यज्ञमें सान्निध्य होता है वे यजमानादिभी वारंवार यज्ञमें अभिषेकको प्राप्त हो पूर्वोक्त फलको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ जैसे दानयज्ञसे सम्पत्ति मानते हो, तथा ब्रह्मविद्याकी सम्पत्ति तपोधनके आगे स्थित मानते हो तौ ऐसा न मानिये, कारण कि भूतोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त धर्मचारिणी अर्थात् बाह्य दान यज्ञ दानादिसे बाह्य सम्पत्ति साध्य हैं वह परिमित सम्पत्ति है और मानसी होनेसे अनन्त है ॥ ४७ ॥ यदि ऐसा है तौ दानादिक करनेसे क्या लाभ है. यह गौरीरूप आत्मा सत्यस्वरूप और अबाधित है. यह सत्यरूप होगी इसमें सन्देह नहीं. चित्तशुद्धि आदिसे जो इस प्रकार धर्माचरण करता है वह अफलताको प्राप्त नहीं हो सक्ता ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां

येषामिह च सान्निध्यं यज्ञे ब्राह्मणसंकुले ॥ ते भूयो यजमानाद्या अभिषिच्य पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ तथा तां मन्यसे गौरीं मनसा धर्मचारिणीम् ॥ अनुग्रहाय भूतानां तन्ममाग्रे तपोधने ॥ ४७ ॥ सत्य एष परोविद्ये भविता नात्र संशयः ॥ नाफलो विद्यते धर्मश्चरितो धर्मचारिणा ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दिशं जिगमिषुर्दिव्यामुत्तरां सत्यसाधनः ॥ तथा स धातुनिचये पुण्ये पर्वतरोधसि ॥ १ ॥ विष्णुः परमधर्मात्मा एकपादेन तिष्ठति ॥ दश वर्षसहस्राणि पुष्करे पुष्करेक्षणः ॥ २ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय तपसा ब्रह्मसंभवः ॥ घटते कर्मणोग्रेण लोकमुत्थानकारणात् ॥ ३ ॥ भासुरो भस्मनाच्छाद्य गात्राणि स्वयमात्मनः ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं च तपोधनः ॥ ४ ॥ तेजसा तेन ज्योतींषि विभाव्य ब्राह्मणर्षभः ॥ तिष्ठते नभसो मध्ये योगात्मा भावयन् जगत् ॥ ५ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशंपायन बोले; मोक्ष अवस्थाको प्राप्त होनेवाले उत्तरदिशारूप मोक्षमें जानेकी इच्छासे उस धातुसमूहवाले पर्वत (नासामूल भ्रूसंधि) में ॥ १ ॥ परम धर्मात्मा विष्णु हृदयरूपी आकाशमें विश्व तैजस प्राज्ञ तुरीय चार चरणोंमेंसे तुरीयपादसे स्थित होता है. अर्थात् निर्विकल्प समाधिसे स्थित होता है. वह पुष्करलोचन दश सहस्र वर्ष स्थित हो ॥ २ ॥ शुद्धआत्मामें मायोपाधिक शरीरको लीन कर उग्रकर्मसे मुक्तिके निमित्त चेष्टा करता है ॥ ३ ॥ भस्मसे अंगोंको आच्छादन कर नौ सहस्र वर्षतक वह तपोधन ॥ ४॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ अपने तेजसे प्रसिद्ध तारकादि ज्योति-

योंको व्याप्त करके सब जगत्‌को भावना करते हुए योगात्मा आकाशके मध्यमें स्थित होते हैं ॥५॥ सोम अर्थात् चन्द्रमाके विषयका अधिकार करके मनसे मनकोधारण करके वह धर्मात्मा ब्राह्मी सिद्धिको प्राप्त होकर ॥६॥ दिवि भुविकेमध्यमें सब ओरसे देख प्रकाश कर्म बहुरूप सम्पदासे करता हुआ ॥७॥ वह माहेश्वर गूढात्मा वृष (धर्म) रूपसे स्थित होता है, वह धर्म अहिंसागर्भ जपादिरूप निष्काम सकाम दक्षिण चरण है और हिंसागर्भ यज्ञादिरूप सकाम निष्काम उत्तर चरणहै. उसमें निष्कामरूप जपादिरूप चरणको आगे करके ॥८॥ नौ सहस्र वर्षतक महायोगी महादेव ब्रह्म-संभव नियमसे युक्त होता है ॥९॥ अब योगज धर्मसे विश्वकोद्योतन करते हुए वृषरूप शंकरसे मेघकी उत्पत्ति कहते हैं. पश्चात् शिवके अन्तर

सोमो विषयमाक्षिप्य मनसा धारयन्मनः ॥ युक्तः परमधर्मात्मा ब्राह्मीं सिद्धिमुपागतः ॥६॥ संप्रदृश्यत सर्वत्र दिवि भुव्यन्तरे तथा ॥ ज्योतिष्णु कर्म कुर्वाणो बहुरूपः स सम्पदा ॥ ७ ॥ महेश्वरोऽतिगूढात्मा वृषरूपेण तिष्ठति ॥ उद्धृत्य दक्षिणं पादं वायुभक्षः समाहितः॥ ८ ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रशतमेव च ॥ महायोगी महादेवो नियमाद्ब्रह्मसंभवः ॥ ९ ॥ अथ वायुर्घनीभूतो अन्ते चरति गोपतेः ॥ फेनीभूतं समुद्गारैः पवनं निर्गिरन्मुखात् ॥ १० ॥ स निष्क्रान्तस्ततो वक्त्रात्प्राणेन परमात्मवान् ॥ निर्यासभूतो पतितो नैवार्द्रो नैव पार्थिवः ॥ ११ ॥ स फेनो वारिणाविश्य चचार वसुधातले ॥ नैवार्द्रो नैव शुष्काङ्गो वायुसंघातमागतः ॥ १२ ॥ तत्कालफेनमुत्क्षिप्य पवनः सह वारिणा ॥ निरालम्बे निरालंबस्त्वभ्राणि समपद्यत ॥ १३ ॥ ते क्षिपन्ति पयो भूमावात्मानं स्वेन घट्टिताः ॥ नीलमेघारुणप्रख्या नैवार्द्रा नैव पार्थिवाः ॥ १४ ॥

घनीभूत अर्थात् निपीडित रुईकी तरह घनीभूत हुआ वायु होता है तब फेनीभूत वायुको मुखसे बाहर निकालते हैं ॥ १० ॥ वह प्राणद्वारा मुखसे निकलकर वायुसे वृक्षकेमदरूप होकर गिरा न वोह गीला था और न पाषाणादिकोंके समान शुष्क था ॥ ११ ॥ वह शिवके मुखसे निकला फेन चर्मकोशाकार जलको ग्रहण कर न गीला न सूखा आकाशमें विचरता वायुके संघातको प्राप्त हो गया ॥१२॥ तब उसी समय वायु जलके सहित फेनको उठाके आश्रयरहित आकाशमें प्राप्त करता है,जिससे मेघ होतेहैं ॥१३॥ वे परस्पर स्वयं विघट्टित होनेसे घनत्व और नीलवर्णको प्राप्त हुए

सूर्यद्वारा घनीभूत हो पृथ्वीपर जल वरसाते हैं ॥ १४ ॥ फिर सर्वत्र जानेवाला वायु ब्राह्मण ऐश्वर्यको प्राप्त होकर एक सहस्र वर्षतक तप करता हुआ ॥१५॥ और अग्नि भी बहुतसी जटाओंको धारण कर तथा चीर वल्कल वस्त्र पहरे अनाहार उस पुष्करमें तप करने लगा अर्थात् वायुसे अग्नि हुआ ॥ १६ ॥ और उनको तप करते चार सहस्र वर्ष बीत गये तपके तेजसे महान् अग्नि प्रवृत्त हुआ ॥ १७ ॥ वह स्वर्गवासी अन्धकारहारी प्रकाश करके स्वर्गमें दिव्य ब्राह्मणरूप धारणकर तप करता रहा ॥ १८ ॥ स्वर्ग प्रकाश करनेवाली अग्निका जो तम है वह मनुष्योंके लोकमें स्थित है अर्थात् धूममार्ग मनुष्योंका है उस तेजका संहर (समूह) रूप सूर्य है ॥ १९ ॥ वह सब भूत और मनुष्योंके तेजको आक्षिप्त करके वर्तता है

ब्राह्मीं मूर्तिं समाधाय वायुः सर्वत्रगो वशी ॥ समाः सहस्रं संपूर्णं चचार विपुलं तपः ॥ १५ ॥ वह्निर्बहुजटी भूत्वा चीरवल्कलवासभृत् ॥ तपस्तप्यदनाहारो मौनमास्थाय पौष्करे ॥ १६ ॥ वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि चैकं च यत्नतः ॥ तस्याग्नेस्तेजःसंभूतो महानग्निः प्रवर्त्तते ॥ १७ ॥ स्वर्गप्रकाशं कृत्वा च स्वर्गवासी तमोनुदः ॥ दिविभूतप्रकाशाख्यस्तपसा ब्रह्मसंभवः ॥ १८ ॥ तत्तमो भुवि राजेन्द्र मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ॥ भास्करस्तेजसंहारस्ततो भवति सत्तमः ॥ १९ ॥ मर्त्यानां सर्वभूतानां तेज आक्षिप्य वर्तते ॥ नतु योगबले राजन् ब्राह्मण्यस्य विशेषतः ॥ २० ॥ तत्तमो नाशयेद्रात्रौ नाप्यह्नो भविताऽद्वयम् ॥ पुष्पमित्रो महातेजा यक्षः सर्वत्रगो वशी ॥ तपश्चरति धर्मात्मा पुष्पकरेषु समाहितः ॥ २१ ॥ महेन्द्रशिखराद्धारा यावन्त्यो यान्ति मेदिनीम् ॥ तावत्स्वरूपमास्थाय तिष्ठते निखिलाः समाः ॥ २२ ॥

परन्तु योगबलसे ब्राह्मणोंका तेज नहीं हरण करता है ॥ २० ॥ वह उक्त गुणके सूर्य उस अंधकारको रात्रिमें नाश करता हुआ अर्थात् रात्रिमेंभी आराधन करनेवालेकी धूमगति नाशते हुए अपनी गति प्रदान करते हैं और दिनमें मृत्युको प्राप्त होने परभी अयोगीको आर्चिरादि मार्गकी प्राप्ति नहीं होती. अद्वैतवादी पुरुषकोही दिनरात किसी समय मरे तोभी श्रेष्ठगति प्राप्त होती है और स्वस्थ कुबेर महातेजस्वी धर्मात्मा आकाशमें स्थित हो तप करता है ॥ २१ ॥ महेन्द्र शिखरसे जितनी धारा पृथ्वीमें आती हैं उतनेही स्वरूपमें स्थित हो बहुत समयतक तप करता है ॥ २२ ॥

और पृथ्वीमें जानुके बलसे स्थित हुआ आकाशमें सहस्र वर्षपर्यन्त विना पलक लगाये ज्योति देखता हुआ जगत्‌को देखता है ॥ २३ ॥ और जब सूर्य मध्यमें प्राप्त हुए तब सूर्यकी किरणोंसे उनके अनेक नेत्र प्रकाशित हुए॥२४॥वे नेत्रोंकी कांति सूर्यमंडलसे सहस्रों ऐसे प्रकाशित हुई जैसे विद्वानोंके तेजसंयोगसे अग्नि प्रकाशित होतीहै ॥ २५ ॥ वह कुबेर विस्फुलिंगयुक्त नेत्र अन्तभागसे आदित्यके प्रति वर्तता है और देहारंभ कर्म क्षय होनेके पीछे, अथवा युगान्तके समय ॥ २६ ॥ बहुत तापयुक्त फिर होकर वसुधातलमें स्थित हो सूर्यकी किरणोंके आश्रय सहस्र वर्षतक तप करते

जानुभ्यां पतितो भूमौ ज्योतिर्नभसि पश्यति ॥ समासहस्रं निखिलं नेत्रैर्निमिषैर्जगत् ॥ २३ ॥ नेत्राणि बहुधा तस्य नेत्रान्तैरभिनिःसृतः ॥ मध्यं दिनकरे प्राप्ते रश्मिवान्त्स परिग्रहे ॥२४॥ ते रश्मयः प्रभानेत्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ रराज तेजः संयोगाद्विद्वद्भिरिव पावकः ॥२५॥ स विस्फुलिङ्गैर्नेत्रान्तैरादित्यमनुवर्त्तते ॥ कर्मणोऽन्ते युगान्ते वा जगतो बहुरूपिणः ॥२६॥ बहुताप पुनर्भूत्वा विषण्णो वसुधा तले ॥ स यो रश्मिषु संपूर्णस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥२७॥ निगृहीतेन्द्रियो भूत्वा अप्सरोभिर्ललाम् ह ॥ मेरोः शिखरमासाद्य कामं कामेन निवर्मन् ॥२८॥ तपः कामः सः यक्षस्तु कुबेरो नरवाहनः ॥ विष्णुरेव तपोऽध्यक्षस्तेजसोऽन्ते विजृम्भति ॥ २९ ॥ नहि कश्चित्पुमानस्ति य एवं तप आचरेत् ॥ त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ऋते विष्णुं सनातनम् ॥ ३० ॥ वासुकिर्बहुशीर्षस्तु नागेन्द्रो मौनमास्थितः ॥ तप आचरते सम्यक् निधाय मनसा मनः ॥ ३१ ॥

रहे ॥ २७ ॥ नियहीत इन्द्रिय हो अप्सराओंके साथ रमते रहे. मेरुपर्वतको प्राप्त हो कामको कामके द्वारा भोगते हुए ॥ २८ ॥ तपकी इच्छासे वह नरवाहन कुबेर तपमें विष्णुरूपही है यह जानना उचित है॥२९॥कोईभी पुरुष नहीं है जो ऐसा तप करे, हे राजेन्द्र ! त्रिलोकीमें सनातन विष्णुके सिवाय कोईभी ऐसा नहीं है॥३०॥वासुकी बहुत शिरवाले नागेन्द्र मौनको प्राप्त हो तप करने लगे.मनसे मनको रोक भली प्रकार तप करने लगे॥३१॥

शेष सत्यधृति नाग बलवान् ब्रह्मसंभव धर्मात्मा वृक्षपर आरोहण कर नीचेको मुख कर लटकते हैं अर्थात् धूमपान करते हैं ॥ ३२ ॥ और विषको त्याग अपनी जिह्वासे शरीरको चाटते हुए पूर्ण सहस्र वर्षतक वह महात्मा निराधार रहे ॥ ३३ ॥ उस समय बहुतसा कालकूट विष प्राप्त हुआ उसने लोकोंको ग्रास कर लिया कहीं कोई सुखको प्राप्त न हुआ॥३४॥यह तीक्ष्ण विष सब सर्पोंमें अनुगत है और स्थावर जंगम सब भूतोंमें अनुगत है॥३५॥हे भारत ! परस्पर प्राणग्राहि क्रोधरूपसे तामसी तपपरिणामको प्राप्त होता है और बढा हुआ यह तीक्ष्णतासे अंगोंको नाश कर देता है॥ ३६ ॥ तब महाभाग्यवान् ब्रह्माजीने प्राणियोंके हितकी कामनासे ब्रह्माक्षरयुक्त अहिंसावाले मंत्रकी रचना की॥३७॥ गरुत्मान् सलिल मही और मेरे जीवनभूत द्वन्द्वकी रक्षा करे.अथवा ब्रह्मरूपी प्रणव अहिंसकरूप अक्षर है, यह अमृतका बीज है विस्तारित दीर्घ पक्ष और स्वरयुक्त वं

शेषः सत्यधृतिर्नागो बलवान् ब्रह्मसंभवः ॥ वृक्षमारुह्य धर्मात्मा अवाक्शीर्षोऽवलम्बते ॥ ३२ ॥ जिह्वाभिर्लेलिहानाभिर्गात्रजं विषमुत्सृजन् ॥ समाः सहस्रं सम्पूर्णं निराहारस्तपोधनः ॥३३॥ कालकूटं विषं तद्धि सुमहत्समपद्यत ॥ येन लोको ह्यभिग्रस्तो न सुखं विन्दते नृप ॥३४॥ सर्वत्रानुगतं तीक्ष्णं भुजङ्गेषु महीपते ॥ जङ्गमं स्थावरं चैव सर्वत्रानुगतं विषम् ॥३५॥ परस्परविवृद्धेन हिंसायुक्तेन भारत ॥ नाशयत्यात्मनोऽङ्गानि तेन तीक्ष्णेन भारत ॥ ३६ ॥ अथ ब्रह्मा महाभागो भूतानां हितकाम्यया ॥ मन्त्रं विसृजते राजन् ब्रह्माक्षरमहिंसकम् ॥३७॥ गरुत्मान्विततैः पक्षैर्नखाग्रैः सलिलं महीम्॥ समासहस्रं संपूर्णं चूलाग्रेणावलम्बिना॥३८॥

बीज तथा नखाग्ररूपी पंचांग प्रयोगसे युक्त अथवाॐवां गरुत्मान् हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः। ॐ वीं गरुत्मान् शिरसे स्वाहा तर्जन्योः।ॐ वूं गरुत्मान् शिखायै वषट् मध्यमयोः। ॐवैं गरुत्मान् कवचाय हुम् अनामिकयोः । ॐ वौं गरुत्मान् नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः । ॐ वः गरुत्मान् अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इसी प्रकार हृदयादि मूलमंत्र कहे हैं. जल वं बीजरूपी पृथ्वीको सहस्र वर्ष अर्थात् हकार सहस्र हकार सकार रेफोंके कूटवर्ण और पिछला स्वर मूलशिखा उसके आगे वषट्कारके अवलम्बनसे स्थित है. वषट् पंचाक्षर है इसका ब्रह्मा ऋषिःगायत्री छंदः गरुत्मान् देवता वं बीजम् हः शक्तिः लं कीलकं विषनाशने विनियोगः 'पर्णभारैः' यह ध्यानका श्लोक है.वह वर्णके भारसे सब पृथ्वीमें व्याप्त होकर स्थित हो रहेहैं और बाहर भीतर सूर्य वागादि ज्योतिद्वारा नखाग्रसे अवलम्बन किये व्याप्त है इनविचित्र पर्णोंसेपृथ्वी शोभाको प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥

जिसमें ब्रह्म विचार किया जाता है उस वसुधारूप शरीरके गर्भमें विस्तीर्ण सब ओरसे फैले हुए पक्षरूपी इन्द्रियोंके कार्य समूहसे योगियोंको दृष्टिसे शोभित होते हैं जिसके यह इन्द्रियरूपी पर्ण प्रवृत्तहैं उसकाशरीर बहुत प्रकारके विचित्र विषयोंसे शोभितहोता है; जो शरीरके अन्तरमें सर्वात्मरूपसे विराजमान होता है जिससे शरीर शोभित होता है॥ ३९॥ मंत्रजापका फल कहतेहैं;हे भारत!जिस मंत्रके आवर्तक करनेसे सब प्राणी जीते हैं. हे मनुष्येन्द्र!इस लोकमेंभी और देवलोकमेंभी आवर्तन होता है जिस मंत्रसे निर्विषा पृथ्वी अर्थात् शरीरतलमेंफैलनेवाली इन्द्रियादिसे नक्षत्रयुक्तस्वर्गके समान शोभाहोती है॥४०॥ पुष्करकेजलमें अर्थात्मायाशबलके आश्रयभूतनिर्विशेष चैतन्यमें संसाररूपी नदीमें जाग्रत स्वप्ननामक दोनों किनारोंमेंचलनेवाला मत्स्यरूप जीव शिर

पर्णभारैश्च विकचैर्विस्तीर्णैर्वसुधातले ॥ रराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः ॥३९॥ येन वृत्तेन जीवेषु सर्वभूतानि भारत ॥ इह लोके मनुष्येन्द्र देवलोके च भारत ॥ द्यौरिवाचितनक्षत्रा महीतलविसर्पिभिः ॥४०॥ हिमवान् हिमसंपाते भवत्येकं चरो वशी॥ पुष्कराम्भसि धर्मात्मा मत्स्यो लिखितमूर्द्धजः ॥४१॥ अथ सुतलमाक्रम्य पृथिवी पांशुदेहिनी ॥ तपश्चरति धर्मात्मा बाहुमुद्यस्य दक्षिणम् ॥४२॥ साग्रं वर्षसहस्रं च शतमेकं च सुव्रत ॥ तपश्चरति संयोगाद्वायुभक्षो समाहितः ॥ ४३ ॥ समाधियोगात्सङ्गाद्वा ब्रह्मयोगस्य भारत ॥ येनेयं पृथिवी राजन् धार्यते ब्रह्मयोनिना॥४४॥ अनाद्यन्तेन नित्येन सर्वत्र विषयैषिणा ॥ योऽसौ विष्णुरगाधात्मा परमात्मा निराकृतिः॥४५॥ दिने निषण्णो भवति रात्रौ भवति वै स्थिरः सत्यसन्धः स धर्मात्मा कामकारकरो भवेत्॥४६॥

निकाले हुए निर्विशेष चैतन्यमात्रको प्राप्त होता है ॥४१॥ पीछे सुतलको प्राप्त हो पांशुदेहवाली पृथ्वीसे संगति करके दाहिने बाहुको उठाये (दानादिक करता हुआ) धर्मात्मा तप करता है ॥४२॥वह समीचीन योगद्वारा ग्यारह सौ वर्षतक वायुके भक्षण करते महात्मा अगाधात्मामहात्मा विष्णु तप करते हैं॥४३॥हे भारत ! वह ब्रह्मके समाधियोगसे और ब्रह्मयोगसे तप करते हैं जिस ओंकारके कारण यह पृथ्वी धारण की जाती है ॥ ४४ ॥ विषयाभिलाषी जीवरूपसे वह आदि अन्तरहित नित्य परमात्मा निराकार विष्णु पृथ्वी धारणकरता है ॥ ४५ ॥ दिनमें विवाहीमें स्थित रात्रिमें अवि-

द्यामें स्थित सत्यमें स्थित धर्मात्मारूप विष्णु भगवान् लीलासेही सृष्टि प्रवृत्त करते हैं ॥४६॥ इन विष्णु भगवान्‌का पृथ्वीमें भक्तोंके निमित्त उठाया हुआ जो हाथ है सो उद्धार कहनेसे पृथ्वीके समान है और विद्यामें सूर्य अर्थात् प्रकाश विवेकवाला है ॥४७॥ वह धर्मरूप चन्द्र मनके विषयोंसे मनके बंधको नाश करता है और ग्रहादिक अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियोंकी गतिको शांत करता है ॥ ४८ ॥ वही धर्म अविद्यारूप रात्रिको शिथिल करता है. पृथ्वीविषे दक्षिण हस्त और चित्तकी शुद्धिका करनेवाला है॥४९॥यही अविद्या रात्रिरूपा छाया तत्त्वज्ञानसे रहित हो पृथ्वीके लिंगको प्राप्त हो वृत्तिकी एकाग्रतासे चन्द्ररूप हुई अन्तमें चन्द्रमाकी तादात्म्यताको प्राप्त होती है. वह आकाशमें स्थित होती है अद्भुत है और मिथ्या होनेसे

तस्य यः सोद्यतः पाणिः पृथिव्यां पृथिवीसमः ॥ रात्रौ स तपतो भवति मण्डलं विपुलं नभः ॥४७॥ स चन्द्रविषयं राजञ्छमयामास रुन्धति ॥ ग्रहाणां गतयश्चैव ताराणां च विशेषतः ॥४८॥ तां छायामाक्षिपन्त्सोमात्सवह्निर्मण्डलेन वै ॥ पृथिव्यां दक्षिणो हस्तो महायोगी महामनाः ॥४९॥ सैषा छाया शशिभूता शशिमण्डलमाविशत्॥अलिङ्गा पृथिवीलिङ्गादद्भुतादक्षया दिवि ॥ ५० ॥ अङ्गाङ्गान्युपगृह्यैव तपश्चरति निश्चयात् ॥ प्रोक्ष्य पादौ तु सतलौ पृथिवी तपसि स्थिता ॥५१॥ सूर्यार्चिभिः पीयमानादाक्षिप्यत महीतले ॥ महीमित्राम्बुवसनां युगान्ते विष्णुतेजसा ॥ ५२ ॥ रराज सूर्यरश्मिभिर्व्यतिषिका महानदी ॥ स्फाटिकेव शुभा सैषा काञ्चनैर्धातुभिर्वृता ॥ ५३ ॥ आदित्येन समादत्ता रश्मितेजोभिसंभवैः ॥ मण्डलान्तर्गता देवी चक्षुषा नोपलभ्यते ॥ ५४ ॥

अपचयशून्य है. ह्रदकी किरणोंके समान मिथ्या होती है।।५०।।पृथ्वी चन्द्ररूप किस प्रकार होती है सो कहते हैं सब अङ्गोंको एकत्र कर तीर्थ-स्नान कर फिर यह पृथ्वी तपमें स्थित हुई।।५१।।इस प्रकार जलसे घनीभावरूप हुई पृथ्वी सूर्यके किरणोंद्वारा धारण होनेसे गंगारूप हुई है. वह पृथ्वी सूर्यकी किरणोंसे पीयमान होनेसे सूर्यसे मिलती हुई युगान्तमें विष्णुके तेजसे यह पृथ्वी जलरूप वस्त्रवाली होतीहै ॥ ५२ ॥ सूर्यकी किरणोंसे मिल-नेसे वह महानदी शोभित हुई यह स्फटिकमणिके समान मणिधातुओंसे युक्त हो महानदीरूपसे स्थित हुई ॥ ५३ ॥ रवितेजसे संभव हुई महानदी

मण्डलके अन्तर्गत होकर नेत्रोंके समक्ष नहीं होती है ॥ ५४ ॥ फिर सूर्यकी किरणोंसे उतरकर जलरूप आत्मा पृथ्वी वेगसे वहन करने लगी तब अनेक जलवाली होनेसे यह आकाशगंगा कहाती है ॥ ५५ ॥ शीत छायावाले वृक्ष सुगंधित लता विविध प्रकारके दिव्यगंधिवाले पवनोंसे शोभित है ॥ ५६ ॥ सुवर्णके मुकुटवाली मणियोंकी मेखलावाली पद्मरेणुके समान सित और पीत वर्ण चक्रवाकरूपी कर्णफूलवाली ॥ ५७ ॥ नीलगर्भ सुन्दर केशोंवली फूलोंके संचयसे व्याप्त वह भूषित प्रमदाकी समान चलती हुई शोभित हुई ॥ ५८ ॥ यह लोक धारण करनेमें रत पृथ्वी सुन्दर तप करती हुई प्रथम चन्द्ररूपसे निष्पन्न हुई पीछे गंगापनको प्राप्त हो पुष्कररूप परमात्मा द्वारा एकीभावको प्राप्त हो सर्वके पावन करनेरूप तपके फलको प्राप्त होती

रश्मिभिः पुनरुत्तीर्णा ततो योगेन धावति ॥ आकाशगङ्गा संवृत्ता विपुलैरम्बुविग्रहैः ॥ ५५ ॥ शीतच्छायैश्च तरुभिर्लताभिश्च सुगन्धिभिः ॥ पद्मखण्डैश्च विविधैः शुशुभे दिव्यगन्धिभिः ॥ ५६ ॥ काञ्चनापीडजघना स्फाटिकान्तरमेखला ॥ पद्मरेणुसिता पीता चक्रवाकावतंसिका ॥ ५७ ॥ नीलगर्भसुकेशान्ता पुष्पसंचयसंकुला ॥ शोभते विप्रसर्पन्ती प्रमदेव विभूषिता ॥ ५८ ॥ सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता ॥ सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता ॥ ५९ ॥ सरस्वती स्वरैर्व्यक्तैरधीते ब्रह्मवादिनी ॥ पृष्ठात्प्रयाता शैलेन्द्रे मन्दरे मन्दगामिनी ॥ ६० ॥ ऋङ्मयांश्चतुरो वेदान्पादैश्चतुर्भिरावृतान् ॥ यजुर्भिः सामभिश्चैव ग्रथिताङ्घ्रिक्षया तदा ॥ ६१ ॥ ऊषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ सुपार्श्वस्य गिरेः पादे परिदायैः सुपारणैः ॥ ६२ ॥ निःस्वनं सर्वभूतानि नियमैश्च न शृण्वते ॥ मन्दराग्रे विसर्पन्तं जगत्कृच्छ्रमतीन्द्रियम् ॥ ६३ ॥

हुई ॥ ५९ ॥ फिर वह पृथ्वी गंगारूप होकर सरस्वतीरूप हो अकार उकार मकारको कहती है और व्यक्तस्वरोंसे वेदोंको कहती है और मन्दराख्य अर्थात् नासा और भ्रुकुटीस्थानमें स्थित होती है ॥ ६० ॥ चार पादोंसे आवृत ऋङ्मय चार वेदोंको शिक्षा करके कहती है अर्थात् ऋक् यजु साम वेदको और अथर्वको शिक्षा कर कहती है ॥ ६१ ॥ तपसे दग्धपाप हुए अग्निकी समान तेजस्वी स्थूलशरीररूपी पर्वतके एक देश अर्थात् भ्रूनासामें ऋषियोंसे परोद्धार होता है ॥ ६२ ॥ सम्पूर्ण प्राणी इस ब्रह्माख्य नादको नियमसेभी नहीं सुन सकते हैं

वह मन्दररूपी स्थूल प्रपंचके अग्रभागमें अधिक प्रथम अतिस्थूल होनेसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्तकर रक्खा है परन्तु सूक्ष्मरूप होनेसे दुर्ग्राह्य है॥६३॥ सब प्राणी चुप हुए विरामनियमको प्राप्त हो जाते हैं तब वह सरस्वती नियमसे कुछ नहीं कहती. " यतो वाचो निवर्तन्ते "॥६४॥ सुषुप्ति समाधिमें सब प्राणियोंके तूष्णीभूत हो जानेमें फिर कोई बलसे कुछ कहनेको समर्थ नहीं है ॥६५॥ वह सरस्वती मनसे योगका विभाग करके सब भूतोंमें अनुग्रहके वास्ते महास्वन अर्थात् ब्रह्मका ज्ञान करा देती है ॥६६॥ फिर सरस्वतीके साथ युक्त हो देहधारी शिक्षा ग्रहण करते हैं उसीमें फिर वे शिक्षासे आत्माका गायन करते हैं ॥६७॥ आदित्य वसु रुद्र मरुत् अश्विनीकुमारोंके साथ जटिल चीर वस्त्र पहरे मुंज मेखला धारण

विरामनियमे प्राप्ते तूष्णींभूता बभूव ह ॥ न वाचमीरयेद्देवी नियमात्सत्यवादिनी ॥ ६४ ॥ अथ भूतानि सर्वाणि तूष्णीं भूतानि सर्वशः ॥ न शेकुरभिधानार्थं व्याहर्त्तुं वदनैर्बलात् ॥ ६५ ॥ विभज्य योगं मनसा सर्वभूतेष्वनुग्रहम् ॥ सरस्वती तीरयुता व्याजहार महास्वनम् ॥ ६६ ॥ सरस्वत्या समायुक्तां शिक्षां गृह्णन्ति देहिनः ॥ तस्मिन्नेवाथ ते सर्वे गानं गायन्ति शिक्षया ॥ ६७ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विभिः सह ॥ जटिला चीरवसना मुञ्जमेखलधारिणः ॥ ६८ ॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव सनागाःसह चाम्भसः ॥ तपश्चरन्ति सहिताः पुष्करेषु मनीषिणः ॥ ६९ ॥ अपि कीटपतङ्गैश्च सह सर्वैः सरीसृपैः ॥ शोषयन्ति शरीराणि तपसोग्रेण यत्नतः ॥ ७० ॥ विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नो देहान्तरविसृष्टवान् ॥ संरक्षति माहायोगी सर्वांस्तान्सहचारिणः ॥ ७१ ॥ पुष्करे रमते विष्णुर्विष्णुरेव द्विधा कृतः ॥ दीप्यमानः स्वतेजोभिर्विधूम इव पावकः ॥ ७२ ॥

किये॥६८॥गन्धर्व किन्नर नागवरुण यह सब महात्मा पुष्करमें तपकरते हैं कीट पतंग और सब सरीसृपजीवोंके सहित बडे तपयत्नसे शरीरको सुखाते हैं॥६९॥इस प्रकार शरीररूप पृथ्वीको योगबलसे जलादिभावमें परिणय करके शब्दादिके आकारसे सब लोकके हितके निमित्त होती है इसी प्रकार शरीराभिमानीको वाच्यवाचकके अभेद होनेसे जीवसे अन्य कोई ईश्वर नहीं है इसपर कहते हैं॥७०॥परमात्मा विष्णु व्यापकपनको प्राप्त होकरभी देहान्तरचतुर्भुजरूप हो व्यापकरूपसे पालन करनेको अशक्तहोकर चतुर्भुजविग्रह यज्ञादिभोक्ता प्राणियोंके नियन्ताहोकर उन आदित्यादिकी रक्षा करते हैं॥७१॥सर्वकार्यात्मक जगत्में विष्णुही नारायणरूपसे रमण करता है और धूमरहित अग्निके समान अपने तेजोंसे व्याप्त

होता है॥७२॥वह अग्नि मनसे उत्पन्न हुआ पृथ्वीकोतापितकरता हुआ अर्थात्मनकल्पित गार्हपत्यादिरूप होकर पृथ्वी अभिमानी देहकी इच्छा करता है फिर अग्निहोत्रादिसे तिस कर्मरूप होकर गति सकर्मरूप होकर गति देता है ॥ ७३ ॥ और देहआत्मवादी विष्णुकी सामर्थ्यसे मोहादि दग्ध हो जाते हैं और अग्निरूप विष्णु दीप्त रहते हैं॥७४॥और विष्णुरूपमें विषयासक्त हो जाते हैं वे विष्णुलिंग ब्रह्मादिके उल्लंघनमें समर्थ नहीं हैं जिस प्रकार कोई सूर्यको उल्लंघन नहीं कर सकता ॥७५॥ सो विष्णु अपने बडे प्रकाशकरके द्रव्य देवतादिको अनेक प्रकारसे स्थित हुआ ऋत्वि-

सोऽग्निर्मनसमुद्भूतः पृथवीं तापयन्निव ॥ प्रधावति समं तेन मण्डलं दशयोजनम् ॥ ७३ ॥ विरराजार्चिभिर्दीप्तैः पृष्ठतश्चावल-म्बिभिः ॥ विशीर्णपार्थिविभवैर्मयूखैरिव दीपितः ॥ ७४ ॥ तस्याग्नेर्विस्फुलिङ्गानां न शेकुर्लङ्घने रताः॥ विप्रकीर्णस्य वसुधामर्यादामिव भास्करम् ॥ ७५ ॥ सोऽग्निर्दीप्य विभज्यांशून्विधूम इव पावकः ॥ ऋत्विग्भिर्ज्वलनप्रख्यैर्विक्रीयत इवाध्वरे ॥ ७६ ॥ सोऽग्निर्धूमागतस्तत्र तिष्ठते विपुलं तदा॥ यावद्विष्णुः क्रमप्राप्तो नियमस्य समापनात् ॥७७॥ रक्षां कृत्वा स्थितं विद्याद्विष्णुर्विष्णुपराक्रमः ॥ भूत्वा शतशरीरो वै नागो बालाहकोऽभवत् ॥ ७८ ॥ तमग्निमात्मसंसृष्टं लेलिहानं महामतिम् ॥ प्रतिप्रवृत्तं तेजोभिर्भूतानां हित काम्यया ॥ ७९ ॥ वारिणा सुखशीतेन प्राणिनां प्राणवर्द्धनः ॥ न्यषिञ्चद्दहनं तत्र नागो बालाहकस्तदा ॥ ८० ॥ ततः सिद्धगणैर्जुष्टः पुष्करे तप्यते तपः ॥ संहृत्य मनसात्मानं महायोगी महाबलः ॥ ८१ ॥

जोंद्वारा अनेक प्रकारसे किया जाता है॥७६॥वह अग्नि उसयज्ञमें द्रव्यदेवतादिके रूपसे प्रकाशमान हो निर्धूमअग्निके समान स्थित होता है और फलरूपसे विष्णु अनन्त पृथ्वीको आक्रमण करता है ॥७७॥ रक्षा करके स्थित हुए विष्णुको कोई नहीं जानता वह विष्णुही शतशरीर होकर मेघमें स्थित होते हैं अर्थात् यज्ञफल भी विष्णुरूप हैं ॥७८॥ और विष्णुही जठराग्निरूप होकर भूतोंके हितके निमित्त वर्षा करता है ॥७९॥ और उस पुष्करमें उपजी हुई अपनी रची उग्रअग्निको आप प्राणियोंका प्राणरूप मेघ होकर शान्त करता है॥८०॥फिर सिद्धगणोंके सहित महा-

योगी महाबली विष्णु मनसे आत्माको ग्रहण कर तप करते हैं ॥ ८१ ॥ चरण अंगोंको संकुचित कर मनको शिरमें धारण कर अचलस्थानको प्राप्त हो विष्णुजीने मौन धारण किया ॥८२॥ जिसमें कोई उपाधि और विकल्प नहीं है यही धर्मोंका धर्म है यही दोनों लोकमें सब प्राणियोंका हित करता है ॥८३॥ तब हत हुए दैत्य अपने २ शस्त्रोंको ग्रहण कर मायासे प्राप्त अनेकनगरोंसे आच्छादित हुए अर्थात् इसमेंभी योगसर्ग उपस्थित होते हैं जो कामादि दैत्य योगारंभसे पहले जीते गये वे समाधिकालमें शरीरोंसे आच्छादित हुए अस्त्र उठाने लगे ॥ ८४ ॥ उस ज्ञान और प्रकाशित रूप तेजमान् विष्णुको पर्वतादिरूप दिव्य वनितादिके शरीरोंसे बुझाने लगे वे दैत्य महाबली बडे शरीरवाले थे ॥ ८५ ॥

पादगात्राणि संहृत्य मनो मूर्ध्नि विधारयन् ॥ अचलं स्थानमासाद्य तूष्णींभूतो बभूव ह ॥८२॥ एष धर्मोहि धर्माणां नोपधानविकल्पितः ॥ हितः सर्वेषु भूतेषु इह चामुत्र चोभयोः ॥ ८३ ॥ अथ दैत्या हतास्तत्र समागम्योद्यतायुधाः ॥ मायाप्राप्तैर्बहुविधैर्नगरैरविसंवृताः ॥ ८४ ॥ अग्निं दैत्याः पर्वताग्रैरभिघ्नन्ति परंतप ॥ ज्वलन्तं ज्वलनप्रख्या महाकाया महाबलाः ॥ ८५ ॥ मेघीभूताश्च मायाभिर्वर्षन्ति बलदर्पिताः ॥ तस्मिन्नेवासंघाते ससंभिघातं महाबलम् ॥८६॥ ते शैलास्त्वर्चिषा दग्धाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ युगान्ते प्रभुरादित्यः प्रजा इव दिधक्षति ॥८७॥ न शेकुरग्निं दैत्यास्ते मायाभिर्मुखमुद्यतम् ॥ आदित्य इव दीप्यन्ते नभः सूर्योदये यथा ॥८८॥ विहितैरुद्यमैः सर्वैर्दैत्या भग्नपराक्रमाः ॥ गन्धमादनमासाद्य निषण्णा नगमूर्द्धनि ॥८९॥ स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकैर्विद्युद्भिः सह संगताः ॥ अन्तरिक्षचरान्दैत्यान्निर्दहन्विचरन्दिवि ॥ ९० ॥

वे मेघीभूत हुए बलदर्पित हो माया कर जलवर्षाने लगे और मिलकर महाबलकरने लगे॥८६॥वे सैंकडों वनितादिक पर्वत इस तेजकी कान्तिसे दग्ध हो गये.जैसे युगान्तमें आदित्य प्रजाभस्म करनेको उद्यत होता है इस प्रकार वह अग्नि दीप्त हुई॥८७॥मायासे वे दैत्य मुख उठानेको उनके सन्मुख समर्थ न हुए और सूर्यके उदयमें आकाशके समान वह प्रदीप्त हुआ ॥८८॥ अनेक उद्यम करनेपरभी दैत्योंका पराक्रम न चल सका तब वे गन्धमादन पर्वतके शिरोभागमें स्थित हुए॥८९।और वह अग्नि उस लोकमें वैष्णव तेजयुक्त विद्वानोंसे संगतिको प्राप्त हो अन्तारिक्षमें रहनेवाले

कामादि दैत्योंको दग्ध करताहुआ स्वर्गमें विचरने लगा॥९०॥इस प्रकार योगी उपद्रवोंको जीतयज्ञादिफलरूप धर्मको वृष्टिआदिके द्वारा प्राप्त होता है तब वह विष्णुही यज्ञसे वृष्टिरूप हो मेघसंघातकोप्राप्त हो पृथ्वीमें वर्षा करते हैं ॥९१॥ वृष्टिकी अधिष्ठात्री देवता ब्राह्मणोंके मुखादिद्वारा कहे मंत्रोंसे प्रेरित हुआ ब्राह्मणसंतति भूतलोकको जलसे प्लावित करता है॥९२॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥ जन्मेजय बोले; तब वे देवता अचलभावको प्राप्त हो परस्पर क्या करने लगे. जो बात तपसे प्राप्त न हो सके वह लोकमें

नागो बलाहकश्चैव मेघसंघातमागतः ॥ मुमोच सलिलं भूमौ पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ९१ ॥ मन्त्रैः संचोदितो नागो द्विजेभ्यो वदनोद्गतैः ॥ मुमोच तोयसंघातं मानयन्विप्रजं जनम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥ जनमेजय उवाच ॥ संयुज्य तपसा देवाः किमकुर्वस्ततः परम् ॥ नहि तद्विद्यते लोके तपसा यन्न लभ्यते ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ दीक्षां समास्थाय सर्वे विष्णुमया गणः ॥ पुष्करादग्निमुद्धृत्य प्रणीय च यथाविधि ॥२॥ जुहुवुर्मन्त्रविधिना ब्राह्मणा मन्त्रचोदिताः ॥ हविषा मन्त्रपूतेन यथा वै विधिरेव च ॥ ३ ॥ स चाग्निर्विधिवत्तत्र वर्धते ब्रह्मतेजसा ॥ तेजोभिर्बहुलीभूतः प्रभुः पुरुषविग्रहः ॥ ४ ॥ ब्रह्मदण्डी इति ख्यातो वपुषा निर्दहन्निव ॥ दिव्यरूपप्रहरणो ह्यसिचर्मधनुर्धरः ॥५॥ सगदो लाङ्गली चक्री शरी चर्मी परश्वधी ॥ शूली वज्री खड्गपाणिः शक्तिमान्वरकार्मुकः ॥ ६ ॥ विष्णुश्चक्रधरः खड्गी मुसली लाङ्गलायुधः ॥ नरो लाङ्गलमालम्ब्य मुसलं च महाबलः ॥ ७ ॥

नहीं है ॥१॥ वैशंपायन बोले; सम्पूर्ण विष्णुमय गण दीक्षाको प्राप्त हो पुष्करसे यथाविधि अग्निका उद्धार कर ॥ २ ॥ ब्रह्माकी प्रेरणा की हुई मंत्रविधिसे हवन करने लगे. वह हवि मंत्रसे पवित्र हुई विधिपूर्वक दी जाती थी ॥ ३ ॥ वह अग्नि विधिपूर्वक ब्रह्मकान्तिसे युक्त हो बहुत तेजोंके मिलनेसे पुष्कराकार हो गई ॥४॥ वह ब्रह्मदण्ड नामसे विख्यात शरीरको भस्म करते हुएकी समान दिव्यरूप प्रहारवाला धनुषधारी ॥ ५ ॥ गदा लांगल चक्र शर चर्म परशा शूलवज्र लिये खड्ग हाथमें धारे शक्तिमान सुन्दर धनुष लिये ॥ ६ ॥ विष्णु चक्रधारी मुसल और लांगल हाथमें लिये

नरलांगलको अवलम्बन किये मुसल लिये वह महाबली॥७॥तपके योगसे इन्द्रके वज्रसेभी अधिक कांतिमान् वज्र लिये, महादेव शूल और पिनाकको मनसे धारण करते हुए ॥८॥ मृत्यु दण्डको, वरुण पाशको और काल शक्तिको ग्रहण करता हुआ,त्वष्टाने परशा,कुबेरने फरशा ग्रहण किया॥९॥ औरभी सैंकडों निर्विकारताको प्राप्त होते हुए विश्वकर्मा और त्वष्टा अनेक शस्त्रोंको बनाते हुए॥१०॥इन्द्र अग्नि और सूर्य तथा रुद्रके निमित्त रथप्रदान किया॥११॥वेदरीतिसे त्वष्टाने रथोंकी सेना निर्माण की और विश्वकर्माने बहुतसे विमान बनाये ॥१२॥ सत्यपराक्रमी विष्णुने अव्यय पुष्कर नाम शरीरके अंशसे सेनाको निर्माण किया ॥१३॥ सूर्य और नक्षत्रोंकी स्थितिके अर्थ विष्णुने वाणसे आकाशकी रचना की जिसके पूजन कर संग्राममें

वज्रमिन्द्रस्तपोयोगाच्छतपर्वाणमक्षिपत्॥रुद्रः शूलं पिनाकं च मनसाधारयद्धुवि॥८॥ मृत्युर्दण्डं पाशमापः कालः शक्तिमगृह्णत ॥ जग्राह परशुं त्वष्टा कुबेरश्च परश्वधम् ॥९॥ निर्विकारैः समायुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ विश्वकर्मा च त्वष्टा च चक्राते ह्यायुधं बहु ॥१०॥ इन्द्रायाग्निरथं प्रादात्सूर्याय च प्रतापिने ॥ परमात्मा ददौ कृष्णो रुद्राय च महात्मने ॥ ११ ॥ छन्दोभिरेव त्वष्टा च स चकाराथ वाहिनीम् ॥ विश्वकर्मा विमानानि चकार बहुभिः क्रमैः ॥ १२ ॥ शरीरांशं समुत्पत्य विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ पुष्पकरात्पर्वणि वनात्पृतनार्थं प्रवर्तयन् ॥१३॥ द्यां चैव सर्वनक्षत्राणां वाचा वै समकल्पयत् ॥ यया स पूज्यः संग्रामे शत्रून्निर्बिभेदे रणे ॥ १४ ॥ स तं दण्डं समुचितं निर्विकारं समाहितम् ॥ ब्रह्मा जग्राह विधिना अन्तर्धानगतः प्रभुः ॥ १५ ॥ स्वैः प्रभावैश्च विधिना सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ॥ ऐन्द्रमाग्नेयवायव्ये रौद्रं रौद्रेण वर्चसा ॥ १६ ॥ एभिर्विकारैः संयुक्ता दितेः पुत्रा महाबलाः ॥ तमसा शिक्षया चैव स्वस्त्रैः प्रहरणैरपि ॥१७॥ बलेन चतुरङ्गेण वीर्येण सुसमाहिताः॥अप्रधृष्या रणे सर्वे समपद्यन्त वै तदा ॥१८॥

शत्रुभेद किये जाते हैं ॥१४॥ वह ब्रह्मरूपी विष्णु अन्तरमें असुरोंके ऊपर प्रहार किये इन्द्रके दण्डको अन्तर्धान होकर ग्रहण करता हुआ ॥ १५ ॥ वह अपने प्रभाव और विधिसे चार प्रकारके अस्त्रग्रामको ऐन्द्रास्त्र आग्नेयास्त्र वायव्यास्त्र रौद्रास्त्र ॥ १६ ॥ इन विकारोंसे संयुक्त हो वे महाबली दितिके पुत्र तप शिक्षा और अपने अस्त्रोंके प्रहारसे ॥१७॥ चतुरंग बल और वीर्यसे सावधान हुए युद्धसे न भागनेवाले सब विचरने लगे ॥ १८ ॥

वह दितिपुत्र गुह्य सत्वात्मकस्वरूप छोडकर भोग्यवस्तुयुक्त रथमें स्थित हुए मन्दररूप स्थूल कार्यके एकदेशमें विचरने लगे ॥ १९ ॥ तमके कार्य असुररूपको संहार करके वह महायोगरूप विष्णु पृथ्वीतलमें विचरने लगे ॥२०॥ तब फिरभी वे देवता ब्राह्मण आदिके साथ जो चर्म चीर धारण करनेवाले थे फिर महातप करने लगे अर्थात् मुमुक्षु सात्त्विक धर्मका वारंवार आदर करते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हारिवंशे भविष्य-पर्वणि भाषाया मेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ जन्मेजय बोले; (इस प्रकार तामसजनकी वारंवार संसारप्राप्ति सुनकर दयापूर्वकउनकी गति जाननेकी

ते विहाय गुहामध्ये सभाण्डोपस्करे रथे ॥ मन्दरस्य गिरेः पादे विचेरुर्वसुधातले ॥१९॥ चतुरङ्गं बलं सर्वं संहृत्य तमसः प्रभुः॥ विष्णुरेव महायोगश्चचार वसुधातले ॥२०॥ भूयोऽन्यत्तप आसेदुश्चरन्तो ब्राह्मणैः सह ॥ तैश्च सर्वैः सुरगणैर्धर्मचीरनिवासिभिः॥२१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ ब्रह्मन् खिले वर्तमाने निर्मर्यादे महाग्रहे ॥ अविनाशे च भूतानां कथमासन्प्रजास्तदा ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अभ्यषिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजा-पतिः ॥ राज्याय ऋषिभिः सार्धं प्रजाधर्मपरायणः ॥ २ ॥ एष नः परमो राजा सानुरागादजायत ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायामन्यो-न्यमनुजल्पिरे ॥३॥ एष नो वृत्तिदाता च विप्राणां च प्रवर्तिता ॥ निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंतरं देवा गन्धमादनसानुषु ॥ बहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुषु ॥ ५ ॥

इच्छासे जन्मेजय बोले) जब शंकुतुल्य महाअज्ञान हृदयमें वर्तमान होता है इस अविनाशी कार्यमें कैसे दुःखकी परंपरा हुई कैसे प्रजा हुई ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; पहले प्रजापतिने वैन्यराजाको राज्यमें अभिषेक किया था. वह प्रजाधर्ममें परायण हो ऋषियोंके साथ राज्य करने लगे ॥ २ ॥ यह हमारे परम राजा अनुरागसे हुए हैं इस प्रकार त्रेताकी प्रवृत्तिमें सब कहने लगे॥३॥वृत्तिके देनेवाले ब्राह्मणोंके प्रवृत्त करनेवाले सत्यद्वारा सब भूतोंके निर्माण करनेवाले हैं ऐसा प्रजा कहने लगी ॥४॥ इसी समय देवता गंधमादन पर्वतके सानुओंमें बहुतसे शान्त होकर बैठ गये (अपने धर्ममें

स्थित प्रजा होनेसे जो परमात्माके भक्त हैं वेही मुक्ति पाते हैं यह कथा रूपकसे वर्णन करते हैं) ॥५॥ तब देवता और मनुष्य चारों ओरसे गधिको प्राप्त हो वसन्त समय प्राप्त होनेपर उस गंधसे दर्पित हुए बोले॥६॥कि यह पवनके द्वारा लाई हुई सुगंधि है या कुछ और है यह मनकी ग्रहण करनेवाली उत्तम पार्थिव गंध है ॥७॥ वे दैत्य उस गन्धसे किंचित् विस्मयको प्राप्त हो प्रसन्नमन हो परम सुखी हुए ॥८॥ उस गंधसे दर्पित हो सब कहने लगे कि पुष्पमात्रकीही क्या यह गन्ध है॥९॥विविध प्रकारके कर्म बुद्धिअनुमानसे जानना चाहिये.बुद्धिके प्रमाणसे शुभाशुभका ज्ञान होता है॥१०॥जिसकारणसे कि योगफल श्रेष्ठ है यह अनुमानसे निश्चय किया है.इस कारणसे पयरूपी अमृत ज्ञानसाधनमें समुद्रतुल्य देहके मध्यमें औषधी

अथ गन्धं समासाद्य समन्ताद्देवमानवाः ॥ माधवे समयं प्राप्ते तेन गन्धेन दर्पिताः ॥६॥ पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मारुतेन विसर्पितम् ॥ मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥ ७ ॥ ते दैत्यास्तेन गन्धेन किंचिद्विस्मयमागताः ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः ॥ ८ ॥ ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः ॥ पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ॥ ९ ॥ अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः ॥ शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥ १० ॥ तस्माद्वयं पयोमध्ये औषध्यो निर्मथामहे ॥ मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥११॥ समुद्रमभिसंरम्भान्मथ्नीमः सोमजं जलम् ॥ पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः ॥ १२ ॥ विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः ॥ दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्याम सह शत्रुभिः ॥ १३ ॥ समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः ॥ सर्वे ग्रहांश्च गृह्णीमः सुधां च वसुधातले ॥ १४ ॥

संभव देहको डालकर विवेकद्वारा साधन करें ॥ ११ ॥ इस समुद्रको इस अमृतके निमित्त हम मंथन करेंगे और उसे पानकर सब कामरूपही विचरेंगे. यह कह सब अविद्यानाशके निमित्त प्रस्थित हुए॥१२॥ इस कार्यमें महाबली विष्णुही हमारेअग्रणी होंगे उससे हम सत्यसंकल्प होंगे तब हम स्वर्ग और पृथ्वीको कामादि शत्रुओंको भोगेंगे ॥ १३ ॥ मूल पत्र शाखा पुष्प फलके खानेवाले हम वसुधातलमें सब ग्रहोंमें ग्रहण करेंगे अर्थात् मूल पित्रादि पत्र भार्यादिक शाखा भ्रातादिक पुष्पादि अपत्यादिकोंके सहित सब एकात्मग्रह मोक्षको भोगेंगे.(ब्रह्म होकर ब्रह्मको प्राप्त होताहै फिर उसके

प्राण उत्क्रमण नहीं होते)॥१४॥ गंधमादनके सानुभागमें हुए गिरवृक्षादि उखाडकर मंदरके कंपनमें वचन कहने लगे अर्थात् गुरु शिष्य संकेत पूर्वक देहकेप्रलापन कर ब्रह्माण्डके अन्तर्गत उसमें निमग्न वासनाके उद्धार करनेको ॥ १५ ॥ पृथ्वीको कंपायमान करते हुए उखाडनेको धावमान हुए और इस निश्चयसे वे महावीर्यवाले बडी बलिष्ठ भुजाओंसे ॥१६॥ वे दनुवंशमें उत्पन्न हुए उसे उखाडनेको समर्थ न हुए और टांगोंको तानकर स्थित हुए अर्थात् मंदररूप देहके उन्मूलन करनेकोबडी भुजा प्राणायामादि द्वारा धावमान होते हुए समस्त मेदिनीरूप ब्रह्माण्डकोकम्पितकरने लगे ॥१७॥ फिर आत्मासे आत्माको समाधान करतपसे पापरहित होकर कामरूपी शिरोंद्वारा ब्रह्माको प्राप्त होते हैं॥ १८॥ सर्व जाननेवाले ब्रह्माजी उनके मनो-

उद्धृत्य गिरिपादेभ्यो गन्धमादनसानुजान् ॥ प्रभाष्य वचनं दैत्या मन्दरस्य प्रकम्पने ॥ १५ ॥ समुद्धर्त्तुं प्रधावन्तः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ॥ निश्चयेन महावीर्या बाहुभिः परिणाहिभिः ॥१६॥ न शकुस्ते समुद्धर्त्तुं शैलेन्द्रं दनुवंशजाः॥ निपेतुर्जानु भिर्धृष्टा विपुले पर्वतान्तरे ॥ १७ ॥ समाधायात्मनात्मानं तपसा दग्धकिल्बिषाः॥ पितामहं प्रपद्यन्ते शिरोभिः कामरूपिभिः ॥ १८ ॥ तेषां मनोऽभिलषितं ब्रह्मा सर्वत्रगो वशी ॥ ज्ञात्वा बहु विधैर्वाक्यैर्व्याजहार सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ अशरीरां शरीरस्थः परया वर्णसम्पदा ॥ सर्वलोकपतिर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया ॥ २० ॥ आदित्यैर्वसुभिश्चैव रुद्रैश्च समरुद्गणैः ॥ देवैर्यक्षैः सगन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ॥ २१ ॥ समेत्य सहितैः सर्वैः शक्य उद्धरितुं गिरिः ॥ अमृतार्थे महातेजा धातुभिः समरञ्जितः ॥२२॥ सुरासुरगणाः सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् ॥ हस्तारूढाः प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्गसम् ॥ २३ ॥

भिलाषको जानकर बहुत प्रकारके वाक्योंसे सरस्वतीको बुलाते हुए ॥ १९ ॥ वह शरीररहित प्रणवरूप सरस्वती शरीरमें स्थित अन्तर्यामी वैखरी आदि परम वाणीसे बहुतसे वाक्यों (ओंमित्येकाक्षरमिदं सर्वमित्याद्यैकात्म्यप्रतिपादकवाक्यों) से उपदेश देते हुए यह ब्रह्माने लोकोंके हितकी काम-नासे किया॥२०॥आदित्य वसु रुद्र मरुद्गण देवता यक्ष गन्धर्व किन्नर इन गानेवालोंके साथ ॥२१॥ इकठे अर्थात् मनकेएकीभावको प्राप्त होकर भी अमृतके निमित्त शरीररूपी पर्वतके उठानेमें समर्थ न हुए वह वातादि धातुओंसे रंजित महातेजयुक्त था ॥२२॥ तब सब सुर असुरगण उस

महापर्वतको उखाडकर बैलोंके रसोंसे युक्त हाथमें आरूढ देखने लगे (अर्थात् हृदयाकाशमें वासना संततिरूपसे देहांग शून्य देखने लगे)॥२३॥ यह वचन सुनकर उनके समीपमें बडे बली दैत्य मन और वाणियोंसे॥२४॥क्रीडा करते हुए बहुत प्रकारसे उस समुद्रमें पुष्कर अर्थात् मथनदण्डके समीपमें स्थित हुए तब देवदानवोंके सहित ॥ २५ ॥ सब सुर असुरगण परस्पर मिलकर पुष्करको मंदर और वासुकीको नेती बनाय ॥ २६ ॥ उसमें औषधी डालकर सहस्र वर्षपर्यन्त मंथते रहे अर्थात् सनालकमलके सदृश मंथन दण्ड है. पुष्कररूप देह है मन समुद्र वासना औषधी उस देहमें डाल वासुकीरूप सर्पाकार कुंडलीको नेत्र योगमार्गद्वारा आनन करके अर्थात् मूलबंधसे कुंडलीको जगाकर १००० वर्षतक मथनेसे अमृत

एतच्छ्रुत्वा च वचनं सर्वेषामन्तिके तदा ॥ दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४॥ विक्रीडभूता बहुधा बभूवुर्लवणाम्भसः॥ यत्र पुष्करविन्यस्तः सहितैर्देवदानवैः ॥ २५ ॥ सुरासुरगणाः सर्वे सहिता लवणाम्भसः ॥ मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च ॥२६॥ समाः सहस्रं मथितं जलमौषधिभिः सह ॥ क्षीरभूतं समायोगादमृतं समपद्यत ॥ २७ ॥ तज्जह्रुरसुराः पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ॥ धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः ॥ २८ ॥ शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ उच्चैःश्रवा हयो रम्यः पीयूषं तदनन्तरम् ॥ २९ ॥

क्षीरके समान निकला (मन शुद्ध सत्व निर्मल हो गया) ॥२७॥ लोभ और क्रोधसे आक्रान्त हो सम्पूर्ण असुरोंने प्रथम उसे ग्रहण कर लिया अर्थात् योगके विघ्न प्राप्त हुए छहों विघ्नोंको जीतकर योगी सिद्ध होता है.धन्वन्तरि मद्य लक्ष्मी देवी कौस्तुभ मणि॥२८॥ उज्ज्वल चन्द्रमा उच्चैःश्रवा-घोडा यह निकला. इसके उपरान्त अमृत निकला. धन्वन्तरि आदिसे तात्पर्य सिद्धिसे है धन्वन्तरिशब्दसे लघुता अरोग्यता आलोलुपता वर्णप्रसाद स्वरसौष्ठवता विदित होती है. मद्यशब्दसे मधुमद्यादि योगीके चित्तकी उन्माद करनेवाली भूमि योगशास्त्रमें प्रसिद्ध है श्रीसे ऋगादिरूप वेदविद्या कौस्तुभसे देहकी कान्ति चन्द्रमासे गुणोंद्वारा आह्लादकता उच्चैःश्रवासे दूर दर्शन दूर श्रवण पारिजातादिसे सुगन्धिता इनके उपरान्त निर्विशेष कैवल्यरूप प्रवृत्त

होता है इनमें मय असुरोंको औरशेष सब देवतोंको प्राप्त हुआ ॥२९॥ अब राहुकी कथाके मुखसे कपटी विद्यार्थियोंका नाश कथन करते हैं. जब दैत्योंने अमृत लिया तब विष्णु वंचितकर देवतोंको अमृत देनेलगे तब राहु देवतोंकी पंक्तिमें छलसेदेवता बन जा बैठा तब उसको देखकर देवताओंने कह दिया यह दैत्य है तब उसको अमृत न मिला इस प्रकार दैत्य और दानव कोई अमृत न पी सके॥३०॥तब नारायणने चक्रसे उसका शिर छेदन कर डाला.इस प्रकार पितृगण और सनातनमुनियोंसे नहीं छोडा हुआ ॥३१॥ वह अमृत इन्द्रके हाथ लगा और ब्रह्मवाक्यसे प्रेरणा की हुई पृथ्वी इन्द्रके हाथ आई अर्थात् ब्रह्मवाक्य'तत्त्वमसि'आदि पृथ्वी शिष्यपनको प्राप्त हुई॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे

पश्चाद्देवास्तदा दातुमुद्यता राहुमब्रुवन् ॥ न तु केचित्पिबन्ति स्म दैत्या नैव च दानवाः॥३०॥चिच्छेदाथ हरिः संख्ये राहोश्चक्रेण कं तदा ॥ अनिर्मुक्तं पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनैः ॥३१॥ तदिन्द्रहस्तामृतं जहार पृथिवी स्वयम् ॥ जगामाङ्कगता देवी ब्रह्मवाक्य प्रचोदिता ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ निहते दैत्यसंघाते विष्णोश्चातिपराक्रमे ॥ दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दानवा राज्यमिच्छन्तिपराक्रम्य महाबलाः ॥ तप इच्छन्ति सहिता देवाः सत्यपराक्रमाः॥२॥जनमेजय उवाच ॥ कथं कालस्य महतो हिरण्यकशिपुस्तदा॥ यजते ब्रह्मणः क्षेत्रे प्राप्तैश्वर्यः स कामदः ॥३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यजेद्बहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिवः॥ क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधायां महाफलः ॥ ४ ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुलं तपः ॥ समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे ॥ ५ ॥

भविष्यपर्वणि भाषायां त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥ जन्मेजय बोले; विष्णुने जब महापराक्रमी दैत्योंका वध किया तब दैत्य और दानव पराक्रमसे क्या करने लगे अर्थात् मोक्षसे निरस्त हो क्या करने लगे ॥१॥ वैशंपायन बोले; दानव तो पराक्रमसे राज्यकी इच्छा करते हैं और सत्यपराक्रमी देवता तपकी इच्छा करते हैं॥२॥जन्मेजय बोले;ऐश्वर्यसे संयुक्त कामनाके देनेवालेहिरण्यकशिपु बलि राजा ब्रह्मक्षेत्र (भ्रूनासिकारूप गंगायमुनाके) मध्यमें ऐश्वर्य और कामनावाला यज्ञ करने लगे॥३॥वैशंपायन बोले;कि वह राजा बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञको विधिसे करता हुआ वह दानवश्रेष्ठ पृथ्वीमें यजन करने लगा ॥ ४ ॥ गंगायमुनाके बीचमें जो बडा तप किया गया था वहां उस महाअसुर यजमानके यज्ञमें ॥ ५ ॥

वेदके ज्ञाता ब्राह्मण महाव्रतपरायण तथा हे भारत ! औरभी अनेक सिद्ध योगधर्मसे प्राप्त आये ॥ ६ ॥ और न्यायधर्मसे शोभित वालखिल्यादि ऋषि औरभी धर्मपरायण अनेक ब्राह्मण ॥ ७ ॥ महाभागी ऋषि ब्राह्मणोंसे पूजित सहस्रों अनेक प्रकारोंके ऐश्वर्योंसहित इधर उधरसे आये ॥ ८ ॥ पुत्रसहित शुक्राचार्य राजाको यजन कराता था. हिरण्यकशिपु (बलि) के मध्यमें गणाक प्रभुने ॥ ९ ॥ इस प्रकारके वचन वामनजीसे कहे कि मैं तुमको वर देता हूं मांगो (इस कथामें यह वार्ता दिखाई है कि मैं जिसके ऊपर कृपा करता हू उसका प्रथम धन हरण करता हूं) ॥ १० ॥ वामनरूपसे विष्णुजीने

ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणाः ॥ यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥६॥ मुनयो वालखिल्याश्च धन्या धर्मेण शोभिताः ॥ बहवो हि द्विजा मुख्या नित्या धर्मपरायणाः॥७॥ ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः॥ विपुलैरत्र विभवैर्ह्रियमाणैस्ततस्ततः ॥८॥ शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्यं याजयते प्रभुः ॥ हिरण्यकशिपुं मध्ये गणानां प्रभवः प्रभुः॥९॥ हिरण्यकाशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम् ॥ कामाद्वरं ददातीति तद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥ १० ॥ विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां तां प्रतिगृह्णाति ॥ हिरण्यकशिपोर्हस्ताद्वे पदे पदमेव च ॥ ११ ॥ ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ त्रींल्लोकान्मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयन् ॥ १२ ॥ हृतराज्याश्च दैतेयाः पातालविवरं ययुः ॥ ससैन्यगणसंबद्धाः सप्रासाः सासितोमराः ॥ १३ ॥ सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः ॥ सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः ॥ १४ ॥ तथेन्द्राविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः ॥ अभ्यषिञ्चत्प्रमुदिता लोकानामाधिपे सुराः ॥ १५ ॥ स तान्स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत् ॥ ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति ॥ अक्षयश्चाव्ययश्चैव संवृतस्तेन कर्मणा ॥१६॥

उससे भिक्षा मांगी और बलिसे तीन पग पृथ्वी मांगी ॥ ११ ॥ तब सत्यपराक्रमी विष्णु पृथ्वी नापने लगे. मुनियोंसे प्रार्थित हो उन्होंने त्रिलोकीको अतिक्रमण कर लिया ॥ १२ ॥ और राज्यसे भ्रष्ट हो दैत्य पातालको गये. वह सेनासहित सम्बद्ध होकर प्रास असि तोमर ॥ १३ ॥ यंत्र लगुड पताका ध्वज रथ ढाल वर्म कोश आयुध परशे लिये ॥ १४ ॥ इन्द्र विष्णुके साथ शीघ्रतासे वे देवता उठे और लोकोंके आधिपत्यमें बलिको अभिषेक करते हुए ॥ १५ ॥ बलि सूर्य इन्द्रने पितरोंको सुधासे तृप्त किया और ब्रह्माने उस अमृतको महेन्द्रके निमित्त दिया वह उस कर्मसे अक्षय और अव्यय

हो गये ॥ १६ ॥ तब शत्रुओंके रुयें खडे करनेवाला शंख बजाया गया वह जनितृके प्रथम पदमें शंख बजाया गया ॥१७॥ उस शंखके शब्दको सुन सावधान हुए तीनों लोक इन्द्रस्वामीको प्राप्त हो परम सुख मानते हुए अर्थात् चिन्मयरूप हो परम सुख मानते हुए ॥१८॥ अत्यन्त विषयोंके दूर करनेवाले शस्त्रोंसे जो अग्नि अर्थात् ब्रह्मसे उत्पन्न हुए थे. अग्निके समान प्रज्वलित हुए मन्दरके अग्रभाग देहाग्रमें स्थित हुए ॥१९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ वैशंपायन बोले;तब इस महोदय राज्यके वृत्तान्त स्थित होनेमें देवता और

ततः शंखमुपाध्मासीद्द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ पितामहकरोद्भूतं जनितृप्रथमे पदे ॥१७॥ तं श्रुत्वा शंखशब्दं तु त्रयोलोकाः समाहिताः ॥ निर्वृत्तिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च॥१८॥ सर्वैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वह्निसंभवैः ॥ मन्दराग्रेषु विहितैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो महति वृत्तान्ते स्थिते राज्ये महोदये ॥ देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा ॥१॥ एकतः समधीयन्ति सहिताः प्ररुदन्ति च ॥ स्वयं च भागं गृह्णन्ति यज्ञकर्मणि भारत ॥२॥ प्राचेतसं ततो दक्षं दीक्षित्वावै बृहस्पतिः ॥ वाजिमेधाय भगवानृषिभिः परिवारितः ॥३॥ तस्मिन्मातामहे यज्ञं दक्षस्याविदितात्मनः ॥ शमित्रमकरोद्रुद्रो भागार्थे सह नन्दिना ॥ ४ ॥ रुद्रस्यैव हि तद्रूपं द्विधाभूतं तदीप्सया ॥ जातः परमधर्मात्मा नन्दी पुरुषविग्रहः ॥ ५ ॥

मनुष्योंका एकत्र संवास होने लगा अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होनेसे परस्पर उनमें कुछ भेद न रहा ॥ १ ॥ एकही स्थानमें सबका पठन और शब्द होने लगा. हे भारत! यज्ञकर्ममें स्वयं भाग ग्रहण करने लगे ॥ २ ॥ तब बृहस्पतिजी प्राचेतस दक्षको दीक्षित करके अश्वमेध यज्ञकरनेको ऋषियोंसे परिवारित हुए॥ ३ ॥ उस अविदित आत्मावाले दक्षरूप मातामहके यज्ञ प्रवृत्त होनेमें (अर्थात् दक्षकन्याओंसे जगत्की प्रवृत्ति होनेसे मातामहरूप कहा) शिवने उस यज्ञमें दक्षकोही पशुरूपसे कल्पित किया ॥४॥ उसकी इच्छासे वह रुद्रकाही रूप हो गया. वह परम धर्मात्मा पुरुषरूप नंदी होगये ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र! उस योगसे वह जो सनातन ब्रह्म है उन रुद्रने वह वेदवाक्यसे प्रकाशित किया है ॥ ६ ॥ स्वरूप अरूप विरूपाक्ष और घटकी समान उदरवाले ऊर्ध्वनेत्र महाकायावाले विकट और वामन ॥ ७ ॥ तीन शिखावाले जटावाले तीन नेत्र शंकुकर्ण चीर चर्म और कूट मुद्गर हाथमें लिये ॥ ८ ॥ घंटा धारण किये मुंज मेखला धारण किये हाथमें कटक और कुंडल धारण किये ॥ ९ ॥ डिमडिम भेरी मृदङ्ग वेणु इससे परिवृत हुए देव उस यज्ञको विघ्न करने लगे ॥ १० ॥ शंख मुरज तालफल हाथमें उग्र आयुध धारण किये देव अन्तककी समान बली पिनाकधारी ॥ ११ ॥ कान्तियों-

तेन योगेन राजेन्द्र यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ विहितं सत्यवचनैस्तेनैव परमात्मना ॥ ६ ॥ स्वरूपैश्चाप्यरूपैश्च विरूपाक्षैर्घटोदरैः ॥ ऊर्ध्वनेत्रैर्महाकायैर्विकटैर्वामनैस्तथा ॥ ७ ॥ शिखिभिर्जटिभिश्चैव त्र्यक्षैश्च शकुकर्णिभिः ॥ चीरिभिश्चर्मिभिश्चैव कूटमुद्गरपाणिभिः॥८॥ सघण्टाधारिभिश्चैव मुञ्जमेखलधारिभिः ॥ सहस्तकटकैश्चैव स्वर्णकुण्डलधारिभिः ॥ ९ ॥ सडिण्डिमैः सभेरीकैः समृदङ्गैः सवेणुभिः ॥ एतैः परिवृतो देवो मखं तं समुपारुजत् ॥ १० ॥ सशङ्खमुरजैश्चापि सतालफलपाणिभिः॥ उग्रायुधधरो देवः सपिनाक इवान्तकः ॥११॥ विरराजार्चिभिर्दीप्तैर्मखे मखवतां वरः ॥ कालाग्निरिव दीप्तार्चिर्जगद्दग्धुमिवोद्यतः ॥१२॥ नन्दी पिनाकपाणिश्चजघ्नतुर्मखमुत्तमम्॥ युगान्त इव कालाग्निःक्षिप्रं दग्धुमिवोद्यतः॥१३॥ यूपमुत्क्षिप्य धावन्ति निशाचरगणास्तथा॥ त्रासयन्मुनिसङ्घांश्च चीरचर्मनिवासिनः ॥ १४ ॥ हवींष्यन्ये पिबन्त्येव जिह्वाभिस्ताम्रलोचनाः ॥ भक्षयन्ति पशूनन्ये रसनान्तावलम्बिभिः ॥ १५ ॥

करके वह यज्ञवाले शोभाको प्राप्त हुए कालाग्निकी समान वह दीप्तअर्चिवाले जगत्के नष्ट करनेको मानो उद्यत हुए ॥ १२ ॥ नंदी और शिव उस यज्ञको नष्ट करने लगे और कालाग्नि जैसे युगान्तमें प्रज्वलित होती है इस प्रकार यज्ञको नष्ट करने लगे ॥ १३ ॥ निशाचरगण यूप लेकर धावमान होते हैं और चीर चर्मनिवासी मुनिजनोंको त्रास देते हैं ॥ १४ ॥ दूसरे हविपान करते हुए जिह्वा चाटते हुए ताम्रलोचन दूसरे जिह्वा निकाले अनेक प्रकारके पशुओंको भक्षण करते हुए ॥ १५ ॥

दूसरे स्तम्भोंको नष्ट करते कोई पशुओंपर प्रहारकरते कोईजल अग्निके ऊपर छिडकने लगे॥ १६॥ कोईयज्ञके सोमको हरण करते हुए जो कि ताम्र और जपाकुसुमकी समान वर्णके थे और कमलदलके प्रमाणवाले हाथोंसे कुशाओंको काटने लगे ॥ १७ ॥ कोई यूपके अग्रभागोंको तोडते हुए कलशोंको भग्न करने लगे और कोई शोभाके निमित्त लगाये सुवर्णके वृक्षोंको नष्ट करने लगे ॥ १८॥ वे बाणोंसे भेदकर सुवर्णकेपात्रोंको तोडने और अरणीको मथने लगे ॥ १९॥ कोई प्राग्वंशको तोडने लगे और सावधानीसे तोड फोड करने लगे पुरोडाश खाने और नखाग्रसे चीर फाड

मुमुचुश्चापरे यूपान्पशवः प्रहरन्ति च॥वह्निमध्ये प्रसिञ्चन्ति वारिभिः प्रशमाय च॥ १६॥ सोममन्ये जहुः केचिन्नेत्रैस्ताम्रजपोपमैः॥ दर्भान्केचिद्विलुम्पन्ति हस्तैः पद्मदलप्रभैः ॥ १७॥ बभञ्जिरे च यूपाग्रान्कलशांश्चापि चिक्षिपुः॥ चिच्छिदुः काञ्चनान्वृक्षाञ्छोभार्थमुपकल्पितान् ॥ १८॥ बिभिदुश्चैव बाणैस्ते मुमुचुश्च हिरण्मयान् ॥ लुलुपुश्चैव पात्राणि ममन्थुश्चारणीमपि ॥ १९ ॥ अरुजंश्चैव प्राग्वंशं लुलुपुश्च समाहिताः ॥ चखादिरे पुरोडाशान्नखाग्रैश्चाववर्तिरे ॥ २० ॥ एवं दिवा च रात्रौ च भिद्यमानो महामखः ॥ चुक्रोश च महानादान् भिद्यमान इवार्णवः ॥ २१ ॥ धनुः सशरमादाय पूर्वदत्तं स्वयंभुवा ॥ कृतं कीचकवेणुभ्यां समरे सुमहारथः ॥ २२ ॥ प्रतिगृह्य महादेवः स शरः समयोजयत् ॥ धनुर्विगृह्य जानुभ्यां जघान स महाक्रतुम् ॥ २३ ॥ स विद्धस्तेन बाणेन खं समुत्पतितः क्रतुः ॥ मृगो भूत्वा नर्दमानो ब्रह्माणमुपधावति ॥ २४ ॥ शरेणाभिहतस्त्राणं न लेभे प्रशमं भुवि ॥ शरणार्थी ह्ययं प्राप्तः शरेणान्तर्गतेन च ॥ २५ ॥

करने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार दिनरात भिद्यमान होता हुआ महायज्ञ भिद्यमान सागरकी समान बडा शब्द करने लगा ॥ २१॥ तब पूर्वकालमें ब्रह्माजीके दिये धनुष और बाणको ग्रहण कर जो कीचकजातिके वांसोंसे बना हुआ था उसे ले समरमें महारथी महादेवजीने ॥ २२॥ उसे ग्रहण कर जानुसे स्थित हो उस बाणसे यज्ञको प्रहार किया ॥ २३ ॥ उस बाणसे विद्ध हो यज्ञ आकाशमार्गमें उत्पतित हुआ और मृगरूप धारण कर आकाशमार्गसे ब्रह्माके निकट गया ॥ २४ ॥ बाणके भयसेकहीं पृथ्वीमें उसको शान्तिकी प्राप्ति न हुई तब शरसे दुःखी हुआ शरणमें गया ॥ २५ ॥

तब ब्रह्माने उस मृगसे प्रार्थनापूर्वक सुन्दर वचन कहे और गम्भीरतायुक्त उत्तम स्वरसे बोले; इस रूपसे आकाशमें तू महामृगरूपसे स्थित होगा॥२६॥ और पर्व लगे हुए बाणसे जीता जानेके कारण रुद्रके साथ नित्य नक्षत्रोंके शिरोभागमें स्थित हो ॥२७॥ अक्षय अविनाशी सोमके साथ वह मृगशिर नाम नक्षत्रसे गमन करता है॥२८॥वह ज्योतियोंकी ज्योति ध्रुवकाभी महाध्रुव है और बाण लगनेसे जो दिव्य रुधिर निकला है॥२९॥और आकाशमें फिरनेके कारण पृथ्वीमें गिरा है यह अनेक वर्णवाला मण्डल क्षेत्र भूतोंका निमित्तभूत वर्षाकालमें वृष्टिका देनेवाला इन्द्रधनुष नामसे विख्यात होगा॥३०॥इसके दर्शनसे प्राणियोंका सुख दुःख प्रवृत्त होता है इन्द्रियश्रवणसे आकाशमें यह प्रवृत्त होता है. हे राजन् ! मनुष्योंके नेत्र आकाशमें

तमुवाच मृगं ब्रह्मा शुभं सानुनयं वचः ॥ स्वरेणोत्तमवीर्येण गम्भीरेण सुभाषिणा॥एवंरूपो नभसि त्वं भविष्यसि महामृगः॥२६॥ विजितश्च त्रिपर्वेण शरेणानतपर्वणा ॥ तिष्ठन्नक्षत्रशिरसि सह रुद्रेण नित्यशः ॥ २७ ॥ सोमेन सह संयुक्तो ह्यक्षयेणाव्ययेन च ॥ दिवि संचारभूतो वै ताराभिः सह संगतः ॥२८॥ ज्योतिर्भूतो ज्योतिषां त्वं ध्रुवश्चैव महाध्रुवः ॥ यच्चैतद्रुधिरं दिव्यं क्षतजादभिनिः- सृतम् ॥२९॥ नभस्युत्पतितं चैव प्रवेगेन प्रधावतः ॥ क्षतजं बहुवर्णं च क्षेत्रं मण्डलसंज्ञितम् ॥ निमित्तभूतं भूतानां वर्षे वर्षप्रदं तथा ॥ ३० ॥ सुखं दुःखं च भूतानां दर्शने संप्रवर्त्तते ॥ इन्द्रियश्रवणाच्चैव नभसीन्द्रायुधोऽभवत् ॥ ३१ ॥ चक्षुषी मानुषे राजन्विस्मयात्समवैक्षत ॥ अद्भुतं बहुचित्रं च मनसा संप्रकल्पितम् ॥३२॥ न तु रात्रौ प्रदृश्येत् खे सब्रह्माणि संज्ञितम् ॥ दिनस्यैव सदा त्वग्रे महत्कार्यं प्रदृश्यते ॥३३॥ भूमावेव समुत्तिष्ठेदाकाशे तु विलीयते ॥ शतशश्च समं सर्वे प्रधावन्ति प्रचेतसः ॥ ३४ ॥

इसके देखनेको विस्मयके साथ प्रवृत्त होते हैं. यह बडा अद्भुत और विचित्र मनसे कल्पना किया गया है ॥ ३१ ॥ यह सब स्वप्न वृत्तान्तके समान रात्रिमें अविद्यासे कथन किया है. देहके आत्माभिमानरूपमें यह नहीं दीखता है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मसंज्ञक आकाशमें रात्रिके समय यह नहीं दीखता अर्थात् अविद्याकी निवृत्तिमें शुद्ध ब्रह्मके उपलब्धिभूत हृदयाकाशमें यह लक्षित होता नहीं. ब्रह्मरूप होनेसे दूसरी वस्तुका अवकाश कहां. दिनकेही अग्रभागमें यह महाकार्य प्रवृत्त होता है ॥३३॥ यह अविद्यारूपी रात्रि शरीरमें उत्थित हो आकाशमें लय हो जाती है. (सर्वात्मक ब्रह्म देहात्म-

बुद्धिरूपाविद्या नाशमात्र होतेही अभिलाषके प्रति धावमान होती है) इसी प्रकार दक्षप्रजापतिके प्रिय सैंकडों जहां तहां धावमान होने लगे ॥३४॥ फिरभी रुद्रके बडे अनुचर धनुषधारी गण तथा नंदिके साथ रुद्र स्थित हुए. जैसे युगान्तकालके समय अग्नि प्रज्वलित होती है ॥ ३५ ॥ एक हाथमें शार्ङ्गधनुष और एक हाथमें सुदर्शन चक्र लेकर स्थित हुए ॥ ३६ ॥ दूसरे हाथमें गदा घंटा और खड्ग धारण किये इस प्रकार आयुध लेकर रुद्रके सन्मुख स्थित हुए ॥३७॥ फिर शृङ्गके अग्रभागके समान बडा धनुष ग्रहण कर अनुपमेय शंख और तीक्ष्ण पर्ववाले बाण ॥ ३८ ॥

भयाद्रुद्रस्य महतो धन्विनो बाणपाणयः ॥ नन्दी रुद्रगणैः सार्द्धं पिनाकी समतिष्ठत ॥ युगान्तकाले ज्वलितो ब्रह्मदण्ड इवोद्यतः ॥३५॥ विष्णुः संग्रामसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ॥ प्रातिष्ठत महाबाहुः पाणिना चक्रमादधत्॥३६॥ गदां सघण्टामन्येन खड्गमन्येन पाणिना॥ प्रगृह्य सोग्रतोऽतिष्ठद्रुद्रायोद्यतपाणये ॥३७॥ ततः शृङ्गाग्रसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ॥ शङ्खं चाप्रतिमं लोके शरांश्चानतपर्वणः ॥३८॥ विष्णुरग्रस्थितो भाति सबलः संहताञ्जलिः ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सचन्द्र इव तोयदः ॥ ३९ ॥ आदित्या वसवश्चैवः दिव्यै प्रहरणैः सह ॥ विष्णुमेवाभितः सर्वे तिष्ठन्ति ज्वलनप्रभाः ॥४०॥ मरुतश्चैव विश्वे च रुद्रमेवाभिपेदिरे ॥ गन्धर्वाः किनराश्चैव नागा यक्षाः सपन्नगाः ॥४१॥ ऋषयो न्यस्तदण्डाश्च उभयोः पक्षयोर्हिताः ॥ जपन्ति शान्तये नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥ रुद्रः शरेणाभ्यहनत् विष्णुमेवाग्रणी रणे ॥ हृदि सर्वाङ्गसंधीषु तीक्ष्णाग्रेण सुयन्त्रिणा ॥ ४३ ॥

ग्रहण कर शबल संहत अंजलिवाले विष्णु अर्थात् धर्माधिष्ठातृदेवता विष्णु और ज्ञानाधिष्ठात्री देवता शिव गोधा अंगुलीत्राण बांधे मेघसहित चन्द्रमाके समान शोभित हुए ॥ ३९ ॥ इनके परस्पर विरोधमें आदित्य वसु विष्णु पक्षके हो ज्ञानका द्वेष करते हैं और यह सब महाकान्तिमान् विष्णुके निकट स्थित होते हैं ॥४०॥ मरुत् और विश्वेदेवा रुद्रकी ओर हुए, गन्धर्व किन्नर नाग यक्ष पन्नग ॥४१॥ और दण्डत्यागी ऋषि समान दृष्टि होनेसे दोनों पक्षके आश्रित हुए लोकोंका हित चाहनेके निमित्त शान्तिपाठ करने लगे ॥ ४२ ॥ रुद्रने युद्धमें बाणके प्रहारसे विष्णुको युद्धमें ताडन

किया और तीक्ष्ण शरोंसे शरीरकी सब संधियोंमें प्रहार किया ॥४३॥ ब्रह्मसंभव सर्वात्मा विष्णु कंपित न हुए और छः इन्द्रियोंसे व्याप्त हो रोषको प्राप्त न हुए ॥४४॥ तब विष्णुजीने बाण धारण कर धनुषके ऊपर चढाया और ब्रह्मदण्डकी समान उस बाणको शिवके जत्रुदेश (हंसली) में प्रहार किया ॥४५॥ तब उस बाणसे विद्ध होकर महादेव कंपित न हुए जिस प्रकार वज्रसे मंदरपर्वतकी संधि कोई चलायमान नहीं कर सकता है ॥४६॥ तब विष्णुने कूदकर सनातन रुद्रको कंठदेशमें ग्रहण किया जिससे वह नीलकंठ कहलाये. इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि अपनी उत्पत्तिमें ज्ञानकी धर्मापेक्षा है.उपपन्न ज्ञानको धर्ममूलसे उच्छेद करता है तोभी महात्माकोही धर्माधिकार होनेसे ज्ञानकेकंठमें शिशुके समान लग्न

न चकम्पे तदा विष्णुः सर्वात्मा ब्रह्मसंभवः॥न च रोषमना नित्यं वृतः सर्वैः षडिन्द्रियैः॥४४॥विष्णुश्च धनुरानम्य शरेण समयोजयत् ॥ जत्रुदेशे मुमोचाशु ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥४५॥ स विद्धस्तेन बाणेन महादेवो न कम्पते ॥ वज्रेण च महासंधिर्मन्दरस्य न चाल्यते ॥ ४६ ॥ ततः प्रसभमाप्लुत्य रुद्रं विष्णुः सनातनम् ॥ कण्ठे जग्राह भगवान्नीलकण्ठस्ततोऽभवत् ॥ ४७ ॥ अनादिनिधनो देवः क्षमतां हि भवान्मम ॥ सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम् ॥ ४८ ॥ कर्मणा चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत ॥ अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः ॥ ४९ ॥ स्वयमेव हि यत्कर्म विधत्ते कर्मयोनिषु ॥ तयोः शुभतमो राजन्स्वयमेव तथाकरोत् ॥५०॥ अन्तरिक्षाच्छुभा वाचः श्रूयन्ते परमाद्भुताः ॥ सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः सनातन नमोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥ नन्दी पिनाकमुद्यम्य बलवान् रुद्रसंभवः ॥ मूर्द्धन्यभिजघानाजौ विष्णुं क्रोधेन मूर्च्छितः ॥ ५२ ॥

है ॥४७॥ कथाके प्रसंगसे विज्ञानकी स्तुति करते हैं. आदि अन्तरहित सर्व भूत और शास्त्रके आचार्य और महदादि भूत कर्मके अचल रखनेवाले ॥४८॥ कर्मके कर्ता और विकर्ता भूतोंके अशेष सबसे उत्तम ॥४९॥ हमको क्षमा करो. आप कर्मयोनियोंमें स्वयं कर्मका विधान करते हो और हे राजन्!जो उनमें शुभतम है वैसाही आप करते हो॥५०॥अन्तरिक्षसे सुन्दर वाणी सुनी जाती है.जो सिद्धोंके मुखसे निकली हुई थी.हे सनातन देव ! आपको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ रुद्रसंभव बलवान् नन्दी पिनाकको उठाकर क्रोधसे मूर्छित हुए विष्णुके मस्तकमें प्रहार करते हुए ॥ ५२ ॥

तब सुरोत्तम विष्णु (योगाख्य धर्म) नंदी (क्षुद्रज्ञान)को देखकर हास्य करते हुए और सर्वभूतपति हरिने उसको स्तंभित कर दिया ॥ ५३ ॥ विष्णु ब्रह्मके समान हो तेजसे प्रज्वलित होते हुए क्षमासे युक्तहो स्थाणुके समान अचल स्थित हुए अर्थात् सांख्य और योगको जो एक देखता है वही देखता है ॥५४॥ वह अचिन्त्य अप्रमेय अजेय शत्रुसूदन युगान्ताग्निके समान होकर वह शान्तात्मा अविनाशी हरिने ॥५५॥प्रसन्न हो हरिने रुद्रके निमित्त भागकी कल्पना की कारण कि विष्णु नित्य धर्ममें तत्पर कामना त्याग किये हैं॥५६॥हेराजेन्द्र!विष्णुने उस यज्ञको फिर साधन किया,अर्थात् अनात्मज्ञ दक्षका यज्ञ श्रद्धारूपी विष्णुसे फिर सन्निधानको प्राप्त हो योगसे आत्मदर्शन और ज्ञानसे आत्मबोध इन दोनोंका विभाग किया.हे महीपते !

ततः प्रहसितो विष्णुर्नन्दीं दृष्ट्वा सुरोत्तमः ॥ स्तम्भयामास भगवान्त्सर्वभूतपतिर्हरिः ॥५३॥ विष्णुर्ब्रह्मसमो भूत्वा तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ क्षमया च समायुक्तः स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥५४॥ अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च ह्यजेयश्चापरिंदमः ॥ युगान्ताग्निसमो भूत्वा शान्तात्मा हरिरव्ययः ॥ ५५ ॥ प्रसन्नः कल्पयामास भागं रुद्राय धीमते ॥ विष्णुर्धर्मपरो नित्यं त्यक्तकामः सुरोत्तमः ॥ ५६ ॥ विष्णुना चैव राजेन्द्र स यज्ञः संधितःपुनः ॥ यथापक्षं च ते सर्वे गणास्त्वासन्महीपते ॥ तस्मिन्युद्धे महाघोरे विष्णुरुद्रस्य चैव ह ॥ ५७ ॥ यथापक्षं भवद्युद्धं दक्षयज्ञविनाशने ॥ विनाशश्चैव यज्ञस्य तदा लोके प्रतिष्ठितः ॥ ५८ ॥ सर्वभूतेषु राजेन्द्र हितो यज्ञः सनातनः ॥ दक्षो यज्ञफलं चैव प्राप्तवान्त्स प्रजापतिः ॥५९॥ इमां चोदाहृतां दिव्यां कथामिति स बुद्धिमान्॥श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः शुचिः प्रयतमानसः ॥६०॥ अधीत्य सर्वमध्यात्मं देवलोके महीयते ॥ एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥६१॥

वे सब गण यथापक्षमें स्थित हुए उसविष्णु और रुद्रके महाघोर युद्धमें॥५७॥दशयज्ञविनाशी यथापक्ष दोनोंका युद्ध हुआ अर्थात् श्रवण आसनकी सहायवाले सांख्य और योगकेपरस्पर विरोध होनेमें यज्ञविनाश और ज्ञानकीही उत्कर्षता हुई,उस समय लोकमें यज्ञविनाशही प्रतिष्ठित हुआ॥५८॥ यद्यपि ज्ञान श्रेष्ठ है तथापि उपकारी होनेसे यज्ञ श्रेष्ठ है. नहीं तो द्वारलोप हो जानेसे ज्ञानभी सिद्ध नहीं होता॥५९॥हे राजेन्द्र ! सर्वभूतोंमें सनातन यज्ञ हितकारी है उस प्रजापति दक्षने यज्ञफलकी प्राप्तिकी ॥६०॥ इस दिव्यकथाको कहकर जो बुद्धिमान् पवित्र होकर ब्राह्मणोंके प्रति सुनावे

॥ ६६ ॥

यह कथा तो एक प्रपंचरूप है परन्तु यह सब अध्यात्मरूप है इसके पाठ करनेसे आत्मस्वरूप देवलोकमें प्रतिष्ठा होती है यह उन महात्माका पुष्करप्रादुर्भाव है ॥६१॥ यह पुराणोंमें मैंने कृष्णद्वैपायनके मुखसे श्रवण किया है. परमर्षियोंने इसको यथायोग्य संस्कृत किया है ॥ ६२ ॥ जो हस श्रेष्ठ परमपुराणको सदा अप्रमत्त होकर श्रवण करता है वह सब कामनाको प्राप्त हो शोकरहित होकर दूसरे लोकोंमें स्वर्गफलको भोगता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जन्मेजय बोले; हे द्विजराज ! हमने पुराणोंमें अमित तेजवाले

पुराणे पौष्करे चैव मया द्वैपायनेरितः ॥ यथावदनुपूर्वेण संस्कृतः परमर्षिभिः ॥ ६२ ॥ यश्चैनमग्र्यं पुरुषं पुराणं सदाप्रमत्तः शृणुयाद्यथोक्तम् ॥ अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ॥ सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतः ॥ १ ॥ न जानतेऽस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् ॥ न कर्म गुणवद्भावं न हेतुं न मनीषितम् ॥ २ ॥ किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः कास्य देवता ॥ किमाचारः किंप्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥ एतन्मे संशयत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ॥ यज्ञार्थं च समेतानां द्विजातीनां महात्मनाम् ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ नानाश्रुतिसमायुक्तं कृष्णद्वैपायनेरितम् ॥ महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ ५ ॥

विष्णुका वाराह अवतार सत्पुरुषोंसे सुना है ॥१॥ उसके चरित्र और विधि विस्तारसे नहीं जानता हूं न उनके कर्म गुण भाव और हेतुको जानता हूं ॥ २ ॥ वह वराह किस आत्मक है यज्ञमय है वा योगमय है क्या मूर्ति है शरीर भौतिक है वा मायिक है इसके अधिष्ठात्री देवता हरि बाहर हैं क्या आचार और प्रभाव है अथवा पूर्वमें क्या कृत्य किया था ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यह मुझे सन्देह है वराहचरित्र विस्तारपूर्वक कहिये यज्ञार्थको इकठे हुए ब्राह्मणोंका चरित्र मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ वैशंपायन बोले; यह ब्रह्मसंमित पुराणमें तुमसे वर्णन करता हूं. जो अनेक

प्रकारकी श्रुतियोंसे युक्त व्यासजीने वर्णन किया है. वह महावराहका चारित्र अद्भुत कर्मा श्रीकृष्णकाहीहै ॥५॥ हे राजन् ! जिस प्रकार नारायणने वाराहरूप धारण कर दंष्ट्रासे पृथ्वीको उद्धार किया ॥ ६ ॥ वह चरित उदारवेदकी श्रुतियोंसे अलंकृत है. हे जन्मेजय ! इस चरित्रको पवित्र होकर सुनो ॥ ७ ॥ यह पुराण पुण्यरूप वेदोंसे सम्मत है अनेक श्रुतियोंसे युक्त है नास्तिकोंके निमित्त देना न चाहिये ॥ ८ ॥ इस संपूर्ण पुराणमें सांख्य और योग सब विधिपूर्वक कहा है. इस रीतिसे सांख्य और योगका अन्तर्भाव है वह विद्वानोंको कोई एक ग्रहण करना चाहिये, जो केवल कथामात्रो-

यथा नारायणो राजन्वाराहं वपुरास्थितः ॥ दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदन ॥ ६ ॥ छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतः ॥ शुचिः प्रयत्नवान् भूत्वा निबोध जनमेजय ॥७॥ इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ॥ नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ॥८॥ पुराणमेतदखिलं सांख्यं योगं तथैव च ॥ कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं योऽस्यार्थं ज्ञास्यते पुमान् ॥९॥ विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ॥ प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥ १० ॥ मनःसंकल्पजाश्चैव पूर्वजाश्च महर्षयः ॥ वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥११॥ दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छादयो भुवि ॥१२॥ चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिगतानि च ॥ जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ॥ १३ ॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते ब्राह्मेऽहनि तथागते ॥ निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥ १४ ॥ हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ॥ शिखाभिर्विविधाँल्लोकान्त्संशोषयति देहिनः ॥ १५ ॥

पजीवी है वे अर्थानभिज्ञ हैं ॥ ९ ॥ विश्वेदेवा साध्य रुद्र आदित्य अश्विनीकुमार प्रजापति सप्त महर्षि ॥ १० ॥ मनके संकल्पसे उत्पन्न औरभी पूर्वज महर्षि वसु अप्सरा गंधर्व यक्ष राक्षस ॥ ११ ॥ दैत्य पिशाच नाग अनेक प्रकारके भूत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र म्लेच्छादि ॥१२॥ संपूर्ण चतुष्पद तिर्यग्योनिके जीव सब जंगम जीव और जो जीवसंज्ञक हैं ॥ १३ ॥ सहस्रयुग पूण होनेपर ब्रह्मादिनकी पूर्तिमें सब भूतोंके निर्वाण होनेमें और सब उत्पातोंके प्रादुर्भूत होनेमें ॥ १४ ॥ तब साक्षात् महादेवरूप अपनी शिखाओंसे लोकोंको कंपायमान करता हुआ शोषित करता है॥१५॥

तब उनकी तेजोराशिसे दग्ध होते हुए विवर्णवदन दग्ध अंग बिगडे हुए वर्णवाले कान्तिवाले मुखोंसे युक्त ॥ १६ ॥ सांग उपनिषदसहित वेद इतिहासादिके सहित सम्पूर्ण विद्याके आश्रय सत्यध परायण ॥ १७ ॥ ब्रह्माको आगे किये ईश्वरकी इच्छासे हुए सम्पूर्ण तेतीस करोड देवता ॥ १८ ॥ उसदिनके प्राप्त होनेमें उस हंस; महाअक्षरवाले ब्रह्म नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं ॥१९॥ फिर उन प्रवेश करनेवालोंमें प्रवेश करनेपर फिर उत्पत्ति होती है. जैसे सूर्यका उदय और अस्त हुआ करता है ॥२०॥ सहस्रयुगके पूर्ण हो जानेमें कल्पका निश्शेष हो जाता है उसमें कोई जीव अपने कृत्यको प्राप्त

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरग्रतः ॥ विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः ॥१६॥ साङ्गोपनिषदा वेदा इतिहासपुरोगमाः ॥ सर्वविद्याश्रयाश्चैव सत्यधर्मपरायणाः ॥ १७ ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा छन्दतो विश्वतोमुखम् ॥ सर्वे देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः ॥ १८ ॥ तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ॥ प्रविशन्ति महायोगं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ १९ ॥ तेषां भूयः प्रविष्टानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥ यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमयाविह ॥ २० ॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते ॥ तस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषमवतिष्ठते ॥२१॥ संहृत्य लोकान्त्सर्वान्त्स सदेवासुरपन्नगान् ॥ कृत्वात्मगर्भे भगवानास्त एको जगद्गुरुः ॥२२॥ यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः॥अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥२३॥ नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्ररश्मिविवर्जिते ॥ त्यक्तभूताग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥ २४ ॥ अपक्षिगणसंघाते सर्वप्राण्यचरे पथि ॥ अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसा वृते ॥ २५ ॥ अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् प्रशान्ते सर्वसंपाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥ २६ ॥

नहीं होता है॥२१॥देव असुर पन्नगोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंको संहार करके अपने गर्भमें सबको करके वह जगद्गुरु स्थित होते हैं ॥२२॥ जो कल्पांतमें वारंवार सब भूतोंकी रचना करते हैं वह अव्यक्त शाश्वत देव हैं उन्हींके यह सब जगत् वशमें है॥२३॥ जब लोक चन्द्र सूर्यकी किरणोंसेरहित हो जाता है भूत अग्नि पवन यज्ञ और वषट्कारके हीन होनेमें ॥२४॥ पक्षी और प्राणिसमूह रहित होनेपर सब मर्यादाहीन होकर रौद्र और अंधकारसे आच्छादनहोनेमें ॥ २५ ॥ सब लोकोंके अदृश्य और सब कर्मोंके अभाव होनेमें सब संतापके शांत और वैर परिग्रहके नष्ट होनेमें ॥ २६ ॥

नारायणात्मक लोकके अपने स्वभावको प्राप्त होनेमें हृषीकेश परमेष्ठी शयन करनेकी इच्छा करते हैं ॥२७॥ पीतवसन लालनेत्र कृष्णमेघके समान कान्तिमान् सहस्र शिखायुक्त जटाभारको धारण किये ॥ २८ ॥ श्रीवत्सके पवित्र जलसे युक्तलाल चंदनसे भूषित हृदयवाले बिजलीसे युक्त मेघके समान प्रकाशमान ॥ २९ ॥ सहस्र कमलोंकी मालासे शोभित अपनी पत्नी लक्ष्मीके देहको आश्रय कर स्थित होनेवाले ॥ ३० ॥ वह धर्मात्मा लोकके पितामह शयन कर जाते हैं. इस प्रकार वह विक्रान्त योगनिद्राको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ सहस्र वर्षके पूर्ण होनेमें स्वयंही विभु होकर

गते स्वभावसंस्थानं लोके नारायणात्मके ॥ परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥२७॥ पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः ॥ शिखासहस्रविकच जटाभारं समुद्वहन् ॥ २८ ॥ श्रीवत्सकलिलं पुण्यं रक्तचन्दनभूषितम् ॥ वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः॥२९॥ पुण्डरीकसहस्रस्य मालास्य शुशुभे तदा ॥ पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ ३० ॥ ततः स्वपिति धर्मात्मा सर्वलोकपितामहः ॥ किमप्यमितविक्रान्तो निद्रायोगमुपागतः ॥३१॥ ततो वर्षसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ॥ स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥३२॥ ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ॥ पितृदेवासुरनरान्पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ ३३॥ ततश्चिन्तयतः कार्यं देवेषु समितिंजयः ॥ संभवं सर्वलोकस्य विदधाति स वाक्पतिः ॥ ३४ ॥ कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च प्रजापतिः ॥ धाता विधाता च तथा संयमो नियमो यमः ॥ ३५ ॥ नारायणपरा देवा नारायणपराः क्रियाः ॥ नारायणपरो यज्ञो नारायणपरा श्रुतिः ॥ ३६ ॥

जागृत होते हैं॥३२॥तब वह लोककर्ता स्वयं सृष्टि करनेकी इच्छा करते हैं. पितृ देवता असुर मनुष्योंको परमेष्ठी क्रमसे बनानेकी इच्छा करते हैं ॥३३॥ तब वह नियामक देवताओंके कार्यकी चिन्ता करते हैं वह वाणीपति त्रिलोकीके संभवका विधान करते हैं॥३४॥वही प्रजापति कर्ता विकर्ता और संहर्ता है.धाता विधाता संयम नियमरूप वही है॥३५॥सब देवता और सब क्रिया नारायणसे प्रवृत्त हैं सब यज्ञ और श्रुति नाराय-

णपर हैं ॥ ३६ ॥ मोक्ष नारायणपर और परम गति नारायणसे है धर्म और ऋतु नारायणपर हैं ॥३७॥ यज्ञ तप सत्य परंपद नारायणपर है नारायणसे अधिक कोई देवता न है न होगा ॥ ३८ ॥ वही स्वयंभू ब्रह्मा और भुवनका अधिपति कहाता है वही वायु और वही सनातन यज्ञ है ॥ ३९ ॥ वही सत् असत् यज्ञ और प्रजाका करनेवाला है. जो देवताओंको जानना चाहिये वही यह सबसे श्रेष्ठ है ॥४०॥ इन भगवान्‌को प्रजापति सात ऋषि देवताओंके सहित जाननेको समर्थ नहीं हैं ॥४१॥ कोई इनके अन्तको प्राप्त नहीं हो सकता इससे यह अनन्त कहलाते हैं जो

नारायणपरो मोक्षो नारायणपरा गतिः ॥ नारायणपरो धर्मो नारायणपरः ऋतुः ॥३७॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम् ॥ नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति ॥३८॥ स्वयंभूरीति विज्ञेयः स ब्रह्मा भुवनाधिपः॥ स वायुरिति विज्ञेय एष यज्ञः सनातनः ॥ ३९ ॥ सदसच्च स विज्ञेयः स यज्ञः स प्रजाकरः ॥ यद्वेदितव्यं त्रिदशैस्तदेष परिविन्दति ॥४०॥ यच्च वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः॥ प्रजानां पतयः सप्तः ऋषयश्च सहामरैः ॥४१॥ नास्यान्तमधिगच्छन्ति ततोऽनन्त इति श्रुतिः ॥ कदस्य परमं रूपं तत्र पश्यन्ति देवताः॥४२॥प्रादुर्भावेषु तं भूतं यत्तदर्चन्ति देवताः॥यन्न दर्शितवान्देवः कस्तदन्वेष्टुमर्हति॥४३॥ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥ तेजसस्तपसश्चैवनिधानममृतस्य च ॥ ४४ ॥ चतुराश्रमवर्णेषु चातुर्होत्रफलाशनः चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगविवर्तकः ॥४५॥ तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ॥ मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रिकम् ॥ ४६ ॥

इसका परमरूप है उसे देवता देखते हैं॥४२॥जो इनका प्रादुर्भावरूप है उसकी देवता अर्चना करते हैं और जो रूप इन देवने नहीं दिखाया उसे कौन देख सकता है॥४३॥यह सब भूतोंका नेता अग्नि और पवनकी गति तेज और तप तथा अमृतके स्थान ॥४४॥ चार आश्रम और चारों वर्णोंमें चातुर्होत्रके फलभागी हो चार सागर पर्यन्त चारों युगोंके प्रवृत्त करनेवाले ॥ ४५ ॥ इस संसारको संहार कर अपने गर्भमें स्थित कर वह महायोगी सहस्रवर्षपर्यन्त धारण किये इस अण्डेको फिर त्यागन करते हैं ॥ ४६ ॥

सुर असुर ब्राह्मण अप्सराओंके गण महौषधी पर्वत यक्ष गुह्यक प्रजापति श्रुतिधर यक्ष राक्षस आदिकोंके कुलको उन्होंने निर्माण किया इस प्रकार प्रभुने सब अपनी आत्मासेही रचा ॥४७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हारिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ वैशंपायन बोले; पूर्वमें यह ब्रह्माण्ड सुवर्णरूप था प्रजापतिका मूर्तिरूप था यह वैदिकी श्रुति है ॥ १ ॥ तब सहस्रवर्षके अनन्तर प्रभुने इसके ऊर्ध्वमुखका विभेद किया और लोकोंके उत्पन्न करनेके निमित्त नीचेके मुखका भेद किया ॥ २ ॥ फिर जगत्के उत्पत्तिकारण प्रभुने जगत्को आठ प्रकारसे विभक्त किया इस सब

सुरासुरद्विजभुजगप्सरोगणैर्महौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ॥ प्रजापतिः श्रुतिधररक्षसां कुलं तदासृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ॥४७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जगदण्डमिदं पूर्वमासीत्सर्वं हिरण्मयम् ॥ प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥१॥ ततो वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः ॥ लोकसंजननार्थाय बिभेदाधोमुखं पुनः ॥२॥ भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं प्रभुर्वै लोकनियोनिकृत् ॥ चकार जगतश्चात्र विभागं सर्वभागवित् ॥३॥ यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं परा सुकृतिनां गतिः ॥ विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४॥ यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिसृक्षया॥समन्तादष्टधा यानि च्छिद्राणि कृतवांस्तु सः ॥५॥ विदिशस्ता दिशाः सर्वा मनसैवाकरोद्द्विधा॥नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि वै ॥ ६ ॥ बहुवर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते बलाहकाः ॥ यदण्डमध्ये स्कन्नं तद्भुतमासीत्समाहितम् ॥ ७ ॥ जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं पृथिवीतले॥तस्य क्लेदार्णवौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः ॥ ८ ॥

जगत्का विभाग उस जाननेवालेने किया अर्थात् वाक् पाणि पाद नाम तीन छिद्र श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण नामक तीन छिद्र,उपस्थमें अपानका अन्तर्भाव है ॥ ३ ॥ जो ऊपरका आकाशात्मक छिद्र, है वह पुण्यात्माओंकी गति है. जो योगसे विधान किया है जो नीचेका है वही रसातलका द्वार है ॥४॥जो अण्ड प्रथम देवलोकके रचनेकी इच्छासे बनाया उसके चारों ओर उसने आठ छिद्र किये हैं॥५॥फिर सम्पूर्ण दिशा विदिशा मनसेही दो प्रकार कीं और स्थूल सूक्ष्मके भेदसे विषयोंके ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंकी रचना की और अनेक प्रकारके राग विराग जो अण्डके खण्ड थे ॥६॥ वे अनेक वर्णके चित्रविचित्र मेघ हुए और जो अण्डके मध्यमें द्रवरूप निकला है ॥ ७ ॥ वह सब पृथ्वीमें सुवर्णनामसे विख्यात है और उसकेही

क्लेदसे यह चारों ओर पूर्ण स्वरूप ॥ ८ ॥ पृथ्वी युगान्तमें सागरसे पूर्ण हुईसी विदित होती है ॥ ९ ॥ जो देवलोक रचनेकी इच्छासे प्रथम अण्ड निर्माण किया उसमें जहां जहां जल भरा वहीं सुवर्णका पर्वत हुआ ॥ १० ॥ उस जलसे दिशा विदिशा सब भर गईं अन्तरिक्ष स्वर्ग तथाऔर जो कुछ है ॥११॥ वह जल जहां २ टपका वहीं वहीं पर्वत हो गया, तब सम्पूर्ण पर्वतोंसे पृथ्वी विषम हो गई ॥१२॥ उन बहुत योजनके विस्तारवाले पर्वतजालोंके सहित महापर्वतोंसे पीडित हो व्यथित हुई ॥१३॥ जो पृथ्वीतलमें नारायणात्मक महाजल है. जो हिरण्यमय उज्ज्वल तेज और रूप-

पृथिवी निखिला राजन्युगान्ते सागरैरिव ॥ ९ ॥ यच्चाण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकचिकीर्षया ॥ तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥१०॥ तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा ॥ अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत्किंचिदन्तरम् ॥ ११ ॥ यत्र यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः ॥ शैलैः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत् ॥ १२ ॥ तैः सपर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ॥ पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताभवत् ॥ १३ ॥ महीतले भूरिजलं दिव्यं नारायणात्मकम् ॥ हिरण्यमयं समुद्दिष्टं तेजो विमलरूपितम् ॥ १४ ॥ अशक्ता वै धारयितुमधः सा प्रविवेश ह ॥ पीडयमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः ॥ १५ ॥ पृथिवीं विशतीं दृष्ट्वा तामधो मधुसूदनः ॥ उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मत्तेज एव बलवत्स-मासाद्य तपस्विनी ॥ रसातलं विशेद्देवी पङ्के गौरिव दुर्बला ॥ १७ ॥ धरण्युवाच ॥ त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महानृसिंहाय चतुर्भुजाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १८ ॥

वान् है ॥१४॥ उन जलोंको पृथ्वी धारण करनेमें समर्थ न हुई इससे पातालमें प्रवेश कर गई इस प्रकार भगवान्के तेजसे पीडित हुई महापृथ्वी प्रवेश करने लगी ॥१५॥ तब मधुसूदन पृथ्वीको प्रवेश करता देख लोकोंके हितकी कामनासे उसके उद्धारकी इच्छा करने लगे ॥ १६ ॥ श्रीभग-वान् बोले;हे तपस्विनि ! हमारे बलिष्ठ तेजके आश्रय होकर कीचमें दुर्बल गौके समान तू रसातलमें प्रवेश करती है॥१७॥धरणी बोली; त्रिविक्रम

अमितविक्रम महानृसिंह चतुर्भुज श्रीशार्ङ्ग चक्रगदा पद्मधारी पुरुषोत्तम देवको नमस्कार है॥१८॥आपहीसे यह जगत् धारण और संहारकिया जाता है. तुम भूतोंको धारण कर भरण पोषण करते हो ॥१९॥ जो कुछ तेज और बलसे आपके द्वारा धारण किया जाता है सो आपके प्रसादसे धारण किया जाता है.मैं आपके प्रसादसे धारणकरती हू॥२०॥तुम्हारी धारण की हुई वस्तुको मैं धारण करती हू अधृतकोधारणनहीं करती हूं वह वस्तु संसारमें नहीं है जिसको तुम धारण नहीं करते हो ॥ २१ ॥ हे वीरपुरुष नारायण ! आपही युगयुगमें जगत्के हितकी कामनासे मेरा भार उतारते

त्वयात्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत् ॥ त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १९ ॥ यत्त्वया धार्यते किंचित्तेजसा च बलेन च ॥ ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥ २० ॥ त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ॥ नहि तद्विद्यते रूपं यत्त्वया न तु धार्यते ॥२१॥ त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे ॥ मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥२२॥ तवैव तेजसा क्रान्तां रसातलतलं गताम् ॥ त्रायस्व वां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥ २३ ॥ दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ॥ त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥२४॥ तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ॥ शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता ॥ एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥२६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥ किंतु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुंधराम्॥२७॥

हो ॥ २२ ॥ तुम्हारेही तेजसे आक्रान्त हो म पातालमें प्रवेश करती हूं. हे सुरश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा करो. मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुई हू ॥ २३ ॥ मैं दानव और दुरात्मा राक्षसोंसे पीडित हुई नित्य आपहीकी शरणको प्राप्त होती हूं॥२४॥तबहीतक मुझको भय है जबतक मैं उन्नत कंधर तुम्हारी शरणमें जाकर प्राप्त नहीं होती हूं ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले; हे कल्याणि धरणि ! तुम भय मत करो, सावधान होकर शान्तिको प्राप्त हो यह मैं तुझको उचित स्थानमें प्राप्त करता हूं ॥२६॥ वैशंपायन बोले;तब महात्माने मनसे उस दिव्यरूपकी चिंता की कि रूप धारण कर

मैं पृथ्वीका उद्धार करूं ॥२७॥ जिससे जलमें निमग्न हुई पृथ्वीका म उद्धार कर सकूं, यह विचार देव उस कार्यमें मति कर ॥२८॥ जलक्रीडाकी रुचिवाले वाराहरूपका स्मरण करते हुए तब भूमिभृत् भूमिके उद्धारमें युक्त हुए ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंको अधृष्यरूप वाङ्मय ब्रह्म (वेद) सम्मत दश योजनके विस्तार और सौ योजनके ऊंचे ॥ ३० ॥ नीलमेघके समान मेघके गर्जनेके समान शब्दवाले महापर्वतके समान संहनन श्वेतवर्णकी दीप्तिमान् उग्र डाढें ॥ ३१ ॥ विजली और अग्निके समान प्रकाश सूर्यके समान तेज पीन गोल चौडे स्कन्ध दृप्तशार्दूलके समान गमन करने-

जले निमग्नां धरणीं येनाहं वै समुद्धरे ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवस्तत्करणे मतिम् ॥२८॥ जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं रूपमस्मरत् ॥ हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाभूदस्य भूमिभृत् ॥२९॥ अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् ॥ दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ॥ ३० ॥ नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥३१॥ विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥ पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम् ॥३२॥ पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ॥ रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ॥ ३३ ॥ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥ वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चिती मुखः ॥ ३४ ॥ अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥ अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥३५॥ आज्यनासः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वरो महान् ॥ सत्यधर्ममयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः ॥ ३६ ॥ क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः ॥ उद्गात्रान्त्रो महालिङ्गो बीजौषधिमहाफलः ॥ ३७ ॥

वाले ॥३२॥ पीन और ऊंचा कटिदेश वृषलक्षणसे पूजित इस प्रकार हरि महावराहका रूप धारण कर ॥ ३३ ॥ पृथ्वीके उद्धारके निमित्त रसातलमें प्रविष्ट हुए. (इनकी अधिष्ठात्री देवता यज्ञ है इसको कहते हैं) वेद चरण हैं दंष्ट्र यूप हैं दांत क्रतु और मुख चिती है ॥ ३४ ॥ जिह्वा अग्नि रुएं दर्भ ब्रह्म शिर महातप अहोरात्र रूपी ईक्षणके देखनेवाले वेदांग श्रुति भूषण ॥३५॥ घृतरूप नासिका स्रुवरूप तुण्ड सामरूप महास्वर सत्य धर्ममय श्रीमान् क्रमविक्रमसे सत्कृत ॥ ३६ ॥ यज्ञकी क्रियारूप महानासिका पशु जानु मुखकी आकृति, उद्गात्रान्तरूप महालिंग बीज औषधीरूप महा-

फल ॥ ३७ ॥ वायुरूप अन्तरात्मा मंत्रका स्पर्श करता विक्रम है सोमरूपी रुधिर वेदरूपी स्कंध हविरूप गंध हव्यकव्यरूप वेगवान् ॥३८॥ प्राग्वंश काया कान्तिमान् अनेक दीक्षाओंसे अर्चित दक्षिण हृदययोगी महासत्रमय महान् ॥३९॥ उपाकर्मरूपी ओष्ठ रुचक प्रवर्ग्यरूपी यज्ञ अंगके भूषणवाले नानाछन्दयुक्त गति और गुह्यरूपी उपनिषदके आसनवाले ॥४०॥ छायारूप पत्नीकी सहायतासे युक्त मणिशृङ्गके समान उच्छ्रित वह यज्ञवराह गुरु जलमें प्रविष्ट हुए॥४१॥वह प्रजापति जलोंसे आच्छादित हुई पृथ्वीका उद्धार करने लगे. जो कि रसातलमें पातालतलमें मग्न हो रही थी॥४२॥

वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्पृक् विक्रमः सोमशोणितः ॥ वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥३८॥ प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नादीक्षाभिरर्चितः ॥ दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥ ॥ ३९ ॥ उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥४०॥ छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥ भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत्प्राविशद्गुरुः ॥४१॥ अद्भिः संछादितामुर्वीं स तामार्च्छत्प्रजापतिः ॥ रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम् ॥४२॥ प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम्॥ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः॥४३॥मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः॥ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥४४॥ चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ॥ एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥४५॥ उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया ॥ अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥४६॥ पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥ रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥ ४७ ॥

लोकहितके निमित्त प्रभुने उसे दंष्ट्रापर धारणकिया तब पृथ्वीधरने उस पृथ्वीको अपने स्थानमें लाकर॥४३॥उसको रखकर एकसाथ छोड दिया तब उनके धारण करनेसे पृथ्वी निर्वाणताको प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ उस देव शंभुके निमित्त नमस्कार किया गया. इस प्रकार प्राणियोंके हितकारी यज्ञवराहने ॥४५॥ लोकके हितकीकामनासे पृथ्वीदेवीका उद्धार किया है. इस प्रकार जगती देवीको उद्धार कर जगतके स्थापनकी इच्छासे ॥ ४६ ॥ पृथ्वीके विभागके निमित्त कमललोचनने इच्छा की. इस प्रकार वह देवश्रेष्ठ रसातलमें गई पृथ्वीके निमित्त विचार करके ॥ ४७॥

वह विभु वराहरूपधारी वृषाकपि एकही दंष्ट्रापर उन अतुलविक्रमवान् अच्युतने लोकहितके निमित्त पृथ्वीका उद्धार किया । ४८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥ तब उस सागरके ऊपर यह पृथ्वी नावके समान स्थित हुई देहके विस्तार होनेसे यह पृथ्वी फिर जलमें न डूबी ॥ १ ॥ तब प्रभुने पृथ्वीके विभागकी इच्छा की सब पर्वत और नदियोंकी श्रेष्ठता ॥ २ ॥ विलेखन प्रमाणगति प्रसव और नदियोंके माहात्म्य और विशेषताकी प्रभुने चिंता की ॥ ३ ॥ चतुर्दल पद्माकार भरत केतुमाल भद्राश्व कुरव आदि देशोंकी समुद्रपर्यन्त

ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृक् वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया ॥ समुद्धरद्धरणिमतुल्यविक्रमो महायशा लोकहितार्थमच्युतः ॥४८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ॥ विततत्वात्तु देहस्य न ययौ संप्लवं मही ॥१॥ ततः स चिन्तयामास प्रविभागं क्षितेर्विभुः ॥ समुच्छ्रयं च सर्वेषां पर्वतानां नदीषु च॥२॥ विलेखनं प्रमाणं च गतिं प्रस्रवमेव च ॥ माहात्म्यं च विशेशं च नदीनामन्वचिन्तयत्॥३॥चतुरन्तां धरां कृत्वा तथा चैव महार्णवम् ॥ मध्ये पृथिव्याः सौवर्णमकरोन्मेरुपर्वतम् ॥४॥ प्राचीं दिशमथो गत्वा चकारोदयपर्वतम् ॥ शतयोजनविस्तारं सहस्रं च समुच्छ्रयम् ॥५॥ जातरूपमयैः शृङ्गैस्तरुणादित्यसन्निभैः ॥ आत्मतेजोगुणमयैर्वेदिकाभोगकल्पितम् ॥६॥ विविधांश्च महास्कन्धान्काञ्चनान्पुष्करेक्षणः ॥ नित्यपुष्पफलान्वृक्षान्कृतवांस्तत्र पर्वते ॥ ७ ॥ शतयोजनविस्तारं ततस्त्रिगुणमायतम् ॥ चकार स महादेवः पुनः सौमनसं गिरिम् ॥८॥ नानारत्नसहस्राणां कृत्वा तत्र सुसंचयम् ॥ वेदिकां बहुवर्णां च संध्याभ्रामकल्पयत् ॥९॥

कल्पना की पृथ्वीके मध्यमें सुवर्णका पर्वत मेरु स्थित किया ॥४॥ फिर पूर्वदिशामें जाकर उदयपर्वतकी कल्पना की जिसका सौ योजनका विस्तार और सहस्र योजनकी ऊंचाई है ॥ ५ ॥ प्रातःकालके सूर्यके समान सुवर्ण शृंगोंसे युक्त आत्मतेज गुणमय वेदिका भोगसे कल्पित ॥ ६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके सुवर्ण स्कन्धवाले नित्य पुष्पफलसे युक्त वृक्ष कल्पित किये जो उस पर्वतमें हैं।।७॥सौ योजनका विस्तार तिगुना ऊंचा इस प्रकारका उस महादेवने सौमनस पर्वत बनाया ॥८॥ उसमें अनेक प्रकारके सहस्रों रत्नोंका संचय किया और संध्याकालके मेघके समान उसमें बहुत

वर्णकी वेदिका निर्माण की ॥९॥ सहस्रशृंग नामक गिरि नानारत्न और मणिशिलासे युक्त वृक्षोंसे घना साठ योजनके विस्तारमें किया ॥१०॥ उसमें सब प्राणियोंसे नमस्कृत अत्यन्त सुन्दर आसनमें प्रजापति विश्वकर्माने अपना स्थान कल्पित किया ॥११॥ फिर हिमसमूहसे युक्त हिमालय महापर्वतको जो कि महादुर्ग गहन कन्दरान्तरसे मंडित॥१२॥शीत उत्पत्तिका स्थान अनेक नदी और द्विजगणोंसे युक्त पुलिन और वसुधारासे युक्त बनाया ऐसी श्रुति है ॥ १३ ॥ यह नदी अमृतके समान सैकडों मुखोंसे संयुक्त हुई शोभित होने लगी और अनेक मुक्ताशंखोंसे विभूषित हो शोभित

सहस्रशृङ्गं च गिरिं नानामणिशिलातलम् ॥ कृतवान्वृक्षगहनं षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥१०॥ आसनं तत्र परमं सर्वभूतनमस्कृतम् कृतवानात्मनः स्थानं विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ११ ॥ शिशिरं च महाशैलं तुषारचयसंनिभम् ॥ चकारं दुर्गगहनं कन्दरान्तरम-ण्डितम् ॥१२॥ शिशिरप्रभवां चैव नदीं द्विजगणायुताम् ॥ चकार पुलिनोपेतां वसुधारामिति श्रुतिः ॥१३॥ सा नदी निखिलां प्राचीं पुण्यां मुखशतैश्रिताम् ॥ शोभयत्यमृतप्रख्यैर्मुक्ताशङ्खविभूषिते ॥ १४ ॥ नित्यपुष्पफलोपेतैश्छादयद्भिः सुसंवृतैः ॥ भूषिताभ्यधिकं कान्तैः सा नदी तीरजैर्द्रुमैः ॥ १५ ॥ कृत्वा प्राचीविभागं च दक्षिणायामथो दिशि ॥ चकार पर्वतं दिव्यं सर्व-काञ्चनराजतम् ॥ १६ ॥ एकतः सूर्यसंकाशमेकतः शशिसन्निभम् ॥ स विभ्रच्छुशुभेतीव द्वौ वर्णौ पर्वतोत्तमः ॥ १७ ॥ तेजसा युगपद्व्याप्तं सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ वपुष्मन्तमथो तत्र भानुमन्तं महागिरिम् ॥ १८ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्वृतं रम्यैर्मनोरमैः ॥ चकार कुञ्जरं चैव कुञ्जरप्रतिमाकृतिम् ॥ १९ ॥

होती है ॥१४॥ जिसको नित्य पुष्प और फलवाले वृक्ष आच्छादन करते हैं. इस प्रकार वह नदी किनारेके वृक्षोंसे भूषित है ॥ १५ ॥ इस प्रकार पूर्वदिशाका विभाग कर दक्षिण दिशाका विभाग कर उसमें सम्पूर्ण कांचन और चांदीके पर्वत निर्माण किये ॥ १६ ॥ एक चन्द्रमा और एक सूर्यके समान वर्णोंसे दोनों पर्वत अत्यन्त शोभित हुए ॥ १७ ॥ और सूर्यचन्द्रमाके समान तेजसे एकसाथ व्याप्त हो गये. यह वपुष्मन्त और भानुमन्त पर्वत ॥ १८ ॥ सब कामनाओंके देनेवाले मनोरम वृक्षोंसे युक्त हैं इसको बनाकर कुंजरके आकार कुंजरपर्वतको बनाया ॥ १९ ॥ जिसकी बहुत

योजनके विस्तारमें सुवर्णकी गुहा थीं और ऋषभके समान ऋषभपर्वतको बनाया ॥२०॥ जो सुवर्णके वृक्षोंसे शोभित पुष्पहाससे युक्त था. फिर सौ योजन ऊंचा महेन्द्र पर्वत बनाया ॥ २१ ॥ जिसके सुवर्णके शृंग और फूलोंवाले वृक्ष महाशोभित थे. मेदिनीमें यह अचल पर्वत शोभित हुए ॥ २२ ॥ नाना रत्नोंसे युक्त सूर्यचन्द्रमाके समान कान्तिमान् चन्द्रमाके समान मलय पर्वतको चित्रविचित्र किया ॥ २३ ॥ फिर शिलाजालसे युक्त मैनाक महापर्वतको निर्माण किया. इस प्रकार दक्षिणदिशामें अचल पर्वत स्थापित किया ॥ २४ ॥ फिर सहस्रशिरवाले

सर्वतः काञ्चनगुहं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ ऋषभप्रतिमं चैव ऋषभं नाम पर्वतम् ॥ २० ॥ हेमकाञ्चनवृक्षाढ्यं पुष्पहासं स सृष्टवान् ॥ महेन्द्रमथ शैलेन्द्रं शतयोजन मुच्छ्रितम् ॥२१॥ जातरूपमयैः शृङ्गैः सपुष्पितमहाद्रुमम् ॥ मेदिन्यां कृतवान्देवः प्रतिक्षोभमिवाचलम् ॥२२ ॥ नानारत्नसमाकीर्णं सूर्येन्दुसदृशप्रभम् ॥ चकार मलयं चाद्रिं चित्रपुष्पितपादपम् ॥ २३ ॥ मैनाकं च महाशैलं शिलाजालसमावृतम् ॥ दक्षिण स्यां दिशि शुभं चकाराचलमायतम् ॥२४॥ सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलताकुलम्॥ नदीं च विपुलावर्त्तां पुलिनश्रोणिभूषिताम् ॥ २५ ॥ क्षीरसंकाशसलिलां पयोधारामिति श्रुतिः ॥ सुरम्या तोयकलिलां विहितां दक्षिणां दिशम् ॥२६॥ दिव्यां तीर्थशतो पेतां प्लावयन्तीं शुभाम्भसा ॥ दिशं याम्यां प्रतिष्ठाप्य प्रतीचीं दिशमागमत् ॥२७॥ अकरोत्तत्र शैलेन्द्र शतयोजनमुच्छ्रितम् ॥ शोभित शिखरैश्चित्रैः सुप्रवृद्धैर्हिरण्मयैः ॥२८॥ काञ्चनीभिः शिलाभिश्च गुहाभिश्च विभूषितम् समाकुलं सूर्यनिभैः शालैस्तालैश्च भास्वरैः ॥ २९ ॥

विन्ध्याचलको जो विविध वृक्षोंसे युक्त है बनाया. उसमें महाआवर्तयुक्त श्रोणीभूषित नदी निर्माण की ॥ २५ ॥ उसकी नदियोंका जल दुग्धके समान निर्मल है यह श्रुति है. दक्षिण दिशाका जल बहुतही मनोहर किया ॥ २६ ॥ वे नदियें अपने जलसे दिव्य अनेक तीर्थोंको प्लावित करती हैं. इस प्रकार दक्षिण दिशा कर फिर पश्चिममें आये ॥ २७ ॥ वहां सौ योजनके विस्तारवाले चित्रशिखरोंसे शोभित बडे सुवर्णराशियोंसे युक्त ॥ २८ ॥ सुवर्णकी शिला और गुहाओंसे भूषित सूर्यके समान प्रकाशित शाल और तालोंसे व्याप्त ॥ २९ ॥

सुवर्णकी बनी मनोहर वेदियोंसे सम्पन्न वहां साठ सहस्र पर्वतोंकोसन्निवेशित किया है॥३०॥वे सुवर्णके समान कान्तिमान् प्रभासे दीप्त होरहे हैं सहस्र जलधारासे युक्त वह मेरुकेसमान पर्वतहै॥३१॥अनेक पुण्यतीर्थके समूहसे युक्तभगवान्ने उसे सन्निवेशितकियाहै.उसका साठयोजनका विस्तार और इतनाही ऊंचाव है॥३२॥उसका नाम अपने आत्मतुल्य वाराहरक्खा और भी दिव्य वैडूर्यके पर्वतकी रचनाकी॥३३॥जहां सुवर्ण और चांदीके दिव्य शिखर हैं.वहांही चक्रके सदृश चक्रवन्त महाबलयुक्त॥३४॥सहस्रकूट पर्वतको भगवान्ने निर्मित किया शंखकेसमान श्वेत राजतपर्वतको बनाया॥३५॥

शुशुभे जातरूपश्च श्रीमद्भिश्चित्रवेदिकैः॥ षष्टिं गिरिसहस्राणि तत्रासौ संन्यवेशयत्॥३०॥मेरुप्रतिमरूपाणि वपुषा प्रभया सह॥ सहस्रजलधारं च पर्वतं मेरुसन्निभम्॥३१॥पुण्यतीर्थगुणोपेतं भगवान्त्संन्यवेशयत्॥ षष्टियोजनविस्तारं तावदेव समुच्छ्रितम् ॥३२॥ आत्मरूपोपमं तत्र वाराहं नाम नामतः॥ निवेषयामास गिरिं दिव्यं वैडूर्यपर्वतम्॥ ३३ ॥ राजताः काञ्चनाश्चैव यत्र दिव्याः शिलोच्चयाः॥ तत्रैव चक्रसदृशं चक्रवन्तं महाबलम्॥ ३४ ॥ सहस्रकूटं विपुलं भगवान्त्संन्यवेशयत्॥ शंखप्रतिरूपं च राजतं पर्वतोत्तमम्॥ ३५ ॥ सितद्रुमसमाकीर्णं शंखं नाम न्यवेशयत्॥ सुवर्णं रत्नसंभूतं पारिजातं महाद्रुमम्॥ ३६ ॥ महतः पर्वत-स्याग्रे पुष्पहासं न्यवेशयत्॥ शुभामतिरसां चैव घृतधारामिति श्रुतिः॥ ३७ ॥ वराहः सरितं पुण्यां प्रतीच्यामकरोत्प्रभुः॥ प्रतीच्यां संविधिं कृत्वा पर्वतान्काञ्चनोज्ज्वलान्॥३८॥ गुणोतरानुत्तरस्यां संन्यवेशयदग्रतः॥ ततः सौम्यगिरिं सौम्यमन्तरि-क्षप्रमाणतः॥ ३९ ॥ रुक्मधातुप्रतिप्रच्छन्नमकरोद्भास्करोपमम्॥ स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते॥ ४०॥

वह श्वेतवृक्षोंसे युक्त है इस कारण उसका नाम शंखही रक्खा.उसमें सुवर्णरत्नसे युक्त पारिजात महावृक्ष है॥३६॥ उस पर्वतके आगे बडा पुष्प-समूह स्थित रहता है वहां शुभ और रसीली घृतधारा बहती है यह श्रुति है॥ ३७ ॥ पश्चिम दिशामें प्रभुने पवित्र वाराहनदी निर्माण की है. इस प्रकार प्रतीचीमें प्रभुने कांचनके उज्ज्वल पर्वत निर्माण किये॥३८॥ फिर गुणोंमें श्रेष्ठ उत्तर दिशाका विभाग किया.इसके उपरान्त सौम्यपर्वतको निर्माण किया॥ ३९ ॥ वह सुवर्णकी धातुओंसे प्रतिच्छिन्न सूर्यके समान प्रकाशित है उसकी प्रभासे वह देश भी प्रकाशित होता है. जहां सूर्यका

प्रकाश नहीं होता ॥ ४० ॥ उसकी अधिक लक्ष्मी तपाये हुए सूर्यके समान शोभित थी. वह सूक्ष्म लक्षणसे तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥४१॥ सहस्र शिखर और अनेक प्रकारकेतीर्थोंसे युक्त अनेक रत्नोंसे सम्पन्न उस पर्वतको निर्माण किया ॥ ४२ ॥ वह मनोहरगुणोंसे युक्त उत्तम मन्दराचल बडे पुष्पगंधयुक्त गंधमादन पर्वतको ॥४३॥ बनाया उसके सुवर्णके शृंग पर जम्बू जाम्बूनद निर्मित अनंत और अद्भुत दर्शनवाली किया ॥ ४४ ॥ शिखर पर्वत और उत्तर शृंगसे युक्त पुष्कर पर्वत बनाया शुभ्र पांडुवर्ण मेघके समान कैलासकी ॥ ४५ ॥ तथा दिव्यधातुसे युक्त

तस्य लक्ष्म्याधिकं भाति तपसा रविणा यथा ॥ सूक्ष्मलक्षणविज्ञेयस्तपतीव दिवाकरः ॥ ४१ ॥ सहस्रशिखरं चैव नानातीर्थसमाकुलम् ॥ चकार रत्नसंकीर्णं भूयोऽस्तं नाम पर्वतम् ॥ ४२ ॥ मनोहरगुणोपेतं मन्दरं चाचलोत्तमम् ॥ उद्दामपुष्पगन्धं च पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ४३ ॥ चकार तस्य शृङ्गेषु सुवर्णरससंभवम् ॥ जम्बूं जाम्बूनदमयीमनन्ताद्भुतदर्शनाम् ॥ ४४ ॥ गिरिं च शिखरं चैव तथा पुष्करपर्वतम् ॥ शुभ्रं पाण्डुरमेघाभं कैलासं च नगोत्तमम्॥४५॥हिमवन्तं च शैलेन्द्रं दिव्यधातुविभूषितम्॥ निवेशयामास हरिर्वाराहीं तनुमास्थितः ॥४६॥ नदी सर्वगुणोपेतामुत्तरस्यां दिशि प्रभुः ॥ मधुधारां स कृतवान् दिव्यामृषिशताकुलाम् ॥ ४७ ॥ सर्वे चैव क्षितिधराः सपक्षाः कामरूपिणः ॥ तदा कृता भगवता विचित्राः परमेष्ठिना ॥ ४८ ॥ स कृत्वा प्रविभागं तु पृथिव्या लोकभावनः ॥ देवासुराणामुत्पत्तौ कृतवान्बुद्धिमक्षयाम् ॥४९॥ सर्वासु दिक्षु क्षतजोपमाक्षश्चकार शैलान्विविधाभिधानान्॥हिताय लोकस्य स लोकनाथःपुण्याश्च नद्यःसलिलोपगूढाः॥५०॥इति श्री० खि० ह० भवि० पञ्चत्रिंशोऽध्यायः३५

पर्वतश्रेष्ठ हिमालयकी रचना हरिने वाराहशरीरका आश्रय कर की ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त प्रभुने उत्तरदिशामें नदियें स्थापन कीं जिनके जल महामिष्ट हैं और सैकडों ऋषि जिनके किनारेपर वास करते हैं ॥४७॥ सब पर्वत कामरूपधारी और पंखोंसे युक्त थे. वह परमेष्ठी विधाताने सब कुछ किया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार लोकभावनने पृथ्वीका विभाग कर देवता असुरोंकी सृष्टि अक्षयबुद्धियुक्त की ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओंमें पर्वतोंको करके उन लोकनाथने पवित्र नदियें निर्माण कीं॥५०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

वैशंपायन बोले; तब वह देव जगत् रचना करनेके निमित्त विचार करने लगे तब विचार करते हुए उनके मुखसे पुरुष निकला ॥ १ ॥ तब वह पुरुष देवके सामने स्थित हो बोला; देव ! मैं क्या करूं उससे देवदेव हँसते हुए बोले ॥ २ ॥ तुम अपनेको विभाग करो यह कह प्रभु अन्तर्धान हो गये; जिस समय वह देव अन्तर्धान हो गये ॥३॥ उनके अन्तर्हित होनेसे प्रभुकी गति नहीं जानी जाती है तब भगवान्की कही वाणीको वह प्रभु विचार कर ॥४॥ वह हिरण्यगर्भ भगवान् जो वेदमें विख्यात हैं. यही प्रथम सबके अधिपति प्रजापति हुए हैं ॥ ५ ॥ उसी समयसे उनको यज्ञभाग

वैशम्पायन उवाच ॥ जगत्स्रष्टुमना देवश्चिन्तयामास पूर्वजः ॥ तस्य चिन्तयतो वक्त्रान्निःसृतः पुरुषः किल ॥ १ ॥ ततः स पुरुषो देवं किं करोमीत्युपस्थितः ॥ प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ २ ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वा गतोऽन्तर्धानमीश्वरः अन्तर्हितस्य देवस्य सशरीरस्य भारत ॥३॥ प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिस्तस्य न विद्यते ॥ ततस्तेनेरितां वाणीं सोऽन्वचिन्तयत प्रभुः ॥४॥ हिरण्यगर्भो भगवान्य एष च्छन्दसि श्रुतः ॥ एष प्रजापतिः पूर्वमभवद्भुवनाधिपः ॥ ५ ॥ तदाप्रभृति तस्याद्यो यज्ञभागो विधीयते ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ विभजा त्मानमित्युक्तस्तेनास्मि सुमहात्मना ॥६॥ कथमात्मा विभज्यःस्यात्संशयो ह्यत्र मे महान् ॥ इति चिन्तयतस्तस्य ओमित्येवोत्थितःस्वरः ॥७॥ स भूमावन्तरिक्षे च नाके च कृतवांस्ततः ॥ तं चैवाभ्यसतस्तस्य मनःसारमयःपुनः ॥८॥ हृदयाद्देवदेवस्य वषट्कारःसमुत्थितः ॥ भूम्यन्तरिक्षनाकानां भूर्भुवःसुवरात्मिकाः ॥९॥ महास्मृतिमयाःपुण्या महाव्याहृतयोऽभवन्॥छन्दसां प्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षराभवत् ॥ तत्पदं संस्मरन् दिव्यां सावित्रीमकरोत्प्रभुः॥१०॥

विधान किया जाता है प्रजापति बोले; जब कि उन महात्माके कहनेसे आत्माका विभाग करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ तब मुझको संदेह हुआ कि आत्माका विभाग किस प्रकार हो सकता है यह विचार करते मैं ॐ यह स्वर प्रगट हुआ ॥७॥ वह पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्गमें व्याप्त हो गया. उस सारमय शब्दको अभ्यास करते हुए ॥८॥ देवदेवके हृदयसे वषट्कार प्रादुर्भूत हुआ वह भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्गमें भूर्भुवः स्वः इन तीन रूपवाला हुआ ॥ ९ ॥ वह महास्मृतिमय पुण्यरूप महाव्याहृतियें हुई. उसीसे छंदोंमें श्रेष्ठ चौवीस अक्षरात्मक देवी प्रगट हुई.उस दिव्य पदको स्मरण

करते हुए प्रभुने सावित्री की ॥ १० ॥ फिर प्रभुने ऋक् यजु साम अथर्व इन चार वेदोंको ब्रह्मयुक्त कर्मसे प्रगट किया॥११॥फिर उन्हींके मनसे सनक सनातन और सनंदन ॥ १२ ॥ सनत्कुमार और सनातनको उत्पन्न किया. यह छः पूर्वमहर्षि मनसेही उत्पन्न किये हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्मा और कपिलपर्यन्त यह छः योगी हैं. यह योगतंत्रोंमें यति विख्यात हैं. जिनको द्विजाति स्तुति करते हैं ॥१४॥ फिर मरीचि अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु अंगिरा प्रजापति मनु ॥१५॥ सब भूतोंके पितर देवता असुर राक्षस और महर्षि इन आठोंको शंभुने निर्माण किया ॥१६॥ यह सह-

ऋक्सामाथर्वयजुषश्चतुरो भगवान्प्रभुः ॥ चकारनिखिलान्वेदान्ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा ॥११॥ ततस्तस्यैव मनसः सनः सनक एव च ॥ सनातनश्च भगवान्वरदश्च सनन्दनः ॥१२॥ सनत्कुमारश्च विभुस्तत्र जज्ञे सनातनः ॥ मानसाश्चैव पूर्वाद्या इत्येते षण्महर्षयः॥१३॥ ब्रह्माणं कपिलं चैव षडेतांश्चैव योगिनः ॥ यतयो योगतन्त्रेषु यान्स्तुवन्ति द्विजातयः ॥१४॥ ततो मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ भृगुमङ्गिरसं चैव मनुं चैवं प्रजापतिम् ॥ १५ ॥ पितॄंश्च सर्वभूतानां देवतासुररक्षसाम् ॥ महर्षीनसृजच्छंभुरष्टावेतांश्च मानसान् ॥ १६ ॥ एते युगसहस्रान्ते याश्चैषामभवत्प्रजाः ॥ कल्पे निःशेषभुक्ते तु ततो गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥ १७ ॥ भूयो वर्षसहस्रान्ते उत्पत्तिस्तु विधीयते ॥ एतेषामेव देवानां प्रजाकर्तृषु वै तदा ॥ १८ ॥ किं तु कर्मविशेषेण देवतानां युगे युगे ॥ नामजन्मविशेषाश्च तथैव युगपर्यये ॥ १९ ॥ अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्ष उत्पन्न भगवानृषिः ॥ तस्यैव तु पुनर्भार्या वामांगुष्ठादजायत ॥ २० ॥ तस्य तत्राभवन्कन्या विश्रुता लोकमातरः ॥ याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः प्रजाभिर्मनुजाधिप ॥ २१ ॥

सयुगके अन्तमें प्रजा पालन कर जब कल्प पूर्ण हो जाता है तब स्वयं निवृत्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥१७॥ फिर सहस्र वर्षके उपरान्त इनकी उत्पत्ति होती है इन देवताओंको जो प्रजाके करनेवाले हैं ॥१८॥ उत्पत्ति कर्मविशेषसे युगयुगमें हुआ करती है केवल नामजन्ममें विशेषता होती है ॥ १९ ॥ यही युगसमाप्तिमें होता है. उनके दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष और भगवानृषि उत्पन्न हुए और वाम अंगुष्ठसे उनकी भार्या हुई ॥२०॥ उसकी कन्या विख्यात और लोककी मातायें हुई. हे राजन्! जिनकी प्रजासे त्रिलोकी व्याप्त हो रही है ॥ २१ ॥

अदिति दिति काल अनायु सिंहिका मुनि प्राधा क्रोधा सुरभी विनता सुरसा ॥ २२ ॥ दनु और कद्रु यह प्रजावृद्धिके अर्थ दक्षने कश्यपजीको प्रदान कीं ॥ २३ ॥ अरुंधती वसु यामी लम्बा भानु मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता साध्या विश्वा ॥२४॥ यह दश कन्या प्रजापति दक्षने मनुको दीं. तब यह सम्पूर्ण शरीरसे उत्तम कमललोचनी॥२५॥पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाली दिव्यगंधसे युक्त मनोरम कीर्ति लक्ष्मी धृति पुष्टि बुद्धि मेधा क्षमा॥२६॥ मति लज्जा वसु यह दक्षने धर्मके वास्ते दी और अत्रिकुमार चन्द्रमा॥२७॥सहस्रांशु अंधकारनाशकको उस दक्षने अपनी कन्या प्रदान कीं ॥ २८ ॥

अदितिं च दितिं कालमनायुं सिंहिकां मुनिम् ॥ प्राधां क्रोधां च सुरभिं विनतां सुरसां तथा ॥२२॥ दनुं कद्रुं च दुहितॄः प्रददौ कश्यपाय तु ॥ प्रजां संचिन्त्य मनसा गतिज्ञेनान्तरात्मना ॥२३॥ अरुन्धतीं वसुं यामीं लम्बां भानुं मरुत्वतीम् ॥ संकल्पां च मुहूर्त्तां च साध्यां विश्वां च भारत ॥ २४ ॥ मनवे ब्रह्मपुत्राय कन्या दक्षो दशौ दश ॥ ततः सर्वानवद्याङ्ग्यः कन्याः कमल-लोचनाः ॥२५॥ पूर्णचन्द्रानना दिव्या गन्धवत्यो मनोरमाः ॥ कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं बुद्धिं मेधां क्षमां तथा ॥२६॥ मतिं लज्जां वसुं चैव दक्षो धर्माय वै ददौ ॥ आत्रेयस्तु ततो भूतस्तस्य तोयात्मकः शशी ॥२७॥ पुत्रो ग्रहाणामधिपः सहस्रांशुस्तमिस्रहा ॥ तस्मै नक्षत्रयोगिन्यः सप्तविंशतिरुत्तमाः ॥२८॥ रोहिणीप्रमुखाः कन्या दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥ एतासां पुत्रपौत्रं च प्रोच्यमानं मया शृणु ॥ २९ ॥ कश्यपस्य मनोश्चैव धर्मस्य शशिनस्तथा ॥ अर्यमा वरुणो मित्रः पूषा धाता पुरंदरः ॥ ३० ॥ त्वष्टा भगोंऽशुः सविता पर्जन्यश्चेति विश्रुताः ॥ अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपाल्लोकभावनाः ॥३१॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥ द्वावप्यमितविक्रान्तौ तपसा कश्यपोपमौ ॥ ३२ ॥

यह रोहिणी आदि सत्ताईस कन्या उनको प्राप्त हुईं. इनके पुत्रपुत्रोंका विस्तार मुझसे सुनो ॥ २९ ॥ कश्यप मनु धर्म और चन्द्रमाकी सन्तान मुझसे सुनो. अर्यमा वरुण मित्र पूषा धाता पुरन्दर ॥ ३०॥ त्वष्टा भग अंशु सविता पर्जन्य यह विख्यात सूर्य कश्यपसे अदितिमें उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ और दितिमें कश्यपसे दो पुत्र हुए ऐसा हमने सुना है. हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष यह दोनों बडे बली तपसे कश्यपके समान थे ॥ ३२ ॥

हिरण्यकशिपुके महाबली पांच पुत्र हुए.प्रह्लाद संह्लाद अनुह्लाद॥३३॥ह्लाद औरपांचवां अनुह्लाद उनमें प्रह्लाद पूर्वज और अनुह्लद छोटा था॥३४॥ प्रह्लादके महाबली तीन पुत्र हुए विरोचन जंभ और सुजंभ॥३५॥विरोचनका पुत्र बलि और बलिके बाण और बाणका शत्रुनाशी इन्द्रदमन हुआ ॥३६॥ दनुके पुत्र इस वंशमें विख्यात बहुत हुए उसमें पहला विप्रचित्ति उनका राजा हुआ॥३७॥ क्रोधाके गण हुआ और उसके पुत्र पौत्र अनन्त हुए.क्रोधाके क्रोधवशा क्रूरकर्मा सन्तान हुई॥३८॥सिंहिकाके चन्द्रसूर्यका दुःख देनेवाला राहु हुआ. वह चन्द्रमा और सूर्यका ग्रास करता है॥३९॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्चैव सुमहाबलाः ॥ प्रह्लादश्चैव संह्लादस्तथानुह्लाद एव च ॥३३॥ ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पञ्चमोऽनुह्लदस्था ॥ प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथा परः ॥ ३४ ॥ प्रह्लादस्य त्रयः पुत्रा विक्रान्ताः सुमहाबलाः ॥ विरोचनश्च जम्भश्च सुजम्भश्चेति विश्रुताः ॥ ३५ ॥ बलिर्विरोचनसुतो बाण एको बलेः सुतः ॥ बाणस्य चेन्द्रदमनः पुत्रः परपुरंजयः ॥ ३६ ॥ दनोः पुत्रास्तु बहवो वंशे ख्याता महासुराः ॥ विप्रचित्तिः प्रथमजस्तेषां राजा बभूव ह ॥ ३७ ॥ गणः प्रजज्ञे क्रोधायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ रौद्राः क्रोधवशा नाम क्रूरकर्माण एव च ॥ ३८ ॥ सिंहिका सुषुवे राहुं ग्रहचन्द्रार्कमर्दनम् ॥ ग्रस्तारं चैव चन्द्रस्य सूर्यस्य च विनाश-नम् ॥ ३९ ॥ कालायाः कालकल्पतु गणः परमदारुणः ॥ अभवद्दीप्तसूर्याक्षो नीलमेघसमप्रभः ॥ ४० ॥ सहस्रशीर्षा शेषश्च वासुकिस्तक्षकस्तथा ॥ बहूनां कद्रुपुत्राणामेते प्राधान्यमागताः ॥ ४१ ॥ धर्मात्मानो वेदविदः सदा प्राणिहिते रताः ॥ लोक-तन्त्रधराश्चैव वरदाः कामरूपिणः ॥ ४२ ॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥ अरुणिश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः ॥ इमाश्चाप्सरसः पुण्या विविधाः पुण्यलक्षणाः ॥ ४३ ॥

कालको कालके समान परम दारुण गण हुआ. यह सूर्याक्ष नीलमेघके समान महाकान्तिमान् हुआ ॥४०॥ सहस्र शिरवाले शेष वासुकि और तक्षक यह बहुतसे कद्रुपुत्रोंमें प्रधानताको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ धर्मात्मा वेदके जाननेवाले सदा प्राणी हितमें निरत लोकतंत्रधारी वरदाता कामरूपी ॥ ४२ ॥ तार्क्ष्य अरिष्टनेमि ,महाबली गरुड अरुणि आरुणि यह विनताके पुत्र हुए,यह पवित्र अप्सरा अनेक पुण्य रूपिणी हैं ॥ ४३ ॥

यह आठ महाभागा देवर्षिपूजित प्राधाके उत्पन्न हुई. निन्दारहित अनूना अरुणप्रिया अनुगा सुभगा भासी यह स्त्री प्रधाके उत्पन्न हुई ॥ ४४ ॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा सुरूपा लक्षणा क्षेमा मनोरमा रंभा ॥ ४५ ॥ असिता सुबाहु सुवृता सुमुखी सुप्रिया सुगन्धा सुरसा प्रमाथिनी ॥ ४६ ॥ काश्या शारद्वती यह अप्सरा मुनिकी सन्तान कहलाई, विश्वावसु भरण्य यह विख्यात गन्धर्व ॥ ४७ ॥ मेनका सहजन्या पर्णिका पुंजिकस्थला घृतस्थला घृताची विश्वाची उर्वशी ॥४८॥ अनुम्लोचा प्रम्लोचा यह दश विख्यात अप्सरा हैं. मनोवती वैदिकी अप्सरा॥४९॥

सुषुवेऽष्टौ महाभागा प्राधा देवर्षिपूजिता ॥ अनवद्यामनूकां च अनूनामरुणप्रियाम् ॥ अनुगां सुभगां भासीं स्त्रियः प्राधा व्यजायत ॥४४॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा ॥ सुरूपा लक्ष्णा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा॥४५॥असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा ॥ सुप्रिया च सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी ॥ ४६ ॥ काश्या शारद्वती चैव मौनेयाप्सरसः स्मृताः ॥ विश्वावसुर्भरण्यश्च गन्धर्वाश्चैव विश्रुताः ॥४७॥ मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ घृतस्थलाघृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा ॥ ४८ ॥ अनुम्लोचेत्यभिख्याता प्रम्लोचेति च ता दश ॥ मनोवती चापि तथा वैदिक्योऽप्सरसस्तथा ॥ ४९ ॥ प्रजापतेस्तु संकल्पात्संभूता भुवनप्रियाः अमृतं ब्राह्मणा गावो रुद्राश्चेति चतुष्टयम् ॥५०॥ सुरभ्यपत्यमित्येतत्पुराणे निश्चयो महान्॥एतद्वै कश्यपापत्यं मनोर्वंशं निबोध मे ॥५१॥ संक्षेपेणैव तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान्व्यजायत् ॥ ५२ ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ॥ भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताश्च मुहूर्तजाः ॥५३॥

यह भुवनप्रिय अप्सरा प्रजापतिके संकल्पसे उत्पन्न हुई हैं. अमृत ब्राह्मण गौ रुद्र यह चारों ॥ ५० ॥ सुरभीसे उत्पन्न हुए हैं.यह कश्यपका वंश है. अब मनुवंश सुनो ॥ ५१ ॥ हे पापरहित ! तुम्हारे आगे संक्षेपसे कीर्तन करता हूं. विश्वाके विश्वेदेवासाध्याके साध्य ॥ ५२ ॥ मरुत्वतीके मरुत वसुके वसु भानुके भानु मुहूर्तके मुहूर्त उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥

लम्बाके घोष जामीके नागवीथी मरुत्वतीके पृथ्वीविषयक सब पदार्थ हुए ॥ ५४ ॥हे राजन्! संकल्पाके संकल्प हुए और धर्मसे लक्ष्मीमें जगत्प्रिय कामदेव हुआ ॥५५॥यश, हर्ष यह दो पुत्र कामसे रतिमें हुए सोमका पुत्र रोहिणीमें महाकान्तिमान् वर्चा हुआ॥५६॥जिससे उदय होकर चन्द्रमा महातेजस्वी प्रतीत होता है और पुरूरवासे उर्वशीका संयोग हुआ ॥५७॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंके परस्पर सहस्रों पुत्र उत्पन्न हुए हैं.इतनाही जगत्का मूल है जिसमें तीनों लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् प्रजापतिने गुणोंसे मनुष्योंको देख सबको योगद्वारा आधिपत्यमें नियुक्त किया है॥५९॥

लम्बा घोषं विजज्ञेऽथ नागवीथीं च जामिजा ॥ पृथिव्यां विषमं सर्वं मरुत्वत्यामजायत ॥५४॥ संकलपायास्तु कौरव्य जज्ञे संकल्प एव च ॥ धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु कामो जज्ञे जगत्प्रभुः ॥५५॥ यशो हर्षश्च कामस्य रत्यां पुत्रद्वयं स्मृतम् ॥ सोमस्य पुत्रो रोहिण्यां जज्ञे वर्चा महाप्रभः ॥५६॥ उदयन्नेव भगवान्वर्चस्वी येन जायते ॥ पुरूरवाश्च भगवानुर्वशी येन युज्यते ॥५७॥ एवं पुत्रसहस्राणि स्त्रीणां चैव परस्परम्॥ एतावत्त जगन्मूलं यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५८ ॥ प्रजापतिस्तु भगवान् गुणतः प्रेक्ष्य देहिनः ॥ आधिपत्येषु युक्तेषु नियोजयति योगवित् ॥ ५९ ॥ दिशो दश क्षितिमृषयोऽर्णवान्नगान्द्रुमौषधीरुरगसरित्सुरासुरान् ॥ प्रजापतिर्भुवनसृजो नभोभुवः क्रियामखानथ कृतवान् गिरींश्च सः ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत ॥ चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम् ॥ १ ॥ स वज्री कवची विष्णुरदित्यामभिजज्ञिवान् ॥ स्मृतेः सहायो द्युतिमान्यथा सोऽध्वर्युभिः स्तुतः ॥ २ ॥

दशदिशा पृथ्वी ऋषि समुद्र वृक्ष औषधी सर्प नदी देवता दैत्य लोकोंके रचनेवाले प्रजापति आकाश पाताल क्रिया यज्ञ पर्वत यह सब भगवान्ने किये हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन्! तीनों लोक और सब देवताओंके आधिपत्यमें सूर्यके समान तेजस्वी इन्द्रको अधिष्ठित किया ॥ १ ॥ वज्रकवच धारण किये विष्णुरूप अदितिमें जन्मे वह कान्तिमान् स्मृतिकी सहायताको प्राप्त हो अध्वर्युजनोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

उत्पन्न होते ही भगवान् इन्द्र कुशा धारण किये ब्राह्मणोंसे धारण किये गये उसी दिनसे देवेशका नाम कौशिक हुआ ॥ ३ ॥ सहस्राक्ष इन्द्रको देवराजत्वमें अभिषेक कर ब्रह्मा क्रमसे सब राज्य विभाग करने लगे ॥ ४ ॥ यज्ञ तप ग्रह नक्षत्र औषधी ब्राह्मणोंका राजा चन्द्रमाको किया ॥ ५ ॥ दक्षको प्रजापतियोंका वरुणको जलोंका पितरोंका सर्वनिधन अग्निको जिसको काल वैश्वानर प्रभु कहते हैं ॥ ६ ॥ गंध और सब भूत शरीरधारियोंका शब्द आकाश और बलका अधिपति वायुको किया ॥ ७ ॥ सब भूत पिशाच मृत्यु गौ उत्पात ग्रह रोग व्याधी ॥ ८ ॥

जातमात्रोऽथ भगवान्त्स कुशैर्ब्राह्मणैर्धृतः ॥ तदाप्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥ ३ ॥ अभिषिच्याधिराज्ये तु सहस्राक्षं पुरंदरम् ॥ ब्रह्मा क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥ यज्ञानां तपसां चैव ग्रहनक्षत्रयोस्तथा ॥ द्विजानामोषधीनां तु सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥५॥ दक्षं प्रजापतीनां तु अम्भसां वरुणं पतिम् ॥ पितॄणां सर्वनिधनं कालं वैश्वानरं प्रभुम् ॥६॥ गन्धानां चैव सर्वेषां भूतानां च शरीरिणाम् ॥ शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तदा कृतः ॥७॥ सर्वभूतपिशाचानां मृत्यूनां च गवां तथा ॥ उत्पातग्रहरोगाणां व्याधीनां तु तथैव च ॥ ८ ॥ व्रतानां चैव सर्वेषां महादेवः कृतः प्रभुः ॥ यक्षाणां राक्षसानां च गुह्यकानां धनस्य च ॥९॥ रत्नानां चैव सर्वेषां कृतो वैश्रवणः प्रभुः ॥ सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषो नागानामथ वासुकिः॥१०॥सरीसृपाणां सर्वेषां प्रभुर्वै तक्षकः कृतः ॥ सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ॥ आदित्यानामवरजः पर्जन्योऽधिपतिः कृतः ॥११॥ गन्धर्वाणामाधिपतिस्तथा चित्ररथः कृतः ॥ सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवः प्रभुः कृतः ॥ १२ ॥

॥ ७७ ॥

और सम्पूर्ण व्रतोंका अधिपति महादेवको किया. यक्ष राक्षस गुह्यक धन ॥ ९ ॥ और सम्पूर्ण रत्नोंका पति कुबेरको किया. सब दंष्ट्रावालोंका अधिपति शेष, नागोंका वासुकी ॥ १० ॥ सब सरीसृप रिंगनेवाले जीवोंका पति तक्षक, सागर नदी मेघ वर्षाका पति, आदित्योंका छोटा पर्जन्य किया ॥ ११ ॥ गन्धर्वोंका अधिपति चित्ररथ सम्पूर्ण अप्सराओंका अधिपति कामदेव किया ॥ १२ ॥

सब चतुष्पद और वाहनोंका स्वामी महेश्वर ध्वज श्रीमान् गोवृष किया॥ १३॥ दैत्योंका अधिपति महातेजस्वी हिरण्याक्ष किया. हिरण्यकशिपुको युवराज्यमें अभिषिक्त किया॥ १४॥ कालकेयगणोंका अधिपति काल किया. अनायुषाके पुत्रोंका अधिपति वृत्रको किया ॥ १५॥ सिंहिकापुत्र महाअसुर राहु सम्पूर्ण उत्पात और अशुभोंका राजा किया गया॥ १६॥ सम्पूर्ण ऋतु मुहूर्त पक्ष महीना युग तिथि पर्व॥ १७॥ कला काष्ठा मुहूर्त गति अयन योग गणितका राजा संवत्सरको किया॥ १८॥ पक्षी और चक्षुका स्वामी महाबल भोगियोंका अधिपति गरुड॥ १९॥ जपापुष्पके समान कान्तिमान् गरुडके

चतुष्पदानां सर्वेषां वाहनानां च सर्वशः ॥ महेश्वरध्वजः श्रीमान् गोवृषोऽधिपतिः कृतः॥ १३॥ दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः ॥ १४॥ गणानां कालकेयानां महाकालः प्रभुः कृतः ॥ अनायुषायाः पुत्राणां वृत्रो राजा तदा कृतः ॥ १५॥ सिंहिकातनयो यस्तु राहुर्नाम महासुरः ॥ उत्पातानामनेकानामशुभानां प्रभुः कृतः ॥ १६ ॥ ऋतूनामथ सर्वेषां युगानां चैवभारत ॥ पक्षाणां चैव मासनां तथैव तिथिपर्वणाम् ॥ १७ ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तानां गतेरयनयोस्ततः ॥ कृतः संवत्सरो राजा योगस्य गणितस्य च ॥ १८॥ पक्षिणां चैव सर्वेषां चक्षुषां च महाबलः ॥ सुपर्णो भोगिनां चैव गरुडोऽधिपतिः कृतः ॥ १९ ॥ अरुणो गरुडभ्राता जपापुष्पचयप्रभुः ॥ योगानां चैव सर्वेषां साध्यानामधिपः कृतः ॥ २० ॥ पुत्रोऽस्य विरथो नाम कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ राजा प्राच्यां दिशि तथा वासवेनाधिपः कृतः ॥ २१॥ आदित्यस्य विभोः पुत्रो धर्मराजो महायशाः ॥ दक्षिणस्यां दिशि यमो महेन्द्रेणैव सत्कृतः ॥ २२॥ कश्यपस्यौरसः पुत्रः सलिलान्तर्गतः सदा ॥ अम्बुराज इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः ॥ २३ ॥ पुलस्त्यपुत्रो द्युतिमान्महेन्द्रप्रतिमः प्रभुः ॥ एकाक्षः पिङ्गलो नाम सौम्यायां दिशि पार्थिवः ॥ २४ ॥

भाई अरुण सब योग और साध्योंके अधिपति किये गये ॥ २० ॥ कश्यप प्रजापतिका पुत्र विरथ उसको इन्द्रने पूर्व दिशाका अधिपति किया ॥ २१॥ आदित्यका पुत्र महायशस्वी विभु यम दक्षिण दिशाका अधिपति इन्द्रने किया ॥ २२ ॥ कश्यपका औरस पुत्र जलमें प्राप्त हुआ. अम्बुराज नाम पश्चिम दिशाका अधिपति किया गया॥ २३ ॥ पुलस्त्यका पुत्र द्युतिमान् महेन्द्रके समान कान्तिमान् एकाक्ष पिंगल नाम कुबेर उत्तर दिशाके

अधिपति किये गये ॥२४॥ लोक उत्पन्नकर्ता स्वयम्भूने इस प्रकार राज्योंका विभाग कर दिव्यलोक पृथक् पृथक् देवताओंको दिये॥२५॥किसीको सूर्यके समान किसीको अग्निके समान किसीको बिजलीके समान किसीको चन्द्रके समान निर्मल किया॥२६॥अनेक वर्णोंवाले यथाकाम गमन करनेवाले सैंकडों जन उनमें रहते हैं. यह पुण्यात्माओंके लोक पापियोंको दुर्लभ हैं ॥२७॥ यह ग्रह और तारागणोंके समान प्रकाशित होते हैं. यह पुण्यकर्म करनेवाले महात्माओंके लोक हैं ॥ २८ ॥ जो पवित्र यज्ञ बडी दक्षिणाओंसे समाप्त करते हैं जो अपनी स्त्रियोंमें निरत शान्त क्षान्त सीधे

एवं विभज्य राज्यानि स्वयंभूर्लोकभावनः ॥ लोकांश्च त्रिदिवे दिव्यानददत्स पृथक् पृथक् ॥ २५ ॥ कस्यचित्सूर्यसंकाशान्कस्यचिद्वह्निसन्निभान् ॥ कस्यचित्सुष्ठुविद्योतान्कस्यचिच्चन्द्रनिर्मलान् ॥ २६ ॥ नानावर्णान्कामगमाननेकशतशो जनान् ॥ स तान्सुकृतिनां लोकान्पापदुष्कृतिदुर्लभान् ॥ २७ ॥ येषां भासो विभान्त्यग्रे सौम्यास्तारागणा इव ॥ एते सुकृतिनां लोका ये जाताः पुण्यकर्मिणः ॥२८॥ ये यजन्ति मखैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ स्वदारनिरताः क्षान्ता ऋजवः सत्यवादितः ॥२९॥ दीनानुग्रहक कर्तारो ब्रह्मण्या लोभवर्जिताः ॥ संत्यक्तरजसः सन्तो यान्ति तत्र तपोमलाः ॥३०॥ एवं नियुज्य तनयान्स्वयं लोकपितामहः ॥ पुष्करं ब्रह्मसदनमारुरोह प्रजापतिः ॥ ३१ ॥ सर्वे स्वयंभुदत्तेषु पालनेषु दिवौकसः ॥ रेमिरे स्वेषु लोकेषु महेन्द्रेणाभिपालिताः ॥ ३२ ॥ स्वयंभुवा शक्रपुरःसरा सुराः कृता यथार्हं प्रतिपालनेषु ते ॥ यशो दिवं च प्रतिपेदिरे शुभं मुदं च जग्मुर्मखभागभोजिनः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सत्यवादी हैं ॥२९॥ दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले ब्रह्मण्य लोभरहित रजोगुण त्यागे हुए हैं वह तपसे निर्मल होकर वहां जाते हैं॥३०॥इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा अपने पुत्रोंको नियुक्त कर अपने पुष्कर नाम ब्रह्मस्थानमें प्राप्त हुए॥३१॥वे देवता ब्रह्माके दिये स्थानोंमें महेन्द्रसे पालित हो रमण करने लगे॥३२॥ब्रह्माने इन्द्रको आदि ले सम्पूर्ण देवताओंको जगत्‌की पालनामें तत्पर किया इससे उनको परम यशकी प्राप्ति हुई और यज्ञभाग पानेवाले आनंदसे निज निज स्थानको गये ॥३३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैशंपायन बोले; एक समय पृथ्वीको धारण करनेवाले वे पर्वत परमेश्वरकी मायासे पृथ्वीको त्यागकर उड गये ॥ १ ॥ उस समय हिरण्याक्षसे पालित असुरोंके स्थानको प्राप्त हो वे पर्वत प्रतीची दिशामें प्राप्त हो गजके समान ह्रदमें स्नान करते हुए ॥ २ ॥ और उन पर्वतोंने असुरोंसे स्वर्गका ऐश्वर्य वर्णन किया. यह सुनकर असुरोंने स्वर्गमें जानेका उद्योग किया ॥ ३ ॥ वे महाक्रूर बुद्धि कर पृथ्वीहरणमें रत हुए और उन भयंकर पराक्रमवालोंने सम्पूर्ण आयुध ग्रहण किये ॥४॥ चक्र अशनि खड्ग भुशुण्डी धनुष प्रास पाश शक्ति मुसल गदा ॥ ५ ॥ ग्रहण कर कवच धारण कर सज्जीभूत हुए कोई

वैशम्पायन उवाच ॥ कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः॥प्रस्थिता धरणीं त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया ॥ १ ॥ तदासुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालितम् ॥ दिशं प्रतीचीमागम्य ह्रदेऽमज्जन्यथा गजाः ॥२॥ तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रयम् ॥ तच्छ्रुत्वाथासुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥३॥ क्रूरां च बुद्धिमतुलां पृथिवीहरणे रताः ॥ आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः ॥४॥ चक्राशनीस्तथा खड्गान्भुशुण्डीश्च धनूंषि च ॥ प्रासान्पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदास्तथा॥५॥केचित्कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथा परे ॥ केचिदश्वरथान्युक्ता अपरेऽश्वान्महासुराः॥६॥ केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान्महिषान् गर्दभानपि ॥ स्वबाहुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥७॥ परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः॥इतश्चेतश्च निश्चेरुर्हृष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥८॥ ततो देवगणाः पश्चात्पुरंदरपुरोगमाः ॥ दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥९॥ महता चतुरङ्गेण बलेन सुसमाहिताः॥ बद्धगोधांगुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणाः॥१०॥उग्रायुधधरा देवाः स्वष्वनीकेष्ववस्थिताः॥ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः॥११॥

हाथीपर चढे कोई छोटे रथोंपर स्थित हुए कोई अश्वोंपर स्थित हुए॥ ६ ॥ कोई ऊंट खड्ग महिष गर्दभोंपर स्थित हुए कोई अपने बाहुबलके आश्रय हो पैदल स्थित हुए ॥ ७ ॥ सब कोई हिरण्याक्षको घेर युद्धकी इच्छासे शिरके जुडे बांधे हुए इधर उधर विचरने लगे ॥८॥ तब देवगण इन्द्रको आगे कर दैत्योंकी इच्छा जान स्वयं उद्योग करने लगे ॥ ९ ॥ बडी भारी चतुरंग सेनाके बलसे युक्त हो गोधा अंगुलीत्राण बांधे तूणवंत बाण लिये ॥ १० ॥ उग्रायुध धारण करनेवाले देवता अपनी सेनाओंमें स्थित हुए. ऐरावतपर चढे इन्द्रके पीछे पीछे देवता चलने लगे ॥ ११ ॥

तब तूर्य और भेरीके महाशब्दोंसे हिरण्याक्ष देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा ॥१२॥ तीक्ष्ण परशे निस्त्रिंश गदा तोमर शक्ति मुशल और पट्टिशोंके प्रहारसे इन्द्रको आच्छादन कर दिया ॥ १३ ॥ तब अस्त्रबलसे बडी वेगवान् अर्चिष्मान् दारुण घोररूप बाणवर्षा होने लगी ॥ १४ ॥ और श्रेष्ठ बली दैत्य शितधारवाले परशे लिये परिघ लोहनिर्मित खड्ग और क्षेपणीय मुद्गर ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारके तेजयुक्त गण्डशैल पर्वतके समान पत्थर और मारनेवाली बडी बडी शतघ्नी ॥ १६ ॥ युगाकार अस्त्र यंत्रके द्वारा छोड़े जानेवाले अस्त्र अर्थात् पाषाण वर्षानेवाले आग्नेयादि अस्त्रोंसे दैत्य

ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ॥ अभ्यद्रवद्धिरण्याक्षो देवराजं पुरंदरम् ॥१२॥ तीक्ष्णैः परशुनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास वासवम् ॥ १३ ॥ ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः ॥ घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाण-वृष्टयः॥१४॥शिष्टाश्च दैत्या बलिनः सितधारैः परश्वधैः॥परिघैरायसैः खड्गैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥१५॥गण्डशैलैश्च विविधैः रश्मिभि-श्चाद्रिसन्निभैः घात नीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥१६॥युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्च विदारणैः॥ सर्वान्देवगणान्दैत्याः सन्नि-जघ्नुः सवासवान्॥१७॥धूम्रकेशं हरिश्मश्रुं नानाप्रहरणायुधम् ॥ रक्तसंध्याभ्रसंकाशं किरीटोत्तमधारिणम् ॥१८॥ नीलपीताम्बर-धरं शितदंष्ट्रोर्ध्वधारिणम् ॥ आजानुबाहुं हर्यक्षं वैडूर्याभरणोज्ज्वलम्॥१९॥समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा ॥ ते हिरण्या-क्षमसुरं दैत्यानामग्रतः स्थितम्॥२०॥युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रतः॥ प्रविव्यथुः सुराः सर्वे तदा शक्रपुरोगमाः॥२१॥

सम्पूर्ण देवगणोंको इन्द्रके सहित ताडन करने लगे ॥ १७ ॥ धूम्रकेश हरिश्मश्रु अनेक आयुध प्रहार करनेवाले रक्तसंध्याके अभ्रके समान उत्तम किरीट धारे ॥ १८ ॥ नील पीताम्बरधारी श्वेतदंष्ट्रा ऊर्ध्व किये जानुपर्यंत लम्बायमान भुजा प्रकाशित वैडूर्यमणिके भूषण पहरे ॥ १९ ॥ आयुध उठाकर आगे स्थित हुए हिरण्याक्षको सब देवता देखकर ॥ २० ॥ युगान्तकालमें मृत्युकेसमान स्थित जानते हुए और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता व्यथित हुए ॥ २१ ॥

चलते पर्वतके समान हिरण्याक्षको आता देखकर देवताओंने उद्विग्नमन हो शरासन ग्रहण किये ॥ २२ ॥ और इन्द्रको आगे कर संग्राममें स्थित हुए वह सुवर्ण कवच पहरे उज्ज्वल सेना शोभित हुई ॥ २३ ॥ जिस प्रकार नक्षत्रोंसे शरदऋतुकी रात्रि शोभित होती है वे परस्पर सेनामें मारते हुए प्रहार करने लगे ॥ २४ ॥ बाहुयुद्धमें भुजा तोडने लगे. गदापातसे भग्न अंग और बाणोंसे व्यथित हृदय हो गये ॥ २५ ॥ कोई पृथक् हो गिर पडे कोई एकदूसरेको मारने लगे कोई रथोंको तोडने लगे कोई रथोंसे चूर्ण हो गये ॥२६॥ कोई ऐसी रोकमें प्राप्त हुए कि उनका रथ चला-

दृष्ट्वायान्तं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम् ॥ देवाः संविग्नमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥२२॥ सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राम-मूर्धनि ॥ सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला ॥ २३ ॥ प्रवृद्धनक्षत्रगणा शारदा द्यौरिवामला ॥ तेऽन्योन्यमपि संपेतुः पातयन्तः परस्परम् ॥२४॥ बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः॥ गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च व्यथितोरसः॥२५॥ विनिपेतुः पृथक्केचित्तथान्येऽपि विजघ्निरे ॥ बभञ्जिरे रथान्केचित्केचित्संमर्दिता रथैः ॥ २६ ॥ संबाधमन्ये संप्राप्ता न शेकुश्चलितं रथात् ॥ दानवेन्द्रबलं तत्र देवानां च महद्बलम् ॥२७॥ अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ॥ हिरण्याक्षस्तु बलवान् क्रुद्धः स दिति-नन्दनः ॥२८॥ व्यवर्द्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥२९॥ शस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ॥ सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव ॥३०॥ बहुभिः शस्त्रनिर्स्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः ॥ न शेकुश्चलितुं देवा हिर-ण्याक्षार्दिता युधि ॥ ३१ ॥ सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ॥ ३२ ॥

यमान न हो सका उस समय दानवेन्द्र और देवताओंकी बडी सेनाके॥२७॥परस्पर बाण वर्षानेसे वह दिन युद्धके कारण दुर्दिन हो गया. बलवान् हिरण्याक्ष बडा क्रोधकर ॥२८॥ महातेजस्वी पर्वके समुद्रके समान बढने लगा. क्रोध करनेपर उसके मुखसे अग्निकी चिनगारी निकलने लगी ॥२९॥ अनेक प्रकारके शस्त्रजाल धनुष परिघोंसे उठे हुए पर्वतोंके समान सब आकाश भर गया॥३०॥बहुतसे शस्त्रअस्त्रोंसे हृदय शिर छिन्नभिन्न हो गये.हिरण्या-क्षसे अर्दित हो देवता चलनेको समर्थ न हुए॥३१॥हिरण्याक्षने युद्धमें सब देवता भगा दिये वे यत्न करकेभी विचेतन हो कुछ न कर सके॥३२॥

उसने अस्त्रसे इन्द्रको युद्धमें स्तंभित कर दिया. ऐरावतपर स्थित हुआ इन्द्र चलनेको समर्थ न हुआ॥३३॥वह दानव इस प्रकार सब देवताओंको पराजित कर देवेशको स्तंभित कर सब जगत् अपने वशीभूत मानने लगा ॥३४॥ वह मेघके समान गंभीर शब्द करता मत्तमातंगके समान शरीर धारे महाकान्तिमान् धनुष कंपित करता हुआ देवताओंको दीखने लगा ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥वैशंपायन बोले; इन्द्रके निष्प्रयत्न और देवताओंके धर्षित होनेपर चक्र गदाधारी नारायणने हिरण्याक्षके मारनेका विचार किया॥१॥

तेन शक्रः सहस्राक्ष स्तम्भितोऽस्त्रेण धीमता ॥ ऐरावतगतः संख्ये नाशकच्चलितुं भयात् ॥ ३३ ॥ सर्वांश्च देवानखिलान्त्स पराजित्य दानवः ॥ स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ॥ ३४ ॥ सतोयमेघप्रतिमोऽशनिःस्वनं प्रभिन्नमातङ्गविलासविग्रहम् धनुर्विधुन्वन्तमुदारवर्चसं तदा सुरेन्द्रं ददृशुः सुराः स्थिताः ॥ ३५ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भ० वा अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ वैशम्पायेन उवाच ॥ निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च ॥ हिरण्याक्ष वधे बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः ॥१॥ वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः ॥ स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत् ॥ २ ॥ ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम् ॥ सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥ ३ ॥ महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः ॥ पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥ ४ ॥ सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा॥ इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः ॥ ५॥ यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि ॥ विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञो यज्ञकर्मणाम् ॥ ६ ॥

जो वाराह नामका पर्वत प्रथम कहा है वही रूप धारण कर भगवान् असुर नाशक आये॥२॥ तब चंद्रके समान कान्तिमान् श्वेत शंख और चक्र पर्वतके समान सहस्रधारवाले सुदर्शनचक्रको धारण किये ॥३॥ महादेवी महाबुद्धि महायोगी महेश्वर जिसको देवता दिव्य नामसे स्तुति करते हैं ॥४॥सत् असद्रूप श्रेष्ठ आत्मा जिनकी सत्पुरुष सदा सेवा करते हैं. जो पुराणोंमें स्तुतिको प्राप्त होता है सब लोकोंका एकभावन है॥५॥सुरेन्द्रोंमें वैकुंठरूप भोगियोंमें

अनन्तरूप योगियोंमें विष्णु यज्ञकर्मोंमें यज्ञस्वरूप है ॥६॥ जिसके प्रसादसे यज्ञ कर देवता स्वर्गमें स्थित हुए हैं और महर्षियोंद्वारा दी हुई घृतकी आहुति पान करते हैं. अग्नि ब्राह्मण मुख आदिमें आहुति देनेसे तीन प्रकारकी आहुति कही है॥७॥जो देवता दैत्योंकी परा गति और सुरोंकी परम गति है जो पवित्रोंका पवित्र स्वयंभू अव्यय विभु है॥८॥जिसके चक्रसे दानव युगयुगमें पीसे जाते हैं.जिनकेपराक्रमको देख कुल अकुलताको प्राप्त हो जाते हैं वे आये॥९॥तब उन्होंने दैत्योंको भय देनेवाला पुरातन उत्तम शंख मुखपर धरकर बजाया. जिससे दैत्योंका जीवन नष्ट होता

मखे यस्य प्रसादेन भुवनस्था दिवौकसः॥ आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधाहुतम् ॥ ७॥ यो गतिर्देवदैत्यानां यः सुराणां परा गतिः ॥ यः पवित्रं पवित्राणां स्वयंभूरव्ययो विभुः॥८॥ यस्य चक्रप्रविष्टानि दानवानां युगे युगे ॥ कुलान्याकुलतां यान्ति यानि दृष्टानि वीर्यतः ॥ ९ ॥ ततो दैत्यद्रवकरं पौराणं शंखमुत्तमम् ॥ धमन्वक्त्रेण बलवानाक्षिपद्दैत्यजीवितम् ॥ १० ॥ श्रुत्वा शङ्खस्वनं घोरमसुराणां भयावहम् ॥ क्षुभिता दानवाः सर्वे दिशो दश व्यलोकयन् ॥११॥ ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः ॥ कोऽयमित्यब्रवीद्रोषान्नारायणमुदैक्षत ॥ १२ ॥ वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम् ॥ शंखचक्रोद्यतकरं देवानामार्त्तिनाशनम् ॥ १३ ॥ रराज शंखचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः ॥ सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥ १४ ॥ ततोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृप्ता देवमुपाद्रवन् ॥१५॥ पीड्यमानोऽतिबलिभिर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ॥ न चचाल हरिर्युद्धे कम्पमान इवाचलः ॥ १६ ॥

है ॥१०॥ असुरोंके भय देनेवाले शंखका घोर शब्द सुनकर क्षुभित हो दानव दशों दिशाको अवलोकन करने लगे ॥११॥ तब महाअसुर हिरण्याक्ष लाल नेत्र कर यह कौन है ऐसा कह क्रोधसे नारायणको देखने लगा ॥ १२ ॥ उन पुरुषोत्तमको वाराहरूपमें देख कि वे देवताओंके दुःखनाशक हाथमें शंख लिये हैं ॥ १३ ॥ वह शत्रुसूदन शंखचक्रसे शोभित होते थे. जैसे सूर्यचन्द्रमाके बीचमें नीलमेघ हो ॥ १४ ॥ तब सब असुर हिरण्याक्षको आगे कर आयुध उठाये दृप्त हो देवके ऊपर झपटे ॥ १५ ॥ वह बली दैत्योंके सम्पूर्ण आयुधोंसे पीडित होकरभी अचलकी समान

नारायण युद्धमें चलायमान न हुए ॥१६॥ तब दानवने प्रज्वलित शक्तिको प्रभुके हृदयमें महातेज और बलयुक्त निपातन किया ॥१७॥ उस शक्तिके प्रभावसे ब्रह्माभी विस्मित हो गये उस महाशक्तिको निकट आई देख महाबली ॥१८॥ प्रभुने हुंकारसेही झिडककर पृथ्वीमें गिरा दिया. उस शक्तिके नष्ट होनेपर ब्रह्माने धन्य धन्य कहा ॥१९॥ जो सबके प्रभु हैं उन वराहको उसने ताडित किया तब भगवान्‌ने सूर्यके समान चक्र ग्रहण किया ॥२०॥और उत्तमकर्माने दानवेन्द्रके शिरपर मारा तब उसका शिर कट पृथ्वीमें गिरा. जैसे वज्रसे हत हुआ सुवर्णमय मेरुशृंग गिरता हो॥२१॥

ततः प्रज्वलितां शक्तिं वाराहोरसि दानवः ॥ हिरण्याक्षो महातेजाः पातयामास वीर्यवान् ॥१७॥ तस्या शक्त्याः प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः ॥ समीपमागतां दृष्ट्वा महाशक्तिं महाबलः ॥१८॥ हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य-पातयामास भूतले ॥ तस्यां प्रतिहतायां तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत् ॥१९॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां वराहस्तेन ताडितः ॥ ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् ॥२०॥ पतितदानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तमकर्मणा॥ततः स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह ॥ हिरण्मयं वज्रहतं मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥२१॥ हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र दानवाः ॥ सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश ॥२२॥ स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो महाहवेष्वप्रातमोग्रचक्रः ॥ बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः॥२३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विद्राव्य तु रणे सर्वानसुरान्पुरुषोत्तमः ॥ मुमोच तत्र बद्धांस्तान्पुरंदरमुखान्सुरान् ॥१॥ ततः प्रकृतिमापन्नाः सर्वे देवगणास्तथा ॥ पुरंदरं पुरस्कृत्य नारायणमुपस्थिताः ॥ २ ॥

हिरण्याक्ष दैत्यके मरनेपर शेष रहे दानव उनके भयसे दशों दिशामें भाग गये ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कालका सब लोकोंमें अप्रहित आज्ञाचक्र चलता है इस प्रकार महायुद्धमें उपमारहित चक्र धारण किये भगवान् वाराहजी शोभित हुए. जैसे दण्डपाणि काल शोभित होता है ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार पुरुषोत्तम युद्धमें सब असुरोंको भगाकर इन्द्रादि देवताओंको बंधनसे छुडाते हुए ॥१॥ तब सम्पूर्ण देवता अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए इन्द्रको आगे कर नारायणके सन्मुख

स्थित हुए ॥ २ ॥ देवता बोले हे भगवन् !आपके प्रसाद और आपके बाहुबलसे हम कालके मुखसे निकल जीवित हुए हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपकी आज्ञासे हम देवता क्या करें. हे सनातन ! आपके चरणसेवा करनेकी इच्छा करते हैं॥४॥वैशंपायन बोले; कमललोचन उनके यह वचन सुन शत्रुहन्ता देवताओंसे प्रसन्न हो वचन कहने लगे॥५॥श्रीभगवान् बोले; तुम जिसके निमित्त मैंने जिस लोककी कल्पना की है उसको यत्नपूर्वक पालन कर वेदाज्ञा मानते रहो ॥६॥ और यज्ञभागको प्राप्त हो अपने ऐश्वर्यको भोगो और मेरी निर्देश की हुई आज्ञाको पालन करो ॥ ७ ॥ फिर

देवा ऊचुः ॥ त्वत्प्रसादेन भगवन् तव बाहुबलेन च ॥ जीवामोऽद्य महाबाहो निष्क्रान्ताश्चान्तकाननात् ॥ ३ ॥ त्वच्छासनाद्धि भगवन् किं कुर्वन्त्यदितेः सुताः ॥ इच्छामः पादशुश्रूषां तव कर्तुं सनातन ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां पुण्डरीकनिभेक्षणः॥ उवाच वचनं देवान्मुदा युक्तो हतद्विषः ॥५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो यस्य भवतो लोको मयैव विहितः पुरा ॥ पाल्यतां स तु यत्नेन वियोगश्च क्वचित् क्वचित् ॥६॥ ऐश्वर्यं प्रतिपन्नाः स्थ क्रतुभागपुरस्कृतम् ॥ मयैव पूर्वं निर्दिष्टो नियोगः प्रतिपाल्यताम् ॥७॥ शक्रं चोवाच भगवान्वचनं दुन्दुभिस्वनः ॥ इदं यथावत्कर्तव्यं सत्सु चासत्सु च त्वया ॥ ८ ॥ गच्छन्तु तपसा स्वर्गं मुनयः शंसितव्रताः ॥ तव लोकं सुरश्रेष्ठ सर्वकामदुघं सदा ॥ यायजूकाश्च ये केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥ तेषां कामदुघा लोकाः स्वर्गमादिमनोहराः ॥ यज्ञैरिष्ट्वा यायजूकाः फलंते प्राप्नुवन्तु च॥९॥भावः सद्धर्मशीलानामभावः पापकर्मणाम्॥ सन्तः स्वर्गजितः सन्तु सर्वाश्रमनिवासिनः ॥ १० ॥

भगवान् मेघवत् गंभीरस्वरसे इन्द्रसे बोले; हे इन्द्र ! तुम यथायोग्य कर्तव्यकर्मको करो ॥ ८ ॥ व्रत करनेवाले मुनि तपसे स्वगको प्राप्त हो. हे सुरश्रेष्ठ ! तुमको सब कामना देनेवाले लोक प्राप्त होंगे. जो कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यज्ञ करनेवाले हैं उनके निमित्त स्वर्गादि कामना देनेवाले मनोहर लोक हैं यज्ञको प्राप्त होकर फल प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥ जहां धर्मशीलोंका भाव और पापियोंका अभाव है वे सर्व आश्रमके निवासी सन्त स्वर्गको प्राप्त

होते हैं ॥ १० ॥ सत्यशूर युद्धशूर दानशूर जो मनुष्य हैं तथा जो किसीकी निन्दा नहीं करते वह मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष अश्रद्धावाले कामी अर्थमें तत्पर और शठ हैं अब्रह्मण्य तथा नास्तिक हैं वे मनुष्य नरकको प्राप्त हों ॥ १२ ॥ हे देवेश! यह तुम हमारे कहे वचन मानो तब मेरे स्थित होते हुए कोई शत्रु तुमको बाधा नहीं दे सकेंगे ॥ १३ ॥ ऐसा कह शंखचक्रधारी नारायण अन्तर्धान हो गये और सम्पूर्ण देवताओंको बडा विस्मय हुआ ॥ १४ ॥ देवता इस अद्भुत वाराहचरित्रको देख वाराहको नमस्कार कर स्वर्गको गये ॥ १५ ॥ तब देवता

सत्यशूरा रणे शूरा दानशूराश्च ये नराः ॥ ते नराः स्वर्गमश्नन्तु सदा ये चानसूयवः ॥११॥ अश्रद्दधानाः पुरुषाः कामिनोऽर्थपराः शठाः ॥ अब्रह्मण्या नास्तिकाश्च नरकं यान्तु मानवाः ॥ १२ ॥ एतावत्क्रियतां वाक्यं मयोक्तं त्रिदशेश्वराः ॥ ततो मयि स्थिते सर्वान्बाधिष्यन्ते न चारयः ॥१३॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ देवतानां च सर्वेषामभवद्विस्मयो महान् ॥१४॥ एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा वाराहचरितं सुराः ॥ नमस्कृत्वा वराहाय नाकपृष्ठमितो गताः ॥ १५ ॥ ततः स्वान्यधिपत्यानि प्रतिपन्नानि दैवतैः ॥ सर्वलोकाधिपत्ये च प्रतिष्ठां वासवो गतः ॥१६॥ विमुक्ता दानवगणैः प्रकृतिं धरणी गता ॥ स्थैर्यहेतोर्धरण्यास्तु ज्ञात्वा चागस्कृतान् गिरीन् ॥१७॥ स्वेषु स्थानेषु संस्थाप्य पर्वतानां पुरंदरः ॥ चिच्छेद भगवान्पक्षान्वज्रेण शतपर्वणा ॥१८॥ सर्वेषामेव पक्षा वै छिन्नाः शक्रेण धीमता ॥ एकः सपक्षो मैनाकः सुरैस्तत्समयः कृतः ॥ १९ ॥ एष नारायणस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ वाराह इति विप्रेन्द्रैः पुराणे परिकीर्तितः ॥ २० ॥

अपने २ अधिकारको प्राप्त हुए और इन्द्र सब लोकके अधिपतित्वको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ और दानवगणोंसे मुक्त हो पृथ्वी अपने स्वभावको प्राप्त हुई. पृथ्वीकेस्थिति करनेके निमित्त उन अपराध करनेवाले पर्वतोंको ॥ १७ ॥ इन्द्रने उन उन स्थानोंमें स्थित कर दिया और उस अपराधसे तीक्ष्ण धारावाले वज्रसे उनके पंख छेदन कर डाले ॥ १८ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रने सबके पंख छेदन कर डाले. एक पंखवाला मैनाक रहा जिसके रक्षणार्थ देवताओंकी प्रतिज्ञा थी ॥ १९ ॥ यह महात्मा नारायणका प्रादुर्भाव है. विप्रेन्द्रोंने पुराणोंमें इसको वाराहचरित्र कहा है ॥ २० ॥

यह व्यासजीको अभिमत अनेक श्रुतियोंसे सम्मत है. यह अशुचि कृतघ्न और नृशंससे न कहना ॥ २१ ॥ क्षुद्र नीच गुरुद्वेषकारी अशिष्य और कृतघ्नको न देना ॥ २२ ॥ आयु यश पृथ्वी जयकी कामनावाले पुरुषोंको यह देवताओंकी जय श्रवण करनी चाहिये ॥ २३ ॥ यह पुराण वेदसे सम्बद्ध कल्याणरूप स्वस्तिदायक है सब जीवोंका शोधक और तत्काल विजयका देनेवाला है ॥ २४ ॥ हे कौरव्य ! यह तत्त्वसे समस्त तुमको कहा है. हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार वाराहप्रादुर्भावकी कथा है ॥ २५ ॥ जो पवित्र यज्ञोंसे देवता पितरोंका यजन करते हैं जो आत्माका

कृष्णद्वैपायनमतं नानाश्रुतिसमाहितम् ॥ नाशुचेर्न कृतघ्नाय न नृशंसाय कीर्त्तयेत् ॥२१॥ न क्षुद्राय न नीचाय न गुरुद्वेषकारिणे ॥ नाशिष्याय तथा राजन्न कृतघ्नाय चैव हि ॥२२॥ आयुष्कामैर्यशःकामैर्महीकामैश्च मानवैः ॥ जयैषिभिश्च श्रोतव्यो देवानामेष वै जयः ॥ २३ ॥ पुराणवेदसंबद्धः शिवः स्वस्त्ययनो महान् ॥ पावनः सर्वसत्त्वानां तत्कालविजयप्रदः ॥ २४ ॥ एष कौरव्य तत्त्वेन कथितस्त्वनुपूर्वशः ॥ वाराहस्य नृपश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ २५ ॥ ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्दैवतानि पितॄनपि ॥ आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥२६॥ लोकायनाय त्रिदशायनाय ब्रह्मायनायात्मभवायनाय ॥ नारायणायात्महितायनाय महावराहाय नमस्कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ॥ यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१॥ पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥ २ ॥

आत्मासे यजन करते हैं वे नित्य विष्णुका यजन करते हैं ॥ २६ ॥ लोकके स्थान देवताओंके स्थान ब्रह्म और आत्माके स्थान नारायण आत्माके हितकारी महावराहजीको प्रणाम करो. ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्याय. ॥ ४० ॥ वैशंपायन बोले; यह वाराहचरित्र कहा अब नृसिंहचरित्र सुनो. जिसमें मृगेन्द्ररूपसे भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको मारा ॥ १ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगमें बली हिरण्यकशिपु दैत्योंके आदिपुरुषने बडा तप किया ॥ २ ॥

ग्यारह सहस्र पांच सौ वर्षतक मौनहो वह जलमें स्थितिकरता हुआ॥३॥शम दम और ब्रह्मचर्यसे तप और नियमसे ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न होगये॥४॥ तब स्वयंभू भगवान् स्वयं उस स्थानमें हंसयुक्त प्रकाशमान विमानपर चढकर आये ॥५॥ आदित्य वसु साध्य रुद्र मरुत विश्वेदेवायक्ष राक्षस किन्नर उनके साथ थे॥६॥दिशा विदिशा नदी सागर नक्षत्र मुहूर्त आकाशचारी महाग्रह ॥७॥ देवर्षि ब्रह्मर्षि सिद्ध सप्तर्षि पुण्यात्मा राजर्षि गन्धर्व अप्सराओंके साथ ॥ ८ ॥ चराचरके गुरु देवताओंसे युक्त श्रीमान् ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी यह वचन उससे बोले ।। ९ ॥ ब्रह्माजी बोले; हे सुव्रत !

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ॥ जलवासी समभवत्स्थानमौनव्रतस्थितः ॥३॥ ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि ॥ ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥ ४ ॥ ततः स्वयंभूभगवान्स्वयमागम्य तत्र ह ॥ विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५॥ आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ॥ रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ६ ॥ दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ॥ नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥७॥ देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ॥ राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥८॥ चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥९॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतोऽस्मि तवभक्तस्य तपसानेन सुव्रत ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ १० ॥ ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तमः ॥ कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्वचनं चेदमब्रवीत् ॥११॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥१२॥ ऋषयो नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह ॥ शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ॥१३॥ न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन च ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥ १४ ॥

तुझ भक्तके इस तपसे मैं प्रसन्न हूं. तुम्हारा जो यथेष्ट हो सो वर मांगो ॥१०॥ तब दानवोत्तम हिरण्यकशिपु प्रसन्न हुआ और हाथ जोडकर वचन कहने लगा ॥ ११ ॥ हिरण्यकश्यप बोला; देव असुर गंधर्व यक्ष राक्षस मनुष्य पिशाच इनसे किसी प्रकार मेरी मृत्यु न हो ॥ १२ ॥ और महातपसे युक्त ऋषियोंका शापभी मुझको न लगे यही वर मेरे लिये चाहिये ॥ १३ ॥ शस्त्र अस्त्र गिरि वृक्ष शुष्क गीली किसी वस्तुसे मेरा वध न हो ॥ १४ ॥

स्वर्ग पाताल आकाश पृथ्वीके अभ्यंतर रातदिनमें मेरा वध न हो॥१५॥जो एकही हाथके प्रहारसे भृत्य बल वाहन सहित नष्ट करनेको समर्थ हो उससे मेरी मृत्यु हो ॥१६॥ मैं सोम सूर्य वायु अग्नि जल अन्तरिक्ष नक्षत्र दशों दिशा क्रोध काम वरुण इन्द्र और यमके समान हो जाऊं॥१७॥ धनाध्यक्ष कुबेर यक्ष किंपुरुषोंका अधिपति हो जाऊं और युद्धके समय दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे निकट उपस्थित हों हे ब्रह्माजी ! यह वर मुझको दीजिये ॥१८॥ ब्रह्माजी बोले;हे तात ! यह दिव्य वर मैंने तुमको दिये तुम अच्छी प्रकार सब कामनाओंको प्राप्त होगे,इसमें सन्देह नहीं है॥१९॥

न स्वर्गेऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले ॥ न चाभ्यन्तरराज्यहोर्न चाप्यन्येन मे वधः॥१५॥ पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥ यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥ भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥ सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥ १७॥ धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षकिंपुरुषाधिपः ॥ मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे॥उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह॥१८॥पितामह उवाच॥एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ॥ सर्वान्कामानलपभावात्प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥१९॥ वैशम्पापयन उवाच॥ एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाशमेव च ॥ वैराज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २० ॥ ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह ॥ वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरेणानेन भगवन्वधिष्यति स नोऽसुरः ॥ तत्प्रसीदस्व भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः ॥ २३ ॥

वैशंपायन बोले; यह कह ब्रह्माजी उस विराट्रूप ब्रह्मसदन अपने स्थानको चले गये. जो ब्रह्मर्षियोंसे सेवित है॥२०॥तब देवता और नाग गन्धर्व तथा मुनियोंके साथ इस वरका वृत्तान्त सुन ब्रह्माजीके पास आये ॥ २१ ॥ देवता बोले;हे भगवन् ! वह असुर हम सबको वरके कारण वध करेगा इस कारण हे भगवन् ! प्रसन्न हो आप इसके वधका उपाय विचारो ॥ २२ ॥ वैशंपायन बोले; भगवान् सर्वभूतोंके आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं.वह हव्य-

कर्योंके स्रष्टा अव्यक्त प्रकृति ध्रुवरूप हैं ॥ २३ ॥ वह प्रजापति सब लोकके हितकारी वचन सुनकर उन देवताओंको मनोहर वचनोंसे आश्वासन करने लगे ॥२४॥ हे देवताओ ! वह तपके फलको अवश्य प्राप्त होगा. तपके अन्तमें भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥ २५ ॥ सब देवता कमल-नाभ ब्रह्माजीका वचन सुन प्रसन्न हो अपने दिव्य स्थानोंको गये ॥ २६ ॥ वैशंपायन बोले; वह दैत्य वरको प्राप्त हो सब प्रजाको बाधा देने लगा वह हिरण्यकशिपु दैत्य वरदानसे मोहित हो गया ॥ २७ ॥ सब मुनि और शंसितव्रतवाले ब्राह्मणोंके आश्रम तथा सत्यधर्मरत दान्त चतुरोंको

सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ॥ आश्वासयामास सुरान्स शीतैर्वचनाम्बुभिः ॥२४॥ अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ॥ तपसोऽन्ते स भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥२५॥ एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः॥ स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विताः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ लब्धमात्रे वरे तस्मिन्त्सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ॥ हिरण्यकशिपु-र्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥२७॥ आश्रमेषु मुनीन्सर्वान् ब्राह्मणान्त्संशितव्रतान् ॥ सत्यधर्मरतान्दान्तान्धर्षयामास वीर्यवान्॥२८॥ देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः॥ त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥२९॥ यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा॥ यज्ञियानकरोद्दैत्यान्दैवतानप्ययज्ञियान् ॥ ३० ॥ तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ॥ रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजम-हर्षयः ॥ ३१ ॥ शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥ देवं देवमयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् ॥ ३२ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोकनमस्कृतम् ॥ देवा ऊचुः ॥ नारायण महाभाग देव त्वां शरणं गताः ॥ ३३ ॥

धर्षित करने लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार वह असुर त्रिलोकीके देवताओंको जीत त्रिलोकीको वशमें कर स्वर्गमें रहने लगा ॥ २९ ॥ महाबली जब विष्णुकी वरदानसे मदोन्मत्त हो कालधर्मसे प्रेरित हुआ तब दैत्योंको यज्ञभागभोगी और देवताओंको यज्ञभागरहित करता हुआ ॥३०॥ तब आदित्य साध्य विश्वेदेवा वसु रुद्र देवगण यज्ञ देव द्विज महर्षि ॥ ३१ ॥ शरणागतवत्सल शरणमें उपस्थित हुए जो देवदेव यज्ञमय ब्रह्मदेव सनातन हैं ॥ ३२ ॥ भूत भव्य भविष्यरूप प्रजा लोकसे नमस्कृत हैं उनके निकट जाय देवता बोले

॥ ८४ ॥

हे नारायण महाभाग देव ! हम आपकी शरण हैं ॥ ३३ ॥ तुम ही हमारे परमधाता गुरु और ब्रह्मादिकोंके देव हो ॥ ३४ ॥ तुमही कमललोचन शत्रुओंको भय देते हो हे प्रभु ! आप दैत्योंके नाशक और हमारे मंगलकर्ता हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुको मारकर हमारी रक्षा करो, विष्णु बोले; हे देवताओ ! भय त्यागो मैं तुमको अभय देता हूं ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! तुम बहुत शीघ्र अपने स्थानको प्राप्त होंगे. मैं उस वरदर्पित दैत्यको गणसहित ॥ ३७ ॥ जो देवताओंसे अवध्य है वध कर डालूंगा. वैशंपायन बोले;यह कह भगवान्‌ने देवताओंको विदाकर ॥ ३८ ॥

त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ॥ त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥ ३४ ॥ त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह ॥ क्षयाय दितिवंशस्याक्षयाय भव नः प्रभो ॥ ३५ ॥ त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ॥ विष्णुरुवाच ॥ भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ॥ ३६ ॥ तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ॥ एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ॥ ३७ ॥ अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदिवौकसः ॥ ३८ ॥ वधं संकल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥ ३९ ॥ सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागतः किंतु रूपं समास्थाय निहन्म्येनं महासुरम् ॥ ४० ॥ यत्सिद्धिकरमाशु स्याद्वधाय विबुधद्विषः ॥ अनुत्पन्नं ततश्चक्रे सोऽत्यन्तं रूपमास्थितः ॥ ४१ ॥ नारसिंहमनाधृष्यं दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ सहायं तु महाबाहुर्जग्राहोंकारमेव च ॥ ४२ ॥ अथोंकारसहायोऽसौ भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ हिरण्यकशिपोः स्थानं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥ ४३ ॥

हिरण्यकशिपुके वधका संकल्पकर ॥ ३९ ॥ थोडेही समयमें हिमालयके समीप आये और विचार किया कैसे रूपको धारण कर इस दैत्यको मारूं ॥ ४० ॥ जो उसके वधमें शीघ्र सिद्धिका देनेवाला हो तब वह अपूर्वरूपको धारण करते हुए ॥ ४१ ॥ जो देवदानवोंसे अधृष्य नारसिंह नामसे विख्यात है और सहायके निमित्त महाबाहुने सर्वात्मा ओंकारको लिया ॥ ४२ ॥ प्रभु अविनाशी विष्णु ओंकारकी सहाय ले हिरण्यकशिपुके स्थानको गये ॥ ४३ ॥

सूर्यके समान तेज चन्द्रमाके समान कान्ति आधा मनुष्य और आधा सिंहका शरीर कर ॥४४॥ नारसिंहशरीर हाथसे हाथ स्पर्श किये बडी दिव्य मनोहर विस्तारवाली ॥४५॥ सब कामसे युक्त हिरण्यकशिपुकी सभाको देखते हुए जो सौ योजनके विस्तार और एक सौ पचास योजन चौडी थी॥४६॥आकाशमें फिरनेवाली यथेष्ट गमन करनेवाली पांच योजन ऊंची जरा शोकक्लमसे रहित कंपरहित मनोहर शुभ॥४७॥सुन्दर आसनवाला मनोहर तेजसे प्रकाशमान अन्तरजलसे युक्त विश्वकर्माकी बनाई दिव्य रत्नमय वृक्ष पुष्पफलोंसे युक्त ॥ ४८ ॥ नील पीत सित श्याम सित लाल

तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः ॥ नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं विभुः॥४४॥नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥ ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥ ४५ ॥ सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोःसभाम् ॥ विस्तीर्णां योजनशत शतमध्यार्द्धमुच्छ्रिताम् ॥ ४६ ॥ विहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम् ॥ जराशोकक्लमत्यक्तां निष्प्रकम्पां शिवां शुभाम् ॥ ४७ ॥ शुभासनवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा ॥ दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥ ४८ ॥ नीलपीतासितश्यामैः सितैर्लोहितकैरपि ॥ अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ॥ ४९ ॥ सिताभ्रघनसंकाशा प्लवन्तीवाप्सु दृश्यते ॥धन्यासनवती रम्या ज्वलन्ती इव तेजसा ॥५०॥ प्रभावती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥ नासुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ॥५१॥ न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति हि ॥ नानारूपैर्विरचिता विचित्रैरतिभास्वरैः ॥५२॥ स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैःशाश्वती चाक्षता च सा॥ अतिचन्द्रं च सूर्यं च पावकं च स्वयंप्रभा॥५३॥

अवतान (झालर) गुल्म (गुच्छे) शतधाराकी मंजरीसे युक्त ॥ ४९ ॥ श्वेतमेघके समान जलमें पैरती हुईसी दीखती है. वह श्रेष्ठ आसनवती तेजसे प्रज्वलित दीखती थी ॥५०॥ वह प्रभावती प्रकाशमान दिव्य गंधसे मनोरम सुखरूप दुःखरहित न शीत न गरमीसे युक्त ॥ ५१ ॥ उसमें रहनेवाले क्षुधा पिपासा ग्लानिको प्राप्त नहीं होते हैं. वह अनेक प्रकारके चित्र विचित्र कान्तिमान् रूपोंसे प्राप्त थी ॥ ५२ ॥ उसमें दिव्य मणिमय स्तंभ लगे थे.सब प्रकारसे स्वच्छ थी कहींसे टूटी फूटी न थी.चन्द्रसूर्यके तेजको अतिक्रमण करनेवाली स्वयं कान्तिमान् अग्निसे अधिक तेजयुक्त॥५३॥

और स्वर्गमें स्थित हुई सूर्यकी भर्त्सना करती हुई प्रकाशित होती है. सम्पूर्ण काम जो दिव्य और जो मानुष है ॥५४॥ वे बडे बडे रससे युक्त और अक्षय भक्ष्य भोज्य पवित्र गंधवाली माला और नित्य पुष्पफलवाले वृक्ष हैं ॥५५॥ उष्ण और शीतल जल शीत और उष्ण पदार्थ हैं पुष्पित अग्रभागवाले महाशाखायुक्त प्रवाल अंकुर धारण किये ॥५६॥ लता और वितानोंसे युक्त नदी और सरोवरोंमें बडी मनोहरता प्रभुने देखी ॥ ५७ ॥ अनेक प्रकारके द्रुम और मृगेन्द्र देखे गये. गंधवाले पुष्प और रसवाले फल ॥ ५८ ॥ शीतल जलवाले जहां तहां सरोवर और उस सभामें प्रभुने

दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ॥ सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ॥५४॥ रसवन्तः प्रभूताश्च भक्ष्य-भोज्यं तथाक्षयम् ॥ पुण्यगन्धाः स्रजस्तत्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ॥ ५५ ॥ उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति वै ॥ पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रवालाङ्कुरधारिणः॥५६॥लतावितानसंछन्नान्त्सरित्सु च सरःसु च॥मनोहरांश्च विविधान् ददर्श स तदा प्रभुः ॥५७॥ द्रुमान्बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे द्रुतम् ॥ गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ॥ ५८ ॥ तानि शीतानि तोयानि तत्र तत्र सरांसि च ॥ अपश्यत्सर्वतीर्थानि सभायां शतशो विभुः ॥५९॥ नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः ॥ रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संयुतानि च ॥ ६० ॥ सकान्तैर्धार्त्तराष्ट्रैश्च राजहंसैः ॥ सुरप्रियैः ॥ कादम्बैश्चक्रवाकैश्च सारसैः कुररैरपि ॥६१॥ विमलस्फटिकाभानि पाण्डुराष्टदलानि च ॥ कलहंसोपनीतानि सारिकाभिरुतानि च ॥ ६२ ॥

अनेक तीर्थ देखे ॥५९॥ नलिन पुण्डरीक शतपत्र सुगंधिवाले पदार्थ रक्त कुवलय नील वर्णके कुवलय कुमुदोंसे संयुक्त ॥ ६० ॥ कान्तिमान् हंस देवप्रिय राजहंस कादम्ब चक्रवाक सारस कुरर ॥ ६१ ॥ विमल स्फटिक मणिके समान पाण्डुवर्णके अष्टदलकमल मनोहर शब्द करनेवाले तोते और सारका हंसादिके शब्दोंसे व्याप्त ॥ ६२ ॥

गंधवाली सुन्दर पुष्पमंजरीधारिणी वृक्षोंके अग्रभागमें अनेक प्रकारकी पुष्प धारण करनेवाली लता ॥ ६३ ॥ केतक अशोक सरल पुन्नाग तिलक अर्जुन आम नीप नागपुष्प कदम्ब बकुल धव ॥ ६४ ॥ प्रियंगु पाटलीवृक्ष शाल्मली हरिद्रिका शाल ताल प्रियाल मनोहर चंपक ॥ ६५ ॥ तथा औरभी पुष्पोंवाले वृक्ष उस सभामें शोभित थे. विद्रुमके कृत्रिम वृक्ष दावाग्निके समान कान्तिवाले॥६६॥ स्कंधवाले सुन्दर शाखासे बहुत तालकी बराबर

गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः ॥ दृष्टवान्पादपाग्रेषु नानापुष्पधरा लताः ॥ ६३ ॥ केतकाशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः ॥ चूता नीपा नागपुष्पाः कदम्बबकुला धवाः ॥ ६४ ॥ प्रियंगुपाटलीवृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः ॥ शालास्तालाः प्रियालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥६५॥ तथा चान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः ॥ वैद्रुमाश्च द्रुमानीका दावाग्निज्वलितप्रभाः ॥६६॥ स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः ॥ अञ्जनाशोकवर्णाभा भान्ति वंजुलका द्रुमाः ॥ ६७ ॥ वरणा वत्सनाभाश्च पनसाश्चन्दनैः सह ॥ नीलाः सुमनसश्चैव पीताम्लाश्वत्थतिन्दुकाः ॥६८॥ प्राचीनामलका लोध्रा मल्लिका भद्रदारवः ॥ आम्रातकास्तथा जम्बूलकुचाः शैलवालुकाः ॥ ६९ ॥ सर्जार्जुनाः कन्दुरवाः पतङ्गाः कुटजास्तथा ॥ रक्ताः कुरवकाश्चैव नीपाश्चागरुभिः सह ॥७०॥ कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमीबीजपूरकाः कालीयका दुकूलाश्च हिङ्गवस्तैलपर्णिकाः ॥७१॥ खर्जूरा नालिकेराश्च पूगवृक्षा हरीतकी ॥ मधूकाः सप्तपर्णाश्च बिल्वाः पारावतास्तथा ॥ ७२ ॥

ऊंचे अंजन और अशोकके समान वर्णवाले वंजुल वृक्ष शोभित होते हैं॥६७॥वरण वत्सनाभ पनस चंदन नील सुमन पीत इमली अश्वत्थ तिंदुक॥६८॥ प्राचीन आमलक लोध्र मल्लिका भद्रदारु आम्रातक जम्बू लकुच शैलवालु॥६९॥ सर्ज्ज अर्जुन कंदुवर पतंग कुटज रक्तकुरबक नीप अगरु ॥७०॥ कदम्ब भव्य दाडिम बीजपूरक कालीयक दुकूला हिंगु तैलपर्णिक ॥७१॥ खर्जूर नारिकेल सुपारीके वृक्ष हररै मधूक सप्तपर्ण बेल पारावत ॥ ७२ ॥

पवन तमाल अनेक गुल्मलताओंसे युक्त और अनेक प्रकारकी लता पत्र पुष्प फलवाली ॥ ७३ ॥ इससे आदि लेकर औरभी बहुतसे वनके वृक्ष अनेक प्रकारके पुष्प फलोंसे युक्त विराजित होते थे ॥ ७४ ॥ चकोर शतपत्र मतवाली कोकिलाओंसे युक्त सारिका फूले फले महावृक्ष झुक रहे हैं ॥ ७५ ॥ रक्त पीत लाल वर्णके पक्षी पेडोंपर बैठे हैं और प्रसन्नमन हो परस्पर एक दूसरेको देख रहे हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ वैशंपायन बोले; उस सभामें वह दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप चार सौ हाथके लम्बे चौडे

पनसाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृता ॥ लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ॥ ७३ ॥ ए तेचान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः ॥ नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः ॥ ७४ ॥ चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ॥ पुष्पितान्फलिताग्रांश्च संपतन्ति माहाद्रुमान् ॥ ७५ ॥ रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगता द्विजाः ॥ परस्परमवेक्षन्त प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारत खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ आसीन आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः ॥ १ ॥ दिवाकरनिभे रम्ये दिव्यास्तरणसंभृते ॥ रराज सुचिरं राजन् ज्वलत्काञ्चनकुण्डलः ॥ २ ॥ तस्य दैत्यपतेर्मन्दं विरजस्कं समतन्तः ॥ दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुमुखो ववौ ॥३॥ तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः ॥ दिव्यतालेन दिव्यानि जगुर्गीतानि गायनाः ॥ ४ ॥ विश्वाची सहजन्या च प्रम्लो-चेत्यभिविश्रुता ॥ दिव्या च सौरभेया च समीची पुञ्जिकस्थला ॥ ५ ॥ मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता ॥ चारुनेत्रा घताची च मेनका चोर्वशी तथा ॥ ६ ॥

सिंहासनमें स्थित था ॥ १ ॥ सूर्यके समान कान्तिमान् दिव्य बिछौने उसपर बिछ रहे थे. उसपर प्रकाशमान कानोंमें कुंडल पहरे ॥ २ ॥ उस दैत्यपतिके मंदमंद रजरहित दिव्य गंधवाली पवन सन्मुख वहने लगी ॥ ३ ॥ वहां देवता गंधर्व अप्सराओंके गणोंसे युक्त दिव्य तालस्वरसे अनेक प्रकारके गीत गाने लगे ॥ ४ ॥ विश्वाची सहजनी प्रम्लोचा दिव्या सौरभेया समीची पुंजिकस्थला ॥ ५ ॥ मिश्रकेशी रंभा चित्रसेना शुचिस्मिता

चारुनेत्रा घृताची मेनका उर्वशी॥६॥इससे आदि ले औरभी सहस्रों अप्सरा नृत्यगीतमें चतुर राजा हिरण्यकश्यपके समीप स्थित होती हैं॥७॥और वहां हिरण्यकश्यप विचित्र वस्त्र भूषण धारण किये सहस्र स्त्रियोंसे परिवृत ज्वलितकुंडल स्थित हुए॥८॥वहां महाबाहु प्रभु हिरण्यकश्यपको बैठा हुआ देखे बडे बडे बली दानव उपासना करते थे॥९॥बलि वैरोचन नरक पृथ्वीजय प्रह्लाद विप्रचित्ति वहाबली गविष्ठ॥१०॥अहंता क्रोधहंता सुमना सुमति खर घटोदर महापार्श्व कथन पिठर॥११॥विश्वरूप रूप विरूप महाद्युति रावण वाली मेघवास महारव॥१२॥कटभी पिकटाभसंह्राद इन्द्रतापन दैत्य-

एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीत विशारदाः ॥ उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं तदा ॥७॥ हिरण्यकशिपुस्तत्र विचित्राभरणाम्बरः॥ स्त्री सहस्रैः परिवृतस्तस्थौ ज्वलितकुण्डलः॥८॥तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ उपासन्ति दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥९॥ बलिर्वैरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीजयः ॥ प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥ १० ॥ अहन्ता क्रोधहंता च सुमनः सुमतिः खरः ॥ घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा ॥११॥ विश्वरूपश्च रूपश्च विरूपश्च महाद्युतिः ॥ दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महारवः ॥१२॥ कटाभो विकटाभश्च संह्रादश्चेन्द्रतापनः ॥ दैत्यदानवसंघाश्च सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥१३॥ स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सर्वे सुचरितव्रताः ॥ सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥१४॥ एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ उपासन्ते महात्मानं सर्वे दिव्य परिच्छदाः ॥ १५ ॥ विमानैर्विविधैरग्र्यैर्भ्राजमानैरिवार्चिभिः ॥ स्रग्विणो भूषणधरा यान्ति चायान्ति हेलया ॥ १६ ॥ विचित्रा भरणोपेता विचित्रवसनास्तथा ॥ विचित्रशस्त्रकवचा विचित्रध्वजवाहनाः ॥ १७ ॥

दानवोंके समूह सम्पूर्ण ज्वलित कुंडल पहरे ॥ १३ ॥ सब मालाधारी बडे बोलनेवाले सबही सच्चरित्र सबही वर पाये और सबही मृत्युके भयसे रहित॥१४॥इनके सिवाय औरभी बहुतसे प्रभु हिरण्यकश्यप महात्माको दिव्य वस्त्र पहरे उपासना करते थे॥१५॥अनेक विमान कान्तिमान् विराज मान थे. वे माला भूषणधारी आते और जाते थे ॥ १६ ॥ विचित्र आभरण और विचित्र वस्त्र पहरे विचित्र शस्त्र कवच और विचित्र ध्वज और

वाहनवाले ॥१७॥ महेन्द्रधनुषके समान विचित्र अंगद धारण किये भूषित अंग दानव दैत्य नित्य हिरण्यकश्यपकी उपासना करते थे॥१८॥उस दिव्य सभामें पर्वतके समान असुर सुवर्णके मुकुट पहरे सूर्यके समान कान्तिमान्॥१९॥सुवर्णमणियोंकी बनी विचित्र वेदिकामें जहां सहस्रों रत्न जटित थे. हाथीदान्तके झरोखे लगे हुए उस सभाको मृगेन्द्रने देखा ॥२०॥ कि सोनेके विमल हारसे भूषित अंग सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित सहस्रों असुरोंसे निषेवित मृगराजने सभामें हिरण्यकश्यपको देखा॥२१॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे द्विचत्वा-

महेन्द्रचापसंकाशैर्विचित्रैरङ्गदैर्वरैः ॥ भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्ति नित्यशः ॥१८॥तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः हिरण्यमुकुटाः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ॥ १९ ॥ कनकमणिविचित्रवेदिकायामुपहितरत्नसहस्रवीथिकायाम् ॥ स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरुचिरदन्तगवाक्षसंवृतायाम् ॥२०॥ कनकविमलहारभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श ॥ दिवसकरकरप्रभं ज्वलन्तमसुरसहस्रगणैर्निषेव्यमाणम् ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम् ॥ नारसिंहवपुच्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ १ ॥ विकुञ्चितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत ॥ रूपौदार्यं बभौ तत्र सहस्रशशिसन्निभम् ॥ २ ॥ अहो रूपमिदं चित्रं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ अब्रुवन् दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥३॥ एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम् ॥ नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् ॥ दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥ ५ ॥

रिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ वैशंपायन बोले; तब उन कालचक्रके समान आते हुए महाभुजावाले राखसे ढके अग्निके समान नृसिंहशरीरधारीको देखा ॥ १ ॥ हे राजन् ! उनके केसरके बाल टेढे थे और सहस्र चन्द्रमाके समान उनके रूपकी उदारता थी ॥ २ ॥ आगे यह कुन्द और इन्दुके समान वडा विचित्ररूप है ऐसे वे सब दानव हिरण्यकश्यपसे कहने लगे॥ ३ ॥ इस प्रकार कहते हुए उन महात्माओंको कालधर्मसे प्रेरित कर नृसिंहजी अपनी दृष्टिसे भस्म करने लगे॥४॥ हिरण्यकश्यपका वीर्यवान् प्रह्लाद पुत्र दिव्य दृष्टिसे देखकर नृसिंहजीको देव मानता हुआ ॥ ५ ॥

उनका सुवर्णपर्वतके समान अपूर्व शरीर देख सब दानव और हिरण्यकश्यपभी विस्मित हो गया॥६॥प्रह्लाद बोले; हे राजराज महाबाहो हे दैत्योंमें प्रथम ! इस प्रकारका नारसिंह शरीर न हमने देखा न सुना॥७॥क्या यह दिव्यरूप अव्यक्तसे प्रगट है हमारे मनमें यह बात आती है कि यह घोर दैत्योंके नाशक है ॥८॥ देवता इनके शरीरमें स्थित हैं सागर नदी हिमालय पारियात्र तथा और जो दूसरे पर्वत हैं॥९॥नक्षत्रोंके सहित चन्द्रमा आदित्य अश्विनीकुमार कुबेर वरुण यम शचीपति इन्द्र ॥ १० ॥ मरुत देव गन्धर्व तपोधन मुनि नाग यक्ष पिशाच भीमपराक्रमी राक्षस ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम् ॥ विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥६॥ प्रह्लाद उवाच ॥ महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसंभव ॥ न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ॥ ७ ॥ अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् ॥ दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनांसि नः ॥८॥ अस्य देवाः शरीरस्थः सागराः सरितस्था ॥ हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥ ९ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा ॥ धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥१०॥ मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ॥ नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥११॥ ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै ॥ स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ १२ ॥ भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः ॥ विमानशतसंकीर्णा तथाभ्यन्तरजा सभा ॥१३॥ सर्वं त्रिभुवनं राजन् लोकधर्मश्च शाश्वतः ॥ दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन्यथेन्दौ विमलं जगत् ॥१४॥ प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ॥ उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च रजश्च सत्त्वं च तपो दमश्च ॥१५॥ सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः ॥ क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥ १६ ॥

ब्रह्मदेव पशुपति इनके ललाटमें लक्षित होते हैं तथा स्थावर जंगम प्राणी ॥ १२ ॥ आपभी सब दैत्यगणोंके सहित सैकडों विमानोंसे संयुक्त यह सभा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण त्रिलोकी लोकके शाश्वत धर्म इन नारसिंहमें दीखते हैं. जैसे चन्द्रमामें जगत्की छाया दीखतीहै ॥१४॥ इनमें प्रजापति महात्मा मनु ग्रह योग पृथ्वी आकाश उत्पात काल धृति स्मृति रज सत्य तप दम ॥ १५ ॥ महानुभाव सनत्कुमार विश्वेदेवा अप्सरा क्रोध

काम हर्ष दर्प मोह पितर इनमें दीखते हैं ॥ १६ ॥ यह वचन प्रह्लादने हिरण्यकशिपुसे कहे और वह दैत्यपुत्र कुछ कालतक नीचेको मुख किये ध्यान करता रहा ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशंपायन बोले; हिरण्यकशिपु इस प्रकार प्रह्लादके वचन सुन वह गणाधिप सब दानवोंसे कहने लगा ॥१॥ इस अपूर्वशरीरधारी मृगेन्द्रको शीघ्र पकड लो और जो कोई सन्देह हो तो इस वनमें फिरनेवालेको मार डालो ॥ २ ॥ यह सुन वह सब दानव उस भीमपराक्रमी मृगेन्द्रके ऊपर बडे वेगसे अस्त्रोंका प्रहार

इत्येवमुक्त्वा स च दैत्यराजं हिरण्यनामानमविस्मयेन ॥ दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं महामतिः किंचिदधोमुखः प्राक् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः ॥ उवाच दानवान्सर्वान्सगणांश्च गणाधिपः ॥ १ ॥ मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः ॥ यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ॥ परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥ ३ ॥ सिंहनादं नदित्वा तु पुनः सिंहो महाबलः ॥ बभञ्ज तां सभां रम्यां व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४ ॥ सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् ॥ चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः ॥५॥ सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुभैरवम् ॥ कालचक्रं तथात्युग्रं विष्णुचक्रं तथैव च ॥ ६ ॥ धर्मचक्रं महच्चक्रमजितं नाम नामतः ॥ चक्रमैन्द्रं तथा घोरमृषिचक्रं तथैव च ॥ ७ ॥ पैतामहं तथा चक्रं त्रैलोक्यमहितस्वनम् ॥ विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्रे चाशनिद्वयम् ॥ ८ ॥

करने लगे ॥ ३ ॥ तब वह महाबली सिंह सिंहनाद करके मुख फैलाये कालके समान उस सभाको तोडते हुए ॥ ४ ॥ उस सभाके टूटनेसे स्वयं हिरण्यकश्यप क्रोधसे लालनेत्र कर सिंहके ऊपर अस्त्र प्रहार करने लगा ॥ ५ ॥ तब सम्पूर्ण अस्त्रोंमें श्रेष्ठ भैरवदण्ड कालचक्र विष्णुचक्र ॥ ६ ॥ धर्मचक्र महच्चक्र अजितचक्र घोर इन्द्रचक्र तथा ऋषिचक्र ॥७॥ पितामहचक्र त्रिलोकीमें महाशब्द करानेवाले विचित्र अशनि शुष्क और आर्द्र

अशनी ॥ ८ ॥ रौद्र उग्र शूल कंकाल मुशल ब्रह्मशिर अस्त्र ब्रह्मास्त्र ॥ ९ ॥ ऐषीकास्त्र इन्द्रास्त्र आग्नेयास्त्र शिशिरास्त्र वायव्य कपाल और किंक- रास्त्र ॥ १० ॥ अपूर्व शक्ति और अस्त्र हयशिरास्त्र सौम्यास्त्र ॥ ११ ॥ पिशाचास्त्र अद्भुत सर्पास्त्र मोहन शोषण सन्तापन और विलापन अस्त्र ॥ १२ ॥ जृंभण प्रापण दारुण त्वाष्ट्र अस्त्र अक्षोभ्य कालमुद्गर दूसरोंकी सेनाको क्षुभित करनेवाला ॥ १३ ॥ संवर्तन मोहन मायाधर गंधर्वास्त्र असिरत्न नंदन अस्त्र ॥ १४ ॥ प्रस्वापन प्रमथन वारुणास्त्र अप्रतिहत गतिवाला पाशुपतास्त्र ॥ १५ ॥ इत्यादि अनेक अस्त्र हिरण्य-

रौद्रं तदुग्रं शूलं च कङ्कालं मुशलं तथा ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च॥९॥ऐषीकमस्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा ॥ वायव्यं मथनं नाम कापालमथ किंकरम् ॥ १० ॥ तथाचाप्रतिमां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥ अस्त्रं हयशिरश्चैव सौम्यमस्त्रं तथैव च ॥ ११ ॥ पैशाचमस्त्रममितं सार्प्यमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥ मोहनं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥ १२ ॥ जृम्भणं प्रापणं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुदारुणम् ॥ कालमुद्गरमक्षोभ्यं क्षोभणं तु महाबलम् ॥१३॥ संवर्त्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम् ॥ गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ॥ १४ ॥ प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ॥ अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥१५॥ एतान्यस्त्राणि सर्वाणि हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ चिक्षेप नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेर्यथाहुतिः ॥ १६ ॥ अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसु- राधिपः ॥ विवस्वान्धर्मसमये हिमवन्तमिव शुभिः ॥ १७ ॥ सह्यमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ॥ क्षणेन प्लावयन्सिंहं मैनाकमिव सागरः ॥ १८॥ प्रासैः पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ वज्रैरशनिकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमैः ॥ १९ ॥

कशिपुने अग्निमें आहुतिके समान नृसिंहजीके ऊपर छोडे ॥ १६ ॥ असुरराजने इन अस्त्रोंसे नृसिंहजीको आच्छादन कर दिया जैसे गरमीमें सूर्य अपनी किरणोंसे हिमवानको आच्छादन करते हैं ॥ १७ ॥ वह दैत्योंकी सागररूप सेना उनके क्रोधरूप पवनसे क्षणमात्रमें नृसिंहको ढकने लगी; जैसा सागरने मैनाकको आच्छादन किया था ॥ १८ ॥ प्रास पाश शूल गदा मुशल अशनि तुल्य वज्र शिला वृक्ष ॥ १९ ॥

मुद्गर कूट पाश शूल उलूखल पर्वत दीप्त शतघ्नी दारुण दण्डोंसे॥ २०॥सब ओरसे उन्हें घेर प्रहार करने लगे उन महात्माका उससे थोडाभी अपकार न हुआ ॥२१॥वे दानव हाथमें पाश लिये महेन्द्रके वज्र और अशनिके तुल्य वेगवाले सब ओरसे बाहुओंमें अस्त्र उठाये तीन शिरवाले सर्पके समान स्थित हुए२२॥ सुवर्णकी मालाओंसे भूषित शरीर अनेक गदा और शस्त्रोंसे शरीर सज्जित किये मोतियोंकी मालासे भूषित शरीर विशालपंखवाले हंसोंके समान शोभित होते थे॥२३॥ वायुके समान पराक्रमी उनके बाजूबंद माला वलय (कंकन) खंडुए उत्तम शरीरोंमें महाशोभाको प्राप्त होते थे. जो प्रभातकालके

मुद्गरैः कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतैः शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥ २० ॥ परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्नस्त्रैर्हरिं तदा ॥ स्वल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मनः ॥२१॥ ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ॥ समन्ततोऽभ्युद्यत-बाहुशस्त्राः स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्राः ॥२२॥ सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा नानाङ्गदाभोगपिनद्धगात्राः ॥ मुक्तावलीदामविभूषिताङ्गा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥ २३ ॥ तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमालावलयोत्कटानि ॥ तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २४ ॥ तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलतानलोपमैर्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ ॥ गिरिर्यथा संततवर्षि-भिर्घनैः कृतान्धकारो द्रुतकन्दरद्रुमः ॥२५॥ तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः ॥ नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापवान् स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥२६॥ संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा ॥ भयाद्विचेलुः पवनोद्धता यथा महोर्मयः सागरवारिसंभवाः ॥ २७ ॥

सूर्यके समान शोभित होते थे ॥ २४ ॥ वह सूर्यके समान बडे बडे अस्त्रोंको जो अग्निकी तुल्य प्रभावाले थे प्रहार करते शोभित हुए जिस प्रकार निरन्तर वर्षावाले घनोंसे अंधकारको प्राप्त हो कंदराके वृक्ष शोभित होते हैं॥२५॥उन सम्पूर्ण दैत्योंके मिलकर एकसाथ बाणप्रहार करने पर भगवान् प्रतापवान् संग्राममें कंपित न हुए और हिमालयके समान स्वभावमें स्थित रहे ॥ २६ ॥ जब अग्निके समान नृसिंहजीने दितिके पुत्रोंको तापित किया

तब वह भयसे चलायमान हुए. जैसे पवनसे प्रेरणा की सागरकी तरंगें चलायमान होती हैं ॥ २७ ॥ वह बडे वेगसे सौ धनुषोंद्वारा युगान्तकालके समान बाणोंको एकसाथ नृसिंहके ऊपर छोडने लगे क्रोधसे असुरोंके अंग दीप्तिमान् हो गये॥ २८॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ वैशंपायन बोले; खर खरमुख मकर सर्पमुख ईहामृग वराहमुख ॥१॥ बालसूर्यके समान मुखवाले धूमकेतुके समान मुखवाले चन्द्र अर्द्धचन्द्र प्रदीप्ताग्निमुख ॥ २ ॥ हंस कुक्कुटमुख मुख फैलाये भयावने पंचमुख जीभ चाटते हुए काक और

शतैर्धनुर्भिः सुमहातिवेगा युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान् ॥ एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥वैशम्पायन उवाच ॥ खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः॥ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहसदृशाननाः॥१॥बालसूर्यमुखाश्चैव धूमकेतुमुखास्तथा॥चन्द्रार्द्धचन्द्रवक्त्राश्च प्रदीप्ताग्निमुखास्तथा ॥२॥ हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ॥ पञ्चास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥३॥ विद्युज्जिह्वास्त्रिशीर्षाश्च तथोल्कासन्निभाननाः॥महाग्राहनिभाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः॥४॥कैलासवपुषस्तस्य शरीरे शरवृष्टयः ॥ अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे ॥५॥ एवं भूयोऽपरान्घोरानसृजन्दानवाः शरान् ॥ मृगेन्द्रस्योसि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः॥६॥ ते दानवशरा घोरा मृगेन्द्राय समीरिताः॥ विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते॥७॥ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः॥ मृगेन्द्रायाक्षिपन्त्याशु प्रज्वलन्तीव सर्वशः॥८॥तैरासीद्गगनं चक्रैः संपतद्भिः समावृतम्॥युगान्ते संप्रकाशद्भिश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥९॥

॥ ९० ॥

गृध्रोंके मुखवाले ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्व त्रिशीर्ष उल्कामुख महाग्राहके समान बलदर्पित दानव ॥ ४ ॥ कैलासके समान शरीरवाले नृसिंहजीके शरीरमें बाण वर्षा करने लगे, परन्तु वह अवध्य मृगेन्द्रके शरीरमें व्यथा न कर सके॥५॥इस प्रकार वह दानव शरवर्षा करते हुए मृगेन्द्रके हृदयमें क्रोधकर सर्पके समान बाणप्रहार करने लगे ॥ ६ ॥ वे नृसिंहजीके ऊपर छोडे हुए दानवोंके बाण आकाशमें ऐसे लीन हो गये जैसे पर्वतमें खद्योत ॥ ७ ॥ तब वे दैत्य क्रोधकर दिव्यचक्र प्रज्वलित होते हुए नृसिंहजीके ऊपर प्रहार करने लगे॥८॥उनके पतनसे चारों ओर आकाश व्याप्त हो गया, जैसे

युगान्तमें चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश करते हैं ॥९॥ वह चक्र उनके मुखमें ऐसे प्रवेश करने लगे, जैसे मेघकी गुहामें अथवा जैसे चन्द्रसूर्य मेघोंमें प्रवेश कर जाते हैं॥१०॥महात्मा मृगेन्द्रने अग्निके समान प्रदीप्त वे सब चक्र निगल लिये ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुने फिर एक महाघोर अग्निके समान प्रज्वलित शक्ति उनके ऊपर छोडी॥१२॥मृगेन्द्रने उस शक्तिको आता देख अपने महाहुंकारसेही उसको नष्ट कर डाला॥१३॥ मृगेन्द्रसे तोडी हुई वह शक्ति पृथ्वीमें शोभित होने लगी,जैसे विस्फुलिंगों सहित जलती हुई उल्का पृथ्वीमें गिरती है॥१४॥वह नाराचोंकी पंक्ति उन मृगें-

तानि चक्राणि वदनं प्रविशन्ति विभान्ति वै॥ मेघोदरदरीं घोरां चन्द्रसूर्यग्रहा इव॥१०॥तानि चक्राणि सर्वाणि मृगेन्द्रेण महात्मना निर्गीर्णानि प्रदीप्तानि पावकार्चिःसमानि वै ॥११॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ॥ शक्तिं प्रज्वलितां घोरां हुताशनसप्रभाम् ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुत्तमाम् ॥ हुंकारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥ १३ ॥ रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले ॥ सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव नभश्च्युता ॥ १४ ॥ नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य सृष्टा रेजे विदूरतः॥ नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥१५॥ गर्जित्वा तु यथाकामं विक्रम्य च यथासुखम् ॥ तत्सैन्यमुत्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥१६॥ ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ॥ नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिकूटैर्महाप्रभैः ॥१७॥ तदश्मवर्षं सिंहस्य गात्रे निपतितं महत् ॥ दिशो दश प्रकीर्णं हि खद्योतप्रकरो यथा ॥१८॥ तदश्मौघैर्दितिसुतास्तदा सिंहमरिंदम ॥ प्रच्छादयन्यथा मेघो धाराभिरिव पर्वतम् ॥१९॥ न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवमास्थितम् ॥ भीमवेगा बलश्रेष्ठं समुद्रा इव पर्वतम् ॥२०॥

द्रसे दूरही शोभित हुई,जैसे नीले कमलोंकी माला शोभित होती है ॥ १५ ॥ यथायोग्य गर्जना और अपना विक्रमकर नृसिंहजीने ऐसे उस सेनाको नष्टकर दिया जैसे पवन तृणको नष्ट कर देती है॥१६॥तब दैत्य आकाशसे पत्थरोंकी वर्षाकरने लगे वह पर्वतोंके समान शिलाखण्ड महाकांतिमान् पडने लगे ॥१७॥ वह पत्थरोंकी वर्षा नृसिंहजीके शरीरपर होने लगी. दशों दिशा खद्योतके समान उससे प्रकाशित होने लगीं॥१८॥ तब दितिकुमार महापर्वतोंसे सिंहको ऐसे आच्छादन करने लगे,जैसे मेघ धाराओंसे पर्वतोंको आच्छादन करते हैं ॥ १९ ॥ उन देवको दैत्यसमूह

चलायमान करनेको समर्थ न हुए, जैसे समुद्र पर्वतको चलायमान नहीं कर सकते हैं ॥ २० ॥ तब पर्वतोंकी वर्षा होनेमें निरंतर जलकी वर्षाभी होने लगी. अक्षमात्र धारा चारों ओरसे पतित होने लगी॥२१॥ आकाशसे बडी तीक्ष्ण जलधारा सहस्रों गिरने लगीं उनसे दिशा विदिशा आकाश सब ओरसे व्याप्त हो गया ॥२२॥ धाराके संपात और वायुके स्फूर्जनसे तथा वर्षाके वेगसे कुछभी विदित नहीं होता था ॥२३॥ वह आकाशसे पतित हुई धारा पृथ्वीमें पडती थीं पृथ्वीमें गिरकर उनको स्पर्श नहीं करती थीं॥२४॥बाहरसेही जल वर्षता था मेघके ऊपरसे नहीं तब मायासे वह मृगं-

ततोऽश्मवर्षे निहते जलवर्षमनन्तरम् ॥ धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ २१ ॥ नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः सहस्रशः ॥ आवृण्वन्त्सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२॥ धाराणां सन्निपातेन वायोर्विस्फूर्जितेन च ॥ वर्द्धता चैव वर्षेण न प्राज्ञायत किंचन ॥२३॥ धारा दिवि च संसक्ता वसुधायां च सर्वशः ॥ न स्पृशन्ति स्म तं तत्र निपतन्त्योऽनिशं भुवि ॥२४॥ बाह्यतो ववृषे वर्षं नोपरिष्टात्तु तोयदः ॥ मृगेन्द्रपतिरूपस्यस्थितस्य युधि मायया ॥२५॥ हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ॥ ससृजुर्दानवा मायामग्निं वायुं च सर्वशः ॥ २६ ॥ नभसः प्रच्युतश्चैव तिग्मवेगः समन्ततः ॥ ज्वालामाली महारौद्रो दीप्ततेजाः समन्ततः ॥ २७ ॥ स सृष्टः पावकस्तेन दैत्येन्द्रेण महात्मना ॥ न शशाक महातेजा दग्धुमप्रतिमौजसम् ॥२८॥ तमिन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षोऽमितद्युतिः ॥ महतो तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥२९॥ तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवाः ॥ ससृजुर्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः॥३०॥तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु वै ॥ स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ॥३१॥

द्रसे युद्ध करनेको स्थित हुआ ॥ २५ ॥ जब पत्थर और जलवर्षा शांत हो गई तब दानवोंने मायासे अग्नि और वायुकी रचना की ॥ २६ ॥ तब चारों ओर आकाशसे तीक्ष्णतेजसे युक्त ज्वालामालासे युक्त महारौद्र अग्नि पतितहोने लगी ॥ २७ ॥ जब महात्मा दैत्येन्द्रने अग्निकी रचना की तथापि वह अग्नि उन महातेजस्वीको जलानेको समर्थ नहीं हुआ ॥ २८ ॥ उसको सहस्राक्ष महाकांतिमान्‌ने बडी भारी जलवर्षासे शान्त कर दिया ॥२९॥ दानव उस मायाके नष्ट होनेसे महाघोर अंधकारकी रचना करते हुए ॥ ३० ॥ जब अंधकार व्याप्त कर दैत्योंने अस्त्र उठाये तब

वह नृसिंह अपने तेजसे व्याप्त हो सूर्यके समान शोभित हुए॥ ३१॥ दानव रणमें इनकी त्रिशिखा भृकुटी देखने लगे जैसे ललाटरूपी त्रिकूटमें त्रिपथगामिनी गंगा स्थित हो ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ वैशंपायन बोले; जब सम्पूर्ण माया नष्ट हो गई तब दैत्य व्याकुल हो हिरण्यकशिपुकी शरणमें गये ॥ १ ॥ तब क्रोधसे जलते और तेजसे दग्ध करते हुए हिरण्यकशिपु दैत्यने क्रोधसे पृथ्वीको चलायमान कर दिया ॥२॥ उस समय जलके आकर सागर चलायमान हो गये और वनके कानन द्रुम सब चला-

त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे ॥ ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ॥ हिरण्यकशिपुं सर्वे विषण्णाः शरणं गताः ॥१॥ ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा॥हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चालयामास मेदिनीम्॥२॥ ततः प्रक्षुभिताः सर्वे सागराः सलिलाकराः ॥ चलिता गिरयः सर्वे सकाननवनद्रुमाः ॥३॥ तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ॥ तमसा समभूच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ॥४॥ अवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समीरणः ॥ पराहः संवहश्चैव उद्वहश्च महाबलः ॥५॥ तथा परिवहः श्रीमान्मारुता भयशंसिनः ॥ इत्येते क्षुभिताः सप्त मारुता गगनेचराः ॥६॥ ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ॥ ते ग्रहा गगने हृष्टा विचरन्ति यथासुखम् ॥७॥ अयोगतश्च तारासु सर्वेष्वृक्षेषु संगताः ॥ सग्रहं सहनक्षत्रं प्रजज्वाल नभो नृप ॥ ८ ॥ विवर्णत्वं च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ॥ कृष्णः कबन्धश्च महांल्लक्ष्यते च नभस्तले ॥ ९ ॥

यमान हो गये ॥ ३ ॥ उस दैत्यके क्रोध करनेपर जगत् अंधकारमय हो गया और अंधकार व्याप्त होनेसे कुछ दिखाई नहीं देता था ॥ ४ ॥ आवह प्रवह विवह पराह संवह उद्वह महाबल ॥ ५ ॥ परिवह यह भयदायक पवन चलने लगी, यह आकाशचारी सातों पवन क्षुभित हो गईं ॥ ६ ॥ जो ग्रह सब लोकके क्षयमें प्रादुर्भूत होते हैं वे ग्रह प्रसन्न हो आकाशमें विचरने लगे ॥ ७ ॥ नियत गतिवाले तारा नक्षत्र अनियत गतिवाले हो गये ग्रह नक्षत्र सहित आकाशमें जल उठा ॥ ८ ॥ सूर्यभी आकाशमें कान्तिहीन हो गया आकाशमें काला कबंध दीखने लगा ॥ ९ ॥

सूर्यमेंसे काला धूम निकलने लगा और आकाशमें वारंवार सूर्य तपित होने लगे ॥ १० ॥ सात सूर्य धूम्रवर्ण आकाशमें स्थित हुए सात ग्रह चन्द्रमाके शृंगगामी हुए ॥ ११ ॥ अर्थात् वाम और दक्षिणमें शुक्र और बृहस्पति स्थित हुए, शनैश्वर और लाल सूर्यके समान कान्तिमान् मंगल ॥ १२ ॥ यह सब एकसाथ कठिन मार्गमें आरोहण करने लगे, इनके सुवर्णमय शृंग युगान्तके समान दीखने लगे ॥ १३ ॥ चन्द्रमा नक्षत्र और सात ग्रहोंसे आवृत हुआ और चराचरके विनाशके निमित्त रोहिणीसे प्रसन्न नहीं हुआ ॥ १४ ॥ राहुसे गृहीत

अमुञ्चच्चासितां सूर्यो धूमवर्तिं भयावहाम् ॥ गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परितप्यते ॥ १० ॥ सप्तधूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः ॥ सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ॥ ११ ॥ वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ॥ शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहितार्कसमद्युतिः ॥ १२ ॥ समं समभिरोहन्ति दुर्गाणि गगनेचराः ॥ शृङ्गाणि कनकैर्घोरा युगान्तावर्तका ग्रहाः ॥१३॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सप्तभिरावृतः ॥ चराचरविनाशार्थं रोहिणीं नाभ्यनन्दत ॥१४॥ गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ॥ उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे प्रचेलुर्घोरदर्शनाः ॥१५॥ देवानामपि यो देवः सोऽभ्यवर्षत शोणितम् ॥ अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपाः सनिःस्वनाः ॥ १६ ॥ अकाले पादपाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्तिच ॥ लताश्च सफलाः सर्वा याः प्राहुर्दैत्य नाशनम् ॥ १७ ॥ फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च ॥ उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च ॥ १८ ॥ विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमयन्ति ज्वलन्ति च ॥ प्रतिमाः सर्वदेवानां कथयन्ति युगक्षयम् ॥ १९ ॥

हुआ चन्द्रमा उल्कासे ताडित होने लगा और चन्द्रमासे घोररूप उल्का चलायमान होने लगी ॥ १५ ॥ देवादिदेव मेघोंसे रुधिर वर्षने लगा विजलीके समान शब्द करती उल्का आकाशमें गिरी ॥ १६ ॥ अकालमें वृक्षोंमें फूल फल लगि आये और फलवती होकर सब लता दैत्यका नाश कथन करने लगी ॥ १७ ॥ फलमें फल पुष्पमें पुष्प लगने लगे आंखें खोलती मीचती हंसती रोती ॥ १८ ॥ चिल्लाती धूम्र छोडती ज्वलित होती

हुई सब देवताओंकी प्रतिमा युगक्षय कीर्तन करने लगीं ॥१९॥ अरण्यपशु पक्षियोंका ग्राम्यपशुओंसे संयोग हुआ और मृगेन्द्रके उपस्थित होनेमें भयंकर स्वरसे शब्द करने लगे ॥२०॥ नदियोंका जल मैला और प्रतिकूल गमन करने लगा अपराह्णमें प्राप्त होकरभी सूर्यकी छाया न परिवर्तित हुई ॥२१॥ दिशा रेणुसे व्याप्त हो प्रकाशित न हुई पूजनयोग्य वनस्पतियोंका पूजन नहीं हुआ ॥ २२ ॥ वायु वेगसे चलकर वस्तुओंको तोडने लगा उस समय किसीभी प्राणीकी छायाका परिवर्तन न हुआ ॥ २३ ॥ सूर्यके अपराह्णके प्राप्त होनेपर युगक्षय दीखने लगा तब हिरण्यकशिपु दैत्यके

आरण्यैःसह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः॥ चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगेन्द्रे समुपस्थिते ॥२०॥ नद्यश्च प्रतिलोमा हि वहन्ति कलुषोदकाः॥ अपराह्णगते सूर्ये लोकानां क्षयकारके ॥ २१ ॥ न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥ वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ॥ २२ ॥ वायुवेगेन हन्यन्ते भिद्यंते प्रणुदन्ति च ॥ तदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्त्तते ॥ २३ ॥ अपराह्णगते सूर्ये लोकानां च युगक्षये ॥ तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः॥२४॥भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु॥ तथैव चायुधागारे धूमराजिरदृश्यत ॥ २५ ॥ स च दृष्ट्वा महोत्पातान् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ पुरोहितं तदा शुक्रं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ किमर्थं भगवन्नेते महोत्पाताः समुत्थिताः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ २७ ॥ शुक्र उवाच ॥ शृणु राजन्नवहितो वचनं मे महासुर ॥ यदर्थमिह दृश्यन्ते महोत्पाता महाभयाः ॥२८॥ यस्यैते संप्रदृश्यन्ते राज्ञो राष्ट्रे महासुर ॥ देशो वा ह्रियते तस्य राजा वा बन्धमर्हति ॥ २९ ॥

ऊपरके स्थानके ॥२४॥ भाण्डागार और आयुधागारमें शहतकी मक्खी छत्ता रखने लगी और इसी प्रकार आयुधागारमें धूमराजि दीखनेलगीं॥२५॥ तब हिरण्यकशिपु इन महाउत्पातोंको देख अपने पुरोहित शुक्रसे यह वचन बोला ॥२६॥ हे भगवन् ! यह महाउत्पति किस कारणसे होते हैं यह मैं तत्त्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं इसमें मुझको परम कौतूहल है ॥ २७ ॥ शुक्र बोले; हे राजन् ! हमारे हितके वचन सुनो.जिस कारण यह भय देनेवाले महाउत्पात दिखाई देते हैं ॥ २८ ॥ हे महाअसुर ! जिसके राज्यमें इस प्रकारके उत्पात सुनाई वा दिखाई देते हैं या उसका देश हरण होता

है वा राजा बंधनमें पडता है ॥२९॥ इससे बुद्धिपूर्वक विचारनेसे सर्वनाश विदित होता है इसमें संदेह नहीं कि बडा भय आनकर प्राप्त होगा ॥३०॥ जब शुक्रने हिरण्यकशिपुसे यह वचन कहे तब स्वस्ति कहकर वह दैत्यपतिसे विदा हो अपने स्थानको गया ॥ ३१ ॥ उनके जानेपर वह दैत्येन्द्र बहुत समयतक विचार करता रहा और दीन हो वह ब्रह्माके वचनोंको स्मरण करने लगा कि असुरोंका नाश और सुरोंका विजय होगा ॥ ३२ ॥ इसीके कारण यह घोर उत्पात सुनाई आते हैं तथा औरभी अनेक उत्पात दीखते हैं ॥ ३३ ॥ यह कालनिर्मित उत्पात दैत्योंके नाश करनेकोही

अतो बुद्ध्या समीक्षस्व यथा सर्वं प्रणश्यति ॥ बृहद्भयं हि न चिराद्भविष्यति न संशयः ॥३०॥ एतावदुक्त्वा शुक्रस्तु हिरण्यकशिपुं तदा॥स्वस्तीत्युक्त्वा तु दैत्येन्द्रं जगाम स्वं निवेशनम् ॥३१॥ तस्मिन् गते स दैत्येन्द्रो ध्यातवान्सुचिरं तदा ॥ आसांचक्रे सुदीनात्मा ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन् ॥असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ॥३२॥ दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः॥एते चान्ये च बहवो घोरा ह्युत्पातदर्शनाः॥३३॥दैत्येन्द्राणां विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः ततो हिरण्यकशिपुर्गदामादाय सत्वरम् ॥३४॥ अभ्यद्रवत वेगेन धरणीमनुकम्पयन् ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यदा संस्पृष्टवान्महीम् ॥३५॥ संदष्टोष्ठपुटः क्रोधाद्वराह इव पूर्वजः॥ मेदिन्यां कंपमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना॥३६॥महीधरेभ्यो नागेंद्रा निपेतुर्भयविक्लवाः॥ विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ॥३७॥ चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः॥वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ॥३८॥

दीखते हैं तब हिरण्यकशिपुने बहुत शीघ्र गदाको ग्रहण कर ॥ ३४ ॥ धरणीको कंपायमान करते बहुत शीघ्रतासे गमन किया, जिस समय दैत्य हिरण्यकशिपुने पृथ्वीका स्पर्श किया ॥ ३५ ॥ तब अपने होठसे होठ चाटते हिरण्याक्षके समान जब उस दैत्यने मेदिनी कंपित की ॥ ३६ ॥ तब पीडित हो पृथ्वीमेंसे बडे बडे सर्प निकलने लगे और विषकी ज्वालासे व्याकुल हो अग्निको वमन करने लगे ॥ ३७ ॥ चार पांच तथा सात शिरके सर्प वासुकि तक्षक कर्कोटक धनंजय ॥ ३८ ॥

एलापत्र कालीय महापद्म सहस्रशिरके नाग हेमतालध्वज प्रभु ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! शेष अनन्त दुष्प्रकंप प्रकंपित दीप्तजलके अन्तरमें रहनेवाले पृथ्वीके धारण करनेवाले निकले ॥४०॥ क्रोध कर दैत्यने यह सब कंपित कर दिये पातालतलमें विचरनेवाले नागतेजधारी मंगलरूप॥४१॥ और जलभी सहसा क्रोध करनेसे कंपहीन हुए भागीरथी नदी सरयू कौशिकी ॥ ४२ ॥ यमुना कावेरी कृष्णा वेणी सुवेणा महाभागा गोदावरी॥४३॥ चर्मण्वती नदनदीपति सिंधु मेकलप्रभव शोण मणिनिभोदक ॥४४॥ सुस्रोता नर्मदा वेत्रवती गोमती गोकुलसे आकीर्ण पूर्णा सरस्वती ॥ ४५ ॥

एलापत्रश्च कालीयो महापद्मश्च वीर्यवान् ॥ सहस्रशीर्षधृङ्नागो हेमतालध्वजः प्रभुः ॥३९॥ शेषोऽनन्तो महीपालो दुष्प्रकम्पः प्रकम्पितः ॥ दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ॥४०॥ तदा क्रुद्धेन दैत्येन कम्पितानि समन्ततः ॥ पातालतलचारिण्यो नागतेजोधराः शिवाः ॥४१॥ आपश्च सहसा क्रुद्धा दुष्प्रकम्प्यरसाः शुभाः ॥ नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥४२॥ यमुना चैव कावेरी कृष्णा वेणा तथैव च ॥ सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा ॥ ४३ ॥ चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ॥ मेकलाप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥४४॥ सुस्रोता नर्मदा चैव तथा वेत्रवती नदी ॥ गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्णा सरस्वती ॥ ४५ ॥ मही कालनदी चैव तमसा पुण्यवाहिनी ॥ सिता चेक्षुमती चैव वेदिका च महानदी ॥ ४६ ॥ जम्बुद्वीपं रत्नवन्तं सर्वरत्नोपशोभितम् ॥ सुवर्णकूटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ॥४७॥ महानदश्च लोहित्यः शैलकाननशोभितः॥ पत्तनं कौशिकारण्यं द्रविडं रजताकरम्॥४८॥मागधांश्च महाग्रामानङ्गान्वङ्गांस्तथैव च ॥ सुह्मान्मल्लान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् ॥ ४९ ॥ भुवनं वैनतेयस्य सुवर्णस्य च कम्पितम् ॥ कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा ॥ ५० ॥

मही कालनदी तमसा पुण्यवाहिनी सिता इक्षुमती महानदी वेदिका ॥ ४६ ॥ रत्नवाला जम्बुद्वीप सब रत्नोंसे शोभित सुवर्णकूट सुवर्ण आकरसे मंडित ॥ ४७ ॥ महानद लोहित्य शैलकाननसे शोभित कौशिकवन पत्तन द्रविड रजताकर ॥ ४८ ॥ मागध महाग्राम अंग वंग कलिंग सुह्म मल्ल विदेह मालवान् काशी कोसल ॥ ४९ ॥ गरुडका भवन सुवर्णका कंपित कैलासके शिखरके आकार विश्वकर्माका बनाया हुआ ॥ ५० ॥

रक्ततोय भीमवेग लोहित्य सागर (लालसमुद्र[1]) सुन्दर पांडुवर्ण मेघके समान कान्तिमान् क्षीरसागर ॥ ५१ ॥ हे राजेन्द्र ! सौ योजन ऊंचा उदय पर्वत नागपक्षसे सेवित सुवर्णवेदिक ॥५२॥ सूर्यके समान प्रकाशित जातरूपमय वृक्ष शाल ताल तमाल और कर्णिकारके पुष्पोंसे युक्त ॥५३॥ विपुल अयोमुख और सब प्रकार धातुसे मंडित तमाल वनगंध सुन्दर मलयपर्वत ॥ ५४ ॥ सुराष्ट्र सुबाह्लीक भोज पांडु वंग कलिंग ताम्रलिप्त ॥५५॥ अंध्र पुंड्र वामचूड केरल देशोंसहित उस दैत्यने अप्सरा और दैत्योंको क्षुभित कर डाला ॥५६॥ अगम्य पूर्वनिर्मित अगस्त्य भवन

रक्ततोयो भीमवेगो लौहित्यो नाम सागरः ॥ शुभः पाण्डुरमेघाभः क्षीरोदश्चैव सागरः ॥ ५१ ॥ उदयश्चैव राजेन्द्र उच्छ्रितः शतयोजनम् ॥ सुवर्णवेदिकः श्रीमान्नागपक्षिनिषेवितः ॥ ५२ ॥ भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकाभिश्च पुष्पितैः ॥ ५३ ॥ अयोमुखश्च विपुलः सर्वतो धातुमण्डितः ॥ तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥ ५४ ॥ सुराष्ट्रश्च सुबाह्लीकाः शूराभिरास्तथैव च ॥ भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥५५॥ तथैवान्ध्राश्च पुण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः ॥ क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाः साप्सरोगणाः ॥५६॥ अगस्तिभुवनं चैव यदगम्यं पुराकृतम् ॥ सिद्धचारणसङ्घैश्च सेवितं सुमनोहरम् ॥५७॥ विचित्रनागविहगं सुपुष्पितलताद्रुमम् ॥ जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणसेवितम् ॥ ५८ ॥ गिरिः पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः ॥ उत्थितः सागरं भित्त्वा वयस्यश्चन्द्रसूर्ययोः ॥५९॥ रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव ॥ सूर्यचन्द्रांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतः ॥ ६० ॥

सिद्ध चारणोंके समूहोंसे सेवित ॥५७॥ विचित्र नाग विहंगमोंसे युक्त पुष्पित लतावाले वृक्षोंसे व्याप्त सुवर्णके शृंगवाले पर्वत अप्सराओंसे सेवित ॥५८॥ पुष्पोंसे व्याप्त पर्वत लक्ष्मीके समान प्रियदर्शन सागरको भेदकर चन्द्रसूर्यकी समान उठा ॥५९॥ और महाशृंगोंसे आकाशको लिखता हुआसा शोभित हुआ चंद्रसूर्यके समान कांतिवाले सागरके जलसे व्याप्त ॥ ६० ॥

---

[1] अंग्रेजीमें इसीको रेड सी (Red sea) कहते हैं.

विद्युद्वान् श्रीमान् पर्वत सौ योजन ऊंचा कि जिस पर्वतपर वारंवार विजलीका पात होता है ॥ ६१ ॥ सबसे श्रेष्ठ श्रीमान् ऋषभ पर्वत कुंजर पर्वत जिसपर अगस्त्यजीका बडा घर है ॥ ६२ ॥ विशाल गलीवाली दुर्धर्ष सपाकी पुरी तथा भोगवती पुरी उस दैत्यके भयसे कंपित हो गई ॥६३॥ महामेघ पारियात्र पर्वत चक्रवाक गिरि वाराह पर्वत॥६४॥प्राग्ज्योतिषपुर जो सुवर्णमय है जिसमें दुष्टात्मा नरक नाम दैत्य निवास करता है ॥६५॥ पर्वतश्रेष्ठ मेरु महागंभीर शब्दसे युक्त हे राजन् ! जिसके चारों ओर साठ सहस्र पर्वत हैं ॥ ६६ ॥ तरुणसूर्यके समान महेन्द्र पर्वत वह पर्वतराज

विद्युद्वान्पर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम् ॥ विद्युतां यत्र संपाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ॥६१॥ ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः ॥ कुञ्जरः पर्वतश्चैव यत्रागस्त्यगृहं महत् ॥ ६२ ॥ विशालरथ्या दुर्धर्षा सर्पाणामालया पुरी ॥ तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता ॥६३॥ महामेघगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ॥ चक्रवांश्च गिरिः श्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ॥६४॥ प्राग्ज्योतिषपुरं चैव जातरूपमयं शुभम् ॥ यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥६५॥ मेरुश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ षष्टिं तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशांपते ॥६६॥ तरुणादित्यसंकाशो महेन्द्रश्च महागिरिः ॥ देवावासः शुभः पुण्यो गिरिराजो दिवं गतः ॥६७॥ हेमशृङ्गो महाशैलस्तथा मेघसखो गिरिः ॥ कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः॥६८॥ यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवित कन्दरः ॥ श्रीमान्मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः ॥६९॥ हेमपुष्करसंच्छन्नं तेन वैखानसं सरः ॥ कम्पितं मानसं चैव राजहंसैर्निषेवितम् ॥७०॥ त्रिशृङ्गः पर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा ॥ तुषारचयसंकाशो मन्दरश्चैव पर्वतः ॥ ७१ ॥ उशीबीजश्च गिरी रुद्रोपस्थस्तथाद्रिराट् ॥ प्रजापतेश्च निलयस्तथा पुष्करपर्वतः ॥ ७२ ॥

देवताओंका निवासस्थान होनेसे मानो स्वर्गमें प्राप्त है॥६७॥हेमशृंग महापर्वत मेघसखा और दुष्कंप कैलासकोभी दानवेन्द्रनेकंपित करदिया॥६८॥ जिसकी कंदरा नित्य यक्षराक्षसोंसे सेवित हैं श्रीमान् मनोहर नित्य पुष्पितवृक्षोंवाले॥६९॥तथा हेमकमलसे व्याप्त वैखानस सरोवर और राजहंसोंसे सेवित मानससरोवरभी कंपित कर दिया॥७०॥त्रिशृंग पर्वत नदीश्रेष्ठ कुमारी तुषारसमूहके समान मंदर पर्वत॥७१॥ उशीर बीज पर्वत रुद्रके

निवासका स्थान पर्वतराज प्रजापतिका स्थान पुष्कर पर्वत॥७२॥देवावृत पर्वत वालुक पर्वत क्रौंच सप्तर्षि तथा धूमपर्वत ॥७३॥ यह पर्वत तथा देश और जनपद नदी और सागर सब उस दानवने कंपित कर दिये॥७४॥ महीपुत्र व्याघ्राक्ष और कपिल आकाशचारी निशाके पुत्र पातालतलके निवास करनेवाले ॥ ७५ ॥ रुद्रके गण मेघनाद करनेवाले अंकुश हाथमें लिये ऊर्ध्वगामी भीमवेगवान् सबही कंपित कर दिये ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ वैशंपायन बोले;आदित्य साध्य विश्वेदेवा मरुत

देवावृत्पर्वतश्चैव तथा वै वालुकागिरिः ॥ क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूमवर्णश्च पर्वतः ॥७३॥ एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा॥ नद्यश्च सागराश्चैव दानवेन्द्रेण कम्पिताः ॥७४॥ कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षश्चैव कम्पितः ॥ खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलवासिनः ॥७५॥ गणास्तथा परे रौद्रा मेघनादाङ्कुशायुधाः ॥ ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च मरुतस्तथा ॥ रुद्रा देवा महात्मानो वसवश्च महाबलाः ॥ १ ॥ आगम्य ते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः ॥ ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः ॥२॥ जहि देव दितेः पुत्रं दानवं लोकनाशनम् ॥ दुर्वृत्तमसदाचारं सह सर्वैर्महासुरैः ॥ ३ ॥ त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन ॥ तन्नाशय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु ॥४॥ त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः॥ ऋते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति॥५॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः॥ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम्॥६॥

रुद्र देव महात्मा वसु महाबली॥१॥वे सूर्यके समान प्रकाशमान मृगेन्द्रके निकट आकर लोकक्षयसे व्याकुलमन हो नारायणसे बोले ॥२॥ हे देव ! लोकनाशी इस दितिके पुत्र दैत्यको मारो. यह बडा दुर्वृत्त असदाचारसे युक्त सब असुरोंसे युक्त है ॥ ३ ॥ हे दैत्यनाशन ! तुमही इन दैत्योंके नाशक हो अन्य कोई नहीं है सो लोकके हितके निमित्त इसको मारकर जगत्का मंगल करो ॥ ४ ॥ तुम सब लोकोंके गुरु इन्द्र और पितामह हो, तुम्हारे सिवाय न कोई शरणदाता है न होगा ॥५॥ देवोंके आदिसंभव देव यह देवताओंके वचन सुन अतिगंभीर शब्दोंसे महानाद करने लगे॥६॥

इस महासिंहनादसे नृसिंहजीने असुरोंके हृदय फाड डाले और मन व्याकुल कर दिये ॥७॥ क्रोधवश नाम गण कालकेय वेग वैगलेय महाबली सिंहिकेय॥८॥संह्रादीय महानाद महावेगवान् कपिल महीपुत्र व्याघ्राक्ष क्षितिकंपन॥९॥खेचर निशापुत्र पातालतलनिवासी गण परम रौद्र मेघनाद अंकुश आयुध ॥ १०॥ ऊर्ध्वगामी भीमवेग भीम सूर्यलोचन वज्री शूली कराल हिरण्यकशिपु ॥ ११ ॥ घनमेघके समान प्रकाशमान, मेघके समान वेग-वान् घने बादलके समान शब्द तथा मेघके समान कान्तिवाले दर्पित दैत्यगण मृगेन्द्रके प्रति धावमान हुए॥ १२॥देवारि दितिपुत्र क्रोधकर नृसिंहके

पाटितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना ॥ सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च ॥७॥ गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथा परः ॥ वेगश्च वैगलेयश्च सिंहिकेयश्च वीर्यवान् ॥ ८ ॥ संह्रादीयो महानादो महावेगस्तथा परः ॥ कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥ ९ ॥ खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः ॥ गणस्तथा परो रौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः ॥ १० ॥ ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्मार्कलोचनः ॥ वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ॥ ११ ॥ जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान् ॥ जीमूतघनसं नादो जीमूतसदृशद्युतिः ॥ दृप्तैर्दैत्यगणैस्तुष्टो मृगेन्द्रेण महात्मना ॥ १२ ॥ देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समु-पाद्रवत् ॥ समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥ १३ ॥ तत्रोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि ॥ १४ ॥ मही च लोकश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ॥ नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात् ॥ १५ ॥ ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ यत्त्वया विहितं देव नारसिं-हमिदं वपुः ॥ एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः ॥ मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो ॥ १७ ॥

ऊपर झपटा तब इसके आनेपर मृगेन्द्रने अपने तीक्ष्ण महानखोंसे ॥१३॥ ओंकारकी सहायता द्वारा विदीर्ण कर डाला ॥१४॥ महीलोक चन्द्रमा आकाश ग्रह सूर्य सम्पूर्ण दिशा मही शैल उस दैत्यके मरनेसे प्रकाशित हुए॥ १५ ॥ तब प्रसन्न हो देवता और तपोधन ऋषि आदि देव सनातन नारायणको अनेक स्तुतियोंसे प्रसन्न करते हुए॥ १६ ॥ देवता बोले, हे देव ! जो आपने नृसिंह शरीर धारण किया है इसको परअवरके जाननेवाले

पूजन करेंगे. हे विभो! आप आजसे सब जीवोंमें तथा प्राणियोंमें अधिक होनेसे मृगेन्द्र हुए ॥ १७ ॥ तुमको मुनि नित्य मृगेन्द्र कहकर गावेंगे हे विभो! आपके प्रसादसे हम अपने स्थानको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ देवताओंके ऐसे कहनेपर महामनवाले नृसिंहजी प्रसन्न हुए और प्रसन्न हो ब्रह्माजी विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ आपही अक्षर अव्यक्त अचिन्त्य गुह्य तथा उत्तम हो कूटस्थ अकृत कर्ता सनातन अनामय हो ॥ २० ॥ जो तत्त्वअर्थमें निष्ठित सांख्य योगकी बुद्धिहै वह उसके द्वारा आपही वेद विद्यात्मा पुरुष निरन्तर ध्रुव जाने

गायन्ति त्वां च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः ॥ त्वत्प्रसादात्स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो ॥ १८ ॥ एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महामनाः ॥ ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णोः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ॥ कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम् ॥ २० ॥ सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता ॥ तां भवान्वेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः॥२१॥ त्वं व्यक्तश्च तथाव्यक्तस्त्वत्तः सर्वमिदं जगत्॥भवान्मया वयं देव भवानात्मा भवान्प्रभुः॥२२॥चतुर्विभक्तमूर्तिस्त्वं सर्वलोकविभुर्गुरुः ॥ चतुर्युगसहस्रेण सर्वलोकान्तकान्तकः ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठा सर्वभूतानामनन्तबलपौरुषः ॥ कपिलप्रभृतीनां च यतीनां परमा गतिः ॥ २४ ॥ अनादिमध्यनिधनः सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ॥ स्रष्टा त्वं च संहर्त्ता त्वमेको लोकभावनः ॥ २५ ॥ भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो वरुणो यमः ॥ भवान्कर्त्ता विकर्त्ता च लोकानां प्रभुरव्ययः ॥ २६ ॥

जाते हो ॥२१॥ आप व्यक्त अव्यक्त स्वरूप हो तुमसेंही यह सब जगत् स्थित है हम त्वन्मय हैं. हे देव! आपही सबके आत्मा प्रभु हो ॥ २२ ॥ आप चतुर्विभक्तमूर्ति और सब लोकके गुरु हो चार सहस्र देवयुग बीतनेसे जगत्का अन्त करते हो॥२३॥आपसेही सब भूतोंकी प्रतिष्ठा है आपमेंही अनन्त बल और पुरुषार्थ है आपही कपिल आदि यतियोंकी परम गति हो॥२४॥आपही अनादि मध्य निधन सर्वात्मा पुरुषोत्तम हो आपही उत्पन्न और संहार करनेवाले एकही लोकभावन हो ॥ २५ ॥ आप ब्रह्मारुद्र महेन्द्र वरुण यम हो आपही कर्ता विकर्ता लोकोंके अविनाशी प्रभु

हो ॥२६॥परम पिता परम देव परम मंत्र परम मन परम धर्म परम यश अग्र्य पुराणपुरुष आपहीको कहते हैं।।२७॥परम सत्य परम हवि परम पवित्र परम मार्ग परम यज्ञ परमहोत्र अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं ॥२८॥ परम शरीर परम धाम परम योग परम वाणी परम रहस्य परम गति अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं।।२९।। परंपरेसे भी परे जिससे कोई परे नहीं परमदेव परंपरसे परे प्रभु आपको अग्र्य और पुराणपुरुष कहते हैं ।। ३० ।। परेसेभी परे परमप्रधान परेसे परे तत्त्व परेसे परे धाता अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं।।३१।।परेसे परे परम रहस्य परेसे परे परम तप अग्र्यपुराण

परां च सिद्धिं परमं च देवं परं च मन्त्रं परमं मनश्च ॥ परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २७ ॥ परं च सत्यं परमं हविश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम् ॥ परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२८॥ परं शरीरं परमं च धाम परं च योगं परमां च वाणीम् ॥ परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २९ ॥ परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यापि परं च देवम् ॥ परं परस्यापि परं प्रभुं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३० ॥ परं परस्यापि परं प्रधानं परं परस्यापि परं च तत्त्वम् ॥ परं परस्यापि परं च धाता त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥३१॥ परं परस्यापि परं रहस्यं परं परस्यापि परं परं यत् ॥ परं परस्यापि परं तपो यत्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥३२॥ परं परस्यापि परं परायणं परं च गुह्यं च परं च धाम ॥ परं च योगं परम प्रभुत्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥३३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्त्सर्वलोकपितामहः ॥ स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ॥ क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥३५॥ नारसिंहीं तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः ॥ पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥

पुरुष आपको कहते हैं ।।३२।। परंपरेसे परे परायण परम गुह्य परम धाम परमयोग परम प्रभु आपको अग्र्य पुरातन पुरुष कहते हैं ।। ३३ ।। वैशंपायन बोले; इसप्रकार सब लोकके पितामहने जब कहा तब नारायणदेवको स्तुति कर अपने ब्रह्मलोकको चले गये तब बाजोंके बजने और अप्सराओंके नृत्य करनेपर भगवान् क्षीरसागरके उत्तर तटपर चले गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वहां उस नारसिंहशरीरको अदृश्य कर उसकी प्रतिमा स्थापन कर

पुराण चतुर्भुजरूपमें स्थित हो नारायण चले गये ॥ ३६॥ आठ चक्रके विभूति शोभित विमान अर्थात् श्रुतिप्रसिद्ध शब्द श्रोत्रादि ग्रह अतिग्राह-रूपसे निरन्तर चाल्यमान देहरूपी साधनसे वो अव्यक्त प्रकृति आठ आकारवाली है. उस अहंकारसे निकृष्ट देवात्मा नृसिंहरूपी अपने स्थान चिन्मात्रस्वरूपको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकार नृसिंहरूपधारी इन महात्माने पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यका वध किया था ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुबधकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ वैशंपायन बोले; नृसिंहचरित्र वर्णन किया अब फिर भी इसके उपरान्त वामनचरित्र वर्णन करते हैं जिसमें रूप धारण करनेवालोंमें

अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना ॥ अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः सस्थानमगमत्प्रभुः ॥३७॥ एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा ॥ देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनो परः ॥ यत्र वामनमास्थाय रूपं रूपविदां वरः ॥१॥ बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ॥ विक्रमैस्त्रिभिराक्रम्य त्रैलोक्यमखिलं हृतम् ॥२॥ समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता॥हृत्वा दत्त्वा सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना॥३॥जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन्नत्र कौतूहलं महत्॥कथं नारायणो देवो वामनत्वमुपागतः ॥४॥ यः पुराणे पुराणात्मा भूत्वा नारायणः प्रभुः ॥ पद्मनाभो महाबाहुर्लोकानां प्रकृतिध्रुवः ॥५॥ अनादिमध्यनिधनस्त्रैलोक्यादिः सनातनः ॥ देवदेवः सुराध्यक्षः कृष्णो लोकनमस्कृतः॥६॥

श्रेष्ठ नारायणने वामनरूप धारण किया ॥१॥ बली बलिके यज्ञमें महाबली विष्णुने अपने विक्रमसे त्रिलोकीको वशीभूत करलिया था ॥ २ ॥ समुद्र-पर्यन्त यह पृथ्वी अनेक पर्वतोंसे युक्त हरण कर विष्णुने सुरेन्द्रकेनिमित्त प्रदान की थी ॥३॥ जनमेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! इसमें मुझे परम कुतूहल और संदेहभी है कि नारायणदेवने क्यों वामनशरीर धारण किया ॥ ४ ॥ जो पुराणोंमें पुराणात्मा गाया जाता है वह नारायण प्रभु पद्मनाभ महाबाहु लोकोंकी प्रकृति ध्रुवरूप ॥ ५ ॥ अनादि मध्य निधन त्रैलोक्यके आदि सनातन देव देव सुरोंके अध्यक्ष कृष्ण लोकसे नमस्कृत॥ ६ ॥

हव्य कव्य ले जानेवाले श्रीमान् हव्यकव्यभोजी अविनाशी है वह देवमाता अदितिके गर्भमें कैसे प्राप्त हुए जो इन्द्रकेभी स्रष्टा हैं वह किस प्रकार वासवके अनुज हुए ॥ ७ ॥ वह उत्पन्न हो देवेश किस प्रकार विष्णुत्वको प्राप्त हुए. हे विप्र ! आप उन महात्माका प्रादुर्भाव मुझसे कहिये ॥ ८ ॥ वैशंपायन बोले; ऋषिश्रेष्ठोंसे पूजित इस कथाको श्रवण कीजिये जो पुराणोंमें विद्वानोंने कही है और ब्रह्माकी प्रेरणासे है अर्थात् नारायणका देवताओंमें पक्षपात नहीं है. सत्त्वप्रधानरूप देवताओंके हैं रजप्रधानरूप यक्ष राक्षसोंके तपप्रधानरूप भूतप्रेत पिशाचादिके होते हैं, सतोगुण सतोगुणको आकर्षण करता है, इसकारण नारायण देवताओंकी ओर सत्त्वगुणको प्राप्त होते हैं इन्द्रकेही पृथ्वीके बीज अंकुर तरुफलके समान पांच रूप हैं अर्थात् शुद्ध

हव्यकव्यवहः श्रीमान् हव्यकव्यभुगव्ययः ॥ अदित्या देवमातुश्च कथं गर्भेऽभवत्प्रभुः ॥ स्रष्टा यो वासवस्यापि स कथं वासवानुजः ॥ ७ ॥ प्रसूतो देवदेवेशो विष्णुत्वं प्राप्तवान्कथम् ॥ एतदाचक्ष्व मे विप्र प्रादुर्भावं महात्मनः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यामर्चिवामृषिपुङ्गवैः ॥ पुराणैः कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्राह्मणेरिताम् ॥ ९ ॥ मारीचस्य सुरेशस्य कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ आदितिर्दितिर्द्वे भार्ये भागिन्यौ जनमेजय ॥ १० ॥ अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः ॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ११ ॥ इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा ॥ तथैकादशमस्त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १२ ॥

शबल सूत्र विराट् विष्णुसंज्ञक उसमें शुद्ध निर्विशेष है विष्णु सर्वविशेषमें युक्त है और राजाके समान शिष्टोंपर अनुग्रह दुष्टोंपर निग्रह करता है यद्यपि सब उसीके अङ्ग हैं परन्तु (त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदंगुलीवोरगक्षता) अर्थात् सर्पसे काटी हुई अपनी अंगुलीभी तो त्याज्य है दुष्टकी तो कौन कहे इसी न्यायसे दुष्टोंका निग्रह करते हैं ॥९॥ देवताओंके ईश मरीचपुत्र कश्यपके अदिति और दिति यह दो विख्यात भार्या थीं॥१०॥ महात्मा कश्यपसे अदितिमें देवता हुए धाता अर्यमा मित्रवरुण अंश भग॥११॥इन्द्र विवस्वान् पूषा और दशवां पर्जन्य ग्यारहवां त्वष्टा और बार-

हवां विष्णु कहलाता है ॥ १२ ॥ दितिके बलवान् हिरण्यकश्यप हुआ उसका अनुज महाप्रतापी हिरण्याक्ष हुआ ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपुके घोर पराक्रमी पांच पुत्र हुए प्रह्लाद अनुह्लाद जंभ अनुह्रद और संह्लाद ॥ १४ ॥ प्रह्लादके विरोचन और उसका पुत्र बलि हुआ उनके बडे बली पुत्र और पौत्र अनेक हुए ॥१५॥वे तेजस्वी सुरारि दैत्येन्द्र मनस्वी जनोंके अनेक गण देशदेशमें स्थित हो गये॥१६॥ जब उन्होंने यह देखा कि नारसिंहने हिरण्यकशिपुको मार डाला तब दैत्योंने देवताओंके वधके निमित्त बलिको इन्द्र किया ॥ १७ ॥ इनको धर्ममें तत्पर सत्यवाक् जितेन्द्रिय शूरता

दित्यां जातो हि बलवान् हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ तस्यानुजस्य दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्च घोरपराक्रमाः ॥ प्रह्लादश्चानुह्लादश्च जम्भः संह्लाद एव च ॥ १४ ॥ विरोचनश्च प्राह्लादिस्तस्य पुत्रो बलिः स्मृतः ॥ पुत्रपौत्रं च बलवत्तेषामक्षयमव्ययम् ॥ १५ ॥ तेजस्विनां सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम् ॥ गणाः सुबहुशो राजन् देशे देशे सहस्रशः ॥ १६ ॥ ते दृष्ट्वा नारसिंहेन हिरण्यकशिपुं हतम् ॥ दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा धर्मपरं नित्यं सत्यवाक्यं जितेन्द्रियम् ॥ शौर्याध्ययनसंपन्नं सर्वज्ञानविशारदम् ॥ १८ ॥ परावरगृहीतार्थं तत्त्वदर्शिनमव्ययम् ॥ तेजस्विनं सुररिपुं हिरण्यकशिपुं यथा ॥ १९ ॥ अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा ॥ दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजयम् ॥ २० ॥ अभिषिक्तस्तदा दैत्यैर्बलिर्बलवतां वरः ॥ ब्रह्मणा चैव तुष्टेन हिरण्यकशिपोः पदे ॥ २१ ॥ अभिषिक्तोऽसुरगणैर्बलिर्वैरोचनिस्तदा ॥ काञ्चनैः कलशैः स्फीतैः सर्वतीर्थाम्बुसंवृतैः ॥ २२ ॥

अध्ययनमें सम्पन्न सम्पूर्णज्ञानमें विशारद देखकर॥१८॥कि पर अपरके अर्थ ग्रहण करनेमें समर्थतत्त्वदर्शी अव्यय तेजस्वी सुररिपु हिरण्यकशिपुके समान देखा ॥ १९ ॥ तब विरोचनपुत्र बलिको दिव्य अभिषेक किया सब दानवोंने उसको दैत्योंके आधिपत्यमें पूजन किया ॥ २० ॥ तब इस प्रकार दैत्योंने महाबली बलिका अभिषेक किया ब्रह्माकी संतुष्टतासेहिरण्यकशिपुके पदमें स्थापित किया ॥२१॥ इस प्रकार असुरोंने सब

तीर्थोंसे सोनेके कलशोंमें जल लाकर बलिको अभिषेक किया॥२२॥अभिषेक करके फिर दानव जयशब्द करने लगे जब कि अतुलबलवान् बली सिंहासनपर स्थित हुए थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार बली बलिको यह दैत्य अभिषेक कर अपने शिर पृथ्वीमें झुकाकर प्रार्थना करने लगे ॥ २४ ॥ दैत्य बोले; हे दैत्येन्द्र ! आपको विदित है जिस प्रकार हिरण्यकशिपुके वशवर्ती स्थावर जंगमात्मक त्रिलोकी थी ॥२५॥ नारायणने उन तुम्हारे पितामहको मारकर त्रिलोकी हरण कर इन्द्रको अभिषेक किया है ॥ २६ ॥ सो आप अपने पितामहके राज्य लौटानेको योग्य है. हे नाथ !

जयशब्दं ततश्चक्रुरभिषिक्तस्य दानवाः ॥ बलेरतुलवीर्यस्य सिंहासनगतस्य वै ॥२३॥ कृत्वेन्द्रं दानवाः सर्वे बलिं बलवतां वरम्॥ ततो विज्ञापयामासुःशिरोभिः पतिताः क्षितौ ॥२४॥ दैत्या ऊचुः ॥ विदितं तव दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपोर्यथा ॥ त्रैलोक्यमासीदखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२५॥ पितामहं तु हत्वा ते सुरेश्वरनिषूदन ॥ हृतं तदैव त्रैलोक्यं शक्रश्चैवाभिषेचितः ॥ २६ ॥ तत्पितामहराज्यं त्वं प्रत्याहर्तुमिहार्हसि ॥ अस्माभिः सहितो नाथ त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ २७ ॥ प्रत्यानयस्व भद्रं ते राज्यं पैतामहं प्रभो ॥ २८ ॥ असुरगणसहस्रसंवृतस्त्वं जय दिवि देवगणान्महानुभवान् ॥ अमितबलपराक्रमोऽसि राजन्नतिशयसे स्वगुणैः पितामहं स्वम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने बलेरभिषेको नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निशम्य तेषां वचनं महामतिर्बलिस्तदा प्रीतमना महाबलः ॥ आज्ञापयामास स दैत्यकोटिं त्रैलोक्यमद्यैव जयाम सर्वम् ॥ १ ॥

हमारे सहित यह त्रिलोकी ॥ २७ ॥ आप फेर लीजिये आपका मंगल हो पितामहका राज्य स्वीकार करो ॥ २८ ॥ सहस्रों असुरगणोंके सहित तुम स्वर्गमें रहनेवाले महानुभाव देवताओंको जीतो. हे राजन् ! तुम अमितबल और पराक्रमसे युक्त हो और गुणोंमें अपने पितामहसे अधिक हो ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने बलेरभिषेको नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ वैशंपायन बोले; महाबली उनके यह वचन सुन बहुत प्रसन्न हुए और वह दैत्यसमूहको आज्ञा देता हुआ कि हम सब अभी त्रिलोकीका जय करें ॥ १ ॥

इस प्रकार विरोचनपुत्र बलिके वचन सुन युद्ध दुर्मद दानव परम उद्योग करने लगे ॥ २ ॥ महापद्म निकुंभ कुंभकर्ण कांचनाक्ष कपिस्कंध मैनाक क्षितिकंपन ॥ ३ ॥ शितकेश ऊर्ध्ववक्त्र वज्रनाभ शिखाजटावाला सहस्रबाहु विकट व्याघ्राक्ष प्रियदर्शन ॥ ४ ॥ एकाक्ष एकपात मुंड विद्युदक्ष चतु-भुंज गजोदर गजशिरा गजस्कंध गजेक्षण ॥५॥ अष्टदंष्ट्र चतुरवक्र मेघनादी जलंधर कराल ज्वालजिह्वामुख शतांग शतलोचन ॥ ६ ॥ सहस्रपाद सुमुख कृष्ण महाअसुर रणोत्कट दानपति कैलकंपी कुलाकुली ॥ ७ ॥ समुद्र रभस चण्ड महाअसुर धूम्र गोत्रज गोक्षुर रौद्र गोदन्त स्वस्तिक

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलेर्वैरोचनस्य तु ॥ उद्योगं परमं चक्रुर्दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥ महापद्मो निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च वीर्य-वान् ॥ काञ्चनाक्षः कपिस्कन्धो मैनाकः क्षितिकम्पनः ॥ ३ ॥ शितकेशोर्ध्ववक्त्रश्च वज्रनाभः शिखी जटी ॥ सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः प्रियदर्शनः ॥४॥ एकाक्ष एकपान्मुण्डो विद्युदक्षश्चतुर्भुजः॥ गजोदरो गजशिरा गजस्कन्धो गजेक्षणः॥५॥ अष्टदंष्ट्रश्च-तुर्वक्रो मेघनादी जलंधरः ॥ करालो ज्वालजिह्वास्यः शताङ्गः शतलोचनः ॥६॥ सहस्रपादः सुमुखः कृष्णश्चैव महासुरः ॥ रणो-त्कटो दानपतिः शैलकम्पी कुलाकुलिः ॥७॥ समुद्रो रभसश्चण्डो धूम्रश्चैव महासुरः ॥ गोत्रजो गोक्षुरो रौद्रो गोदन्तः स्वस्तिवो ध्रुवः ॥ ८ ॥ मांसलो मांसभक्षश्च वेगवान्केतुमाञ्छिबिः ॥ पङ्कदिग्धशरीरश्च बृहत्कीर्तिर्महाहनुः ॥ ९ ॥ समप्रभो विकुम्भाण्डो विरूपाक्षो महोदरः ॥ श्वेतशीर्षश्चन्द्रहनुश्चन्द्रहा चन्द्रतापनः ॥१०॥ विक्षरो दीर्घबाहुश्च मद्यपो मारुताशनः ॥ तालजङ्घो महाभागः सरभः शलभः क्रथः ॥ ११ ॥ समुद्रमथनो नादी विततश्च महाबलः ॥ प्रलम्बो नरको व्याली धेनुकः काललोचनः ॥ १२ ॥ वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च भूतलोमा तथा विधुः ॥ दुष्प्रसादः किरीटी च सूचीवक्रो महासुरः ॥ १३ ॥

ध्रुव ॥ ८ ॥ मांसल मांसभक्ष वेगवान् केतुमान् शिबि पंकदिग्धशरीर बृहत्कीर्तिवाले महाहनु (ठोडी) वाले ॥ ९ ॥ समप्रभ विकुभाण्ड विरूपाक्ष महोदर श्वेतशीर्ष चन्द्रहनु चन्द्रहा चन्द्रतापन ॥ १० ॥ विक्षर दीर्घबाहु मद्यप मारुताशन तालजंघ महाभाग सरभ शलभ क्रथ ॥ ११ ॥ समुद्रमथन नादी वितत महाबल प्रलम्ब नरक व्याली काललोचन ॥१२॥ वरिष्ठ गरिष्ठ भूतलोमा विधुः दुष्प्रसाद किरीटी सूचीवक्र महाअसुर ॥ १३ ॥

सुबाहु कंजबाहु करण कलशोदर सोमपा देवयाजी प्रवर वीरमर्दन ॥ १४ ॥ सुपथ खण्डमुक्ति शिखिनेत्र शिखिध्वज यह मरीचिके कीर्ति बढानेवाले दैत्य कहे ॥ १५ ॥ इनके सिवाय औरभी नानाभूषणोंसे भूषित अनेक सहस्रों रथोंमें स्थित हो युद्ध करनेको चले ॥ १६ ॥ यह दैत्य दिव्यवस्त्र और दिव्यमाला अनुलेपन किये दिव्य कवच पहरे दिव्य ध्वजाओंसे युक्त ॥ १७ ॥ दिव्य आयुधारी दैत्य मेघके समान गर्जन करते बडेबडे रथ-समूहोंसे पृथ्वीको चलायमान करते ॥ १८ ॥ महाबली दिव्य बलवाले अस्त्रधारी सर्पके शरीरके समान महाभुजाओंसे व्याप्त दुर्जय दैत्योंमें श्रेष्ठ सुरारि

सुबाहुः कञ्जबाहुश्च करणः कलशोदरः ॥ सोमपो देवयाजी च प्रवरो वीरमर्दनः ॥१४॥ सुपथः खण्डमुक्तिश्च शिखिनेत्रः शिखिध्वजः ॥ यथास्मृति मया प्रोक्ता मरीचेः कीर्तिवर्धनाः ॥१५॥ एते चान्ये च बहवो नानाभूषणभूषिताः ॥ रथौघैर्बहुसाहस्रैर्ययुर्योद्धुमरिंदमाः ॥ १६ ॥ दिव्याम्बरधरा दैत्या दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ दिव्यैश्च कवचैर्नद्धा दिव्यैश्चैवोच्छ्रितैर्ध्वजैः ॥१७॥ दिव्यायुधधरा दैत्या गर्जमाना यथाम्बुदाः ॥ बृहद्भी रथघोषैश्च चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १८ ॥ महाबला दिव्यबलास्त्रधारिणो भुजङ्गभोगप्रतिमैर्महाभुजैः॥सुदुर्जया दैत्यवृषाः सुरारयो दितिप्रिया लोहितलोहितेक्षणाः॥१९॥ते जग्मुरर्कज्वलनेन्द्रवीर्या महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः॥विवृद्धदंष्ट्रा हरिधूम्रकेशा विवर्द्धमानाः शरदीव मेघाः॥२०॥सहस्रबाहुर्बाणश्च बलेः पुत्रो महाबलः॥ रथातिरथकोटया वै सन्नह्यत महाबलः॥२१॥ सर्वे मायाधरा दैत्याः सर्वे दिव्यास्त्रयोधिनः॥ सर्वे मदबलोत्सिक्ताः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥२२॥ सर्वे काञ्चनशैलाभाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटोष्णीषमुकुटा दिव्यभूषणभूषिताः ॥ २३ ॥

दितिप्रिय लोहितवर्ण लाल नेत्र किये ॥ १९ ॥ सूर्यके प्रकाशके समान पराक्रमी महेन्द्रके वज्रके तुल्य वेगवाले बडी डाढ हरित वर्णके धुमैले केश बढे हुए शरदकालके मेघके समान ॥ २० ॥ बलिका पुत्र सहस्र भुजावाला बाण जो करोडों अतिरथियोंसेभी महाबली था ॥ २१ ॥ यह सब दैत्य मायाके जाननेवाले दिव्य अस्त्रधारी मदके बलसे उत्सिक्त सम्पूर्ण वरदान पाये हुए ॥ २२ ॥ सब सुवर्णके पर्वतके समान कान्तिमान् पीत रेशमी वस्त्र पहरे किरीट पगडी मुकुट दिव्य भूषणोंसे भूषित ॥ २३ ॥

सबके सुवर्णके कवच सुवर्णकी ध्वजा आकाशमें शरदऋतुके ग्रहोंके समान रथमें स्थित विराजमान होते थे ॥ २४ ॥ तपाये हुए उत्तम सुवर्ण और अग्निके समान कान्तिमान सुवर्ण पर्वतपर स्थित टेसूके फूलके समान शोभित होते थे॥ २५ ॥ उनके मध्यमें चौमासेके उठे हुए मेघके समान बाण शोभित होता था और शक्ति गदा हाथमें लिये त्रिनल्व (१२००हाथके) प्रमाण रथमें स्थित था॥२६॥उसमें विचित्र चित्रित ध्वजा और विचित्र रचना थी वह रथ गदा और परिघसे सम्पूर्ण सुवर्णजालसे विभूषित था॥२७॥दैत्य इस प्रकार उसके साथ थे जैसे सूर्यके संग वालखिल्य ऋषि

हिरण्यकवचाः सर्वे हिरण्यध्वजकेतवः ॥ स्यन्दनस्था व्यराजन्त शारदा इव खे ग्रहाः ॥ २४ ॥ तापनीयैर्वरैर्निष्कैरनलज्वालित-प्रभैः ॥ हेमपर्वतशृङ्गस्थाः पुष्पिताइव किंशुकाः ॥ २५ ॥ तेषां मध्यगतो बाणः प्रावृषीवोत्थितो घनः ॥ स्थितः शक्तिगदापाणिस्त्रिनल्वप्रतिमे रथे ॥ २६ ॥ विचित्राश्वध्वजयुगे चित्रभक्तिविराजिते ॥ गदापरिघसंपूर्णे हेमजालविभूषिते ॥ २७ ॥ अन्वीयमानो दितिजैर्वालखिल्यैरिवांशुमान् ॥ नानाप्रहरणैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैरिवोरगैः ॥ २८ ॥ पञ्च तस्य महावीर्या दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ ररक्षू रथमव्यग्रा व्यादितास्या भयावहाः ॥ २९ ॥ सुबाहुर्मेघनादश्च भीमगर्भश्च वीर्यवान् ॥ तथा कनकमूर्धा च वेगवान्केतुमानिति ॥ ३० ॥ कनकरजतभक्तिचित्रपार्श्वे पतगपतिप्रतिमे रथे स्थितोऽभूत् ॥ जलदनिनदतुल्यनेमिघोषे सुरगणसैन्यवधाय दानवेन्द्रः ॥ ३१ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः ॥ वृतः शतसहस्रेण रथानां भीमवर्चसाम् ॥ ३२ ॥ युक्तमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान् ॥ नीलायसमयं घोरं वायसाङ्कं सुदुर्जयम् ॥ ३३

गमन करते हैं अनेक प्रकारके घोर प्रहारयुक्त तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले सर्पोंके समान थे ॥२८॥ पांच महावीर युद्धदुर्मद दानव महाभयावना मुख फैलाये उसके रथकी रक्षा करते थे ॥२९॥ सुबाहु मेघनाद वीर्यवान् भीमगर्भ कनकमूर्धा वेगवान् केतुमान् ॥३०॥ सुवर्ण और चांदीकी भक्ति (रचना) जिस रथके पार्श्व भागमें होती थी वह गरुडके समानवेगवान् उस रथमें स्थित हुआ जिसकी नेमिका शब्द मेघके समान होता है इस प्रकार दानवेन्द्र रथमें स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ अनायुषाकापुत्र महाबली महाअसुर भयंकर सौ हजार रथोंसे युक्त ॥ ३२ ॥ जिसमें सहस्रऋक्ष जुतेहुए थे नीले लोह-

मय घोर वायस अंकवाले परम दुर्जय थे ॥ ३३ ॥ वह श्रीमान् नीलाम्बरधारी वैडूर्य पर्वतके समान दानव बडे वेगसे धावमान हुआ ॥ ३४ ॥ वहां वह सागररूपी सेनाके मध्यमें शोभित हुआ जैसे प्रातःकाल सागरके समीप सूर्य शोभित होता है ॥ ३५ ॥ तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् चन्द्रमाके समान आकार और विजलीके तुल्य गुणसे युक्त मुख्य किरीटसे शोभायमान जैसे शृंगोंसे पर्वत शोभित होता है ॥३६॥ साठ सहस्र रथ नमुचि असुरके साथ चले जिनमें खर जुते जिनका मेघके समान शब्द होता था ॥३७॥ वे सब चित्रयोधी अनेक प्रकारके प्रहार करनेवाले थे सब

नीलाम्बरधरः श्रीमान्वैडूर्याचलसन्निभः ॥ महता रथवेगेन प्रययौ दानवस्तदा ॥ ३४ ॥ तत्रैकार्णवसंकाशे सैन्यमध्ये व्यराजत ॥ प्रभातसमये श्रीमान्त्समुद्रस्थ इवांशुमान् ॥ ३५ ॥ सुतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्चसा निशाकराकारतडिद्गुणाकरः ॥ किरीटमुख्येन विभाति शोभिना यथा गिरिः शृङ्गवरेण भास्वता॥३६॥ षष्टी रथसहस्राणि नमुचेरसुरस्य वै ॥ खरयुक्तानि सर्वाणि मेघतुल्यरवाणि च ॥ ३७ ॥ नानाप्रहरणाः सर्वे सर्वे ते चित्रयोधिनः ॥ महाभ्रघनसंकाशा वेगवन्तो महाबलाः ॥ ३८ ॥ रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान् ॥ नमुचेरसुरेन्द्रस्य सर्वरत्नविभूषितः ॥ ३९ ॥ शार्दूलचिह्नः शुशुभे तस्य केतुर्हिरण्मयः ॥ रथमध्ये सुरेशस्य मध्यं-दिनरविर्यथा ॥४०॥ स भीमवेगश्च महाबलश्च प्रगृह्य चापं हिमवानिव स्थितः ॥ नीलाम्बरः काञ्चनपट्टनद्धो दिशागजो बद्धदुपे-तकक्षः ॥ ४१ ॥ किङ्किणीजालनिर्घोषं तपनीयविभूषितम् ॥ सपताकध्वजोपेतं ससंध्यमिव तोयदम् ॥ ४२ ॥ चक्रैश्चतुर्भिः संयुक्तमष्टनल्वायतान्तरम् ॥ हेमजालकुलं दीप्तं कालचक्रमिवोदितम् ॥ ४३ ॥

महामेघके समान वेगवाले महाबली थे ॥ ३८ ॥ वह सहस्र व्याघ्र जुते रथमें स्थित हो परम वेगवान् नमुचि असुरका रथ सम्पूर्ण रत्नोंसे भूषित था ॥ ३९ ॥ उसकी हिरण्यमयध्वजा शार्दूलके चिन्हसे शोभित थी और उसके रथमें शोभा मध्याह्नके सूर्यके समान थी ॥ ४० ॥ वह भीमवेगवान् महाबली भयंकर चाप लेकर हिमालयके समान स्थित हुआ नीलाम्बर सुवर्णके पट्टसे जडित जैसे कक्षसहित दिशाका हाथी हो तद्वत् शोभित हुआ ॥ ४१ ॥ किंकणीसमूहका शब्द सुवर्णसे भूषित पताका ध्वजासे युक्त संध्याकालीन मेघके समान ॥४२॥ चार पहियोंसे संयुक्त आठ नल्व

(३२००हाथ) के अन्तरवाला सुवर्णजालसे आकुल और दीप्त कालचक्रके समान उदित ॥ ४३ ॥ अनेक प्रकारके घोर आयुध धारे व्याघ्रचर्मसे मढे ईहामृगोंके समूहोंसे युक्त चित्र रचनासे विराजित ॥ ४४ ॥ बाणोंसे पूण तूणीर शक्ति तोमरसे संकुल गदा मुद्गरसे युक्त धनुषरत्नसे विभूषित ॥ ४५ ॥ लम्बायमान केशर और कान्तिवाले सहस्रों ऋक्षोंसे युक्त और सुवर्ण बढी सिंहध्वजाओंसे शोभित ॥ ४६ ॥ उस मयकी मायासे युक्त उस रथमें दैत्य शोभित हुआ और रथमें स्थित हो उदय हुए सूर्यके समान शोभित हुआ ॥ ४७ ॥ उसमें उज्ज्वल रजतके बिंदु

नानायुधधरं घोरं व्याघ्रचर्मपरिष्कृतम् ॥ ईहामृगगणाकीर्णं चित्रभक्तिविराजितम् ॥ ४४ ॥ तूणीरशरसंपूर्णं शक्तितोमरसंकुलम् ॥ गदामुद्गरसंबाधं चापरत्नविभूषितम् ॥४५॥ युक्तमृक्षसहस्रेण लम्बकेसरवर्चसा ॥ राजतेन विकीर्णेन शोभितं सिंहकेतुना ॥ ४६ ॥ स तेन शुशुभे दैत्यो मयो मायाविसर्पिणा ॥ रथरत्ने स्थितः श्रीमानुदयस्थ इवांशुमान् ॥ ४७ ॥ विमलरजतबिन्दुशोभिताङ्गं मणिकनकोज्ज्वलचारुभक्तिचित्रम् ॥ अयुतशतसहस्रमूर्जितानां मयमनुयाति तदा महारथानाम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे मयस्य युद्धाभिगमनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पुलोमा तु महादैत्यस्तिमिराकारगह्वरम् ॥ आरुरोहायसं घोरं रथं पररथारुजम् ॥१॥ उत्कर्णपर्वताकारं लोहजालान्तरान्तरम्॥ नेमिघोषेण महता क्षुभ्यन्तमिव सागरम् ॥२॥ गदापरिघनिस्त्रिंशैः सतोमरपरश्वधैः ॥ शक्तिमुद्गरसंकीर्णं सतोयमिव तोदयम् ॥३॥

शोभित होते थे उज्ज्वल सुवर्णकी विचित्र रचना हो रही थी सौ दश सहस्र महारथी उस मयके पीछे पीछे चले ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे मयस्ययुद्धाभिगमनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ वैशंपायन बोले; पुलोमा नाम महादैत्य लोहेके बने तिमिरके समान महागह्वर रथमें चढा जो रथ दूसरेके रथोंका तोडनेवाला था ॥ १ ॥ उठे पर्वतके आकारवाला लोहजालके अन्तरसे युक्त बडे भारी पहियोंके शब्दसे सागरको क्षुभित करता हुआसा ॥ २ ॥ गदा परीघ निस्त्रिंश तोमर परशे शक्ति मुद्गरोंसे संकीर्ण जल भरे

मेघके समान प्रकाशित ॥ ३ ॥ सहस्र ऊंट जुते वायुके समान वेगवान् रथमें चढकर पुलोमा चला ॥ ४ ॥ इस युद्धदुर्मद महारथी पुलोमाके साथ तेजसे सुवर्णके समान प्रकाशमान साठ सहस्र रथ चले ॥ ५ ॥ बडी भारी खड्ग और ध्वजाओंसे युक्त पर्वतमें स्थित सूर्यके समान रथमें स्थित हुआ शोभित होता था ॥ ६ ॥ सुन्दर सुवर्णकी पट्टियोंसे जटित कालके समान वह महागदाको ग्रहण कर शत्रुके मध्यमें विराजित ऐसे हुआ मानो केतु काली लोहेकी गदा लिये पृथ्वीमें स्थित हो रहा है ॥ ७ ॥ बलवान् हयग्रीव, हयग्रीव नामक महाअसुरोंके सहित सौ सहस्र रथोंसे युक्त ॥ ८ ॥

रथमुष्ट्रसहस्रेण संयुक्तं वायुवेगिना ॥ पुलोमारुह्य युद्धाय प्रस्थितो युद्धदुर्मदः॥ ४ ॥ षष्टिं रथसहस्राणि पुलोमानं महारथम् ॥ अन्वयुः सूर्यवर्णानि प्रदीप्तानीव तेजसा ॥ ५ ॥ खड्गध्वजेन महता तप्तकाञ्चनवर्चसा ॥ भ्राजते रथमध्यस्थः पर्वतस्थ इवांशुमान् ॥ ६ ॥ सुचारुचामीकरपट्टनद्धां महागदां कालनिभां महाबलः ॥ प्रगृह्य बभ्राज स शत्रुमध्ये कार्ष्णायसीं केतुरिवास्थितो-र्व्याम् ॥ ७ ॥ हयग्रीवस्तु बलवान् हयग्रीवैर्महासुरैः ॥ वृतः शतसहस्रेण रथानां रथिसत्तमः ॥८॥ धराधरनिभाकार सपत्नानी-चमर्दनम्॥स्यन्दनं भीममास्थाय युद्धायाभिमुखस्थितः॥९॥श्वेतशैलप्रतीकाशः श्वेतकुण्डलभूषणः॥ शुशुभे रथमध्यस्थः श्वेतशृङ्ग इवाचलः ॥ १० ॥ महता सप्तशीर्षेण शोभितो नागकेतुना ॥ वैडूर्यमणिचित्रेण प्रवालाङ्कुरशोभिना ॥ ११ ॥ अमितबलपरा-क्रमाकृतीनां वररथिनामनुजग्मुरूर्जितानाम् ॥ असुरगणशताभिगच्छमानं त्रिदशगणा इव वासवं प्रयान्तम् ॥ १२ ॥

पर्वतके समान आकार शत्रुकी सेनाका मर्दन करनेवाले महाभयंकर रथमें स्थित हो युद्ध करनेको चला ॥ ९ ॥ श्वेतपर्वतके समान श्वेत कुंडल भूषण धारण किये श्वेत शृंग पर्वतके समान रथके मध्यमें स्थित हुआ ॥१०॥ बडी भारी सात शिरवाली नागकेतुसे शोभित चित्रवैडूर्यमणिके अंकुरसे शोभित॥११॥अमित बल और पराक्रमकीआकृतिवाले बडे बडे रथी उसके साथमें चले जिनके पीछे सैकडों असुरगणचलते थे जैसे इन्द्रके पीछे

देवता चलते हैं ॥१२॥ सर्वशास्त्रमें विशारद महापंडित प्रह्लाद सब मायाधारी श्रीमान् सौ यज्ञका कर्ता ॥१३॥अग्निके समान कान्तिमान् मेघोंके गर्जनाके समान बडी भारी रथपंक्तिसे युक्त॥१४॥उनके अमितवीर्यवान् शूर सुवर्णके कुंडल धारण करनेवाले सहस्रों दैत्योंके साथ देवतोंके सहित ब्रह्माजीके समान प्रकाशित ॥१५॥ अपने वीर्यसे अग्रणी बडे दृप्त मतवाले हाथीके समान विक्रमवाले सब देवताओंकी सेना क्षुभित करनेको स्थित हुए॥१६॥ अपने वीर्यसे सागरके समान दीप्ताग्निके समान प्रज्वलित तेजमें सूर्यके आकार क्षमामें पृथ्वीके समान ॥१७॥ ताल ध्वजवाले

प्रह्लादस्तु महाप्राज्ञःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ सर्वमायाधरः श्रीमान्यष्टा क्रतुशतैरपि ॥१३॥ समनंह्यत तेजस्वी पावकार्चिःसमप्रभः॥ रथानीकेन महता दुर्दिनाम्भोदनादिना ॥ १४ ॥ शूरेणामितवीर्येण हेमकुण्डलधारिणा ॥ वृतो दैत्यसहस्रेण देवैरिव पितामहः ॥ १५ ॥ स्ववीर्यादग्रणीर्दृप्तो मत्तवारणविक्रमः ॥ सुरसैन्यस्य सर्वस्य प्रतिक्षोभ इव स्थितः ॥ १६ ॥ स्ववीर्येणोदधेस्तुल्यः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ तेजसा भास्कराकारः क्षमया पृथिवीसमः॥ १७ ॥ तालध्वजेन दीप्तेन रथेनातिविराजता ॥ तं यान्त-मनुयान्ति स्म दानवाः शतसंघशः ॥ १८ ॥ सर्वे हिरण्यकवचाः सर्वे रत्नविभूषिताः ॥ दिव्याङ्गरागाभरणाः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ १९ ॥ जाम्बूनदविचित्राङ्गा वैडूर्यविकृताङ्गदाः ॥ दिव्यस्यन्दनमध्यस्थाः खस्थाः इव महाग्रहाः ॥ २० ॥ आचारवांश्चैव जितेद्रियश्च धर्मे रतः सत्यपरोऽनसूयः ॥ स्थितोऽग्नितोयाम्बुदवायुकल्पो रूपी यथा सर्वहरः कृतान्तः ॥ २१ ॥ शम्बरस्तु महामायो रथयूथपयूथपः ॥ आरुरोह रथं दिव्यं सर्वयुद्धविशारदः ॥ २२ ॥

दीप्तिमान् रथसे विराजित उनके चलनेपर अनेक दानव उनके पीछे चले॥१८॥सब सुवर्णके कवचवाले सबही रत्नोंसे विभूषित दिव्य अंगरागके आभरणवाले समरसे निवृत्त न होनेवाले॥१९॥जाम्बूनदके समान विचित्र अंग वैडूर्य मणिजटित बाजूबंद पहरे दिव्य स्यन्दनके मध्यमें स्थित स्वस्थ हुए महाग्रहोंके समान स्थित ॥ २० ॥ आचारवान् जितेन्द्रिय धर्मरत सत्यमें तत्पर असूयारहित अग्नि जल वायुके समान स्थित हुए जैसे कृतान्त स्थित होता है ॥ २१ ॥ महामायी शम्बर रथी यूथपतियोंका यूथपति सब युद्धका जाननेवाला दिव्य रथपर चढा ॥ २२ ॥

वह महाबाहु लालनेत्र किये तपे सुवर्णके कुंडल धारण किये मेघके समान वर्ण दिव्यमाला पहरे दिव्य अनुलेपन लगाये ॥२३॥ विजली और ज्योतिके समान सूर्यकान्तिवाले मुकुटसे विराजित विचित्र मणि रत्न और वैडूर्यसे शोभित॥२४॥महातपे सुवर्णके कवचसे विराजित सन्ध्याके लाल वादलोंसे संछन्न पर्वतके समान ॥२५॥ तीस सहस्र चित्रयोधाओंका समूह जो बली और कालके समान था शम्बरके पीछे चला ॥ २६ ॥ शुक्लवर्णके सहस्र रथोंसे युक्त क्रौंच ध्वजयुक्त संग्रामशोभी रथसे व्याप्त ॥ २७ ॥ जिसमें अनेक वैडूर्य मणि और सुवर्णजाल शोभित हो रहेहैं अनेक प्रकारके

लोहिताक्षो महाबाहुः प्रतप्तोत्तमकुण्डलः ॥ जीमूतघनसंकाशो दिव्यस्रगनुलेपनः॥२३॥विद्युज्ज्योतिर्निकाशेन मुकुटेनार्कवर्चसा ॥ मणिरत्नविचित्रेण वैडूर्यवरशोभिना ॥ २४ ॥ तपनीयेन महता कवचेन विराजता ॥ संध्याभ्रेणेव संच्छन्नः श्रीमानस्तशिलो- च्चयः ॥२५॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि दैत्यानां चित्रयोधिनाम् ॥ बलिनां कालकल्पानामन्वयुः शम्बरं तदा ॥२६॥ युक्तं हयसहस्रेण शुक्लवर्णेन राजता ॥ क्रौञ्चध्वजेन दीप्तेन रथेनाहवशोभिना॥२७॥व्यासक्तवैडूर्यसुवर्णजालं नानाविहङ्गैरपि भक्तिचित्रम्॥विद्युत्प्रभं भीमरवं सुवेगं रथं समारुह्य रराज दैत्यः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे शम्बरा- दिदैत्यसन्नहनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनुह्लादश्च तत्रैव दैत्यः परमदुर्जयः ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रययौ युद्धलालसः ॥१॥ चतुश्चक्रेण यानेन त्रिनल्वप्रतिमेन तु ॥ युग्मनाश्वैर्महावीर्यैः सिंहवक्त्रैरजिह्मगैः॥ २ ॥ भीमगम्भी- रनादेन नेमिघोषेण वीर्यवान् ॥ चालयन्वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ ३ ॥

विहंगोंकी रचना हो रही है विजलीके समान भीमवेगवान् रथमें वह दैत्यराजचढा ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे शम्बरादिदैत्यसन्नहनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ वैशंपायन बोले; परम दुर्जय अनुह्लाद दैत्य हिरण्यकशिपुका पुत्र युद्ध करनेकी इच्छासे चला ॥१॥ उसका रथ चार पहियेका (१२०० हाथके) विस्तारमें था सिंहके मुखवाले अकुटिल चलनेवाले घोडे उसमें जुते थे ॥ २ ॥ उसके पहियोंका शब्द बडा गम्भीर होता था शैल वन कानन सहित सब पृथ्वीको चलायमान किये देता था ॥ ३ ॥

उस समय दैत्यसमूह गर्जना करते हुए अनुह्लादके पीछे चले सुवर्णके सैंकडों सहस्र रथ उनके पीछे चले॥४॥परिघ भिंदिपाल भल्ल पाशे परशे अनेक आयुधधारी शूल मुद्गर हाथमें लिये॥५॥सुवर्णजालमें लगे हुए वज्रोंसे अलंकृत चित्रकवच पहरे रथोंसे सज्जमान महाअसुर चले ॥६॥ उस समय बडे विशाल पर्वतके तुल्य चित्रित अंगवाले रथमें जो उसके अनुरूपही था वह दैत्यपति स्थित हुआ जिसके समान और रूप नहीं था ॥ ७ ॥ बलवान् अग्निके समान कांतिमान् विरोचन सर्व अस्त्रमें कुशल बडे भारी रथमें स्थित॥ ८ ॥ व्यूहोंके विनीनियोगका जाननेवाला ज्ञानविज्ञानके

विनर्दमाना दैत्यौघा अनुह्लादं ययुः शुभाः ॥ शतं शतसहस्राणां रथानां हेममालिनाम् ॥ ४ ॥ परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः विविधायुधहस्तास्ते शूलमुद्गरपाणयः ॥ ५ ॥ सुवर्णजालनिर्मुक्तैर्वज्रैश्च समलंकृताः ॥ रथैश्चित्रैश्च कवचैः सज्जमाना महासुराः ॥ ६ ॥ तदा विशालोच्छ्रितशैलरूपे बभौ रथे काञ्चनचित्रिताङ्गे ॥ दैत्याधिपः सत्त्वबलानुरूपे समास्थितस्त्वप्रतिमे सुरूपे ॥ ७ ॥ विरोचनश्च बलवान्वैश्वानरसमद्युतिः ॥ महता रथवंशेन सर्वास्त्रकुशलः शुचिः ॥ ८ ॥ व्यूहानां विनियोगज्ञो ज्ञानविज्ञानतत्त्ववित् ॥ बलेः पिता सुरवरः सुराणामिव वासवः ॥९॥ सर्वायुधसमोपेतं किङ्किणीजालभूषितम् ॥ युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम् ॥१०॥ रथमारुह्य दैत्येन्द्रो बभौ मेरुरिवापरः ॥ किङ्किणीजालपर्यन्तं गजेन्द्रध्वजशोभितम् ॥ संध्याभ्रसमवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥११॥ प्रवालजाम्बूनदभक्तिचित्रं व्यालं विकारान्तरनेमिघोषम् ॥ रथं समारुह्य किरीटमाली ययौ स युद्धाय महासुरेन्द्रः ॥१२॥ विरोचनानुजश्चैव कुजम्भो नाम दानवः ॥ स्यन्दनैर्बहुसाहस्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः॥१३॥

तत्त्वका ज्ञाता बलिका पिता असुरोंमें श्रेष्ठ देवताओंमें इन्द्रके समान ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण आयुधोंसे युक्त किंकिणीजालसे भूषित सहस्र वेगगामी घोडोंसे युक्त॥ १० ॥ रथमें चढ वह दैत्येन्द्र मेरुके समान स्थित हुआ किंकिणीजाल पर्यंत महेंद्र ध्वजसे शोभित सन्ध्याकालके मेघके समान पताकाओंसे शोभित ॥ ११ ॥ मूंगे और सुवर्णकी रचनासे व्याप्त सर्पके बंधसे युक्त पहियोंके महाशब्दसे युक्त किरीटधारी दैत्येन्द्र रथपर स्थित हो युद्ध करनेको चला ॥ १२ ॥ विरोचनका अनुज कुजंभ नाम दानव अनेक सहस्रों मणिकंचनसे भूषित रथसे ॥ १३ ॥

युक्त महाबली शत्रुनाशी प्रास पास गदा हाथमें लिये युद्धाकांक्षी दानवोंके सहित ॥ १४ ॥ पर्वतके समान आकार काले अंजनकी गुटिकाके समान कांतिमान् विराजमान किरीटकी कांतिसे व्याप्त ॥१५॥ सर्व रत्न जडे कवचसे युक्त बडे भारी कांतिमान् शरीरसे रथमें सूर्यचन्द्रमाके समान शोभित ॥ १६ ॥बडे भारी सुवर्णके बने तालवृक्षसे शोभित रथमें मेरुमें स्थित सूर्यके समान विराजित॥१७॥ रणपटु अतिवीर्यवान् सत्त्वबुद्धि सत्त्वबुद्धिसमरमें शीघ्रतासे देवताओंके सन्मुख जानेवाले असुरगणोंसे आवृत कुजंभ देवताओंसे व्याप्त इन्द्रके समान शोभित हुआ ॥१८॥ इसी प्रकार पर्वत आयुध-

वृतो मदबलोत्सिक्तैर्देवारिभिररिंदमः ॥ प्रासपाशगदाहस्तैर्दानवैर्युद्धकांक्षिभिः ॥ १४ ॥ स पर्वतनिभाकारो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ महता भ्राजमानेन किरीटेन सुवर्चसा ॥१५॥ सर्वरत्नविचित्रेण कवचेन च संवृतः॥ महता दीप्तवपुषा रथेनेन्दुरिवांशुमान् ॥१६॥ शातकौम्भेन महता तालवृक्षेण केतुना॥ रराज रथमध्यस्थो मेरुस्थ इव भास्करः॥१७॥रणपटुरतिवीर्यसत्त्वबुद्धिः सुरसमराभिमुखः प्रयाति तूर्णम् ॥ असुरगणसमावृतः कुजम्भस्त्रिदशगणैरिव वृत्रहामरेन्द्रः ॥१८॥ असिलोमा च तत्रैव दानवः पर्वतायुधः॥दारुणं वपुरास्थाय दारुणो दारुणाननः॥१९॥रौद्रः शकटचक्राक्षो महाकायो महाबलः॥कृष्णवासा महादंष्ट्रः किरीटी लोहीताननः२०॥ वृतो दैत्यसहस्रौघैर्गिरिपादपयोधिभिः ॥ नानारूपधरैर्दृप्तैर्दैत्यैस्त्रिदशशत्रुभिः॥२१॥ते शूलहस्ता गगने चरन्त इतस्ततस्तोयदवृन्द-तुल्याः ॥ खं छादयन्तस्तपनीयनिष्का यथोन्नताः प्रावृषि कालमेघाः॥२२॥अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः॥ देवशत्रुर्म-हाकायस्ताम्रास्यो निर्नतोदरः॥२३॥दीप्तजिह्वो हरिश्मश्रुरूर्ध्वरोमा महाहनुः॥ नीलाङ्गो लोहितमुखः किरीटी लोहिताम्बरः॥२४॥

वाला असिलोमा दैत्य दारुण मुख दारुण शरीर ॥१९॥ रौद्र शकट चक्राक्ष महाकायवान् महाबली कृष्ण वस्त्र धारे महाडाढसे युक्त किरीटधारी लोहितानन ॥२०॥ सहस्रों दैत्योंसे व्याप्त जोगिरि और वृक्षोंसे युद्ध करते थे अनेक रूपधारी दृप्त देवताओंके शत्रु दैत्योंके साथ ॥२१॥ जो शूल हाथमें लिये आकाशगामी इधर उधर मेघोंके समान विचरनेवाले अपनी सुवर्णतुल्य कांतिसे आकाशको आच्छादन करते वर्षाकालके मेघके समान उन्नत ॥ २२ ॥ और अनायुषाका पुत्र वृत्र नाम दानव देवशत्रु महाकाय ताम्रास्य निर्नतोदर॥२३॥ दीप्तजीह्व हरिश्मश्रु ऊर्ध्वरोमा महाहनु

नीलांग लोहितमुख किरीटी लोहिताम्बर॥२४॥आजानुबाहु विकृतश्वेतदंष्ट्र बिभीषण महामाया धारण करनेवाला भीम सुवर्णकेयूर भूषणधारी॥२५॥ बडे भारी मणिजटित कवचसे युक्त हेममालाधारी रौद्र चक्रकेतु अमर्षण ॥ २६ ॥ सैंकडों किंकणीजालसे युक्त सुवर्णके भूषणसे विभूषित ध्वजा पताकायुक्त सहस्र घोडे जुते रथमें ॥२७॥ बहुतसी रथोंकीसेना ले युद्ध करनेको गया वह दैत्योंका आनंद बढानेवाला दिव्यरथमें स्थित हो चला ॥२८॥ तपाये सुवर्णबिंदुके समान पिंगलनेत्रवान् दितिपुत्र दैत्योंकी सेनाका रक्षकखिले कमलके समान सुन्दर नेत्रवान् श्वेतदन्तवाला रथके ऊपर

आजानुबाहुर्विकृतः श्वेतदंष्ट्रो विभीषणः॥ महामायाधरो भीमो हेमकेयूरभूषणः ॥२५॥ महता मणिचित्रेण कवचेन तु संवृतः ॥ हेममालाधरो रौद्रश्चक्रकेतुरमर्षणः ॥२६॥ किङ्किणीशतसंघुष्टं तपनीयविभूषितम् ॥ युक्तं हयसहस्रेण रक्तध्वजपताकिनम् ॥२७॥ रथानीकेन महता युद्धायाभिमुखो ययौ ॥ दिव्यं स्यन्दनमास्थाय दैत्यानां नन्दिवर्द्धनः ॥ २८ ॥ तपितकनकबिन्दुपिङ्गलाक्षो दितितनयोऽसुरसैन्ययुद्धनेता ॥ विकसितकमलाभचारुचक्षुः सितदशनः शुशुभे रथासनस्थः ॥२९॥ एकचक्रस्तु तत्रैव सूर्यचक्र-इवोदितः ॥ कालचक्रसमो रौद्रश्चक्रायुध इवोद्यतः ॥ सर्वायसमयं दिव्यं रथमास्थाय भासुरम् ॥३०॥ वृतो दैत्यगणैर्हृष्टैः काला-यसशिलायुधैः ॥ तस्याशीतिसहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम् ॥ ३१ ॥ सर्वे कालान्तकप्रख्या रुधिराक्षा महाबलाः ॥ आयसैः काञ्चनैश्चैव सन्नद्धा वरवर्णिनः ॥३२॥ व्यराजन्तान्तारिक्षस्था नीला इव पयोधराः ॥ सर्वे कालान्तकप्रख्या धीराः समरदुर्जयाः ॥३३॥ सागरोदरगम्भीरा नीलवक्त्रा दुरासदाः ॥ रेजुर्यान्तो सुरवरा वेलातीता इवार्णवाः ॥ ३४ ॥

शोभित हुआ ॥ २९ ॥ एकचक्र दानव सूर्यचक्रके समान उदय हुआ और कालचक्रके समान महारौद्र चक्रायुधके समान स्थित हुआ जिसका कांतिमान लोहनिर्मित रथ था उसमें स्थित हुआ ॥३०॥ काले लोह और शिलाके आयुध लिये दैत्य उसके साथ हुए उसके साथ विचित्रयोधा अस्सी सहस्र रथी चले ॥ ३१ ॥ सबही कालके समान रुधिराक्ष महाबली लोह और कांचनके वख्तर पहरे श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ नील पयोधरके समान अन्तरिक्षमें विराजमान थे सम्पूर्ण कालांतकके समान धीर और समरदुर्जय थे ॥ ३३ ॥ सागरके उदरके समान गंभीर नील मुख दुरासद

वे असुर वेला त्यागे हुए सागरके समान शोभित हुए॥३४॥वे भीममायाके जाननेवाले बडे शरीरवाले किरीटवाले सुवर्णसे भूषित शरीर अपने आयुध उठाये दीप्तिमान् हस्तवाले पंखयुक्त पर्वतके समान आकाशमें शोभित हुए ॥३५॥ तब बलिपुत्रने वृत्रभ्राताको देवताओंकी सेना नाश करनेकी आज्ञा दी ॥३६॥ वह तैयार हुआ सुवर्णके तालवृक्षके समान उच्छ्रित बडी डाढोंवाला मालावान् रुचिर कुंडलोंसे युक्त ॥३७॥ लालमाला वस्त्रोंको धारे प्रचंड समरमें दुर्जय महाबली वृत्तनेत्र किरिट धनुषधारी प्रभिन्न मातंग और शार्दूलके समान पराक्रमी ॥ ३८ ॥ महातालकी समान चाप और रुचिर

ते भीममायाः सुसमृद्धकायाः किरीटिनः काञ्चनभूषिताङ्गाः ॥ मयुस्तदा वायुधदीप्तदस्ता नभः सपक्षा इव पर्वतेन्द्राः॥३५॥ संदिष्टो बलिपुत्रेण वृत्रभ्राता महासुरः ॥ वधाय सुरसैन्यस्य संनह्यस्वेति वीर्यवान्॥३६॥हेमताली महादंष्ट्रः स्रग्वी रुचिरकूण्डलः॥ रक्तमाल्याम्बरधरश्चण्डः समरदुर्जयः॥३७॥ सुमहावृत्तनयनः स किरीटी धनुर्धरः ॥ प्रभिन्न इव मातङ्गः शार्दूलसमविक्रमः॥३८॥ महातालनिभं चापं तथा रुचिरसायकम् ॥ विस्फारयन्महावेगं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम्॥३९॥रथेन खरयुक्तेन ध्वजेन भुजगेन ह ॥ शुशुभे स्यन्दनस्थः स संध्यागत इवांशुमान् ॥४०॥ रथैस्तु बहुसाहस्रै र्हेमपट्टविभूषितैः ॥ कूटमुद्गरसंपूर्णैर्जलपूर्णैरिवाम्बुदैः ॥ स दैत्येन्द्रोऽभिचक्राम तस्मिन्युद्ध उपस्थिते॥४१॥ पवनसमगतिर्विशालवक्षा विकसितपङ्कजचारुगर्भगौरः ॥ प्रवररथगतो ययौ स तूर्णं त्रिदशगणैरभिलक्षितप्रभावः ॥ ४२ ॥ सिंहिकातनयश्चैव राहुर्नाम महासुरः ॥ विकटः पर्वताकारः शतशीर्षा शतोदरः ॥ ४३ ॥

बाण धारे वज्रके समान महावेगयुक्त धनुषको विस्फारण करते ॥ ३९ ॥ खरयुक्त रथ और सर्पकी ध्वजासे युक्त रथमें स्थित हुआ संध्याकालीन सूर्यके समान स्थित हुआ ॥ ४० ॥ हेमपट्टसे विभूषित अनेकों सहस्र रथकूट मुद्गरसे संपूर्ण जलपूर्ण मेघके समान वह दैत्येन्द्र उपस्थित हो उस युद्धकी ओर चला ॥४१॥ पवनके समान गतिमान् चौडी छातीवाला खिले हुए कमलके समान गौरवर्ण रथपर स्थित हो वह बहुत शीघ्रतासे चला और देवताभी उसके प्रभावसे चमत्कृत थे ॥४२॥ सिंहिकापुत्र राहु नामक महाअसुर विकट पर्वताकार सौ शिर और सौ उदरवाला ॥४३॥

पीतमाला और पीतवस्त्र धारण किये सुवर्णसे विभूषित स्निग्ध वैडूर्यमणि और कमलपत्रके समान नेत्रवान् ॥ ४४ ॥ सम्पूर्ण काञ्चनसे युक्त मणिजालसे विभूषित सौ पताका और परमवाजियोंसे युक्त ॥ ४५ ॥ रथमें वह महावीर्यवान् दैत्य स्थित हुआ और पृथ्वीतलको कंपित करता महानाद करने लगा ॥ ४६ ॥ मयने उसकी सुवर्णकी दिव्यकेतु निर्माण की थी और मोरपक्षके समान दिव्य लोहका कवच निर्माण किया ॥४७॥ दूसरेभी भीमवेगवाले दिव्य रथ और अनेक प्रकारके आयुधोंसे सेव्यमान महाबली ॥ ४८ ॥ असुरगणोंका स्वामी अतिरथ महाअसुरोंका शरणदाता शत्रुओंके

पीतमाल्याम्बरधरो जाम्बूनदविभूषितः ॥ स्निग्धवैडूर्यसंकाशः पद्मपत्रनिभेक्षणः ॥ ४४ ॥ सर्वकाञ्चनसंयुक्तं मणिजालपरिष्कृतम् ॥ पताकाशतसंकीर्णं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ४५ ॥ आरुरोह रथं दिव्यं दैत्यः परमवीर्यवान् ॥ ननाद च महानादं कम्पयन्वसुधातलम् ॥ ४६ ॥ मयेन विहितो दिव्यस्तस्य केतुर्हिरण्मयः ॥ मयूरपक्षसंकाशं कवचं चायसं महत् ॥ ४७॥ भीमवेगरवैश्चान्यै रथैर्दिव्यैः सुरासुरैः ॥ नानाप्रहरणाकीर्णैः सेव्यमानो महाबलः ॥ ४८ ॥ असुरगणपतिर्गजेन्द्रगामी अतिरथसर्गतिर्महासुराणाम् ॥ अरिगणमभितो विभुः प्रयातो गिरिवरमस्तमिवांशुमान्त्सुदीप्तः ॥ ४९ ॥ विप्रचित्तिस्तु तत्रैव दनोर्वंशविवर्द्धनः कश्यपस्यात्मजः श्रीमान् ब्रह्मणस्तेजसा समः ॥ ५० ॥ यष्टा क्रतुसहस्राणां वेदवित्तपसान्वितः ॥ स्वयंभुवा दत्तवरो वरदश्च स्वयंभुवः ॥ ईशित्वं च महत्त्वं च वशित्वं च महाद्युतेः ॥ ५१ ॥ ऐश्वर्यगुणसंपन्नो ब्रह्मेव स्वयमूर्जितः ॥ सार्धं पुत्रैश्च पौत्रैश्च सनह्यत महाबलः ॥ ५२ ॥ सर्वे मायाधराः शूराः कृतास्त्रा रणदुर्जयाः ॥ सर्वे कमलवर्णाभा हेमकूटोच्छ्रयोच्छ्रयाः ॥ ५३ ॥

सामनेको चला जिस प्रकार सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दनुवंशका बढानेवाला विप्रचित्ति दानव कश्यपका पुत्र तेजमें ब्रह्माके समान ॥५०॥ सहस्रों यज्ञोंका कर्ता वेदवित् तपसे युक्त ब्रह्मासे वरदान पाये स्वयं वरका देनेवाला ईशपना महत्पना और वशपना यह उस महाकान्तिमानमें था ॥ ५१ ॥ ऐश्वर्यके गुणसे सम्पन्न स्वयं ब्रह्माजीकी समान पुत्रों तथा पौत्रोंके साथ वह महाबली तयार हुआ ॥ ५२ ॥ सब मायाधारी शूर कृतास्त्र रणदुर्जय कमलके समान वर्णवाले सबही हेमकूटके शिखरके समान ऊंचे ॥ ५३ ॥

सब रजतके समान वर्णवाले कैलासशिखरके समान उनके रथ मयने स्वयं मायासे बनाये थे ॥५४॥ वह विचरते हुए शरदके मेघके समान शोभित हुए सब श्वेत हंसकी ध्वजावाले श्वेतदण्डसे युक्त ॥ ५५ ॥ श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले दैत्य श्वेतमालाओंसे विभूषित सब श्वेतछत्र धारे और श्वेत कुंडल पहरे हुए थे ॥ ५६ ॥ मोतियोंके हार पहरे स्वर्गपतिके समान शोभित होते थे महाग्रहोंके समान शत्रुओंके लोम खडे करनेवाले ॥५७॥ लालवर्णके चित्रवस्त्र पहरे विचित्र आभरणोंसे विभूषित वह वीर्यवान् त्रैलोक्यविजय नामवाले रथमें स्थित होकर ॥५८॥ जो कैलासके शिखरके

सर्वे रजतसंकाशाः कैलासशिखरोपमाः ॥ मयेन निर्मितास्तेषां सर्वे मायामया रथाः ॥५४॥ विचरन्तो व्यराजन्त शारदा इव तोयदाः ॥ सर्वे हंसध्वजाः श्वेताः श्वेतदण्डसमुच्छ्रयाः ॥५५॥ श्वेताम्बरधरा दैत्याः श्वेतमाल्यविभूषिताः ॥ श्वेतातपत्रा सर्वे ते श्वेतकुण्डलमण्डिताः ॥५६॥ मुक्ताहारवृतोरस्का भान्ति नाकेश्वरा इव ॥ महाग्रहनिभाकाराः शत्रूणां लोमहर्षणाः ॥५७॥ रक्त-चित्राम्बरधराश्चित्राभरणभूषिताः ॥ त्रैलोक्यविजयं नाम रथमास्थाय वीर्यवान् ॥५८॥ कैलासशिखराकारमष्टनल्वायतान्तरम् ॥ युक्तं वाजिसहस्रेण सितेन शिववर्चसा ॥ पताकाशतसंच्छन्नं नानायुधविकल्पितम् ॥५९॥ हिमांशुकुन्दप्रतिमं विशालं सितातपत्रं दनुजेश्वरस्य ॥ विभाति तस्योपरि धार्यमाणं श्वेताद्रिमूर्धोपगतः शशाङ्कः ॥ ६० ॥ केशी दानवमुख्यस्तु जिह्मस्ताम्राक्षदर्शनः॥ नीलमेघचयप्रख्यः कालः पुरुषविग्रहः ॥ ६१ ॥ महाग्रहनिभाकारः शत्रूणां लोमहर्षणः ॥ चित्रमाल्याम्बरधरो रक्ताभरणभूषितः ॥ ६२ ॥ शताक्षः शतबाहुश्च हरिश्मश्रुर्महाबलः ॥ शंकुकर्णो महानादो वपुषा घोरदर्शनः ॥ ६३ ॥

समान आठ नल्व (३२००हाथका) श्वेतकान्तिमान् सहस्र घोडोंसे संयुक्त सैकडों पताका और अनेक आयुधोंसे संयुक्त थे ॥५९॥ चन्द्रमा और कुंदके फूलके समान विशाल छत्र दनुजपतिके ऊपर धारण किया गया उसकी ऐसी शोभा होती थी जैसे हिमालयके ऊपर चन्द्रमा ॥ ६० ॥ मुख्य केशी दानव जिह्म ताम्राक्ष दर्शन नीलमेघके समान कालही मानो पुरुषशरीर धारण किये है॥६१॥महाग्रहके समान आकार और शत्रुओंको भय-दाता चित्र माला और वस्त्र पहरे लाल आभरणसे विभूषित ॥ ६२ ॥ शताक्ष शतबाहु महाबली हरिश्मश्रु शंकुकर्ण महानाद शरीरसे घोरदर्शन ॥६३॥

दिव्यमहिषोंके गलेमें बंधे अनेक घंटारव शब्दसे विराजित महावारिधरके आकारवाले रथमें स्थित हो ॥ ६४ ॥ नील केशरकी कान्तिवाले उष्ट्रध्वजसे शोभित अनेक प्रकारकी पताकाओंसे विराजित ॥ ६५ ॥ सौ सहस्र महाकान्तिमान् रथोंके समूह उस असुरेन्द्रके पीछे हुए जिनकी महाकान्ति थी ॥६६॥ वे काले अंजन पर्वतके समान उसके पीछे जाते हुए शोभित होते थे दंष्ट्रासे अर्धचन्द्रके समान प्रकाशित उनके मुख बगलेसहित मेघके समान लक्षित होते थे॥६७॥वैडूर्यमणि और सुवर्णसे जटित बिजुलीके समान सूर्यकी किरणोंकी तुल्य पर्वतपर स्थित अग्निके समान उसका मुकुट

युक्तं महिषकैर्दिव्यैर्घण्टाकोटिकृतस्वनम् ॥ महावारिधराकारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ ध्वजेनोष्ट्रेण महता नीलकेसरवर्चसा ॥ नानारागविचित्राभिः पताकाभिर्विभूषितम् ॥ ६५ ॥ द्विपञ्चाशत्सहस्राणि रथानामुग्रवर्चसाम् ॥ ययुस्तस्यासुरेन्द्रस्य प्रयातस्य सुरान्प्रति ॥६६॥ भान्ति भिन्नाञ्जननिभाः प्रयातस्य महात्मनः ॥ दंष्ट्रार्द्धचन्द्रवदना सबलाका इवाम्बुदाः॥६७॥ तत्तस्य वैडूर्य- सुवर्णचित्रं विद्युत्प्रभं भास्कररश्मितुल्यम् ॥ किरीटमाभात्यसुरोत्तमस्य दावाग्निदीप्तं शिखरं यथाद्रेः ॥ ६८ ॥ वृषपर्वासुरश्चैव श्रीमांश्च सुरसूदनः ॥ आरुरोह रथं दिव्यं मेरुशृङ्गमिवांशुमान् ॥६९॥ प्रवालजाम्बूनदचित्रकूबरं महारथं भारसहं महार्हम् ॥ स्वलंकृतं राजतहेमकुण्डलं गभस्तिनक्षत्रतडिन्निकाशम् ॥७०॥ केयूरयुक्ताङ्गदनद्धबाहुः सहस्रतारेण च चर्मणा सः ॥ सांग्रामिकैराभरणैश्च चित्रैर्मध्याह्नसूर्यप्रतिमो बभूव ॥७१॥ महाबलो बद्धतलांगुलित्रो बलोत्कटः किंशुकलोहिताक्षः ॥ प्रगृह्य चामीकर- चारुचित्रं चापं स्थितो वृत्तविशालनेत्रः ॥ ७२ ॥

शोभित होता था ॥ ६८ ॥ सुरसूदन श्रीमान् वृषपर्वा असुर मेरुशृंगपर सूर्यके समानस्थित हुआ॥६९॥जिस रथका मूंगे और सुवर्णजटित कूबर था वह महाभारका सहन करनेवाला था चांदी और सुवर्णके कुंडलोंसे अलंकृत किया गया सूर्य नक्षत्र और बिजुलीके समान॥७०॥केयूर अंगद बाजूबंदोंसे शोभित भुजा सहस्र तार और चर्मसे बंधा संग्रामके विचित्र आभरणोंसे शोभित दुपहरके सूर्यके समान लक्षित हुआ ॥ ७१ ॥ वहां बली अंगुलीत्राण बांधेबलसे उद्धत टेसूके फूलके समान लालनेत्र सुवर्णका बडा धनुष ग्रहण किये विशाल नेत्रवाला वृत्र असुर स्थित हुआ ॥ ७२ ॥

महाअसुरेन्द्र और महाअसुरोंसे युक्त बलि रथके ऊपर स्थित हुआ वह उसका रथ वैडूर्य मणि और सुवर्णसे जटित सोलह नल्वका था ॥ ७३ ॥
उसमें बुरे आकारवाले हाथीके मुखवाले सहस्र दानव लगे थे जिनके हृदयमें सुवर्णके भूषण थे और चौमासेके मेघोंके समान शब्द करते थे ॥७४॥
वह महारथ देवरथके समान सहस्रमायावाले मयने बनाया था ईहामृगोंके क्रीडाकी रचनासे युक्त दिव्यरथ कि जिसके पीछे दिव्यरथ चलते थे॥७५॥
बड़ी विशाल विस्तारवाली किंकिणी सुवणके सैकडों कमलोंसे युक्त बलि सुवर्ण की चित्रितपुष्पोंकी माला पहरे देवताओंसे युद्ध करनेको चला ॥ ७६ ॥

महासुरेन्द्रश्च महासुरैर्वृतो बलिस्तदा स्यन्दनमारुरोह।वैडूर्यहेमोपचित्तं विशालं विद्युत्प्रभं षोडशनल्वमात्रम्॥७३॥ युक्तं सहस्रेण दितेः सुतानां गजाननानां विकृताकृतीनाम् ॥ चामीकरोरःस्थलभूषितानां प्रनर्दतां प्रावृषि चाम्बुदानाम् ॥ ७४ ॥ महारथं देवरथप्रकाशं सहस्रमायेन मयेन सृष्टम् ॥ ईहामृगाक्रीडितभक्तिचित्रं दिव्यं रथं दिव्यरथानुयातम् ॥ ७५ ॥ सकिङ्किणीकं विमलं सुविस्तृतं हिरण्मयैः पद्मशतैरलंकृतम् ॥ अभ्याददे वैजयिकीं जयाय स्रजं बलिर्हेमविचित्रपुष्पाम् ॥७६॥ अवध्यमालां प्रभया विचित्रां बलिस्तदा भाति भुजैर्विशालैः ॥ रराज तैः सर्वसमृद्धियुक्तैर्महार्चिषा सूर्य इवाम्बरस्थः ॥७७॥ स्रजं तदाबध्यति चास्य दुर्गां सर्वासुराणामिव हारभूताम् ॥ वैरोचनिः सर्वश्रियाभिजुष्टो विभ्राजतेऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥७८॥ मेरोस्तटैर्वा ज्वलनप्रकाशैरादित्यसंयुक्तमिवाभ्रजालम् ॥ प्रासाश्च पाशाश्च हिरण्यबद्धा वर्माणि खड्गाश्च परश्वधाश्च ॥ ७९ ॥ धनूंषि वज्रायुधसप्रभाणि दिव्या गदा वज्रमुखाश्च शक्तयः ॥ दिव्याश्च खड्गा विशिखाश्च दीप्ता नाराचपूर्णा विविधाश्च तूणाः ॥ ८० ॥

प्रभासे विचित्र अवध्य माला पहरे समृद्धिमान् विशाल भुजाओंसे बलि ऐसे शोभित हुआ जैसे आकाशमें सूर्य अपनी किरणोंसे शोभित होता है ॥ ७७ ॥
सम्पूर्ण असुरोंकी हारभूत मालाको बांधे बलि सम्पूर्ण लक्ष्मीसे युक्त शरदकालीन चन्द्रमाके समान विराजमान हुआ ॥ ७८ ॥ जैसे मेरुके तटमें
अपनी किरणोंसे सूर्य प्रकाशित होता है प्रास पाश सुवर्णमें बांधे वर्म खड्ग तथा परशे लिये ॥ ७९ ॥ धनु वज्र आयुध दिव्य गदा वज्रमुख शक्ति

दिव्य खड्ग विशिखा दीप्त नाराच और पूर्ण विधानके तरकस ॥ ८० ॥ उस दैत्यके रथमें शस्त्र उल्कापातके समान प्रकाशित होते थे वे चामर और पीडसे युक्त सुवर्ण मोती हेममणियोंसे प्रकाशित होते थे ॥ ८१ ॥ रथकी वेदिकाओंमें बैठे महाअसुर नम्र हुए व्यजन करते थे अयशिर अश्वशिर बडे दुरूह शिबिर मतंग विशिर शताक्ष ॥ ८२ ॥ अयनिकुंभ और क्रथन दानव यह दश उस दानव अधिपतिकी रक्षा करते थे और आगे सेकडों योधा पैदल उस दानवराजकी रक्षा करते थे॥८३॥शतघ्नी चक्र अशनि शक्ति हाथमें लिये यह पवनके तुल्य वेगगामी चले उसमें उस समय घंटे

धृता रथे दैत्यवृषस्य तस्य चकाशिरे प्रज्वलिता यथोल्काः ॥ ते चामरापीडधराः सुदंष्ट्राः सुवर्णमुक्ता मणिहेमचित्राः ॥ ८१ ॥
वीज्यन्ति वालव्यजनैर्विनीता महासुराः स्यन्दनवेदिकास्थाः ॥ अयःशिराः अश्वशिरा दुरापः शिबिर्मतङ्गो विशिराः शताक्षः॥८२॥
अयो निकुम्भः क्रथनश्च दानवो ररक्षिरे ते दश दानवाधिपम् ॥ पुराश्चराश्चैव सहस्रशोऽसुराः पदातयो दानवराजरक्षिणः ॥८३॥
शतघ्निचक्राशनिशक्तिपाणयः प्रजग्मुरग्रेऽनिलतुल्यवेगिनः ॥ घण्टाः सुशब्दास्तपनीयबद्धा आडम्बरागर्गरडिण्डिमाश्च ॥ ८४ ॥
महारवा दुन्दुभयश्च नेदू रथप्रयाणे दितिजेश्वरस्य ॥ तस्योत्थितः काञ्चनवेदिकाढ्यो हिरण्मयो दिव्यमहापताकः ॥८५॥ महाध्वजो वै तपनीयनद्धो रराज वीरस्य यथा विवस्वान् ॥ समुच्छ्रितं काञ्चनमातपत्रं स्रक्काञ्चनी वक्षसि चास्य भाति ॥८६॥ समन्ततश्चाप्यसुराश्चरन्ति दैत्यर्षयः प्राञ्जलयो जयन्ति ॥ पुरोहिताः शत्रुवधे समाहितास्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः ॥८७॥ जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥ स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥८८॥

और डिमडिमका शब्द बराबर होता था॥८४॥महाशब्दवाली दुंदुभी बजने लगी जिस समय उस दैत्याधिपतिका रथ चला, उसकी कांचन वेदीसे बडी दिव्य रथकी पताका स्थित थी ॥८५॥ वह महाध्वजा सुवर्णसे मढी सूर्यके समान विराजमान थी सुवर्णका छत्र हो रहा था और सुवर्णकी माला इसकी छातीपर शोभित थी ॥८६॥ चारों ओर उसके असुर चले और दैत्योंके जयशब्द ऋषि करने लगे पुरोहित शत्रुवधका अनुष्ठान करने लगे इसी प्रकार और शास्त्रपाठी महात्मा स्थित थे ॥८७॥ जप मंत्र और औषधीसे इन महात्माका स्वस्तिवाचन करने लगे वह वस्त्र गौ सुन्दर फल

फूल और अशरफी ॥ ८८ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त प्रदान करने लगा और कुबेरके समान शोभित होने लगा सहस्र सूर्य समान प्रकाशित बहुत किंकणीसे युक्त उत्कृष्ट सुवर्णसे चित्रित ॥ ८९ ॥ सहस्र चन्द्रमा और अनन्त तारकाओंके समान तथा अग्निके समान रथमें वह वीर दानव धनुष वाण ग्रहण कर शोभित हुआ ॥ ९० ॥ देवताओंकी सेनाको डराता हुआ बडे भयंकर रूपको धारण करता हुआ वह वेगवान् वीर रथसमूहसे युक्त दैत्यसागर देवताओंके प्रति चला ॥ ९१ ॥ जिस प्रकार महासागरमें तरंगें उठती हैं तैसे वे भयंकर शरीरसे त्रिलोकके वित्रास

बलिर्द्विजेभ्यः प्रयतः प्रयच्छन्विराजतेऽतीव यथा धनेशः ॥ सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः परार्द्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ॥ ८९ ॥ सहस्रचन्द्रायुततारकश्च रथो बलेरग्निरिवावभाति ॥ तमास्थितो दानवसंगृहीतं महाबलः कार्मुकधृक्सबाणः ॥९०॥ उद्वर्तयिष्यन् त्रिदशेन्द्रसेनामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् ॥ स वेगवान्वीररथौघसंकुलः प्रयाति देवान्प्रति दैत्यसागरः ॥९१॥ महार्णवो वीचितरङ्गसंकुलो यथा जलौघैर्युगसंक्षये तथा ॥ त्रैलोक्यवित्रासकरैर्वपुर्भिस्तान्यग्रतो यान्ति बले रथस्य ॥ महाबलान्युच्छ्रितकार्मुकाणि सपर्वतानीव वनानि राजन् ॥९२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि बलेरुद्योगो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो जनमेजय ॥ भूयस्त्रिदशसैन्यस्य शृणु विस्तरमादितः ॥१॥ सुराधिपस्तु भगवानाज्ञापयत वै सुरान् ॥ मरुद्गणांस्तथादित्यान्विश्वान्देवांश्च वासवः ॥ २ ॥ वसूनष्टौ भृशं सर्वान्यक्षरक्षोमहोरगान् ॥ विद्याधरगणान्त्सर्वान् गन्धर्वांश्च महाबलान् ॥३॥ महार्णवांश्च शैलाश्च तथा रुद्रान्महौजसः ॥ यमवैश्रवणौ चोभौ वरुणं च जनाधिपम् ॥४

करनेवाले वे दैत्य बलिके रथके आगे चले वे महाबली धनुष उठाये हुए पर्वत और वनके समान शोभित हुए ॥९२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां बलेरुद्योगो नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ वैशंपायन बोले; हे जन्मेजय ! दैत्योंकी सेनाका विस्तार सुनाया अब देवताओंकी सेनाका विस्तार सुनो ॥ १ ॥ भगवान् इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी मरुद्गण आदित्य विश्वेदेवा ॥ २ ॥ आठ वसु यज्ञ रक्ष महोरग विद्याधर महाबली गन्धर्व ॥ ३ ॥ महार्णव शैल रुद्र यम वरुण ॥ ४ ॥

सिद्ध महात्मा पितर मनस्वी सैंकडों योगसिद्ध राजर्षि ॥ ५ ॥ सबको वीर्यवान् इन्द्रने आज्ञा दी कि आप दैत्योंके नाश करनेको तयार हो ॥६॥ शक्रके वचन सुन सब देवता इन्द्रके समान पराक्रमी सब तयार हो गये ॥ ७ ॥ सब अनेक कवच और विचित्र ध्वजा धारण किये अनेक आयुध लिये मत्त हाथीके समान ॥ ८ ॥ कोई व्याघ्र कोई हाथी कोई नाग और कोई वृक्षोंपर चढे ॥ ९ ॥ हारितनेत्र हारितश्मश्रु ऐरावतसे आवृत ध्वजा हरित वर्णके घोडोंवाले रथमें चढ इन्द्र युद्धको गया ॥ १० ॥ सूर्यके समान वर्ण मलीनतारहित स्वच्छ त्वष्ट्राके बनाये हुए

ये तु सिद्धा महात्मानः पितरश्च मनस्विनः॥ राजर्षयश्च शतशो योगसिद्धास्तथैव च ॥५॥ त्रिदशाज्ञापकः शक्र आज्ञापयति वीर्यवान् ॥ भवन्तो दैत्यनाशाय सन्नह्यन्तामिति प्रभुः॥६॥शक्रस्य वचनं श्रुत्वा ततःसर्वे दिवौकसः॥सन्नह्यन्त महात्मानः शक्रस्य समविक्रमाः ॥७॥ नानाकवचिनःसर्वे विचित्रकवचध्वजाः ॥ नानायुधोद्यतत्करा मत्ता इव महागजः ॥ ८ ॥ केचिदारुरुहुर्व्याघ्रान् केचिदारुरुहुर्गजान् ॥ केचिदारुरुहुर्नागान् केचिदारुरुहुर्वृषान् ॥९॥ हरिनेत्रो हरिश्मश्रुर्द्विरदैरावृतध्वजम् ॥ रथं हरिहयैर्युक्तं स प्रायात्समरंप्रति ॥ १० ॥ आदित्यवर्णं विरजं सुधौतं त्वष्ट्रा स्वयं निर्मितमीश्वरार्थम् ॥ जालैश्च जाम्बूनदभक्तिचित्रैरलंकृतं काञ्चनदामभिश्च॥११॥सकूबरोपस्करबन्धुरेषं विद्युत्प्रभाभिः कृतमाभिताग्रम् ॥ कैलासशृंगोपममिन्द्रयानं सुचारुचारुप्रतिचक्रचक्रम्॥१२॥ तारासहस्रैः खचितं ज्वलद्भिर्दिवार्हमाल्यार्चितसर्वदेहम्॥समुच्छ्रितं श्रीध्वजमक्षयाक्षं प्रज्वाल्यमानं पुरुषोत्तमेन॥१३॥ आस्थाय तं भास्करमाशुवेगं शचीपतिर्लोकपतिः सुरेशः ॥ वज्रस्य धर्ता भुवनस्य गोप्ता ययौ महात्मा भगवान्महेन्द्रः ॥१४॥

रथमें कि जिसमें अनेक सुवर्णके झरोखे और सुवर्णकी माला शोभित थी ॥ ११ ॥ कूबर उपस्करसे विजुलीकी प्रभाके समान शोभित था सुंदर पहियोंसे युक्त इंद्रका रथ कैलासके समान प्रकाशित होता था ॥ १२ ॥ सहस्र ताराओंकी समान प्रकाशित मालाओंसे अर्चित सम्पूर्ण देह समुच्छ्रित श्री अक्षय ध्वज और पुरुषोत्तमसे प्रकाशमान ॥ १३ ॥ सूर्यके समान वेगवान् रथमें स्थित हो शचीपति लोकपति सुरेश वज्रका धारण करनेवाला भुवनका गोप्ता महेन्द्र चला ॥ १४ ॥

अग्निके समान प्रकाशवाले सहस्र ताराओंसे युक्त वर्मको पहरकर सूर्यकेसमान कान्तिमान किरीट और जाम्बुनदयुक्त वैजयन्ती माला पहरे॥१५॥ त्वष्ट्राके किये सूर्यकी किरणके समान तीक्ष्ण घोर धारवाले असुरोंके रुधिरसे लिप्त सौ पर्ववाले वज्रको ग्रहणकर ॥ १६ ॥ महाग्रहक समान दो महाअशनि और अमोघ उग्रशक्ति और महाचक्र ग्रहणकर इन्द्र युद्ध करनेको चले ॥१७॥सहस्रदृक् भूतपति सनातन सनातनकेभी सनातन और खड्ग तथा व्याघ्रचर्म लेकर ॥ १८ ॥ तथा जो भूषण क्षीरसागरके मथनेसे उत्पन्न हुए थे जो देवताओंने असुरोंसे जीते थे चन्द्र सूर्य नक्षत्र

आमुच्य वर्माथ सहस्रतारं हुताशनादित्यसमप्रभावम् ॥ सूर्यप्रभ चामुमुचे किरीटं मालां च जाम्बूनदवैजयन्तीम् ॥१५॥ त्वष्ट्रा कृतं भास्कररश्मिदीप्त सुतीक्ष्णघोरामलतीव्रधारम् ॥ महासुराणां रुधिरार्द्रमुग्रं प्रगृह्य वज्रं शतपर्व भीमम् ॥ १६ ॥ महाशनी द्वे च महाग्रहाभे दीप्तामम़ोघां च स शक्तिमुग्राम् ॥ चक्रं तथैन्द्रं सुमहत्प्रतापं प्रगृह्य शक्रः प्रययौ रणाय ॥१७॥ सहस्रदृग्भूतपतिः सनातनः सनातनानामपि यः सनातनः ॥ खड्गं च देवाधिपतिर्महात्मा वैयाघ्रमादाय च चर्म चित्रम् ॥१८॥ क्षीरोदधिक्षोभसमुच्छ्रितानि पुरामृतादुत्तमभूषणानि ॥ देवासुराणां समनिर्जितानि सोमार्कनक्षत्रतडित्प्रभाणि ॥ १९ ॥ तत्तान्यदित्या मणिकुण्डलानियुद्धं प्रयातस्य सुरेश्वरस्य ॥ तैर्भूषितो भाति सहस्रचक्षुरुद्योतयद्वै विदिशो दिशश्च ॥ २० ॥ हरिः प्रभुर्नेत्रसहस्रचित्रो विभाति युद्धाभिमुखः सुरेन्द्रः ॥ यथा सितं शारदमभ्रकल्पं नभस्तलं ऋक्षसहस्रचित्रम् ॥ २१ ॥ स्तुवन्ति यान्तं विपुलैर्वचोभिर्जयाशिषा चोर्जितसत्त्ववीर्यम् ॥ अत्रिर्वसिष्ठो जमदग्निरुर्वो बृहस्पतिर्नारदपर्वतौ च ॥ २२ ॥

बिजुलीके समान कान्तिवाले ॥१९॥ तथा युद्धमें जाते हुए अदितिके कुंडलोंसे युक्त इन्द्र इस प्रकार शोभित हुआ कि मानो दशों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा है ॥२०॥ हरि प्रभु इन्द्र सहस्रनेत्रवान् युद्धके सन्मुख जाता महाशोभित हुआ जिस श्वेत शरदके मेघोंके बीचमें चित्रवर्ण आकाश तारोंसे शोभित होता है ॥२१॥ इन्द्रके चलनेपर अत्रि वसिष्ठ जमदग्नि उर्व बृहस्पति नारद और पर्वत अनेक प्रकारके आशीर्वादोंसे और श्रेष्ठ वचनोंसे इन्द्रकी स्तुति करने लगे॥ २२ ॥

उनके पीछे देवगण महेन्द्र सूर्यके समान कान्तिमान् चले विश्वेदेवा मरुत साध्य आदित्य गण यह सब चले॥२३॥और देवराज पुरन्दरके मातलिसे संग्रहीत किये अश्व देवेश्वरको वहन कर आकाशमें पदविक्षेप करते चले॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षि महर्षि राजर्षि क्षीणपुण्यवाले लोक यह सब सहसा इन्द्रके पीछे तेजसे प्रकाशित होते चले॥२५॥ शूल परशे और विचित्र अशनि ग्रहण कर सूर्यके कान्तिकी समान सुवर्णके कवच पहरे चले ॥ २६ ॥ इसी प्रकार कुबेरजी सर्व श्रेष्ठ सहस्र घोडे जुते रथमें स्थित हो दीप्तिमान् गदा हाथमें ग्रहण कर युद्ध करनेको चले ॥ २७ ॥ अग्निकी समान धूम्रवर्णवाले

तमन्वयुर्देवगणा महेन्द्रं प्रयान्तमादित्यसमानवर्चसम् ॥ विश्वे च देवा मरुतस्तथैव साध्यास्तथादित्यगणाश्च सर्वे ॥ २३ ॥ ते देवराजस्य पुरंदरस्य हयाश्च ये मातलिसंगृहीताः प्रयान्ति देवेश्वरमुद्वहन्तो नभस्तलं पद्भिरिवाक्षिपन्तः ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षयश्चैव महर्षयश्च राजर्षयश्चाक्षयपुण्यलोकाः ॥ सर्वेऽनुजग्मुः सहसा ज्वलन्तं तेजोऽन्वितं शक्रममित्रसाहम् ॥ २५ ॥ प्रगृह्य शूलांश्च परश्वधांश्च दीप्तानि चापान्यशनीर्विचित्राः ॥ वर्माणि चामुच्य हिरण्मयानि प्रयान्ति सूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २६ ॥ तथा कुबेरोऽश्वसहस्रयुक्तं श्रेष्ठं रथं सर्वसहं महार्हम् ॥ दिव्यं समारुह्य रणाय यातो धनेश्वरो दीप्तगदाग्रहस्तः ॥ २७ ॥ निशाचराः पावकधूमकाया रक्षोवृषा रुद्रसखस्य तस्य ॥ विशालनानायुधदीप्तहस्ता यान्त्यग्रतो वैश्रवणस्य राज्ञः ॥२८॥ ते लोहिताक्षाः परिवार्य देवं व्रजन्ति भिन्नाञ्जनचूर्णवर्णाः ॥ यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं रक्षन्ति वै पा गदासिहस्ताः ॥ २९ ॥ पुण्यः प्रभुः प्राणपतिर्जितात्मा वैवस्वतो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ तडिद्गुणाभं शतवाजियुक्तं रथं समारोहत सूर्यकल्पम् ॥३०॥ तं लोकपालं पितरोऽनुजग्मुर्विविक्तपापा ज्वलितास्तपोभिः ॥ सर्वे च भूता भुवनप्रधाना नानायुधव्यग्रकराः सुभीमाः ॥ ३१ ॥

राक्षस वृष रुद्रके सखा विशाल अनेक प्रकारके आयुध हाथमें लिये कुबेरके आगे २ चले॥२८॥वे लालनेत्र किये देवको घेरकर भिन्न अञ्जनके समान वर्णवाले चले यक्षोंमें उत्तम यक्षपति धनेशको गदा पाश खड्ग हाथमें लिये चले ॥ २९ ॥ पुण्य प्रभु प्राणपति जितात्मा वैवस्वत धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ बिजलीके समान प्रकाशित सौ घोडोंसे युक्त सूर्यक समान प्रकाशित रथमें चढा ॥ ३० ॥ उनके पीछे पापरहित तपसे प्रकाशमान पितर गये यह

सब भुवनप्रधान नानाभयकर आयुध हाथमें लिये थे ॥ ३१ ॥ यह देव महाअस्त्र दण्डको हाथमें लिये जो साक्षात् लोकके निग्रहका अंकुश था और गलेमें सुवर्णके बने हुए कमलोंकी माला पडी हुई थी ॥ ३२ ॥ अस्थि मेद आमिषसे लिप्त शरीर सब असुरोंको मारनेमें विरूप तेजोमय उग्ररूप मुद्गर हाथमें लिये उसे खैंचते धूम्रनेत्र॥ ३३॥सैंकडों व्याधियोंसे युक्त हरितश्मश्रु उदारसत्त्व व्याधिपति कालमहाअसुरोंके मारनेकी इच्छा करने लगे॥ ३४॥ तीन शिरके सर्प उस रथको वहन करते थे सब सुवर्णनिर्मित रथ था उस रथमें कुंद और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान् जलेश स्थित होकर असु-

दण्डं महास्त्रं परिगृह्य देवो लोकाङ्कुशं निग्रहनिश्चितार्थम् ॥ हिरण्मयानां कमलोत्पलानां मालां मनोज्ञामवसज्य कण्ठे ॥ ३२ ॥ स्थितोऽस्थिमेदामिषलोहितार्द्रं सर्वासुराणां निधनं विरूपम् ॥ तेजोमयं मुद्गरमुग्ररूपं विकर्षमाणोऽरुणधूम्रनेत्रः ॥ ३३ ॥ समन्विन्वतो व्याधिशतैरनेकैर्ययौ हरिश्मश्रुरुदारसत्त्वः ॥ महासुराणां निधनाय बुद्धिं चक्रे तदा व्याधिपतिः कृतान्तः ॥३४॥ ततस्त्रिशीर्षैर्भुजगैर्बृहद्भिर्युक्तं रथं हेमचितं महात्मा ॥ आस्थाय कुन्देन्दुनिभं जलेशो ययौ रणायासुरदर्पहन्ता ॥ ३५ ॥ वैडूर्यमुक्तामणिभूषिताङ्गस्तेजोमयः पाशगृहीतहस्तः ॥ महासुराणां निधनाय देवः प्रयाति रूप्याङ्गदबद्धबाहुः ॥ ३६ ॥ कैलासशृङ्गप्रतिमोऽप्रमेयः समुद्रनाथोऽमृतपो महात्मा ॥ महोरगैः स्वैस्तनयैः सुगुप्तो ययौ रथेनार्कसमप्रभेण ॥ ३७ ॥ युद्धाय तं यान्तमदीनसत्त्वं नभस्तले चन्द्रमिवातिकान्तम् ॥ पश्यन्ति भूतानि महानुभावं संहृष्टरोमाणि कृताञ्जलीनि ॥ ३८॥ धातार्यमांशोऽथ भगो विवस्वान्पर्जन्यमित्रौ च शशी च देवः ॥ त्वष्टा तथैवोर्जितविश्वकर्मा पूषा च साक्षाद्दिवि देवराजः ॥ ३९ ॥

रोंका दर्प चूर्ण करनेको चले ॥ ३५ ॥ वैडूर्य मुक्तामणिसे भूषित शरीर तेजोमय पाश हाथमें लिये रूप्यके बाजू हाथमें बांधे वरुणजी महाअसुरोंके मारनेको चले ॥३६॥ कैलासके शृंगके समान समुद्रपति अमृत पीनेवाले महात्मा वरुण महासर्प और अपने पुत्रोंसे रक्षित हुए सूर्यके समान रथमें स्थित हो गये ॥ ३७ ॥ युद्धके निमित्त जाते वे ऐसे शोभित हुए जैसे आकाशमें चन्द्रमा जाता है उन महानुभावको प्रसन्न चित्तसे ाथ जोडकर सब प्राणी देखने लगे ॥ ३८ ॥ धाता अर्यमा अंश भग विवस्वान् पर्जन्य मित्र शशी देव त्वष्टा ऊर्जित विश्वकर्मा पूषा और साक्षात् देव-

राज ॥ ३९ ॥ यह सब सूर्यके ढकनेवाली ध्वजा किंकिणीसे युक्त वैडूर्य और अशरफीके कण्ठे कण्ठमें बांधे इन्द्रके रथको प्रकाश करनेवाले सुन्दर घोडोंसे जुते रथमें यह देवता स्थित हुए ॥ ४० ॥ कोई सूर्यके समान आकारवाले कोई अग्निके समान प्रभावाले कोई चन्द्रमाके समान कान्तिमान् कोई बिजलीके समान प्रकाशित ॥ ४१ ॥ कोई नील प्रकाशित मेघके समान कोई कृष्णलोहक समान दिव्यकान्तिमान् वख्तर धारण किये जो उत्तम प्रकाशमान् विश्वकर्माके बनाये थे ॥ ४२ ॥ जो सुवर्णपुष्पकी माला पहरे जलपवनके समान वेगसे चलते थे दोनों

सौरच्छदैः सध्वजकिङ्किणीकैर्वैडूर्यनिष्कैश्चितहेमकण्ठैः ॥ हयैर्वरैः शक्ररथप्रकाशैर्युक्तान् रथानारुरुहुः सुरास्ते ॥४०॥ दिवाकराकारनिभानि केचिद्धुताशनार्चिःप्रतिमानि केचित् ॥ निशाकरांशुप्रतिमानि केचित्तडिद्गणोद्योतनिभानि केचित् ॥ ४१ ॥ नीलांशुमेघप्रतिभानि केचित्कार्ष्णायसाकारनिभानि केचित् ॥ वर्माणि दिव्यानि महाप्रमाणि त्वष्ट्रा कृतान्युत्तमभानुमन्ति ॥४२॥ आमुच्य मालाश्च सुवर्णपुष्पाः प्रयान्ति तोयानिलतुल्यवेगाः ॥ द्वावश्विनौ चैव महानुभावौ रूपोत्तमौ धर्मभृतां वरिष्ठौ ॥४३॥ रथं समारुह्य सुवर्णचित्रं रणं गतौ काञ्चनतुल्यवर्णौ ॥ भानोः सुता वै वसवश्च सर्वे बलोत्कटा दैत्यवधाय देवाः ॥४४॥ रथांश्च नागांश्च महाप्रमाणानास्थाय जग्मु सुशुभास्त्रहस्ताः ॥ रुद्राश्च सर्वेऽरुणधूम्रवर्णाः श्वेतैर्यथुर्गोपतिभिर्बृहद्भिः ॥ ४५ ॥ महौजसः सर्वगुणोपपन्नादीप्तात्मनो भाभिरिव ज्वलन्तः ॥ नानायुधव्यग्रकरैर्भुजैस्तैर्लोकान्त्समस्तानिव निर्दहन्तः ॥ ४६ ॥

अश्विनीकुमार महानुभाव रूपमें अतिश्रेष्ठ धर्म धारण करनेवालोंमें परम श्रेष्ठ ॥ ४३ ॥ कांचनके तुल्य वर्णवाले दोनों सुवर्णके रथमें चढकर युद्ध करनेको गये भानुके पुत्र आठों वसुबली दैत्योंके वध करनेको चले ॥ ४४ ॥ यह सुन्दर अस्त्र धारण किये महाप्रमाणवाले रथ और हाथियोंमें स्थित होकर चले अरुण धूम्रवर्णवाले सम्पूर्ण रुद्र श्वेत प्रकाशमान् वृषके ऊपर स्थित हो चले ॥ ४५ ॥ यह महापराक्रमी सम्पूर्ण गुणोंसे उत्पन्न दीप्तिमान् अपनी कांतिसे प्रकाशित होते हुए अनेक आयुधोंसे पूर्ण भुजावाले सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करते हुए ॥ ४६ ॥

तपनीय कवच पहरे बिजलीयुक्त बादलकी समान चले और तपसे प्रकाशमान् विश्वेदेवा सूर्यकी किरणोंकी समान वर्णवाले तपसे प्रकाशित श्रेष्ठ बली ॥४७॥ आयुधोंसे दुर्निवार्य सेना साथ लेकर चले यह बडे बली सहस्र कमलोंकी माला पहरे सुवर्णके रथसे युक्त जिनमें मुक्तामणि विचित्र जटित थी ॥४८॥ वे अनेक प्रकारके आकारवाले श्वेतछत्र धारे जो तेजोमय सुवर्णसे चित्रित और निर्मल थे तथा अग्निके समान कांतिमान् थे ॥ ४९ ॥ हृदय आच्छादनकरनेवाली वस्तु धारे ध्वजा किंकिणीसे युक्त वायुसमान वेगगामी घोडों तथा कैलासके शृंग और दिशाके हाथियोंकी

ययुः ससैन्यास्तपनीयनद्धाः सविद्युतस्तोयधरा यथैव ॥ विश्वे च देवास्तपसा ज्वलन्तो वीर्योत्तमाः सूर्यमरीचिवर्णाः ॥४७॥ ययुः ससैन्या युधि दुर्निवार्या बलोत्कटा पद्मसहस्रमालाः ॥ रथैः सुयुक्तैस्तपनीयवर्णैर्वैदूर्यमुक्तामणिदामचित्रैः॥४८॥ नानाविधाकार-समाकुलास्ते पारिप्लवैश्चैव सितातपत्रैः ॥ तेजोमयैः काञ्चनचारुचित्रैः सुनिर्मलैः पावकसन्निभास्ते ॥४९॥ उरश्छदैः सध्वजकिङ्किणी-कैर्हयैश्च वायोः॥समवेगवद्भिः॥दिशां गजैश्चैव महाबलैस्तैः कैलासशृङ्गप्रतिमैर्महद्भिः॥५०॥ प्रजग्मुरुग्रायुधचापहस्ताश्चतुर्युगान्ते ज्वलिता इवोल्काः ॥ साध्याश्च देवाः सुमहाप्रभावाः स्वाधीनचक्राः प्रतिदीप्तवक्राः ॥ प्रयान्ति जाम्बूनदभूषिताङ्गा गाङ्गौघमात्रैर्गग-नैर्बलौघैः ॥५१॥ विद्योतयन्तो विदिशो दिशश्च महाबलास्ते जयतां वरिष्ठाः ॥ वरिष्ठपुष्टोष्ठभुजाः सुदृप्ता वैश्वानरार्कप्रतिमप्र-भावाः॥५२॥ते ब्रह्मविद्भिश्च समस्यमानाः सपूज्यमानाश्च सुरैः सशक्रैः॥ गन्धर्वसंघैरनुगम्यमाना वधाय तेषामसुराधिपानाम्॥५३॥ वैडूर्यवज्रस्फटिकाग्रचित्रैर्ध्वजैः सुवर्णैश्च परिष्कृतानाम् ॥ रूपं बभौ चोत्कटभूषणानां दैत्येन्द्रनाशाय विभूषितानाम् ॥ ५४ ॥

समान महाहाथी ॥५०॥ यह सब हाथमें धनुष तथा दूसरे आयुध लिये चतुर्युगके अन्तमें प्रज्वलित उल्काके समान चले म ।प्रभावव ले साध्य देवता अपनी आधीन सेनावाले प्रदीप्त मुख सुवर्णसे भूषित अङ्ग गंगाके समूहके समान बडी सेना लिये आकाशमें चले ॥५१॥ दशों दिशाओंको प्रकाशित करते महाबली तेजसे प्रदीप्तिमान् दृप्त पुष्ट भुजावाले सूर्य और अग्निके समान प्रभाववाले ॥ ५२ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंसे समस्यमान देवता तथा इन्द्रसे पूजित गंधर्व सेनाको साथ लिये दैत्योंके मारनेको चले ॥५३॥ वैडूर्य वज्र और स्फटिकमणियोंसे युक्त सुवर्णसे अलंकृत अनेक भूषण पहरे

उन दैत्योंके नाश करनेवालोंका रूप महाशोभित हुआ ॥५४॥ युद्धमें उत्कट अपनी कांतियोंसे तथा अंधकार दूर करनेवाली कवचोंकी कांतिसे उत्तम ध्वजा और अपने शरीरकी कांतिसे तथा उज्ज्वल प्रभाओंसे ॥ ५५ ॥ साध्यों सहित वे देवता शंख बजाते शोभित होते थे ॥ ५६ ॥ वे महाबली महारथी देवता रथोंमें बैठकर दत्योंसे युद्ध करनेको चले वे उग्रकाय देवता हाथोंमें महाअस्त्र लिये दैत्योंके मारनेको चलो ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार और दूसरे महाबली बलोत्कट समर करनेवाले महामेघके समान वर्णवाले चक्र हाथमें लिये मेघके समान शब्द करनेवाले ॥ ५८ ॥महेन्द्रकी

आत्मप्रभाभिश्च रणोत्कटाभिर्वर्मप्रभाभिश्च तमोनुदाभिः ॥ ध्वजोत्तमाभिः ॥ स्वशरीरभाभिर्महाप्रभाभिश्च महोज्ज्वलाभिः ॥५५॥ विभान्ति ते देववराः ससाध्याः प्रध्मातशङ्खस्वनसिंहनादाः ॥ ५६ ॥ महारथस्थास्त्रिदिवौकसस्ते महाबलाः शत्रुबलं प्रयान्ति ॥ महास्त्रहस्ता ययुरुग्रकाया महासुराणां निधनाय देवाः ॥५७॥ तथैव सर्वे महतोतिवीर्या बलोत्कटास्ते समरं प्रतीताः ॥ ययुर्महा-मेघसमानवर्णाश्चक्रायुधास्तोयदनादनादाः ॥५८॥ महेन्द्रकेतुप्रतिमा महाबलाः प्रगृह्य सर्वासुरसूदनां गदाम्॥रणोत्कटा लोहित-चन्दनाक्ताः सहेममाल्याम्बरभूषिताङ्गाः ॥ ५९ ॥ ते युद्धशौण्डाः सुभुजास्त्रवीर्या बलोत्कटाः क्रोधविलोडिताक्षाः ॥ ययुः सजा-म्बूनदपद्ममाला यथेष्टनानाविधकामरूपाः ॥ खगप्रभाश्यामलितांसपीठाः पुरंदरं वै परिवार्य देवाः ॥६०॥ वैडूर्यचामीकरचारु-रूपाण्याबध्य गात्रेषु महाप्रभाणि ॥ वर्माणि दैत्यास्त्रनिवारणानि प्रयान्ति युद्धाय सपत्नसाहाः ॥६१॥ तैरुत्थितैः काञ्चनवेदि-काद्यैर्वरध्वजैर्भास्कररश्मिवर्णैः ॥ ययौ सुराणां पृतनोग्रभासा समुन्नदन्ती युधि सिंहनादान् ॥ ६२ ॥

केतुके समान महाबली सब असुरसंहारिणी गदाको ग्रहण करे युद्धमें बडे वीर लाल चंदन लगाये सुवर्णकी माला और श्रेष्ठवस्त्रोंसे भूषित॥५९॥ युद्धके वीर भुजाओंमें शस्त्र लिये क्रोधसे लाल नेत्र किये सुवर्णके कमलोंकी माला पहरे कामरूप खड्गकी कान्तिसे कंधेको श्यामवर्ण किये इन्द्रको घेरे सब देवता ॥६०॥ वैडूर्य मणियोंसे जडे सुवर्णके महाकान्तिमान् बख्तर पहरे दैत्योंके निवारण करनेवाले देवता युद्ध करनेको चले ॥ ६१ ॥ सुवर्णकी वेदिकाओंमें जडी सुवर्णकी ध्वजा जिनका सूर्यके समान प्रकाश था उससे युक्त देवताओंकी सेना महासिंहनाद करती चली ॥६२॥

इस प्रकार इन्द्रकी महाप्रभावशाली सेना चली वे असुरोंके जय करनेको और उनके मारनेके निमित्त चले॥६३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हारि-
वंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावेद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥ वैशंपायन बोले; उस समय देवता और दैत्योंका विग्रह अद्भुत रूप दीखने
लगा जैसे युगान्तमें अपनी मर्यादाको त्याग कर दो समुद्र मिलते हैं ॥१॥अनेक प्रकारके आयुधोंकी ज्योतिसे प्रदीप्त शरीर महाबली धनुष चढाये
युद्धमें उत्सुक हाथीकी सूंडके समान हाथवाले दुर्जयमेघके समान शब्दवाले ॥ २ ॥ सहसा धनुषको चढाये सूर्यके समान कान्तिमान् चक्र लिये

इत्येवमुक्तं त्रिदिवेश्वरस्य सैन्यं तदासीत्सुमहत्प्रभावम् ॥ युद्धं प्रयातस्य जयावहस्य वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥६३॥ इतिश्रीम-
हाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रवृत्तोऽसुर-
देवविग्रहस्तदद्भुतो भाति सुरासुराकुलः ॥ वेलामतिक्रम्य युगान्तकाले महार्णवान्योन्यमिवाश्रयन्तः ॥१॥ नानायुधोद्योतविदीपि-
ताङ्गा महाबला व्यायतकार्मुकास्ते ॥ रणोत्सुका वारणहस्तहस्ताः सुदुर्जयास्तोयदनादनादाः ॥२॥ विस्फारयन्तः सहसा धनूंषि
चक्राणि चादित्यसमप्रभाणि ॥ समुत्क्षिपन्तो ह्यशनीश्च घोरान्खड्गांश्च ते वज्रमुखाश्च शक्तीः॥३॥महागदाः काञ्चनपट्टनद्धास्तथा
यसान्कार्मुकमुद्गरांश्च ॥ शूलांश्च वृक्षांश्च विगृह्य दीप्तान्नदन्ति शूराः शतशो रणस्थाः ॥४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे
तेषामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ द्वन्द्वयुद्धान्यवर्त्तन्त देवानां दानवैः सह ॥५॥ मरुतां पञ्चमो यस्तु स बाणेनाभ्ययुध्यत ॥ महाबलः
सुरवरः सावित्र इति यं विदुः ॥६॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः ॥ सोऽयुध्यत रणेऽत्युग्रो ध्रुवेण वसुना सह ॥७॥

घोर अशनि फेंकते खड्ग और वज्र मुखशक्ति छोडते ॥३॥ सुवर्णकी पट्टियोंसे जडी महागदा लोहेके धनुष और मुद्गर शूल और वृक्ष ग्रहण कर
रणमें स्थित हो मत्त हुए सैंकडों शूर शब्द करने लगे ॥ ४ ॥ वैशम्पायन बोले; इस समय परस्पर प्रहार करते उन देवता और दानवोंका द्वंद युद्ध
होने लगा ॥५॥ मरुतोंमें जो पांचवां है वह बाणके साथ युद्ध करने लगा महाबली देवताओंमें श्रेष्ठ जिसको सावित्र कहते हैं ॥ ६ ॥ अनायुषाका

पुत्र बल नाम महाअसुर वह महाउग्र वसुके साथ युद्ध करने लगा ॥ ७ ॥ नमुचि असुरश्रेष्ठ धरके संग युद्ध करने लगा श्रेष्ठ देवताओंके विश्वकर्मा प्रवरके संग युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ महा दैत्य पुलोमा वायुके साथ युद्ध करने लगा वह पर्वताकार सेनासहित युद्ध करने लगा ॥९॥ हयग्रीव दितिपुत्र पूषाके साथ युद्ध करने लगा वह शूर महावीर्यवान् सूर्यके समान कान्तिमान् थे ॥१०॥ महादैत्य महामाया करनेवाला महाअसुर शम्बर युद्धदुर्मद भगदेवताके साथ युद्ध करने लगा ॥ ११ ॥ शरभ और शलभ दैत्योंमें चन्द्रसूर्यके समान सोमसे शशिरास्त्रद्वारा युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ बलवान्

नमुचिश्चासुरश्रेष्ठो धरेण सह युध्यत॥प्रवरौ विश्वकर्माणौ ख्यातौ देवासुरेश्वरौ ॥८॥ पुलोमा तु महादैत्यो वायुना सह युध्यत ॥ ससैन्यः पर्वताकारो रणेयुध्यत दंशितः ॥९॥ हयग्रीवस्तु दितिजः सह पूष्णा त्वयुध्यत ॥ शूरेणामितवीर्येण भास्कराकारवर्चसा१० शम्बरस्तु महादैत्यो महामायो महासुरः ॥ भगेनायुध्यत तदा सहितो युद्धदुर्मदः॥११॥शरभः शलभश्चैव दैत्यानां चन्द्रभास्करौ॥ प्रयुद्धौ सह सोमेन शैशिरास्त्रेण धीमता ॥ १२ ॥ विरोचनस्तु बलवान्बलेर्बलवतः पिता ॥ विष्वक्सेनेन साध्येन देवेन च स युध्यत ॥१३॥ कुजम्भस्तु महातेजा हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ अंशेनायुध्यत तदा प्रासप्रहरणेन वै ॥१४॥ असिलोमा तु बलिना मारुतेन समं विभो ॥ तदायुध्यत दीप्तास्यो विकृतः पर्वतायुधः ॥१५॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः ॥ अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सहा युध्यत संयुगे ॥१६॥ एकचक्रस्तु दितिजश्चक्रहस्तो दुरासदः॥ सहायुध्यत देवेन साध्येन दितिजारिणा॥१७॥ बलस्तु मधुपिङ्गाक्षो वृत्रभ्राता महासुरः ॥ मृगव्याधेन रुद्रेण सहायुध्यत वीर्यवान् ॥ १८ ॥

विरोचन बलिका पिता विष्वक्सेन साध्यदेवके संग युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ महातेजस्वी कुजंभ हिरण्यकश्यपका पुत्र प्रासप्रहारद्वारा अंशके संग युद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ असिलोमा महाबलि मारुतके संग युद्ध करने लगा तब पर्वत आयुध लिये दीप्तिमुख युद्ध करने लगा ॥ १५ ॥ अनायुषाका पुत्र वृत्रनामक महाअसुर देववैद्य अश्विनीकुमारोंके संग युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥ एकचक्र दितिपुत्र चक्र हाथमेंलिये दुरासद दैत्योंके शत्रु साध्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥ मधुपिंगलनेत्र वृत्रका भ्राता बल महाबली मृगव्याध रुद्रके साथ युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥

विकृताकार राहु शतशीर्षका सहोदर अभय हो अजैकपादके संग युद्ध करने लगा॥१९॥दानवश्रेष्ठ केशी वर्षाकालीन मेघके समान कान्तिमान् भीम धने श्वरके साथ संग्राम करने लगा॥२०॥बली वृषपर्वा महारणमें निकुंभके साथ युद्ध करने लगा विश्वेदेवके संग बली विश्वेशकायुद्ध होने लगा॥२१॥महा-बली प्रह्लाद अपने वीर पुत्रोंसे युक्त रणमें दूसरे कालके समान कालसे युद्ध करने लगा॥२२॥अनुह्लाद धनद कुबेरसे संग्राम करने लगा यह गदा हाथमें लिये रिपुवाहिनीको शोभित करते युद्ध करने लगे॥२३॥दैत्य विप्रचित्ति महात्मा वरुणके साथ दैत्योंके आनन्दका बढानेवाला रण करनेको प्रवृत्त हुआ

राहुस्तु विकृताकारः शतशीर्षा सहोदरः ॥ अजैकपादेन रणे सहायुध्यत दंशितः॥१९॥ केशी तु दानवश्रेष्ठः प्रावृट्कालाम्बुदप्रभः धनेश्वरेण भीमेन सहायुध्यत संयुगे ॥२०॥ वृषपर्वा तु बलिना निकुम्भेन महारणे ॥ विश्वेदेवेन विश्वेशः सहायुध्यत वीर्यवान् ॥ २१ ॥ प्रह्लादस्तु महावीर्यो वीरैः स्वैस्तनयैर्वृतः ॥ युयुधे सह कालेन रणे काल इवापरः ॥ २२ ॥ अनुह्लादः कुबेरेण धनदेन महारणे ॥ गदाहस्तेन युयुधे शोभयन् रिपुवाहिनीम् ॥ २३ ॥ विप्रचित्तिस्तु दैतेयो वरुणेन महात्मना॥प्रवृत्तो वै रणं कर्तुं दैत्यानां नन्दिवर्द्धनः ॥ २४ ॥ बलिस्तु सह शक्रेण सुरेशेन महात्मना ॥ युयुधे देवराजेन बलिना बलवान्रणे ॥२५॥ शेषा देवाश्च दैत्याश्च जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ विनर्दन्तो महानादान् प्रासासिशरशक्तिभिः ॥२६॥ अदृश्यन्त महोत्पाता ये प्रोक्ता जगतः क्षये ॥ मारुताः सप्त ते क्षुब्धा व्यशीर्यन्त महीधराः ॥ २७ ॥ सप्त चैत्रोत्थिताः सूर्याः शोषयन्तो महार्णवान् ॥ बहुनाभिद्यत धरा वायुना मथिता यथा ॥ २८ ॥ व्युत्थिताश्च महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः॥प्रणेदुः सर्वभूतानि सर्वाः सतिमिरा दिशः ॥ २९ ॥

॥२४॥महाबली राजा बलि युद्धमें देवराज इन्द्रके साथ संग्राम करने लगा॥२५॥शेष देवता और दैत्य परस्पर एक दूसरेको मारने लगे प्रास शक्ति बाण हाथमें लिये शब्द करने लगे॥२६॥उस समय जगत्क्षयकारक अनेक उत्पात होने लगे सातों पवन वेगसे चलने लगीं सागर क्षुभित हो गये॥२७॥ महासागर सोखनेको सात सूर्य उदय हो गये और वायुसे मथित हो पृथ्वी चलायमान होने लगी ॥२८॥ चक्रकी पंक्तिवाले अनेक मेघ उदय हो

गये सब भूत शब्द करने लगे और दिशाओंमें अंधकार छा गया ॥२९॥ उस समय कालनिर्मित देवताओंकी घोर अजय दिखाई देने लगी युगान्त-कालके समान घोर उत्पात दिखाई देने लगे ॥३०॥ उस समय अन्त रिक्ष दिशा भूमि सूर्य धूर उठनेके कारण नहीं दीखते थे पवन वेगसे चली जिससे धुमेली हो दिशा अन्धकारसे अच्छादित हो गई ॥ ३१ ॥ इस प्रकारसे बहुतसे उत्पात देवनिर्मित भूमि और अन्तरिक्षमें दिखाई देने लगे ॥३२॥ वह देवता और दैत्योंका भयंकर युद्ध श्रेष्ठ देवताओंके साथ लिये सुरगुरु ब्रह्माजी देखते थे ॥३३॥ अगोंसहित चार वेद तथा चौदह विद्याओंके

देवानामजयो घोरो दृश्यते कालनिर्मितः ॥ घोरोत्पातः समुद्भूतो युगान्तसमये यथा ॥ ३० ॥ न ह्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रेणुजालैः ॥ ववुश्च वातास्तुमुलाः सुधूमा दिशश्च सर्वास्तिमिरोपगूढाः ॥ ३१ ॥ एते चान्ये च बहवो दृश्यन्ते देवनिर्मिताः ॥ भूमौ तथान्तरिक्षे च महोत्पातः समन्ततः ॥ ३२ ॥ तद्युद्धं देवदैत्यानां भीमानां भीमदर्शनम् ॥ अपश्यत गुरुर्ब्रह्मा सर्वैरेव सुरैः सह ॥ ३३ ॥ वेदैश्चतुर्भिः साङ्गैश्च विद्याभिश्च सनातनः ॥ पद्मयोनिर्वृतः श्रीमान्सिद्धैश्च परमर्षिभिः ॥३४॥ नानामणिस्तम्भसहस्रचित्रमारुह्य यानं ददृशे स्वयंभूः ॥ सुभास्वरं भूतसहस्रयुक्तं प्रदीप्यमानं वपुषा वरेण ॥३५॥ सुतप्तजाम्बूनद-भक्तिचित्रमानन्दभेरीशतसंप्रणादम् ॥ नक्षत्रचण्डांशुभिरंशुमन्तं वैडूर्यसोमर्कविभूषिताङ्गम् ॥ ३६ ॥ तमात्मजो वै पुलहः पुलस्त्यस्तथा मरीचिर्भृगुरङ्गिराश्च ॥ ऋक्सामभिः सम्यगभिःष्टुवन्तः सेवन्ति देवं वरदं विमाने ॥ ३७ ॥ तं पावका लोकगुरुं स्वयंभुवं सांगाश्च वेदा मखदेवताश्च ॥ सेवन्ति देवं भुवनेश्वरेशं भूतानि चान्यानि महानुभावम् ॥ ३८ ॥

सहित वह सनातन पद्मयोनि परमर्षियोंके साथ ॥३४॥ अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित सहस्र स्तंभवाले विमानमें स्थित होकर जो कि महाकान्तिमान् सहस्र भूतोंसे युक्त शरीरकी कान्तिसे प्रकाशमान्॥३५॥तपाये हुए सुवर्णकी भक्तिसे चित्रित अनेक भेरियोंके शब्दोंसे शब्दायमान नक्षत्रोंकी प्रभासे प्रभावयुक्त वैडूर्यमणिसे युक्त चन्द्रसूर्यके समानतासे विभूषित ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र पुलह पुलस्त्य मरीचि भृगु अंगिरा ऋक्सामादि वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए तथा देवताओंसे सेवित वरदाता विमानमें स्थित थे ॥ ३७ ॥ उन लोकगुरु स्वयम्भूको अग्नि अंगोंसहित वेद मख देवता

सेवन करते थे तथा औरभी प्राणी उन महानुभाव भुवनेश्वरकी सेवा करते थे ॥ ३८ ॥ यह महर्षिसमूह वैश्वानर पावकयोनिवाले देवपुरोहित यह सब देवता और दैत्योंका युद्ध देखनेकी इच्छासे गये ॥३९॥ सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार कपिल जैगीषव्य यह छः योगीश्वर सूर्यके समान कन्तिमान् अनेक भूषण धारण किये तथा नर और नारायण यह आकाशमें अन्तर्हित स्थित हुए युद्ध देखने लगे ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखोंमें चारों वेद धारण किये ब्रह्माजीने शरदके चन्द्रमाके समान सब दिशा निर्मल कर दीं ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे सनकादिगमनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! दोनों सेनाओंका

एते बभूवुश्च महर्षिसंघा वैश्वानराः पावकयोनयश्च ॥सर्वे ययुर्देवपुरोहिताश्च युद्धोत्सुकाः सर्वसुरासुराणाम् ॥३९॥ योगेश्वराः षट् च दिवाकराभा विभूषणैर्भूषितसर्वदेहाः ॥ अन्तर्हिता वै ददृशुर्नभस्था नारायणश्चैव नरश्च देवाः ॥४०॥ वक्त्रैश्चतुर्वेदधरैश्चतुर्भिः संपूर्ण-चन्द्रप्रतिमैः सुकान्तैः ॥ सर्वा दिशो निस्तिमिराश्चकार नवोदितोऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे सनकादिकागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उभयोः सेनयो राजन् भूयो युद्धमवर्त्तत ॥ नादेन संचालयतां त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१ ॥ गोमुखाडम्बराणां च भेरीणां मुरजैः सह ॥ झल्लरीडिण्डिमानां च व्यश्रूयन्त महास्वनाः ॥२॥ प्रवृत्तो युद्धयज्ञस्तु तुमुलो लोमहर्षणः ॥ रणमध्ये महानादः स्वर्गीयः शूरसंमतः ॥३ ॥ युद्धयज्ञस्य नेताभूत्प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ॥ विरोचनस्तथाध्वर्युर्युद्धयज्ञप्रवर्त्तकः ॥४॥ होता चैवात्र नमुचिर्वृत्रः स्तोत्रोपकल्पकः ॥ मन्त्रा दैत्याः समाख्याता यज्ञकर्मणि तत्र वै ॥ ५ ॥ अनुयातश्च पितृभिरधिको वा पराक्रमैः ॥ यज्ञे तत्राभवद्बाणः संयुगे चोपतिष्ठते ॥ ६ ॥

फिर युद्ध होने लगा उनके नादसे त्रिलोकी चलायमान हो गई ॥ १ ॥ गोमुख डम्बर भेरी मुरज झल्लरी डिमडिमका महाशब्द होने लगा ॥ २ ॥ वह बडा तुमुल और लोमहर्षण युद्ध यज्ञ फिर प्रवृत्त हुआ वह रणमें महानाद स्वर्गीय और शूरसम्मत हुआ॥३॥दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद उस युद्धयज्ञका नेता हुआ और युद्ध यज्ञका प्रवृत्त करनेवाला था विरोचन अध्वर्यु हुआ ॥ ४ ॥ नमुचि होता और वृत्र स्तोत्रपाठ करनेवाला उस यज्ञकर्ममें दैत्य मंत्ररूप हुए ॥ ५ ॥ पितरोंके पीछे गमन करने वा उससेभी अधिक पराक्रमी उस युद्धरूपी यज्ञमें बाण यष्टा हुआ ॥ ६ ॥

ऐन्द्र पाशुपत और ब्रह्म दुर्जय स्थूणाकर्ण हुआ अनुह्रादके प्रेरण किये मंत्र उसमें वर्तते थे ॥७॥ शत्रुओंको भय देनेवाला श्रीमान् मय उद्गाता हुआ और वह श्रेष्ठ दैत्य गर्जना कर देवताओंकी सेनाको विदीर्ण करने लगा ॥ ८ ॥ और कांतिमान् बलि राजा जप होमसे संयुक्त हो ब्रह्मापन करते थे ॥ ९ ॥ युद्धाग्निसे प्रज्वलित घोर वैररूपी ईंधनको डालने लगा उस प्रकार वे असुर देवता और विष्णुके सहित हवन करते थे ॥ १० ॥ शंख और भेरियोंके महाशब्दही उसमें वेदके शब्द होते थे ॥ ११ ॥ बल बलक महाअसुर पुलोमा यह सम्पूर्ण रणभूमिको चमसा पात्र विधान कर भली

ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्ण सुदुर्जयम् ॥ मन्त्रास्तत्राभ्यवर्तन्त साध्वनुह्रादयोऽजिताः ॥७॥ उद्गाता च मयः श्रीमान् स्थितः शत्रुभयंकरः ॥ विनदन्दितिजश्रेष्ठो देवानीकं व्यदारयत्॥८॥बलिस्तु राजा द्युतिमान्स्वयं तत्र महासुरः ॥ जाप्यैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वमकरोत्प्रभुः ॥९॥ रणाग्निर्ज्वलितो घोरो वैरेन्धनसमीरितः ॥ हूयते त्वसुरैस्तत्र देवो विष्णुः सुरैः सह ॥१०॥ शङ्खशब्दैः सुतुमुलैर्भेरीणां च महास्वनैः ॥ उद्घुष्टं विमलं चैव ब्रह्मण्यं सुप्रयुज्यते॥११॥ बलश्च बलकश्चैव पुलोमा च महासुरः ॥ प्रशस्तं च समं कृत्वा सत्रं सम्यक् प्रचक्रिरे ॥१२॥ कल्माषदण्डविमला विपुला रथपंक्तयः॥ यूपाश्च समकल्पन्त युद्धयज्ञे महाफले ॥१३॥ कर्णनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहिकाः ॥ तोमराः सोमकलशा विचित्राणि धनूंषि च ॥१४॥ अस्थीन्यत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ॥ आज्यं च रौद्रं रुधिरं तस्मिन्यज्ञेऽभिहूयते ॥१५॥ इध्माः परिधयस्तत्र प्रस्तारा विपुला गदाः॥हयग्रीवोऽसिलोमा च राहुः केशी च दानवः ॥१६॥ विरोचनश्च जम्भश्च कुजम्भश्च महाबलः॥सदस्यास्तत्र तु मखे विप्रचित्तिस्तु वीर्यवान् ॥१७॥

प्रकारसे यज्ञ करते थे ॥१२॥ कल्माष अर्थात् चित्र विचित्र दंडोंसे उज्ज्वल सहस्रों रथसमूह उस युद्धयज्ञमें यूपस्थानमें कल्पित थे॥१३॥ कर्णनाली और नाराच वत्सदन्त और उपबृंहिका थे तोमर और विचित्र धनुष सोमकलश थे ॥ १४ ॥ अस्थि जिसमें कपाल और शिर पुरोडाशस्थानमें थे रुधिर घृत उस यज्ञमें हवन किया जाता था॥१५॥ सेनाका मंडल होमका काष्ठ और गदाओंका परिस्तरण होता हुआ हयग्रीव असिलोमा राहु और केशी दानव ॥१६॥ विरोचन जंभ और महाबली कुजंभ उस यज्ञसभामें बैठनेवाले थे, और इसी प्रकार महाबली विप्रचित्ति था ॥ १७ ॥

रथोंके ध्रुवोंकी सदृश बाण स्रुवा हुए तथा धनुषकी कोटि और ज्या यह भी सम्पूर्ण स्रुक् हुए ॥ १८ ॥ वृषवर्पा इसमें प्रतिप्रस्थानकर्म करता था और अपनी सेनारूप महास्त्रीके सहित बलि इसमें दीक्षित था ॥१९॥ दितिपुत्र शम्बर शामित्रकर्म करता था, इस प्रकार यह अतिरात्र यज्ञकर्म होनेमें ॥२०॥ उस यज्ञकी दक्षिणा कालनेमि महाअसुर हुआ. हे राजन्! वैतानयज्ञकर्ममें जो हव्यवाट् नामसे विख्यात है ॥ २१ ॥ वह मृतक हुए देवताओंके शरीरोंसे यज्ञाभिषेचन होने लगा उस यज्ञमें दैत्योंका निर्मित सवन होने लगा ॥ २२ ॥ दैत्य देवताओंका रुधिर पान करने लगे

इषवस्तु स्रुवास्तत्र रथाक्षसदृशाः शुभाः ॥ धनुष्कोट्यो धनुर्ज्याश्च स्रुचस्तत्र महामखे ॥ १८ ॥ प्रतिप्रास्थानिकं कर्म वृषपर्वा-करोदिह ॥ दीक्षितस्तत्र तु बलिस्तस्य पत्नी महाचमूः ॥१९॥ शम्बरस्तत्र शामित्रमकरोद्दितिनन्दनः ॥ अतिरात्रे महाबाहुर्विंतते यज्ञकर्मणि ॥२०॥ दक्षिणास्तस्य यज्ञस्य कालनेमिर्महासुरः ॥ वैताने कर्मणि विभो यः ख्यातो हव्यवाडिव ॥२१॥ त्रिदशानां तु सैन्यस्य शरीरैर्गतजीवितैः ॥ तस्मिन्यज्ञे तु सवनं वर्धते दैत्यनिर्मितम् ॥२२॥ देवानां रुधिरं संख्ये पपुरुग्रा दितेः सुताः ॥ नर्दमानाः प्रमुदिताः सोमपानं रणाध्वरे ॥ २३ ॥ यदा बलिर्मदादैत्यो विजेता समरे सुरान् ॥ तदा ह्यवभृथो यज्ञे भविष्यति न संशयः ॥२४॥ महासुरेंद्रपतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ वेदवन्तो वृत्तवन्तः शूरा सर्वे तनुत्यजः ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यहरणे सृष्टा युद्धयज्ञाय दीक्षिताः ॥ बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे व्रतिनो मुञ्जधारिणः॥२६॥ एकनिश्चयकार्याश्च त्रैलोक्यजयकाङ्क्षिणः ॥ सुरदानव-दैत्यानां शब्दः समभवन्महान् ॥२७॥ नानायुद्धविहस्तानां त्वरितानां प्रधावताम् ॥ क्ष्वेडितोत्कुष्टनिनदैर्गजबृंहितनिःस्वनैः॥२८॥

वही उसका महागर्जनाके सहित सोमपान होता था॥२३॥जिस समय महादैत्य बलि समरमें देवताओंको जीतेगा उस समय यज्ञका अवभृथ स्नान हो जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥२४॥ महाअसुरेन्द्रपति भूरिदक्षिणासे यज्ञ करने लगा वे सब वेदके ज्ञाता व्रती शूर इस यज्ञमें शरीर त्यागनेमें तत्पर थे ॥२५॥ त्रैलोक्यके हरण करनेमें तत्पर युद्धयज्ञमें दीक्षित सब कृष्णाजिन बांधे और सब व्रती मुंजधारी ॥२६॥ एकही निश्चयसे कार्य करनेवाले त्रिलोकीके जयकांक्षी उन देवता दानव और दैत्योंका महाशब्द होने लगा ॥ २७ ॥ नानाआयुध हाथमें लिये शीघ्रतासे धावमान होनेवाले

ताल ठोकनेमें तत्पर और हाथियोंके समान शब्द करनेवाले ॥२८॥ चारों ओरसे रथके पहियोंका घरघर शब्द होने लगा कहीं शंख और दुंदुभीका शब्द कहीं घोडोंके हींसनेका शब्द होने लगा ॥२९॥ घोडेके हिंसने और दानवोंके गर्जनेसे ताल ठोकने हाथ पैरोंके पटकनेके शब्द करनेसे ॥३०॥ शस्त्रवाले दानवोंकी सेना भयंकर कर्मसे प्रकाशित होने लगी ॥३१॥ तब नाग और रथ जाम्बूनदसे विभूषित विजलीसहित मेघके समान विराजमान होने लगे ॥ ३२ ॥ ऋष्टि शक्ति तीक्ष्ण गदा शूल शक्ति परशे यह सब पृथक् पृथक् सेनामें विराजमान होने लगे ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके

रथनेमिस्वनैर्घोरैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्हयहेषितनिःस्वनैः ॥ २९ ॥ हयानां हेषमाणानां दानवानां च गर्जताम् ॥ क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैः पाणिपादरवैस्तथा ॥ ३० ॥ दानवानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ समरे भीमकर्माणि सैन्यानि प्रचकाशिरे ॥३१॥ ततो नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ भ्राजमाना व्यराजन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३२ ॥ ऋष्टिशक्तिगदास्तीक्ष्णशूलशक्तिपरश्वधाः ॥ चारु विभ्राजिरे तत्र तेष्वनीकेषु भागशः ॥ ३३ ॥ रथा बहुविधाकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ हेमप्रच्छन्नशिखरा ज्वलन्त इव पावकाः ॥३४॥ दानवानां सुराणां च समालोक्यन्त सैनिकाः ॥ काञ्चनैः कवचैःसर्वे ज्वलितार्कसमप्रभैः ॥३५॥ सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्योतींषि गगने यथा॥उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः॥३६॥ ऋषभाक्षाः सुरगणाश्चमूमुखगता बभुः॥नानावर्णाःपताकाश्च ध्वजमालाश्च संयुगे॥३७॥युद्ध्यतां रणशौण्डानामीरयामास मारुतः॥ध्वजालंकारवस्त्राणि कवचानि च रश्मिभिः॥३८॥भासयामास सर्वाणि रश्मिवर्णानि रश्मिवान्॥सर्वेषामप्रमेयाणां बलानां पादचारिणाम्३९॥

॥११९॥

सैंकडों रथ शिखरमें सुवर्ण जडे अग्निके समान प्रज्वलित ॥ ३४ ॥ दानव और देवताओंके रथ सेनाके लोग देखने लगे सब कांचनके कवच सूर्यके समान प्रकाशमान पहरे थे ॥३५॥ वह इस प्रकार दीखते थे जैसे आकाशमें तारे आयुध चित्रविचित्र उठाये तलबद्ध कलापयुक्त ऋषभाक्ष देवताओंके समूह सेनामें प्राप्त हो शोभित हुए ॥३६ ॥ अनेक वर्णकी ध्वजा पताका ध्वजसमूह युद्धमें शोभित हुए ॥ ३७ ॥ उन वीरोंका युद्ध होते२बडा दारुण होगया ध्वजा अलंकार वस्त्र कवचोंकी कान्तिसे ॥ ३८ ॥ सब स्थान कान्तिमान् होगये दोनों ओरके महाबली पादचा

रियोंके ॥३९॥ युद्धसे उठी हुई रजने दिशाओंको आच्छादन कर दिया सब दिव्य आयुधधारी और दिव्य वस्त्र पहरे हुए ॥ ४० ॥ एक दूसरेकी सेनाको स्तंभित करने लगे उस समय वे देव दानव पर्वतके कूटके समान ऊंचे ॥४१॥ चित्रयोधी रणमें स्थित हो एक दूसरेको मारने लगे बडे रुचिर तीक्ष्ण बाण दुरासदोंसे ॥४२॥ मुद्गर मुशल शूल जो लोहनिर्मित थे तिनसे अशनिके समान वज्र खड्ग और वृक्षोंसे ॥४३॥ उन अद्भुत पराक्रमियोंका महापराक्रमयुक्त संग्राम होने लगा तब सावित्रको मारनेके लिये बाणने धनुष धारण किया ॥ ४४ ॥ और दिव्य बाणसमूहोंसे देवताओंको

रजः प्रच्छादयामास पत्रोर्णं पाण्डुरं दिशः ॥ दिव्यायुधधरा सर्वे दीप्तायुधपरिच्छदाः ॥ ४० ॥ प्रतितस्तम्भिरेऽन्योन्यमनीकं प्रत्यनीकतः ॥ गिरिकूटोच्छ्रयाः सर्वे तदा ते देवदानवाः॥४१॥अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो रणस्थाश्चित्रयोधिनः ॥ बाणैः सुरुचिरैस्तीक्ष्णैः पत्रवाजैर्दुरासदैः ॥४२॥ मुद्गरैर्मुशलैः शूलैरयतुण्डैरुलूखलैः ॥ वज्रैरशनिकल्पैश्च खड्गवृक्षादिभिस्तथा ॥ ४३ ॥ तथा प्रवर्तिते तेषां विमर्देऽद्भुतविक्रमे ॥ सावित्रस्य वधं प्रेप्सुर्बाणो जग्राह कार्मुकम् ॥ ४४ ॥ शरजालेन दिव्येन च्छादयानः सुरोत्तमम् ॥ मन्त्रैर्हुत इवार्चिष्मान्त्संप्रजज्वाल तेजसा ॥ ४५ ॥ सागराभां महासेनां देवानां दैत्यपुङ्गवः ॥ संशोषयति बाणौघैरर्कांशुभिरिवार्णवम् ॥४६॥ मारुतः सुमहावेगः सावित्रः शक्तिमुत्तमाम् ॥ चिक्षेप बलिपुत्राय शक्रोऽशनिमिवाद्रये ॥४७॥ आपतन्ती च सा शक्तिर्महोल्का ज्वलिता इव ॥ द्विधा छिन्ना क्षुरप्रेण बाणेनाद्भुतकर्मणा ॥४८॥ हतायामथ शक्त्यां तु सावित्रो देवसत्तमः॥ विश्वकर्मकृतं दिव्यं सुतीक्ष्णं दानवार्दनम्॥४९॥सुपानधारं विमलं विपुलं चन्द्रवर्चसम् ॥ अगृह्णान्निशितं खड्गमाशीविषमिवोरगम्॥५०

आच्छादन करने लगा मंत्रोंसे हवन की हुई अग्निके समान वह तेजसे जल उठा ॥ ४५ ॥ देवताओंकी समुद्रके समान महासेनाको वह दैत्य बाणोंसे ऐसे सोखने लगा जैसे सूर्य किरणोंसे सागरको सोखता है ॥४६॥ तब सावित्र मारुतने शक्ति ग्रहण कर बडे वेगसे बलिके पुत्रके ऊपर प्रहार की जैसे पर्वतपर इन्द्रक वज्र पडे ॥ ४७ ॥ महाउल्काके समान जलती हुई उस महाशक्तिको देख उस बाणने क्षुरप्र बाणसे बीचमें काट दी ॥ ४८ ॥ शक्तिके हत होनेसे देवश्रेष्ठ सावित्रने विश्वकर्माके बनाये दिव्य तीक्ष्ण दानवोंके नाश करनेवाले॥४९॥पुष्टधारवाले उज्ज्वल चन्द्रमाके समान कान्ति-

मान् सूर्यके समान महाखड्गको ग्रहण किया ॥ ५० ॥ उस महाकान्तियुक्त प्रज्वलित खड्गको ग्रहण कर वह महातेजस्वी बाणासुरके आगे स्थित हुआ ॥५१॥ बाणने उसको अपने निकट स्थित देख कि महाशरीर और लाल नेत्र किये हैं बडा शब्द किया ॥५२॥ फिर सूर्यके समान कान्तिमान् वज्रसरीखे सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंको धनुषपर चढाया ॥५३॥ जिनके पुंखमें सुवर्ण जडित सब प्रकारसे अलंकृत महावेगवान् उग्र बाणोंको कानपर चढाकर छोडा॥५४॥ वे अग्निके तुल्य बाण दृढ चापसे छोडे हुए कैलासके मेघके समान सावित्रको आच्छादन करने लगे ॥ ५५ ॥

तं गृहीत्वा रणमुखे प्रज्वलन्तं महाप्रभम् ॥ बाणाभ्याशे महातेजाः खड्गपाणिरवस्थितः ॥ ५१ ॥ स तं स्थितमथालक्ष्य सावित्रं बलिनन्दनः ॥ लोहिताक्षं महाकायं चिक्षेप च ननाद च ॥ ५२ ॥ ततोऽर्ककिरणाकारानशनिप्रतिमाञ्छितान् ॥ संदधे चाशु बाणौघानाशीविषशिलीमुखान् ॥५३॥ रुक्मपुंखान्प्रदीप्ताग्रानुग्रवेगानलंकृतान् ॥ आकर्णपूर्णांश्चिक्षेप शरानुग्रान्त्समन्ततः ॥५४॥ दृढचापप्रमुक्तास्ते शरा वैश्वानरप्रभाः ॥ सावित्रं छादयामासुः कैलासमिव तोयदाः ॥५५॥ संच्छाद्यमानः शस्त्रौघैर्बाणेन बलिसूनुना ॥ पराङ्मुखः सुरवरः प्रयातः सरथध्वजः ॥५६॥ पराजित्य स सावित्रं बाणः परमहर्षितः ॥ प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥५७॥ बलश्चाप्यसुरश्रेष्ठः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ध्रुवाय वसवे मूर्ध्नि रौद्रां चिक्षेप दानवः ॥५८॥ तस्य निर्मथितस्त्वंसो हेमचित्रं च वर्म वै ॥ गदावेगेन भीमेन ध्रुवस्य समरे तदा ॥५९॥ शेषाश्च वसवः सर्वे दिव्यास्त्रैर्घोरदर्शनैः प्राच्छादयन्रणे दैत्यमादित्यमिव तोयदाः ॥ ६० ॥

बलिपुत्र बाणके अस्त्रों तथा बाणोंसे आच्छादित हो वह देवताओंमें श्रेष्ठ और रथ ध्वजाके सहित युद्धसे पराङ्मुख हो गया ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सावित्रको पराजय कर बाणासुर परम हर्षित हुआ तथा घोर धनुष ग्रहण कर इन्द्रके रथके सन्मुख चला ॥ ५७ ॥ और असुरश्रेष्ठ बलभीने महागदाको ग्रहण कर ध्रुव वसुके शिरपर उस गदाका प्रहार किया ॥ ५८ ॥ उससे उसका सुवर्णनिर्मित बख्तर चूर्ण हो गया इस प्रकार भीम गदाके वेगसे ध्रुवका ॥ ५९ ॥ बख्तर चूर्ण किया तब शेष घोरदर्शन वसु रणमें दैत्योंको ऐसे आच्छादन करने लगे जैसे

सूर्यको मेघ आच्छादन करते हैं ॥६०॥ तब दानवश्रेष्ठ बल बाणोंसे सम्मर्दित होने लगा और रथसे उतर गदा ले बडे वेगसे दौडा॥६१॥ और महा असुरने वह गदाअपने शत्रुओंके शिरपरमारी उस महागदाने शत्रुओंको दिशा विदिशाओंमें पलायन करवा दिया॥६२॥वह ऐसी पतित हुई मानो इन्द्रने वज्र माराउसके विजलीके समान शब्दको सुनकर वे सब कंपित होगये॥६३॥रथोंसे भ्रष्ट हो रथी पलायन करने लगे वोह रथोंकी सेना सूर्यके समान कांतिमान् होकर मेघवत् शब्द करती पलायन कर गई ॥ ६४ ॥ तब फिर देवताओंने चारों ओरसे बाणवर्षा करनी आरंभ की

ततः संमर्दितो बाणैर्बलो दानवसत्तमः ॥ अवातरद्रथात्तस्माद्गदामुद्यम्य वेगवान् ॥६१॥ पातयामास शत्रूणां समाविध्य महासुरः ॥ दिशः प्राद्रावयत्सर्वांस्त्रिदशान्त्सा महागदा ॥६२॥ इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रवृद्धा सुमहास्वना ॥ तस्याः सविद्युद्घोषायास्तेन शब्देन वेपिताः ॥ ६३ ॥ व्यद्रवन्त परिभ्रष्टा रथेभ्यो रथिनस्तथा ॥ तदुदीर्णं रथानीकं सूर्याभं मेघनिःस्वनम् ॥ ६४ ॥ देवानां शरधाराभिः समन्तादभ्यवर्षत ॥ क्षुरकैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥६५॥ मुहुर्मुहुर्महातेजाः प्रत्यविध्यन्महासुरान् ॥ बलाकस्तु गदापाणिर्व्यादितास्य इवान्तकः ॥६६॥ तडिद्गणार्कसदृशो वैश्वानर इवापरः ॥ पिबन्निव शरौघांस्तान्देवचापसमुच्छ्रितान्॥६७॥ अभ्यद्रवत दैत्येन्द्रो महार्णव इवापरः॥ अवस्फूर्जन्दिशः सर्वाः स्वेन वीर्येण दानवः॥६८॥अरुजंस्त्रिदशान्दैत्यः सिन्धुवेगान्नगा इव समुद्रस्तरसा देवान्वायुर्वृक्षानिवौजसा॥६९॥शामयश्च महेष्वासान्वसुभ्यां समसज्जत ॥ आपश्चैवानिलश्चैव ववर्षतुररिन्दमौ॥७०॥

क्षुरक विशिख भल्ल वत्स दन्त बाणोंसे॥६५॥वह महातेजस्वी महाअसुर फिर प्रहार करने लगा और बलक दैत्य गदा हाथमें लियेकालके समान मुख फैलाये॥६६॥ बिजलीके समूह तथा सूर्य और अग्निके समान उन देवताओंके छोंडे हुए बाणोंको पान करता हुआ ॥६७॥ दूसरे महासागरके समान वह दैत्येन्द्र धावमान हुआ और वह दानव अपने वीर्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको जब्दायमान करता हुआ ॥ ६८ ॥ दैत्य देवताओंको इस प्रकार भेदन करने लगा जैसे सिंधुनदीका वेग पर्वतोंको नष्ट करता है.वा जैसे वायुका वेगवृक्षोंको भग्न करता है ॥६९॥ इस प्रकार वसुओंके छोडे

हुए बाणोंको शान्त कर फिर वह आप और अनिल नामक दो वसुओंके साथ संग्राम करने लगा ॥७०॥वह दोनों महातेजस्वी मेघोंके समान बाण प्रहार करने लगे तत्काल उस दैत्यने उनबाणोंको अन्तरिक्षमेंही छेदनकर दिया॥७१॥इस कर्मको सहन न करके ध्रुव उस दैत्यकेसन्मुख हुआ तब वे महाशरवर्षणसे परस्पर एक दूसरेको प्रहार करने लगे॥७२॥वह उत्तम शूर देवता दैत्य परम यशस्वी नखोंसे शार्दूल और दांतोंसे हाथीके समान॥७३॥रथकी शक्तियोंद्वारा परस्परएक दूसरेके ऊपर बाणप्रहार करते थे और बाणप्रहारसे एक दूसरेकेशरीरको विदीर्णकरने लगे ॥७४॥

शरवर्षाणि दीप्तानि मेघाविव परंतपौ ॥ क्षिप्तांस्तान्विशिखान्दीप्तानन्तरिक्षे स चिच्छदे ॥ ७१ ॥ अमृष्यमाणस्तत्कर्म ध्रुवस्तमभिदुद्रुवे ॥ पृथक् शरवर्षाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ७२ ॥ उत्तमाभिजना शूरौ देवदैत्यो यशस्करौ ॥ तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ ७३ ॥ रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम् ॥ निर्भिन्दन्तौ च गात्राणि विलिखन्तौ च सायकैः ॥ ७४ ॥ स्तम्भयन्तौ च बलिनौ प्रतुदन्तौ स्थितौ रणे ॥ चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ॥ ७५ ॥ मुद्गरैर्जघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यभिमानिनौ ॥ असिभ्यां चर्मणी दिव्येविपुले च शरासने ॥ ७६ ॥ निकृत्याचलसंकाशौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ॥ ७७ ॥ बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ तयोरासीद्भुजाघातैर्निग्रहः प्रग्रहस्तथा ॥ ७८ ॥ अतीव भीमः संह्रादो वज्रपर्वतयोरिव ॥ द्विपाविव विषाणाग्रैः शृंगैरिव महावृषौ ॥ ७९ ॥

वे दोनोंएक दूसरेको स्तंभितकरते तथा भेदन करतेअनेक प्रकारके पैतरे बदलकर विचरणकरने लगे॥७५॥फिरदोनों अभिमानी परस्पर क्रोधकर मुद्गरोंसे मारनेलगे फिर ढाल तलवारतथा दिव्य शरासनद्वारा युद्ध होने लगा॥७६॥फिर दो पर्वतोंकेसमान बाहुयुद्ध करने लगे चौडी छाती दीर्घ भुजा युद्धमें दोनों कुशल॥७७॥ आयस अर्थात् लोहेके मुद्गरोंके समान भुजाओंसे युद्ध करने लगे भुजाओंके आघातसे उनका निग्रह और प्रग्रह (वैरबंधन) होते हुए ॥७८॥ तथा वज्र गिरते हुए पर्वतके समान महाघोर शब्द होता हुआ जैसे दांतोंसे दो हाथीऔर सींगोंसे दो बैल युद्ध करते

हों ॥ ७९ ॥ इस प्रकार परस्पर दोनोंका युद्ध सवा दो घडीतक बराबर होता रहा अन्तमें ध्रुव वसु दैत्यसे पराजित हो युद्धसे पराङ्मुख हो गया ॥ ८० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां देवासुरयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ वैशंपायनजी बोले; फिर क्रोधको प्राप्त हुए नमुचि और धर इन दोनोंका बडा दारुण युद्ध होने लगा ॥ १ ॥ और बडी भुजाओंवाले और बडे धनुषोंको धारण करते हुए और शत्रुओंको दमन करनेवाले, क्रोधको धारण करे नेत्रोंसे भस्म करते हुए परस्पर देखने लगे ॥ २ ॥ सुवर्णकी पीठवाले महाकठोर दुरासद

अन्योन्यमभिसंरब्धौ मुहूर्तं पर्यकर्षताम् ॥ ततः पराजितो देवो बलाकेन तथा ध्रुवः ॥ रथं त्यक्त्वा भयात्तस्य प्रनष्टः प्राङ्मुखो वसुः ॥ ८० ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पुनरेव तु तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् ॥ क्रुद्धस्य नमुचेश्चैव धरस्य च महात्मनः ॥ १ ॥ संरब्धौ च महाबाहू महेष्वासा वरिन्दमौ ॥ परस्परमुदैक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥२॥ विस्फार्य च महाचापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ संरम्भात्स वसुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा प्राणानयुध्यत ॥३॥ स सायकमयैर्जालैर्धरो दैत्यरथं प्रति ॥ भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् ॥४॥ ततः प्रहस्य नमुचिर्धरस्य च शिलाशितान्॥असृजत्सायकान्दीप्तान्भीमवेगान्दुरासदान्॥५॥महातेजा महाबाहुर्महावेगो महारथः॥विध्याधातिबलो दैत्यो नवभिर्निशितैः शरैः ॥६॥ स तोत्रैरिव मातङ्गोवार्यमाणः पतत्रिभिः ॥ अभ्यधावच्च संक्रुद्धो नमुचिं वसुसत्तमः ॥७॥

महाधनुषको चढाकर वह धर अपने प्राणोंका मोह त्यागनकर नमुचिके संग युद्ध करने लगा ॥ ३ ॥ और प्रकाशमान शिलाके समान निर्मल बाणरूपी जालोंको वह धर नमुचिदैत्यके रथके प्रति छोडता हुआ सूर्यकी प्रभाको आच्छादन करने लगा ॥ ४ ॥ और शिलाओंके समान तीक्ष्ण दीप्तिमान् बडे वेगवाले असह्य बाणोंको नमुचि हँसता हुआ धरपर छोडने लगा ॥ ५॥ महातेजस्वी बडी भुजाओंवाले महावेगवान् महारथी और अतिरथी नमुचिने पैने २ नव बाणोंसे धरको वेधन किया ॥ ६ ॥ और जसे अंकुशोंसे भेदन किया हुआ हस्ती क्रोधित

होता है तैसेही बाणोंके वेधनसे क्रोधित हुआ वसुश्रेष्ठ धर नमुचिके सन्मुख दौडा ॥ ७ ॥ और वेगसे आते हुए धरको वह नमुचि देख ऐसे सन्मुख धावमान हुए कि जैसे मदोन्मत्त हस्तीके प्रति मदोन्मत्त हस्ती ॥ ८ ॥ तब सौ भेरियोंके समान शब्दवाले शंखको बजाय और उछलते हुए समुद्रके तुल्य शत्रुकी सेनाको अत्यन्त क्षोभ कर ॥ ९ ॥ और श्रेष्ठ वर्णवाले शत्रुके घोडोंसे अपने हंसके तुल्य कांतिवाले घोडोंको मिलाता हुआ नमुचि बाणोंकी वर्षासे धरको आच्छादन करने लगा ॥१०॥ और नमुचि और धर इन दोनोंके रथोंको परस्परमें मिले हुए देख देवताओंकी सेना अत्यन्त

तमापतन्तं वेगेन संरम्भान्नमुची रणे ॥ दैत्यः प्रत्यसरद्देवं मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥८॥ ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादितम् ॥ विक्षोभ्य तद्बलं हर्षादुद्भूतार्णवसंप्रभम्॥९॥अश्वानृक्षसवर्णाभान्हंसवर्णैः सुवाजिभिः॥ मिश्रयन्त्समरे दैत्यो वसुं प्राच्छादयच्छरैः ॥ १० ॥ समाश्लिष्टावथान्योन्यं वसुदानवयो रथौ ॥ दृष्ट्वा प्राकम्पत भृशं त्रिदशानां महद्बलम् ॥ ११ ॥ क्रोधसंरम्भताम्राक्षौ प्रेक्षमाणौ मुहुर्मुहुः ॥ गर्जन्ताविव शार्दूलौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥१२॥ महामेघोपमं रौद्रमासीदायोधनं तयोः ॥ रथाश्वरसंबाधं मत्तवारणसंकुलम् ॥ १३ ॥ समाजमिव तं दृष्ट्वा प्रेक्षमाणा महारथाः ॥ आशंसन्तो जयं ताभ्यां योधा नैकत्रसंश्रयाः ॥ १४ ॥ तयोः प्रेक्ष्यन्त संरम्भं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः ॥ सिद्धगन्धर्वमुनयो देवदानवयोस्तदा ॥ १५ ॥ तौ च्छादयन्तावन्योन्य समरे निशितैः शरैः ॥ शरजालावृतं व्योम चक्रतुश्च महाबलौ ॥ १६ ॥

कांपने लगी ॥ ११ ॥ और क्रोधयुक्त लाल २ नेत्रोंसे परस्परमें दीखते हुए और शार्दूलोंकी तुल्य गर्जते हुए और मत्त हस्तियोंकी तुल्य भेदन करते हुए ॥ १२ ॥ इस प्रकार दोनों योधाओंका मनुष्य हस्ती घोडोंसे व्याप्त महामेघोंके समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ तिस युद्धको समाजकी नाईं देखते हुए महारथी तिन्होंके जयको कहते हुए ॥ १४ ॥ युद्धमें समूहके समूह स्थित होते हुए और सिद्ध तथा गंधर्व और मुनि ये सम्पूर्ण समीपमें प्राप्त हो और महाअस्त्रोंको धारण करते हुए उनको देवता और दानव युद्धमें देखने लगे ॥१५॥ वे दोनों महाबली बाणोंकी वर्षा

करते हुए शरोंके जालोंसे आकाशको आच्छादन करने लगे, और परस्पर एक दूसरेको आच्छादन करने लगे ॥ १६ ॥ और तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर हनन करते हुए दोनों महारथी रणमें बाण वर्षाते जलोंकी वर्षा करते हुए मेघोंके समान दीखने लगे ॥ १७ ॥ और वे दोनों शत्रुनाशक सुवर्णसे जटित बाणोंको छोडते हुए उल्काओंसे आकाशको सूर्यके समान प्रकाशमान करने लगे ॥ १८ ॥ नमुचि और धर इन दोनोंके बाण आकाशमें ऐसे प्रकाशमान होने लगे कि जैसे शरदऋतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी पंक्ति शोभित होती है ॥ १९ ॥ मरे हुए देवता घोडे हाथियोंसे पृथ्वी ऐसे व्याप्त हो गई कि जिस प्रकार मेघोंसे आकाश ॥ २० ॥ तब तीक्ष्ण धारवाले सूर्यके मंडलकी तुल्य कांतिमान

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथैः॥ प्रेक्षणीयतमावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥१७॥ सुवर्णविकृतान्बाणान्प्रमुञ्चन्ताव-रिन्दमौ ॥ भास्कराभं तदाकाशमुल्काभिरिव चक्रतुः ॥१८॥ तयोः शराः प्रकाशन्ते देवदानवयोस्तदा ॥ पंक्तयः शरदमत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥१९॥ त्रिदशाश्वगजानां हि शरीरैर्गतजीवितैः ॥ क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥२०॥ ततः सुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसन्निभम् ॥ धराय वसवे मुक्तं चक्रं नमुचिना रणे ॥ पतता तेन चक्रेण धरस्य स्यन्दनोत्तमः ॥२१॥ सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोऽर्ककिरणप्रभः ॥ स त्यक्त्वा स्यन्दनं देवः प्रदीप्तं चक्रतेजसा ॥२२॥ भयात्तस्यासुरेन्द्रस्य गतः स्वगृहमुत्त-मम् ॥ पराजित्य सुरं दैत्यो नमुचिर्बलगार्वितः ॥ २३ ॥ प्रयातः स्वेन सैन्येन भूयः सुरचमूं प्रति ॥ यौ तौ मयश्च त्वष्टा च देवदैत्येषु विश्रुतौ ॥ २४ ॥

जलते हुए चक्रको नमुचि दत्यने धरके सन्मुख छोडा ॥ २१ ॥ ध्वजा आयुध घोडोंसे युक्त सूर्यके समान प्रकाशमान रथको नमुचिके चक्रने दग्ध किया; तब वह धर चक्रके तेजसे दग्ध हुए रथको त्याग ॥ २२ ॥ नमुचिके भयसे अपने घरको चला गया; तब धर देवताको जीत नमुचिदैत्य बलसे गर्वित हो ॥ २३ ॥ अपनी सेनाको संग ले फिर देवताओंकी सेनाके सन्मुख चला जो दोनों विख्यात और श्रेष्ठ देवता और दैत्योंमें श्रेष्ठ महात्मा त्वष्टा देवता और मय ॥ २४ ॥

श्रेष्ठ विश्वकर्मा सैंकडों मायाके जाननेवाले दैत्य इन्होंका महाघोर दारुण युद्ध होने लगा॥ २५ ॥ वह चिरकालसे युद्धमें एक दूसरेकी स्पर्द्धा करते हुए थे उस समय त्वष्टा तीक्ष्ण बाणोंसे बलदर्पित दैत्यको ॥२६॥ ३०० बाणोंसे वेधन करने लगा इस प्रकार आते हुए बाणोंको देख मयने भी बहुत तीक्ष्ण बाणोंसे त्वष्टाको विद्ध किया ॥२७॥ वेगवाले वेधनेवाले सुवर्णजटित बाणोंसे मयदैत्य त्वष्टाको वेधन कर गर्जने लगा ॥२८॥ त्वष्टा क्रोधित हो तीक्ष्ण बाणोंसे मयको भेदन कर दैत्योंकी सेनाके प्राणोंको खोजता हुआसा क्रोधसे सुवर्ण और मणियोंसे जटित विचित्र दंडवाली

प्रवरौ विश्वकर्माणौ मायाशतविशारदौ ॥ घोरस्तयोः संप्रहारः प्रावर्त्तत सुदारुणः ॥ २५ ॥ अन्योन्यस्पर्द्धिनोस्तत्र चिरात्प्रभृति संयुगे ॥ त्वष्टा तु निशितैर्बाणैर्दैत्यं तु बलदर्पितम् ॥ २६ ॥ पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशतैः शरैः ॥ मयस्तु प्रतिविव्याध त्वष्टारं निशितैः शरैः ॥२७॥ सुघातैः सुप्रसन्नाग्रैः शातकुम्भविभूषितैः॥ ननाद दितिजश्रेष्ठो हतस्त्वष्टुः शरैर्मयः ॥ २८ ॥ संक्रुद्धो दैत्यसैन्यस्य विचिन्वन्निव जीवितम् ॥ शक्तिं कनकवैडूर्यचित्रदण्डां महाप्रभाम् ॥२९॥ देवो गृहीत्वा समरे दैत्येन्द्रं समपातयत्॥ भीमां सर्वायसीं दृष्ट्वा पुरंदर इवाशनिम् ॥ ३० ॥ तां त्वष्टुर्भुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ॥ मयश्चिच्छेद तीक्ष्णाग्रैस्तूर्णं सप्तभिराशुगैः ॥३१॥ ततः क्षुण्वन्निव प्राणांस्त्वष्टुः कोपान्महासुरः ॥ प्रेषयामास संरब्धः शरान्बर्हिणवाससः ॥ ३२ ॥ चिच्छेद बाणास्त्वष्टा तान् ज्वलितैर्नतपर्वभिः ॥ दैत्यस्य सुमहावेगैः सुवर्णविकृतैः शरैः ॥३३॥ तौ वृषाविव नन्दतौ बलिनौ वासितान्तरे॥ शार्दूलाविव चान्योन्यं प्रसक्तावभिजघ्नतुः ॥ ३४ ॥

महाकान्तिवाली शक्तिको॥२९॥युद्धमें ग्रहण कर दैत्यपति मयके ऊपर छोडी, वह भयंकर लोहनिर्मित पुरन्दरके कवचके समान थी॥३०॥त्वष्टाकी भुजाओंसे छुटी हुई अग्निके समान कांतिवाली शक्तिको मयदैत्यने बेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे छेदनकर दिया॥ ३१ ॥ और त्वष्टाके प्राणोंके हरनेको मयदैत्यने क्रोधित हो तीक्ष्ण बाणोंको छोडा ॥ ३२ ॥ तब त्वष्टाने अपने प्रका शमान बाणोंसे मयके महावेगवान् सुवर्णनिर्मित बाणोंको छेदन कर दिया ॥३३॥ महाबली वृषोंक समान गर्जते और सिंहोंकी तुल्य पराक्रमोंको करते हुए और पर स्परमें दाव देखते हुए परस्पर मारने लगे ॥३४॥

परस्पर युद्ध करते एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले विषैले सर्पके समान परस्पर देखने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बडे विस्तारवाले धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे मारने लगे कि जैसे दांतोंके अग्रभागसे मदोन्मत्त हस्ती युद्ध करता हो ॥ ३६ ॥ तब बडे विस्तारवाली; प्रकाशमान सुवर्णके बाजुओंवाली सम्पूर्णोंके प्राणोंको हरनेवाली गदाको ग्रहण कर त्वष्टापर छोडी ॥ ३७ ॥ उससे क्रोधी मयदैत्यने उत्तम घोडोंवाले त्वष्टाको ताडन किया जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको विदीर्ण करता है ॥३८॥ फिर युद्धमें क्रोधित हुआ मय दैत्य बहुतसे तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ३९ ॥ त्वष्टाके रथकी ध्वजाको छेदन कर

अन्योन्यं प्रतियुध्यन्तावन्योन्यवधकांक्षिणौ॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ क्रुद्धावाशीविषाविव ॥३५॥ महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥३६॥ ततः सुविपुलां दीप्तां मयो रुक्माङ्गदो गदाम् ॥ त्वष्टरि प्राहिणोत्क्रुद्धः सर्वप्राणहरां रणे ॥३७॥ तया जघानातिरथस्त्वष्टुरुत्तमवाजिनः ॥ गदया दानवः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥३८॥ ततः क्रुद्धो महादैत्यः क्षुराभ्यामथ संयुगे ॥ पुनर्द्वाभ्यां शराभ्यां तु निशिताभ्यां महारणे ॥३९॥ ध्वजं त्वष्टुरथ च्छित्वा सूतं निन्ये यमक्षयम् महाबलान्महावेगान्त्सदश्वान् गदयाऽहनत् ॥४०॥ दृष्ट्वा त्वष्टा हतं सूतमश्वांश्च विनिपातितान् ॥ हताश्वं रथमुत्सृज्य सूतं च पतितं भुवि ॥४१॥ विस्फारयन्महाचापं स्थितो भूमाविवाचलः ॥ हताश्वसूतं विरथं दृष्ट्वा रिपुमवस्थितम् ॥४२॥ जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवानलः॥ मयः कालान्तकप्रख्यश्चापपाणिरदृश्यत ॥४३॥ प्रादहद्देवसैन्यानि दावाग्निरिव काननम् ॥ त्वष्टुः सोऽक्षिपता-नुग्रान्नाराचांस्तिग्मतेजसः ॥ ४४ ॥

सारथीको यमलोकमें पहुँचा दिया, फ़िर बडे शरीरवाले और बढे वेगवान् श्रेष्ठ घोडोंको गदासे मारा ॥ ४० ॥ वह त्वष्टा रणमें भेदन की हुई ध्वजा और सूतको मृतक देख घोडे तथा सूतरहित रथको त्याग पृथ्वीमें स्थित हुआ ॥ ४१ ॥ युद्धके निमित्त अपने महान् धनुषको टंकारता पृथ्वीमें पर्वतके समान स्थित हुआ, घोडे सूत और रथहीन शत्रुको उपस्थित देख॥४२॥जयरूपी शोभाको प्राप्त हो युद्धमें दीप्तिमान् अग्नि और कालके तुल्य प्रसिद्ध हाथमें धनुषको धारण किये मयदैत्य ॥ ४३ ॥ देवताओंकी सेनाको दग्ध करता हुआसा दीखने लगा, कि जैसे वनको दग्ध करता

हुआ दावाग्नि तत्र अत्यन्त तेजवाले शिलापै पैनाये हुए ॥४४॥ अनेक प्रकारकी आकृतियोंवाले चौदह बाण ॥ ४५ ॥ मयदैत्यने छोडे;वे सुवर्णके गहनोंवाले बाण त्वष्टाकी सेनाके रुधिरको ऐसे पीते हुए; जैसे कालसे प्रेरणा किये हुए सर्प हों; रुधिरमें भीगे हुए वे बाण ऐसे शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥कि जैसे आधे प्रवेश हुए क्रोधयुक्त बिलोंमें महान् सर्प हों, सुवर्णसे भूषित हुए बाणोंसे त्वष्टानेभी मयदैत्यको वेधन कर ॥ ४७ ॥ अत्यन्त उग्र चौदह बाणोंसे उस दैत्यकी सव्यभुजाको विदारण किया ॥ ४८ ॥ वे बाण मयदैत्यकी सव्य भुजाको भेदन कर और भूमिमें सर्पके समान

चतुर्दश शिलाधौतान्त्सायकान्विविधाकृतीन्॥ ते पपुस्तस्य सैन्यस्य शोणितं रुक्मभूषणाः॥४५॥आशीविषा इव क्रुद्धा भुजङ्गाः कालचोदिताः ॥ ते क्षितिं समवर्त्तन्त शोभन्ते रुधिराक्षिताः ॥ ४६ ॥ अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ॥ तं प्रत्यविध्यत्त्वष्टा तु जाम्बूनदविभूषितैः ॥ ४७ ॥ चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरभिदारयन् ॥ ते तस्य दैत्यस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ ४८ ॥ विदार्य विविशुर्भूमिं पन्नगा इव वेगतः॥ ते प्रकाशन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ॥ ४९ ॥ अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः॥ मयस्त्रिभिरथानर्च्छत्त्वष्टारं तु पतत्रिभिः ॥ ५० ॥ सुपर्णवेगैर्विकृतैर्ज्वलद्भिः प्राणनाशनैः ॥ त्वष्टाथ मयनिर्मुक्तैः सायकैरर्दितः प्रभुः ॥५१॥ अपयातो रणं हित्वा व्रीडयाभिसमन्वितः ॥ तं तत्र हतसूतं च भुजङ्गा इव निर्विषम् ॥५२॥ त्वष्टारं विरथं कृत्वा मुदितः स तु दानवः ॥ विस्फार्यमाणो रुचिरं चापं रुक्माङ्गदं दृढम् ॥ ५३ ॥

प्राप्त हुए प्रकाश करने लगे॥४९॥ जैसे अस्ताचलको जाते हुए सूर्यमें प्रवेश होती किरण, तब मयने तीन बाणोंसे त्वष्टाको भेदन किया ॥५०॥ वे रुधिरको भोजन करनेवाले और अत्यन्त उग्र जलते हुए ऐसे प्राणनाशी थे. और मयदानवके बाणोंसे पीडित हुआ त्वष्टा ॥५१॥ युद्धको त्याग लज्जित हुआ रणसे चला गया; सूत और घोडोंके मारनेसे विषरहित सर्पकी नांई॥५२॥त्वष्टाको विरथ कर मयदानव अत्यन्त आनंदको प्राप्त हुआ; और अत्यन्त सुंदर और सुवर्णके बाजुओंवाले और अत्यन्त दृढ ऐसे धनुषको टंकारता हुआ ॥ ५३ ॥

रणमें वह दैत्य प्रकाशमान अग्निकी समान स्थित हुआ; तब बलमें श्लाघनीय मदोन्मत पुलोमा दानव ॥५४॥ श्वेत घोडोंवाले रथमें स्थित हो रणमें दीखा और सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित होनेवाले ॥ ५५ ॥ और कालके तुल्य बलवान् वायुदेवताके संग युद्ध करने लगा पुलोमा दैत्यके धनुषकी ज्याके शब्दको सुन पवन देवता ॥ ५६ ॥ ऐसे नहीं सह सके कि जैसे मदोन्मत्त हस्तीके शब्दको मदोन्मत्त इस्ती और पुलोमा दैत्यके छोडे हुए बाणोंसे दशों दिशा ऐसे आच्छादन हो गई॥५७॥जैसे सूर्यकी किरणोंके जालसे आकाशसहित जगत् हो जाता है; वह तांबेकेसे

रणेऽभ्यतिष्ठद्दैत्येन्द्रो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ पुलोमा तु बलश्लाघी दृप्तो दानवसत्तमः ॥ ५४ ॥ रथे श्वेतहयेनेह सार्द्धं युध्यति वायुना ॥ सर्वेषामेव भूतानां यः प्राणः कथ्यते द्विजैः ॥ ५५ ॥ बलिना कालकल्पेन वायुना सह संगतः ॥ पुलोम्नस्तत्र पवनः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ॥ ५६ ॥ नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ दैत्यचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यन्त दिशो दश ॥५७॥ रश्मिजालैरिवार्कस्य विततं साम्बरं जगत् ॥ स ताम्रनयनः क्रुद्धः श्वसन्निव महोरगः ॥५८॥ वृतो दैत्यशतैर्वायू रश्मिवानिव भास्करः ॥ दैत्यचापभुजोत्सृष्टाः शरा बर्हिणवाससः ॥६९॥ रुक्मपुंखाः प्रकाशन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ चापध्वजपताकाभ्यः शस्त्र दीप्तमुखाश्च्युताः ॥ ६० ॥ प्राप्तवन्तश्च दृश्यन्ते दैत्यस्यापततः शराः ॥ एवं सुतीक्ष्णान्खचराञ्छलभानिव पावके ॥६१॥ सुवर्णविकृतान् चित्रान्मुमोच दितिजः शरान् ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं स मारुतः ॥ ६२ ॥

नेत्रवाला महान् सर्पकी नांई श्वांस लेता हुआ ॥५८॥ सैंकडों दैत्योंसे घिरकर वायुदेवत ऐसे शोभाको प्राप्त हुआ कि जैसे किरणोंसे सूर्य और दैत्यकी भुजाओंद्वारा धनुषसे छोडे हुए मोरके पंखोंकी तुल्य वर्णवाले ॥५९॥ सुवर्णके पंखोंवाले बाणहंसोंकी पंक्तिके समान प्रकाशित हुए चाप ध्वजा पताकाओंसे निकले हुए दीप्तिमान् शस्त्र ॥ ६० ॥ वे दैत्योंके निकट प्राप्त हुए दीखने लगे;इस प्रकार तीक्ष्ण बाणोंको अग्निमेंपतंगके समान छोडता हुआ ॥ ६१ ॥ वे सुवर्णसे विकृत और चित्रविचित्र बाण छोडते क्रोधित हो कालके समान आते हुए पुलोमा दैत्यको पवनने देख ॥ ६२ ॥

प्राणपनसे नव बाणोंसे उसे वेधन किया; तब सनातन वायुने तिसका असह्य वेग देख ॥ ६३ ॥ उत्तम पराक्रममें स्थित हो उसके बाणसमूहको नष्ट किया ॥६४॥ और बलवान् पवनने शरोंके जालको नष्टकर पैने फुलोंवाले वीस बाणोंसे पुलोमा दैत्यको वेधन किया, और पवनोंके गणोंमें श्रेष्ठ और पराक्रमवाले दश देवता ॥ ६५ ॥ वेगसे धन्य धन्य कह सिंहनाद करने लगे; उस तुमुल और रोमहर्षको उपजानेवाले शब्दको सुन॥६६॥वे पौलोम संज्ञक दैत्य क्रोधमें मूर्छित हुए पवनके सन्मुख धावमान हुए, और पवनको प्राप्त हो शरोंकी वर्षासे आच्छादन करने लगे ॥ ६७ ॥ कि जैसे वर्षाकालमें

त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध नवभिः शरैः ॥ तस्य वेगमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुः सनातनः॥६३॥उत्तमं जवमास्थाय व्यधमत्सायकव्रजान् ॥ तेजो विधम्य बलाञ्छरजालानि मारुतः ॥६४॥ विव्याध दैत्यं विंशत्या विशिखैर्नतपर्वभिः॥ मरुद्गणानां प्रवरा दश दिव्या महौजसः ॥६५॥ साधु साध्विति योगेन सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ तस्मिन्त्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ॥ ६६ ॥ अभ्यधावन्त दितिजाः पौलोमाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ते समासाद्य पवनं समावृण्वन् शरोत्तमैः ॥६७॥ पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ ते पीडयन्तः पवनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ॥ ६८ ॥ प्रजासंहरणे घोराः सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ ततो दक्षिणमक्षोभ्यं नानारत्नविभूषितम् ॥६९॥ करं गजकराकारमुद्यम्य युधि मारुतः ॥ तेषां मूर्द्धसु दैत्यानां पातयामास वीर्यवान् ॥७०॥ निहता वायुवेगेन तेन सप्त महारथाः ॥ त्यक्त्वा प्राणान् पुलोमा तु विव्याध नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥

जलोंकी धारासे पर्वतको मेघ आच्छादन करते हैं; क्रोधित हुए ऐसे सात महारथी पवनको पीडित करने लगे ॥ ६८ ॥ कि जैसे प्रलयकालमें महाघोररूप सात ग्रह चंद्रमाको पीडित करते हैं, तब अक्षोभ्य अपने दक्षिण हाथको उठाय जो अनेक प्रकारके रत्नोंसे भूषित ॥ ६९ ॥ हस्तीकी शुंडाकी तुल्य था; युद्धमें दैत्योंके मस्तकमें उस बलीने मारा॥७०॥अपने वायुके वेगसे सात महारथोंको फेंक दिया; और वह पुलोमा प्राणोंको त्याग नव बाणोंसे

वायुको वेधन करता हुआ ॥७१॥ वायुदेवताको प्रकाश करते हुए अचिंत्य बलयुक्त देख और ज्वलित होते हुए पुलोमाके बाणोंके समूहको देख उन महात्मा दानवोंके तेजोंको विदीर्ण किया, तब वे रुधिरमें भीगे हुए मुकुटोंवाले गेरुके पर्वतके समान भिन्न दीखे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और छिन्न भुजा वर्म अस्थियोंवाले सम्पूर्ण दानव युद्धभूमिमें पडेहुए शोभितहुए;और भेदन कियेहुए मदोन्मत्त हाथी इस प्रकार शोभाको प्राप्त हुए कि जैसे फूले हुए वृक्ष ॥ ७४ ॥ और महात्मा दानवोंके कटे हुए शरीरोंसे रौद्ररूप बडी भयानक नदी प्रवृत्त हुई॥७५॥और डरनेवालोंके भयको बढानेवाली नदी

प्रदापितमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुं सनातनम् ॥ असंचिन्त्य सुरौघांस्तान् ज्वलितांश्च पुलोमतः ॥७२॥ तेषां विदार्य तेजांसि दानवानां महात्मनाम् ॥ शोणिताक्लिन्नमुकुटा गैरिकाक्ता इवाद्रयः॥७३॥ ते भिन्नवर्मास्थिभुजाःपतन्तो भान्ति दानवाः ॥ मातङ्गयूथसंभग्नाः पुष्पिता इव पादपाः ॥७४॥ तेषां विदारितैर्देहैर्दानवानां महात्मनाम् ॥ ततः प्रावर्त्तत नदी रौद्ररूपा भयावहा ॥७५॥ प्रस्रवन्ती रणे रक्तं भीरूणां भयवर्द्धिनी ॥ देवदैत्यगजाश्वानां रुधिरौघपरिप्लुता ॥ रणभूमिरभूद्रौद्रा तत्र तत्र सहस्रशः ॥७६॥ सभूता गतसत्वैश्च यक्षराक्षसखेचरैः ॥ सानुगैः सपताकैश्च सोपासङ्गरथध्वजैः ॥ ७७ ॥ शीर्णकुम्भैस्तथा नागैर्घण्टाभिस्तु विभूषितैः ॥ सुवर्णपुङ्खै-र्ज्वलितैर्नाराचैस्तिग्मतेजसैः ॥ ७८ ॥ देवदानवनिर्मुक्तैः सविषैरुरगैरिव ॥ प्रासतोमरनाराचैः शक्तिखड्गपरश्वधैः ॥ ७९ ॥ सुवर्ण-विकृतैश्चापि गदामुशलपट्टिशैः ॥ कनकाङ्गदकेयूरैर्मणिभिश्च सकुण्डलैः ॥ ८० ॥ तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च शोभनैः ॥ हतैश्च दितिजैस्तत्र शस्त्रस्यन्दनवर्जितैः ॥८१॥ पतितैरपि विद्धैश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ निपातितध्वजरथो हतवाजिरथद्विपः ॥८२॥

वहने लगी;देवता और दानव हस्तीऔर घोडोंके रुधिरसे वह रणभूमि बडी भयानक होतीहुई सहस्रों जीवयुक्त हुई।७६॥और गतप्राणोंवाले राक्षस खेचर और धनुष यक्ष और ध्वजा रथ॥७७॥घंटाओंसे भूषित फूटे हुए मस्तकोंवाले हस्ती और प्रकाश करते हुए सुवर्णकी पंखोंवाले बाण॥७८॥ देव दानवोंसे छोडे हुए विषैले सर्पोंके समानप्रास और तोमर नाराच और भालेशक्ति फरसे खड्ग॥७९॥सुवर्णसे जटित धनुषगदा और मुशल पट्टिश सुवर्णके बाजू मुकुट शोभायमान कुंडल॥८०॥तनुत्र,तलत्र,हार धुकधुकी शस्त्ररथोंसे रहितभेदन किये हुए दैत्योंसे वह॥८१॥जो कि विद्धऔर पतित

थे गिरेहुए ध्वजारथ घोडे और हाथियोंसे॥८२॥रणभूमि शोभाको प्राप्त हुई;घोडे हस्तियोंके मरनेसे देवताऔर दैत्योंका युद्धबराबर शोभाको प्राप्त हुआ;तब महाअसुरपालोंसे सहस्रों दैत्योंको साथ ले ॥८३॥ गदा और मुशलोंको धारण कर वायुदेवताको घेरता हुआ ॥८४॥ और वे दानवोंमें श्रेष्ठ एक लाख दैत्य पवनदेवताको हननकरते हुए,और तिन दैत्योंसे ताडना किया हुआ पवनअंकुशसे ताडना किये हस्तीकें समानशोभित हुआ॥८५॥ वह महावायु पवन आठ सौ दैत्योंको मार मार्ग कर बडा शब्द करते हुए ॥८६॥ वह मार्ग अबतकभी दीखता है;उस वायुपंथा नाम मार्गको सिद्धजन ही

विमर्दो देवदैत्यानां सदृशः कर्मणा बभौ ॥ अथ दैत्यसहस्रेण पौलोमेन महासुरः ॥ ८३ ॥ संवृतः पवनः श्रीमान्गदामुशलपाणिना ॥ ८४ ॥ ते जघ्नुः शतसाहस्राः पवनं दानवोत्तमाः ॥ तैर्वध्यमानः स बभौ समन्तादर्पितैः शरैः ॥८५॥ हत्वाष्टौ तत्र योधानां शतानि पवनः प्रभुः ॥ कृत्वा मार्गं सुरश्रेष्ठो ननाद सुमहारथः ॥८६॥ अद्यापि च सुविस्तीर्णः पन्थाः संदृश्यते दिवि नाम्ना वायुरथो नाम सिद्धाः पश्यन्ति तं दिवि ॥ ८७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हयग्रीवस्तु दितिजः पूषाणं प्रति वीर्यवान् ॥ ननाद सुमहानादः सिंहनादं महारथः ॥ ८८ ॥ विस्फार्य सुमहच्चापं हेमजालविभूषितम् ॥ पूषाणं दितिजोऽपश्यतत्क्रुद्धो घोरेण चक्षुषा ॥ ८९ ॥ भुजाभ्यामाददानस्य सदधानस्य वै शरान् ॥ मुञ्चतः कर्षतो वापि ददृशुस्तत्र नान्तरम् ॥ ९० ॥ अग्निचक्रोपमं दीप्तं मण्डलीकृतकार्मुकम् ॥ तदासीद्दानवेन्द्रस्य सव्यदक्षिणमस्यतः ॥ ९१ ॥ रुक्मपुंखैस्ततस्तस्य चापमुक्तैः शितैः शरैः ॥ प्राच्छाद्यन्त शिलाधौतैर्दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ॥ ९२

सदा देखते हैं ॥ ८७ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! महाबली हयग्रीवदैत्य पूषाकोप्राप्तहो सिंहके समान नाद करने लगा ॥ ८८ ॥ सुवर्णके जालोंसे भूषित धनुषको टंकोर और क्रोधित हो घोरनेत्रोंसे पूषाको देखने लगा ॥८९॥ और बाणोंको भुजाओंसे लेता हुआ संधान्ता हुआ छोडता हुआ खैंचता हुआ ऐसा कर्म करने लगा कि हयग्रीवके बीचमें अंतर नहीं दीखता था ॥ ९० ॥ और दाहिने और बांये हाथसे फेंके हुए बाणोंका ऐसा चक्र हो गया कि जैसे घुमाया हुआ अग्निका चक्र हो ॥ ९१ ॥ सुवर्णके पंखोंवाले शिलापै पैनाये हुए धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे सूर्य

और दिशाओंको आच्छादन कर दिया ॥९२॥तब सुवर्णके पंखोंवाले और पैनी धारोंवाले ऐसे बाणोंके ॥९३॥ आकाशमें उन आकाशचारियोंके बहुत समूह दीखने लगे; और पर्वतके शिखरके तुल्य आकारवाले धनुषसे छोडे हुए श्रेष्ठ बाण ॥ ९४ ॥ और पंक्तिरूप हुए आकाशमें जाते हुए प्रकाश करने लगे कि जैसे आकाशमें जाते हुए क्रौंच गृध्रपक्षसे युक्त शिलापै पैनाये हुए सुवर्णसे भूषित ॥ ९५ ॥ और महावेगवाले प्रशस्त बाण हयग्रीवने छोडे; और धनुषके बलसे घुमाये हुए सुवर्णसे भूषित ॥ ९६ ॥ और बहुत पैने बाण पूषाके शरीरको सब ओरसे आच्छादन कर सुवर्णसे

ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९३ ॥ नभश्चराणां नभसि दृश्यते बहवो व्रजाः ॥ गिरिकूटनिभाच्चापात्प्रभवन्तः शरोत्तमाः ॥ ९४ ॥ श्रेणीभूताः प्रकाशन्ते यान्तः श्येना इवाम्बरे ॥ गृध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥ महावेगान्प्रशस्ताग्रान्मुमोच दितिजः शरान् ॥ ततश्चापबलोद्धूताःशातकुम्भविभूषिताः॥ ९६ ॥ देहे समवकीर्यन्त पूष्णः सन्निहिताः शराः ॥ ते व्योम्नि रुक्मविकृताः संप्रकाशन्त सर्वशः ॥९७॥ खद्योता इव घर्मान्ते खे चरन्तः समन्ततः ॥ शिलाधौताः प्रसन्नाग्राः पूषाणं सिषिचुः शराः ॥९८॥ पर्वतं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ततः प्रच्छादयामास पूषाणं शरवृष्टिभिः ॥९९॥ पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ततः स पूष्णो देवस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥१००॥ व्यवसायं च सत्त्वं च पश्यन्ति त्रिदशाद्भुतम् ॥ तां समुद्रादिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥१॥ नाचिन्तयत्तदा पूषा दैत्यं चाभ्यद्रवद्रणे ॥ हेमपृष्ठं महानादं पूष्ण आसीन्महाधनुः ॥ २ ॥

जटित हुए वे बाण आकाशमें ऐसे प्रकाशित हुए ॥ ९७ ॥ कि जैसे वर्षाऋतुमें आकाशमें जाते हुए सहस्रों पटबीजने,शिलापै पैनाये हुए और पैने अग्रभागोंवाले ऐसे बाण पूषाको वेधन करने लगे ॥ ९८ ॥ जसे वर्षाकालीन बादल पर्वतको आच्छादन करते हैं, इस प्रकार हयग्रीवने बाणोंकी वर्षासे पूषाको आच्छादन कर दिया ॥ ९९ ॥ जलधारासे पर्वतके समान पूषाको आच्छादन किया तब वीर्य पराक्रम ॥ १०० ॥ और परिश्रम शूरताको सम्पूर्ण देवता आश्चर्यरूप देखने लगे, हयग्रीवके धनुषसे होती हुई शरोंकी वर्षाको ॥ १ ॥ पूषा कुछभी चिंता न करता

हुआ क्रोधसे हयग्रीवके सामने धावमान हुआ; सुवर्णकी पृष्ठको वडे शब्द करनेवाले पूषाका धनुष था ॥ २ ॥ उस इन्द्रके वज्रके समान मंडलाकार धनुषको पूषा ग्रहण कर बाणोंसे आकाशको आच्छादन करने लगा ॥ ३ ॥ पूषाके धनुषसे सुवर्णके पंखोंवाले बाणोंकी आकाशमें विस्ताररूप माला हो गई ॥ ४ ॥ जब पूषाके छोडे हुए बाणोंकी महाघोर वर्षा प्रारंभ हुई तब सब ओर आंकाशमें बाणजाल विस्तारित हो गये ॥ ५ ॥ पीछे उन शरोंके जालोंको हयग्रीवने तीक्ष्ण बाणसे नष्ट किया, तब सुवर्णके पंखोंवाले और कंकणके वर्णके समान वस्त्रोंवाले ॥ ६ ॥

विकृतं मण्डलीभूतं शक्राशनिमिवापरम् ॥ ततः शराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाम्बरम् ॥३॥ सुवर्णपुंखाः पूष्णस्ते प्रभवन्तः शरासनात् ॥ मालेव रुक्मपुखानां वितता व्योम्नि पत्रिणाम् ॥४॥ प्रादुरासीन्महाघोरा बृहती पूषकार्मुकात् ॥ ततो व्योम्नि विभक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥५॥ आहतानि व्यशीर्यन्त शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ततः कनकपुङ्खानां छिन्नानां कङ्कवाससाम् ॥ ६॥ पततां पात्यमानानां खमासीच्चावृतं रणे ॥ पूषा प्रापूरयद्बाणैर्हयग्रीवं शिलाशितैः ॥ ७ ॥ नामाङ्कैरर्कसदृशैर्दिव्यहेमपरिष्कृतैः ॥ ततो व्यसृजदुग्राणि शरजालानि दानवः ॥८॥ अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ॥ पूष्णस्त्वाजौ ध्वजं चैव पताकां धनुरेव च ॥ ९ ॥ रश्मीन् योक्राणि चाश्वानां हयग्रीवो रणेऽच्छिनत् ॥ अथाप्यश्वान्पुनर्हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ १० ॥ सारथिं सुमहातेजा रथोपस्थादपातयत् ॥ कृतस्तु विरथः पूषा हयग्रीवेण संयुगे ॥ ११ ॥

गिरते हुए हयग्रीवके बाणोंसे आकाश आच्छादन हो गया और शिलापर पैनाये हुए॥ ७ ॥ अपने नामसे अंकित और सूर्यके तेजके समान तेजवाले और सुवर्णसे जटित बाणोंसे पूषा हयग्रीवपर फिर वर्षा करने लगा, तब हयग्रीवभी उग्र शरोंकी वर्षा करने लगा ॥ ८ ॥ महाक्रोधी वह दैत्य अग्निके समान जलता हुआ संग्राममें पूषाके ध्वजा पताका और धनुष ॥ ९ ॥ रश्मी सूत घोडोंको नष्ट कर दिया और चार बाणोंसे फिर घोडोंको मार ॥ १० ॥ उस महातेजस्वीने रथपरसे फिर सूतको पृथ्वीमें गिरा दिया, जब हयग्रीवने युद्धमें पूषाको विद्ध करदिया ॥ ११ ॥

तब पूषा भयभीत हो उसके निकटसे चला गया, और मृत्युके मुखसे निकलेके समान इन्द्रके समीप चला गया ॥ १२ ॥ तब शंबर और भगका फिर घोर और बडा दारुण अद्भुत युद्ध होने लगा॥ १३॥ सात हाथ प्रमाण बारह बिलस्त चौडा इन्द्रके वज्रके तुल्य शब्दवाले दृढ ज्यावाले, बहुत भारको सहनेवाले धनुषको धारण कर रथके धुरेके समान बाणोंको युद्धमें छोडने लगा॥ १४॥ क्रोधसे रक्त नेत्र किये सम्पूर्ण योगके जाननेवाले शंबर दैत्यने देवताओंकी सेना वित्रासित कर दी ॥ १५॥ और वह सेना समुद्रकी तरंगोंके समान कंपित हुई तब बुरे नेत्रोंवाले भयानक रूप शंबरको आता

पूषा तस्य रथाभ्याशात्स ययौ तेन वै जितः ॥ गतः शक्ररथाभ्याशं मुक्तो मृत्युमुखादिव ॥१२॥ तत्राद्भुतमिदं भूयो युद्धं वर्तत दारुणम् ॥ कृतप्रतिकृतं घोरं शम्बरस्य भगस्य च ॥ १३ ॥ सप्तकिष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ॥ चापं चाशनिनिर्घोषं दृढज्यं भारसाधनम् ॥ विक्षिपन्नक्षसदृशान्व्यसृजत्सायकान्बहून् ॥१४॥ क्रोधसंरक्तनयनः शम्बरः सर्वयोगवित् ॥ तेन वित्रास्यमानानि देवसैन्यघ्नानि सर्वशः ॥ १५ ॥ समकम्पन्त भीतानि सिन्धोरिव महोर्मयः ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ १६ ॥ भगः प्रस्फुरमाणोष्ठस्त्वरमाणो व्यदारयत् ॥ ततो भगो महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः ॥ १७ ॥ अवाकिरन्दैत्यगणाञ्छरजालेन छादयन् ॥ तमभ्यगाद्भगो दैत्यं तूर्णमस्यन्तमन्तिकान् ॥ १८ ॥ मातङ्गमिव मातङ्गो वृषं प्रति वृषो यथा ॥ तौ प्रगृह्य महावेगौ धनुषी भारसाधने ॥१९॥ प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ रणे शरैः ॥ तयो सुतुमलं युद्धमासीद्घोरं महारणे ॥१२०॥ भगशम्बरयोर्भीममप्रमेयं महात्मनोः ॥ अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥

देख ॥ १६ ॥ क्रोधसे होठोंको कंपायमान करते भगदेवताने शीघ्रतासे शंबर दैत्यको निवारण किया, तब बडे धनुषवाले भगदेव दिव्यधनुषको टंकोरता हुआ ॥ १७ ॥ धनुषकी ज्याके खैंचनेसे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ दैत्योंपर बाणजाल विस्तार करने लगा; शंबर दैत्यके सन्मुख भग शीघ्रतासे चला ॥ १८॥ जैसे हस्तीके प्रति हस्ती, और वृषके प्रति वृष जाता हो; और महावेगवाले वे दोनों महाभारी धनुषोंको ग्रहण कर ॥१९॥ परस्पर आच्छादन करते हुए बाणोंसे छेदन करने लगे; तब भग और शंबरका तुमुल और घोर युद्ध होने लगा ॥१२०॥ यह युद्ध महा-

भयंकर और अप्रमेय हुआ, और बडे पैनेवाले और बडे वेगसे छोडे हुए ऐसे बाणोंसे ॥ २१ ॥ परस्परमें हनन करने लगे; दोनोंके बख्तर टूट गये सर्वांग विकृत होनेसे रुधिरसे पूर्ण हो गये ॥ २२ ॥ भेदन किये अंगोंवाले रथोंमें बैठे हुए मदोन्मत्त हुए पैने बाणोंसे परस्परमें छेदन करते हुए दोनों परस्परमें देखनेको समर्थ नहीं हुए ॥२३॥ और क्रोधसे लाल २ नेत्र किये कालधर्मराजके तुल्य शीघ्रतासे शंबर दैत्यने बाणोंसे भगको भेदन किया ॥२४॥ कि जैसे महान् सर्पोंको गरुड आकाशमें पकडता हो; शंबरके प्रेरित ॥२५॥ उन बाणोंको अग्निके समान प्रकाशमान् वेगवंत और सूर्यके

व्यदारयेतामन्योन्यं कार्ष्णे निर्भिद्य चर्मणी ॥ तौ तु विकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ॥ २२ ॥ संप्रेक्ष्यमाणौ रथिनावुभौ परमदुर्मदौ ॥ तक्षमाणौ सितैर्बाणैर्न वीक्षितुमशक्नुताम् ॥ २३ ॥ अथ विव्याध समरे त्वरमाणोऽसुरो भगम् ॥ नाराचैः क्रोधताम्राक्षः कालान्तकयमोपमः ॥ २४ ॥ गरुत्मानिव चाकाशे पोथयानो महोरगम् ॥ नाराचा न्यपतन्देहे तूर्णं शम्बरचोदिताः ॥२५॥ताननन्तहिक्षे नाराचान् भगश्चिच्छेद पत्रिभिः ॥ ज्वलन्तमचलप्रेष्यं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ २६ ॥ ततो भगं चतुःषष्ट्या विव्याधासुरसत्तमः ॥ शिलीमुखैर्महावेगैर्जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २७ ॥ तदा तत्सुचिरं कालं युद्धं सममिवाभवत् ॥ शम्बरस्य च मायाभिर्नादृश्यत ततोऽम्बरम् ॥२८॥ दोर्भ्यां चिक्षिपतश्चापं रणे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ श्रूयते धनुषः शब्दो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥ स भगस्य हयान्हत्वा सारथिं च महाहवे ॥ अभ्यवर्षच्छरैरेनं पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १३० ॥ न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ भगदेवस्य दैत्येन शम्बरेणास्त्रघातिना ॥ ३१ ॥

सम कांतिवाले देख भगदेवताने अपने बाणोंसे उनको आकाशमें छेदनकर दिया॥२६॥तब अत्यन्त तीक्ष्ण सुन्दर तीक्ष्ण मुखोंवाले अत्यन्त वेगवाले ऐसे चौंसठ बाणोंसे शंबर दैत्यने भगको वेधन किया॥२७॥तब बहुत कालपर्यन्त मायावी शंबर और भगदेवता दोनोंका बराबर युद्ध होता रहा जिससे आकाश नहीं दीखता था ॥२८॥ और भुजाओंसे धनुषको धारण करता हुआ रणमें स्थित हुआ; वज्रके तुल्य धनुषोंका शब्द सुना जाता था॥२९॥ शंबर दैत्य भगके घोडे और सारथीको मारकर मेघके समान इनपर वर्षा करने लगा ॥ १३० ॥ अस्त्रघाती शम्बर दैत्यके बाणोंसे सूर्यरूपी भगदेवताके

शरीरमें विना छिद्रके दो अंगुलीकाभी अंतर नहीं रहा ॥३१॥ महाबली मायाधारी शंबर दैत्यके दिव्य अस्त्रको अपने दिव्य अस्त्रसे धारण करता हुआ, तब दैत्य मायायुद्धसे अन्तर्हित हुआ ॥३२॥ तब अपनी माया और लाघवतासे भगदेवताको वंचित किया; भगने उसके रथ और घोडेको बाणोंसे आच्छादन कर दिया ॥३३॥ एक सहस्र मायाओंको धारनेवाला कांतिमान् देवताओंकी सेनाको भेदन करनेवाला शंबर दैत्य सौ बाणोंसे आच्छादित दीखने लगा॥३४॥और वह महाबली शंबर फिर प्राणोंसेरहित हुआसा पृथ्वीमें पडा हुआ दीखने लगा,और फिर सौ पर्वतोंके तुल्य युद्ध करता दीखने लगा ॥३५॥फिर वह बली दिग्गज हस्तीपर स्थित हुआ दीखने लगा फिर प्रादेशमात्र रूप धारण कर फिर पर्वतके समान दीखने

दैत्यस्य चोद्धतं दिव्यमस्त्रमस्त्रेण धारयन् ॥ मायायुद्धेन मायावी शम्बरोऽस्तमयोऽभवत् ॥३२॥ अवञ्चयद्भगं दैत्यो मायाभिर्लाघवेन च ॥ भगस्तस्य रथं साश्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥ सहस्रमायो द्युतिमान्देवसेनां निषूदयन् ॥ अदृश्यत शरैश्छन्नः शम्बरः शतशो रणे ॥ ३४ ॥ अदृश्यन्पतितो भूमौ गतचेता इवासुरः ॥ अथ स्म युध्यते भूयः शतधा शैलसन्निभः ॥ ३५ ॥ दिशागजेन्द्रमारूढो दृश्यते स पुनर्बली ॥ प्रादेशमात्रश्च पुनः पुनर्भवति शैलवत् ॥ ३६ ॥ महामेघ इव श्रीमान् तिर्यगूर्ध्वं च सोऽभवत् ॥ पुनः कृत्वा विरूपाणि विकृतानि च सर्वशः ॥ ३७ ॥ सर्वां भीषयते सेनां देवानां भीमदर्शनः ॥ ते भीताः प्रपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥ ततः सोऽन्यं वरं देहं कृत्वा प्रांशुतरं पुनः ॥३८॥ गच्छत्यूर्ध्वगतिं घोरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥ नभस्तलगतश्चापि वर्षते वासवो यथा ॥३९॥ संवर्त्तकाम्बुदप्रख्यः पूरयन्पृथिवीतलम् ॥ संवर्त्तकोऽनलश्चैव भूत्वा भीमपराक्रमः॥१४०॥

लगा॥३६॥और महामेघका रूप धारण कर कभी ऊपर और कभी तिरछा दीखने लगा;और फिर घोर विरूप और विकृत भयानक रूपको धारण कर ॥३७॥और संपूर्ण देवताओंकी सेनाको डराने लगा और देवता उसके भयसे दौडने लगे कि जैसे सिंहसे मृग और फिर वह सूक्ष्म नवीन देह धारण कर ॥३८॥ दिशाओंको शब्दसे पूर्ण करता हुआ ऊंचा बढने लगा, और आकाशमें प्राप्त हो और प्रलयकालके संवर्तकमेघके तुल्य भूमिको जलसे पूर्ण करता हुआ ॥३९॥ इन्द्रके तुल्य वर्षने लगा; और पराक्रमवाला सौ अववर्तोंवाले सौ शिखाओंवाले फिर संवर्तक अग्नि हो ॥ १४० ॥

फिर सम्पूर्ण देवताओंको दहन करने लगा; फिर सौ मार्गोंवाला और सौ गुफाओंवाला दो घडीमें पर्वत दीखने लगा ॥ ४१ ॥ और गिरता हुआ आकाशमें थामता हुआ सौ शृंगोंके पर्वतके समान दीखने लगा; जिससे आदित्य और साध्य और विश्वेदेवा और देवतोंके ॥ ४२ ॥ फेंके हुए अस्त्रोंको ग्रसता हुआ और रणमें युद्ध करता हुआ और अपने रथसहित ॥ ४३ ॥ गंधर्वनगरके समान उसी जगह अंतर्ध्यान हो गया, तब देवता भयभीत हो भीमपराक्रमी होकर उसे देखने लगे ॥ ४४ ॥ सहस्र मायाओंको धारण करने वाले शंबर दैत्यको देखने लगे, शंबरके युद्धमें स्थित

शतवर्मा शतशिखो ददाह च पुनः सुरान् ॥ मुहूर्ताच्च महाशैलः शतशीर्षा शतोदरः ॥ ४१ ॥ अदृश्यत दिवस्तम्भः शतशृङ्ग इवाचलः ॥ येऽन्ये दैत्याश्च साध्याश्च ये च विश्वे च देवताः ॥४२॥ क्षिपन्त्यस्त्राणि दिव्यानि तानि सोऽग्रसतासुरः ॥ युद्ध्यमानश्च समरे सरथः सोऽसुरोत्तमः ॥ ४३ ॥ गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ते भीताः समुदीक्षन्त त्रिदशा भीमविक्रमाः ॥ ४४ ॥ सहस्रमायं समरे शम्बरं चित्रयोधिनम् ॥ स भगो भयसंत्रस्तो दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥ ४५ ॥ रथं त्यक्त्वा महाभागो महेन्द्रं शरणं गतः ॥ पराजित्य तु त देवं दानवेन्द्रः प्रतापवान् ॥४६॥ गतो यत्र महातेजा जातवेदा महाप्रभः ॥ स वह्निर्वाग्भिरुग्राभिः क्रुद्धस्तर्जयते बली ॥ भवाम्येष हि ते मृत्युरित्युक्त्वान्तरधीयत ॥४७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे भूत्वा ब्राह्मणेन्द्रो महाबलः ॥ जघान सोमः शीतास्त्रो दानवानां चमूं रणे ॥ ४८ ॥ कैलासशिखराकारो द्युतिमद्भिर्गणैर्वृतः ॥ अवधीद्दानवान् दृष्ट्वा दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ४९ ॥

भगदेवताभी भयभीत हो ॥ ४५ ॥ रथ छोड इन्द्रकी शरणमें गया, और प्रतापी शंबर दैत्य युद्धमें भगदेवताको जीत ॥ ४६ ॥ प्रकाश करता हुआ अग्निदेवताके सन्मुख गया; और अग्निदेवताको मैं तेरा मारनेवाला हूं ऐसे कठोर वचनोंसे तर्जन कर अंतर्ध्यान हो गया ॥ ४७ ॥ वैशंपायन बोले; इसी अन्तरमें ब्राह्मणोंका राजा महाबली शीतअस्त्रोंवाला चंद्रमा दैत्योंकी सेनाको हवन करने लगा ॥ ४८ ॥ कैलासके शिखरके तुल्य आकारवाले महाकांतिवाले ग्रहोंसे युक्त चंद्रमा दानवोंको दंडपाणि कालप्रभुके समान हनन करने लगा ॥ ४९ ॥

वह प्रभु रथोंको तोडते और घोडोंको मारते दैत्योंमें प्रलयकालमें बलवंत कालके समान विचरने लगे ॥ १५० ॥ और बडे वेगसे रथोंको तोडते हुए चंद्रमा दैत्योंको ऐसे दग्ध करने लगे जैसे वनको दावाग्नि जलाती है ॥ ५१ ॥ रथियोंसे रथी हाथियोंसे हाथी घुडसवारोंसे घुडसवार पैदलसे पैदलोंको मार-कर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ५२ ॥ सम्पूर्ण दानवोंकी सेनाको शीतसे हनन करने लगे कि जैसे वृक्षोंको वायु नष्ट करता है, महातेजस्वी चंद्रमा दान-वोंकी सेनाको ऐसे नष्ट करने लगा ॥ ५३ ॥ और चंद्रमाका अस्त्र शत्रुओंके रुधिरसे ऐसे भीज गया कि जैसे क्रोधसे पशुओंको मारता हुआ महादे-

पोथयद्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि वै प्रभुः ॥ दैत्येषु विचरञ्छ्रीमान्युगान्ते कालवद्बली ॥ १५० ॥ सोऽमर्षाद्रथजालानि उरुवेगेन चन्द्रमाः ॥ ददाह दानवान्सर्वान्दावाग्निरिव चोदितः ॥ ५१ ॥ मृदन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ सादिनश्चाश्वपृ-ष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः ॥ ५२ ॥ शीतेन व्यधमत्सर्वान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ॥ चन्द्रमाः सुमहातेजा दानवानां महाचमूम् ॥ ५३ ॥ तदस्त्रमभवत्तस्य प्रदिग्धं शत्रुशोणितैः ॥ पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ५४ ॥ युगान्तकोपमः श्रीमान् दैत्येषु व्यचरद्बली ॥ आचार्यमहतीं सेनां प्राद्रवन्तीं पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ चन्द्र मृत्युमिवायान्तं दृष्ट्वा योधा विसिष्मियुः ॥ यतो यतः प्रक्षिपति शिशिरास्त्रं तमोनुदः ॥ ५६ ॥ ततस्ततो व्यशीर्यन्त दैत्यसैन्यानि संयुगे ॥ व्यदारयत्स सैन्यानि स्वबलेनाभिसं-वृतः ॥ ५७ ॥ ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यनिवान्तकम् ॥ त तथा भीमकर्माणं गृहीतास्त्रं महाहवे ॥ ५८ ॥

वका अस्त्र हो ॥ ५४ ॥ और वार २ पलायन की हुई देवताओंकी सेनाको निवारण कर कालप्रभुके तुल्य महाबली चंद्रमा दैत्योंकी सेनामें विचरने लगा ॥ ५५ ॥ मृत्युकी नांई आता हुआ चंद्रमाको देख योधा विस्मयको प्राप्त हो गये और अंधकारको दूर करनेवाला शिशिरास्त्रको चंद्रमा जहां २ प्रेरणा करने लगा ॥ ५६ ॥ तहां २ सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना नष्ट होने लगी; इस प्रकार अपनी सेनासे युक्त हुआ दैत्योंकी सेनाको विदारण करने लगा ॥ ५७ ॥ मुखको फाडे कालकी नांई दैत्योंकी सेनाको ग्रसते हुए और भयानक कर्म करते हुए अस्त्रोंको धारण किये महायुद्धमें ॥ ५८ ॥

आते हुए चंद्रमाको देख वे दैत्योंमें चंद्रमा और भास्कररूप तालवृक्षके प्रमाणमात्र धनुषोंको आकर्षण करतेहुए ॥ ५९ ॥ महाबली दो योद्धा बाणोंसे चंद्रमाको वर्षा करते हुए महामेघके समान आच्छादन करते और सुरासुरोंके धनुष्योंको खैंचनेसे॥१६०॥दशों दिशामें बडा शब्द हुआ, हस्तियोंके गर्जने और घोडोंके हींसनेसे ॥६१॥ भेरी शंख मृदंगके बजनेसे आकाशमें महातुमुल शब्द हुआ; युद्ध तथा जय और यशकी इच्छा करते हुए योधा ॥ ६२ ॥ परस्पर गर्जने लगे जैसे गोशालाओंमें गोवृष; और पैने बाणोंसे छेदन किये हुए दोनों सेनाओंके शिरोंकी ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा शशांकमायान्तं दैत्याभं चन्द्रभास्करौ ॥ तालमात्राणि चापानि कर्षमाणौ महाबलौ ॥ ५९ ॥ छादयेतां शरैश्चन्द्रं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ अथ विस्फार्यमाणानां कार्मुकानां सुरासुरैः ॥ १६० ॥ अभवत्सुमहाशब्दो दिशः सन्नादयन्निव ॥ विनर्दद्भिर्महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ॥ ६१ ॥ भेरीशंखनिनादैश्च तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ युयुत्सवस्ते संरब्धा जययुद्धा यशस्विनः ॥ ६२ ॥ अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महावृषाः ॥ शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ॥६३॥ अश्मवृष्टिरिवाकाशेह्यभवत्सेनयोस्तयोः ॥ कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजांसि च ॥ ६४ ॥ पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्द्धनि विशिखैर्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ॥ ६५ ॥ सहस्राभरणैश्चान्यैर्विच्छिन्नैरुधिरोक्षितैः ॥ कवचैरावृतैर्गात्रैरुरुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ ६६ ॥ मुखैश्च चन्द्रसंकाशैस्तप्तकुण्डलभूषणैः ॥ गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैः समन्ततः ॥ ६७ ॥ आसीत्सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा ॥ चापमेघाश्च विपुलाः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनः ॥ वाहनानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥६८॥

आकाशमें पत्थरके समान वर्षा होने लगी; और कुंडल और पगडियोंको धारण करे हुए सुवर्णकी मालासे युक्त॥६४॥शिर रणमें पडे हुए दीखने लगे; और बाणोंसे छेदित शरीर और धनुषोंसे युक्त भुजा ॥ ६५ ॥ और रुधिरमें भीगे हुए सहस्रों भूषण और कवचोंसे युक्त शरीर और जांघ तथा चंदनसे प्रकाशमान ॥ ६६ ॥ सुवर्णके कुंडलसे शोभित मुखोंसे और हस्ती मनुष्य घोडोंके शरीरोंसे ॥ ६७ ॥ भूमि एक मुहूर्तमें भरपूर हो

गई, धनुषरूपी घटाको शस्त्रोंरूपी विजली और वाहनोंका शब्द मेघके समान होने लगा ॥ ६८ ॥ इस प्रकार युद्धमें देवता और असुरोंका वह रुधिरको बहानेवाला कठिन संग्राम होने लगा ॥१६९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥ वैशंपायन बोले; तुमुल और रोमहर्षोंको करनेवाले भयानक महायुद्धमें देवता और दानव क्रोध हुए बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥ सवार हत होनेसे हस्ती बाणोंसे पीडित हुए बडे शब्द करते तथा घोडे दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥ २ ॥ देवता और दानवोंके हाथी घोडे उस युद्धमें

स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः ॥ शोणितोदकः प्रावर्त्तत सुराणां च दानवानां च संयुगे ॥ १६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्मिन्महाहवे रौद्रे तुमुले लोमहर्षणे ॥ ववर्षुः शरवर्षाणि संरब्धा देवदानवाः ॥ १ ॥ व्याक्रोशन्त गजास्तत्र शरघातप्रपीडिताः ॥ अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ २ ॥ उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरवर्षप्रपीडिताः ॥ देवानां दानवानां च गजाश्वरथिनां रणे ॥ ३ ॥ समरे तत्र शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ धनुषां तलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४ ॥ शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः ॥ निजघ्नुर्महतीं सेनामन्योन्यस्य परंतप ॥ ५ ॥ बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च संयुगे ॥ राशयस्तत्र दृश्यन्ते देवदैत्यसमागमे ॥ ६ ॥ अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां च वरूथिनाम् ॥ नान्तं समभिगच्छन्ति निहतानां सुरासुरैः ॥ ७ ॥ गदाभिरसिभिः प्रासैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ योधास्तत्राभ्यहन्यन्त हस्त्यश्वं चामितं बहु ॥ ८ ॥

बाणोंकी वर्षासे पीडित हुए ऊपरको उछल २ कर पृथ्वीमें गिरते थे ॥ ३ ॥ रथपर चढे हुए देवता और दानवोंके ज्याके शब्दोंसे रणमें कोई जाना नहीं जाता था ॥ ४ ॥बाण शक्ति गदा और खड्गोंसे अत्यन्त तेजवाले शूर वीर दोनों सेनाओंको हनन करने लगे ॥ ५ ॥ बहुतोंके भुजा और उत्तम अंग तथा धनुषोंके समूह पडे हुए देवता और दानवोंके युद्धमें दीखने लगे ॥ ६ ॥ देवता दैत्योंके बाणोंसे मरे हुए घोडा हस्ती और रथोंका अंत नहीं मिला था ॥ ७ ॥ गदा असि प्रास बाणोंसे योधा औरभी बहुतसे हस्ती और घोडोंको मारने लगे ॥ ८ ॥

केशरूपी शैवाल और दूबवाली; बडे वेगके तरंगोंवाली सेनाओंके मध्यमें रुधिरकी घोररूप नदी वहने लगी ॥९॥ और रणमें दानवोंसे हनन किये हुए देवताओंका महा हाहाकार शब्द होने लगा ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले; भयको देनेवाला महाघोररूप विकृत रौद्र युद्ध देवताओंका दैत्योंके संग होने लगा ॥ ११ ॥ लाल नेत्र किये परम धनुषको धारण किये विष्वक्सेन नामवाले साध्यदेवताको रणमें विरोचनने हनन किया ॥१२॥ तब विरोचनको आता देख देवताओंसे आवृत महाबली विष्वक्सेनने तीन बाण धनुषपर चढाय उसकी छातीमें मारे ॥ १३ ॥ और विष्वक्सेनके बाणोंसे अंकुशसे

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघा तरङ्गिणी ॥ तदा मध्ये तु सैन्यानां केशशैवलशाड्वला ॥ ९ ॥ हाहाकारो महाशब्दो योधानाम-भवत्तदा ॥ दानवैर्हन्यमानानां त्रिदशानां महारणे ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तेषां तदभवद्युद्धं देवानामसुरैः सह ॥ बिभी-षणं महारौद्रं विकृतं भीमदर्शनम् ॥ ११ ॥ विरोचनस्तु तत्रैव विष्वक्सेनं महाहवे ॥ जघान रुधिराभाक्षं साध्यं परमधन्वि-नम् ॥ १२ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य विष्वक्सेनः सुरैर्वृतः ॥ अमेयात्मा सुरश्रेष्ठः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ १३ ॥ साध्यस्य बाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ विरोचनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवाध्वरे ॥ १४ ॥ स कार्मुकविनिर्मुक्तैः शरैर्दानवसत्तमः ॥ विष्वक्सेनं बिभेदाजौ दीप्तैः सप्तभिराशुगैः ॥ १५ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता दानवेन सुरोत्तमः ॥ मूर्च्छामभिजगामाशु ध्वजं चाप्याश्रयत्प्रभुः ॥ १६ ॥ ततः स पुनराश्वास्य साध्यो युद्धे मनो दधे ॥ विस्फार्य च महाचापं दैत्यमध्ये व्यवस्थितः ॥१७॥ विरोचनस्तु बलवानभ्ययुध्यत सर्वशः ॥ क्षोभयन्सुरसैन्यानि समन्तान्निशितैः शरैः ॥ १८ ॥

हाथीके समान हनन किया हुआ विरोचन क्रोधसे यज्ञमें अग्निके समान जल उठा ॥ १४ ॥ तब प्रकाशमान वेगवाले सात बाणोंको विरोचनने अपने धनुषपर चढाय युद्धमें विष्वक्सेनको सात बाणोंसे मारा॥१५॥वह बलवान् विरोचनसे अत्यन्त विद्ध होकर विष्वक्सेन मूर्च्छाको प्राप्त हो ध्वजाके आश्रय स्थित हुआ ॥ १६ ॥ फिर सावधान हो धनुषको टंकार दे फिर दैत्योंके मध्यमें स्थित हुआ ॥ १७ ॥ और वह विरोचन तीक्ष्ण बाणोंसे देव-

ताओंकी सेनाको क्षोभित करता हुआ सब ओर युद्ध करने लगा॥ १८॥ युद्ध करते हुए विरोचन दैत्यका युद्धमें गर्जते हुए मेघके समान बडा शब्द सुनाई आने लगा ॥ १९ ॥ तब वह विरोचन देवताओंकी सेनाको हनन करता हुआ ऐसे गर्जने लगा कि जिस प्रकार ओलोंकी वर्षा करता हुआ विजलियोंसहित चंड मेघ गर्जता हो ॥ २० ॥ युद्धमें अस्त्रोंको उठाय बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाको युद्धमें भगाने लगा ॥ २१ ॥ रथोंपैसे रथी घोडोंपैसे सवार; और प्यादे ये सम्पूर्ण विरोचनके भयसे भाग गये ॥ २२ ॥ वज्रके शब्दकी तुल्य धनुषके शब्दको सुन भयसे रणमें

ततस्तस्यासुरेन्द्रस्य युध्यमानस्य संयुगे ॥ श्रूयते तुमुलः शब्दो जीमूतस्येव गर्जतः ॥१९॥ जगर्ज्ज च महाघोषो विनिघ्नन्देववाहिनीम् ॥ चण्डवेगाश्मवर्षी च सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥२०॥ दिशो विद्रावयामास शरवर्षेण दानवः ॥ सर्वसैन्यानि देवानामुद्यतास्त्रो महाहवे ॥२१॥ ते प्राद्रवन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥२२॥ श्रुत्वा कार्मुकनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ सर्वसैन्यानि भीतानि विग्यलीयन्त संयुगे ॥२३॥ विरोचनभयत्रस्त रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ पदातीनां ययुः संघा यत्र देवः शचीपतिः ॥ २४ ॥ विष्वक्सेनस्य साध्यस्य सर्वतः सुमहाबलः ॥ पादे रक्षःसहस्राणि निजघान चतुर्द्दश ॥ २५ ॥ अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः ॥ पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् प्रत्यदृश्यत ॥ २६ ॥ वितत्य श्येनवत्पक्षौ सर्वतः स वरूथिनीम् ॥ भित्त्वा च्छित्त्वा महाबाहुः शिरांस्याजौ ह्यकृन्तत ॥ २७ ॥ सादिनश्च पदातीश्च हतशेषा रथास्तथा ॥ विष्वक्सेनेन सहिता विरोचनमथाद्रवन् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण देवताओंकी सेना छिप गई ॥ २३ ॥ विरोचनके भयसे डरते हुए रथी और प्यादेके समूह इन्द्रके समीप प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ उस समय उस महाबली विरोचनने विष्वक्सेनके चौदह सहस्र पीठकी रक्षा करनेवालोंको हनन कर डाला ॥ २५ ॥ घोडे, हाथी, रथ, प्यादेके समूहमें वह विरोचन हनन करता हुआ दीखने लगा॥ २६ ॥ और वह विरोचन सिकारीके समान पंखोंको फैलाता हुआ देवताओंकी सेनाको मारता २ शिरोंको छेदन करने लगा ॥ २७ ॥ घोडोंके सवार और प्यादे मरनेसे बचे हुए रथी येसम्पूर्ण विष्वक्सेनके संग हो विरोचनके सन्मुख हुए ॥ २८ ॥

खड्ग ढाल गदा शक्ति परिघ प्रास तोमर इन हथियारोंसे हनन करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥२९॥ वह विरोचन फिर अपनी तलवारको ग्रहण कर बडे वेगसे रथियोंका शिर और धनुषको काटने लगा॥३०॥ रथ हस्ती घोडोंके समूहमें स्थित और शत्रुओंको मर्दन करनेवाला विरोचन इक्कीस प्रकारके मार्गोंसे विचरने लगा॥३१॥ और भ्रांत उद्भ्रांत आविद्ध आप्लुत संपात समुदीर्ण इन्होंको दिखाता हुआ॥३२॥ कोई महात्मा विरोचनकी तीक्ष्ण तलवारसे भग्न कवचोंवाले देवता गर्जते हुए और कितने एक प्राणोंसे रहित हो पृथ्वीमें गिरे॥३३॥ इस प्रकार महात्मा बलिसे छेदन किये

तेऽसिचर्मगदाशक्तिपरिघप्रासतोमरैः ॥ तमेकमभ्यधावन्तं सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥२९॥ ततः सोऽसिं समुद्यम्य जवमास्थाय दानवः॥ चकर्त रथिनामाजौ शिरांसि च धनूंषि च ॥३०॥ रथनागाश्ववृन्देषु बलवानरिसूदनः ॥ विरोचनश्चरन्मार्गान्प्रकारानेकविंशतिम् ॥३१॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं युगम् ॥ संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः॥३२॥ केचिद्वरासिना रुग्णा दानवेन महात्मना॥ विनेदुश्छिन्नवर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥३३॥ छिन्नपृष्ठा हतारोहा दानवेन महात्मना ॥ विद्रुताः स्वान्यनीकानि जघ्नुस्त्रिदशवारणाः॥३४॥ निपेतुरुर्व्यामाकाशे निकृत्ता दृढधन्विना ॥ विविधास्तोमराश्चापा महामात्रशिरांसि च ॥३५॥ प्रतीपमाहरन्नागानश्वांश्च दृढविक्रमान् ॥ आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥३६॥ सूतांश्चिच्छेद खड्गेन रथानपि च दानवः ॥ मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥३७॥ मार्गांश्चरति वै चित्रान् विस्मयन्तस्ततोऽसुरान् ॥ निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत्॥३८॥

हुए वाहनोंसे रहित किये देवताओंके हस्ती उलटे दौडते हुए अपनी सेनाको मारने लगे ॥३४॥ दृढ धनुषधारी विरोचनके छेदन किये हुए अनेक प्रकारके तोमर धनुष पीलवानोंके शिर आकाशसे भूमिमें गिरने लगे ॥३५॥ और वह विरोचन दृढविक्रमी हाथी और घोडोंको मारता हुआ कितनेक रथियोंका तिरस्कार कर ॥३६॥ और कूदके अपने खड्गसे सूत और रथोंको छेदन करने लगा, वारंवार कूदता हुआ धावमान होता हुआ यशस्वियोंके ॥ ३७ ॥ चित्र विचित्र मार्गोंको विचरने लगा; ऐसे विरोचनको देख सम्पूर्ण सुर विस्मयको प्राप्त हो गये किसीको पैरसे मारकर किसीको

एक दूसरेके ऊपर दे मारा॥३८॥किसीको खड्ग से छेदन कर किसीको शब्दसे भयभीत किया;और कोई ऊरुस्तंभसे गृहीत हुए विरोचनको देख प्राणोंको त्याग पृथ्वीपर गिरे॥३९॥ और रथोंके समूह घोडे हस्ती और देवतोंके नाश होनेमें ॥ ४० ॥ दैत्योंमें श्रेष्ठ जंभ दैत्य अंशदेवतासे वृषके समान युद्ध करने लगा ॥ ४१ ॥ पर्वतके सम रूपवाला और मत्तहस्तीके तुल्य पराक्रमी जंभ दैत्यऔर वेगवन्त बहुत बाणोंसे अंशदेवताको वेधन करने लगा ॥४२॥ रथोंसे सहित देवताओंकी सहस्रोंही सेना जंभके बाणरूपी मार्गमें प्राप्त हो चलनेको समर्थ न हुई ॥ ४३ ॥ और सम्पूर्ण

खड्गेन चान्यांश्चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन्॥ ऊरुस्तम्भगृहीताश्च निपतन्त्यपरे भुवि॥ अपरे दैत्यमालोक्य भयात्प्राणानवासृजन् ॥ ३९ ॥ तस्मिस्तथा वर्तमाने युद्धे महति दारुणे॥ रथौघगजपत्तीनां सुराणां च महाक्षये ॥ ४० ॥ कुजम्भो दानवश्रेष्ठो ह्यंशुमादित्यमाहवे॥ योधयामास समरे वृषः प्रतिवृषं यथा ॥४१॥ जघानाचलसंकाशो मत्तवारणविक्रमः ॥ स्फुरद्भिर्निशितैस्तीक्ष्णशरैर्बहुभिराशुगैः ॥ ४२ ॥ देवसैन्यसहस्राणि सरथानि महाहवे॥ तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥४३॥ प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः॥ देवनामजयः क्रूरः प्रत्यपद्यत दारुणः ॥ ४४ ॥ अंशस्तु दानवेन्द्रस्य जघानोत्तमविक्रमः ॥ अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ४५॥ आपतन्तं गजानीकं कुजम्भो वीक्ष्य दानवः॥ गदापाणिरवारोहद्रथोपस्थादरिंदमः ॥४६॥ अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ अभ्यद्रवद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः॥ ४७ ॥ स गजान् गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली॥ कुजम्भो दानवश्रेष्ठो गदापाणिर्बलाधिकः ॥ ४८ ॥

प्राणी दुःखसे शब्द करने लगे; और दिशा अंधकारयुक्त हो गई; और देवताओंकी बडी दारुण पराजय दीखने लगी ॥४४॥ तब देवताओंमें श्रेष्ठ उत्तम पराक्रमी अंशदेवता जंभदैत्यकी बडी वेगवाली दश सहस्र हस्तियोंकी सेनाको मारने लगा॥४५॥ और शत्रुओंको दमन करनेवाला कुजंभ दैत्य आती हुई हस्तियोंकी सेनाको देख और हाथमें गदाधारण कर अपने रथसे नीचे उतरकर स्थित हुआ॥४६॥ पर्वतके तुल्य सारवाली बडी गदाको ग्रहण कर हस्तियोंकी सेनामें मुख फैलाये कालके समान दौडा॥४७॥और दानवोंमें श्रेष्ठ वह महाबली कुजंभ दैत्य अपनी गदासे हस्तियोंको हनन

करता हुआ रणमें दंडको हाथमें लिये विचरने लगा॥४८॥ दानवोंमें श्रेष्ठ महाबली कुजंभ हस्तियोंके दांत और मस्तकोंको गिन गिनकर भेदन करता हुआ॥४९॥ टूटे दांतोंवाले भेदित मस्तकोंवाले अनेक हस्ती कुजंभ दैत्यके भेदित किये हुए दशों दिशाओंमें फिरनेलगे ॥५०॥ और कुजंभ दैत्यके जो घोर पराक्रमी मंत्री थे वे तीक्ष्ण बाणोंकीवर्षा कर गजयोधाओंको मारने लगे॥५१॥क्षुर क्षुरप्र भाले दात्र और अंजलिक हथियारोंसे कुजंभ दैत्य देवताओंके अंगोंको छेदन करने लगा॥५२॥और गिरते हुए शिरोंकी वर्षासे आकाश ओलोंकी वर्षाके समान पूर्ण हो गया और

विशीर्णदन्तांश्च बहून् भिन्नकुम्भांश्च दारुणान् ॥ अकरोद्दानवश्रेष्ठ उद्दिश्योद्दिश्य तान्बली ॥४९॥ विशीर्णदन्ता बहवो भिन्नकुम्भास्तथा परे ॥ कुजम्भेनार्दिता नागा व्यद्रवन्त दिशो दश ॥५०॥ कुजम्भस्य च येऽमात्या दानवा घोरविक्रमाः ॥ नाराचैर्विविधैस्तीक्ष्णैरपास्तगजयोधिनः ॥५१॥ क्षुरैः क्षु प्रैर्भल्लैश्च दात्रैरञ्जलिकैः शितैः ॥ चिच्छेद चोत्तमाङ्गानि कुजम्भो दानवोत्तमः ॥५२॥ शिरोभिः प्रपतद्भिस्तु गगनं प्रत्यपूर्यत ॥ अश्मवृष्टिरिवाकाशे बहुभिश्च सहांकुशैः ॥५३॥ कृत्तोत्तमाङ्गा स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः ॥ अदृश्यन्त महाराज ताला विशिरसो यथा ॥५४॥ आपतन्तं महानागमंशस्यासुरसत्तमः ॥ जघानैकेषुणा क्रुद्धस्ततः स विमुखोऽभवत्॥५५॥ विगाह्येवं गजानीकं कुजम्भो दानवोत्तमः ॥ विनिघ्नन्प्रवरान्सैन्यान्गदया बलिनां वरः ॥ ५६ ॥ एकप्रहाराभिहतान्कुजम्भेन महागजान् ॥ अपश्यन्त सुराः सर्वे पर्वतानिव पातितान् ॥५७॥ कुजम्भस्य च मार्गेषु विशीर्णास्ते महागजाः ॥ वज्राहता इवेन्द्रेण विशीर्णा इव पर्वताः ॥ ५८ ॥

महाअंकुशोंसे हत ॥५३॥ हस्तियोंपर बैठे हुए देवता शिरोंसे रहित ऐसे दीखने लगे कि जैसे शिरोंविना तालके वृक्ष ॥ ५४ ॥ सन्मुख आते हुए मदोन्मत्त अंशदेवताके हस्तीको जंभ दैत्यने एक बाणसेही ऐसा वेधन किया कि वह हस्ती पीछे फिर गया॥५५॥दानवोंमें श्रेष्ठ गदायुद्धका जाननेवाला कुजंभ दैत्यहस्तियोंकी सेनाको मर्दनकर ओर गदासे देवताओंक सेनापतियोंके हननकरने लगा॥५६॥कुजंभके एकही प्रहारसे मारे हुए पर्वतके समान पडे हुए हस्तियोंको सम्पूर्ण देवतादेखने लगे॥५७॥कुजंभके आगे हस्ती ऐसे वेधित हुए कि जैसे इन्द्रके वज्रसे पर्वत विदीर्ण हो॥५८॥

और देवता उसको मूर्तिमान् कालके समान देखने लगे और सिंहसे जैसे मृग डरते हैं इस प्रकार उससे हस्ती डरने लगे ॥ ५९ ॥ हस्तियोंके रुधिरसे भीगी हुई लोहेकी गदाको धारण करे मुखको फाडे कुजंभ दैत्य क्रोधकर बडा भयानक रूप धारण कर गर्जने लगा ॥ ६० ॥ प्रलयकालमें प्रजाके नाशके अर्थ कालके समान क्रोधित कुजंभ अपनी गदासे रणमें क्रीडा करने लगा ॥ ६१ ॥ गोपालके समान दंडको धारण किये हस्तियोंको दौडाता और बडे पराक्रमी दंडको उठाये ॥६२॥ कुजंभ दैत्यको सम्पूर्ण देवता क्रोधित कालके समान देखने

अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे मूर्तिमन्तमिवान्तकम् ॥ गजास्तथा व्यदीर्यन्त सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ५९ ॥ स बभौ तां गदां बिभ्रत्प्रोक्षितां गजशोणितैः ॥ व्यादितास्यो नदत्क्रुद्धो रौद्ररूपो भयानकः ॥ ६० ॥ यथा हि भगवान् क्रुद्धः प्रजानां संक्षये पुरा ॥ विक्रीडमानो गदया रणमध्ये महासुरः ॥६१॥ गोपाल इव दण्डेन कालयन्स महागजान् ॥ क्रुद्धं कालमिवाकाले दण्डमुद्यम्य दानवम् ॥६२॥ अपश्यन्त सुराः सर्वे कुजम्भं भीमविक्रमम् ॥ हतारोहास्तु तत्रान्ये प्रभिन्ना वारणोत्तमाः ॥ ६३ ॥ ते हन्यमाना गदया बाणैश्च भृशविक्षताः ॥ असहन्तः कुजम्भस्य गदावेगं महाहवे ॥६४॥ स्वान्यनीकानि गृह्णन्तः प्राद्रवन्तः महागजा ॥ महावात इवाभ्राणि विधमन्गदया गजान् ॥ अतिष्ठत्समरे दैत्यः कालः संवर्त्तको यथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कुजम्भोत्कर्षवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि देवराजस्य शासनात् ॥ अभ्यद्रवन्त दितिजान्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥१॥ तं बलौघमपर्यन्तं देवानां सुदुरासदम् ॥ रथनागाश्वकलिलं शंखदुन्दुभिनिस्वनम् ॥२॥

लगे; आरोही और हाथीं अनेक नष्ट हो गये ॥६३॥ वे गदासे हन्यमान और बाणोंसे महापीडित हो कुजंभके वेगको संग्राममें सहनेको समर्थ न हुए ॥६४॥ अपनी सेनाको मारते हुए हाथी दौडे; वह गदासे हाथियोंको ऐसे भगाने लगा जैसे पवन मेघको भगाती है वह दैत्य रणमें कालके समान स्थित हुआ ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन बोले, तब सम्पूर्ण देवताओंकी सेना बडे भयानक शब्दोंको करती हुई और दैत्योंके सन्मुख इन्द्रकी आज्ञासे चली ॥ १ ॥ असह्यरथ, हस्ती घोडेसे व्याप्त शंख

नक्कारोंसे शब्दायमान वेगसे आती हुई देवताओंकी अपार और दुस्सह सेना दीखी॥ २॥ धूलिसे सब ओर व्याप्त दुष्पार सेनाको आता देख वह सैन्य-सागर अक्षोभ्य वेलावाले समुद्रके समान दीखी॥ ३॥ आश्चर्यरूप अंतरहित बडी अद्भुत रथ हस्ती घोडोंसे व्याप्त देवताओंकी उदीर्ण महासेनाको॥ ४॥ रोक वह महाबली कुजंभ रणमें सुमेरु पर्वतके समान स्थित हुआ ॥ ५ ॥ और कुजंभसे गदाद्वारा निवारण की हुई देवताओंकी सेना विह्वल और निरुद्यम हो गई ॥ ६॥ उस दारुण संग्रामके वर्तमान होनेमें दानवोंका अधिपति असिलोमा ॥ ७॥ और देवताओंकी सेनाको धूमकेतुके समान उदय

आपतन्तं सुदुष्पारं रजसा सर्वतो वृतम् ॥ सैन्यसागरमक्षोभ्यं वेलेव मकरालयम्॥ ३॥ तदाश्चर्यमपश्यन्त अश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ॥ उदीर्णां पृतनां सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥ आचार्यः समरेऽतिष्ठत्कुजम्भस्तरसा बली ॥ सैन्यार्णवं देवतानां गिरिर्मेरुरिवाचलः॥ ५ ॥ अनीकिनीं कुजम्भस्तु गदया स न्यवारयत् ॥ सा तथा वारिता सेना विह्वलाभून्निरुद्यमा ॥ ६ ॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने संप्रहारे सुदारुणे ॥ असिलोमा तु बलवान्दानवो दानवाधिपः ॥ ७॥ देवसैन्यस्य सर्वस्य धूमकेतुरिवोत्थितः॥ तमांस्यर्क इवापोह्यत्सुरसैन्यानि संयुगे ॥ ८ ॥ सहस्ररश्मिप्रतिमो दानवस्य रथोत्तमः ॥ शरैर्मेघ इवावर्षद्देवानीकं प्रतापवान् ॥ ९॥ शरौघरश्मिभिर्दीप्तैः प्रतप्तो घोरविक्रमः ॥ रौद्रः क्रूरो दुराधर्षो दुरापो ध्वजिनीमुखे ॥ १० ॥ युध्यते दैवतैः सार्द्धं ग्रसमान इव प्रभुः ॥ उग्रेषुरुग्रवदनः समारुह्य महागजम् ॥ ११॥ सुराणामुत्तमाङ्गानि प्रचिनोति महाबलः॥ ग्रसन्दैवतसैन्यानि शरदंष्ट्रः प्रतापवन्॥ १२॥

होता हुआ महाक्रोध कर दैत्य देवताओंकी सेनाको ऐसे नष्ट करने लगा कि जैसे अंधकारको सूर्य नष्ट करता है ॥ ८ ॥ सहस्र सूर्योंकी तुल्य कांतिवाला मायारूपी प्रतापी असिलोमा दैत्यका रथ देवताओंकी सेनापर मेघके समान शरोंकी वर्षा करने लगा॥ ९॥ बाणरूपी रश्मियोंसे प्रदीप्त प्रतप्त घोर दर्शनवाला रुद्ररूप सेनामें वह दुःखसे निवारण होनेवाला क्रूर॥ १०॥ कालके समान ग्रसता हुआ असिलोमा देवतोंके संग युद्ध करने लगा भयानक मुखवाले हाथीपर चढ महान् हस्तियोंका मर्दन करने लगा ॥ ११ ॥ महाबली असिलोमा दैत्य देवताओंके एक शिरका ऊंचा ढेर बनाने लगा तथा

देवताओंको ग्रसता हुआ शरोंकेसी डाढोंवाली महाप्रतापी॥१२॥ तलवारके समान जीभवाला धनुषके समान मुख फाडे फरसेको धारण किये मृदंगके तुल्य शब्द करता हुआ ॥१३॥ और दानवोंमें व्याघ्ररूप असिलोमा रणमें स्थित हुआ, मौर्वीका शब्द मेघरूप और बडा महान् हुआ और सेनाका समूह घोर समुद्ररूप हुआ ॥ १४ ॥ धनुषकी ज्याका कंपित होना विजलीरूप महामेघके समान चाप और बाणरूपी घोर सागर और भुजारूपी घोर ग्राह ॥१५॥ कार्मुकरूपी तरंगें बाणोंका आवर्त तलावरूप गदा तलवार मच्छरूप धनुषकी ज्या तटरूप ॥१६॥ और पदाति मीनरूपमें इस प्रकार महागर्जता हुआ सेनारूपी समुद्रमें घोडे हस्ती प्यादे रथ शूर वीर बहुत महारथोंको ॥ १७ ॥ वह दानवेश्वर असिलोमा युद्धमें अपने शत्रुओंको

असिजिह्वश्चक्रहस्तश्चापव्यात्ताननोऽसुरः ॥ परश्वधनखः श्रीमान्मृदङ्गापूरितध्वनिः ॥१३॥ तिष्ठते दानवश्रेष्ठः संयुगे व्याघ्रवद्बली॥ मौर्वीघोषः स्तनयित्नुः पृषत्कः प्रथितो महान् ॥ १४ ॥ धनुर्विद्युद्गणश्चापो महामेघ इवापरः ॥ इष्वस्त्रसागरो घोरो बाहुग्राहो दुरासदः ॥१५॥ कार्मुकोर्मितरङ्गौघैर्बाणावर्तमहाह्रदः ॥ मदासिमकरो रौद्रो ज्यावेलः शिक्षयोद्धतः ॥१६॥ पदातिमीनः सुमहान् गर्जितोत्कृष्टघोषवान् ॥ हयान् गजान् पदातींश्च रथांश्च सहसा बहून् ॥१७॥ न्यमज्जयत समरे परवीरान्महारथान् ॥ आप्लावयत्स देवौघान् दारुणो दानवेश्वरः॥१८॥प्रावर्तत युधि श्रीमान् युधि श्रेष्ठो युधिष्ठिरः॥अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ॥१९॥ सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ मध्यंदिनगतं सूर्यं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥२०॥ न शेकुः सर्वभूतानि दानवं प्रसमीक्षितुम् ॥ यथा प्ररूढं घर्मान्ते दहेत्कक्षं हुताशनः ॥२१॥ तथासुरवरो दैत्यो दहति स्म सुतेजसा ॥ देवानां दानवानां च बलं मर्दति दारुणम् ॥२२॥ विरूढमभवत्सर्वमाकुलं च समन्ततः ॥ शूराश्च ते बलोदग्रा हस्त्यश्वरथधूर्गताः ॥ २३ ॥

डुबोता हुआ, इस प्रकार दारुण दैत्यने देवसमूहोंको प्लावित किया ॥ १८ ॥ श्रीमान् दैत्योंमें श्रेष्ठ महाबली असिलोमाको सम्पूर्ण देवता शुद्ध सुवर्णकी तुल्य कांतिवाले कवचको धारण किये युद्ध करते ॥ १९ ॥ अग्निके तुल्य जलते हुए मध्याह्नकालके सूर्यके समान तेजसे युक्त न देख सके ॥ २० ॥ तब असिलोमा दैत्यको सम्पूर्ण सेना देखनेको समर्थ नहीं हुई; और ग्रीष्मऋतुमें बढा हुआ अग्नि जैसे फूसको जलाता है ॥ २१ ॥ तैसे ही देवताओंको असिलोमा अपने तेजसे दहनं करने लगा ॥ २२ ॥ और देवता और दानवोंकी

सेना मर्दन करने लगा,तब सेना भयानक शब्द करने लगी; और सम्पूर्ण शूर वीर व्याकुल और मूढ हो गये;हस्ती रथ घोडेपर स्थित हुए ॥ २३ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिमें स्थित हो वे शूर वीर रणको नहीं त्यागते हुए, वह व्याकुलरूप और रोमोंको उपजानेवाला दारुण युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ रुधिरकी नदी और कीच देवता और दानवोंके महाघोर युद्धमें हो गई; और भयरूपी ग्राहसे पीडित हुए सम्पूर्ण दिशाको न जान सके॥२५॥अनेक प्रकारसे किये हुए दानवोंके शस्त्राघातको न जानकर महारणमें मूढ चित्त और व्याकुल हुए परस्पर हनन करने लगे शस्त्रोंके तेजसे विमूढ हुए अपने और परायोंको

आर्यां बुद्धिं समास्थाय न त्यजन्ति महारणम् ॥ तदुत्पिञ्जलकं युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥२४॥ देवदानवयोः संख्ये रुधिरस्रावकर्दमम्॥ न दिशः प्रत्यजानन्त भयग्राहनिपीडिताः ॥२५॥ शस्त्रपातांश्च विविधान् दानवानां महारणे ॥अन्योन्यं मूढचित्तास्ते निजघ्नुर्व्या-कुलीकृताः स्वान्परान्नाभिजानन्ति विमूढाः शस्त्रपाणयः ॥ २६ ॥ शिरोरुहेषु संगृह्य कश्चिच्छूरस्य संयुगे शूरश्छिनत्ति मूर्द्धानं संदष्टौष्ठपुटाननम् ॥२७॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव वज्रकल्पैः सदारुणैः॥ प्रहरन्ति रणे वीरा आत्तशस्त्राः परस्परम् ॥२८॥ योधप्राणहरे रौद्रे स्वर्गद्वारे नृपावृते॥संकुले तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ॥२९॥ हयो हयं गजो नागं वीरो वीरं महाहवे ॥ अभ्यद्रवज्जिघांसन्तो ह्यसमञ्जसमाहवे ॥ असुराश्च सुराश्चैव विक्रमाढ्या महारथाः ॥३०॥ जुहुवुः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ॥३१॥ हस्तैः पादैश्च युध्यन्ते दानवास्त्रिदशैः सह ॥ हरिस्तु निशितं भल्लं प्रेषयामास संयुगे ॥ ३२ ॥ स तस्य धनुषः कोटिं छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३३ ॥

नहीं जानते हुए॥२६॥कोईक शूर वीर होठोंको दाबते हुए किसी शूरवीरके केशोंको ग्रहण कर युद्धमें शिरको छेदन करने लगे॥२७॥और शस्त्रोंको त्याग वज्रके तुल्य महादारुण भुजा और मुष्टियोंसे रणमें प्रहार करने लगे॥२८॥ इस प्रकार संकुल तुमुल भयके उपजानेवाले महायुद्धमें ॥२९॥ घोडे घोडोंको हस्ती हस्तियोंको शूरवीर शूरवीरोंको बडे वेगसे भगाने लगे इस प्रकार असुर और देवता महापराक्रमी और महारथी ॥३०॥ प्राणोंको त्यागते हुए परस्पर हनन करने लगे; खुले केशोंवाले कवचोंसे और रथोंसे रहित छिन्न धनुषोंवाले ॥ ३१ ॥ दानव देवताओंके संग हाथ और पैरोंसे युद्ध करते हुए;तब हरिने अपने पैने भाले युद्धमें फेंके॥३२॥वह भाला उसके धनुषकी कोटीको छेदन कर पृथ्वीमें गिरा, फिर पैनी धारों

वाले सौ बाण ॥३३॥ असिलोमाके ऊपर छोडे और छोडे हुए ॥३४॥ वे बाण पवनके वेगसे बडे वेगवंत हुए असिलोमाके देहमें गढे हुए बिलमें अर्ध नग्न सर्पके समान शोभित हुए तब उसके छेदित शरीरसे रुधिर गिरने लगा ॥ ३५ ॥ उन अंगोंसे वह असिलोमा ऐसे शोभायमान हुआ जैसे गैरिकादि धातुओंको त्यागता हुआ सुमेरु पर्वत, तब फिर और बडे तीक्ष्ण बाण उसके ऊपर प्रहार किये ॥३६॥ तब असिलोमा क्रोधित हो और फिर अन्यधनुषको धारण कर सुवर्णके पंखोंवाले बहुत पैने बाणोंको हरिके ऊपर छोडने लगा॥३७॥सर्प अग्नि और विषके तुल्य बाणोंसे हरिके मर्मको वेधन कर ऐसे आच्छादन करता हुआ जैसे पर्वतको मेघ ढकते हैं॥३८॥और कालके समान सुवर्णकी पंखोंवाले सूर्यकी तुल्य कांतिवाले सौ

प्राहिणोत्सहसा तस्य दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥ तस्य देहविमुक्तास्ते मारुतेन समीरिताः॥३४॥मग्नार्द्धकाया विविशुः पन्नगा इव पर्वते॥ स तैर्निपतितैर्गात्रैः क्षरद्भिरसृगावलीः ॥३५॥ बभौ दैत्यो महाबाहुर्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥ पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३६ ॥ ततोऽसिलोमा संक्रुद्धः प्रगृह्यान्यन्महाधनुः ॥ रुक्मपुङ्खांश्च निशितान् प्रेषयामास सायकान् ॥३७॥ तैस्तु मर्मसु विव्याध सर्पानलविषोपमैः ॥ गात्रं संच्छादयामास महाभ्रैरिव पर्वतम् ॥३८॥ भूयः संधाय च शरं मुमोचान्तकसंनिभम्॥सुपुङ्खं सूर्यसंकाशं बाणमप्रतिमं रणे॥३९॥तेन बाणप्रहारेण संयुगे भीमकर्मणा ॥ मुमोह सहसा देवो भूमौ चापि पपात ह ॥४०॥ ततो हाहाकृताः सर्वे देवे भूतलमाश्रिते ॥ जगत्सदेवमाविग्नं यथार्कपतनं तथा ॥४१॥ परिवारं तु समरे तस्य हत्वा महासुरः॥एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः॥४२॥जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः॥प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥४३॥

बाणोंको फिर धनुष्यपर संधान कर हरिके ऊपर छोडे॥३९॥तिन बाणोंके प्रहारसे युद्धमें वेधित हुए हरि मोहको प्राप्त हो पृथ्वीमें गिरे॥४०॥तिस समय सब देवता हाहाकार करने लगे और सूर्यके गिरनेके समान जगत् भग्न हुआ ॥ ४१ ॥ उस दानवोंमें श्रेष्ठ असिलोमाने इकतीस हजार हरिके परिवाररूप देवताओंको मार डाला ॥४२॥ और जयरूपी शोभासे सेवित हुआ अग्निकी तुल्य प्रकाशमान अपने घोर धनुष्यको धारण कर इन्द्रके रथके प्रति गया ॥ ४३ ॥

और उसी युद्धमें दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके शत्रु महाबली वृत्रासुरसे युद्ध करने लगे ॥४४॥ तर्कश धनुष धारण करे युद्धमें प्राणोंको त्यागने-वाला वृत्रासुर अश्विनीकुमारोंको प्राप्त हो युद्धमें. पर्वतके समान अचल स्थित हुआ ॥ ४५ ॥ युद्धमें शत्रुओंके रोमोंको खडा करनेवाले शंखको बजाकर धनुषकी ज्याके शब्दोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करता हुआ ॥ ४६ ॥ हर्षित रोमोंवाले यक्ष और देवताओंके समूह ये सम्पूर्ण समुद्रके शब्दके तुल्य शब्दवाले शंखके शब्दको सुनते हुए॥ ४७ ॥ गदा परिघ अस्त्र शक्ति त्रिशूल फरसा ये सम्पूर्ण हथियार यक्ष राक्षसोंकी भुजाओंमें

तथैव तु महायुद्धे ससैन्यावश्विनावुभौ ॥ प्रयुद्धौ सह वृत्रेण बलिना देवतारिणा ॥ ४४ ॥ बाणखड्गधनुष्पाणिः समरे त्यक्त-जीवितः ॥ आसाद्य सोऽश्विनौ दैत्यः स्थितो गिरिरिवाचलः ॥४५॥ ततः शंखमुपाध्माय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ज्याघोषतल-शब्दैश्च सर्वभूतान्यवेजयत् ॥४६॥ ततः संहृष्टरोमाणः शंखशब्दं विशुश्रुवुः ॥ यक्षराक्षसदेवौघा वृत्रस्यापि च निःस्वनम् ॥४७॥ गदातोमरनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधाः ॥ प्रगृहीत्वा व्यराजन्त यक्षराक्षसबाहुभिः ॥४८ ॥ तैः प्रमुक्तान्महाकायैः शूलशक्तिपरश्व-धान् ॥ भल्लैर्वृत्रपरिच्छेदभीमवेगरवैस्तथा ॥४९॥ अन्तरिक्षचराणां च भूमिस्थानां च गर्जताम् ॥ शरैर्विव्याध गात्राणि देवानां प्रियदर्शिनाम् ॥५०॥ वृत्रासुरभुजोत्सृष्टैर्बहुधा यक्षरक्षसाम् ॥ निकृत्तान्येव दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च ॥ ॥५१॥ अथ रक्त-महावृष्टिरभ्यवर्षत मेदिनीम् ॥ गदापरिघभिन्नानां देवानां गात्रसंभवा ॥५२॥ प्रच्छादयन्तं बाणौघैर्वृत्रं भीमपराक्रमम् ॥ ददृशुः सर्वभूतानि भानुमन्तमिवांशुभिः ॥ ५३ ॥

शोभाको प्राप्त होने लगे ॥ ४८ ॥ बडे शरीरोंवाले योधाओंकी तिन भुजाओंसे फेंके हुए त्रिशूल शक्ति फरसा हथियारोंको वह वृत्रासुर अपने बडे वेग और शब्दोंको करनेवाले भालोंसे भेदन करने लगे ॥ ४९ ॥ और वह वृत्रासुर आकाश और पृथ्वीमें विचरते हुए और गर्जते हुए देवताओंके शरीरोंको छेदन करने लगे ॥ ५० ॥ वृत्रासुरकी भुजाओंसे छोडे हुए बाणोंसे छेदन किये हुए बहुतसे यक्ष और राक्षसोंके शरीर और शिर पृथ्वी पै दीखने लगे ॥५१॥ गदा परिघोंसे भेदन किये हुए देवताओंके शरीरोंसे रुधिरकी महावर्षा पृथ्वीको सेचन करने लगी ॥ ५२ ॥ और बडे भीम

पराक्रमवाले वृत्रासुरकोसम्पूर्ण प्राणि देवताओंकेसमूहोंसे ऐसेआच्छादित देखने लगेकि जैसे मेघोंसे सूर्य॥५३॥औरमहाबली सूर्यके समान तपता हुआ वृत्रासुर मर्मवेधी बाणोंसे अश्विनीकुमारोंकोवेधन करनेलगे॥५४॥और देवताओंके बाणोंसे वेधित होकर अनेकप्रकारके शब्दोंको करते हुए वृत्रासुरको भयभीत देवता कुछभीनहीं देखते हुए॥५५॥और खड्ग शक्ति गदा परिघ प्रास तोमर फरसा त्रिशूल हथियारोंको वे सम्पूर्ण देवता वृत्रासुरपर वर्षा करने लगे॥५६॥ तब सत्यपराक्रमी महाबली तिन बाणोंसे वेधित हुआ वृत्रासुर क्रोधित हो और सम्पूर्ण देवताओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥५७॥वेधन किये हुए महाआयुधोंसे आच्छादित महारथी देवता वृत्रासुरके भयसे पीडित हुए और घोर आर्तनाद करने लगे॥५८॥गदा शक्ति त्रिशूल खड्ग

तीक्ष्णरश्मिरिवादित्यः प्रतपन्सर्वदेवताः॥अश्विनोर्बलवान् क्रुद्धःसायकैर्मर्मभेदिभिः॥५४॥नदतोविविधान्नादानर्दितस्यापि सायकैः ॥ न मोहमसुरेन्द्रस्य ददृशुस्त्रिदशा रणे॥५५॥ तेऽसिचर्मगदाभिश्च परिघप्रासतोमरैः॥परश्वधैश्च शूलैश्च प्रववर्षुर्महारथाः॥५६॥ ततो वृत्रः सुसंक्रुद्धस्तैस्तदाऽभ्यर्दितो बली॥ अभ्यवर्षच्छितैर्बाणैस्तान्त्सर्वान्त्सत्यविक्रमः॥५७॥तेन वित्रासिता देवा विप्रकीर्णम-हायुधाः॥ घोरमार्त्तस्वरं चक्रुर्वृत्रासुरभयार्दिताः॥५८॥उत्सृज्य ते गदाशक्तिशूलर्ष्टिपरिघाशनीन्॥ उत्तरां दिशमाजग्मुस्त्रासिता दृढधन्विना॥ ५९ ॥शूलशक्तिगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः॥ प्रावर्त्तत रणे वृत्रस्त्रासयानश्चराचरान्॥ ६० ॥ तत्रैकस्तु महा-बाहुरसिशूलधरः प्रभुः॥ अभ्यधावत दैत्येन्द्रं वृत्रमप्रतिमं रणे॥६१॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य निर्भिन्नमिव वारणम्॥ वत्सदन्तै-स्त्रिभिः पार्श्वे विव्याध सुरसत्तमम्॥६२॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासःशरैरमितविक्रमः॥गदां जग्राह बलवान् गदायुद्धविशारदः॥६३॥

फरसा हथियारोंको त्याग वृत्रासुरके त्राससेसम्पूर्ण देवता उत्तरदिशामें चले गये॥५९॥दीर्घ छातीवाला महाभुजाओंवाला त्रिशूल गदाको हाथमें धारण किये वृत्रासुर चराचरसहित सम्पूर्ण देवताओंको त्रास देता हुआ विचरने लगा॥६०॥और रणमें धीर्यतासे स्थित हुआ;तब महाभुजावाले त्रिशूलको धारण किये अश्विनीकुमार रणमें स्थित हुए और दैत्योंका अधिपति तुल्यतासे रहित वृत्रासुर उनके सन्मुख दौडा॥६१॥ भेदित किये हस्तीके समान अश्विनीकुमारने धनुष धारण कर बछडेके दांतके तुल्य तीक्ष्ण तीन बाणोंसे वृत्रासुरको पार्श्वमें वेधन किया॥६२॥ वह महाबली बाणोंसे

महाविद्ध होकर युद्धमें गदायुद्ध जाननेके कारण गदा ग्रहण करता हुआ ॥ ६३ ॥ पर्वतकी तुल्य सारवाली और बडी दृढ और भयानक गदाको ग्रहण कर उसके वेगसे अश्विनीकुमारको ताडन किया ॥ ६४ ॥ प्रकाशमान दीर्घ दृढ और रोमहर्षोंको उपजानेवाले त्रिशूलको अश्विनीकुमारने धारण कर वृत्रासुरको मारा ॥ ६५ ॥ उस गदायुद्धको जाननेवाला वृत्रासुर अपनी गदाके अग्रभागसे त्रिशूलको भेदनकर वेगसे अश्विनीकुमारके ऊपर दौडा; जैसे सर्पके प्रति गरुड॥६६॥वृत्रासुरने आकाशमें कूद पर्वतके शिखरकी तुल्य गदाको घुमाय अश्विनीदेवताकी छातीमें मारी ॥६७॥

तां प्रगृह्य महाभीमामयःसारमयीं दृढाम् ॥ अश्विनौ सहसागम्य ताडयामास वीर्यवान् ॥६४॥ दीप्यमानं ततः शूलमश्वी सुविपुलं दृढम् ॥ प्रासृजद्वृत्रदैत्याय सहसा रोमहर्षणम् ॥६५॥ भङ्क्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः ॥ अश्विनं सहसाभ्यर्च्य गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६६ ॥ सोऽन्तरिक्षात्समुत्पत्य विधूय महतीं गदाम् ॥ नासत्योपरि चिक्षेप गिरिशृङ्गोपमां बली ॥६७॥ गदयाभिहतः सोऽश्विस्त्यक्त्वा शूलमनुत्तमम् ॥ प्रयातः सहसा तत्र यत्र युद्ध्यति वासवः ॥ ६८ ॥ पराजित्य तु संग्रामे अश्विनं भीमविक्रमम् ॥ जयश्रिया सेव्यमानो वृत्रो युद्धे व्यवस्थितः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्रासुरोत्कर्षवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रैव तु महायुद्धे रणाजिर्देवसत्तमः ॥ युध्यते सह दैत्येन एकचक्रेण धीमता ॥ १ ॥ प्रच्छाद्य रथपन्थानमुत्क्रोशंश्च महाबलः ॥ एकचक्रस्य सैन्यं तच्छरवर्षैरवाकिरत् ॥ २ ॥ महासुरा महावीर्या महापट्टिशयोधिनः ॥ शूलानि च भुशुंडीश्च क्षिपन्ति स्म महारणे ॥ ३ ॥

तब गदासे हनन हुआ अश्विनीदेवता त्रिशूलको त्याग वेगसे वहां गया जहां इन्द्र युद्ध करता था॥६८॥इस प्रकार बडे पराक्रमी अश्विनीदेवताको रणमें जीत जयरूप शोभासे सेवित हुआ वृत्रासुर युद्धमें स्थित हुआ॥६९॥ इति श्रीमहा० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥ वैशंपायनजी बोले; हे जनमेजय! देवताओंमें श्रेष्ठ रणाजि नाम देवता तिसी युद्धमें एकचक्र दैत्यके संग युद्ध करने लगा ॥ १ ॥ वह रणाजि रथके पंथको रोक बडे शब्दोंको करनेवाली एकचक्रकी सेनाको बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगा ॥२॥ महावीर्यवाले और महापट्टि-

शोंसे युद्ध करनेवाले महाअसुर त्रिशूल भुशुंडी शस्त्रोंको रणमें देवताओंके सन्मुख फेंकने लगे॥३॥गदाशक्तिसे मिली हुई अकल्याणरूप दैत्योंकी की हुई ऐसी त्रिशूलकी वर्षा चराचरको दुर्निवार्य होने लगी॥४॥और महापर्वतोंके शिखरोंकी तुल्य आकारवाले, महापराक्रमोंवाले महारथी देवता और असुर परस्पर सन्मुख हो युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ एकचक्र दैत्य रथमें सैंकडों घोडे युक्त करहिरण्यकशिपुके रथकी तुल्य रथमें स्थित हो युद्ध करने लगा ॥६॥ घोडोंके पैरोंसे और रथके पहियोंके शब्दसे एकचक्रके बाणोंसे सैंकडों देवता मृत्युको प्राप्त हो गये ॥ ७ ॥ छोटे चित्रविचित्र और

तच्छूलवर्षं सुमहद्गदाशक्तिसमाकुलम् ॥ अविशद्दितिजैर्मुक्तं दुर्निवार्यं चराचरैः ॥ ४ ॥ अन्योन्यमभिवर्तन्ते देवासुरगणा युधि ॥ महाद्रिशिखराकारा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥५॥ तुरङ्गमाणां तु शतं युक्तं तस्य महारथे ॥ महासुरवरस्येव हिरण्यकशिपोर्युधि ॥६॥ तेषां चरणपातेन चक्रनेमिस्वनेन च ॥ तस्य बाणनिपातैश्च हता वै शतशः सुराः ॥७॥ ततः स लघुभिश्चित्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ सायुधानच्छिनत्क्रुद्धःशतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ वध्यमानाः शरैस्तीक्ष्णै रथद्वरदवाजिनः ॥ गमिताः प्रक्षयं केचित्त्रिदशैर्दानवा रणे ॥९॥ ततः प्रक्षीयमाणांस्तानुपप्रेक्ष्य दितेः सुताः ॥ त्यक्त्वा बाणान्न्यवर्तन्त प्रगृहीतवरायुधाः ॥१०॥ ते दिशो विदिशश्चैव प्रतियुद्धप्रहारिणः ॥ अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्देवान्दितिसुता रणे ॥११॥ रणाद्विचलितं घोरं परमं तिग्मतेजसम्॥ मुमोचास्त्रं महाबाहुर्मथनं नाम संयुगे ॥१२॥ ततः शस्त्राणि शूलानि निशितानि सहस्रशः ॥ अतिवीर्येण महता दितिजः संप्रचिच्छिदे ॥१३॥

मोटी गांठोंवाले बाणोंसे वह रणाजि देवता सैंकडों हजारहों योधाओंको छेदन करने लगे॥८॥देवताओंके तीक्ष्ण बाणोंसे वध किये हुए हस्ती घोडे दानव मृत्युको प्राप्त हो गये॥९॥क्षीयमाण दैत्योंको देख और धनुषोंको धारण करते हुए अन्य दैत्य देवताओंको निवृत्त करते हुए ॥ १० ॥ प्रहार करते हुए दैत्य दिशा और विदिशाओंमें स्थित हो और पैने२बाणोंसे देवताओंको हनन करने लगे॥११॥जलते हुए अत्यन्त तेजवाले घोररूप मथन नाम अस्त्रको रणाजि दैत्योंपर छोडता हुआ॥१२॥तब अस्त्र और त्रिशूल सहस्रों हथियारोंको वह एकचक्रअपने अस्त्रसे छेदन करने लगे ॥१३॥

और सम्पूर्ण त्रिशूलोंको छेदन कर वह एकचक्र महासुर पैने२दश बाणोंसे तिस रणाजिको वेधन करता हुआ ॥ १४ ॥ और वह एकचक्र शस्त्रोंके वेगको हनन कर जलते हुए वेगवान् अस्त्रोंसे देवताओंके सहस्त्रों सेनापतियोंको मारने लगा॥१५॥छेदन किये हुए तिन्होंके शरीरसे रुधिर निकलने लगा कि जैसे वर्षाकालमें पर्वतोंके शिखरपरसे जल गिरता हो ॥ १६ ॥ और इन्द्रके वज्रके तुल्य स्पर्शवाले वेगवंत कुटिलतारहित ऐसे दैत्योंसे हनन किये हुए देवता त्रासको प्राप्त हो गये॥१७॥एकचक्रके रथमें स्थित गजयूथको देखते हुए जो सम्पूर्ण आभूषणोंसे शब्दायमान और समुद्रके शब्दके

छित्त्वा शूलेन तान्सर्वानेकचक्रो महासुरः ॥ अभ्यविध्यत तं साध्यं दशभिर्निशितैः शरैः ॥ १४ ॥ अस्त्रवेगेन हत्वैव सोऽस्त्रैस्त-स्यानुसैनिकान् ॥ ज्वलितैरपरैः शीघ्रैस्तानविध्यत्सहस्रशः ॥१५॥ तेषां छिन्नानि गात्राणि विसृजन्ति स्म शोणितम् ॥ प्रावृषी-वाम्बुवृष्टीनि शृङ्गाणि धरणीभृताम् ॥ १६ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्निपतद्भिरजिह्मगैः ॥ दितिजैर्वध्यमानास्ते वित्रेसुः सुरसत्तमाः ॥१७॥ एकचक्रे रथे तिष्ठन्नपश्यद्गजयूथपम् ॥ स्रगाभरणनिह्रादान्त्समुद्रस्वननिःस्वनान् ॥ १८ ॥ मत्तान्त्सुविहितान् दृप्तान्महा-मात्रैरधिष्ठितान् ॥ कुलीनान्वीर्यसपन्नान् प्रति द्विरदघातिनः ॥ १९ ॥ शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ॥ न्यहनत्सु-रसैन्यस्य गजान् गज इवासुरः॥२०॥विक्षरन्तो महानागान्भीमवेगांस्त्रिधा मदम् ॥ मेघस्तनितनिर्घोषान्महाद्रीनिव चोत्थितान् ॥ २१ ॥सहस्रसंमितान् दिव्याञ्जाम्बूनदपरिष्कृतान् ॥ सुवर्णजालैर्विततांस्तरुणादित्यवर्चसः ॥ २२ ॥ एकचक्रो गदापाणिर्बल-वान्गदिनां वरः ॥ उत्सारयामास गजान्महाभ्राणीव मारुतः ॥ २३ ॥

तुल्य शब्दवाले॥१८॥मदोन्मत्त और श्रेष्ठ पीलवानोंसे युक्त अच्छे कुलोंमें उत्पन्नवाले और बडे पराक्रमोंवाले दूसरे हाथियोंको मारनेवाले ॥१९॥ और गजशिक्षामें निपुण ऐरावत हस्तियोंके तुल्य हस्तियोंको वह एकचक्र अपने फरसों और शरोंसे हनन करने लगा कि जैसे हस्तीको हस्ती मारता है॥२०॥और भयानक रूपवाले तीन जगहसे मदोंको झिरते हुए मेघके गर्जितकी समान शब्द करने लगे; और पर्वतकी नांई ऊंचे॥२१॥ सहस्त्रों श्रेष्ठ और सुवर्णके गहनोंवाले;और तरुण सूर्यके तुल्य कांतिवाले॥२२॥ हस्तियोंको गदायुद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ हाथमें गदाको धारण किये एकचक्र

ऐसे भगाने लगा जैसे मेघोंको वायु ॥२३॥ हस्तियोंको हनन करनेवाला एकचक्र गदासे सम्पूर्ण हस्तियोंको हनन कर फिर घोडोंके समूहको देखने लगा ॥२४॥ तोतेके समान वर्णवाले ऋच्छ मोरके तुल्य वर्णोंवाले कबूतर और हंसके सम वर्णोंवाले॥२५॥मल्लिकाके तुल्य नेत्रोंवाले और क्रौंचके तुल्य वर्णोंवाले मनकेतुल्य वेगवाले घोडोंकी सेनाकोवह महाबाहु॥२६॥ एकचक्र अपनी गदासे भेदनकरने लगा;और रणाजि रणमें एकचक्रके कर्मको देख ॥२७॥ वह श्रीमान् अचिन्त्यपराक्रमी रणमें उपरामको प्राप्त हो देवताओंकी सेनामें गया; गदायुद्धमें कुशल रथोंके समूहोंका पति ॥ २८ ॥

निहत्य गदया सर्वांस्तान्गजान्गजमर्द्दनः॥ भूयोऽश्वसंघान्त्स बली निरैक्षत महासुरः ॥२४॥ शुकवर्णानृष्यवर्णान्मयूरसदृशांस्तथा॥ पारावतसवर्णांश्च हंसवर्णांस्तथैव च॥२५॥मल्लिकाक्षान्विरूपाक्षान् क्रौञ्चवर्णान्मनोजवान्॥अश्वसैन्यं महाबाहुस्तदप्रतिमपौरुषः२६ निषूदयामास बली गदया भीमविक्रमः ॥ रणाजिस्तस्य समरे सर्वान्दृष्ट्वा सुरद्विषः ॥२७॥ अचिन्त्यविक्रमः श्रीमानभ्ययाद्देववाहिनीम् ॥ गदायुद्धेषु कुशलो रथेन रथयूथपः ॥२८॥ दृष्टसैन्यो महाबाहुः प्रस्थितः शक्रसन्निधौ ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि रथानां त्रिनिहत्य सः ॥ २९ ॥ रणेऽतिष्ठत दैत्येन्द्रो विधूम इव पावकः । तस्मिन्नेव तु संग्रामे बलदृप्तो महासुरः ॥ ३० ॥ मृगव्याधं महात्मानं योधयत्यजितं रणे ॥ मृगव्याधस्य रुद्रस्य महापारिषदास्तथा ॥३१॥ समुत्पेतुर्बलं दृष्ट्वा हुताग्निसमतेजसः ॥ गजैर्मत्तै रथैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥३२॥ अस्त्रैश्च निशितैर्बाणैः शरैश्चानलसन्निभैः ॥ ददृशुस्ते ततो वीरा दीप्यमानं महासुरम् ॥३३॥ रश्मिवन्तमिवोद्यन्तं सुतेजोरश्मिमालिनम् ॥ संग्रामस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥ ३४ ॥

महाबाहु रणाजि इन्द्रके समीप गया;और वहएकचक्र तीस सहस्र योधाओंको मार॥२९॥ रणमें ऐसे स्थित हुआ कि जैसे धूमरहित अग्नि,और उसी संग्राममें महाबाहु बलनाम दैत्य॥३०॥मृगव्याध महात्मारुद्रके संग युद्ध करने लगा; और होमी हुई अग्निके तुल्य तेजवाले मृगव्याधके पार्षद ॥३१॥ हुताग्निके समान तेजवाले मनके समान वेगवान् हस्ति रथघोडोंसे सवार हो और बलको देख सन्मुख दौडे॥३२॥पैने अस्त्र और तीक्ष्ण भालेसे युक्त हुए उस महाबली असुरको देवता देखने लगे ॥३३॥ प्रकाशमान् सूर्यके समान उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंके तुल्य महावेगवान् महाबली ॥३४॥

और महामति बडे उत्साहयुक्त बडे शरीर और बडे रथवाले महायोधा सम्पूर्ण दिशाओंमें स्थित बलदैत्यको देख ॥ ३५ ॥ एकवार चारों ओरसे संप्रहार करने लगे; और सब प्रकार लोहेके बने पीतरंगवाले तीक्ष्ण मुखोंवाले ॥ ३६ ॥ बाणोंको वह मृगव्याध बलके महापर्वतके समान शिरमें मारता हुआ, और शिरमें मारे हुए सात बाणोंसे वेधित हुआ ॥ ३७ ॥ बल दैत्य दशों दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ आकाशमें उछला तब धनुषको चढाये महाबलीरथमें स्थित मृगव्याधने ॥३८॥ प्रसन्न हो आकाशमें बलके पीछे गमन किया,और तिसबलको आकाशमें बाणोंकी वर्षासे

महामतिं महोत्साहं महाकायं महारथम्॥समीक्ष्य तं महायोध दिक्षु सर्वास्ववस्थितम्॥३५॥ ततः प्रहरणैर्घोरैरभिपेतुः समन्ततः॥ तस्य सर्वायसास्तीक्ष्णाः शराः पीतमुखाः शिताः ॥३६॥ शिरस्यद्रिप्रतीकाशे मृगव्याधेन पातिताः ॥ तैश्च सप्तभिराविद्धाः शरैः शिरसि चार्पितैः ॥ ३७ ॥ उत्पपात तदा व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥ ततस्तं त्रिदशो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ॥ ३८ ॥ अनुवव्राज संहृष्टः खे तदा स महाबलः ॥ असुरं छादयामास तं व्योम्नि शरवृष्टिभिः ॥ ३९ ॥ वृष्टिमानिव जीमूतो निदाघान्ते धराधरम् ॥ अर्द्यमानस्ततस्तेन मृगव्याधेन दानवः॥४०॥ चकार निनदं घोरमम्बरे जलदो यथा ॥ स दूरं सहसोत्पत्य मृगव्याधरथं प्रति ॥४१॥ निपपात महावेगः पक्षवातैर्गिरिर्यथा ॥ बभञ्ज च ततो दैत्यो भग्नेषाकूबरं रथम् ॥४२॥ मृगव्याधः परित्यज्य स्थितो भूमौ महाबलः ॥ विरथं प्रेक्ष्य रुद्रं तु तस्य पारिषदाः शुभाः॥४३॥ उत्थिता घोररक्ताक्षा व्योम्नि मुद्गरपाणयः॥ स तु तैः सहसो-त्पाथ वेष्टितो विमलेऽम्बरे ॥ ४४ ॥

ऐसे आच्छादन करता हुआ॥३९॥कि जैसे ग्रीष्मकालके अंतमें पर्वतको मेघ आच्छादन करते हैं;मृगव्याधसे पीडित हुआ वह बल दैत्य॥४०॥ आकाशमें मेघके तुल्य बडा शब्द कर बल दैत्य आकाशमें ऊंचे चढ और मृगव्याधके रथपर ऐसे गिरा॥४१॥ कि जैसे पंखोंवाला पर्वत गिरता हो, उससे मृगव्याधका रथ चूर्ण हो गया॥ ४२ ॥ और टूटे हुए रथका परित्याग कर वह मृगव्याध भूमिमें स्थित हुआ; उनके पार्षद रुद्रको विरथ देख ॥४३॥ हाथोंमें मुद्गरोंको धारण कर क्रोधयुक्त लाल २ नेत्रोंवाले आकाशमेंकूदे;और वह बलभी शीघ्र उठकर आकाशमें युद्ध करने लगा ॥४४॥

और उनके मुद्गरोंसे ऐसे मर्दित हुआ जैसे फरसोंसे वृक्ष, और गरुडके समान पराक्रमवाला वह बल दैत्य तिन गणोंके वेगसे हनन हुआ ॥ ४५ ॥ फिर भूमिमें गिरा वह बल शाखाओंसे युक्त तालवृक्षको उखाड ॥ ४६ ॥ और सम्पूर्ण रुद्रके गणोंको हनन करने लगा और तिन गणोंसे छेदन किया हुआ और रुधिरके समूहोंसे युक्त हुआ ॥ ४७ ॥ उदय होते हुए बालसूर्यके समान दानव शोभित हुआ और मृग सर्प वृक्षसहित पर्वतके शिखरको उखाड ॥ ४८ ॥ वह दानव बलसे पूर्ण रुद्रके पार्षदोंको हनन करने लगा; तब उन महापार्षदोंके नष्ट होनेसे ॥ ४९ ॥ वह वीर्यवान् शेष सेनाको नाश करने लगा;

मुद्गरैरर्दितो भीमैर्वृक्षः परशुभिर्यथा ॥ तेषां वेगवतां वेगं निहत्य स महारथः ॥ ४५ ॥ निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ॥ स सालवृक्षमुत्पाट्य महाशाखं महाबलः ॥ ४६ ॥ सर्वान्पारिषदान्संख्ये सूदयामास दानवः ॥ स तैर्वीजितदेहस्तु रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ४७ शुशुभे दानवश्रेष्ठो बालसूर्य इवोदितः ॥ अथोत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥ ४८ ॥ जघान तान्पारिषदान्समरे दानवेश्वरः ॥ ततस्तेषु च भग्नेषु महापारिषदेषु वै ॥ ४९ ॥ बलं तदवशेषं तु नाशयामास वीर्यवान् ॥ अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्योधान्योधै रथान्रथैः ॥ ५० ॥ दानवः सूदयामास युगान्तेऽन्तकवत्प्रजाः ॥ हतैरश्वैश्च नागैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ॥ ५१ ॥ त्रिदशैश्चाभवद्भूमी रुद्रमार्गा समन्ततः ॥ एवं बलः स दैत्येन्द्रो मृगव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ५२ ॥ युधि प्रवृद्धौ बलिनौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रैव युध्यते रुद्रो द्वितीयो राहुणा सह ॥ विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु क्रोधात्मा ह्यज एकपात् ॥ ५४ ॥ तद्यथा सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ आसीत्प्रतिभयं रौद्रं वीराणां जयमिच्छताम् ॥ ५५ ॥

घोडोंसे घोडोंको हस्तियोंसे हस्तियोंको और योधाओंसे योधाओंको रथोंसे रथोंको ॥ ५० ॥ यह बल ऐसे हनन करने लगा कि जैसे प्रलयकालमें प्रजाको काल मारता है; और हनन किये हुए घोडे हस्ती रथोंसहित ॥ ५१ ॥ देव दानवसे सम्पूर्ण पृथ्वी भयानक मार्गवाली होती हुई; इस प्रकारसे बल दैत्य मृगव्याध रुद्र ये दोनों बली ॥ ५२ ॥ रणमें ऐसे युद्ध करने लगे जैसे मतवाले दो हाथी लडते हों ॥ ५३ ॥ वैशंपायन बोले; तीनों लोकमें विख्यात क्रोधकी मूर्ति और एक पैरवाला दूसरा अज नाम रुद्र तिसी रणमें राहुके संग युद्ध करने लगा ॥ ५४ ॥ उस समय जयकी इच्छा

करते हुए तिन दोनों शूरवीरोंका बडा तुमुल और रोमहर्षोंको उपजानेवाला भयानक रौद्र युद्ध होने लगा ॥ ५५ ॥ देवता और दानवोंके शरीरोंसे बडी दुस्तर और केशरूपी दूबोंको वहानेवाली शरीरोंके समूहोंको वहाती हुई रुधिरकी नदी वहने लगी॥५६॥भयानक आकृतिवाले समर्थ क्रोधित हुए रुद्र शत्रुओंकी सेनाको विदारण करनेवाले सौ मुखोंवाले राहुको युद्धमें हनन करने लगे ॥५७॥ और दैत्योंके बाणोंसे क्रोधित हुए श्रीमान् रुद्र राहुके घोडे सारथिसहित सुवर्णजटित रथको भेदन करते हुए ॥५८॥ महाबली एक रुद्रके पार्षदने प्रसन्न हो रणमें अपनी शक्तिसे राहुकी छातीमें वेधन किया ॥ ५९ ॥ और दानवोंमें श्रेष्ठ क्रोधसे मूर्छित भिन्नगात्र राहु आते हुए रुद्रके रथको ॥ ६० ॥ तलप्रहारसे क्रोधित और मूर्छित हो उसने

देवदानवदेहैस्तु दुस्तरा केशशाड्वला ॥ शरीरसंघातवहा प्रसृता लोहितापगा ॥५६॥ आजघानाथ संक्रुद्धो रुद्रो रौद्राकृतिः प्रभुः ॥ राहुं शतमुखं युद्धे शत्रुसैन्यनिवारणम् ॥५७॥ तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ॥ जघान समरे श्रीमान् क्रुद्धो दैत्यस्य सायकैः ॥५८॥ तस्य पारिषदस्त्वेकः शरशक्त्या महाबलः ॥ बिभेद समरे हृष्टो दानवं तं स्तनान्तरे ॥ ५९ ॥ स भिन्नगात्रो रुद्रेण तथा पारिषदैरपि ॥ रुद्रस्य रथमायान्तं स राहुर्दानवोत्तमः ॥६०॥ प्रममाथ तलेनाशु सहसा क्रोधमूर्च्छितः ॥ भिन्नगात्रं शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥ ६१ ॥ हतैर्दानवमुख्यैस्तु रुद्रेणामिततेजसा ॥ रुद्रपारिषदान्त्सर्वान्निजघान महासुरः ॥ ६२ ॥ वर्त्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ॥ रुधिरौघा महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः ॥ ६३ ॥ दानवं समरे रुद्रो नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥६४॥ हतैर्दानवमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ॥ पतितैः पर्वताभैश्च दानवैः कामरूपिभिः ॥६५॥

मथन किया वह सूर्यकी किरणोंके समान तीक्ष्ण बाणोंसे भिन्न शरीर हो गया ॥ ६१ ॥ राहुने तीक्ष्ण बाणोंसे रुद्र और रुद्रके पार्षदोंको वेगसे वेधन किया ॥ ६२ और रोमहर्षोंको उपजानेवाले रौद्र वर्तमान युद्धमें रुधिरके समूहोंको वहनेवाली बहुतसी महानदी वेगसे वहने लगीं ॥ ६३ ॥ और नीले पर्वतके समान राहु दानवने तीक्ष्ण बाणोंसे रुद्रको ऐसे वेधन किया कि जैसे किरणोंसे मेरुपर्वतको सूर्य ढकता है ॥ ६४ ॥ और त्रिशूल शक्ति फरसेसे हनन हुए पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरे हुए इच्छापूर्वक विचरनेवाले ॥ ६५ ॥

दानवोंमें मुख्य दानवोंसे किया हुआ रोमहर्षोंको उपजानेवाला महाघोर युद्ध हुआ. उसमें दैत्य टेसूके फूलके समान दीखने लगे; महाभेरु, मृदंग, पणव॥६६॥शंख और पटहसे मिलकर महाशब्द हो गया; और शब्दको करते हुए मरे हुए दैत्य॥६७॥और देवतोंका उसरणमें दारुण शब्द सुनाई आने लगा,और घोडोंको सुमऔर रथकी पुठीसे उठी हुई॥६८॥पृथ्वीकी रज सम्पूर्ण योधाओंका मार्ग और नेत्रोंकोरोकती हुई सब पृथ्वी उस समय शस्त्ररूपी पुष्पोंके उपहारवाली हो गई ॥६९॥ दुःखपूर्वक दर्शनवाली और दुःखसे प्राप्त होनेको योग्य मांसरुधिरकी कीचवाली रणभूमि हो गई; और

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ॥ विरेजुस्ते तदा दैत्याः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ महाभेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः ॥ ६६ ॥ शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः ॥ हतानां स्वनतां तत्र दैत्यानां चापि निःस्वनः ॥ ६७ ॥ देवानां च तथा तत्र शुश्रुवे दारुणो महान् ॥ तुरङ्गमखुरोत्कीर्ण रथनेमिसमुत्थितम् ॥ ६८ ॥ रुरोध मार्गं योधानां चक्षूंषि च धरारजः॥शस्त्रपुष्पोपहारा सा तत्रासीद्युद्धमेदिनी॥६९॥ दुर्दर्शा दुर्विगाह्या च मांसशोणितकर्दमा ॥ भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥७०॥ अपविद्धैश्च भग्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हतैः ॥ निर्हतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा त्रिदशदानवैः ॥ ७१ ॥ चक्राक्षयुगशस्त्रैश्च भग्नैरवनिपातितैः ॥ बभूवायोधनं घोरं पिशिताशनसंकुलम् ॥७२॥ उत्पेतुश्च कबन्धानि दिक्षु सर्वासु संयुगे ॥ अन्योन्यबद्धवैराणां दैत्यानां जयगृद्धिनाम् ॥ ७३ ॥ संप्रहारस्तथा युद्धे वर्त्ततेऽतिभयंकरः ॥ सैन्यानां संप्रयुद्धानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ७४ ॥ अजस्य चैकपादस्य राह्वोश्चैव महात्मनः ॥ तेषां तु तत्र पततां क्रुद्धानामतिनिःस्वनः ॥ ७५ ॥

भाला, खड्ग,गदा,शक्ति,तोमर, पट्टिश॥७०॥हथियारोंसे हनन हुए संग्रामके करनेवाले सैंकडों रथ और मतवाले हस्ती और देवता दानव॥७१॥चक्रशस्त्रसे भग्न और निपातित हुए, मांसके भोजन करनेवालोंसे व्याप्त और महाघोर युद्ध हो गया ॥७२॥ जयकी इच्छा करते हुए परस्पर बद्धवैरोंवाले शूरवीरोंके सम्पूर्ण शिरोंसे रहित कबन्ध दिशाओंमें उछलने लगे॥७३॥ और युद्धमें पीठ न देनेवाले सम्यक् प्रकारसे युद्ध करनेवाले शूरवीरोंका बडा भयंकर प्रहार होने लगा ॥७४॥ एकपैरवाले अज और महात्मा युद्धमें बल प्रकाश करने लगे सम्पूर्ण सेनाका शब्द होने लगा ॥७५॥

जैसे प्रलयकालमें मर्यादाको छोडेहुए समुद्रोंका होता है, उनमें एक महाबली औरबडाभीम ऐसा धूम्राक्ष नाम रुद्र॥७६॥गदा परिघ शूल धारण किये युद्धमें केशीको भेदन करताहुआ; और अनेक प्रकारसे प्रहार करनेवाले और भयानकनेत्रोंवाले औरभयानक दर्शनोंवाले॥७७॥रुद्रके प्यारे पार्षद केशीके सन्मुख दौडने लगे; और शोभायमान तपे हुए सुवर्णके कुंडलोंवाला दानव रथमें स्थित हो॥७८॥दानवोंसे युक्त दुर्जय केशी रुद्रसे युद्ध करने लगा; और संग्राममें चतुर उग्र पराक्रमवाला युद्ध करता हुआ॥७९॥केशीके मुखसे विस्तार करती हुई अग्निकी ज्वाला निकलती हुई; सिंहकी तुल्य ऊंचे

उद्वृत्त इव भूतानांसमुद्राणां तु शुश्रुव॥तत्रैकस्तु सुधूम्राक्षः श्रीमान् रुद्रो मुनीश्वरः॥७६॥बिभेद केशिनं शक्त्या गदापरिघशूलभृत्॥ नानाप्रहरणा घोरा भीमाख्या भीमविक्रमाः ॥७७॥ निष्पेतू रुद्रदयिता महापारिषदास्तथा ॥ रथमास्थाय च श्रीमांस्तप्तकाञ्चन-कुण्डलः ॥७८॥ दानवैः संवृतः केशी युध्यते युद्धदुर्जयैः ॥ तस्य संग्रामशौण्डस्य संग्रामेषु युयुत्सतः ॥७९॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात्॥स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः॥८०॥महाजलदसंकाशो मृदङ्गध्वनिनिःस्वनः॥ तस्यनिष्पत-मानस्य दानवैः संवृतस्य च ॥८१॥ बभूव सुमहानादः क्षोभयंस्त्रिदिवं यथा ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता त्रिदशानां महाचमूः ॥८२॥ द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुमेवाभ्यवर्त्तत ॥ तेषां च देवदैत्यानां युयुत्सूनां परस्परम् ॥ सन्निपातः सुतुमुलो रौद्रो लोकभयावहः ॥८३॥ तेषां युद्धं महाघोरं संजज्ञे लोमहर्षणम् ॥ देवदानवसंघानां प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः॥८४॥

कंधेवाला शार्दूलके समान पराक्रमी ॥८०॥ महामेघके तुल्य कांतिमान् और मृदंगके तुल्य शब्दवाला दानवोंसे युक्त युद्धके सन्मुख आता हुआ केशी दैत्यका ॥८१॥ स्वर्गको क्षोभ कराता हुआ महान् शब्द होता हुआ उस शब्दसे देवताओंकी सेना डर गई॥८२॥पहाड और पर्वतोंके प्रहारवाला महायुद्ध हुआ उन देवता और दैत्योंके परस्पर लडनेका तुमुल शब्द होने लगा; और लोकोंको भयका देनेवाला हो गया ॥८३॥ तिन्होंका युद्ध महाघोर और रोमोंको हर्ष करानेवाला हो गया; तिस महान् युद्धमें देवता और दानवोंके समूहके प्राणोंका नाश होने लगा; वे सब अतिबलवाले

शूरवीर पर्वतके समान कांतिवाले॥८४॥सब अस्त्रविद्याओंमें निपुण सब शस्त्रोंको उठाये हुए देवता और दानव आपसमें मारनेकी इच्छा करनेवाले प्राप्त हुए; तिन्होंके गर्जनेका शब्द मेघके गर्जनेके समान होने लगा ॥८५॥ और महाघोर शब्द जंगम और स्थावर जगत्को कंपानेवाला सुनाई आने लगा; रक्तकांतिवाली भयंकर धूलि उत्पन्न हुई; और तिन देवते और दैत्योंके समूहोंसे उठी हुई रजसे दशों दिशा रुकती हुई ॥ ८६ ॥ रेशमी वस्त्रके समान लाल और पांडुवर्णवाली तिस धूलीसे ॥८७॥ और बहुतरूपसे ढकनेसे कुछ न दीखा, न ध्वजा न पताका न वर्म न घोडा ॥८८॥ न

सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे सर्वायुधोद्यताः । त्रिदशा दानवाश्चैव परस्परजिघांसवः ॥ तेषां वै नदतां शब्दः संयुगे मेघनिःस्वनः ॥८५॥ शुश्रुवेऽतिमहाघोरश्चरस्थावरकम्पनः ॥ रेणुश्चारुणसंकाशो भीमः स समपद्यत ॥८६॥ उद्धूतो देवदैत्यौघः संरुरोध दिशो दश ॥ अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयारुणपाण्डुना ॥८७॥ संवृता बहुरूपेण ददृशुर्न च किंचन ॥ न ध्वजो न पताकाश्च न वर्म तुरगोऽपि वा ॥८८॥ आयुधं स्यन्दनो वादि दृश्यते नैव सारथिः ॥ स शब्दस्तुमुलस्तेषामन्योन्यं समधावताम् ॥८९॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात ॥ सतु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥९०॥ तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च ॥ श्रूयते तुमुलः शब्दो न रूपाणि चकाशिरे ॥ ९१ ॥ दानवास्तत्र संक्रुद्धा दानवानेव जघ्निरे ॥ त्रिदशास्त्रिदशांश्चैव निजघ्नुस्तुमुले तदा ॥ ९२ ॥ न (ते) परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च युद्धे महासुरान् ॥ रुधिरार्द्रां तथा चक्रुर्मेदिनीं च महासुराः ॥ ९३ ॥ ततस्तु रुधिरौघेण संसिक्तमुदितं रजः ॥ शरीरशतसंकीर्णं बभूव धरणीतलम् ॥ ९४ ॥

आयुध, न रथ, न सारथी दीखता था केवल आपसमें दौडते हुओंका शब्द सुनाई देता था ॥८९॥ और उस उग्रवीर्यके मुखसे अग्नि निकलने लगी; वह सिंहके समान कंधेवाला शार्दूलके समान पराक्रमी ॥ ९० ॥ दानवोंसे युक्त युद्धमें झपटा तब बडा तुमुल शब्द हुआ जिससे रूप प्रकाशित न हुए ॥९१॥ और क्रोधकर आपसमें दैत्यही दैत्योंको मारने लगे; और देवतेही देवतोंको काटने लगे ॥ ९२ ॥ ऐसे देवते और दैत्य दूसरोंको न मार अपनोंहीपर प्रहार कर रुधिरसे गीली पृथ्वीको करते हुए॥९३॥पीछे लोहूके समूहसे भीजी हुई धूलि कोमल हो गई, और पृथ्वीतलमें सैकडों शव

गिर गये ॥ ९४ ॥ शूल शक्ति गदा तलवार परिघ प्रास तोमरोंसे देवते और दैत्य आपसमें काटने लगे॥ ९५ ॥और परिघोंके आकार बाहुओंसे रुद्रके पार्षद दैत्योंको पीडित करने लगे और दानवभी बडे २ वृक्ष पत्थर और सूर्यके समान प्रकाशित शरोंसे॥९६॥रुद्रके पार्षदोंको काटने लगे, इसी अंतरमें क्रोधी हुआ दैत्य ॥९७॥ संग्राममें महाघोर अपनी सेनाको प्रसन्न करता हुआ परम क्रोधकर वज्रास्त्र लेकर॥९८॥दिव्यरूप वज्रा-स्त्रसे रुद्रके पार्षदोंको काटने लगा॥९९॥तब पीडित और भ्रांत हुए रुद्रके पार्षद पृथ्वीमें ऐसे गिरे जैसे वज्रसे हत हुए पर्वत और छिन्न वृक्ष गिरते

शूलशक्तिगदाखड्गपरिघप्रासतोमरैः ॥ त्रिदशा दानवाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥९५॥ बाहुभिः परिघाकारैर्निघ्नन्तः परिघैस्तथा॥ रुद्रपारिषदान्सर्वान्त्सूदयन्ति स्म दानवाः ॥ रुद्रपारिषदाश्चैव महाद्रुममहाश्मभिः ॥९६॥ व्यदारयन्नतिक्रम्य शस्त्रैश्चादित्यसंनिभैः॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः केशी दानवसत्तमः ॥९७॥ संग्राममर्षी घोरः स स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ तेषां परमसंक्रुद्धो वज्रमस्त्रमुदी-रयत् ॥९८॥वज्रेणास्त्रेण दिव्येन शस्त्रेण च महात्मना ॥ महापारिषदाः सर्वे निहता युधि दुर्जयाः ॥९९॥ वज्रास्त्रपीडिता भ्रान्ता रुद्रपारिषदा युधि ॥ विप्रकीर्णद्रुमाः पेतुः शैला वज्रहता इव ॥ १०० ॥ एवं सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ केशिनः सह रुद्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे केशिरुद्रयुद्धकथनं नामाष्टपञ्चा-शत्तमोऽध्यायः ॥५८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वृषपर्वा तु दैत्येन्द्रो विश्वमद्भुतदर्शनम् ॥ निष्कुम्भं योधयामास लोहितार्कसमद्यु-तिम् ॥ १ ॥ क्रोधमूर्च्छितवक्त्रस्तु धुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ धनूंषि प्रेक्ष्य शत्रूणां सारथिं त्वरितोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

हों ॥१००॥ इस प्रकार केशीका रुद्रके साथ तुमुल और रोमहर्षण युद्ध हुआ यह बडा युद्ध हुआ ॥१०१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावेअष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ वैशंपायन बोले; हे जनमेजय ! वृषपर्वा दैत्योंका राजा लालसूर्यके समान कांतिवाले निष्कुंभसे युद्ध करने लगा॥१॥क्रोधसे मूर्छित मुख वृषपर्वा अपने धनुषको कँपाता हुआ शत्रुकी सेनाको देख सारथीसे वेगसे कहने लगा ॥२॥

हे सारथे ! इस मेरे रथको यहीं तुम प्राप्त करो; यह सब देवते मेरी सेनाका नाश करते हैं॥३॥इस कारण युद्धमें श्लाघावाले इन देवताओंको मैं मारनेकी इच्छा करता हूं और इन्हीं देवताओंने दानवोंकी सेनामें बडा छिद्र कर दिया है ॥४॥ तब अतिवेगवाले रथमें स्थित हुआ वह श्रेष्ठ रथी दैत्य बाणोंसे शत्रुओंको मारने लगा ॥ ५ ॥ तब देवते सन्मुख ठहरनेको समर्थ न हुए युद्धकी तौ कौन कहे; वृषपर्वाके बाणोंसे हत हुए देवते भागने लगे ॥६॥ तब मृत्युके वशमें प्राप्त हुए तिन देवताओंको देख जातियोंको पीडित विचारके महाबलवाला निष्कुंभ युद्ध करनेको तैयार हुआ ॥७॥ तिस निष्कुंभको

अत्रैव तावत्त्वरितं नय मे सारथे रथम् ॥ एते देवाश्च सहिता घ्नन्ति नः समरे बलम् ॥ ३ ॥ एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो रणे ॥ एतैर्हि दानवानीकं कृतच्छिद्रमिदं महत् ॥४॥ ततः प्रजविताश्वेन रथेन रथिनां वरः॥ अरीनभ्यहनत्क्रुद्धः शरजालैर्महासुरः ॥५॥ न स्थातुं देवताः शक्ताः किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ वृषपर्वेषुनिर्भिन्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥६॥ तान्मृत्युवंशमापन्नान्वैवस्वतवशं गतान् ॥ समीक्ष्य निहतान् ज्ञातीनवतस्थे महासुरः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र निष्कुम्भं सर्वे ते त्रिदशोत्तमाः ॥ समेत्य सहिताः सर्वे द्रुतं तं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥ व्यवस्थितं तु निष्कुभं दृष्ट्वा त्रिदशसत्तमम् ॥ बभूवुर्बलवन्तो वै तस्यास्त्रबलतेजसा ॥९॥ वृषपर्वा तु शैलाभं निष्कुम्भं समरे स्थितम् ॥ महेन्द्र इव धाराभिः शरवर्षैरवाकिरत् ॥१०॥ अचिन्तयित्वा तु शराञ्छरीरे पतितान्बहून् ॥ स्थितश्च प्रमुखे श्रीमान्ससैन्यः स महाबलः ॥ ११ ॥ संप्रहस्यःमहातेजा वृषपर्वाणमाहवे ॥ अभिदुद्राव वेगेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १२ ॥ तस्य त्वाधावमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ॥ बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १३ ॥

देख बहुतसे देवता इकट्ठे हो निष्कुंभके चारों तरफ सहायता करने लगे ॥ ८ ॥ तब उस निष्कुंभको देवताओंमें श्रेष्ठ स्थित देख उसके अस्त्रबलके तेजसे सब देवते बलवाले होने लगे ॥ ९ ॥ तब पर्वतके समान स्थित हुए निष्कुंभको वृषपर्वा देख बाणोंकी वर्षा इस प्रकार करने लगा जिस तरह पर्वतपर जलधारा गिरती हो ॥१०॥ तब शरीरमें लगते हुए बाणोंको विचारकर सेनाके मुखमें स्थित हुआ महाबली निष्कुंभ॥११॥महातेजस्वी हँसकर पृथ्वीको कँपाता हुआ वेगसे वृषपर्वाकी ओर दौडने लगा॥१२॥उस तेजसे दीप्तिमान् दौडते हुए निष्कुंभका रूप प्रकाशमान अग्निके समान

प्रकाशित हुआ॥१३॥उस महातेजस्वीने रथको त्याग क्रोधको प्राप्त हो बडी शाखावाले और बहुत ऊंचे वृक्षको उखाडकर॥१४॥वृषपर्वकी ओर फेंका, दानवने तिस वृक्षको एकही हाथसे ग्रहणकर ॥ १५॥बहुतसा शब्द कर उसे भ्रमाके वृषपर्वाके हाथी पीलवान रथ और रथमें बैठनेवाले॥१६॥ देवताओंको दानवने मारा; उस प्राणोंके हरनेवाले क्रोधी धर्मराजके समान ॥ १७ ॥ वृषपर्वाको प्राप्त हो सब देवते भागने लगे; और देवतोंको भय देनेवाले वृषपर्वाको आते हुए ॥१८॥ देखकर धनुषधारी निष्कुंभ शब्द करने लगा; और क्रोधको प्राप्त हो मर्मको भेदन करनेवाले पैने तीस

रथं त्यक्त्वा महातेजाः सक्रोधः समपद्यत ॥ वृक्षमुत्पाटयामास महातालं महोच्छ्रयम् ॥ १४ ॥ ततश्चिक्षेप तं वृक्षं निष्कुम्भो वृषपर्वणः ॥ तं गृहीत्वा महावृक्षं पाणिनैकेन दानवः ॥१५॥ विनद्य सुमहानादं भ्रामयित्वा च वीर्यवान् ॥ सगजान्सगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥१६॥ जघान दानवस्तेन शाखिना त्रिदशांस्तदा ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ॥ १७ ॥ वृषपर्वाणमासाद्य त्रिदशा विप्रदुद्रुवुः ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं त्रिदशानां भयावहम् ॥१८॥आलोक्य धन्वी निष्कुम्भश्चुक्रोध च ननाद च॥ स तत्र निशितैर्बाणैस्त्रिंशद्भिर्मर्मभेदिभिः ॥१९॥ निर्बिभेद महावीर्यो निष्कुम्भो दानवाधिपः ॥ शरशक्तिभिरुग्राभिर्दैत्यानामधिपं प्रभुम् ॥२०॥ विद्धः समरमध्यस्थो रुधिरं प्रास्रवद्बहु ॥ उद्विग्ना मुक्तकेशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः॥२१॥ श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद्वै वृषपर्वणः ॥ अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते त्रासिता वृषपर्वणा ॥ २२ ॥ पृष्ठवक्त्राः सुसंविग्नाः प्रेक्ष्यमाणा मुहुर्मुहुः ॥ त्यक्तप्रहरणाः सर्वे कृतास्ते वृषपर्वणा ॥२३॥ संग्रामे युद्धशौण्डेन तदा निष्कुम्भसैनिकाः ॥ तत्रैव तु महावीर्यः प्रह्लादः कालमाहवे ॥ २४ ॥

बाणोंसे ॥१९॥ वृषपर्वाको महाबली दानवपति निष्कुंभने विद्ध किया और उग्र शर शक्तिसे दैत्योंके अधिपतिको विद्ध किया॥२०॥ तब पीडित हुआ निष्कुंभ युद्धमें शरीरसे बहुतसा रुधिर वहाने लगा; वे उद्विग्न और छूटे बालोंवाले गर्वसे रहित और पराजित॥२१॥श्वासको लेते हुए देवते वृषपर्वा दैत्यके भयसे भागने लगे,और वृषपर्वासे दुःखित किये देवते आपसमें विडोलन करने लगे॥२२॥दुःखसे मूढ हुए पीछेको वारंवार देखने लगे; ऐसे युद्धमें वृषपर्वाने सब देवतोंके शस्त्र गिरा दिये॥२३॥उसी काल संग्राममयुद्धमें निष्कुंभके सैनिक स्थित हुए, उसी समय और महावीर्यवान्॥२४॥

हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद लाल नेत्र किये युद्ध करने लगा और उस दानव वीर प्रह्लादके हाथसे युद्धकालमें जय प्राप्त किया ॥२५॥ शुक्राचार्य जयको देनेवाली क्रिया बहुत शीघ्रतासे करने लगे, और अग्निमें हवन करनेसे और ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ॥२६॥ उस समय अग्निके गंधको वहनेवाली सुंदर पवन चलने लगी,जयके अर्थ अभिमंत्रित कर अनेक प्रकारकी मालाओंको ॥२७॥ स्वयं शुक्राचार्यने प्रह्लादके शुभ शिरपर बांधी· उस महात्माके युद्धके समय॥२८॥अतिवीर्यवाले प्रह्लादके निमित्त शुक्राचार्य शांतिकर्म करने लगे; अर्थात् शुक्राचार्यके दश हजार शिष्य महात्मा

योधयामास रक्ताक्षो हिरण्यकशिपोः सुतः॥ तस्य दानववीरस्य युद्धकाले जयक्रियाः ॥२५॥ चकार त्वरया युक्तो भार्गवो विजयावहाः॥ हुताशनं तर्पयतो ब्राह्मणांश्च नमस्यतः ॥२६॥ आज्यगन्धप्रतिवहो ॥ मारुतः सुरभिर्ववौ॥स्रजश्च विविधाश्चित्रा जयार्थमभिमन्त्रिताः ॥२७॥ प्रह्लादस्य शुभे मूर्धन्यावबन्धोशना स्वयम् ॥ कालेन सह संग्रामे प्रयुद्धस्य महात्मनः ॥२८॥ प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य शान्तिं चक्रे स भार्गवः ॥ दश शिष्यसहस्राणि भार्गवस्य महात्मनः ॥२९॥ यानि दानववीराणां जेपुः शान्तिमनुत्तमाम् ॥ अथर्वाणमथो दिव्यं ब्रह्मसंस्तवचोदितम् ॥३०॥ रणप्रवेशसदृशं कर्म वैजयिकं कृतम् ॥ ततः सर्वास्त्रविदुषः समरेष्वनिवर्तिनः ॥३१॥ विद्यया तपसा युक्ताः कृतस्वस्त्ययनक्रियाः ॥ धनुर्हस्ताः कवचिनो वेगेनाप्लुत्य दानवाः ॥ बलिमभ्यर्च्य राजानं प्रह्लादं पर्यवारयन् ॥३२॥ आस्थाय परमं दिव्यं रथं पररणारुजम् ॥ नानाप्रहरणाकीर्णं सवज्रमिव पर्वतम् ॥ ३३ ॥

दानव वीरकी ॥ २९ ॥ दैत्योंकी जयके अर्थ शांतिकर्ममें जाप करने लगे; दिव्य और ब्रह्माकी स्तुतिसे प्रेरित अथर्ववेदके मंत्रसे ॥ ३० ॥ विजयका देनेवाला रणप्रवेशके समान वेदकी रीतिसे कर्म करवाता था; तब सब अस्त्रोंको जाननेवाले और युद्धसे नहीं भागनेवाले ॥ ३१ ॥ विद्यावृत्तिसे युक्त; और कल्याणरूप कर्मोंसे युक्त स्वस्तिवाचन किये और धनुषोंको हाथोंमें धारण करनेवाले और कवचोंको पहने हुए सब दैत्य बलिराजाकी पूजाकर प्रह्लादके चारों ओर स्थित हुए॥३२॥तब दिव्य और शत्रुके रथको भय देनेवाले नानाप्रकारके शस्त्रोंसे आकीर्ण वज्रसहित पवनके समान रथमें

स्थित हुए॥ ३३॥ तब एक मुहूर्तमें सेनाका कोलाहल होने लगा; जैसे मेघके आगममें मेरुके शिखरपर बिजली प्रकाशित होती है ॥ ३४ ॥ तब अनेक प्रकारकी सेना प्रकाशित होने लगी; तब कमलके फूलोंकी मालाओंसे विभूषित दैत्य युद्ध करनेके अर्थ अपने २ भ्राताओंसे मिलकर तैयार होते रणमें आये कारण कि ये रणप्रिय थे ॥ ३५॥ और बडे२ शस्त्रोंके धारणकरनेवाला श्रीमान् सुन्दर कवचको धारण करनेवाला; झिलम टोप पहने धनुषको हाथमें लिये परमदुर्जय॥ ३६॥ सेनासे संयुक्त और रथोंके बाजेसहित सहस्रों दैत्य उसके आगे चलने लगे ॥ ३७॥ उसके परम दुर्जय

तद्बभूव मुहूर्तेन क्ष्वेडितास्फोटिताकुलम् ॥ मेरोः शिखरमाकीर्णं द्यौरिवाम्बुधरागमे ॥ ३४ ॥ स्रजः पद्मपलाशानामामुच्य सुविभूषिताः ॥ बान्धवान्संपरित्यज्य निपतन्ति रणप्रियाः ॥ ३५ ॥ महायुधधरः श्रीमाञ्छुभचर्मधरः प्रभुः ॥ शिरस्त्राणतनुत्राणी धन्वी परमदुर्जयः ॥ ३६ ॥ सिंहशार्दूलदर्पाणां गदतां किङ्किणीकिनाम् ॥ तस्य दैत्यसहस्राणि प्रयान्त्यग्रे महारणे ॥ ३७ ॥ सैन्यपक्षहतास्तस्य रथाः परमदुर्जयाः ॥ सप्ततिर्वै सहस्राणि गजास्तावन्त एव च ॥ ३८ ॥ मध्ये व्यूहोदरस्थस्तु कालनेमिर्महासुरः ॥ धनुर्विस्फारयामास ननाद प्रजहास च ॥३९॥ तस्मिन् शतसहस्राणि पुरो यान्ति महाद्युतेः ॥ दानवानां बलवतां शक्रप्रतिमतेजसाम् ॥ ४० ॥ स समं वर्तमानस्तु पक्षाभ्यां विस्तृतो महान् ॥ अभवद्दानवव्यूहो दुर्भेद्यः सर्वदैवतैः ॥ ४१ ॥ षष्टी रथसहस्राणि दानवानां धनुर्भृताम् ॥ नानाप्रहरणानां च परिमाणं न विद्यते ॥ ४२ ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशैः शूलमुद्गरपट्टिशैः ॥ प्रगृहीतैर्व्यराजन्त दानवाः पर्वतोपमाः ॥ ४३ ॥

रथ शत्रुकी सेनाको मारने लगे; और सत्तर सहस्र रथ और सत्तर सहस्र हाथीके ॥ ३८ ॥ मध्यमें स्थित धनुषको कँपाता हुआ कालनेमि दैत्य शब्द करने और हँसने लगा ॥ ३९ ॥ उस महाद्युतिमानके आगे इन्द्रके समान बली सैंकडों दानव चलने लगे ॥ ४० ॥ यह पक्षोंसेमहाविस्तारको प्राप्त हो एक साथ वर्तमान होता हुआ दानवोंका व्यूह सब देवतोंको दुर्भेद्य होगया ॥ ४१ ॥ साठ सहस्र रथी संग्राममें नहीं लौटनेवाले धनुषधारी दैत्योंका परिमाण नहीं था॥ ४२ ॥ गदा, परिघ, निस्त्रिंश, शूल, पट्टिश, मुद्गरोंको ग्रहण किये दैत्य पर्वतके समान शोभित होने लगे ॥ ४३ ॥

शब्द करते हुए पुकारते हुए और महावीर्यवाले दैत्य युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ सहस्रों प्रकारके बाजे बजने लगे; अतिवेगवाले घोडे और हाथियोंके गर्जनेसे ॥ ४५ ॥ और नक्कारोंके बजनेसे आकाशके गर्जनेके समान शब्द होगे लगा; और नक्कारे भेरी आदिके शब्द सुनाई देने लगे ॥ ४६ ॥ उस शंख और भेरी तूर्येके शब्द तथा रथोंके शब्दोंसे आकाश शब्दित होने लगा ॥ ४७ ॥ सागरके समान सेनासे परिवृत और कालके समान प्रह्लाद युद्ध करने लगा ॥ ४८ ॥ तब महापराक्रमी प्रह्लादके घोर शब्द करके प्राणी और त्रिलोकी विकृत स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ४९ ॥ आकाशसे

गर्जन्तो विनदन्तश्च विक्रोशन्तः पुनः पुनः ॥ अयुध्यान्त महावीर्याः समरेष्वनिवर्तिनः ॥४४॥ तत्र तूर्यसहस्राणि भेरीशङ्खरवाणि च ॥ हयानां च गजानां च गर्जतामतिवेगिनाम् ॥४५॥ दुन्दुभीनां च निर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः॥ शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च पटहानां च निःस्वनः ॥४६॥ तेन शंखनिनादेन भेरीतूर्य रवेण च निर्घोषेग रथानां च क्रोशतीव नभस्तलम् ॥४७॥ सागरप्रतिमोघेन बलेन महता वृतः ॥ प्रह्लादोऽयुद्धचत रणे कालान्तकयमोपमः ॥ ४८ ॥ तस्य नादेन रौद्रेण घोरेणाप्रतिमौजसः ॥ विनेदुः सर्वभूतानि त्रैलोक्यविकृतैः स्वनैः ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षात्परं त्यक्त्वा वायुश्च परुषो ववौ ॥ वमन्त्यः पावकं घोरं शिवाश्चैव ववासिरे॥५०॥ प्रह्लादस्तु महावीर्यः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ उवाच वचनं श्रीमांस्तत्कालक्षमयुत्तमम् ॥ ५१ ॥ अद्याहं दर्शयिष्यामि स्वबाहुबलमूर्जितम् ॥ अद्य मद्बाणनिहतान्देवान्द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ ५२ ॥ बान्धवा निहता येषां त्रिदशैरिह संयुगे ॥ अद्य निर्वर्तयिष्यन्ति शत्रुमांसानि दानवाः ॥ ५३ ॥

उल्का गिरने लगीं; कठिन वायु चलने लगा, अग्निको प्रगट करती हुई शिवाभी प्रकाशित होने लगी ॥ ५० ॥ तब महावीर्यवान् दुर्मद श्रीमान् प्रह्लाद हँसकर उस कालके योग्य उत्तम वचन कहने लगा ॥५१॥ अब मैं अपनी बाहुके बलको दिखाऊंगा; हे दैत्यो ! अब मेरे बाणोंसे मरे हुए देवताओंको तुम देखोगे ॥५२॥ जिन दैत्योंके बांधव देवतोंने मारे हैं अब उन शत्रुओंके मासोंको वह दैत्य खावेंगे ॥ ५३ ॥

इस युद्धमें जो यह उठी हुई धूलि; उसको शत्रुओंके लोहूके छिडकनेसे शांत करूंगा ॥५४॥ अंधेराके समूहसे हत हुए सूर्य; और सेनाकी धूलिसे लोहित हुए आकाशमें पटवीजनेके समान मेरे बाण गिरेंगे ॥५५॥ और हे दैत्यो! अब तुम सब प्रसन्न होकर देवताओंसे भयको त्यागो, और अब मैं कालरूपी इन्द्रको अपने धनुषसे मारूंगा ॥ ५६ ॥ और उग्रबाणोंकरके सब देवताओंको युद्धमें जीतूंगा ॥ ५७ ॥ क्योंकि मेरे पाश तूण और सर्पोंके समान बाण अक्षयरूप हैं; और मेरे अगाडी युद्धमें जीनेकी इच्छावाले कौन ठहरनेको समर्थ हैं ॥ ५८ ॥ शत्रुओंके समूहको मारकर

इममद्य समुद्भूतं रेणुं समरमूर्द्धनि ॥ अहं तु शमयिष्यामि शत्रुशोणितविस्रवैः ॥ ५४ ॥ तिमिरौघहतार्के तु सैन्यरेण्वरुणीकृतम् ॥ आकाशं संपतिष्यन्ति सद्योता इव मे शराः ॥ ५५ ॥ हृष्टाः संपरिमोदध्वं देवेभ्यस्त्यज्यतां भयम् ॥ अद्याहं निहनिष्यामि कालेन्द्रं धनुषा रणे ॥५६॥ तोषयिष्यामि राजानं बलिं बलवतां रणे ॥ त्रिदशान्त्समगणान्हत्वा रणे चान्तकमन्तिकात् ॥५७॥ अक्षयाः सन्ति मे तूणाः शराश्चाशीविषोपमाः ॥ स्थातुं मे पुरतः शक्ताः के रणे जीवितेप्सवः ॥ ५८ ॥ हत्वा रिपुगणांस्तुष्टिरनुरागश्च राजसु ॥ हतस्व त्रिदिवे वासो नास्ति युद्धसमा गतिः ॥ ५९ ॥ तद्भयं पृष्ठतः कृत्वा रणे दानवसत्तमाः ॥ निहत्येमानरीन्त्सर्वान्मोदध्वं नन्दने वने ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वा महत्सैन्यं प्रह्लादो दानवोत्तमः ॥ कालसैन्यं महारौद्रं तरसामर्दतासुरः ॥ ६१ ॥ सर्वास्त्रविद्वान्वीरश्च नित्यं चाप्यपराजितः ॥ युद्धे ह्यभिमुखो नित्यं स्वबाहुबलदर्पितः ॥ ६२ ॥ षष्टिं रथसहस्राणि विविधायुधधारिणाम् ॥ प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य ते तस्य तनया निजाः ॥ ६३ ॥

राजाकी प्रसन्नता करूंगा और युद्धमें मरे हुओंका स्वर्गलोकमें वास होता है इस कारण युद्धके समान उत्तम गति नहीं है ॥५९॥ इस कारण सब दैत्य भयको छोडकर शत्रुओंको मारकर नंदनवनमें आनंद करो ॥ ६०॥ ऐसे दानवश्रेष्ठ प्रह्लाद दैत्य अपनी सेनासे कहकर वेगसे कालकी महारौद्र सेनाको मर्दित करने लगा॥ ६१ ॥ सब अस्त्रोंको जाननेवाला शूर नित्य अपराजित युद्धमें सन्मुख रहनेवाला और अपनी बाहुके बलसे गर्वित॥६२॥प्रह्लादके युद्धमें सन्मुख खडे होनेमें नानाप्रकारके शस्त्रोंको धारण कननेवाले दैत्योंके साठ सहस्र रथ स्थित हुए और बहुतसे प्रह्लादके पुत्र स्थित हुए॥६३॥

नानाप्रकारके यज्ञोंके करनेसे क्षमावाले और धर्म करनेवाले और नित्यप्रति व्रतोंमें परायण॥६४॥दाता और प्रिय वचनको कहनेवाले और शास्त्रोंको जाननेवाले अपनी स्त्रियोंमें रत और इन्द्रियोंको जीतनेवाले दाता ब्राह्मण भक्त,सत्य बोलनेवाले ॥६५॥ नित्यप्रति यज्ञ करनेवाले बाण और अस्त्र-विद्यामें चतुर बहुतसे पराक्रमवाले दृढ विक्रमी ॥६६॥ और मदवाले हाथीके समान चलनेवाले और शत्रुकी सेनाको मर्दन करनेवाले, अपने चरणोंसे वृक्षोंको विदीर्ण करनेवाले ॥ ६७ ॥ युद्ध करनेकी इच्छावाले; क्रोधसे रंजित नेत्रोंवाले और अपने २ ओष्ठके पुटोंको दशनेवाले; अपनी २

तैस्तु क्रतुशतैरिष्टं विपुलैराप्तदक्षिणैः ॥ क्षान्ता धर्मपरा नित्यं सत्यव्रतपरायणाः॥६४॥दातारः प्रियवक्तारो वक्तारः शास्त्रवस्तुषु ॥ स्वदारनिरता दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गगः ॥६५॥ यष्टारः क्रतुभिर्नित्यं नित्यं चाध्ययने रताः ॥ इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे बहुशो दृढ-विक्रमाः ॥६६॥ मत्तवारणविक्रान्ता शत्रुसैन्यप्रमर्दकाः ॥ दारयन्तः पदाक्षेपैः सुघोरान्वातरेचकान् ॥६७॥ युद्धोत्सुकधिया नित्यं क्रोधरञ्जितलोचनाः ॥ संदष्टौष्ठपुष्टा दैत्या विनेदुर्भीमविक्रमाः ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवैरन्योन्यं समहर्षयन् ॥६८॥ वेणुशंखरवैश्चैव सिंहनादैश्च पुष्कलैः॥आप्लुत्याप्लुत्य सहसा रणे वव्रुरनेकशः॥६९॥तालमात्राणि चापानि विकृष्य सुमहाबलाः॥ अमृष्यमाणाः सहसा दानवाश्चापपाणयः ॥७०॥ सुरासुरैरप्यजितं योधयन्ति रणेऽन्तकम् ॥ प्रतप्तहेमाभरणाः सर्वे ते श्वेतवाससः ॥७१॥ दानवा मानिनः सर्वे सर्वे स्वर्गाभिकांक्षिणः ॥ सर्वे जयैषिणो वीराः सर्वे शत्रुवधोद्यताः ॥ ७२ ॥

भुजाओंको बजाकर परस्पर प्रसन्न होनेवाले महापराक्रमी दैत्य शब्द करने लगे॥६८॥ शंख वेणु आदि अनेक प्रकारके शब्दों और बडे २ सिंहनादों-को करके कूद २ युद्धमें प्राप्त हो गर्जने लगे ॥६९॥ और कितनेक दैत्य ताडवृक्षके समान लम्बे २धनुषोंको खैंचने लगे; और कितनेक धनुषबा-णोंको हाथमें लिये असहनशील ॥ ७० ॥ सुर असुरोंसे अजित कालसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; और तपाये हुए सोनेके गहनोंको धारण किये वे सब सफेद वस्त्रोंको धारण किये ॥ ७१ ॥ अभिमानी और स्वर्गकी इच्छा और जयकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंके मारनेमें पुरुषार्थ करने-

वाले कालसे युद्ध करने लगे ॥७२॥ तब पताका ध्वजा मालासे संयुक्त हाथी घोडे रथोंसे पूर्ण और स्वर्गके मार्गकी इच्छा करनेवाली गर्वित दैत्योंकी सेना शोभायमान हुई ॥ ७३ ॥ तब भीमपराक्रमी बहुत शब्द करता हुआ बडे शरीरवाला और बहुतसी व्याधियोंसे युक्त काल चला ॥ ७४ ॥ उनसे बलवान् गर्वसे पूर्ण सन्मुख गर्जनेवाले दैत्योंकी बडी सेनाको देखा ॥ ७५ ॥ और तिस दैत्योंकी वेगवान् सेनाको आती हुई देख व्याधियोंके सहित कालने प्रतिलोम प्रकारसे घेर लिया ॥ ७६ ॥ तब दैत्योंकी सेनामें प्रवेश कर लोहूके समान लालनेत्र किये अपनी सेनासे युक्त

शुशुभे सा चमूर्दीप्ता पताकाध्वजमालिनी ॥ गजाश्वरथसंबाधा स्वर्गमार्गाभिकांक्षिणी ॥ ७३ ॥ ततः कालः सुनिर्यातो भीमो भीमपराक्रमः ॥ निनदन्सुमहाकायो व्याधिभिर्बहुभिर्वृतः ॥७४॥ ददर्श महतीं सेनां दानवानां बलीयसाम् ॥ अभिसंजातदर्पाणां कालं समभिगर्जताम् ॥७५॥ तदायान्तं तदानीकं दानवानां तरस्विनाम् ॥ प्रतिलोमं चकाराशु व्याधिभिः सहितोऽन्तकः॥७६॥ प्रविश्य ध्वजिनीं चैषां पातयामास दानवान् ॥ कालो रुधिररक्ताक्षः स्वेनानीकेन संवृतः ॥ ७७ ॥ प्रह्लादबलमत्युग्रं प्रह्लादं च महाबलम् ॥ आजघान रणे कालो दण्डमुद्गरपट्टिशैः ॥७८॥ शरशक्त्यृष्टिखड्गांश्च शूलानि मुशलानि च ॥ गदाश्च परिघाश्चैव विचित्राश्च परश्वधाः ॥७९॥ धनूंषि च विचित्राणि शतघ्नीश्च स्थिरायसीः ॥ पात्यन्ते व्याधिभिर्युद्धे दानवानां चमूमुखे ॥८०॥ बहवो व्याधयो युद्धे बहूनसुरपुङ्गवान् ॥ व्याधीनपि च दैत्यौघा निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ ८१ ॥

कालने दैत्योंकी सेनाका नाश किया ॥ ७७ ॥ और सेनाको आनंद देनेवाले प्रह्लाद दैत्यको दंड मुद्गर पट्टिशसे मारने लगा ॥ ७८ ॥ शर शक्ति ऋष्टि तलवार शूल मुशल गदा परिघ विचित्र फरसा ॥ ७९ ॥ धनुष विचित्र लोहेकी बनी शतघ्नियोंसे सब व्याधियें दैत्योंकी सेनाको मारने लगीं बहुतसी व्याधी युद्धमें दैत्योंको मारने लगीं और बहुतसे दैत्यभी बहुतसी व्याधियोंको मारने लगे ॥ ८० ॥ कोई शूलसे और कोई कोई फरसोंसे और परमायुध ॥ ८१ ॥

परिघसे, कोई तलवारसे कटे हुए तडफते पृथ्वीमें गिरे ॥ ८२ ॥ इस प्रकार व्याधियोंने दानवोंको अनेक अस्त्रोंसे विदीर्ण किया; और वेभी अनेक आयुधोंसे व्याधियोंको मारने लगे, वे दैत्य उत्तम आयुधवाली व्याधियोंसे ॥ ८३ ॥ खड्ग मुसल तीक्ष्ण प्रास तोमर मुद्गरोंसे जर्जरित हो फरसोंसे कट पृथ्वीमें गिरने लगे ॥८४॥ कितनेक मुद्गरोंसे और कितनेक पट्टिशोंसे कटे हुए, कितनेक शस्त्रोंसे कटे हुए और कितनेक मुक्कोंसे मथित हुए ॥ ८५ ॥ और कितनेक दैत्य नेत्रोंसे रहित हुए लोहूकी धार मुखसे वहाने लगे; तब कितनेक आर्त शब्द करने लगे, कितनेक सिंहके समान गर्जने लगे॥८६॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ परिघैराहताः केचित्केचिच्च परमायुधैः ॥ केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ॥ ८२ ॥ व्याधयो दानवैरेव नानाशस्त्रैर्विदारिताः ॥ ते चापि व्याधिभिः सर्वे विविधैरायुधोत्तमैः ॥ ८३ ॥ खड्गैश्च मुशलैस्तीक्ष्णैः प्रासतोमरमुद्गरैः ॥ भिन्नाश्च दानवाः सर्वे निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ८४ ॥ मुद्गरैः पट्टिशैश्चैव व्याधिभिश्च महाबलैः ॥ कृत्त्वा शस्त्रैरनेकैश्च मुष्टिभिश्च हता भृशम् ॥ ८५ ॥ वेमुः शोणितमन्योन्यं विष्टब्धदशनेक्षणाः ॥ आर्तस्वरं च नदतां सिंहनादं च गर्ज्जताम् ॥ ८६ ॥ बभूव तुमुलः शब्दः संग्रामे लोमहर्षणे ॥ मुष्टिभिश्चोत्तमाङ्गानि तलैर्गात्राणि चासकृत् ॥ ८७ ॥ सादितानि महीं जग्मुस्तिष्ठतामेव संयुगे ॥ अस्त्रफेना ध्वजावर्त्ता च्छिन्नबाहुमहोरगा ॥ ८८ ॥ शूलशक्तिमहामत्स्या चापग्राहसमाकुला ॥ रथेषूपलसंबन्धा ध्वजद्रुमलतावृता ॥८९॥ सशब्दघोरविस्तारा लोहितोदाभवन्नदी ॥ स्वधनुःशक्रधनुषौ काञ्चनाङ्गदविद्युतौ ॥ ९० ॥ तौ दैत्यकालजलदौ शरधारां व्यमुञ्चताम् ॥ तौ महामेघसंकाशौ रथनागगतौ तदा ॥ ९१ ॥

उनका युद्धमें लोमहर्षण उग्रशब्द होने लगा; कितनेक मुक्कोंकी मारसे शिरहीन हो पृथ्वीतलमें गिरे ॥ ८७ ॥ तब आंसरूपी झागोंवाली और ध्वजारूप भँवरवाली कटे हुए बाहुरूप सर्पोंवाली॥८८॥शूल शक्तिरूप महामच्छोंवाली,धनुषरूप ग्राहोंसे संयुक्त रथरूपी पत्थरोंसे संयुक्त ध्वजारूप वृक्षोंसे पूर्ण भूमि हो गई ॥८९॥ अपने कांचनांगद बिजलीके समान तथा शक्रधनुषके समान दोनों धनुषोंको ॥९०॥ धारण कर काल और

प्रह्लाद बाणोंकी वर्षा करने लगे;वे दोनों महामेघक समान रथ और हाथीपर चढे ॥९१॥ जलभरे बादलके समान क्रुद्ध हुए तप्तसुवर्णके बने वख्तर दिव्यहारसे भूषित ॥९२॥ सूर्य और वैश्वानर अग्निके समान शोभित हुए वे दोनों महाबली सेनामें एक दूसरेको ॥९३॥ वज्रके समान बाणोंसे काटने लगे; परस्परके सम्मर्दसे वह युद्ध दारुण हो गया ॥९४॥ तब दोनोंके युद्धमें योधाओंकेभी यह निश्चय हुआ कि अब जीना कठिन है तब कितनेक बाणोंसे कटे हुए सब अगोंवाले और कितनेक प्राणोंसे रहित; और कितनेक लोहूसे भीगी हुई छातीवाले योधा पृथ्वीमें गिरने लगे॥९५॥

बभूवतुरभिक्रुद्धौ साम्बुगर्भाविवाम्बुदौ ॥ तप्तकाञ्चनसन्नाहौ दिव्यहारविभूषितौ ॥९२॥ तौ विरेजतुरायत्तौ सूर्यवैश्वानरोपमौ ॥ तौ महाबलसंकाशावन्योन्यस्य चमूमुखे ॥९३॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्बाणैर्जघ्नतुराहवे ॥ परस्परं समाघ्नन्त तयोर्युधि दुरासदम्॥९४॥ नाशंसन्त तदा योधा जीवितान्यपि संयुगे॥शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गा युधि प्रक्षीणबान्धवाः॥ निपेतुर्योधमुख्यास्तु रुधिरोक्षितवक्षसः ॥९५॥ पतितैर्निष्पतद्भिश्च पात्यमानैश्च संयुगे ॥ बभूव भूः समाकीर्णा योधैरुद्धतजीवितैः ॥९६॥ अगृह्णन्त शरान्घोरांस्ते च संदधतोस्तयोः॥ अन्तरं ददृशे कश्चित्प्रयतादपि संयुगे ॥९७॥ लघुत्वाच्च महाबाहू युद्धशौण्डौ महाबलौ ॥ मण्डलीभूतधनुषो सकृदेव बभूवतुः॥९८॥ प्रह्लादस्य च बाणौघैर्दुद्रावान्तकवाहिनी ॥ उह्यमाना बलवता वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥९९॥ हतदर्पं तु विज्ञाय प्रह्लादः कालमाहवे ॥ अपयातं च समरे द्विषन्तं संप्रतर्क्य तम् ॥१००॥ मत्वा वशगतं चैव प्रह्लादो युद्धदुर्मदः॥तत्रैवान्यां चमूं भूपः संममर्द महासुरः ॥१॥

गिरने गिरानेवालोंके गिरने गिरानेसे उन प्राणरहितोंसे पृथ्वी समाकीर्ण हो गई॥९६॥कोई भी उस समय उन दोनोंका यह अन्तर नहीं देख सका; कि वे कब धनुष चढाते और बाण छोडते हैं॥९७॥शीघ्रपनेसे दोनों महाबाहु महाबलवाले मंडलीकृत धनुषोंको धारण करे एकसेही दीखने लगे॥९८॥ प्रह्लादके बाणोंके समूहसे कालकी सेना कटती हुई भागने लगी जसे वायुसे मेघसमूह भागते हैं ॥ ९९ ॥ तब प्रह्लादने कालको हतदर्प जानकर कि अब समरसे भागा चाहता है और द्वेषयुक्त है ऐसा उसको विचार कर ॥१००॥ अपने वशमें जानकर युद्धमें दुर्मद प्रह्लाद धर्मराजकी सेनाको फिर

मर्दन करने लगा॥१॥काल और प्रह्लादका परस्पर ऐसा युद्ध होने लगा कि न कभी पहले हुआ और न कभी अगाडी होगा ॥२॥ अद्भुतवीर्यवाला महारणमें प्रहार करनेवालाप्रह्लाद वृद्धिको प्राप्त हुआ;और काल युद्धसे चला गया॥१०३॥इतिश्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥ वैशम्पायन कहने लगे;प्रह्लादका छोटा भ्राता अनुह्लाद अपनी सेनाको ले यक्षोंकी सेनाको क्षोभित करता हुआ कुबेरके संग युद्ध करने लगा ॥१॥ अर्थात् बहुतसी सेनाको ले अति प्रतापवाला धनाध्यक्ष कुबेरको पीडित करने लगा ॥ २ ॥ और शस्त्रोंको

कालप्रह्लादयोर्युद्धमभवद्यादृशं पुरा ॥ तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति ॥ २ ॥ एवमद्भुतवीर्यौजा महारणकृतव्रणः ॥ प्रह्ला-दस्त्वथ वृद्धोऽत्र कालस्त्वपसृतो रणात् ॥१०३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कालप्रह्लादयुद्धे एकोनषष्टि-तमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ धनाध्यक्षमनुह्लादः प्रह्लादस्यानुजो बली ॥ ससैन्यं योधयामास क्षोभयन्यक्षवाहि-नीम् ॥१॥ महता च बलौघेन त्वनुह्लादोऽसुरोत्तमः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धो धनाध्यक्षं प्रतापवान् ॥२॥ अमृष्यमाणांस्त्रिदशानाह-वस्थानुदायुधान् ॥ चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्महासुरः ॥ ३ ॥ आवर्त इव संजज्ञे बलस्य महतो महान् ॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव संप्लवः ॥ ४ ॥ त्रिदशानां शरीरैस्तु दानवानां च मेदिनी ॥ बभूव निचिता घोरैः पर्वतैरिव संप्लवे ॥ ५ ॥ मेरुपृष्ठं तु रक्तेन रञ्जितं संप्रकाशते ॥ सर्वतो माधवे मासि पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥ ६ ॥ हतैर्वीरैर्गजैरश्वैः प्रावर्तत महानदी ॥ शोणितौघा महाघोरा यमराष्ट्रविवर्द्धिनी ॥७॥ शकृन्मेदोमहापङ्का संप्रकीर्णान्त्रशैवला ॥ छिन्नकायशिरोमीना अङ्गावयवशाड्वला ॥ ८ ॥

धारण करनेवाले और युद्धमें स्थित देवताओंको नहीं सहता हुआ अनुह्लाददैत्य धनुषको हाथमें लेकर देवताओंकी सेनाको काटने लगा ॥३॥ उस समय सेनाका बडा घममान हुआ; जैसे प्रलयमें सागर क्षुभित हो जाता है ॥ ४ ॥ तब देवते और दैत्योंके शरीरोंसे पृथ्वी पर्वतोंके समान व्याप्त हो गई॥५॥और मेरुपर्वतका पृष्ठभाग लोहुसे रंगा हुआ प्रकाशित होने लगा जैसे वैशाखमें टेसूके फूलोंसे चारों ओर प्रकाश होता है ॥६॥ तब मरे हुए वीर हाथी और घोडोंसे व्याप्त महाघोर यमराष्ट्रकी बढानेवाली नदी प्रवृत्त हुई॥७॥विष्ठा और मेदरूपकी चवाली और आंतरूपी शैवालसे युक्त

छिन्नकायावाले शिररूप मछलियोंसे व्याप्त अंगके अवयवरूप शाड्वलसे पूर्ण॥८॥कंक सारस आदि पक्षियोंसे शब्दित वसारूप झागोंसे आकीर्ण और मेघोंके समान शब्द करनेवाली॥९॥ कायर पुरुषोंको दुष्पार लोहूकी नदी गरमीके अवसानमें हंससमूहसे युक्त दीखने लगी ॥ १० ॥ उस नदीको दैत्य और देवते तिरने लगे,जैसे पद्मरजसे ध्वस्त हुई कमलनीको हाथी तरते हैं॥११॥पीछे बाणोंको छोडनेवाले रथमें स्थित और यक्षोंकी सेनाको मारनेवाले अनुह्लादको देखकर ॥ १२ ॥ क्रोधको प्राप्त हो कुबेर दैत्योंकी सेनाको काटने लगा जैसे वायु आकाशसे मेघोंको भगाती है ॥ १३ ॥

गृध्रहंससमाकीर्णा केकिसारसनादिता ॥ वसाफेनसमाकीर्णा प्रोत्कृष्टस्तनितस्वरा ॥९॥ तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमौ महानदीम्॥ नदीमिवातपापाये हंससंघोपशोभिताम् ॥१०॥ त्रिदशा दानवाश्चैव तेरुस्ते दुस्तरां नदीम् ॥ यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गज-यूथपाः ॥ ११ ॥ ततः सृजन्तं बाणौघाननुह्लादं रथे स्थितम् ॥ ददर्श तरसा देवो निघ्नन्तं यक्षवाहिनीम् ॥ १२ ॥ क्रुद्धस्ततो दैत्यबलं सूदयामास वित्तपः ॥ विक्षिपन्निव खे वायुर्महाभ्रपटलं बलात् ॥१३॥ समीक्ष्य तुमुलं युद्धमनुह्लादश्च वीर्यवान् ॥ रथेना-दित्यवर्णेन कुबेरमभिदुद्रुवे ॥१४॥ स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य रणमूर्धनि॥ उत्ससर्ज शितान्बाणान्वित्तेशस्य महात्मनः ॥१५॥ कुबेरं प्राप्य ते बाणा निर्भिद्य सुसमाहिताः ॥ अपरान्पृष्ठतो जघ्नुर्व्यासक्तान्यक्षराक्षसान् ॥ १६ ॥ देवः शरैरभिहतो निशितैर्ज्व-लनोपमैः॥ अनुह्लादं प्रत्युदियात्संक्रुद्धः परमाहवे ॥१७॥ ततो वैश्रवणो राजा क्रुद्धो यक्षगणैः सह ॥ ववर्ष शरवर्षाणि दानवं प्रति वीर्यवान् ॥ १८ ॥ तद्यथा शारदं वर्षं गोवृषः शीघ्रमागतम् ॥ अपारयन्वारयितुं प्रतिगृह्णन्निमीलितः ॥ १९ ॥

तब तिस उग्र युद्धको देख अनुह्लाद दैत्य आदित्य वर्णवाले रथमें स्थित हो कुबेरके सन्मुख चला ॥ १४ ॥ धनुषविद्यावालोंमें श्रेष्ठ अनुह्लाद युद्धमें धनुष खैंचकर पैंने२बाणोंकी वर्षा महात्मा कुबेरके ऊपर करने लगा ॥१५॥ तब वे बाण कुबेरको वेधकर पृष्ठभागमें स्थित हुए यक्षराक्षसोंको भी मारने लगे ॥१६॥ अग्निके समान प्रकाशवाले और पैने बाणोंसे हत हुए कुबेरजी युद्धमें क्रोधको प्राप्त हो अनुह्लाद दैत्यके सन्मुख धावमान हुए॥१७॥ तब बहुतसी यक्षोंकी सेनासे युक्त अतिवीर्यवान् दानवपर कुबेर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥१८॥पीछे जैसे शरदऋतुमें वर्षाकी बूंदोंको गाय और बैल

शिरपर सहते हैं तैसे वह अनुह्राद दैत्य बाणोंकी वर्षाको नेत्र मीच सहन करने लगा ॥ १९ ॥ इस प्रकार वह महाअसुर कुबेरकी दारुण बाणवर्षाको सहसा नेत्र मीचकर सहन करने लगा ॥२०॥ तब बाणोंकी वर्षासे क्रोधको प्राप्त हुआ अनुह्राद त्य अपने सन्मुख इन्द्रकी केतुके समान प्रकाशवान् ॥२१॥ बढी हुई शाखाओंवाले फलोंसे युक्त वृक्षको देख उसी समय उखाड हाथमें ग्रहण कर ॥२२॥ महात्मा कुबेरके अतिवेगवाले घोडोंको मारता हुआ, तब अनुह्रादके इस महत् कर्मको देखकर सब महाअसुर ॥ २३ ॥ सिंहोंके समान शब्द करने लगे, पीछे अनुह्राद और कुबेरका

एवमेव कुबेरस्य शरवर्षं महासुरः ॥ निमीलिताक्षः सहसा दैत्यः संहति दारुणम् ॥२०॥रोषितः शरवर्षेण धनदेन महासुरः॥इन्द्रकेतुप्रतीकाशमभितोऽपश्यत द्रुमम् ॥२१॥ प्रवृद्धशाखाविटपं तरुणाङ्कुरपल्लवम् ॥ उत्पाट्य कुपितो दैत्यस्तरुं फलसमन्वितम्२२॥ निजघान हयाञ्छ्रेष्ठान्कुबेरस्य महात्मनः ॥ तस्य कर्म महाघोरं दृष्ट्वा सर्वे महासुराः॥२३॥सिंहनादं नदन्ति स्म अनुह्रादप्रहर्षिताः तयोस्तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे देवदैत्ययोः ॥२४॥ ततस्तौ क्रोधरक्ताक्षावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ अन्योन्यं विविधैः शस्त्रैर्घोरैर्जघ्नतुराहवे ॥२५॥ त्रिदशा दानवान्सर्वैं मथित्वा प्राणदंस्तदा ॥ दानवैस्त्रिदशाश्चापि क्रुद्धैर्भुवि निपातिताः॥२६॥ दानवास्त्वथ संक्रुद्धास्त्रिदशान्निशितैः शरैः॥ विव्यधुर्वज्रसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥२७॥ विदार्यमाणा दैत्यौघैस्त्रिदशास्तु महाबलाः ॥ अमर्षिततराश्चक्रुर्युद्धकर्माण्यभीतवत् ॥२८॥ ते गदाभिः सुभीमाभिः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः ॥ परिघैश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्दानवाः पीडिताः शरैः॥२९॥

दारुण युद्ध परस्पर होने लगा ॥२४॥ तबक्रोधसे लालनेत्रोंवाले परस्पर मारनेकी इच्छावाले दोनों नानाप्रकारके घोरशस्त्रोंसे युद्धमें काटने लगे ॥२५॥ बलवाले देवताओंने बहुतसे दैत्य मार दिये; और क्रोधको प्राप्त हुए दैत्योंने बहुतसे देवते पृथ्वीतलमें गेर दिये ॥ २६ ॥ क्रोधको प्राप्त हुये दैत्य अग्निके समान प्रकाशवाले और कंकपक्षीकी पांखोंसे संयुक्त टेढे नहीं चलनेवाले पैने बाणोंसे देवतोंको बींधने लगे ॥ २७ ॥ तब दैत्योंके समूहसे कटते हुए देवता क्रोध कर भयसे रहित हो कर्म करने लगे ॥ २८ ॥ भयंकर गदा पट्टिश शूल मुद्गर तीक्ष्ण परिघ बाणोंसे दैत्योंको पीडा देने

लगे ॥२९॥ बाणोंसे भिन्न शरीर छातीवाले शस्त्रोंसे पीडित हुए दत्य पत्थर और वृक्षोंको ग्रहणकर ॥ ३० ॥ वारंवार वीर्यसे लाखों देवताओंको तर्जन कर सहस्रों लाखोंको मर्दन करने लगे ॥३१॥ तब बडे२ पत्थर और बडे२ वृक्षोंसे उनका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥ परिघ पट्टिश भिंदिपाल फरसोंसे कितनोंके शिर काटे गये;और कितनोंके शरीर काटे गये॥३३॥और कितनेक मरके लोहूसे भीगे हुए पृथ्वीमें गिरे;और कितनेक परस्पर भाजते हुए ॥३४॥ और कितनोंके हृदय कटते हुए; और कितनेक पैरोंके कट जानेसे पृथ्वीमें गिरे, कोई त्रिशूल लगनेसे प्राणरहित

शरनिर्भिन्नगात्राश्च खड्गविच्छिन्नवक्षसः ॥ जगृहुस्ते शिलाश्चैव द्रुमांश्चासुरसत्तमाः ॥३० ॥ ते भीमसंगा दितिजा नर्दमानाः पुनः पुनः ॥ ममन्थुस्त्रिदशान्वीर्याच्छतशोऽथ सहस्रशः॥३१॥ततस्तु तुमुलं युद्धं तेषां समभिवर्त्तत ॥ शिलाभिर्विपुलाभिश्च शतशश्चैव पादपैः ॥ ३२ ॥ परिघैः पट्टिशैर्भल्लैर्भिण्डिपालैः परश्वधैः ॥ केचिन्निकृत्तशिरसाः केचिच्च विदलीकृताः ॥ ३३ ॥ केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्राः सुरासुराः ॥ केचिद्रणाजिरान्नष्टाः परस्परवधार्दिताः ॥३४॥ विभिन्नहृदयाः केचिच्छिन्नपादाश्च शेरते ॥ विदारिता स्त्रिशूलैश्च केचित्तत्र गतासवः ॥३५ ॥ तत्सुभीमं महद्युद्धं देवदानवसंकुलम् ॥ बभूव तुमुलं युद्धं शिलापादपसंकुलम् ॥ ३६ ॥ धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ॥ आर्त्तस्तनितघोषाढ्यं युद्धं गान्धर्वमाबभौ ॥३७॥ कुबेरः स धनुष्पाणिर्दानवान् रण मूर्द्धनि ॥ दिशो विद्रावयामास संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः ॥३८॥ कुबेरेणार्दितं सैन्यं विद्रुतं प्रेक्ष्य दानवः ॥ अभ्यद्रवदनुह्रादः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ३९ ॥ क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ॥ शिलां तां पातयामास कुबेरस्य रथोत्तमे ॥ ४० ॥

हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकार देवता और दैत्योंका शिलावृक्षोंसे महाघोर युद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ तन्त्रीके समान शब्दायमान धनुषकी ज्या हिचकीरूपी ताल आर्तस्वरसे वह युद्ध गंधर्वके समान शोभित हुआ ॥३७॥ तबकुबेर धनुषको धारण कर क्रोधको प्राप्त हो बाणोंकी वर्षासे दैत्योंको दिशाओंमें भगाने लगा ॥३८॥ तब कुबेरसे पीडित भागती हुई सेनाको देख अनुह्राद एक बडी शिला ग्रहण कर ॥३९॥ क्रोधसे दुगुने लालनेत्र कर

और पिता हिरण्यकशिपुके समान पराक्रमीने उस शिलाको ग्रहण कर कुबेरके उत्तम रथपर फेंका ॥ ४० ॥ तब गदाको धारण करनेवाले कुबेर आती हुई शिलाको देख वेगसे रथसे कूद पृथ्वीमें प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तब चक्र कूबेर ध्वजा घोडे शरासन आदिसे संयुक्त रथको तोड वह शिला पृथ्वीमें गिरी॥४२॥इस प्रकार कुबेरके रथको तोड अनुह्राद दैत्य वृक्षोंसे देवताओंकी सेनाको मारने लगा ॥ ४३ ॥ तब कटे हुए शिरोंवाले लोहूसे भीजे हुए बहुतसे देवता पृथ्वीमें गिरे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार देवताओंकी सेनाको काटकर पर्वतके बडे शृङ्गोंको ग्रहणकर अनुह्राद कुबेरके ऊपर

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः ॥ रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत॥४१॥ सचक्रकूबरहयं सध्वजं सशरासनम्॥ भङ्क्त्वा रथोत्तमं तस्य निपपात शिला भुवि॥४२॥ विमथ्य तु कुबेरस्य प्रह्रादस्यानुजो रथम् ॥ शूराणां कदनं चक्रे सस्कन्ध-विटपैर्द्रुमैः ॥ ४३ ॥ निर्भिन्नशिरसो भग्नास्त्रिदशाः शोणितोक्षिताः ॥ द्रुमप्रव्यथितांगाश्च निपेतुर्धरणीतले ॥ ४४ ॥ विद्राव्य विपुलं सैन्यमनुह्रादो महासुरः ॥ गिरिशृंगं गृहीत्वा तु कुबेरमभिदुद्रुवे ॥४५॥ तमापतन्तं धनदो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ॥ विन-दित्वाह्वयामास दानवेन्द्रं महाबलम् ॥४६॥ तस्य दैत्यस्य संक्रुद्धो गदां तां बहुकण्टकाम् ॥ न्यपातयत वित्तेशो दानवस्योरसि प्रभो ॥ ४७ ॥ दैत्यः संक्रोधताम्राक्षस्तं प्रहारमचिन्तयत् ॥ वित्तेशस्योपरि तदा गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ ४८ ॥ स विह्वलित सर्वाङ्गो गिरिशृंगेण ताडितः ॥ पपात सहसा भूमौ विशीर्ण इव पर्वतः ॥४९॥ वित्तेशं विह्वलं दृष्ट्वा सर्वे ते यक्षराक्षसाः ॥ परिवार्य महात्मानं ररक्षुर्भीमविक्रमाः ॥५०॥ मुहूर्तं विह्वलो भूत्वा पुनर्विश्रवसः सुतः ॥ उपतस्थे च सहसा धनदः क्रोधमूर्च्छितः ॥५१॥

झपटा ॥४५॥ उस आते हुए दैत्यको देख गदाको धारण कर कुबेरने उस दानवेन्द्रको बुलाया ॥ ४६ ॥ और क्रोधकर उस दैत्यकी बहुत कांटोंसे युक्त गदाको कुबेरने दानवके ऊपर प्रहार किया॥४७॥दैत्यने क्रोधकर उस प्रहारको न विचारकर कुबेरके ऊपर गिरिशृंगका प्रहार किया ॥ ४८ ॥ तब पर्वतके शृंगसे ताडित और विह्वल हो पीले नेत्रोंवाले कुबेर पृथ्वीमें गिरे जैसे छिन्न पर्वत ॥ ४९ ॥ तब विह्वलरूप कुबेरको देख सब यक्ष और राक्षस चारों तरफसे महात्माको घेर रक्षा करते हुए॥५०॥दो घडीतक विह्वल रहकर विश्रवसके पुत्र वेगसे क्रोधकर उठे ॥ ५१ ॥

और त्रिलोकीको शब्दित करता हुआ कुबेर फिर शब्द करने लगा जिससे पर्वत कंपित होने लगे ॥ ५२ ॥ उस कुबेरके फिर उठनेसे और अपनी ओर आया देख अवध्यरूप जानकर दानव पलायन कर गये ॥ ५३ ॥ तिन भागते हुए दैत्योंसे अनुह्राद कहने लगा कि दर्पयुक्त कालनेमि सुनेमि महानेमि दैत्योंको ॥५४॥ अपनेको अपने वीर्यको और अपने कुलको भूलकर भयसे प्राकृत मनुष्योंके समान कहां भागे जाते हो ॥ ५५ ॥ हे महावीया ! कहां गमन करते हो लौट आओ; क्या प्राणोंकी रक्षा करते हो, यह कुबेरके युद्धके अर्थ समर्थ नहीं

स ननाद महानादं त्रैलोक्यमभिनादयन् ॥ जनयन्निव निर्घोषं विधमन्निव पर्वतान् ॥ ५२ ॥ तमवध्यं तु विज्ञाय निहन्तुं पुनरुत्थितम् ॥ प्रेक्ष्य पिङ्गाक्षमायान्तं दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥५३॥ तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वानुह्रादो ह्यसुरो ब्रवीत् ॥ कालनेमिं दानवं च वीर्यदर्पसमन्वितम् ॥५४॥ आत्मानं चैव वीर्यं च विस्मृत्याभिजनं तथा ॥ क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता इव दानवाः ॥५५॥ निवर्तध्वं महावीर्याः किं प्राणान् परिरक्षथ ॥ नालं युद्धाय यक्षोऽयं महतीयं विभीषिका ॥५६॥ एतां विभीषिकामद्य दानवानां समुत्थिताम् ॥ विक्रम्य विधमिष्यामि निवर्त्तध्वं महासुराः ॥५७॥ तेऽसुराः सन्निवृत्ताश्च समदा इव कुञ्जराः ॥ निजघ्नुः परमक्रुद्धा देवसैन्यं महासुराः ॥ ५८ ॥ क्षीणप्रहरणाः केचिन्महा मेघनिभस्वनाः ॥ दर्पोत्कटा भुजैरेव संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ५९ ॥ प्रांशुभिश्चैव काष्ठैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥ बाहुभिश्च तथान्योन्यमाक्षिपन्ति स्म वेगिताः ॥ ६० ॥ मुष्टिभिश्च तलैश्चैव नखपातैर्महाबलाः ॥ पादपैश्च महाशाखैरयुध्यन्त रणाजिरे ॥ ६१ ॥

हैं; ॥५६॥ और यह हमारी सेना बडी भय मानती है; अपने पराक्रमसे दानवोंको भयदायक इस महाभयको विक्रम करके मारूंगा तुम सब चले आओ ॥ ५७ ॥ तब सब दैत्य उलटे फिरकर क्रोधको प्राप्त हो मतवाले हाथीके समान देवताओंकी सेनाको मारने लगे ॥५८॥ और जब युद्धमें शस्त्र टूट गये तब गर्वके प्रतापसे भुजाओंके द्वारा प्रहारकर महामेघके समान गर्जने लगे ॥ ५९ ॥ और कितनेक धूलि और कितनेक काष्ठोंसे, और कितनेक हाथोंसे वेगसे मारने लगे ॥ ६० ॥ और कितनेक मुक्कों, कितनेक नखों और कितनेक महाशाखावाले वृक्षोंसे दैत्य और देवते युद्ध करने

लगे ॥६१॥ तब क्रोधको प्राप्त हुआ अनुह्राद दैत्य देवताओंकी महासेनाको वनकी अग्निकी समान जलाने लगा ॥ ६२ ॥ तब लोहूसे भीजे हुए बहुतसे योधा गिरने लगे और लाल फूलवाले वृक्षोंके समान पृथ्वीमें गिरे ॥ ६३ ॥ कुबेरने क्रोधकर सर्पोंके समान बाणोंसे अनुह्राद दैत्यको वींधा, तब अनुह्रादके मुखसे बहुतसी अग्नि निकलने लगी ॥६४॥ पीछे अनुह्राद दैत्य कुबेरको सहस्रों बाणोंसे क्रोधकर कालके समान वींधने लगा॥६५॥ तब बाणोंसे वींधे हुए और चारों तरफसे लोहूसे भीजे हुए कुबेरके शरीरसे बहुतसा लोहू पर्वतके झरनेके समान झरने लगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ तब

अनुह्रादस्तु संक्रुद्धो देवतानां महाचमूम्॥ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः॥६२॥रुधिरार्द्रास्तु बह्वः शेरते योधसत्तमाः॥ विकृताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥६३॥ अनुह्रादश्च विक्रान्तो देवांस्त्वाशीविषोपमान् ॥ युध्यमानस्य समरे व्यसृजन्नि-शिताञ्छरान् ॥६४॥ धनाधिपेन विद्धस्य अनुह्रादस्य संयुगे॥अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः॥६५॥ अथ बाणसहस्रेण वित्तेशं दानवोत्तमः ॥ विव्याध स शरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ६६ ॥ कुबेरस्तु शरैर्भिन्नः समन्तात्क्षतजोक्षितः ॥ रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥६७॥लब्ध्वा स तु पुनः संज्ञां रोषरक्तेक्षणः सुरः॥गदामथ समासाद्य भीमां भीमपराक्रमः ॥ चिक्षेप दैत्यमुद्दिश्य बलात्क्रोधेन मूर्च्छितः॥६८॥आप्राप्तामन्तरे सोऽथ तां गदां गदयासुरः॥बभञ्ज विनदन् क्रुद्धस्तदाश्चर्यमभूत्तदा ॥६९॥ प्रगृह्य तु गदां भूयो ह्यभिदुद्राव दानवम् ॥ तमापतन्तं दृष्ट्वैव अनुह्रादो महाबलः ॥ ७० ॥ गिरिशृङ्गमिवोत्पाट्य कैलासाचलस-न्निभम् ॥ धनाधिपं प्रदुद्राव व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ७१ ॥

फिर संज्ञाको प्राप्त हो महापराक्रमी कुबेरने गदाको ग्रहणकर लाल आंखें कर बडे क्रोधसे दैत्यको गदा मारी॥६८॥ तब अनुह्रादने अपनी गदासे वह गदा मार्गमेंही तोड दी;और महाशब्द किया यह बडा आश्चर्य हुआ॥६९॥फिर दूसरी गदाको ग्रहण कर कुबेर दैत्यके सन्मुख जाने लगे महाबली अनुह्राद उसे आता देख ॥७०॥ तब कैलासपर्वतके समान कांतिवाले पर्वतके शृंगको ग्रहणकर अनुह्राद कुबेरके सन्मुख मुख फैलाये कालके समान

चला ॥७१॥ सम्पूण देवताओंसे अजेय कालके समान उसे आता देख कुबेर युद्ध छोड इन्द्रके निकट गये ॥७२॥७३॥ इस प्रकार कुबेर उस महाकर्मको देख भयसे इन्द्रके समीप चला गया ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥ वैशंपायन बोले; दैत्योंका स्वामी विप्रचित्ति दैत्य प्रकाशरूप और सर्पोंके समान बाणोंसे अविनाशी वरुणको वींधने लगा ॥१॥ तब दैत्यके बाणोंसे दग्ध होते हुए वरुणने युद्धमें कर्तव्यको नहीं जाना ॥ २ ॥ जसे सर्वलोकके स्वामी विष्णुके अगाडी ब्रह्माजी स्थित

तमन्तकमिवायान्तमजेयं सकलैः सुरैः ॥ ग्रसन्तमिव तं दैत्यं त्रैलोक्यमखिलं रुषा ॥७२॥ तमालोक्य तथाभूतं धनाध्यक्षो रणं भयात् ॥ अपहाय ययौ तत्र यत्र शक्रः सुराधिपः ॥७३॥ तस्य चापि महत्कर्म दृष्ट्वा वित्तपतिस्तदा ॥ जगाम भयसंत्रस्तो यत्र देवः शचीपतिः ॥७४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अनुह्रादकुबेरयुद्धवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विप्रचित्तिस्तु वरुणं दैत्यानामादिरव्ययम् ॥ जघानेषुगणैः क्रुद्धो दीप्तैरिव महोरगैः॥ १ ॥ स दह्यमानो दैत्येन दीप्तैःशरगभस्तिभिः ॥ नाभ्यजानत कर्तव्यं संग्रामे स जलेश्वरः ॥२॥ सर्वलोकेश्वरस्यैव परमेष्ठी प्रजापतिः॥ न शक्नोत्यग्रतः स्थातुं विप्रचित्तेर्जलाधिपः ॥३॥ वज्रो नाम महाव्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ॥ तं व्यूह्य प्रत्ययुध्यन्त दानवा देववाहिनीम् ॥ ४ ॥ वह्निज्वालासमं तत्र रविमण्डलसन्निभम् ॥ मुखमाभाति दैत्यस्य विप्रचित्तेर्महात्मनः ॥ ५ ॥ वरुणस्तु महातेजा विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ प्रदहन्निव तेजोभिर्जिगीषुः प्रत्यवैक्षत ॥ ६ ॥

होनेको समर्थ नहीं है; तैसे विप्रचित्ति दैत्यके सन्मुख वरुण स्थित होनेको समर्थ नहीं हुए ॥ ३ ॥ और वज्रनाभ व्यूहको रचकर सब दैत्य देवताओंकी सेनाके संग युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ और अग्निकी लटाके समान प्रकाशित और सूर्यके मंडलके समान तेजवान् विप्रचित्ति दैत्यका मुख उस समयमें हो गया ॥ ५ ॥ तब महातेजवाले वरुण विप्रचित्ति दैत्यको अपने नेत्रोंके तेजसे दग्ध करते

हुए; और जीतनेकी इच्छासे दैत्यके सन्मुख दीखने लगे॥६॥और मालाआदियोंसे भूषित केयूर अंगदवाले दैत्यने पांच अंगुलके अंतरसे युक्त और कैलासपर्वतके शिखरके समान परिघ ग्रहण किया ॥ ७॥ जो सोनेकी डोरियोंसे बंधा हुआ धर्मराजके दंडके समान दैत्योंके भय दूर करनेवाला था ॥८॥ उस परिघशस्त्रको जो इन्द्रध्वजके समान था क्रोधसे विप्रचित्ति दैत्य ग्रहण कर भ्रमाने लगा और मुख फैलाकर शब्द करने लगा ॥९॥ तब कंठमें स्थित धुकधुकी और भुजाओंमें स्थित बाजुओंसे और विचित्ररूप कुंडलों और विचित्र मालाओंसे॥१०॥इस प्रकार भूषण और तिस

स्रग्दाममालाभरणः केयूराङ्गदभूषणः ॥ जग्राह परिघं दैत्यः कैलासशिखरोपमम् ॥ ७ ॥ पिनद्धं काञ्चनैः पट्टैर्हेममालिनमायसम्॥ यमदण्डोपमं घोरं दैत्यानां भयनाशनम् ॥ ८ ॥ भ्रामयामास संक्रुद्धो महाशक्रध्वजोपमम् ॥ विननाद विवृत्तास्यो विप्रचित्तिर्महासुरः ॥ ९ ॥ स कण्ठस्थेन निष्केण भुजस्थैरपि चाङ्गदैः ॥ कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां भ्राजते काञ्चनस्रजा ॥ १० ॥ दानवो भूषणैर्भाति परिघेणायसेन च ॥ यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ११ ॥ प्रस्फुरत्परिघास्त्रेण वातस्कन्धान्महास्वनः ॥ जज्वाल च सधूमार्चिः साङ्कर्षण इवानलः ॥ १२ ॥ विद्याधरगणैः सार्द्धं गन्धर्वनगरैरपि ॥ सह चैवामरावत्या सिद्धलोकैस्तथा सह ॥ १३ ॥ ग्रहनक्षत्ररचितं सार्कचन्द्रविभूषितम् ॥ दैत्येन्द्रपरिघोद्धूतं भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ १४ ॥ दुरासदः सुसंजज्ञे परिघाभरणक्षमः ॥ सुरेन्धनोऽसुरेन्द्राग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १५ ॥

लोहेके परिघसे विप्रचित्ति शोभित होने लगा जैसे इन्द्रके धनुष विजली और गर्जनसे मेघ शोभित हों॥११॥उस महापरिघास्त्रसे स्फुरायमान पवनके समान महाशब्दायमान होता हुआ प्रलयाग्निके समान क्रोधसे जल उठा ॥१२॥ तब आकाशचारी विद्याधरोंके समूह गंधर्वनगर और अमरावती और सिद्धलोकोंके सहित ॥१३॥ ग्रहनक्षत्रसे रचित सूर्य और चंद्रमासे विभूषित आकाश विप्रचित्तिके परिघके फेंकनेसे भ्रमने लगा ॥ १४ ॥ वह परिघ बडा दुरासद हो गया कोई उसको धारण न कर सका; देवतारूपी ईंधनको जलानेवाली असुरोंकी अग्नि कालाग्निकी समान स्थित हुई ॥१५॥

तब वरुण और सब देवते भयसे वहां ठहरनेको समर्थ न हुए; तहां अकेला इन्द्रही निर्भय हो स्थित रहा सूर्यके समान तेजवाले घोर क्रूर दर्शन उस परिघको विप्रचित्ति दैत्यने॥१६॥वरुणके सेनापर फेंका, वह संग्राममें गिरकर महात्मा वरुणकी॥१७॥एक लक्ष सेनाको नष्ट करता हुआ अर्थात् देवतोंके शरीरोंके सहस्रों टुकडे हो गये॥१८॥और विशीर्यमाण हुए आकाशमें उल्काके समान प्रकाशित हुए तब फिर घुमाकर वरुणपर फेंका॥१९॥ तब तिस प्रहारके पडनेसे वरुणके शरीरसे वह टूट गया; और वरुणका शरीर क्षत विक्षत हो गया॥२०॥उसके लगनेसे वरुण चलायमान न हुआ.

त्रिदशा वरुणश्चैव न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥ तत्रासीन्निर्भयस्त्वेकः कौशिको वासवः प्रभुः ॥ भास्करप्रतिमं घोरं परिघं रौद्रदर्शनम् ॥ १६ ॥ पातयामास सेनायां जलेशस्य स दानवः ॥ पतता तेन संग्रामे जलेशस्य महात्मनः ॥ १७ ॥ भूतानां शतसाहस्रं परिघेण समाहतम् ॥ तेषां गात्राणि चासाद्य व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥ १८ ॥ विशीर्यमाणं विबभावुल्काशतमिवाम्बरे ॥ भूयश्चैनं तदाभ्राम्य वरुणाय न्यपातयत्॥१९॥ पात्यमाने तदा तस्मिञ्छरीरे वारुणे तदा॥ स भिन्नः परिघो घोरो देवगात्रे व्यशीर्यत॥२०॥ शीर्यमाणस्य चूर्णानि खद्योता इव चाम्बरे ॥ स तु तेन प्रहारेण न चचाल जलाधिपः॥२१॥परिघेण हतः संख्ये यथा वज्रहतोऽ-चलः॥स्वसैन्येष्वपि भग्नेषु भिन्नदेहेषु चाहवे॥२२॥मुहूर्त्तमभवत्क्षोभ्यमपाम्पतिरमर्षणः॥सोऽमर्षं च समापन्नो वरुणोऽमितविक्रमः ॥ २३ ॥ सर्वसंहारमकरोत्स्वपक्षस्यारिमर्द्दनः ॥ स सागरैश्चतुर्भिश्च वृतो दीप्तैश्च पन्नगैः ॥ २४ ॥ शङ्खमुक्तामणिचितो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥ पाण्डुरोद्धूतवसनो नानारत्नविभूषितः ॥ २५ ॥

जैसे भूमिकंपमें पर्वत ॥ २१ ॥ और वह युद्धमें परिघसे वज्रसे हत हुए पर्वतके समान ताडित हुए तब संग्राममें अपनी सेनाको भिन्न देखकर ॥२२॥ दो घडीतक अतिबलवान् वरुण क्रोधको प्राप्त हो महापराक्रमी जलपति ॥२३॥ शत्रुओंका संहार करने लगे, और चार समुद्रोंसे परिवृत बहुतसे प्रकाशमान् सर्पोंसे युक्त॥२४॥शंख मोती मणिसे शोभित जलमय शरीरको धारण किये सफेद वस्त्रोंको धारण किये नानाप्रकारके रत्नोंसे जटित॥२५॥

बाजुबंधको धारण किये फांसियोंको लिये कछुये और मच्छियोंसे युक्त वरुण क्रोधको प्राप्त हो अपनी सेनाको देख॥ २६॥ कहने लगे कि हे देवताओ! दैत्योंको मारनेकी इच्छा करके युद्ध करो; और मैं इस विप्रचित्तिको मारूंगा. इस कारण भयको त्यागकर लडो॥ २७॥ तब वे समुद्रमें बसनेवाले सब सर्प युद्धमें दैत्योंको मारने लगे और शब्द करनेलगे॥ २८॥ नालीक बाणगदा मूसलोंसे प्रसन्नहो वरुणकी सेना दैत्योंकोकाटने लगी॥ २९॥ तब क्रोधको प्राप्त हो महाबली पराक्रमी विप्रचित्ति दैत्य सर्पोंके शरीरोंको धुनने लगा॥ ३०॥ गरुड अस्त्र तथा सर्पोंके खानेवाले गरुडोंसे समरमें वह दानवश्रेष्ठ सर्पोंको

वरुणः पाशधृक् श्रीमान्कूर्ममीनसमाकुलः ॥ वरुणस्तु तदा क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य स्वसैनिकान् ॥२६॥ उवाच हृष्ट्वा युध्यध्वं दानवानां जिघांसया॥ अहमेनं हनिष्यामि भयं मुक्त्वा तु युध्यत॥२७॥ ततस्ते पन्नगाः सर्वे महार्णवजलाश्रयाः ॥ जघ्नुर्दैत्यान्रणमुखे नदन्तो जयगृद्धिनः ॥२८॥ ते तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ अभ्यघ्नन्दानवान् हृष्टा मुदिता वरुणानुगाः ॥२९॥ विप्रचित्तिस्तु संक्रुद्धो महाबलपराक्रमः ॥ पन्नगानां शरीराणि व्यधमद्युद्धदुर्मदः ॥३०॥ गारुडेनापि चास्त्रेण पन्नगान्दानवोत्तमः॥ समरे घातयामास गरुडैः पन्नगाशनैः॥३१॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः॥ पन्नगान्त्समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्ज्जयान् ॥३२॥ समरे भिन्न-गात्रास्ते पन्नगाः शरपीडिताः ॥ पेतुर्मथितसर्वाङ्गा गजा इव महागजैः ॥३३॥ तपन्तं तमिवादित्यं दीप्तैर्बाणगभस्तिभिः ॥ अभ्य धावत संक्रुद्धः समरे वरुणः प्रभुः॥३४॥ ततस्तु दानवास्तत्र भिन्नदेहाः सहस्रशः॥ व्यथिता विद्रवन्ति स्म दिशो दश विचेतसः ॥३५॥

मारने लगा ॥ ३१ ॥ वे सुवर्णसे भूषित सूर्यके समान प्रकाशमान बाणोंसे युद्धमें दुर्जय सर्पोंको मथन करने लगा ॥ ३२॥ तब बाणोंसे पीडित सर्वांगसे मथित कटे हुए शरीरोंवालेसर्प पृथ्वीमें गिरने लगे; जैसे अतिबलवाले हाथियोंसे मथित हो अल्पबलवाले हाथी गिरते हैं॥ ३३॥ पीछे दीप्तरूप बाणोंको लिये क्रोधको प्राप्त हो वरुण सूर्यके समान तपते हुए युद्धमें विप्रचित्तिके ऊपर चला ॥ ३४॥ तब वरुणके बाणोंसे कटे हुए सहस्रों दैत्य दशों दिशामें

अचेत हो भागने लगे॥३५॥इस प्रकार पराक्रमी वरुण इन्द्रके निमित्त युद्ध करता हुआ; और वरुणके युद्धमें शब्द करते हुए युद्ध करने लगे ॥३६॥ तब वरुणके सर्प समरमें उत्कंठ हो पत्थरोंसे और मुक्कोंसे विप्रचित्ति दैत्यको चारों तरफ मारने लगे ॥ ३७ ॥ तब अनेक प्रकारके शस्त्र और पत्थरोंसे महातेजस्वी विप्रचित्ति दैत्यभी वरुणकी सेनाको भगाने लगा ॥ ३८ ॥ तब अग्निके समान प्रकाशवाले शीघ्र चलनेवाले ऐसे बाणोंसे महावेगवाले वरुणके घोडोंको विप्रचित्ति दैत्यने वींधा ॥ ३९ ॥ तिस कर्मसे विप्रचित्ति दैत्यका तेज ऐसे बढता हुआ जैसे घृतकी आहुतीसे अग्निका

इन्द्रस्याथ पराक्रम्य वरुणस्त्यक्तजीवितः विनर्दमानो युयुधे समरे पाशभृद्वरः ॥३६॥ वरुणः पन्नगाश्चैव मुष्टिभिः समरोत्कटाः॥ अभ्यवर्तन्त समरे विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ ३७ ॥ ततोऽस्त्रैश्च शिलाभिश्च प्राहरत्स बलोत्कटः ॥ व्यपोहत महातेजा विप्रचित्ति-र्महासुरः ॥३८॥ ततः पावकसंकाशैः स मुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ वरुणस्य महावेगान्बिभेद समरे हयान् ॥ ३९ ॥ कर्मणा तेन महता विप्रचित्तेर्महात्मनः ॥ अग्नेराज्याहुतस्येव तेजः समभिवर्धत ॥ ४० ॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ वारुणीं तां महासेनां निर्ममन्थ महाबलः ॥ ४१ ॥ क्षीणास्त्रां सायकाक्रान्तां शरजालेन मोहिताम् ॥ शूलशक्त्यृष्टिभिन्नां च चकार रुधिरोक्षिताम् ॥४२॥ स शरैर्वह्निसंकाशैः सुमुक्तैर्नतपर्वभिः ॥ वरुणस्यमहावेगाव् बिभेद समरे हयान् ॥ ४३ ॥ अभिद्रु-तोऽथ दैत्येन ससैन्यः सलिलाधिपः ॥ महेन्द्रं शरणं प्राप्तो विप्रचित्तेर्भयार्दितः ॥४४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि-ष्यपर्वणि वामने विप्रचित्तियुद्धं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

तेज बढता है॥४०॥पीछे सूर्यके समान प्रकाशवाले शीघ्रगामी बाणोंसे महाबली विप्रचित्ति दैत्य वरुणकी सब सेनाको मथने लगा ॥४१॥ तब क्षीण-शस्त्रवाली बाणोंसे आक्रांत और बाणोंके जालसे मोहित शूल शक्ति ऋष्टि इन्द्रोंसे कटी हुई लोहूसे भीजी हुई वरुणकी सेना हो गई॥४२॥अग्निके समान प्रकाशमान छोडे हुए श्रेष्ठ बाणोंसे बडे वेगसे वरुणके घोडोंको मार डाला ॥ ४३॥ तब दैत्यसे भयमान अपनी सेनाके सहित वरुण भागकर इन्द्रकी शरणमें जाकर स्थित हुआ॥४४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

वैशंपायन बोले; देवताओंके पराजयको देख ब्रह्मर्षियोंसे स्तुति किये देवताओंमें उत्तम अग्नि दैत्योंके मारनेको मन करते हुए ॥ १ ॥ अर्थात् स्वयंप्रभा नामवाली शांडिलीका पुत्र और हव्यको वहनेवाला और हिरण्यरूप वीर्यवान् पीले नेत्रोंवाले और देवदूत आहुतिको खानेवाले ॥ २ ॥ और लालरंगवाले और लालग्रीवावाले, हर्ता, दाता, हवि और कवि पावक और विश्वभुक् देव इन नामोंवाले और सब देवताओंके मुख एक राजा ॥ ३ ॥ प्रभु, ब्रह्मात्मा, सुवर्चस सहस्रार्चि विभावसु कृष्णवर्त्मा चित्रभानु देवराट् ॥ ४ ॥ देवाग्रचित्र लोकसाक्षी ब्राह्मणके हाथकी आहुति

वैशम्पायन उवाच ॥ पराजयं तु देवानां दृष्ट्वाग्निर्देवसत्तमः ॥ चकार बुद्धिं दैत्यानां वधे ब्रह्मर्षिभिः स्तुतः ॥१॥ स्वयंप्रभायाः शाण्डिल्या यः पुत्रो हव्यवाहनः ॥ हिरण्यरेताः पिङ्गाक्षो देवहूतो हुताशनः ॥२॥ रोहितो लोहितग्रीवो हर्ता दाता हविः कविः ॥ पावको विश्वभुग्देवः ॥ सर्वदेवाननः प्रभुः ॥ ३ ॥ सुब्रह्मात्मा सुवर्चस्कः सहस्रार्चिर्विभावसुः ॥ कृष्णवर्त्मा चित्रभानुर्देवनामपि देवराट् ॥४॥ लोकसाक्षी द्विजहुतः सदार्चिष्मान्वषट्कृतः ॥ हव्यभक्षः शमीगर्भः स्वयोनिः सर्वकर्मकृत् ॥५॥ पावनः सर्वभूतानां त्रिदशानां तपोनिधिः ॥ शमनः सर्वपापानां लेलिहानस्तपोमयः ॥ ६ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखः शुचिरोमा मखाकृतिः ॥ हव्यभुक् भूतभव्येशो यज्ञभागहरो हरिः ॥ ७ ॥ सोमपः सुमहातेजा भूतेशः सुमहातपाः ॥ अधृष्यः पावको भूतिर्भूतात्मा वै स्वधाधिपः ॥ ८ ॥ स्वाहापतिः सामगीतः सोमपूताशनोऽद्रिधृक् ॥ देवदेवो महाक्रोधो रुद्रात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ ९ ॥ लोहिताश्वं वायुचक्रं रथमास्थाय भूतधृक् ॥ धूमकेतुर्धूमशिखो नीलवासाः सुरोत्तमः ॥ १० ॥

प्रेमसे ग्रहण करनेवाले अर्चिष्मान् वषट्कृत हव्यभक्ष शमीगर्भ स्वयोनि और सब कर्मोंको करनेवाला ॥ ५ ॥ और सब भूतोंको पवित्र करनेवाला और देवताओंकी तपकी खान और सबके पापोंको शांत करनेवाला और लेलिहान और तपोमय ॥६॥ और प्रदक्षिणावर्त शिखा शुचिरोमा मखाकृति हव्यभुक् भूत भव्येश हव्यभागहर हरि ॥७॥ सोमप महातेजा भूतेश महातपस्वी सर्वभूतपात और अधृष्य और पावकभूती भूतात्मा स्वधाधिप॥८॥ स्वाहापति, सामगीत, सोमपूताशन, अर्चिधृक् देवदेव महाक्रोध रुद्रात्मा ब्रह्मसंभव ॥९॥ धूमकेतु धूमशिख सुरोत्तम नामोंवाला अग्नि लालघोडोंसे

जुता हुआ और वायुके समान पहियोंवाले रथमें नीले वस्त्रोंको पहनकर बैठा ॥ १० ॥ और दिव्य आग्नेय अस्त्रको ग्रहणकर अग्निदेव दैत्योंके सहस्र लाख अर्व ॥११॥ सेनाको प्रलयकालकी अग्निके समान जलाने लगा; और सब प्राणियोंका प्राणरूप होकर देहमें पांच प्रकारसे स्थित होने-वाला ॥१२॥अग्निके सारथी और मित्र प्रभु ईश्वर सब लोकोंका प्रभंजनरूप और युगान्तमें सबोंको नाशनेवाला ॥१३॥जिसकी योनि सात स्वरोंके द्वारा वाणीसे उच्चारित की जाती है, और आकाशमें रहनेवाला और दूर गमन करनेवाला और शब्दके उपजानेवाला ॥ १४ ॥ और कर्ता विकर्ता,

उद्यम्य दिवमाग्नेयं शस्त्रं देवो रणे महान् ॥ दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥११॥ ददाह भगवान्वह्निः संक्रुद्धः प्रलये यथा ॥ प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा ॥ १२ ॥ यन्ता यश्च हुताशश्च सखा च प्रभुरीश्वरः ॥ प्रभञ्जनेयो लोकानां युगान्ते सर्वनाशनः ॥१३॥ सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीर्यते ॥ यो ह्याकाशमयो देवो दूरगः सर्वसंभवः ॥१४॥ यश्च कर्ता विकर्त्ता च गतिर्गतिमतां प्रभुः ॥ वेदकर्ता समो लोके ब्रह्मणा यः सनातनः ॥ १५ ॥ अमूर्तिमन्तं यं प्राहुर्महाभूतं महत्तरम् ॥ सोऽग्निं समीरयामास शमीगर्भं समीरणः ॥ १६ ॥ त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ॥ दानवानामभावाय युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥१७॥ मेदोमज्जामहापङ्कां केशशैवलशालिनीम् ॥ योधशीर्षोपलवहां मृतद्विपतटोत्कटाम् ॥ १८ ॥ शोणितोदां रणे दृष्ट्वा संग्रामसरितं विभुः ॥ वह्निः प्रस्कन्दयामास दैत्यानां भयवर्द्धनः ॥१९॥ ततोऽग्निर्दितिजान्सर्वान्प्रह्लादप्रमुखांस्तथा ॥ पराजयानः स विभुः क्रोशमानो महामृधे ॥ २० ॥

और गतिवालोंकी गति और वेदकर्ता और ब्रह्माके समान लोकमें सनातन ॥ १५ ॥ जिसको मूर्तिसे रहित महाभूत कहते हैं वह वायु अग्निकी सहायता करता हुआ ॥१६॥ स्वर्गको प्राप्त होनेवाली ज्वालाओंसे दशों दिशाओंमें जृंभमाण अग्नि दैत्योंके नाशके अर्थ प्रलयकी अग्निके समान हो उठा ॥१७॥तब मेद मज्जारूप कीचडवाली केशरूप हरियाई और काईसे संयुक्त और योद्धाओंके शिररूप पत्थरोंसे संयुक और मरे हुए हाथीरूप तटसे संयुक्त॥१८॥ लोहूकी वहती हुई नदीको देखकर दैत्योंको भय देनेवाला अग्निदेव बल करने लगा ॥१९॥ तब प्रह्लाद आदि सब दैत्योंको यह

अग्नि जीतने लगा; और युद्धमें महाशब्द करनेलगा ॥२०॥ कितने एक दैत्य जलते हुए केशोंसे संयुक्तऔर कितनेएक दैत्य जलते गए सम्पूर्ण अंगोंसे संयुक्त होने लगे; और कितनेक दैत्योंके हाथ और मुख जलने लगे॥२१॥ कितनेएक दैत्योंकी जांघ जलने लगी, और कितनेएक दैत्योंके छत्र ध्वजा रथ जलने लगे.इस प्रकाशित हुए अग्निसे सब दैत्य दग्ध होने लगे ॥२२॥ तब भयसे पीडित दैत्य सब प्रकारके शस्त्र ध्वजा रथादिको छोड अग्निसे पराजित हो दशों दिशाओंको भागनेलगे॥२३॥और युद्धमें प्रकाशमान अग्निकोनहीं देखते हुएदानव दिशा आकाशपृथ्वी मेघ इन सबोंको जलते हुए

केचित्प्रदीप्तैर्मुकुटैः केचिद्दीप्तैः शिरोरुहैः ॥ केचित्प्रदीप्तवसनैः केचिद्दीप्तैर्भुजाननैः ॥ २१ ॥ केचित्प्रदीप्तैरुरुभिः केचिच्छत्रैर्ध्वजै रथैः ।। असुरास्तत्र दृश्यन्ते प्रदीप्तेनाग्निना वृताः ॥ २२ ॥ त्यक्त्वायुधानि सर्वाणि सध्वजांश्च रथोत्तमान् ॥ प्रयान्ति समरे भीताः पावकेन पराजिताः ॥ २३ ॥ न च पश्यन्ति ते वह्निं प्रदीप्तध्वजिनीमुखे ॥ दिशः खं ग च मेघांश्च दीप्तान्पश्यन्ति दानवाः ॥ २४ ॥ ध्रुवः स्वयंभुवा सृष्टो युगान्तस्तोययोनिना ॥ इत्येवं दानवाः सर्वे मेनिरे त्रस्तचेतसः ॥२५॥ मयश्च शम्बरश्चैव महा-मायाधरौ तदा ॥ पार्जन्यवारुणी माये सृजतां वारिविक्षरे ॥ २६ ॥ ताभ्यां वह्निः स मायाभ्यां सिच्यमानः समन्ततः॥ तोयोघैः पर्वतनिभैर्मृद्वर्चिरभवद्रणे ॥ २७ ॥ शाम्यमाने तु समरे पावके दैत्यनाशिनि ॥ बृहत्कीर्तिबृहत्तेजा वह्निमाह बृहस्पतिः ॥२८॥ गुरुरुवाच ॥ हिरण्यरेतः सुमुख ज्वलनाह्वय सर्वभुक् ॥ सप्तजिह्वानन क्षाम लेलिहान महाबल ॥ २९ ॥

देखने लगे॥२४॥तब सब दैत्य व्याकुल हो कहने लगे कि निश्चयं ब्रह्माजीने यह युगान्त अग्नि रचा है ॥२५॥ तब मय और शंबर महामायावाले दैत्य पानीको झिरानेवाली पार्जन्य और वारुणी नामोंवाली दो मायाओंको रचते हुए ॥ २६ ॥ तब तिन दोनों मायाओंके प्रतापसे पर्वतके समान पानीकी धारासे सिच्यमान हो अग्नि युद्धमें कोमलतेजवाला होने लगा ॥२७॥ तब दैत्योंको नाशनेवाले युद्धमें कोमलतेज होनेवाले अग्निसे बडी कीर्तिवाले अतितेजस्वी बृहस्पतिजी कहने लगे ॥ २८ ॥ गुरु बोले; हे हिरण्यरेत ! हे सुशिख ! हे ज्वलन ! हे अक्षय ! हे सर्वभुक् ! हे सप्त-

जिह्व ! हे अनल ! हे क्षाम ! हे लेलिहान ! हे महाबल ! ॥ २९ ॥ हे विभो ! तेरा वायु आत्मा है घास तेरा शरीर है और जल तेरी योनि है, और जलकी तू योनि है ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! तेरी लटा ऊपरको व नीचेको पार्श्वको व चारों तरफ विचरती हैं ॥ ३१ ॥ हे अग्ने ! सर्वरूप तूही है और तेरे विषय सब यह जगत् है और सर्वप्राणियोंको धारण करनेवाला तूही है ॥३२॥ और इस संसारको भरनेवालाभी तूही है; और परम हविरूप द्रव्यभी तूही है; और यज्ञोंमें तुझेही सब कालमें संत पूजते हैं ॥३३॥ और तूही प्राणियोंके शरीरोंमें अन्नको खाता है; और जलको

आत्मा वायुस्तव विभो शरीरं सर्ववीरुधः ॥ योनिरापश्च ते प्रोक्ता योनिस्त्वमसि चाम्भसः ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति संचरन्ति च पार्श्वतः॥अर्चिषस्ते महाभाग सर्वतः प्रभवन्ति च॥३१॥त्वमेवाग्ने सर्वमसि त्वयि सर्वमिदं जगत्॥त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥३२॥ त्वमग्ने हव्यवाडेकस्त्वमेव परमं हविः ॥ यजन्ति च सदा सन्तस्त्वामेव परमाध्वरे ॥ ३३ ॥ त्वमन्नं प्राणिनां भुङ्क्षे जग्धपीतासि त्वं प्रभो ॥ त्वयि प्रवृत्तो विजयस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः॥३४॥सर्वांल्लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह प्राप्ते काले त्वं पचस्येव दीप्तः ॥ त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नान्यस्त्वत्तो विद्यते गोषु देव ॥ ३५ ॥ वृषाकपिः सिन्धुपतिस्त्वमग्ने महामखेष्वग्र्यहरस्त्वमेव ॥ विश्वस्य भूम्नस्त्वमसि प्रसूतिस्त्वं च प्रतिष्ठा भगवन् प्रजानाम् ॥ ३६ ॥ सृजस्यपो रश्मिभिर्जातवेदस्तथौषधीरोषधीनां रसांश्च ॥ विश्वं त्वमादाय युगान्तकाले स्रष्टा भवस्यानल सर्गकाले ॥ ३७ ॥

पीता है; और तेरेसेही यह विजय प्रवृत्त हुआ है और तेरे विषे यह सब लोक प्रतिष्ठित है ॥ ३४ ॥ इन तीन लोकोंके रचनेके समयपै पकानेवाला तूही है, और तपके अर्थ जातवेद नामसे विख्यातभी तूही है; और तेरे सिवाय अन्नतप्ता कोईभी नहीं है ॥ ३५ ॥ तूही शिवरूप और तूही समुद्रोंका पति है और यज्ञोंमें अग्रभागकोभी हरनेवाला तूही है; और तुझसे संसार उपजा है तेरेहीमें सम्पूर्ण संसार स्थित होता है ॥३६॥ हे अग्ने ! तू अपनी किरणोंसे जलको रचे है और औषधीभी तूही है और औषधियोंका रसभी तूही है और

प्रलयकालमें इस संसारको तूही ग्रहण करता है और उत्पत्तिकालमें तूही इस जगत्को रचनेवाला है ॥३७॥ हे अग्ने ! सब प्राणियोंकी योनि तूही वेदमें गाया गया है; सो देवताओंके कल्याणके अर्थ तैंने बहुतसे दैत्योंका नाश किया है ॥३८॥ तू इस जलसे उपजा है सो यज्ञकी कांतिवाले पावक जलको प्राप्त हो क्यों शिथिल होता है ॥३९॥ हे देवसत्तम ! इन देवताओंको दैत्योंके भयसे रक्षा कर, और हे युगांताभ अर्थात् प्रलयकी अग्निके समान, हे दैत्योंका नाश करनेवाले, विश्वकर्म, सहस्रभुक्, पिंगाक्ष, लोहितग्रीव, कृष्णवर्त्म, हुताशन, हे अग्ने ! तूही रक्षा करनेके योग्य है ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां देवासुरयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ वैशंपायनजी बोले; बृहस्पतिजीके सत्यवचनको

त्वमग्ने सर्वभूतानां योनिर्वेदेषु गीयते ॥ त्वया देव हितार्थाय निहता दानवा रणे ॥३८॥ स्वयोनिस्ते महातेजस्तोयं मखशतार्चितम् ॥ तां स्वयोनिं समासाद्य किं विषीदसि पावक ॥३९॥ त्रायस्व समरे देवान्दैत्येभ्यः सुरसत्तम ॥ पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन् हुताशन ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनेऽग्निस्तवो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बृहस्पतेस्तु वचनं श्रुत्वा सत्यं समीरितम् ॥ भूयः प्रजज्वाल रणे हविषेव महीमखे ॥१॥ हतास्तु माया दैत्यानां प्रदीप्तेनाग्निना रणे ॥ हतमाया हतबला बलिं ते समुपस्थिताः ॥२॥ पराजितेषु दैत्येषु वह्निनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रह्लादस्तूत्तरं वाक्यमाह दैत्यपतिं बलिम् ॥ ३ ॥ भवानग्निश्च वायुश्च भास्करः सलिलं शशी ॥ नक्षत्राणि दिशो व्योम भूश्च दानवसत्तम ॥४॥ भविष्यं चैव भूतं च भवच्चासुरसत्तम ॥ दत्तं चैतद्भगवता वरदेन स्वयंभुवा ॥ ५ ॥

सुनकर युद्धमें फिर अग्नि प्रज्वलित हुआ जैसे घृतसे यज्ञमें प्रज्वलित होता है ॥ १ ॥ तब अग्निने सब दैत्योंकी मायानाश कर दी; तब माया और सेनासे रहित बहुतसे दैत्य बलिराजाके पास प्राप्त हुए ॥ २ ॥ अद्भुतकर्मवाले अग्निने जब सब दैत्य जीत लिये तब प्रह्लाद दैत्योंका राजा राजा बलिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ हे दैत्यसत्तम ! तूही अग्नि है तूही वायु है तूही सूर्य है, तूही जल है और तूही चंद्रमा है, और तूही नक्षत्ररूप है, और तूही आकाशरूप है॥४॥तूही दिशारूप है, तूही पृथ्वीरूप है, तुमही भूत हो और तुमही वर्तमान हो. हे महाभाग ! ब्रह्माजीने तुम्हें वरदान दिया है ॥५॥

तिससे तुम इन्द्रपनेको और अमरपनेको और युद्धमें जीतकर ऐश्वर्यको और सबको वशमें करनेको और अपरिमित बलको तुम प्राप्त हुए हो॥६॥ हे दैत्यराज ! सब भूतोंका ईश्वर तुममेंही प्राप्त है;और सब कालमें प्रभुभी तुमही हो,और महायोगियोंके ईश्वरभी तुमही हो और युद्धमें शूरवीरभी तुमही हो ॥ ७ ॥ और सात्त्विक गुणभी तुमही हो, ऐसे तुम इन्द्र और सब देवताओंको जीतो ॥ ८ ॥ कारण कि ब्रह्माजीने जैसे कहा है. हे राजन् ! तैसेही होगा और अन्यथा नहीं होगा; तब प्रह्लादके वचनको सुन परमप्रसन्न हो बलिराजा अपने रथपर चढा॥९॥जहां इन्द्रका रथ खडा

इन्द्रत्वं चामरत्वं च युद्धे चाप्यपराजयः ॥ ईशित्वं च वशित्वं च बलं चैवामितं शुभम्॥६॥सर्वभूतेश्वरत्वं च दैत्यराज सदा तव॥ महायोगीश्वरत्वं च शूरत्वं च महामृधे ॥७॥ अणिमा लघिमा चैव ये चान्ये सात्त्विका गुणाः॥ तत्पराजित्य दैत्येन्द्र देवान्सर्वांश्च सानुगान् ॥८॥ यथोक्तं ब्रह्मणा राजंस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रह्लादस्य महात्मनः॥ बलिः परमसंहृष्टः प्रायाच्छक्ररथं प्रति ॥९॥ ततः प्रयान्तं त्रिदशेन्द्रसन्निधौ महासुरेन्द्रं बलिमुत्तमश्रियम् ॥ तमञ्जसा जग्मुरभिप्रदक्षिणं द्विजाश्च पुण्याः पशवश्च सत्तमाः ॥१०॥ महाजटाभारधरास्तपस्विनस्तदा तमाहुर्विविधमन्त्रमङ्गलैः॥ अभिष्टुवन्तः कवयः स्वलंकृतं बलिं प्रयान्तं रणमूर्द्धनि स्थिताः ॥११॥ प्रतप्तजाम्बूनदचित्रभूषणैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैरलंकृतः ॥ विराजमानः परमेण वर्चसा रणे विभात्यग्निशिखेव दानवः ॥१२॥ स वै तदा शत्रुबलार्दितं बलं बलिर्ददर्शोत्तमसत्त्ववीर्यवान् ॥ जलागमे श्रीमदिवाभ्रमण्डलं विशीर्यमाणं नभसीव वायुना ॥ १३ ॥

था तहां जाकर प्राप्त हुए; जब इन्द्रके समीपमें दैत्योंका इन्द्र और उत्तम शोभावाला बलिराजा गमन करने लगा तब बलिराजाकी मंगलरूप पक्षी और मंगलरूप पशु परिक्रमा करने लगे॥१०॥और गमन करनेके समय बडी जटाको धारण करनेवाले तपस्वी और कवि नानाप्रकारके मंगलरूप मंत्रोंसे बलिराजाकी स्तुति करने लगे॥११॥तपायमानसुवर्णके चित्रभूषण और नानाप्रकारके दिव्य रत्नसे अलंकृत और उत्तमतेजसे शोभित ऐसा बलिराजा अग्निके समान प्रकाशित होने लगा॥१२॥तब उत्तम वीर्य और पराक्रमवाले बलिराजाने शत्रुओंकी सेनासे पीडित अपनी सेनाको देखा; जैसे

वायुसे आकाशमें बादल नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ चारों ओरसे युद्धमें अग्निसे रक्षित देवताओंकी सेनाको देख बडे उच्छ्रित और शीघ्रतासे प्रहार होनेवाले पर्वसंधिमें समुद्रके वेगके समान ॥ १४ ॥ शूल बरछी ऋष्टि गदा तलवार बाणोंको शत्रुओंकी सेनामें फेंकने लगा, और मदोन्मत्त हाथीकी तरह शब्द करने लगा; जैसे वर्षाके समयमें बादल शब्द करते हैं॥ १५॥पीछे दिव्य अस्त्ररूप धूमवाला और भुजाओंके वेगरूप वायुवाला महाबली पौरुष और पराक्रमरूप इन्धनयुक्त बली घोररूप अग्निके समान युद्धमें प्रकाशित हुआ, जैसे प्रजाको दग्ध करनेवाले कालाग्नि हों॥ १६॥

ततो ददर्शाथ बलानि सर्वतो रणे प्रगुप्तानि हुताशनेन वै ॥ समुच्छ्रितान्युग्रतराणि तत्र वै समुद्रवेगानिव पर्वसन्धिषु ॥ १४ ॥ सशूलशक्त्यृष्टिगदासिसायकान् क्षिपन् रिपूणां समरे महात्मनाम् ॥ ननाद सिंहर्षभमत्तनागवज्जलागमे तोयदवच्च वीर्यवान् ॥१५॥ दिव्यास्त्रधूमः सुभुजोऽग्रवायुर्महाबलः पौरुषविक्रमेन्धनः ॥ प्रजा दिधक्षन्निव कालवह्निः सुघोररूपो विबभौ रणे बलिः ॥१६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥वैशम्पायन उवाच ॥ बलिना तु सुराः सर्वे वर्जयित्वा सुराधिपम्॥ रणे शरशतैर्भिन्नाः ससैन्या वै पराजिताः॥१॥ विमुखा याति दैत्येन्द्रैर्वध्यमाना महाचमूः ॥ जितास्तु बलिना देवाः शक्रमाहुर्महाबलम् ॥२॥ देवा ऊचुः ॥ भवानिन्द्रश्च धाता च लोकानां प्रभुरव्ययः ॥ त्वमप्रतिमकर्मा च तथैवानुपमद्युतिः ॥३॥ विद्रुतानीह सैन्यानि सहास्माभिः सुरेश्वर ॥ रथचक्रध्वजाक्षाणि विभिन्नानि महासुरैः ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषाटी० वामने देवासुरयुद्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥ वैशंपायन बोले;तब बलिराजाने एक इन्द्रके विना सैंकडों बाणोंसे सब देवते वींधे और सेनासहित जीत लिये ॥ १ ॥ तब दैत्योंसे भरते हुए और बलिके जीते हुए सब देवतें महाबलवाले इन्द्रसे कहने लगे ॥२॥ देवता बोले कि;हे इन्द्र ! तुमही हमारे इंद्र हो;और तुमही धाता हो और लोकोंके प्रभुभी तुमही हो ॥३॥ और तुमही अविनाशी हो और अप्रतिम कर्म करनेवालेभी तुमही हो और उत्तमकीर्तिवालेभी तुमही हो ॥ ४ ॥

सो हे देवताओंके ईश्वर ! सब देवताओंसहित सेना भागी जाती है और रथ हाथी घोडे योधा सहस्रों प्यादे गदा मूशल पट्टिशोंसे सैंकडों छिन्नभिन्न कर दिये हैं॥५॥बलिराजाने ऐसा भयानक रूप कर्म युद्धमें किया है; सो दैत्योंसे मरती हुई अपनी सेनाको अब क्यों त्यागते हैं॥६॥ हे देवश्रेष्ठ ! हे शरण्य ! शरणको प्राप्त हुए देवताओंकी रक्षा करो; इन्द्र देवताओंके वचनको सुन॥७॥संवर्तक अग्निके समान क्रोधको प्राप्त हो सब दैत्योंको दग्ध करने लगा, अर्थात् सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशवाले मुकुटको धारण करनेवाले ॥ ८ ॥और वैडूर्य रत्नके समान कांतिवाले और

रथहस्त्यश्वयोधाश्च पदाताश्च सहस्रशः ॥ भिन्नाश्छिन्नाश्च शतशो गदामुशलपट्टिशैः ॥५॥ महाभैरवरूपं हि दैत्येन्द्रेण कृतं रणे ॥ किमुपेक्षसि दैत्येन्द्रैर्हन्यमानां महाचमूम् ॥६॥ त्रायस्व त्रिदशश्रेष्ठ शरण्यः शरणागतान् ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषां देवानाममराधिपः ॥७॥ संवर्त्ताग्निसमक्रुद्धः सवान्दहति दानवान् ॥ दिवाकरकराकारं किरीटं धारयन्प्रभुः ॥ ८ ॥ वैडूर्यवर्णसंकाशो नानारत्नचिताङ्गदः ॥ मयूररोमा रक्ताक्षः शतबाहुः सहस्रदृक् ॥९॥ हरिरेको हरिश्मश्रुर्नानाकेतुर्महाबलः ॥ वज्रप्रहरणः श्रीमान्योगी शतशिरोधरः ॥१०॥ सधनुर्बद्धसन्नाहः शतादित्यसमप्रभः ॥ देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ॥११॥ सामगैश्च जपैश्चापि स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ शतपर्वं महारौद्रं स्फोटनं सर्वतोमुखम् ॥ १२ ॥ प्रगृह्य रुचिरं वज्रं दीप्तं रौद्राट्टहासिनम् ॥ दैत्यानयोधयत्सर्वान्महेन्द्रः पाकशासनः ॥ १३ ॥

अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित बाजूबंदको धारण करनेवाले और धूम्रनेत्रोंवाले और सौ बाहु और सहस्र नेत्रोंवाले ॥ ९ ॥ अकेले हरि डाढीवाले अनेक केतुध्वजावाले महाबली वज्रका प्रहार करनेवाले; योगी सौ शिरोंको धारण करनेवाले ॥ १० ॥ धनुष कवचको धारण करनेवाले; सौ सूर्योंके समान तेजवाले देवते गंधर्व यक्षोंके समूहसे परिवृत ॥११॥ सामवेदके गाने और जाप करनेवाले महर्षियोंसे स्तुति किये और सौ पर्वोंसे संयुक्त महारुद्र सब तर्फको मुखवाले ॥ १२ ॥ महाकांतिमान् रौद्र हासयुक्त वज्रको धारण करनेवाले पाकरिपु इन्द्र सब दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

सब भूतोंसे अदृश्य अदितिके प्रियपुत्र थे तैयार हुए बलि और इन्द्रका आपसमें उग्र युद्ध होने लगा॥१४॥वह दोनोंका संग्राम बडा अद्भुत हुआ वह दोनों बडे वीर मदसे उदग्र थे इस कारण बडा तुमुल संग्राम हुआ ॥ १५ ॥ तब प्रह्लाद दैत्यने सैंकडों स्तुतिरूप जयके देनेवाले कर्मोंसे बलिराजाको प्रबोधित किया,तब वह अग्निके समान प्रकाशित हुए ॥१६॥ इन्द्र और बलिराजाके लोमहर्षण युद्धको देख दैत्य और देवताओंका फिर युद्ध होने लगा ॥१७॥फिर अस्त्रोंसे इन्द्र बलिको वींधने लगे,तब बलिराजाने शस्त्रोंके सौ सौ टुकडे कर दिये ॥१८॥ पीछे क्रोधको प्राप्त हो बली इन्द्रने

अधृष्यः सर्वभूतानामदित्या दयितः सुतः ॥ ततः प्रवृत्तः संग्रामो बलिवासवयोस्तदा ॥१४॥ उभाभ्यां देवदैत्याभ्यामचिरान्महदद्भुतः ॥ अतिवीर्यबलोदग्रस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १५ ॥ प्रह्लादेन स्तुतिशतैः कर्मभिर्जयसंमतैः ॥ प्रबोधितो दैत्यपतिरग्निरिद्ध इवाबभौ ॥१६॥ सुरासुरेन्द्रयोर्दृष्ट्वा संग्रामं लोमहर्षणम् ॥ देवानां दानवानां च भूयो युद्धमभूत्तदा ॥१७॥ ततोऽविध्यन्महेन्द्रस्तं बलिमस्त्रैर्महाबलम् ॥ तान्यस्त्राणि महाबाहुश्चिच्छेद शतधा रणे ॥१८॥ ततः क्रुद्धः पुनस्तत्र निजघ्ने दानवं महत् ॥ आग्नेयमथ शत्रुघ्नं चिक्षेपेन्द्रो महाबलः ॥ तं दृष्ट्वा खे समागच्छत्प्रलयानलसन्निभम् ॥ १९ ॥ पातयामास तच्चेन्द्रं वारुणास्त्रेण धीमता ॥ संक्रुद्धो मघवा वज्रमगृह्णात्पर्वतोपयम् ॥२०॥ हंतुकामो रणश्लाघी बलिं दैत्याधिपं रणे ॥ ततः शुश्राव देवेन्द्रः कौशिको हरिवाहनः ॥२१॥ अशरीरां शुभां वाणीं तस्मिन्महति वैशसे ॥ निवर्तस्व महाबाहो सुराणां नन्दिवर्धन ॥ २२ ॥ पुरंदर सुरश्रेष्ठ न जेष्यसि रणे बलिम् ॥ तपसात्युत्तमो दैत्यो वरदानेन चाधिकः ॥ २३ ॥

दुर्वारणरूप आग्नेयास्त्रको बलिके ऊपर छोडा;प्रलयकी अग्निके समान अस्त्रको आते हुए आकाशमें देख वारुणास्त्रसे उसे बलिने गिरादिया ॥१९॥ फिर क्रोधको प्राप्त हो इन्द्रने बलिराजाके मारनेको पर्वतके समान वज्रको ग्रहण किया ॥२०॥ जब बलिके मारनेको वज्र उठाया तब हरिवाहन इन्द्रने आकाशवाणी सुनी ॥२१॥ आकाशसे अशरीरिणी शुभवाणी कहने लगी.हे अदितिनंदन ! युद्धसे निवृत्त हो ॥ २२ ॥ इस बलिराजाको युद्धमें तुम नहीं जीत सकोगे;कारण कि तपसे बलिराजा तुमसे उत्तम है, और ब्रह्माजीके वरदानसे ॥ २३ ॥

स्वयंभूके परितोषसे सत्य बोलनेसे और धर्मोंके करनेसे बलिराजा तुमसे अधिक है.हे देवेश ! सब देवताओंसहित तुम इसको नहीं जीत सकते ॥२४॥ जो इसको जीतनेवाला सनातन है तिसको तुम श्रवण करो; जो ब्रह्माका सर्वस्व और देवताओंकी परम गति है ॥२५॥ धर्मका परम रहस्य और परेसे परे श्रीमान् गतिरूप,व्यक्त और अव्यक्त महाभूत और भूत भविष्य वर्तमानको जाननेवाला ॥ २६ ॥ सहस्रों शिरोंवाला, सहस्र पैरोंवाला, सहस्रों नेत्रोंवाला शंख चक्र गदा पद्मको धारण करनेवाला पीले वस्त्रोंको धारण करनेवाला और दैत्योंको मारनेवाला ॥२७॥ और सबको जीत-नेवाला और आप किसीसे जीतमें नहीं आनेवाला पुरुष इस बलिराजाको जीतेगा; तब ऐसी दिव्यरूप वाणीको सुनकर ॥ २८ ॥ सब देवताओंके

स्वयंभूः परितोषाच्च सत्यधर्माच्च वासव ॥ नैष शक्यस्त्वया जेतुं त्रिदशैर्वा सुरेश्वर ॥ २४ ॥ यो ह्यस्य जेता भगवांस्तं शृणुष्व समाहितः ॥ ब्रह्मणः स हि सर्वस्वं देवानां चैव सा गतिः ॥२५॥ परं रहस्यं धर्मस्य परस्य च परा: गतिः ॥ परात्परतरः श्रीमान् परावरगतिः प्रभुः ॥ २६ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः सुरारिहा ॥ २७ ॥ जेता जेयो जयः श्रीमान्सोऽस्य जेता भविष्यति ॥ श्रुत्वा दिव्यां तु मधुरां वाणीं तामशरीरिणीम् ॥२८॥ अपयातो रणाच्छक्रः सार्द्धं सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ अपयाते तु देवेन्द्रे कौशिके हरिवाहने ॥२९॥ सिंहनादो महानासीद्दानवानां महानृधे ॥ ततः किलकिलाशब्दः क्ष्वेडितास्फोटितस्वनः ॥ ३० ॥ शंखानां निनदश्चात्र योधानां वलिगतस्वनः ॥ वादित्राणां च निर्घोषस्तुमुलश्चाभवत्तदा ॥३१॥ जयशब्दरवाश्चैव देवानां तु पराजये ॥ ससैन्यो दैत्यराजस्तु स्तूयमानः सुहृद्गणैः ॥ बलीन्द्रो विबभौ दैत्यो हिरण्यकशिपुर्यथा ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुरसंग्रामो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सहित इन्द्र युद्धसे निवृत्त हो गया हरिवाहन इन्द्र जब चला गया ॥२९॥ तब सब दैत्य युद्धमें उग्र सिंहनाद करने लगे, अर्थात् किलकिल शब्द और अपने२भुजाओंको बजानेका शब्द ॥ ३० ॥ शंखोंके शब्द और योधाओंकी टेढी बोलीके शब्द और अनेक प्रकारके बाजोंके महाशब्द होने लगे ॥३१॥ पीछे देवताओंके हारनेमें जयजय शब्द करते हुए दैत्योंसे संयुक्त स्तुतिको प्राप्त हो बलिराजा अपने स्थानमें प्राप्त हुए; और हिरण्यकशिपु दैत्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे शक्रा-

पयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ वैशम्पायन बोले; जब देवता प्रयत्नसे रहित हो गये और त्रिलोकी दैत्योंसे रक्षित हुई और मय शंबर तथा बलवाले बलिकी जय हुई ॥१॥ सब दिशा शुद्ध हो गईं, और धर्म कर्म प्रवृत्त होने लगे, और अधर्मके मार्ग दूर होने लगे ॥ २ ॥ प्रह्लाद शुंबर मय अनुह्लाद इन्होंसे चारों दिशा रक्षित होने लगीं;और सब दैत्योंसे आकाशकी पालना होने लगी॥३॥और अपनी प्रकृतिमें लोक स्थित होने लगा और सन्मार्ग प्रवृत्त होने लगा ॥ ४ ॥ और सब पापोंका अभाव होने लगा और भावकी स्थिरता होने लगी और सिद्धोंका तप प्रवृत्त होने

वैशम्पायन उवाच ॥ निष्प्रयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यपालिते ॥ जये बलेर्बलवतो मयशम्बरयोस्तथा ॥ १ ॥ सुसाधु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ अपवृत्ते चन्द्रमसि अयनस्थे दिवाकरे ॥ २ ॥ प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि ॥ दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ॥३ ॥ दैत्येषु मखशोभाश्च स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥ प्रकृतिस्थे तदा लोके वर्त्तमाने च सत्पथे ॥ ४ ॥ अभावे सर्वपापानां भावे चैव तथा स्थिते ॥ भावे तपसि सिद्धानां सर्वत्राश्रमरक्षिषु ॥ ५ ॥ चतुष्पादे स्थिते धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥६॥ स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु सर्वाश्रमनिवासिषु ॥ अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराजो बलिस्तदा॥७॥ हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च ॥ अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मासने स्थिता ॥८॥ पद्मोद्यतकरा देवी वरदाऽसुरमोहिनी ॥ श्रीरुवाच ॥ बले बलवतां श्रेष्ठ महाराज महाद्युते ॥ ९ ॥

लगा और पापकर्मवालोंका अभाव होने लगा॥५॥और चार पैरवाला धर्म स्थित होन लगा;और एक पैरवाला पाप स्थित होने लगा; और प्रजाकी पालना करनेमें युक्त राजा होने लगे ॥६॥ और सब आश्रमनिवासी अपने२धर्मोंमें स्थित होने लगे ऐसे कालमें देवराज्यपै दैत्योंने बलिराजाका अभिषेक किया॥७॥असुरोंके प्रसन्न होकर शब्द करनेमें पद्मासनमें स्थित और पद्मोंको हाथमें धारण करनेवाली लक्ष्मी देवी ॥८॥ और वरके देनेवाली और शूरवीरको सेवनेवाली लक्ष्मी बलिराजाको प्राप्त होकर कहने लगी. श्री बोली; हे बलवालोंमें श्रेष्ठ ! महाकांतिमान दैत्यराज ॥९॥

देवताओंके पराजयसे मैं तुमपर प्रसन्न हुई हूं तुम्हारा मंगल प्राप्त होगा; तुमने अपने बलसे युद्धमें इन्द्रको जीत लिया ॥१०॥ तब तुम्हारे उत्तम बलको देखकर मैं तुम्हारे पास आपही प्राप्त हुई हूं. हे दैत्यश्रेष्ठ ! हिरण्यकशिपुके कुलमें उपजे हुए तेरे ऐसे कर्मोंमें आश्चर्य नहीं ॥११॥ सुरेंद्रको जय करनेवाला तुम्हारा कर्म है हे राजन् ! तुम्हारे पितामह हिरण्यकशिपुने ॥ १२ ॥ यह संपूर्ण त्रिलोकी भोगी है. परन्तु तिससे तुम धर्ममार्गमें विशेष हो ॥१३॥ इस कारण तुमभी इस त्रिलोकीको भोगोगे,ऐसे कह वर देनेवाली और सौम्य लक्ष्मी बलि राजाके शरीरमें प्रविष्ट हुई ॥ १४ ॥

प्रीतास्मि तव भद्रं ते देवतानां पराजये ॥ यस्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥ नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥ ११ ॥ प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम् ॥ विशेषतस्त्वया राजन्दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ॥१२॥ येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ विशेषतस्तव विभो सर्वे धर्मपथे स्थिताः॥१३॥ तेन त्रैलोक्यमुख्येन भोक्ष्यस्यमितविक्रम ॥ एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यपतिं बलिम् ॥ १४ ॥ प्रविष्टा वरदा सौम्या सर्वभूतमनोरमा ॥ शिष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च ॥ १५ ॥ प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्नीतिर्विद्या दया स्मृतिः॥ स्मृतिर्लज्जा तथा मेधा लक्ष्मीरीहा गतिस्तथा ॥१६॥ श्रुतिः प्रीतिरिला कीर्तिः शान्तिः पुष्टिः क्रियास्तथा ॥ सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः ॥१७॥ पतिं प्राप्ताः सुदैतेयं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ प्राप्तमैश्वर्यममितं बलिना ब्रह्मवादिना ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

जब वह सौम्या सब प्राणियोंका जो मनोहर रूप उसमें प्रविष्ट हुई, तब शेषदेवी और ह्री कीर्ति द्युति ॥१५॥ प्रभा धृति क्षमा भूति नीति दया मति स्मृति मेधा तुष्टि मुक्ति ॥१६॥ श्रुति प्रीति इला कीर्ति शान्ति पुष्टि यह सब और दिव्य अप्सरा नृत्य और गीतमें कुशल ॥ १७ ॥ अपने पति बलि राजाको प्राप्त हुई. इस प्रकार ब्रह्मवादी बलिराजाने दैत्योंके संग चराचर त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्राप्त किया॥१८॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे

भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥ जन्मेजय बोले; कि हे ब्राह्मणो! दैत्योंसे पराजित हुए देवता क्या करने लगे! और देवताओंने फिर स्वर्गलोक कैसे प्राप्त किया॥१॥ वैशम्पायनजी बोले; कि तिस आकाशवाणीको इन्द्र सुनकर देवताओंको संग ले अदितिके उत्तम स्थानमें प्राप्त होनेके लिये पूर्व दिशामें अदितिके स्थानमें गया ॥ २ ॥ पीछे अदितिके स्थानको प्राप्त हो जो युद्धमें आकाशवाणीके मुखसे सुना था, वह सब वृत्तान्त अदितिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ तब अदिति कहने लगी कि; हे पुत्र! जो ऐसा है तो तुमसे विरोचनका पुत्र बलिराजा युद्धमें नहीं मर

जनमेजय उवाच ॥ पराजिताः सुरा दैत्यैः किमकुर्वत वै मुने ॥ कथं च त्रिदिवं लब्धं भूयो देवैर्द्विजोत्तम ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ श्रुत्वा वाणीं तु तां दिव्यां सह देवैः सुराधिपः॥प्राग्दिशं प्रस्थितः श्रीमानदित्यालयमुत्तमम्॥२॥ प्राप्यादित्यालयं शक्रः कथयामास तां गिरम् ॥ अदित्यां सा यथा युद्धे तेन वाणी पुरा श्रुता ॥ ३ ॥ अदितिरुवाच ॥ यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे ॥ बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥ ४ ॥ सहस्रशिरसा हन्तुं केवलं शक्यतेऽसुरः॥ तेनैकेन सहस्राक्ष न ह्यन्येन शतक्रतो ॥ ५ ॥ तद्वः पृच्छस्व पितरं कश्यपं सत्यवादिनम् ॥ पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम्॥अपश्यन्कश्यपं तत्र मुनिं दिव्यतपोनिधिम्॥७॥आद्यं देवं गुरुं दिव्यं क्लिन्नं त्रिषवणाम्बुभिः॥ तेजसा भास्कराकारं गौरमग्निशिखाप्रभम् ॥ ८ ॥ न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनोत्तरम्॥ वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ॥ ९ ॥ हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ स्वाध्यायनिरतं शान्तं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १० ॥

सकता है ॥ ४ ॥ वह सहस्राक्ष सहस्र मस्तकवाले परमेश्वरके हाथसे निश्चय मरेगा अन्यसे नहीं ॥ ५ ॥ सो मैं महात्मा बलिराजाके पराजयके निमित्त ब्रह्मवादी कश्यपजी तुम्हारे पिताके समीप जाकर पूछती हूं ॥ ६ ॥ तब अदितिके सहित संपूर्ण देवता कश्यपजीके निकट प्राप्त होदीप्त तपके निधि॥७॥ आद्य और देवताओंके गुरु दिव्य तेजसे सूर्यके आकार और अग्निकी शिखाके समान कान्तिवाले ॥ ८ ॥ और न्यस्तदंड तपसे युक्त कृष्णमृगछालाको कांधेपरधारण करनेवाले वृक्षके वल्कलोंको शरीरपर धारण करनेवाले और जटाकेसमूहसे भूषित॥९॥आज्य मंत्रपुरस्कृतरूप अग्निके

समान दीप्यमान और स्वाध्यायमें रत और साक्षात् अग्निके समान प्रकाशित॥१०॥ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ देव व दैत्योंके गुरु और तपते हुए सूर्यके समान तेजवाले मरीचि ऋषिके पुत्र॥११॥और सर्व प्राणियोंके रचनेवाले प्रजाके पति आत्मभावसे विशेष करके तीसरे प्रजापति॥१२॥कश्यपजीको देखते हुए पीछे अदिति सहित सब देवता प्रणाम कर अंजलि बांध वचन कहने लगे जैसे ब्रह्माजीसे ब्रह्माजीके पुत्र कहते हैं॥१३॥और जो युद्धमें आकाशवाणीसे इन्द्रने श्रवण कियाथा कि सब देवताओंसे बलि दैत्य जीतनेमें नहीं आ सकता.यह सब वृत्तान्त कहते हुए॥१४॥तब तिन पुत्रोंके वचनको

तं ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठं सुरासुरगुरुं प्रभुम् ॥ प्रतपन्तमिवादित्यं मारीचं दीप्ततेजसम् ॥११॥ यः स्रष्टा सर्वभूतानां प्रजानां पतिरुत्तमः ॥ आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२ ॥ ततः प्रणम्य ते वीराः सहादित्याः सुरर्षभाः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३ ॥ तच्छ्रुतं युधि शक्रेण सरस्वत्या समीरितम् ॥ अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तमः ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपस्तदा ॥ चकार गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥१५॥ कश्यप उवाच॥ गच्छाम ब्रह्मसदनं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ यथाश्रुतं च तत्रैव ब्रह्मणे वदतानघाः ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽदित्या सह सुरा यान्तं कश्यपमन्वयुः ॥ प्रस्थितं ब्रह्मसदनं देवर्षिगणसेवितम् ॥ १७ ॥ ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं दिवौकसः ॥ दिव्यैः कामगमैर्यानैर्महार्हैः सुमनोहरैः ॥१८॥ दिदृक्षवस्ते ब्रह्माणं तपसो राशिमव्ययम् ॥ अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९ ॥ षट्पदोद्गीतनिनदां सामगीतविमिश्रिताम् ॥ श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुर्मुदा ॥ २० ॥

सुनकर लोकोंके रचनेवाले कश्यपमुनिब्रह्मलोकमें गमनकरनेके लिये बुद्धि करने लगे॥१५॥कश्यप मुनिकहने लगे;हे पुत्रो!ब्रह्मलोकमें हम सब चलेंगे, सो जैसे तुमने आकाशवाणीसे सुना है,वह सब ब्रह्मजीके सन्मुख वर्णन करना॥१६॥वैशंपायन बोले;देवर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्मलोकको कश्यपजीके संग अदिति और संपूर्ण देवता गमन करने लगे॥१७॥तब दिव्यरूपविमानमें बैठकर वे सबदेवता एक मुहूर्त्तमें ब्रह्मलोकमें जाकर प्राप्त हुए॥१८॥ तब यथायोग्य तपकी राशि और अविनाशी ब्रह्माजीको देखनेके लिये बडी विस्तारवाली ब्रह्माजीकी सभामें गये॥१९॥मोरोंके गानसे संयुक्त और सामवेदके

गानसे मिली हुई कल्याणको करनेवाली और शत्रुओंको नाशनेवाली ब्रह्माजीकी सभाको देखकर प्रसन्न हुए॥२०॥वेद और वेदाङ्गके पारको जानने-वाले ऋच और बह्वृच यज्ञसंबंधी नामोंसे विख्यात ब्राह्मणोंके विस्तारित किये अक्षर॥२१॥कर्मोंमें अनेक प्रकारकी वाणीको श्रवण करते और यज्ञ वेदांग आदि कर्मको जाननेवाले तथा पदके क्रमको जाननेवाले ॥ २२ ॥ ब्रह्मर्षियोंके शब्दसे शब्दित होते हुए और यज्ञकी स्तुतिको जाननेवाले और शिक्षावाले ॥ २३ ॥ २४ ॥ और शब्दके यथार्थ अर्थको जाननेवाले और संपूर्ण विद्याओंमें कुशल और मीमांसारूप वाक्योंको जाननेवाले और सब

ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः॥ शब्दनिर्वचनार्थं च प्रेर्यमाणपदाक्षराः ॥२१॥ शुश्रुवुस्तेऽमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ॥ यज्ञवेदाङ्गविदुषां पदक्रमविदां तथा ॥२२॥ घोषेण परमर्षीणां सा बभूव निनादिता ॥ यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ॥२३॥ शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ मीमांसाहितवाक्यज्ञैः सर्ववादविशा-रदैः ॥२४॥ हृष्टपुष्टस्वरैस्तत्र द्विजेन्द्रैर्वल्गुवादिभिः ॥ नादितं ब्रह्मसदनं प्रवरं देवसद्मवत् ॥२५॥ ते तत्र समनुप्राप्य शृण्वन्तो वै ध्वनिं सुराः ॥ पूतान्यात्मशरीराणि मेनिरे तु न संशयः ॥२६॥ तूष्णींभूता एकचित्ता ब्रह्मण्यगतमानसाः ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना निरीक्षन्तः परस्परम् ॥२७॥ नमस्कुर्वन्ति च पुनर्गुरुं लोकगुरुं प्रभुम् ॥ मनसैव सुरश्रेष्ठाः पुरस्कृत्य तु कश्यपम् ॥२८ ॥पुनः संपूज्य परमं वेदोच्चारणनिःस्वनम् ॥ गम्भीरोदारमधुरं सुस्वरं हंसगद्गदम् ॥२९॥ ऐक्यनानात्वसंयोगसमवायविशारदैः ॥ लोका-यतिकमुख्यश्च शुश्रुवुः स्वनमीरितम् ॥ ३० ॥

प्रकारके वेदोंके वादको जाननेवाले॥२५॥हृष्ट पुष्ट स्वरवाले ब्राह्मणोंके शब्दोंसे शब्दित वह ब्रह्मलोक देवलोकके समान शब्दायमान हो रहा था॥२६॥ ऐसे उत्तम ब्रह्मलोकमें वेदोंकी ध्वनिको सुनते हुए सब देवता पहुँचे और सब देवता अपने अपने शरीरको पवित्र मानते हुए इसमें संशय नहीं॥२७॥ पीछे मौनको धारण करनेवाले और ब्रह्माजीमें मनको लगाये आश्चर्यसे फूले हुए नेत्रोंवाले देवता आपसमें देखने लगे ॥२८॥ इसके उपरान्त मनसे प्रसन्न हुए सब देवता कश्यपजीको आगे कर जगत्‌के स्वामी ब्रह्माजीको प्रणाम करने लगे॥२९॥ऐक्य और नानाप्रकार संयोग समवायके जाननेवाले

शब्दाभिमानी देवताओंके अनेक प्रकारके शब्दोंको श्रवण करते हुए ॥ ३० ॥ जहां तहां ब्रह्मलोकमें उत्तम व्रतको धारण करनेवाले और जप होम आदि कर्मोंको करनेवाले ब्राह्मणोंको देखने लगे ॥३१॥ इस सभामें लोकके पितामह देवता और दैत्योंके गुरु और दिव्य मायासे सेवित विधिपूर्वक उपास्यमान थे ॥३२॥ तिस ब्रह्माजीको प्रजापति दक्ष प्रचेता पुलह मरीचि ब्राह्मण ॥३३॥ भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, मनु, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ॥ ३४ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति विकृति और सब प्रकारके पृथ्वीके कारण ॥३५॥ अङ्ग उपांगोंसहित चारों वेद सब

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान् संशितव्रतान् ॥ जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशुः कश्यपात्मजाः ॥३१॥ तस्यां सभायामास्ते स्म ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सुरासुरगुरुः श्रीमान्विधिवद्देवमायया ॥३२॥ उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः ॥ ३३ ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥ मनुर्द्यौरन्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ॥ ३४ ॥ शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् ॥३५॥ साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्वेदाः सरहस्यपदक्रमाः ॥ क्रियाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ॥३६॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः ॥ अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो दर्पश्च नित्यदा ॥ ३७ ॥ शक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तो बुध एव च ॥ शनैश्चरोऽथ राहुश्च ग्रहाः सर्वे ह्यशेषतः ॥३८॥ मरुतो विश्वकर्मा च नक्षत्राणि च भारत ॥ दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं समुपासते ॥ सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ॥३९॥ सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि गाथाश्च नियमास्तथा॥भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवन्ति विशांपते॥क्षणा लवा मुहूर्त्ताश्च दिवा रात्रिश्च भारत ॥४०॥

क्रिया, सब यज्ञ, संकल्प प्राण॥३६॥इसके अतिरिक्त औरभी स्वयम्भूके निकट उपस्थित हुए अर्थ, धर्म, काम, द्वेष, दर्प ॥३७॥ शुक्र, बृहस्पति, संवर्त्त, बुध, शनैश्चर, राहु, शेष रहे सब ग्रह॥३८॥मरुत, विश्वकर्मा, सब नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमा, यह सब ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं, गायत्री, सात प्रकारकी वाणी ॥ ३९ ॥ सब स्मृति, शास्त्र, सब गाथा सब निगम, देहवाले सब भाष्यरूप, शास्त्र, और क्षण, लव मुहूर्त्त, दिन, रात्रि ॥ ४० ॥

पक्ष, मास, छः ऋतु, संवत्सर, कृतयुग, त्रेतायुग,द्वापर, कलियुग, संध्या, महीना, रात ॥ ४१ ॥ दिव्य कालचक्र,ये सब और अन्यभी दिव्य बहुतसे ब्रह्माजीके समीपमें स्थित थे ॥ ४२ ॥ ऐसी दिव्यरूप और सब कामना देनेवाली ब्रह्मसभामें अपने धर्मात्मा पुत्र देवताओंसहित कश्यप ऋषि प्रविष्ट हुए ॥ ४३ ॥ वह सब प्रकारके तेजसे संयुक्त दिव्य और ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित, ब्रह्माके योग्य लक्ष्मीसे प्रकाशित, चिन्ता और ग्लानिसे रहित ॥४४॥ और परम आसनपर स्थित ब्रह्माजीको देख शिरसे प्रणाम करने लगे ॥ ४५ ॥ अपने अपने शिरोंसे ब्रह्माजीके चरणोंका स्पर्श कर सब पापोंसे

अर्धमासाश्च मासाश्चऋतवः षट् तथैव च ॥ संवत्सराश्चतुर्युगं मासा रात्रिश्चतुर्विधा ॥४१॥ कालचक्रं च यद्दिव्यमनित्यं ध्रुवमव्ययम् ॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः ॥४२॥ ते प्रविष्टाः सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम् ॥ कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धर्मविशारदैः ॥४३॥ सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ॥ ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानमचिन्त्यं विगतक्लमम् ॥४४॥ ब्रह्माणं वीक्ष्य ते सर्वे आसीनं परमासने ॥ जग्मुर्मूर्ध्ना शुभौ पादौ ब्रह्मणस्ते दिवौकसः ॥४५॥ शिरोभिः स्पृश्य चरणौ तस्य ते परमेष्ठिनः ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ॥४६॥ दृष्ट्वा तु तान्त्सुरान्त्सर्वान्कश्यपेन सहागतान् ॥ आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥४७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ॥ वीजानाम्यहमव्यग्र एतत्सर्वं महाबलाः ॥१ ॥ भविष्यति च वः सोऽर्थः कांक्षितो यः सुरोत्तमाः ॥ बलेर्दानवमुख्यस्य यो विजेता भविष्यति ॥ २ ॥

विमुक्त शांतरूप कश्यपसहित सब देवता हो गये ॥ ४६ ॥ तब कश्यपके सहित सब देवताओंके आगमनको देख अति तेजवान् और सब देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने ब्रह्मलोकगमने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ब्रह्माजी बोले; हे देवताओ ! जिस प्रयोजनके अर्थ तुम यहां आनकर प्राप्त हुए हो. हे महाबलवालो ! तिस अर्थको मैं यथार्थ जानता हूं ॥ १ ॥ तुम्हारा वांछित मनोरथ होगा, बलिदैत्यको जीतनेवाला उत्पन्न होगा ॥ २ ॥

सो सब दैत्योंकाही जीतनेवाला नहीं, किन्तु त्रिलोकीका जीतनेवाला और देवताओंमें श्रेष्ठ ॥ ३ ॥ और सब प्राणियोंको पालनेवाला, विश्वकी योनि, सनातन, जिसके पूर्वदेहको हिरण्यगर्भ कहते हैं ॥ ४ ॥ और सबोंसे बडा और किसीकी जीतमें नहीं आनेवाला विभु ॥ ५ ॥ और अतिवीयवाले बलिराजाको और विश्वको जीतनेवाला ॥ ६ ॥ सबका उत्पत्तिकारण मुझसे भी पूर्व होनेवाला, इस जगत्की उत्पत्ति करनेवाला और अचिन्त्य और विश्वात्मा और योगयुक्त तपस्वी जिसको महाभाग देवताभी नहीं जान सकते कि कौन है. यह वेदात्मा विश्व और पुरुषोत्तम

न खल्वसुरसंघानामेको जेता स विश्वकृत् ॥ त्रैलोक्यस्यापि जेतासौ देवानामपि चोत्तमः ॥३॥ धाता चैव हि लोकानां विश्वयोनिः सनातनः ॥ पूर्वदेहं सदा प्राहुर्हेमगर्भनिदर्शनम् ॥ ४ ॥ आत्मा देवेन विभुना कृतो जेयो महात्मना ॥ बलेरसुरमुख्यस्य विश्वस्य जगतस्तथा ॥५॥ प्रभवः स हि सर्वेषामस्माकमपि पूर्वजः ॥ अचिन्त्यः स हि विश्वात्मा योगयुक्तःपरंतपः ॥६॥ तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्ययसाविति ॥ वेदात्मानं च विश्वं च स देवः पुरुषोत्तमः ॥७॥ तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्येऽहं परां गतिम् ॥ यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥८॥ क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः ॥ अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा संशितव्रताः ॥९॥ अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् ॥ तत्र श्रोष्यथ विस्पष्टां स्निग्ध गम्भीरनिःस्वनाम् ॥ १० ॥ उष्णगे तोयपूर्णस्य तोयदस्य समस्वनाम् ॥ युक्ताक्षरपदस्निग्धां रम्यामभयदां शिवाम् ॥ ११ ॥

रूप है ॥ ७ ॥ तिसके प्रसादसे परमगतिको मैं कहता हूं. जिससे योगको प्राप्त हो दुश्चर तप किया जाता है ॥ ८ ॥ क्षीर सागरके उत्तर कूलपै उत्तर दिशामें अमृतनामसे विख्यात जिस देवका स्थान है वहां तुम सब व्रतधारी जाके ॥ ९ ॥ अमृतस्थानमें प्राप्त हो घोर तप करो, वहां तुम विस्पष्ट स्निग्ध और गंभीरशब्दवाली ॥ १० ॥ और गरमीमें समुद्रके समान गर्जनेवाली दिव्य, स्पष्ट अक्षर और पदोंसे युक्त रमणीय अभयकी देनेवाली और पवित्र ॥ ११ ॥

और सत्य और परम संस्कारसे युक्त दिव्य और सब पापोंको नाशनेवाली वरदायक ॥१२॥ साक्षात् अवतार लेनेवाला देवादिदेव ईश्वरकी कही हुई वाणीको तप व्रतके अन्तमें तुम श्रवण करोगे ॥ १३ ॥ उन विश्वके देव महात्माकी यह अमोघ वाणी होगी कि हे देवताओ ! तुमारा आगमन मेरे निकट सफल है॥१४॥सो मैं किसके अर्थ किस वरको दूं ? और वरको देनेवाला मैं स्थित हूं. तब अदिति और कश्यप देवसे यह वर मांगें॥१५॥ उनके चरणोंमें शिरसे प्रणाम करके कहें. हे देव योगात्मा ! तुम साक्षात् हमारे पुत्र हो जाओ इसमें संदेह न हो॥१६॥तब वह देव यही वरदान

वाणीं परमसंस्कारां वरदां ब्रह्मवादिनीम्॥दिव्यां सरस्वतीं सत्यां सर्वकिल्बिषनाशिनीम्॥१२॥सर्वदेवाधिदेवस्य भाषितां भावितात्मनः॥ तस्य व्रतसमाप्तौ तु यावद्व्रतविसर्जनम्॥१३॥ अमोघस्य तु देवस्य विश्वेदेवा महात्मनः॥ स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्सकाशे व्यवस्थिताः ॥१४॥ कस्य किं वा वरं देवा ददामि वरदः स्थितः ॥ तं कश्यपोऽदितिश्चैव वरं गृह्णीत वै ततः ॥१५॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै योगात्मने तदा ॥ भवानेव च नः पुत्रो भवत्विति न संशय ॥१६॥ उक्तश्च परया भक्त्या तथास्त्विति स वक्ष्यति ॥ देवा ब्रुवन्तु तं सर्वे भ्राता नस्त्वं भवेति ह ॥ १७ ॥ तथास्त्विति स च श्रीमान्वक्ष्यते सर्वलोककृत् ॥ १८ ॥ तस्मादेवं गृहीत्वा तु वरं त्रिदशसत्तमाः ॥ कृतकृत्याः पुनः सर्वे गच्छध्वं स्वं स्वमालयम् ॥ १९ ॥ तथास्त्विति सुराः सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ॥ वन्दित्वा ब्रह्मचरणौ गताः सौम्यां दिशं प्रति ॥ २० ॥ ते चिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदस्योत्तरं तटम् ॥ यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥ तेऽतीत्य सागरान्सर्वान्पर्वतांश्च बहून्क्षणात् ॥ नद्यश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां सुरसत्तमाः ॥ २२ ॥

देंगे और सब देवता उनसे कहें कि आप हमारे भ्राता हो ॥१७॥ सब लोकके रचनेवाले भगवान् उनसे तथास्तु कहेंगे॥१८॥तिस ईश्वरसे वरको प्राप्त हो कृतकृत्य हुए सब देवता अपने अपने स्थानोंको गमन करें॥१९॥ऐसेही हो, यह कहके सब देवता और कश्यप अदिति यह सब ब्रह्माजीके चरणारविन्दोंमें नमस्कार कर उत्तर दिशाको जाने लगे॥२०॥और थोडेसेही कालमें ब्रह्मवादी ब्रह्माजीके कहे हुए क्षीरसागरको प्राप्त हुए ॥२१॥ वे बहुतसे समुद्र, पर्वत, वन, दिव्यरूप नदीको क्षणमें उल्लघन कर अनेक प्रकारकी नदी और पृथ्वी देखते हुए ॥ २२ ॥

तथा घोर रूप और सब प्राणियोंसे वर्जित सूर्यके प्रकाशसेभी रहित, मर्यादाहीन, अंधेरेसे आच्छादित दिशाको देखते कश्यपसहित सब देवता अमृतस्थानको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ कश्यपजीके सहित सब देवता दीक्षाको ग्रहण कर व्रतको सहस्रों वर्षोंतक धारण किये रहे ॥ २४ ॥ देवताओंका ईश, योगरूप और नारायण देव सहस्रनेत्रोंवाले ईश्वरको प्रसन्न करनेको ब्रह्मचर्य मौनस्थान आसन शान्ति दमसे देवता उग्र तप करने लगे ॥२५॥ और महात्मा कश्यपजी उस ईश्वरको प्रसन्न करनेके अर्थ वेदोक्त उत्तम स्तोत्रको कहने लगे, जिसको परम स्तव कहते हैं ॥२६॥

पश्यन्ति च सुघोरां वै सर्वसत्त्वविवर्जिताम्॥अभास्कराममर्यादां तमसा संवृतां दिशम्॥अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन सुरैःसह॥२३॥ दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ॥ प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ॥ नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय धीमते॥२४॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च ॥ दमेन च सुराः सर्वे तपो दुश्चरमास्थिताः ॥ २५ ॥ कश्यपस्तत्र भगवान्प्रसादार्थं महात्मनः ॥ उदीरयति वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥ २६ ॥ इतिश्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥ कश्यप उवाच ॥ नमोस्तु १ देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष ४ वृषसिन्धो ५ वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्मित भद्रकपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुण्ठ त्रेतावर्त्त १७ अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः अग्निज॥२१॥ वृष्णिज अज अजय मृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् ३० ककुद्मिन् दुन्दुभे ३२ महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरिञ्चे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्षयाक्षय सत्याक्षर हंसाक्षर ४३ हव्यभुक् खण्डपरशो शुक्र मुञ्जकेशो हंस महाहंस महद-

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ अब वेदोक्त स्तोत्र कहा जाता है. कश्यप उवाच । नमोस्तु १ ते देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष (धर्मके खंभ)४वृषसिंधो (धर्मसागर) ५ वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्म्मित भद्र कपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुंठ त्रेतावर्त्त (श्रौतकर्मसे त्रेतायुगके प्रवर्त्तक) १७ अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः अग्निज (कार्त्तिकेय) २१ वृष्णिज अज अजय मृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् (धर्म, ज्ञान, वैराग्य के स्कंध) ३० ककुद्मिन् दुन्दुमे (विजयके शब्दवाले) ३२ महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरंचे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्ष, क्षयाक्षय सत्याक्षर हंसाक्षर (अजपामंत्र) ४३ हव्यभुक्, खण्ड-

परशो, शुक्रमुंजकेश,हंस,महाहंस,महदक्षर,हृषीकेश, सूक्ष्म, परसूक्ष्म, तुराषाट्, विश्वमूर्त्ते सुराग्रज, नील,निस्तमो, विरजस्तमोरजः सत्त्वधाम, सर्वलोक, सर्वलोकप्रतिष्ठ,शिपिविष्ट,सुतप, तपोग्र,अग्र,अग्रज,धर्मनाभ,गभस्तिनाभ, धर्मनेम, सत्यधाम,सत्याक्षर,गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ (समष्टिमनोधिरूढ विराडात्मा) ७४ विपाप्मन् त्वमेवसमुद्रवास (आपही समुद्रमें निवास करते हो) अजैकपात् सहस्रशीर्ष सहस्रसंमित,महाशीर्ष, सहस्रदृक्,सहस्रपात्, अधोमुख, महामुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहो,सहस्रमूर्ते, सहस्रास्य, सहस्राक्ष, सहस्रभुज, सहस्रभुव, सहस्रशस्त्वामाहुर्वेदाः (वेद आपके सहस्रों रूप कहता है) विश्वदेव, विश्वसंभव, सर्वेषामेव देवानां सौभग आदौ गतिः (धर्मरूप) ९७ विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वमाहुः (तुम विश्वरूप हो)

क्षर हृषीकेश सूक्ष्म परसूक्ष्म तुराषाट् विश्वमूर्ते सुराग्रज नील निस्तमो विरजस्तमोरजः सत्त्वधाम सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुत-पस्तपोग्र अग्र अग्रज धर्मनाभ गभस्तिनाभ धर्मनेम सत्यधाम सत्याक्षर गभिस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ ७४ त्वमेव समुद्रवासाः अजैकपात् सहस्रशीर्ष सहस्रसंमित महाशीर्ष सहस्रदृक् सहस्रपात् अधोमुख महामुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्राक्ष सहस्रभुज सहस्रभुव सहस्रशस्त्वामाहुर्वेदाः विश्वेदेव विश्वसंभव सर्वेषामेव देवानां सौभग आदौ गतिः९७विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः पुष्पहास परमवरदस्त्वमेव त्वमेव वौषट् ओंकारवषट्कारं त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम् शत-धार १०५ सहस्रधार १०६ भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव द्यौरसि पृथिव्यसि पूषासि मातरिश्वासि धर्मोसि मघवासि होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वम् होम्यहोता त्वमेव आपोसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यः स्रुक् १३२ स्रुग्भाण्ड १३३ त्वं गण इष्टोसि इज्योसि ईड्योसि

पुष्पहास परमवरदस्त्वमेव (तुमही परम वरदाता हो) त्वमेव वौषट् ओंकारवषट्कारं त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम् (आपहीको अग्र और यज्ञ-भागका भोक्ता कहते हैं)शतधार १०५ सहस्रधार १०६ भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव द्यौरसि पृथिव्यसि (स्वर्ग पृथ्वी तुम हो) पूषासि मातरिश्वासि (पवन हो) धर्म्मोसि मघवासि (इन्द्र हो) होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वं होम्य होता त्वमेव(होमकी वस्तु और होता तुमहो)आपोसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यःस्रुक्१३२ स्रुग्भाण्ड १३३ त्वं

गण इष्टोसि इज्योसि ईड्योसि त्वष्टात्वमसि समिद्धस्त्वमेव गतिर्गतिमतामसि(गतिवालोंकीआप गति हो) मोक्षोसियोगोसि गुह्योसि सिद्धोसिधन्योसि धातासि परमोसियज्ञोसि सोमोसि यूपोसिदक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसिस्थविष्ठ स्थविरविश्वतुराषाषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणांतर,नृणामयन आदित्यवर्णं आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव, पद्मनाभ, पद्मेशय,पद्माक्ष, पद्मगर्भ,हिरण्याग्रकेश शुक्र,विश्वेदेव, विश्वतोमुख, विश्वाक्ष, विश्वसंभव,विश्वभुक् त्वमेव (यह सब आपही हो) भूरिविक्रम,चक्रक्रम,त्रिभुवन, सुविक्रम स्वर्विक्रम,बभ्रु, सुविभुः, प्रभाकर,शम्भुः

त्वष्टा त्वमसि समिद्धस्त्वमेव गतिर्गतिमतामसि मोक्षोसि योगोसि गुह्योसि सिद्धोसि धन्योसि धारासि परमोसि यज्ञोसि सोमोसि यूपोसि दक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसि स्थविष्ठ स्थविर विश्व तुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्रविश्वदेव विश्वतोमुख विश्वाक्ष विश्वसंभव विश्वभुक्त्वमेव भूरिविक्रम चक्रक्रम त्रिभुवन सुविक्रम स्वर्विक्रम बभ्रु सुविभुःप्रभाकर शंभुःस्वयंभूश्च भूतादिः भूतात्मन् महाभूत विश्वभुक्त्वमेव विश्वगोप्तासि विश्वंभर पवित्रमसि हविर्विशारद हविकर्मा अमृतेन्धन सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् २०२ पूतात्मन् अमृतेश दिवस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यसि २०७ अनन्तकर्मन् २०८ द्रुहिणवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति २१३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

स्वयम्भूश्च, भूतादिः भूतात्मन्, महाभूत,विश्वभुक् त्वमेव विश्वगोप्तासि (आपही संसारके रक्षक हो) शिवंभर, पवित्रमसि, हविर्विशारद, हविःकर्मा अमृतेन्धन,सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् २०२ पूतात्मन् अमृतेश दिवस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यसि२०७अनन्तकर्मन्२०८ द्रुहिणवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति॥ इस स्तोत्रके पाठसे हे देव! तू हमारी रक्षा कर ॥२१३॥इति श्रीम० खिलेषु ह०

भविष्यपर्वणि भाषायां वामने महापुरुषस्तवे अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥वैशम्पायनजी बोले; कि वेदको जाननेवाले कश्यपजीके मुखसे कहे हुए इस स्तोत्रको सुनकर भगवान् नारायण ॥ १ ॥ मेघके समान शब्दवाले और स्निग्ध गंभीर रूप ऐसे देवताओंके शब्दको सुनकर प्रीतियुक्त मनसे स्पष्ट-रूप ॥२॥ वचनको महात्मा देवताओंके प्रति कहने लगे वह वाणी स्वच्छ पद अक्षरयुक्त थी; आकाशसे शब्द सुनने लगा और विष्णुका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वह श्रीमान् देव विष्णु प्रसन्न हो कहने लगे॥३॥भगवान् बोले; कि हे देवताओ ! तुम्हारे निश्चयसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ

वैशम्पायन उवाच ॥ नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैतत्परमं स्तवम् ॥ ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥१॥ स्निग्धगम्भीरनिर्घोषजीमूतस्वननिःस्वनम् ॥ मनसा प्रीतियुक्तेन विबुधानां महात्मनाम् ॥२॥ उवाच वचन सम्यग् हृष्टपुष्टपदाक्षरम् ॥ आकाशाच्छुश्रुवे शब्दो दर्शनं नोपलभ्यते ॥ श्रीमान् प्रीतमना देवः प्रोवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रीतोऽस्मि वः सुरश्रेष्ठाः सर्वे मत्तो विनिश्चयम् ॥ वरं वृणुत भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः ॥ ४ ॥ कश्यप उवाच ॥ यदैव भगवान् प्रीतः सर्वेषाममरोत्तमः ॥ तदैव कृतकृत्याः स्म त्वं हि नः परमा गतिः ॥५॥ यदि प्रसन्नो भगवान् दातव्यो वा वरो यदि ॥ वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धनः ॥६॥ अदित्यां वामनः श्रीमान् भगवानस्तु वै सुरः ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम् ॥ पुत्रार्थे वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ याचे त्वां पुत्रकामा वै भवान्पुत्रो भवत्विति ॥ निःश्रेयसाय सर्वेषां देवानां हि महात्मनाम् ॥ ८ ॥

हूं, सो वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो मैं तुमको वर देनेवाला हू॥४॥कश्यपऋषि बोले; कि हे देवश्रेष्ठ! जो इस सबोंपर तुम प्रसन्न हुए हो तो हमभी सब कृतकृत्य हुए कारण कि तुमही हमारी परमगति हो ॥५॥ जो आप प्रसन्न होकर वर देना चाहते हो तो इन्द्रके छोटे भ्राता देवताओंके आनंदको बढानेवाले ॥६॥ तुम मेरे पुत्र बामननामसे अदितिके शरीरमें जन्म लो. वैशम्पायन बोले; कि देवताओंकी माता अदितिभी पुत्र होनेके निमित्त वर मांगने लगी ॥ ७ ॥ अदिति बोली; कि हे देव ! तुम मेरे पुत्र हो जाओ और संपूर्ण देवताओंका मंगल करो ॥ ८ ॥

महात्मा देवता कहने लगे कि हमारे कल्याणके अर्थ हे देव ! हमारे भ्राता, स्वामी, भर्ता, धाता और शरण तुमही हो. हे देव ! जब तुम अदितिके पुत्रभावको प्राप्त होगे, तब इन्द्र आदि सब देवता तुमको देव कहकर बोलेंगे. इस कारण तुम कश्यपजीके पुत्र हो॥९॥ वैशम्पायन कहने लगे; कि इन पूर्वोक्त वचनोंको सुन विष्णु भगवान् देवता और कश्यपमुनिसे कहने लगे कि, ऐसेही होगा, और तुम्हारे मंगलकी प्राप्ति होगी ॥ १० ॥ तुम मनोवांछित कामनाको प्राप्त होगे और जो तुम्हारे शत्रु हैं, वे सब एक मुहूर्तभी मेरे सन्मुख स्थित नहीं रहेंगे, सब दैत्योंके समूहको और शेष रहे देवशत्रुओंको मारके

देवा ऊचुः ॥ भ्राता भर्ता च दाता च शरणं च भवस्व नः ॥ अदित्याः पुत्रतां याते त्वयि देवाः सवासवाः ॥ देवशब्दं वहिष्यन्ति कश्यपस्यात्मजो भव ॥९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च ॥ एवं भवतु भद्रं वो यथेष्टं काममाप्नुत ॥ सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः ॥ १० ॥ मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ॥ हत्वासुरगणान्सर्वान्ये चान्ये देवशत्रवः ॥११॥ करिष्ये देवताः सर्वा यज्ञभागाग्रभोजिनः ॥ हव्यादांश्च सुरान्सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि ॥१२॥ करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ यथागतेन मार्गेण निवर्त्तध्वं सुरोत्तमाः ॥१३॥ देवमातुस्तथादित्याः कश्यपस्यामितात्मनः ॥ यथामनीषितं कर्ता गच्छध्वं स्वं स्वमालयम् ॥१४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्ते तु वचने विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ देवाः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥१५॥ विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ॥ साध्या मरुद्गणाश्चैव शक्रश्चैव महाबलः ॥ नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसे ॥ १६ ॥

देवताओंको यज्ञभागमें अगाडी भोजन करनेवाला करूंगा ॥११॥ और हे देवश्रेष्ठो ! हव्यके खानेवाले देवताओंको और कव्यके खानेवाले पितरोंको करूंगा ॥१२॥ यह कार्य प्राजापत्य विधानसे करूंगा. हे देवताओ ! जिस मार्गसे तुम आये हो उसी मार्गके द्वारा तुम गमन करो ॥ १३ ॥ देवताओंकी माता अदितिका और महात्मा रूप कश्यपजीका मनोवांछित सफल करूंगा इस कारण तुम अपने अपने स्थानको प्राप्त हो॥ १४ ॥वैशम्पायन बोले; विष्णु भगवान्के यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए देवता भली प्रकारसे विष्णुको पूजने लगे॥ १५ ॥फिर विश्वदेवा, कश्यपजी, अदिति, साध्य देवता

मरुद्गण महाबली इन्द्र यह सब तिस विष्णु देवको प्रणाम कर॥१६॥पूर्वदिशामें कश्यपजीके आश्रममें प्राप्त हुए तब ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित कश्यपजीके आश्रममें जाकर वेदशास्त्रका पाठ करते इस इच्छासे सब देवता विचरने लगे कि अदिति कब गर्भको धारण करेगी ॥ १७ ॥ तब देवताओंकी माता अदितिने भूतात्मा महात्मा अतितेजवाले गर्भको दिव्य सहस्र वर्षोंतक धारण किया ॥ १८ ॥ जब दिव्य सहस्र वर्ष पूर्ण हो गये तब देवताओंके भयको दूर करनेवाले और दैत्योंको नाशनेवाले ॥ १९ ॥ उत्तम गर्भको जनाती हुई और गर्भस्थित विष्णुने त्रिलोकीके तेजोंको ग्रहण कर

प्रयाताः प्राग्दिशं दिव्यं विपुलं कश्यपाश्रमम् ॥ गत्वा तं आश्रमं तत्र ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ चेरुः स्वाध्यायनियता अदित्या गर्भमीप्सवः ॥ १७ ॥ अदितिर्देवमाता च गर्भं दध्रेऽतितेजसम् ॥ भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ १८ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥ सुराणां शरणं देवमसुराणां विनाशनम् ॥ १९ ॥ गर्भस्थेन तु देवेन परित्राताः सुरास्तदा ॥ आददानेन तेजांसि त्रैलोक्यस्य महात्मना ॥२०॥ तस्मिन् जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे ॥ भयदे दैत्यसंघानां सुराणां नन्दिवर्द्धने ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रजानां पतयः सप्त सप्त चैव महर्षयः ॥ तस्य देवस्य जातस्य नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥ भारद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ॥ यश्चोदितो भास्करे संप्रणष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥२॥ मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ दक्षप्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥

सब देवताओंकी रक्षा की ॥ २० ॥ जब त्रिलोकीके आनंददाता नारायणने जन्म लिया तब देवताओंको आनंद और दैत्योंको महाभय हुआ ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने वामनप्रसूतौ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥वैशम्पायन कहने लगे;कि जब वामनजीका जन्म हुआ तब सात प्रजापति और सात महर्षि उनको नमस्कार करने लगे ॥१॥ भरद्वाज,कश्यप,गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और भास्करके कर्त्ता अत्रि आये ॥ २ ॥ मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष प्रजापति नमस्कार करने लगे ॥ ३ ॥

वसिष्ठका पुत्र, और्वस्तम्ब, कश्यप, कपीवान् अकपीवान् दत्तात्रेय अत्रि च्यवन ॥ ४ ॥ वाशिष्ठ नामसे विख्यात सात वशिष्ठके पुत्र हिरण्यगर्भके पुत्र ॥ ५ ॥ तेजस्वी गार्ग्य पृथु, अन्यजन्य, वामन, देववाहु, यदुध्र, सोमका पुत्र पर्जन्य ॥ ६ ॥ हिरण्यरोमा, वेदशिरा, सत्यनेत्र, विश्वेदेवा, अतिविश्व दूसग च्यवन, सुधामा, विरजा/ ॥ ७ ॥ अतिनाम सहिष्णु, यह सब नमस्कार करने लगे और प्रकाशमान शरीरवाले और संपूण गहनोंसे भूषित ॥ ८ ॥ अप्सराओंके गणभी नृत्य करने लगे और गन्धर्व अपने बाजोंको बजाने लगे ।।९ ॥ और आकाशमें

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः कश्यप एव च ।। कपीवानकपीवांश्च दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ॥४॥ वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ हिरयण्यगर्भस्य सुताः पूर्वजाताः सुतेजसः ॥ ५ ॥ गार्ग्यः पृथुस्तथैवान्यो जन्यो वामन एव च ॥ देवबाहुर्यदुध्रश्च पर्जन्यश्चैव सोमजः ॥ ६ ॥ हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्रस्तथैव च ॥ विश्वोऽतिविश्वश्च्यवनः सुधामा विरजास्तथा ॥ ७ ॥ अतिनामा सहिष्णुश्च नमस्कारमकुर्वत ॥ उद्योतमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिताः ॥८॥ उपनृत्यन्ति देवेशं विष्णुमप्सरसां वराः॥ ततो गन्धर्वतूर्येषु प्रणदत्सु विहायसि ॥ ९ ॥ बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायत च तुम्बुरुः ॥ महाश्रुतिश्चित्रशिरा ऊर्णायुरनघस्तथा ॥१०॥ गोमायुः सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च सप्तमः ॥ युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्च त्रिशिरास्तथा ॥ ११ ॥ त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥ कलिः पञ्चदशश्चात्र तत्रैव तु महीपते ॥१२॥ दश पञ्च त्विमे प्रोक्ता नारदश्चैव षोडशः॥ हाहा हूहूश्च गन्धर्वौ हंसश्चैव महाद्युतिः ॥ १३ ॥

गंधर्वोंके संग तुंबरु गंधर्व गान करने लगा और महाश्रुति, चित्रशिरा, ऊर्णायु, अनघ ॥ १० ॥ गोमायु, सूर्यवर्चा, सामवर्चा, सप्तम युगप, तृणप, कार्ष्णि, नंदि, त्रिशिरा ॥ ११ ॥ तेरहवां शालिशिरा, चौदहवांपर्जन्य, कलि पन्द्रहवां ॥ १२ ॥ यह पन्द्रह और सोलहवें नारदजी, हाहा हूहू गंधर्व और अतिकीर्तिवाले हंस ॥ १३ ॥

यह देव, गन्धर्व,केशवका गान करने लगे और प्रसन्न हुई और सब प्रकारके गहनोंसे भूषित ऐसी अप्सरा ॥१४॥ सुंदर शरीर,सुन्दर जंघावाली, सर्वाङ्ग शुभ दर्शनवाली बडे नेत्रोंवाली नृत्य और गान करने लगी ॥ १५ ॥ अनेका, सुमध्या,चारुमध्या, प्रिया, मुख्या,वरानना, अनूका,जामी, वासी, मिश्रकेशी, अलंबुषा ॥१६॥ मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, आद्रिका, लक्ष्मणा, रम्भा, मनोरमा ॥१७॥ आसिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुभगा, उर्वशी चित्रलेखा, सुग्रीवी, सुलोचना ॥ १८ ॥ पुण्डरीका, सुगंधा और सुरथा, प्रमाथिनी, नन्दा, सारद्वती औरभी अनेकों

सर्वे ते देवगन्धर्वा उपगायन्ति केशवम् ॥ तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषिताः ॥ १४ ॥ वपुष्मन्तः सुजघनाः सर्वाङ्गशुभदर्शनाः ॥ ननृतुश्च महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ १५ ॥ सुमध्याश्चारुमध्याश्च प्रियमुख्या वराननाः ॥ अनूकाथ तथा जामी मिश्रकेशी त्वलम्बुषा ॥ १६ ॥ मरीचिशुचिकाश्चैव विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा ॥ अद्रिका लक्षणा चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा ॥१७॥ असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुभगा तथा ॥ उर्वशी चित्रलेखा च सुग्रीवा च सुलोचना ॥ १८ ॥ पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी ॥ नन्दा शारद्वती चैव तथान्यास्तत्र संघशः ॥ १९ ॥ मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ एताश्चाप्सरसोऽन्याश्च प्रनृत्यन्ति सहस्रशः ॥ २० ॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ॥ २१ ॥ कथितो विष्णुरित्येवं काश्यपेयो गणस्तथा ॥ इत्येते द्वादशादित्या ज्वलन्तः सूर्यवर्चसः ॥ २२ ॥ चक्रुस्तस्य सुरेशस्य नमस्कारं महात्मनः ॥ मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महाबलः ॥ २३ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥ दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ मेंनका, सहजन्या, पर्णिका, पुंजिकस्थला यहभी और अन्यभी सहस्रों अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ २० ॥ धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, पूषा, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता ॥ २१ ॥ विष्णु, यह काश्यपगण कहा है और अग्निके समान तेजवाले बारह सूर्य ॥ २२ ॥ उन जन्मे हुए सुरेशको नमस्कार करने लगे और मृगव्याध सर्प निर्ऋति ॥ २३ ॥ अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य,

पिनाकी, अपराजित, दहन, ईश्वर, कपाली ॥२४॥ स्थाणु, भव, भगवान् रुद्र स्थित हुए और दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु, महाबलवाले मरुत ॥२५॥ विश्वेदेवा, साध्य यह हाथ जोडकर स्थित हुए और शेषनागजीके छोटे भ्राता महाभाग वासुकी आदि ॥ २६ ॥ अपहर्ता, महाबली तक्षक अघस नामोंवाले महाक्रोधी महाबलवाले सर्प ॥२७॥ औरभी बहुतसे सर्प सब अंजली बांधकर तिन जन्मे हुए ईश्वरको नमस्कार करने लगे तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि और महाबली गरुड॥२८॥ और अरुण, आरुणि, गरुड अंजली बांधकर स्थित हुए और लोककर्ता श्रीमान्ब्रह्माजीभी स्वयं

स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ॥ अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ॥२५॥ विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्य प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ शेषानुजा महाभागा वासुकिप्रमुखास्तथा ॥२६॥ कच्छपश्चापहर्त्ता च तक्षकश्च महाबलः ॥ अधृष्टास्तेजसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः ॥ २७ ॥ एते नागा महात्मानस्तस्मै प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥२८॥ अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया ह्युपस्थिताः॥पितामहश्च भगवान्स्वयमागम्य लोककृत् ॥ प्राह चैवं गुरुः श्रीमान्सह सर्वैर्महात्मभिः ॥२९॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्प्रसूयते लोकः प्रभविष्णुः सनातनः ॥ तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान्विष्णुरेव भवत्वयम् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वा तु भगवान्सार्द्धं देवर्षिभिः प्रभुः ॥ नमस्कृत्वा सुरेशाय जगाम त्रिदिवं पुनः ॥३१॥ स तु जातःसुरेशानः कश्यपस्यात्मजः प्रभुः ॥ नवदुर्दिनमेघाभो रक्ताक्षो वामनाकृतिः ॥ ३२ ॥ श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजातेन राजता ॥ उत्फुल्ललोचनाः सर्वाः पश्यन्त्यप्सरसस्तदा ॥३३॥ दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥ यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासा तस्य महात्मनः ॥३४॥

सब महात्माओंके संग आकर तहां कहनेलगे॥२९॥ब्रह्माजी बोले; कि जिससे यह लोक उत्पन्न होता है वह सनातनविष्णु यही है और लोकोंके ईश्वर श्रीमान् विष्णुभी यही है॥ ३० ॥ यह कहकर देवर्षियोंसे सहित ब्रह्माजी नमस्कार कर स्वर्गको चले गये ॥३१॥ और देवताओंके स्वामी कश्यपके पुत्र नवीन दुर्दिनमें मेघके समान कान्तिवाले लालनेत्रवाले वामनरूपको धारण किये ॥३२॥ श्रीवत्ससे शोभित वामनजी उत्पन्न हुए, तब उत्फुल्लनेत्रोंवाली सब अप्सरा उनको देखने लगीं॥३३॥यदि आकाशमें सहस्र सूर्योंसे एकवेर जो कान्ति उपजतीहै, तैसीही कान्ति उन महात्माकी

थी ॥ ३४ ॥ और देवाषयोंके समान श्रीमान् भूत भविष्यत् वर्त्तमानको जाननेवाले, शुद्धरोमोंवाले, बडी छाती सब प्रकारके तेजोंसे संयुक्त ॥३५॥ पुण्यशीलोंके गतिरूप, पापकर्मवालोंको अगतिरूप, योगको जाननेवाले ॥ ३६ ॥ महात्मा जिनको जानते हैं आठ गुणोंवाल देवताओंमें श्रेष्ठ और मोक्षकी इच्छावाले ब्राह्मण जिनको प्राप्त हो॥३७॥भवभीरु जन्म और मरणसे छूट जाते हैं, और सब आश्रम निवासी जिसको तप कहते हैं॥३८॥ और जिसको उग्र व्रत करनेवाले मुनि सेवते रहते हैं, और सर्पोंमें अनन्त नामसे विख्यात और सब प्रकारके सर्पोंकरके सेवित ॥३९॥ सहस्र शिरों-

सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान्भूर्भुवोः भूतभावनः ॥ शुचिरोमा महास्कन्धः सर्वतेजोमयः प्रभुः ॥ ३५ ॥ या गतिः पुण्यकीर्तीनामगतिः पापकर्मणाम् ॥ योगसिद्धा महात्मानो यं विदुर्योगमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम्॥यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ ३७ ॥ जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यन्ते भवभीरवः ॥ यदेतत्तप इत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः॥३८॥ सेवन्ते यं यताहारा दुश्चरं व्रतमास्थिताः ॥ योऽनन्त इति नागेषु सेव्यते सर्वभोगिभिः ॥ ३९ ॥ सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ॥ यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरिज्यते स्वर्गलिप्सुभिः ॥ ४० ॥ नानास्थानगतः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः ॥ यं वेदा गान्ति वेत्तारं यज्ञ भागप्रदायिनम् ॥ ४१ ॥ वृषार्चिश्चन्द्रसूर्याक्षं देवमाकाशविग्रहम् ॥ स प्राह त्रिदशान्सर्वान्वाचा वै परया विभुः ॥ ४२ ॥ जानन्नपि महातेजा गतो योगेन बालताम् ॥ किं करोमि सुरश्रेष्ठाः कं वरं च ददामि वः ॥ ४३ ॥ यत्काङ्क्षितं वै सर्वेषां तद्वै ब्रूत मुदा युताः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महात्मनः ॥ ४४ ॥

वाले लाल नेत्रोंवाले, स्वर्गके अर्थ इच्छा करनेवाले, ब्राह्मणोंसे पूजित यज्ञरूप ॥४०॥नानाप्रकारके स्थानोंमें प्राप्त श्रीमान् अति उत्तम कवि जिसको वेदवेत्ता कहते हैं और सबके अर्थ यज्ञभागको प्राप्त करनेवाले ॥४१॥ चन्द्रमा सूर्यरूप दो नेत्रोंवाला; धर्मकांति देव और आकाश विग्रहवाले मधुर वाणीसे सब देवताओंसे कहने लगे वह जानकरभी योगभावसे बालभावको प्राप्त हुए बोले; कि हे देवश्रेष्ठो ! मैं क्या करूं ? और किस वरको तुम्हारे अर्थ दूं ? ॥ ४२ ॥ जो तुमको वांछित हो, वह प्रसन्न होकर तुम कहो तब उन महात्मा वामनजीके वचनको सुनकर ॥ ४३ ॥ प्रसन्नमन हो इन्द्र

आदि सम्पूर्ण देवता अंजलि बांधकर वामनजीसे कहने लगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे और तप और बडे पराक्रमसे बलिराजाने हमारा यह संपूर्ण जगत् हर लियाहै ॥ ४६ ॥ और वह बलिराजा हम सबोंसे अवध्य है, दैत्योंमें मुख्य और महात्मा है ॥ ४७ ॥ सो तुम उसका तिरस्कार करनेके योग्य हो, अन्य कोई नहीं, इस कारण हम सब तुम्हारी शरण हैं, आप सब देवताओंका भय हरनेवाले हैं ॥ ४८ ॥ हे सुरेश्वर ! ऋषियोंके व लोकोंके हितके अर्थ अदिति और कश्यपके प्यारके अर्थ ॥४९॥ पितरोंको कव्य और देवताओंको हव्य प्रवृत्त करनेको हे महाबाहो ॥ ५० ॥

सर्वे ते हृष्टमनसो देवाः कश्यपनन्दनम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो विष्णुं सुराः शक्रपुरोगमाः ॥४५॥ ब्रह्मणो वरदानेन हृतं नो निखिलं जगत् ॥ तपसा महता चैव विक्रमेण दमेन च ॥४६॥ बलिना दैत्यमुख्येन सर्वज्ञेन महात्मना ॥ अवध्यः किल सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम ॥४७॥ भवान्प्रभवते तस्य नान्यः कश्चन सुव्रत ॥ यत्प्रपद्यामहे सर्वे भवन्तं शरणार्थिनः ॥ शरण्यं वरदं देवं सर्वदेवभयापहम् ॥ ४८ ॥ ऋषीणां च हितार्थाय लोकानां च सुरेश्वर ॥ प्रियार्थं च तथादित्याः कश्यपस्य तथैव च ॥४९॥ कव्यं पितॄणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम् ॥ प्रवर्तेत महाबाहो यथापूर्वं सुरोत्तम ॥५०॥ आनृण्यार्थं सुरेशस्य वासवस्य महात्मनः ॥ प्रत्यानय महेन्द्रस्य त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ ५१ ॥ क्रतुना वाजिमेधेन यजते स हि दानवः ॥ यत्प्रत्यानयने युक्तं लोकानां तद्विचिन्तय ॥५२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तस्तदा देवैर्विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ प्रहर्षयन्नुवाचाथ सर्वान्देवानिदं वचः॥५३॥ विष्णुरुवाच ॥ तस्य यज्ञसकाशं मां महर्षिर्वेदपारगः ॥ बृहस्पतिर्महातेजा नयत्वङ्गिरसः सुतः ॥ ५४ ॥

आप प्रवृत्त हूजिये, महात्मा इन्द्रका ऋण दूर करनेको इस त्रिलोकीको इन्द्रके अर्थ फिर प्राप्त कीजिये॥५१॥ इस समयमें बलिराजा अश्वमेध यज्ञ करता है, सो जिस प्रकार लोकोंका फिर राज्य इन्द्रको मिले, ऐसा चिन्तवन करो॥५२॥वैशंपायनजी बोले; कि इस प्रकार संपूर्ण देवताओंके वचनको श्रवण कर सर्व देवताओंको प्रसन्न करनेवाले वामन रूपको धारण कर विष्णु वचन कहने लगे ॥५३॥ विष्णु बोले; कि हे देवताओ ! वेदके

पारको जाननेवाले बडे ऋषि और उग्रतेजवाले अंगिरा ऋषिके पुत्र बृहस्पति मुझे बलिके यज्ञमें ले चले।।५४।।तहां मैं प्राप्त होकर यथायोग्य त्रिलोकीके हरनेके लिये यज्ञभूमिमें विचरण करूंगा ।।५५।। वैशंपायनजी बोले; कि तब श्रीमान् बृहस्पति जहां बलिराजाका यज्ञ हो रहा था, वहां वामनजीको लाये।।५६।।अर्थात् मूंजकी तागडी धारण किये यज्ञोपवीत धारण करे छत्र, दण्ड, मृगछाला, धूम्र और लालरंग नेत्रोंवाले, बालकरूप, धारण किये वामनजी ।। ५७ ।। उस ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित यज्ञवाटमें जाकर भगवान् स्वयं उस यज्ञका वर्णन करने लगे।।५८।।लोकेश्वरोंकेभी ईश्वर ब्रह्मादि देवताओंके भेजेहुए बालक होकरभी बूढोंके समान कर्म करनेवाले।।५९।।इस प्रकार वह अचिन्त्यात्मा वामनजी दैत्योंके पति विरोचन बलिराजाके

तस्याहं समनुप्राप्तो यज्ञवाटं सुरोत्तमाः।। विचरिष्ये यथायुक्तं त्रैलोक्यहरणाय वै ।। ५५ ।। वैशम्पायन उवाच ।। ततो बृहस्पतिर्धीमाननयद्वामनं प्रभुम् ।। यज्ञवाटं महातेजा दानवेन्द्रस्य धीमतः ।।५६।। मौञ्जी यज्ञोपवीती च क्षत्री दण्डी ध्वजी तथा ।। वामनो धूम्ररक्ताक्षो भगवान्बालरूपधृक्।।५७।। तं गत्वा यज्ञवाटं च ब्रह्मर्षिगणसंकुलम् ।। आत्मना चैव भगवान्वर्णयामास तं क्रतुम्।।५८।। लोकेश्वरेश्वरः श्रीमान्सुरैर्ब्रह्मपुरोगमैः ।। अध्यास्यमानो भगवानवृद्धोऽप्यथ वृद्धवत् ।।५९।।दानवाधिपतेस्तस्य बलेर्वैरोचनस्य च ।। यज्ञवाटमचिन्त्यात्मा जगाम सुरसत्तमः ।।६०।। पालितोऽपि हि दैतेयैः सांग्रामिकपरिच्छदैः ।। द्वारे दानवसंबाधे सहसैव विवेश ह ।।६१।। ऋषिभिश्चैव मन्त्राद्यैः सर्वतः परिवारितम् ।। दैत्यदानवराजेन्द्रमुपतस्थे बलिं बली ।।६२।। वर्णयित्वा यथान्यायं यज्ञं यज्ञसनातनः ।। विस्तरेण नरश्रेष्ठ प्रयोगैर्विविधैस्तथा ।।६३।। शुक्रादीनृत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणान् ।। सर्वानेव निजग्राह चकार च निरुत्तरान् ।।६४।। आरादथ बलेस्तस्य ऋत्विजामभितस्तथा ।। यज्ञमात्मानमेवासौ हेतुभिः कारणं विभुः ।। ६५ ।।

यज्ञस्थानमें प्राप्त हुए ।।६०।। युद्धके योग्य सामग्रीवाले दैत्योंसे आच्छादित यज्ञद्वारमेंभी वामनजी वेगसे प्रवेश कर गये ।। ६१ ।। तहां मंत्रोंको उच्चारण करनेवाले ऋत्विक् जनोंसे चारों ओर परिवारित, दैत्योंके बलिराजा बलिके समीपमें वह बली स्थित हुए।।६२।। और ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित स्थित तिस यज्ञभूमिमें प्राप्त हो यज्ञकी सराहना करने लगे और यथायोग्य यज्ञका वर्णन कर विस्तारपूर्वक नानाप्रकारके प्रयोगोंसे ।।६३।। शुक्राचार्य आदि यज्ञकर्मके जाननेवाले ऋत्विजोंको वामनजी अपने वाक्योंसे उत्तर देनेको असमर्थ करते हुए ।।६४।। पीछे सब ऋत्विक् बलिराजाके समीपमें

आत्मारूप इस यज्ञको कारणसहित विभु ॥६५॥ अप्रकाशरूप वैदिक मंत्रोंसे ऋषिके समूहोंके प्रत्यक्ष वर्णन करने लगे ॥ ६६ ॥ तब सब वृद्धरूप उपाध्याय और मुनियोंको जब बालकरूप महाबली वामनजीने उत्तर देनेको असमथ कर दिया ॥६७॥ तब विरोचनके पुत्र बलिने वामनजीको अद्भुत माना और मस्तकसे अंजलिको बांध विस्मित हो बलि कहने लगा॥६८॥कि तुम कहांसे आये और कौन हो?किसके शिष्य हो और यहां किस प्रयोजनसे आये हो ? ऐसे उत्तमज्ञानवाले ब्राह्मण पहले कभी मैंने नहीं देखे, बालक और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, ज्ञान और विज्ञानको जाननेवाला ॥६९॥ बुद्धिवालोंमें श्रेष्ठ ज्ञानविज्ञानमें श्रेष्ठ हो, शिष्टोंकी वाणी और रूपसे संपन्न मनोहर और प्रियदर्शन हो ॥ ७० ॥ इस प्रकारके पुत्र

वैदिकैरप्रकाशैश्च पुनरप्यथ भारत ॥ प्रत्यक्षमृषिसंघानां वर्णयाभास चित्रगुः॥६६॥ ततो निरुत्तरान्दृष्ट्वा सोपाध्यायानृषींश्च तान्॥ अवृद्धेनापि वृद्धांस्तान्वामनेन महौजसा ॥ ६७ ॥ अद्भुतं चापि मेने स विरोचनसुतो बली ॥ मूर्ध्ना कृताञ्जलिश्चेदमब्रवीद्विस्मितो वचः ॥ ६८ ॥ कुतस्त्वं कोऽसि कस्यासि किं ते ह्यस्ति प्रयोजनम् ॥ नैवंविधा परिज्ञातोऽदृष्टपूर्वो मया द्विजः ॥ ६९ ॥ बालो मतिमतां श्रेष्ठो ज्ञानविज्ञानकोविदः ॥ शिष्टवाग्रूपसंपन्नो मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥७०॥ नेदृशाः सन्ति देवानामृषीणामपि सूनवः ॥ न नागानां न यक्षाणां नासुराणां न रक्षसाम् ॥७१॥ न पितॄणां न सिद्धानां गन्धर्वाणां तथैव च ॥ योऽसि सोऽसि नमस्तेऽस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ॥७२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उक्त एवं ह्यचिन्त्यात्मा बलिना वामनस्तदा ॥ प्रोवाचोपायतत्त्वज्ञः स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

देवता और ऋषियोंकेभी नहीं हैं. नाग, यक्ष, दैत्य, राक्षस, पितर और गंधर्वोंकेभी पुत्र तेरे समान नहीं है ॥७१॥ जैसा तुम्हारा रूप है ऐसा पितर सिद्ध और गंधर्वोंका नहीं होता, तुम जो कोईभी हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूं कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? ॥७२॥ वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार बलिराजाके वचन श्रवण कर उपायके तत्त्वको जाननेवाले वामनजी मंद मुसकान सहित कहने लगे ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

विष्णु बोले; कि बहुत खानेके पदार्थोंसे युक्त और सुन्दर संस्कारोंसे व्याप्त असुरेश बलिराजाका यज्ञ हो रहा है ॥ १ ॥ यह अति अद्भुत है, जैसे पहले ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, तथा असुरेशशत्रु इन्द्र, वरुण, यमके यज्ञ थे. हे दैत्येन्द्र बलिराजा ! देवताओंके स्वामी इन्द्र, यम, वरुणकेभी यज्ञोंसे तैंने विशेष यज्ञ किये हैं ॥२॥ और स्वर्गमार्गको दिखानेवाले सब यज्ञोंमें उत्तम अश्वमेध यज्ञसे सब पापोंके नाशके अर्थ तुम पूजा करते हो ॥ ३ ॥ सो ब्रह्मवादियोंने सर्व कामनासे संयुक्त और संपूर्ण यज्ञोंमें उत्तम और अश्वमेधनामसे विख्यात तुम्हारा यज्ञ माना है, यह श्रुति है कि अश्वमेध सब

विष्णुरुवाच ॥ अहो यज्ञोऽसुरेशस्य बहुभक्षः सुसंस्कृतः ॥ पितामहस्येव पुरा यजतः परमेष्ठिनः ॥ १ ॥ सुरेशस्य च शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ विशेषितस्त्वया यज्ञो दानवेन्द्र महाबल ॥२॥ यजता वाजिमेधेन क्रतूनां प्रवरेण तु ॥ सर्वपापविनाशाय त्वया स्वर्गप्रदर्शिना ॥३॥सर्वकाममयो ह्येष संमतो ब्रह्मवादिनाम् ॥ क्रतूनां प्रवरः श्रीमानश्वमेध इति श्रुतिः ॥ ४ ॥ सुवर्णशृङ्गो हि महानुभावो लोहक्षुरो वायुजवो महारथः ॥ स्वर्गेक्षणः काञ्चनगर्भगौरः स विश्वयोनिः परमो हि मेध्यः ॥ ५ ॥ आस्थाय वै वाजिनमश्वमेधमिष्ट्वा नरा दुष्कृतमुत्तरन्ति ॥ आहुश्च यं वेदविदो द्विजेन्द्रा वैश्वानरं वाजिनमश्वमेधम् ॥ ६ ॥ यथाश्रमाणां प्रवरो गृहाश्रमो यथा नराणां प्रवरा द्विजातयः ॥ यथाऽसुराणां प्रवरो भवानिह तथा क्रतूनां प्रवरोऽश्वमेधः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वामनेन समीरितम् ॥ मुदा परमया युक्तः प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥ ८ ॥

यज्ञोंसे उत्तम है ॥ ४ ॥ सुवर्णके शृंगोंसे संयुक्त महानुभाववाला और वायुके समान वेगवान्, महात्मा लोहक्षरनामक वायुके समान वेगगामी और सत्यरूप नेत्रोंवाला सुवर्णके गर्भके समान गौर वर्ण और विश्वयोनि परम अश्वमेध है अर्थात् पवित्र है ॥ ५ ॥ और अश्वमेध यज्ञसे मनुष्य पापोंको तिरते हैं,और अश्वमेधयज्ञके घोडेको वेदके जाननेवाले ब्राह्मण अग्निरूप कहते हैं ॥६॥ जैसे सब आश्रमोंमें उत्तम गृहाश्रम है,जैसे सब मनुष्योंमें उत्तम ब्राह्मण है, जैसे सब दैत्योंमें उत्तम तुम हो. तैसेही संपूर्णयज्ञोंमें उत्तम यह अश्वमेध यज्ञ है।।७।।वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार वामनजीके कहे

वचनोंको श्रवण कर आनंदसे प्रसन्न हुआ दैत्योंका पति बलिराजा कहने लगा ॥८॥ बलि बोले; कि हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! तुम किसके शिष्य हो ? और क्या इच्छा करते हो, जो मैं तुमको वर दूं, तुम्हारा मंगल हो, मुझसे वर मांगो. मुझसे तुम मनवांछित फलको प्राप्त होगे ॥ ९ ॥ वामनजी कहने लगे; मैं राज्य असवारी, रत्न भार्याको नहीं मांगता हूं, जो तुम मुझपर प्रसन्न हो और धर्ममें तुम्हारी बुद्धि है॥१०॥तो गुरुके प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये मुझे तीन चरण पृथ्वी दो, यही परम वरहै. यह वामनजीके वचन सुन दैत्यराज बलिराजा कहने लगा ॥ ११ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तीन पैग पृथ्वीसे

बलिरुवाच ॥ कस्यासि ब्राह्मणश्रेष्ठ किमिच्छसि ददामि ते ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ९ ॥ वामन उवाच ॥ न राज्यं न च यानानि न रत्नानि न च स्त्रियः ॥ कामये यदि तुष्टोसि धर्मे च यदि ते मतिः ॥ १० ॥ गुर्वर्थं मे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव ॥ त्वमग्निशरणार्थाय एष मे प्रवरो वरः ॥ वामनस्य वचः श्रुत्वा प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥११॥ बलिरुवाच ॥ त्रिभिः किं तव विप्रेन्द्र पदैः प्रवदतां वर ॥ शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥ १२ ॥ शुक्र उवाच ॥ मा ददस्व महाबाहो न त्वं वेत्सि महासुर ॥ एष मायाप्रतिच्छन्नो भगवान्प्रवरो हरिः ॥ १३ ॥ वामनं रूपमास्थाय शक्रप्रियहितेप्सया ॥ त्वां वञ्चयितुमायातो बहुरूपधरो विभुः ॥ १४ ॥ एवमुक्तः स शुक्रेण चिरं संचिन्त्य वै बलिः ॥ प्रहर्षेण समायुक्तः किमतः पात्रमिष्यते ॥ १५ ॥ प्रगृह्य हस्ते संभ्रान्तो भृङ्गारं कनकोद्भवम् ॥ बलिरुवाच ॥ विप्रेन्द्र प्राङ्मुखस्तिष्ठ स्थितोऽस्मि कमलेक्षण ॥ १६ ॥

तुम्हें क्या लाभ होगा, दश वीस लाख पैग पृथ्वीको मांगो ॥१२॥ तब शुक्राचार्य कहने लगे; हे राजन् ! हे महाबाहो !! पृथ्वीका दान तुम मत करो, इनको तुम नहीं जानते हो, यह मायासे आच्छादित साक्षात् विष्णु हैं ॥ १२ ॥ सो वामनरूपको धारण कर इन्द्रका प्रिय करनेके निमित्त तुझे ठगनेके अर्थ बालकका रूप धर आये हैं, यह विभु बहुरूपधारि हैं॥१४॥ इस प्रकार शुक्राचार्यके वचनको श्रवण कर बहुत कालतक चिन्ता कर आनंदित हुआ बलिराजा वामनजीसे अधिक अन्यपात्रको न जानकर ॥१५॥ हाथमें सुवर्णकी झारीको ले बलिराजा कहने लगा. बलि बोले;

कि हे विप्रेन्द्र ! कमलनेत्र ! मैं पूर्वको मुख करे स्थित हूं ॥ १६ ॥ और आप उत्तरको मुख कीजिये. और तीन पैग पृथ्वी ग्रहण करनेके अर्थ मेरे हाथसे जलकी प्राप्ति करो, क्योंकि तेरे गुरुकी वांछा पूर्ण होनी चाहिये ॥ १७ ॥ फिर शुक्राचार्य कहने लगे; कि हे दैत्य ! इसके अर्थ पृथ्वीका दान मत दे, मैंने जान लिया कि यह साक्षात् विष्णु हैं सो तुझको ठगता है. तुम ठगाईमें मत आओ ॥१८॥ तब बलिराजा बोला; कि इस यज्ञमें साक्षात् आप आनकर प्राप्त हो गये हैं. सो जिस जिस बातकी इच्छा यह विष्णु भगवान् करेंगे, सोही मैं दूंगा ॥१९॥ क्योंकि इस विष्णुसे उपरान्त

प्रतीच्छ देहि किं भूमिं का (किं) मात्रा भोः पदत्रयम् ॥ दत्तं च पातय जलं नैव मिथ्या भवेद्गुरुः ॥१७॥ शुक्र उवाच ॥ भो न देयं कुतो दैत्य विज्ञातोऽयं मया ध्रुवम् ॥ कोऽयं विष्णुरहो प्रीतिर्वञ्चितस्त्वं न वञ्चितः ॥ १८ ॥ बलिरुवाच ॥ कथं स नाथोऽयं विष्णुर्यज्ञे स्वयमुपस्थितः ॥ दास्यामि देवदेवाय यद्यदिच्छत्ययं विभुः ॥१९॥ को वान्यः पात्रभूतोऽस्माद्विष्णोः परतरो भवेत् ॥ एवमुक्त्वा बलिः शीघ्रं पातयामास वै जलम् ॥ २० ॥ वामन उवाच ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र पर्याप्तानि ममानघ ॥ यन्मया पूर्वमुक्तं हि तत्तथा न तदन्यथा ॥२१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महौजसः ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयं स कृत्वा वैरोचनिस्तदा ॥२२॥ एवमस्त्विवति दैत्येशो वाक्यमुक्त्वारिसूदनः ॥ ततो वारिसमापूर्णं भृङ्गारं स परामृशत् ॥२३॥ वामनो ह्यसुरेन्द्रस्य चिकीर्षुः कदनं महत् ॥ क्षिप्रं प्रसारयामास दैत्यक्षयकरं करम् ॥ २४ ॥

अन्य उत्तम कौन पात्र है, इस प्रकार कह उस समय बलिराजाने अपने हाथमें जल ग्रहण किया ॥२०॥ तब वामनजी कहने लगे; कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे पैरोंसे नापी हुई तीन पैग पृथ्वी मुझको दो. अन्य पदार्थकी अभिलाषा नहीं है ॥ २१ ॥ वैशम्पायन बोले; कि इस प्रकार वामनजीके वचनको श्रवण करके काले मृगकी छालाको कंधेपर धारण करनेवाले बलिराजा कहने लगे ॥२२॥ ऐसेही होगा, तब जलसे पूरित झारीको अच्छी प्रकार हाथमें धारण कर लिया ॥२३॥ तब बलिराजाके राज्यको खोनेकी इच्छासे वामनजीने तिसी समय अपना दैत्यका क्षय करने-

वाला हाथ फैलाया ॥२४॥ जब पूर्वको मुखकर बलिराजाने मनसे झारीसहित जलको वामनजीके हाथमें दिया॥२५॥तब तिस अचिन्त्य अति-पराक्रम करनेवाले और बलिराजाकी लक्ष्मीको हरनेवाले महात्मा वामनजीके अद्भुतरूपको देख॥२६॥लक्षणोंको जाननेवाले बुद्धिमान् प्रह्लाद वचन कहने लगे प्रह्लाद बोले; कि हे राजन् ! वामनरूप धारण करनेवाले इस बालकके हाथमें जल मत दो॥ २७ ॥ यह वही विष्णु हैं, जिसने तुम्हारे प्रपितामह हिरण्यकशिपुको मारा है सोईतुमको ठगनेके लिये इस स्थानमें प्राप्त हुए हैं ॥२८॥ बलिराजा बोले; कि इस देवके अर्थ मैं प्रतिग्रह दूंगा और

प्राङ्मुखश्चापि दैत्येशस्तस्मै सुमनसा जलम् ॥ दातुकामः करे यावत्तावत्तं प्रत्यषेधयत् ॥२५॥ तस्य तद्रूपमालोक्य ह्यचिन्त्यं च महात्मनः अभूतपूर्वं च हरेर्जिहीर्षोः श्रियमासुरीम् ॥२६॥ इङ्गितज्ञोऽग्रतः स्थित्वा प्रह्लादस्त्वब्रवीद्वचः ॥ प्रह्लाद ॥ उवाच ॥ मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः ॥२७॥ स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः ॥ विष्णुरेष महाप्राज्ञस्त्वां वञ्चयितुमागतः ॥२८॥ बलिरुवाच ॥ हन्त तस्मै प्रदास्यामि देवायेमं प्रतिग्रहम् ॥ अनुग्रहकरं देवमीदृशं जगतः प्रभुम् ॥२९॥ ब्रह्मणोऽपि गरीयांसं पात्रं लप्स्यामहे वयम् ॥ अवश्यं चासुरश्रेष्ठ दातव्यं दीक्षितेन वै ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वासुरसंघानां मध्ये वैरोचनिस्तदा ॥ देवाय प्रददौ तस्मै पदानि त्रीणि विष्णवे ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ दानवेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम् ॥ नेमं विप्रशिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः॥३२॥ रूपेणानेन दैत्येन्द्र सत्यमेवं ब्रवीमि ते ॥ नारसिंहमहं मन्ये तमेवं पुनरागतम्॥३३॥

यदि यह साक्षात् विष्णु हैं; तो बडी अच्छी बात है ॥ २९ ॥ ब्रह्माजीसेभी उत्तम यह पात्र हमको प्राप्त हुआ. हे असुरश्रेष्ठ ! दीक्षित पुरुषको अवश्य दान देना चाहिये॥३०॥ इस प्रकार दैत्योंके समूहमें कह बलिराजा तीन पग पृथ्वीवामनजीके अर्थ दान करने लगे ॥३१॥जिस समय वामनजीके हाथमें बलिराजा जल देने लगा, तब प्रह्लाद बोला; कि हे दैत्यराज! इस बालकके अर्थ प्रतिग्रह मत दो इस बालकको मैं ब्राह्मणका पुत्र नहीं जानता; ऐसा ब्राह्मण नहीं होता है ॥ ३२ ॥ और हे दैत्यन्द्र ! इस रूपसे फिर मैं तिस नृसिंहजीके आगमनको मानता हूं, यह मैं सत्यही कहता

हूं ॥३३॥ बलिराजा हँसकर घुडकता हुआ प्रह्लादसे कहने लगा, कि हे दैत्यजी ! ब्राह्मण दानकी याचना करे और दाता दान नहीं दे, तब दोनोंकी अलक्ष्मी यजमानके शरीरमें प्रवेश करती है ॥३४॥॥३५॥ जो यजमान ब्राह्मणके अर्थ प्रतिज्ञा करके प्रतिग्रह नहीं देता है, वह पापी मित्र गोत्रसे संयुक्त नरकमें जाता है ॥ ३६ ॥ इस कारण अलक्ष्मीके भयसे भयभीत हुआ मैं इस पृथ्वीका दान करता हूं इस ब्राह्मणसे अधिक कोई दान लेनेवाला नहीं है ॥३७॥ इस कारण इसे अवश्य दान दूंगा. हे दानव !इस समय मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है ॥ ३८ ॥ वामनरूपको धारण करनेवाले

एवमुक्तस्तदा तेन प्रह्लादेनामितौजसा ॥ प्रह्लादमब्रवीद्वाक्यमिदं निर्भर्त्सयन्निव ॥३४॥ बलिरुवाच ॥ देहीति याचते यो हि प्रत्य ख्याति च योऽसुर ॥ उभयोरप्यलक्ष्म्या वै भागस्तं विशते नरम् ॥३५॥ प्रतिज्ञाय तु यो विप्रे न ददादि प्रतिग्रहम् ॥ स याति नरकं पापी मित्रगोत्रसमन्वितः ॥३६॥ अलक्ष्मीभयभीतोऽहं ददाम्यस्मै वसुन्धराम्॥ प्रतिग्रहीता चाप्यन्यः कश्चिदस्माद्द्विजोऽथ वै ॥३७ ॥ नाधिको विद्यते यस्मात्तद्ददामि वसुंधराम् ॥ हृदयस्य च मे तुष्टिः परा भवति दानव ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम् ॥ एष तस्मात्प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः ॥ ३९ ॥ भूयश्च प्राब्रवीदेवं वामनं विप्ररूपिणम् ॥ स्वल्पैः स्वल्पमते किं ते पदैस्त्रिभिरनुत्तमम् ॥४०॥ कृत्स्नां ददामि ते विप्र पृथिवीं सागरैर्वृताम् ॥ वामन उवाच ॥ न पृथ्वीं कामये कृत्स्नां संतुष्टोऽस्मि पदैस्त्रिभिः ॥ एष एव रुचिष्यो मे वरो दानवसत्तम ॥४१॥वैशम्पायन उवाच ॥ तथास्त्विति बलिः प्रोच्य स्पर्शयामास दानवः ॥ पदानि त्रीणि देवाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ४२ ॥

इस उत्तम ब्राह्मणको देखकर अभी मैं दान देता हूं, किसीके कहनेसे मैं निवारित नहीं हूंगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार कहकर फिर वामनजीसे बलिराजा कहने लगे; कि हे स्वल्पमते ! तीन पैग पृथ्वीसे तुमको क्या होगा ॥ ४० ॥ सब समुद्रोंसे परिवृत इस संपूर्ण पृथ्वीको मैं तुम्हारे अर्थ देता हूं लो, तब वामनजी कहने लगे; कि संपूर्ण पृथ्वीको लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है, मैं तीन पैग पृथ्वीमें प्रसन्न हूं. हे दानवश्रेष्ठ ! यह वरदान मुझे देनाचाहिये॥४१॥ वैशम्पायनजी बोले; कि ऐसेही होगा,यह वचन बलिराजा कह तीन पैग पृथ्वी वामनजीके अर्थ देनेको अपने हाथसे दक्षिणासहित जलको वामन-

जीकेहाथमें छोडते हुए ॥ ४२ ॥ जब वामनजीके हाथमें जलका स्पर्श हुआ, तब वामनजीने वामनरूपको त्याग सर्वदेवमय रूपको दिखाया ॥ ४३ ॥ अर्थात् पृथ्वी दोनों चरण, आकाश मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, पिशाच पैरोंकी अंगुली, गुह्यक हाथोंकी अंगुलि ॥ ४४ ॥ और विश्वेदेवा जानु गोड, साध्य देवता और यक्ष नख, अप्सरा लेख और विजली दृष्टि, सूर्यकी किरणें केश ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रोमा विदिशा, दिशा कान दोनों अश्विनीकुमार कानके भीतर सुननेका शब्द, वायु नासिका ॥४७॥ चंद्रमा प्रसाद, धर्म मन, सत्य वाणी, सरस्वती

तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः॥ सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास वै विभुः ॥४३॥ भूः पादौ द्यौः शिरश्चास्य चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुलयश्च गुह्यकाः ॥४४॥ विश्वेदेवाश्चजानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ॥ यक्षा नखेषु संभूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥४५॥ तडिद्दृष्टिः सुविपुला केशाः सूर्यांशवस्तथा ॥ तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥४६॥ बाहवो विदिशश्चास्य दिशः श्रोत्रे तथैव च ॥ अश्विनौ श्रवणौ चास्य नासा वायुर्महाबलः॥४७॥ प्रसादश्चन्द्रमाश्चैव मनो धर्म-स्तथैव च ॥ सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥४८॥ग्रीवादितिर्महादेवी तालुः सूर्यश्च दीप्तिमान् ॥ द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा च वै भ्रुवौ ॥४९॥ मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः॥हृदयं भगवान्ब्रह्मा पुंस्त्वं वै विश्वतोमुनिः ॥ ५० ॥ पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः पादसंधिषु ॥ सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमलाः प्रभाः॥५१॥ ऊरू रुद्रो महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवः ॥ उदरे चास्य गन्धर्वा भुजगाश्च महाबलाः ॥५२॥ लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्या च वै कटिः ॥ ललाटमस्य परमं स्थानं च परमात्मनः ॥ ५३ ॥

जिह्वा ॥४८॥ अदिति ग्रीवा, प्रकाशमान् सूर्य तालु, स्वर्गका द्वार नाभि, मित्र और त्वष्टा दोनों भृकुटी ॥४९॥ अग्नि मुख, दक्षप्रजापति वृषण, ब्रह्मा हृदय,कश्यपजी पुरुषपन॥५०॥पृष्ठभागमें वसु देवता, मरुत देवता सब संधियोंमें,और सब छंद दाँतोंके स्थानमें और ज्योतिर्गण प्रभा॥५१॥ महादेव ऊरु, समुद्र धैर्य, गंधर्व और दिव्य बली सर्प उदरमें ॥ ५२ ॥ लक्ष्मी मेधा धृति कान्ति विद्या ये कटिमें, और परमात्माका परम स्थान

मस्तक है ॥५३॥ सब ज्योति तप और देवताओंका राजा इन्द्र उन महात्माका तेज है ॥५४॥ स्तन और कांखमें चारों वेद, पशुबंध तथा ब्राह्मणोंकी चेष्टा दृष्टि है॥५५॥इसप्रकार उन विष्णुके रूपको देख क्रोधको प्राप्त हुए महादैत्य समीपमें प्राप्त होने लगे जैसेपतंग अग्निमें जाते हैं॥५६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने विश्वरूपप्रकाशे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ वैशम्पायन बोले; कि हे जन्मेजय ! तिन दैत्योंके नाम रूप आभरण और मुख्य शस्त्रोंको श्रवण करो ॥ १ ॥ विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, बली, हयग्रीव

सर्वज्योतींषि यानीह तपः शक्रस्तु देवराट् ॥ तस्य देवाधिदेवस्य तेजो ह्याहुर्महात्मनः ॥५४॥ स्तनौ कक्षौ च वेदाश्च ओष्ठौ चास्य मखाः स्थिताः ॥ इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च ॥५५॥तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महासुराः ॥ अभ्यसर्पन्त संक्रुद्धाः पतङ्गा तव पावकम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु नामानि सर्वेषां रूपाण्यभिजनानि च ॥ आयुधानि च मुख्यानि दानवानां महात्मनाम् ॥१॥ विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयः शङ्कुस्तथैव च ॥ अयःशिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ २ ॥ वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः ॥ पुष्करः पुष्कलश्चैव साश्वोऽश्वपतिरेव च ॥ ३ ॥ प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ॥ अनुह्लादो हरिहरौ वाराहः संहरोरुजः ॥ ४ ॥ वृषपर्वा विरूपाक्षो अतिचन्द्रः सुलोचनः ॥ निष्प्रभः सुप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरूदरः ॥५॥ एकवक्रो महावक्रो द्विवक्रः कालसंनिभः ॥ शरभः शलभश्चैव कुणपः कुलपः क्रथः ॥ ६ ॥ बृहत्कीर्तिर्महागर्भः शंकुकर्णो महाध्वनिः ॥ दीर्घजिह्वोऽर्कवदनो मृदुबाहुर्मृदुप्रियः ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ वेगवान् केतुमान्; उग्र, सोग्र, व्यग्र, पुष्कर, पुष्कल, शाश्व, अश्वपति ॥ ३ ॥ प्रह्लाद, अश्वशिरा, कुंभ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि, हर, वराह, संहर, अरुज, ॥ ४ ॥ वृषपर्वा, विरूपाक्ष, मुनींद्र, चंद्रलोचन, निष्प्रभ, सुप्रभ, निरुदर ॥ ५ ॥ एकवक्र, द्विवक्र, महावक्र, कालसन्निभ, शरभ, शलभ, कुणप, कुलप, क्रथ ॥ ६ ॥ बृहत्कीर्ति, महागर्भ, शंकुकर्ण, महाध्वनि, दीर्घजिह्व, अर्कवदन, मृदुवाह, मृदुबाहु, मृदुप्रिय ॥ ७ ॥

वायु, गविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महान्, विक्षर;चंद्रहंता, क्रोधहंता,क्रोधवर्द्धन ॥८॥ कालक, कालकाक्ष, वृत्र, क्रोध, विमोक्षण, गरिष्ठ, हविष्ठ, प्रलंब, नरक, पृथु ॥ ९ ॥ चन्द्रतापन,वातापी, केतुमान्, बलदर्पित, असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, ॥ १० ॥ मद, शृगालवदन, कराल, केशि, एकाक्ष, एकबाहु, तुहुंड, सृमल, सृप, ॥११॥ इनको आदि ले औरभी बहुतसे दैत्य महाविष्णुको घेरकर स्थित हुए ॥ १२ ॥ कितनेही फांसीको हाथमें लिये और कोई मुखको फलाये, कितनेही गधेके समान शब्द करनेवाले, कितनेही शतघ्नी, वज्र और चक्रको हाथोंमें लिये ॥ १३ ॥

वायुर्गविष्ठो नमुचिः शम्बरो विक्षरो महान् ॥ चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्द्धन एव च ॥८॥ कालकः कालकाक्षश्च वृत्रः क्रोधो विमोक्षणः ॥ गविष्ठश्च हविष्ठश्च प्रलम्बो नरकः पृथुः ॥९॥ चन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥ असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः ॥१०॥ शृगालवदनश्चैव करालः केशिरेव च ॥ एकाक्षश्चैकबाहुश्च तुहुण्डः सृमलः सृपः॥११॥ एते चान्ये च बहवः क्रममाणं त्रिविक्रमम् ॥ उपतस्थुर्महात्मान विष्णुं दैत्यगणास्तदा ॥१२॥ प्रासोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खरस्वनाः ॥ शतघ्नी-चक्रहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे ॥१३॥ खड्गपट्टिशहस्ताश्च परश्वधधराः परे ॥ प्रासमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ १४ ॥ महाशनिव्यग्रकरा मौशलास्तु महाबलाः ॥ महावृक्षोद्यतकरास्तथैव च धनुर्धराः ॥ १५ ॥ गदाभुशुण्डिहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे ॥ महापट्टिशहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ १६ ॥ असिकम्पनहस्ताश्च दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाबलाः ॥ १७ ॥ कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च हस्तिवक्त्रास्तथा परे ॥ खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ १८ ॥

और कितनेही खड्ग, पट्टिश, फरशेको धारण किये, कितनेही प्राश, मुद्गर, परिघोंको हाथोंमें लिये ॥ १४ ॥ और कोई महाअशनि, शिला, मूशल, और महावृक्षोंको तथा महाधनुष्योंको हाथोंमें धारण करनेवाले ॥ १५ ॥ गदा भुशुण्डी हाथमें लिये वज्र लिये, महापट्टिश परिघ लिये ॥ १६ ॥ कितनेही तलवारोंको हाथोंमें फिरानेवाले, कितनेही अनेक प्रकारके प्रहारोंको धारण करनेवाले और कितनेही युद्धमें दुर्मद, कितनेही अनेक प्रकारके वेषोंको धारण करनेवाले ॥ १७ ॥ कितनेही कछुए तथा मुरगेके समान मुखवाले,

कितनेही हाथीके समान मुखवाले, कितनेही गधे और ऊंटके समान मुखवाले कितनेही शूकरके समान मुखवाले ॥ १८ ॥ कितनेही भयंकर मुख मच्छके समान मुखवाले और कितनेही शिशुमार मच्छके समान मुखवाले ॥१९॥ कोई बिलाव तोताके समान दीर्घमुखवाले ॥ २० ॥ कोई मूषक, मृग ऊंटसे दीर्घमुख; नकुल, कबूतर ॥२१॥ क्रौंच, चकवा, गोधा, मत्स्य, ऋक्ष, शार्दूल, गैंडा, सिंह, भेड, भैंसके समान मुखवाले ॥ २२ ॥ और कितनेही हाथीके चर्मके वस्त्रोंको ओढे, कितनेही मृगछालाके वस्त्रोंवाले कितनेही चीररूप वस्त्रोंवाले और कितनेही वृक्षोंके वक्कलोंके वस्त्रों-

भीमा मकरवक्त्राश्च शिशुमारमुखास्तथा ॥ मार्जारशुकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवः ॥ १९ ॥ गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदना-स्तथा ॥ अश्ववक्त्रा बभ्रुवक्त्रा घोरा मृगमुखास्तथा ॥ २० ॥ उष्ट्रशल्यकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः ॥ नकुलस्येव वक्त्राश्च पारावतमुखास्तथा ॥ २१ ॥ चक्रवाकमुखाश्चैव गोधवक्त्रास्तथा परे ॥ तथा मृगाननाः शूरा गोजादिमहिषाननाः ॥२२॥ कृक-लासमुखाश्चैव व्याघ्रवक्त्रास्तथा परे ॥ ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च सिंहवक्त्रास्तथा परे ॥ २३ ॥ गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः ॥ २४ ॥ उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥ किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ॥ २५ ॥ नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः स्वान्यायुधानि दीप्तानि प्रगृह्यासुरसत्तमाः ॥ २६ ॥ क्रममाणं हृषीकेशमुपातिष्ठन्त दानवाः ॥ प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः ॥ २७ ॥ रूपं कृत्वा महाकायं जहाराशु स मेदिनीम् ॥ त्रैलोक्यं क्रममाणस्य द्युतिरादित्यसंभवा ॥ २८ ॥

वाले ॥२३॥ कितनेही पगडी बांधनेवाले कितनेही मुकुटको धारण करनेवाले, कितनेही कुण्डलोंको पहरनेवाले, कितनेही दीघ चोटीवाले,कितनेही शंखके समान ग्रीवावाले, और कितनेही सुंदर तेजवाले थे॥२४॥२५॥ कितनेही अनेक प्रकारके वेषोंको धारण करनेवाले, कितनेही अनेक प्रकारकी माला और चंदन आदि अनुलेपोंको धारण करनेवाले सब दैत्य अनेक प्रकारके प्रकाशितरूप अपने शस्त्रोंको ग्रहण कर ॥ २६ ॥ परोंसे पृथ्वीको नापनेवाले विष्णुके समीपमें प्राप्त हुए, तब पैर और हाथोंके तलवोंसे प्रभुने सब दैत्योंको मथकर ॥ २७ ॥ तब वह महाकायरूप करके

पृथ्वीको हरण करते हुए, त्रिलोकीको हरनेके समय विस्तृतरूपवाले विष्णुकी कान्ति सूर्यके समान हुई ॥ २८ ॥ और पृथ्वीको विक्रमण करनेके समय चंद्रमा और सूर्य विष्णुके दोनों स्तनोंके मध्यस्थानमें स्थित हुए, और आकाशमें प्रक्रमण करनेके समय विष्णुके सक्थिदेशमें चंद्रमा और सूर्य स्थित हुए, अर्थात् कटिके नीचे आकाश स्थित हुआ ॥ २९ ॥ विष्णुके अतिविक्रमण करनेके समय चन्द्रमा और सूर्य पादमूलमें स्थित हुए ऐसे अमितवीर्यवाले विष्णुक यशको ब्राह्मण कहते हैं कि सब लोकोंको जीतकर और बहुतसे दैत्योंको मारकर ॥३०॥ लोकनमस्कृत विष्णु भगवान् इन्द्रको पृथ्वी देते भये, और पृथ्वीतलके नीचे सुतल नामक पाताल ॥३१॥ बलवान् विष्णु भगवान्ने बलिराजाके निवासको दिया, तब बलि-

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥ नभः प्रक्रममाणस्य सक्थिदेशे व्यवस्थितौ ॥ परं विक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ॥ २९ ॥ विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान् ॥ ३० ॥ ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः ॥ सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातले ॥ ३१ ॥ बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तदवाप्यासुरश्रेष्ठश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ ३२ ॥ रसातलतले वासमकरोदसुराधिपः ॥ तत्रस्थश्च महातेजा ध्यानं परममास्थितः ॥ ३३ ॥ उवाच वचनं धीमान् विष्णुं लोकनमस्कृतम् ॥ किं मया देव कर्त्तव्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ ततो दैत्याधिपं प्राह देवो विष्णुः सुरोत्तमः ॥ ३४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ददामि ते महाभाग परितुष्टोऽस्मि तेऽसुर ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममात्रा ॥ ३५ ॥ मा च शक्रस्य वचनं प्रतिहासीः कथंचन ॥ अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥

राजा उत्तम मतिको प्राप्त हो पातालमें वास करने लगे ॥३२॥ और तहां परम ध्यानमें स्थित हुआ बलिराजा ॥ ३३ ॥ लोकनमस्कृत विष्णु भगवान्से वचन कहने लगा; कि हे देव ! मुझे क्या करना चाहिये ? सो आप विस्तारसे कहिये तब बलिराजासे विष्णु भगवान् कहने लगे ॥३४॥ हे महाभाग ! तेरे निमित्त वर दूंगा, तू वरको मांग मैं प्रसन्न हुआ हूँ तेरा कल्याण हो और मनोवांछित फलको प्राप्त हो ॥ ३५ ॥ और इन्द्रके वचनको कभीभी न हँसना, मैं तुझे आज्ञा देता हूं. तू सुखको प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार कहकर फिर बलिराजाको मधुरवाणीसे सांत्वन करनेवाले और सर्व लोकको करनेवाले वरेण्य विष्णु कहने लगे ॥ ३७ ॥ जो तैंने अपने हाथसे जल दिया और मैंने वह जल ग्रहण किया, इस कारण दैत्य और देवताओंसे तुमको भय न होगा ॥ ३८ ॥ हे महाअसुर ! सुतलनामक पाताल लोकमें सब दैत्यगणोंके संग तुम मेरे प्रसादसे वास करो ॥ ३९ ॥ और देवताओंके देव अति तेजस्वी इन्द्रकी शिक्षाका कभी नाश नहीं करना, यह मेरी आज्ञा मानना ॥ ४० ॥ हे महाअसुर ! तुमको सब देवताओंकी पूजा करनी योग्य है. हे महाभाग ! तुम दक्षिणासहित यज्ञके फलको प्राप्त

अथ दैत्याधिपं प्राह विष्णुर्देवाधिपानुजः ॥ वाचा परमया देवो वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥ ३७ ॥ यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया ॥ तस्मात्ते दैत्यदेवेभ्यो नास्ति जातु भयं क्वचित् ॥३८॥ सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस ॥ सर्वदैत्यगणैः सार्द्धं मत्प्रसादान्महासुर ॥ ३९ ॥ न च ते देवदेवस्य शक्रस्यामिततेजसः ॥ शासनं प्रतिहन्तव्यं स्मरता शासनं मम ॥४०॥ देवताश्चापि ते सर्वाः पूज्या एव महासुर ॥ भोगांश्च विविधान्सम्यक् यज्ञांश्च सहदक्षिणान् ॥४१॥ प्राप्स्यसे च महाभाग दिव्यान्कामान्यथेप्सितान् ॥ इह चामुत्र चाक्षय्यान्विविधांश्च परिच्छदान् ॥ ४२ ॥ दैत्याधिपत्यं च सदा मत्प्रसादादवाप्स्यसि ॥ यदा चैतां मया प्रोक्तां मर्यादां चालयिष्यसि ॥ वधिष्यन्ति तदा हि त्वां नागपाशैर्महाबलाः ॥४३॥ नमस्कार्यांश्च ते नित्यं महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥ ममः ज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः शासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ ४४ ॥ बलिरुवाच ॥ देवदेव महाभाग शङ्खचक्रगदाधर ॥ सुरासुरगुरो श्रेष्ठ सर्वलोकमहेश्वर ॥ तत्रासतो मे पाताले भागं ब्रूहि सुरोत्तम ॥ ४५ ॥

होगे ॥ ४१ ॥ मनोवांछित रूप दिव्यकामनाओंको तुम प्राप्त होगे और इस लोकमें तथा परलोकमें सुखको और अनेक प्रकारके स्थानोंको ॥४२॥ दैत्योंके राजपनेकी और अनेक प्रकारके भोगोंको तुम मेरे प्रसादसे प्राप्त होगे, और जब तुम मेरी कही इस मर्यादाको उल्लंघन करोगे तो तुमको अतिबलवाले सर्प अपने फणोंसे मारेंगे ॥ ४३ ॥ इस कारण तुम महेन्द्रादिको नित्य नमस्कार करना, मेरे बडे भ्राता देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी शिक्षा सब कालमें ग्रहण करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ बलि कहने लगा; कि हे देवदेव ! हे महाभाग ! हे शंख चक्र गदाधर ! हे सुरासुरगुरुश्रेष्ठ !

हे सर्वलोकमहेश्वर ! पातालमें वास करनेवाले मुझे भागकी कल्पना कीजिये॥४५॥और किस प्रकार मैं तहां स्थिति करूं? मुझे भोजनके लिये क्या मिलेगा जिससे मेरी अक्षय तृप्ति होवे. विष्णु भगवान् बोले॥४६॥ हे दैत्यसत्तम!वेदके जाननेवालेके विना श्राद्ध किया और व्रतके विना वेदका पाठ किया और दक्षिणारहित यज्ञ और ऋत्विकके विना हवन और श्रद्धाके विना दान किया और संस्कारके रहित हविर्द्रव्य यह छःभाग तुम्हारे हैं, इनका फल तुमको मिलेगा ॥ ४७ ॥ मुझसे वैर करनेवालोंका और मेरे भक्तोंसे वैर करनेवालोंका पुण्य और क्रयविक्रय करते अग्निहोत्रियोंका

ममान्नमशनं देव प्राशनार्थमरिंदम ॥ तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ तृप्तिर्येन ममाक्षया॥४६॥श्रीभगवानुवाच ॥ अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रतम-दक्षिणं यज्ञमनर्त्विजा हुतम् ॥ अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविरेते प्रदत्तास्तव दैत्य भागाः ॥४७॥ पुण्यं मद्द्वोषितं यच्च मद्भागद्वेषिणां तथा ॥ क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ॥ ४८ ॥ अश्रद्धया च यद्दानं ददतां यजतां तथा ॥ तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥४९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं बलिर्विष्णोर्महात्मनः ॥ एवमस्त्विति तं प्रोक्त्वा पाताल-मसुरोत्तमः ॥५०॥ प्रविवेश महानादो देवाज्ञां प्रतिपालयन् ॥ भगवानपि राज्यानां प्रविभागांश्चकार ह ॥ ५१ ॥ ददौ पूर्वां दिशं चैन्द्रीं शक्रायामिततेजसे ॥ याम्यां यमाय देवाय पितृराज्ञे महात्मने ॥५२॥ पश्चिमां तु दिशं प्रादाद्वरुणाय महात्मने ॥ उत्तरां च कुबेराय यक्षाधिपतये दिशम् ॥५३॥अधस्थां नागराजाय सोमायोर्ध्वां दिशं ददौ॥एवं विभज्य त्रैलोक्यं विष्णुर्बलवतां वरः॥५४॥

पुण्य ॥४८॥ और श्रद्धासे रहित दान और पूजन यह सब हे दैत्येन्द्र ! मेरे प्रसादसे तेरा भाग होगा ॥४९॥वैशंपायन कहने लगे कि इस प्रकार विष्णुके वचनको सुनकर "ऐसेही हो" इस वचनको कहकर असुरश्रेष्ठ ॥५०॥ विष्णुकी आज्ञाको प्रतिपालन कर बलि पाताललोकमें प्रवेश कर गया और विष्णुने देशोंका विभाग किया॥५१॥ अर्थात् इन्द्रकी पूर्व दिशाको अमिततेजवाले इन्द्रके अर्थ देते हुए और दक्षिणदिशाको पितरोंके राजा धर्मराजके अर्थ दिया ॥ ५२ ॥ और पश्चिम दिशा वरुणजीको दी, उत्तर दिशा यक्षोंके राजा कुबेरको दी॥५३॥और नीचेके लोक शेष-

॥१७१॥

नागको दिये, और ऊर्ध्वदिशाको चंद्रमाके अर्थ दिया, इस प्रकार बलवालोंमें उत्तम विष्णुजी त्रिलोकीका विभाग कर ॥ ५४ ॥ देवताओंके शोकको दूर कर सब प्राणियोंमें इन्द्रकी प्रतिष्ठा कर महर्षियोंसे पूज्यमान सर्वश्रेष्ठ वामनजी स्वर्गको गये ॥ ५५ ॥ अतितेजस्वी दुर्धर्ष वामनजी जब चले गये तब सब देवता इन्द्रको आगे कर आनंदित हुए ॥ ५६ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि जब वामनजी बलिराजाको सात शिरोंवाले और कंबल अश्वत र आदि सर्पोंसे बांधकर स्वर्गमें चले गये ॥ ५७ ॥ तब नागोंके बंधनसे पीडित हो बलिराजाके समीपमें यदृच्छासे नारद मुनि

जगाम त्रिदिवं देवः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ वामनः सर्वभूतेशः प्रतिष्ठाप्य च वासवम् ॥५५॥ तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे वामनेऽमितते-जसि ॥ सर्वे मुमुदिरे देवाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम्॥५६॥वैशम्पायन उवाच ॥ गते तु त्रिदिवं कृष्णे बद्ध्वा वैरोचनिं बलिम् ॥ नागैः सप्तशिरोभिश्च कम्बलाश्वतरादिभिः॥५७॥ नागबन्धनदुःखार्त्तं बलिं वैरोचनिं ततः॥ यदृच्छयासौ देवर्षिर्नारदः प्रत्यपद्यत ॥५८॥ स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः॥ उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते ॥५९॥ स्तवं देवाधिदेवस्य वासुदेवस्य धीमतः॥ अनादिनिधनस्यास्य अक्षयस्याव्ययस्य च ॥ ६० ॥ तमधीष्वाथ दैत्येन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ तद्गतस्तन्मना भूत्वा द्रुतं मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६१ ॥ ततो विरोचनसुतः प्रयतः प्राञ्जलिः शुचिः ॥ मोक्षविंशकमव्यग्रो नारदात्समधीतवान् ॥ ६२ ॥ तमधीत्य स्तवं दिव्यं नारदेन समीरितम् ॥ पृथिवी चोद्धृता येन तं जजाप महासुरः ॥ ६३ ॥

प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥ तब संकटमें बलिराजाको देख दयासंयुक्त नारदमुनि कहने लगे; कि हे दानवश्रेष्ठ ! मैं तेरे अर्थ इस पीडासे छुटनेका उपाय देता हूं ॥ ५९ ॥ देवादिदेव वासुदेवका स्तव कहता हूं वह आदि और अंतरहित अक्षय अविनाशी है ॥ ६० ॥ हे दैत्यराज ! उसे तुम शुद्ध अंतरात्मासे मनको लगाय पाठ करो. तत्काल इस दुःखसे छूट जाओगे ॥ ६१ ॥ तब विरोचनका पुत्र बलिराजा अञ्जलि बांध मोक्षविंशक स्तोत्रको नारदजीसे पढने लगा ॥ ६२ ॥ उस नारदजीके कहे दिव्य स्तोत्रको पढकरउन पृथ्वीके उद्धार करनेवालेका स्तोत्र जपने लगे ॥ ६३ ॥

जिस करके इस पृथ्वीका उद्धार हुआ था अब जिस स्तोत्रको बलिराजाने जपा है वह स्तोत्र वर्णन किया जाता है, ॐअनन्तपति अक्षय महात्मा जलशायी पद्मनाभ विष्णुके लिये नमस्कार है ॥६४॥ आप सात सूर्यके समान शरीर करके त्रिलोकीको आक्रमण किये हो. हे भगवन् ! आप कालकेभी काल हो. इस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥६५॥ चन्द्र, सूर्य, आकाश, यज्ञ, तप, क्रियाके नष्ट होनेसे आप फिर लोकोंकी चिन्ता करते हो, इस सत्यसे मुझे छुडाओ॥६६॥ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, अग्नि, सरित, भुजंग, पर्वत, द्विजेन्द्रने यह आपमें स्थित हैं. इस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥६७॥ पहले

ॐ नमोस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने ॥ जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥६४॥ सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रीँल्लोकान् क्रान्तवानसि ॥ भगवान्कालकालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६५ ॥ नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपःक्रिये ॥ पुनश्चिन्तयसे लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६६ ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरिद्भुजगपर्वताः ॥ त्वत्स्था दृष्टा द्विजेन्द्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेन पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव ॥ चराचरगतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय ॥६८॥ एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः ॥ पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय ॥६९॥ जलशय्यामुपासीनो योगनिद्रामुपागतः॥लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय॥७०॥ वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम्॥धरा जलोद्धृता येन तेन सत्येन मोक्षय ॥७१॥ उद्धृत्य दंष्ट्रया यज्ञांस्त्रीन् पिंडान्कृतवानसि॥ त्वं पितृणामपि हरे तेन सत्येन मोक्षय॥७२॥प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्षभयार्दिताः॥परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय॥७३॥

कल्पमें मार्कण्डेय आपके शरीरमें प्रविष्ट हुए थे. और आपमें चराचर जगत् देखा था उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥६८॥ एक आप योगी विद्यासहाय होकर योगको प्राप्त हुए हो, फिर त्रिलोकी छोडते हो. उस सत्यसे मुझे छुडाओ॥६९॥जलशय्यामें बैठे योगनिद्राको प्राप्तहुए फिर आप लोककी चिन्ता करते हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७० ॥ आपने वाराहरूप धारण कर वेदयज्ञको आगे कर जिस सत्यसे पृथ्वी उद्धार की उससे मुझे छुडाओ ॥७१॥ आपने दंष्ट्रासे उद्धारकर यज्ञके तीन पिंड किये तुम पितरोंके उद्धारक हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥७२॥ सब देवता हिरण्या-

क्षके भयसे भागे थे, हे देव ! आपनेही उनकी रक्षा की थी उस सत्यसे मुझे छुटाओ ॥ ७३ ॥ दीर्घमुखवाले रूपसे युद्धमें हिरण्याक्षका चक्रसे शिर काटा उस सत्यसे मुझे छुटाओ ॥ ७४ ॥ पहले हिरण्यकश्यप भिन्न शिर अस्थि होकर गिरा था उसे आपने हुंकारसे नष्ट किया उस सत्यसे मुझे बचाओ॥७५॥जब ब्रह्माके देखते दानवोंने वेदका हरण किया. हे देव ! तब आपनेही उसे छुडाया उस सत्यसे मुझे छुडाइये॥७६॥आपने हयशिररूप धारण कर मधुकैटभको मार ब्रह्माको वे वेदादि दिये, उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥७७॥ देव, दानव, राक्षस, यक्ष, सिद्ध, महोरग तुम्हारा अन्त कोई

दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे ॥ शिरो जहारचक्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७४ ॥ भग्नमूर्द्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७५ ॥ दानवाभ्यां हृता वेदा ब्रह्मणः पश्यतः पुरा ॥ परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७६ ॥ कृत्वा हयशिरोरूपं हत्वा तु मधुकैटभौ ॥ ब्रह्मणे तेऽर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७७ ॥ देवदान-वगन्धर्वा यक्षसिद्धमहोरगाः॥अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७८ ॥ अपांतरतमा नाम जातो देवस्य वै सुतः ॥ कृताश्च तेन वेदार्थास्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७९ ॥ वेदयज्ञाग्निहोत्राणि पितृयज्ञहवींषि च ॥ रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८० ॥ ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः ॥ त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८१ ॥ ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीन मृत्युवशं गतम् ॥ भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८२ ॥ अक्षयश्चाव्ययश्च त्वं ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ उच्छ्रि-तानां नियन्तासि तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८३ ॥

नहीं देखते. उस सत्यसे मुझे छुडाओ॥७८॥ अपांतरतमानाम वाला देवपुत्र हुआ था. उसने वेदार्थ किया था उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७९ ॥ वेद, अग्निहोत्र, पितृ, यज्ञ, हवि और जो वेदमें आपका रहस्य है. उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥८०॥ दीर्घतमा नामक ऋषि गुरुके शापसे अंधजाति आपकेही प्रसादसे नेत्रवान् हुआ उसी सत्यसे मुझे बचाओ ॥ ८१ ॥ ग्राहसे गृहीत मृत्युके वशीभूत अपने भक्त गजेन्द्रको आपने छुडाया उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ८२ ॥ आप अक्षय अविनाशी ब्रह्मण्य भक्तवत्सल हो आप उच्छ्रितोंके नियंता हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ८३ ॥

शंख, चक्र, गदा, तूण, शार्ङ्ग धनुष और गरुडको मैं शिरसे प्रणाम करता हूं. वे इससे मुझे छुडावें॥८४॥शंख, चक्र, गदा, तूण, शार्ङ्ग, गरुडादिक यह सब बंधनसे बलिको छुटानेके निमित्त भगवान्से प्रार्थना करने लगे॥८५॥ तब भगवान्ने प्रसन्न हो गरुडजीको राजा बलिके बंधन खोलनेकी आज्ञा दी ॥ ८६ ॥ तब अतुलपराक्रमी गरुड पंखोंको फैलाये हुए जहां बलिराजा स्थित था. उस पृथ्वीके मूलमें प्राप्त हुए ॥ ८७ ॥ तब गरुडजीके आगमनको जान बलिराजाको छोडकर गरुडजीके भयसे पीडित सब सर्प भोगवती पुरीमें प्राप्त हुए ॥ ८८ ॥ फिर विष्णुके प्रसादसे छुटे हुए

शङ्खं चक्र गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च ॥ प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम्॥८४॥शङ्खचक्रगदातूणशार्ङ्गं च गरुडादयः ॥ हरिं प्रसादयामासुर्बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥ ८५ ॥ ततः प्रसन्नो भगवानादिदेश खगेश्वरम् ॥ गरुडं नागहन्तारं बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥ ८६ ॥ ततो विक्षिप्य गरुडः पक्षावतुलविक्रमः ॥ जगाम वसुधामूलं यत्रास्ते संयतो बलिः ॥ ८७ ॥ आगमं तस्य विज्ञाय नागा मुक्त्वा महासुरम् ॥ ययुः पुरीं भोगवतीं वैनतेयभयार्दिताः ॥ ८८ ॥ मुक्तं कृष्णप्रसादेन चिन्तयानमधोमुखम् ॥ भ्रष्टश्रियमुवाचेदं गरुत्मान्पन्नगाशनः ॥ ८९ ॥ गरुड उवाच ॥ दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्वामब्रवीत्प्रभुः ॥ मुक्तो निवस पाताले सपुत्रजनबान्धवः ॥ ९० ॥ इतस्त्वया न गन्तव्यं गव्यूतिमपि दानव ॥ समयं यदि भिन्द्यास्त्वं मूर्द्धा ते शतधा भवेत् ॥ ९१ ॥ पक्षीन्द्रवचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रोऽब्रवीदिदम् ॥ स्थितोऽस्मि समये तस्य अनन्तस्य महात्मनः ॥ ९२ ॥ जीवोपायं तु भगवान्मम किंचित्करोतु सः ॥ इहस्थोऽहं सुखासीनो येनाप्यायै खगेश्वर ॥ ९३ ॥

विष्णुको चिन्तवन करते लक्ष्मीसेभ्रष्ट सर्पोंके बंधनसे रहित बलि राजासे गरुडजी कहने लगे ॥ ८९ ॥ हे दानवेन्द्र ! हे महाबाहो ! विष्णुने तुमसे कहा है कि तुम मुक्त होकर पुत्र जन बांधवोंसहित पातालमेंवास करो ॥ ९० ॥ और यहांसे हे दानव ! तुम इस देशसे दो कोश आगेभी न जाना, जो इस प्रतिज्ञाको भेदन करोगे तो तुम्हारे मस्तकके सौ सौ टुकडे होंयगे ॥ ९१ ॥ गरुडजीके वचन सुन बलिराजा कहने लगे; कि मैं विष्णुकी आज्ञाको माने समयपर स्थित हूं ॥९२॥ परन्तु वे ईश्वर मेरे जीवनके अर्थ भोजनकाभी उपाय करेंगे;

जिससे यहीं स्थित हुआ मैं पुष्ट होता रहूँगा ॥ ९३ ॥ बलिके वचन सुन गरुडजी कहने लगे; कि हे राजन् ! तुम्हारे जीवनका उपाय पहलेही विष्णुने कर दिया है ॥ ९४ ॥ अर्थात् विधिको नहीं जाननेवाले, और प्रायश्चित्तको नहीं जाननेवाले तथा ऋत्विक्संज्ञासे भिन्न ब्राह्मण जो यज्ञको करेंगे वह यज्ञभाग तुम्हें है ॥ ९५ ॥ अर्थात् तिस यज्ञभागको देवता नहीं ग्रहण करेंगे इस करके पुष्ट हुए तुम सुखपूर्वक यहाँ रहो ॥ ९६ ॥ हे दानवेन्द्र ! इसप्रकारसे त्रिलोकभावन विष्णुने तुमको संदेशा दिया है ॥ ९७ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार यह पापनाशक पूर्वोक्त स्तोत्र

बलेस्तु वचनं श्रुत्वा गरुत्मानिदमब्रवीत् ॥ पूर्वमेव कृतस्तेन जीव्योपायो महात्मना ॥९४॥ वर्त्तयिष्यन्ति ये यज्ञा विधिहीना न ऋत्विजः ॥ प्रायश्चित्तमजानन्तो यज्ञभागस्ततस्तव ॥ ९५ ॥ न तेषां यज्ञभागं वै प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ अनेनाप्यायितबलः सुखमात्र निवत्स्यसि ॥ ९६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ संदेशमेतं भगवान्दत्तवान्कश्यपात्मजः॥दानवेन्द्रं महाबाहो विष्णुस्त्रैलो-क्यभावनः ॥९७॥ इमं स्तवमनन्तस्य सर्वपापप्रमोचनम् ॥ यः पठेत नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्बिषम्॥९८॥ गोहत्यायाः प्रमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम् ॥९९॥ सद्यो गर्भात्प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ॥ ये च मोक्षैषिणो लोके योगिनः सांख्यकापिलाः ॥१००॥ स्तवेनानेन गच्छन्ति श्वेतद्वीपमकल्मषाः ॥ सर्वकामप्रदो ह्येषस्तवोऽ-नन्तस्य कीर्त्यते ॥ १ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥ २ ॥

जो पढेगा,तिसके सब पाप नाशको प्राप्त होंगे ॥ ९८ ॥ गायका मारनेवाला गोहत्यासे छूट जायगा. ब्राह्मणका मारनेवाला ब्रह्महत्यासे छूट जायगा और जिसके पुत्र नहीं होता हो वह पुत्रको प्राप्त होगा और कन्या वांछित वरको प्राप्त होगी ॥ ९९ ॥ और लग्नगर्भवाली स्त्री गर्भसे छूट जायगी और गर्भिणी स्त्री पुत्रको जनेगी, और इस स्तोत्रके प्रतापसे मोक्षकी इच्छावाले योगी कपिलशास्त्र सांख्यके ज्ञाता ॥१००॥ इससे पापरहित हो श्वेतद्वीपमें जायकर प्राप्त होंगे. यह विष्णुका स्तोत्र सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ १ ॥ पवित्र हो जो मनुष्य प्रातः उठकर इस स्तोत्रका पाठ

करेगा, वह मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ॥२॥ यह वामन अवतार वेदको जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कहने योग्य है, वेदवादी ब्राह्मण इसका पाठ करते हैं॥ ३ ॥ इस वामनजीके दिव्य आख्यानको पर्वकालमें भक्तिसहित नित्य श्रवण करे तो ॥ ४ ॥ राजा सुनकर शत्रुओंको निश्चय जीते, जैसे महाबली विष्णुने जय की इससे उत्तम यश और बडे धनको प्राप्त होता है॥५॥वह सद्गतिको प्राप्त हो सब प्राणियोंका प्रिय होता है, धन धान्य और सद्गुणी पुत्रोंकी वृद्धि होती है, तथा अरोग्यता होती है ॥६ ॥ और इस स्तोत्रके पठन करनेवाले मनुष्यपर सब कामनाओंको देनेवाले विष्णु भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ऐसे वेदव्यासजीने कहा है ॥ १०७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ धन्यउपाख्यानसे आरंभ कर बाणासुरके जयपर्यन्त श्रीकृष्णकी

एष वै वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ वेदविद्भिर्द्विजैरेव पठ्यते वैष्णवं यशः॥३॥यस्त्विमं वामनं दिव्यं प्रादुर्भावं महात्मनः॥ शृणुयान्नियतो भक्त्या सदा पर्वसु पर्वसु॥४॥परान् विजयते राजा यथा विष्णुर्महाबलः॥ यशो विमलमाप्नोति विपुलंचाप्नु तेवसु॥५॥ प्रियो भवति भूतानां सर्वेषां वामनो यथा ॥ पुत्रपौत्राश्च वर्द्धन्ते आरोग्यं गुणसंपदः ॥६॥ प्रीयते पठतश्चास्य देवदेवो जनार्दनः ॥ सर्वकामयुतश्चैव कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १०७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥ जनमेजय उवाच ॥ किमर्थं भगवान्विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः ॥ गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च ॥ १ ॥

उत्कर्षता वर्णन की, उनके प्रादुर्भावमें उनके निर्गुण सगुण स्वरूपका व्याख्यान कर भारत श्रवण फलश्रुति दर्शनपर्यन्त समाप्त किया, बाणयुद्धमें हरिहरका अभेद कहा (स च ममात्मा भद्रसेन इतिवत्) इनका अत्यन्त अभेद माननेसे शास्यशासकभाव सिद्ध नहीं होता इसीसे वह अभेद औपचारिक है ऐसा माननेवाले मंदमति पुरुषोंकी मतिको शोधन करनेके लिये अब कैलासयात्रा और त्रिपुरवधतक ग्रंथ आरंभ करते हैं, उन दोनोंकी सर्वोत्तमता वर्णन करके जैसे योगीके कायव्यूह देहके विद्यमान होनेमें एकात्म्यता सिद्ध होती है, देहभेदसे ऐकात्म्य नष्ट नहीं होता. क्योंकि सर्वोच्चम अद्वैत योग है. सो अनुशासनपर्वमें श्रीकृष्ण शंकरका आराधन करनेको कैलास गये, यह संक्षेपसे कहकर अब विस्तारसे कहते हैं कि सच्चिदानंद

कैसे अल्पसुखके लिये तप करनेके लिये गये ये हम पूछते हैं. तब जन्मेजय कहने लगे; कि देवताओंके देवता विष्णु भगवान् महादेवके आलयरूप कैलासशिखरमें किस कारण प्राप्त हुए ॥ १ ॥ नारद आदि तपोवर्धित तपस्वियोंने नील लोहित शंकर महादेवको देखा ॥ २ ॥ और हे प्रिय ! उत्तम तपको करनेवाले देवदेव केशव भगवान्‌ने महादेवका पूजन व तप किया है, यह मैंने सुना है ॥ ३ ॥ पुरातन जगत् नाथ महादेव और विष्णुकी इन्द्र आदि देवताओंने पूजा करी है ॥ ४ ॥ एकआत्मावाले जगत्‌की योनि सृष्टि और संहार करनेवाले वह दोनों एकही दो रूपसे दीखते हैं ॥ ५ ॥ परस्परके समावेशसे जगत्‌की पालनामेंस्थित हरि और महादेव इन दोनोंका जैसे कैलासपर्वतमें वृत्तान्त हुआ है ॥ ६ ॥ और इन दोनों पुरुषोत्त-

नारदाद्यैस्तपोवृद्धैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ तत्र दृष्टो महादेवः शंकरो नीललोहितः ॥ २ ॥ केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् ॥ अर्चितो देवदेवेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥ देवौ तत्र जगन्नाथौ दृष्टवन्तौ पुरातनौ ॥ अर्चयांचक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शंकरं हरिम् ॥ ४ ॥ तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ ॥ एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥ ५ ॥ परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ ॥ तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥६॥ ऋषयः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ ॥ एतत्सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि सत्तम ॥ ७ ॥ यथा गतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः ॥ तथा च शंकरः साक्षात्कृतवान्नागभूषणः ॥ एतत्सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्यथा कृष्णो गतो नगम् ॥ यथा च दृष्टो देवेशःशंकरो वृषवाहनः॥९॥ यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गताः॥एव तयोर्यथा वृत्तं तथा शृणु नरोत्तमः॥१०॥

मोंको देखकर सब ऋषियोंने क्या चेष्टा की ? हे श्रेष्ठ ! यह सब विशेषकर तुम हमसे कहो ॥ ७ ॥ जैसे पुरातन विष्णुरूप कृष्ण कैलासमें प्राप्त हुए और जैसे सर्पोंके भूषणवाले महादेवजीने कुछ कर्त्तव्य किया, यह सब यत्नसे वर्णन करो ॥ ८ ॥ वैशम्पायन बोले; कि हे राजन् ! जिस प्रकार कृष्ण भगवान् कैलासको प्राप्त हुए और जैसे महादेवजीको देखा. तिस वृत्तान्तको तुम सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ और जैसे कृष्ण भगवान्‌ने तप किया, और जैसे मुनिजनभी प्राप्त हुए, ऐसे इन दोनोंके वृत्तान्तको हे नरोत्तम ! श्रवण करो ॥ १० ॥

जैसे वेदव्यासजीने मुझसे कहा है,उन गरुडवाहनवाले श्रीकृष्णचंद्रको नमस्कार कर म कहता हूं ॥११॥ यह आख्यान यथाशक्ति जसा सुना है, कहता हूं, शुश्रूषासे रहित और नृशंस व तपसे रहित ॥ १२ ॥ तथा मूर्खके आगे यह पुण्यकथा कहनी उचित नहीं है, और यह आख्यान पुण्यवानोंको पुण्यरूप है. स्वर्ग और यशका देनेवाला धन्य सब कालमें बुद्धि और शुद्धिका करनेवाला है ॥१३॥ पुण्यात्माओंको नित्यप्रति ध्यान करने योग्य है, कारण कि यह वेदके अर्थोंसे निश्चित है, उपनिषदोंमें इसका वर्णन है, जिसकी महात्मा जन आलोचना करते हैं कार्यकारणमें प्राप्त हुए हरिहरको जीवेशरूपसे वर्णन करते हैं, जीव ईश्वरमें सर्वथा अभेद शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया है, किसी पुराणमें विष्णु, किसीमें शिव पक्ष लेकर वर्णन किया है,

द्वैपायनोऽथ भगवान्यथा प्रोवाच मां तथा ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशवं खगवाहनम् ॥ ११ ॥ यथाशक्ति यथाप्रज्ञं शृणु यत्नेन सुव्रत ॥ न चाशुश्रूषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने ॥ १२ ॥ नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवतां सदा ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं सदा ॥ १३ ॥ ध्येयं पुण्यात्मनां नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम् ॥ अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम् ॥ १४ ॥ मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधनाः ॥ अत्यद्भुतं महापुण्यं वृत्तं कैलासपर्वते ॥ १५ ॥ शिवयोर्देवयोस्तत्र हरेश्चैव भवस्य ह ॥ हतेष्वसुरसंघेषु नरकादिषु भूमिप ॥ १६ ॥ हतेष्वथ नृपेष्वेवं किंचिच्छिष्टेषु शत्रुषु ॥ शासति स्म सदा विष्णुः पृथिवीं पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ द्वारवत्यां जगन्नाथो वसन्वृष्णिभिरीश्वरः ॥ रुक्मिण्या संगतो देवो वसंस्तत्र पुरे हरिः ॥ १८ ॥ कदाचिच्च तया सार्द्धं शेते रात्रौ जगत्पतिः ॥ विहरंश्च यथायोगं प्रीतः प्रीतियुजा तया ॥ १९ ॥

इसमें विष्णु जीवरूप और शिव ईश्वररूपसे प्रतिपादन किया जाता है ॥ १४ ॥ इस आख्यानको वेद निरत नारद आदिमुनि नित्य सेवते हैं, और कैलासपर्वतमें ॥ १५ ॥ विष्णुका और शिवका अद्भुतरूप वृत्तान्त हुआ हैं, जब नरकासुर आदि दैत्योंके समूह मारे गये ॥ १६ ॥ और राजाओंके मरनेपर कुछेक शत्रु बाकी रह गये, तब श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम भगवान् पृथ्वीमें शिक्षा देने लगे ॥ १७ ॥ और द्वारकापुरीमें वृष्णियोंके साथ वह जगन्नाथ वास करते रुक्मिणीके संग रहने लगे ॥ १८ ॥ किसी समयमें रुक्मिणीकेसंग रात्रिमें क्रीडा करनेवाले और प्रसन्न हुए जगत्पति

विष्णु शयन करने लगे ॥१९॥ उस समय सुवर्णके भूषण पहरे रुक्मिणी कहने लगी कि हे देवेश ! हे माधव ! सोनेके गहनोंको धारण करनेवाले, आनन्दके देनेवाले॥२०॥अतिबलवान् और रूपसे संपन्न तुम्हारे समान रूपवाले वृष्णिवंशवालोंके नेता और अतिवीर्यवान् और तपोनिधि ॥२१॥ सब शास्त्रके अर्थमें दक्ष और राजविद्यामें प्रवीण आदि गुणोंसे युक्त पुत्रकी इच्छा करती हूं, सो हे श्रेष्ठ! सो तुम देनेको योग्य हो ॥२२॥ आपमें सबका दातृत्व स्थित है, तुम सब जगत्के कर्ता हो, दाता हो, भोक्ता हो, और जगत्पति हो ॥ २३ ॥ विशेषकर शुश्रूषा करनेवाले भृत्योंके तुमही

अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा ॥ पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम् ॥२०॥ बलिनं रूपसंपन्नं त्वय सदृशं प्रभो ॥ वृष्णीनामपि नेतारं वीर्यवन्तं तपोनिधिम् ॥२१॥ सर्वशास्त्रार्थकुशलं राजविद्यापुरस्कृतम् ॥ एवमादिगुणैर्युक्तं दातुमर्हसि सत्तम ॥२२॥ त्वयि सर्वस्य दातृत्वं नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ॥ त्वं हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ता जगत्पतिः ॥२३॥ विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषा नियतात्मनाम् ॥ वक्तव्य किमु देवेश यदि भक्तास्मि केशव ॥२४॥ अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते॥ दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच॥ इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया॥तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिशत्रुर्यदूद्वहः ॥ २६ ॥ प्रोवाच वचनं कालेरुक्मिणीं यादवेश्वरः ॥ दातास्मि तादृशं पुत्रं य त्वमिच्छसि भामिनि ॥ २७ ॥ नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम् ॥ २८ ॥ पुत्रेण लोकान् जयति सतां कामदुघा हि ये ॥ नरकं पुदिति ख्यातं दुःखं च नरकं विदुः ॥ २९ ॥

स्वामी हो, हे देवेश ! विशेष क्या कहूं, आपमें मेरी पूण भक्ति है ॥ २४ ॥ यदि मुझपर अनुग्रह है तो हे जनार्दन ! वीयवाले पुत्रको तुम देनेको योग्य हो ॥ २५ ॥ वैशंपायनजी बोले कि इस प्रकार प्रिया रुक्मिणीके वचन सुन रुक्मके शत्रु और यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाल ॥२६॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणीसे समयके अनुसार कहने लगे कि हे भामिनी ! जैसे पुत्रकी तुम इच्छा करती हो वैसेही पुत्रको तुम्हें दूगा ॥ २७ ॥ तुम मेरी नित्य भक्तिवाली हो इसमें संशय नहीं कर निश्चयही शत्रुओंको जीतनेवाला तुम्हें पुत्र दूंगा ॥ २८ ॥ पुत्रसे उत्तम लोकोंमें मनुष्य प्राप्त होते

हैं, पुत्र सत्पुरुषोंको कामधेनु है, और पुन्नाम है नरकका अथवा दुःखका है ॥ २९ ॥ तिससे जो रक्षा करे तिसको पुत्र कहते हैं, ऐसे पुत्रको इस लोकमें और परलोकमें चाहते हैं.हे प्रिये! पुत्रवाले पुरुषको अनन्त शुभरूप लोक प्राप्त होते हैं॥३०॥और प्रथम पति भार्यामें प्रवेश करता है, फिर माताके पेटमें गर्भरूप होकर रहता है, फिर नये रूपको धारण कर दशवें महीनेमें जन्मता है ॥३१॥ पुत्रवाले मनुष्यसे इन्द्रभी भय मानता है, और पुत्रसे रहित मनुष्य उत्तम लोकोंको नहीं प्राप्त हो सकता, परन्तु कुपुत्रसे वंध्या भार्या रहनी उत्तम है ॥३२॥ कुपुत्रसे नरक होता है, और सुपुत्रसे

पुदस्त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छति परत्र च ॥ अनन्ता पुत्रिणो लोकाः पुरुषस्य प्रिये शुभाः ॥३०॥ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ॥ तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥३१॥ पुत्रवन्तं बिभेतीन्द्रः किन्नु तेनाजितं भवेत् ॥ नापुत्रो विन्दते लोकान्कुपुत्राद्वन्ध्यता वरा ॥३२॥ कुपुत्रो नरके यस्मात्सुपुत्रात्स्वर्ग एव हि ॥ तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दयापरम् ॥३३॥ विद्यया विनयो यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् ॥ इच्छेत्पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान्बुधः ॥३४॥ तस्माद्दास्यामिते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम् ॥ एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम् ॥ ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद्भूतहिते रतात् ॥ ३६ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शंकरमव्ययम् ॥ तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ॥३७॥ गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया ॥ ३८ ॥

स्वग होता है, इस कारण विनीत श्रुतवाला दयावान् हो॥३३॥विद्यासे विनय होती है, इस लिये विद्यावान् धार्मिक पुत्रकी पुरुष इच्छा करे॥३४॥ इस कारण विद्यावान् धार्मिक पुत्रको तुम्हें दूंगा, अब पुत्रकी प्राप्तिके अर्थ पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर्वतको जाता हूं ॥ ३५ ॥ तहां नीललोहितरूप महादेवजीकी उपासना कर प्राणियोंपर दया करनेवाले महादेवजीसे पुत्रको प्राप्त करूंगा॥३६॥और तपसे ब्रह्मचर्यसे अविनाशी विरूपाक्ष आदिदेव अज विभुको प्रसन्न करूंगा ॥३७॥ अविनाशी महादेवजीके देखनेको मैं अभी गमन करता हूं, तपसे प्रसन्न हो महादेवजी मुझे पुत्र देंगे ॥ ३८ ॥

तहां जाय पार्वतीसहित महादेवको नमस्कार कर पवित्र मुनियोंसे युक्त तपोमयी ॥३९॥ अग्निहोत्रोंसे आकुल, दिव्य गंगाजलसे प्लावित मृग और पक्षियोंसे युक्त, सिंह और हाथियोंके समूहसे व्याप्त॥४०॥वडवेरीके फलोंसे पूरित और वानरोंसे क्षोभित वृक्षोंवाली, तथा नेत्र आदिसे आरूढ महावृक्षोंवाली,केलोंसे मण्डित ॥४१॥ वेदोंके तत्त्वार्थके विचारमें निपुण और प्रमाणमें कुशल ॥ ४२ ॥ मुनियोंसे युक्त यह एक है और यह तत्त्व है, ऐसे निश्चित मनवाले मुनियोंसे उपास्यमान ॥ ४३ ॥ और इतिहास पुराणके जाननेवाले महर्षि और सिद्धोंसे सेव्यमान और स्वर्गको जानेके

तत्र गत्वा महादेवं नमस्कृत्य सहोमया प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनिजुष्टां तपोमयीम्॥३९॥अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गङ्गाम्बुप्लावितां सदा ॥ मृगपक्षिसमायुक्तां सिंहद्विपशताकुलाम् ॥ ४० ॥ बदरीफलसंपूर्णां वानरक्षोभितद्रुमाम् ॥ वेत्रारूढमहावृक्षां कदलीखण्ड-मण्डिताम् ॥ ४१ ॥ मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थविचारनिपुणैः सदा ॥ वेदनिश्चिततत्त्वार्थैः प्रमाणकुशलैर्युताम् ॥ ४२ ॥ इदमेकमिदं तत्त्वमितिनिश्चितमानसैः ॥ उपास्यमानामन्यत्र सिद्धैः सिद्धार्थतत्परैः ॥४३॥ इतिहासपुराणज्ञैः सेव्यमानां महर्षिभिः॥ गच्छद्भिः स्वर्गनिलयं परित्यज्य कलेवरम् ॥ ४४ ॥ प्रसिद्धां महतीं देवीं यास्यामि सुकृतालयाम् ॥ इत्युक्त्वा विररामैव देवदेवो जनार्दनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां गन्तुमैच्छज्जनार्दनः ॥ हुताग्निः कृतकल्याणः समाप्तवरदक्षिणः ॥१॥ गाश्च दत्त्वाथ विप्रेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥ आस्थानमण्डपं कृष्णःप्रविवेश जगत्पतिः॥२॥आसनं महदास्थाय वृष्णीनाहूय सर्वशः॥बलभद्रं शिनेःपुत्रं हार्दिक्यं शुकसारणौ॥३॥

समय इस शरीरको॥४४॥त्यागनेवाले जनोंसे पूर्ण प्रसिद्ध सुकृत देवस्थानरूप बदरीपुरीमें प्रवेश कर स्थित हूंगा,इस प्रकार कहकरदेवदेव जनार्दन श्रीकृष्ण विरामको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायांत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ वैशंपायनजी बोले कि जब रात्रि व्यतीत हो गई, प्रभात हुआ, तब गमन करनेकी इच्छावाले श्रीकृष्ण अग्निमें हवन कर और दक्षिणा दान दे ॥१॥ ब्राह्मणोंको गोदान देकर ब्राह्मणोंको नमस्कार कर जगत्पति श्रीकृष्ण अपने बैठनेके स्थानमें प्रवेश करते हुए ॥२॥ तहां सुंदर आसनपर स्थित हो

सब वृष्णिवंशको और बलदेव, सात्यकि,कृतवर्मा,सत,सारण ॥३॥ उग्रसेन और नीतिमें कुशल महाबुद्धिमान् उद्धव कि जिनकी बुद्धिके आश्रय हो सब यादव सुखपूर्वक जीतेहैं ॥४॥सब यदु और सबवृष्णियोंके नेता और धर्ममें तत्पर और जिस महात्माकी नीतिसे देवताभी भय मानते हैं।॥५॥ जिसकी बुद्धिके वशसे विष्णु सब पृथ्वीको शिक्षित करते हुए उनवृष्णियोंमें श्रेष्ठ बीर और देवताओंक समान कांतिवाले उद्धव॥६॥और अन्यभी सब यादवोंसे श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे; कि हे यादवो ! मेरे वचनको तुम सब श्रवण करो. हे उद्धव ! मेरे पिताने जो मेरे अर्थ वचन कहा है,

उग्रसेनं महाबुद्धिमुद्धवं नीतिमत्तरम् ॥ यस्य बुद्धिं समाश्रित्य जीवन्ते यादवाः सुखम् ॥ ४ ॥ नेता च यदुवृष्णीनां स तु धर्मपरो यदा ॥ यस्य बिभ्यति देवाश्च नीतेस्तस्य महात्मनः ॥ ५ ॥ यस्य बुद्धिवशाद्विष्णुः शशास पृथिवीं सदा ॥ तं च वृष्णिवरं वीरमुद्धवं देवसुप्रभम् ॥ ६ ॥ अन्यानपि यदून्सर्वानुवाच भगवान् हरिः ॥ शृण्वन्तु मम वाक्यानि यादवाः सर्व एव हि ॥ शृणु चापि वचो मह्यं पितुरुद्धव मे सखे ॥ ७ ॥ बाल्यात्प्रभृति यो यत्नो मम दुष्टनिबर्हणे ॥ प्रत्यक्षं भवता दृष्टं पूतनानिधनं नृप ॥ ८ ॥ केशी च निहतो बाल्ये मया बालेन यादवाः ॥ गोवर्द्धनोद्धृतः शैलो गावश्च परिपालिताः ॥९॥ अभिषिक्तोऽस्मि शक्रेण देवानामग्रतः स्थितः ॥ कंसोऽपि निधनं नीतो मया चाणूरमुष्टिकौ ॥ १० ॥ उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च कृता द्वारवती मया ॥ अन्ये चापि नृपा राजन्बलिनो निहता मया ॥११॥ योऽपि वीरो जरासन्धो निगृहीतो बलान्मया ॥ भीमेन बलिना राजन्नयेन मम यादवाः ॥ १२ ॥ शृगालो निहतः संख्ये गोमन्ताद्गच्छता मया ॥ योऽपि वीरो दुरात्माऽसौ दानवो नरको हतः ॥ १३ ॥

वहभी सुनो॥७॥ मैंने दुष्टोंके निग्रह करनेमें बाल्यअवस्थासे यत्न किया है सो प्रथम पूतना मारी है, यह प्रत्यक्ष आपने देखा है ॥८॥ पीछे केशी मैंने बालक पनमें मारा,गोवर्द्धन पर्वत धारण किया है, और गायोंकी पालना की॥९॥ फिर इन्द्रने मेरा अभिषेक किया है,इसके पीछे चाणूर मुष्टिक करके सहित कंसभी मारा है॥१०॥ और उग्रसेनका अभिषेक कर द्वारकापुरी वसाई, औरभी बहुतसे बलवाले राजा मैंने मारे ॥ ११ ॥ और जरासंध राजाभी बलवाले भीमसेनके हाथसे मैंने मरवा दिया ॥ १२ ॥ गोमंत पर्वतसे गमन करते मैंने युद्धमें शृगाल राजाकोभी मारा, बडे वीर दुरात्मा

नरकासुरकोभी मैंने मारा ॥ १३ ॥ इस प्रकार यह लोक मैंने निष्कण्टक कर दिया है, परन्तु भौमासुरका सखा वीर नृप हुआ है ॥ १४ ॥ वह पौंड्र वीर्य्यवालोंका नेता और सब कालमें मेरा वैरी, द्रोणाचार्यका शिष्य, और बली ब्रह्मास्त्रको जाननेवाला पण्डित ॥१५॥ शास्त्रोंको जाननेवाला, नीतिमान्, सबोंका नेता और यत्नवाला योधा, युद्धप्रिय, दूसरे परशुरामजीक समान ॥ १६ ॥ हमारा मेरा एकांत द्वेषी, सब कालमें मेरे छिद्रको ढूंढनेवाला पौंड्र राजा छिद्रको प्राप्त होतेही हमारी पुरीको पीडित करेगा॥१७॥और वह अल्पसाध्य राजा नहीं है, वह बडा बली पूंड्रेश है. उससे

निष्कण्टकमिमं लोकं कृतवान्राजसत्तमाः ॥ किं तु वीरो नृपो यज्ञे सखा भौमस्य यादवाः ॥ १४ ॥ पौण्ड्रो वीर्यवतां नेता द्वेष्टा चासौ सदा मम ॥ शिष्यो द्रोणस्य राजेन्द्रो बली ब्रह्मास्त्रवित्कृती ॥१५॥ शास्त्रज्ञो नीतिमान्त्साक्षान्नेता सर्वस्य यत्नवान् ॥ योद्धा युद्धप्रियो राजा जामदग्न्य इवापरः ॥१६॥ एकान्तशत्रुरस्माकं छिद्रान्वेषी सदा मम ॥ बाधिष्यते पुरीं योद्धा छिद्रं यदि लभेत सः ॥ १७ ॥ न ह्यल्पसाध्यो बलवान् पुण्ड्रस्येशो नृपोत्तमाः ॥ यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु प्रगृहीतशरासनाः ॥ १८ ॥ यथा न बाधते राजा पुरीं यदुकुलाश्रयाम् ॥ अहं तु यास्ये कैलासं कुतश्चित्कारणान्नृपाः ॥ १९ ॥ शंकरं द्रष्टुकामोऽस्मि भूतभावनभावनम् ॥ यावदागमनं मह्यं तावद्यत्ता भवन्त्विह ॥ २० ॥ मया विरहितां चेमां यदि जानाति पुण्ड्रकः ॥ आगमिष्यति राजेन्द्रो योत्स्यते च पुरीमिमाम् ॥२१॥ इमां निर्यादवीं कर्तुं शक्नोतीति च मे मतिः॥यत्ता भवत राजेन्द्राः खड्गैः पाशैः परश्वधैः ॥२२॥

हे यादवो ! तुम धनुषबाण आदिसे सावधान रहियो ॥ १८ ॥ जिससे पौंड्रक राजा इस द्वारकापुरीको बाधा नहीं दे. हे यादवो ! मैं किसी कारणसे कैलासको ॥ १९ ॥ भूतभावन महादेवजीके देखनेको जाता हूं, जबतक मेरा आगमन हो, तबतक सावधान रहो ॥ २० ॥ मुझरहित यदि इस पुरीको जान लेगा तो पौंड्रराजा इस पुरीमें आकर युद्ध करेगा ॥ २१ ॥ और वह राजा इस पुरीको यादवोंसे रहित कर सकताहै, यह मैं मानता हूं, इस कारण तलवार, पाश, फरसा, भिंदिपाल, पाषाण कर्षक मंत्रादिसे स्वस्तिकादिसे तैयार हो शस्त्रोंको धारण कर सदा सावधान रहो ॥२२॥

द्वारकापुरीके सब दरवाजोंको किवाडोंसे बंदकर दो॥२३॥एक बडे द्वारको जाने आनेके निमित्त खुला रक्खो और जो राजाक सन्मुख गमन करे, वह छापा लगवाकर गमन कर सके॥२३॥और छापेसे रहित द्वारपालके देखते कोईभी प्रवेश नहीं कर सके, जबतक मेरा आगमन न हो, तबतक ऐसे होना चाहिये॥२५॥और न शिकार खेलनेको जाना चाहिये और नं पुरीसे बाहर क्रीडा करनी चाहिये और आनेजानेमें अपने पराये पुरुषको सदा जानना चाहिये।॥२६॥जबतक मेरा आगमन हो, तबतक यह सब करना इस प्रकार सब यादवोंसे कहकर फिर सात्यकिसे कहने लगे॥२७॥

पाषाणैः कर्षणीयैश्च सन्नद्धा भवत स्वकैः ॥ पिधाय च कपाटानि महाद्वाराणि यत्नतः ॥ २३ ॥ एक एव महाद्वारो गमनागमने सदा ॥ मुद्रया सहगच्छन्तु राज्ञो ये गन्तुमीप्सवः ॥ २४ ॥ न चामुद्रः प्रवेष्टव्यो द्वारपालस्य पश्यतः ॥ यावदागमनं मह्यं तावदेवं भविष्यति ॥ २५ ॥ मृगया नात्र कर्तव्या न च क्रीडा बहिः पुरात् ॥ ज्ञातव्याश्च परे स्वे च गमनागमने सदा ॥ २६ ॥ एवमादि क्रिया कार्या यावदागमनं मम ॥ इत्युक्त्वा यादवान्सर्वान् सात्यकिं पुनराह च ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ॥ ७४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सात्यके शृणु मद्वाक्यं यत्तो भव युधांवर ॥ त्वं तु खड्गी गदी भूत्वा चापपाणिस्तनुत्रवान् ॥ १ ॥ तिष्ठ यत्नेन रक्षस्व पुरीं बहुनृपाश्रयाम् ॥ न च निद्रा त्वया कार्या रात्रौ यदुवृषप्रभो ॥ २ ॥ न च व्याख्या त्वया कार्या शास्त्राणां शास्त्रतत्पर ॥ न च वादस्त्वया कार्यो वादिभिः सह वृष्णिप ॥ ३ ॥ त्वं हि योद्धा बलिर्ज्ञाता धनुर्वेदाख्यवेदवित् ॥ तथा कुरु यथा वीर नोपहास्या भवेदियम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे सात्यके ! मेरे वाक्यको श्रवण करो. हे युधांवर ! सावधान हो और तलवार गदा धनुष आदि हथियारोंको ग्रहण करो॥१॥इस यत्नसे पुरीकी रक्षा करो और हे प्रिय यदुश्रेष्ठ ! तुम रात्रिमें शयन न करना॥२॥हे शास्त्रकुशल ! उस समय शास्त्रकी व्याख्याभी न करना हे वृष्णिपति ! वादीजनोंके संग वादभी न करना॥३॥ और तुमही योद्धा हो,तुमही बली होऔर तुमही धनुर्वेदको जाननेवाले हो हे वीर ! तैसे करना जिस प्रकार हम उपहास्यताको प्राप्त न हो ॥ ४ ॥

तब सात्यकी बोला कि हे जनार्दन ! अपनी शक्तिपूर्वक तुम्हारे वचनोंको करूंगा. हे जगन्नाथ ! तुम्हारी आज्ञा मैं सब कालमें धारण करूंगा ॥ ५ ॥ हे माधव ! बलदेवजींके भृत्यके समान होकर विचरूंगा और जबतक आपका आगमन होगा तबतक यत्नसे रहूंगा ॥६॥ हे गोविंद ! तुम्हारी कृपा जो मुझपर रहेगी, तो शत्रुओंके निग्रह करनेमें मुझे कुछभी दुस्साध्य नहीं ॥७॥ जो इन्द्र, धर्मराज, कुबेर, वरुण यह आवें तो इन देवताओंको भी जीत सकता हूं फिर एक मनुष्यरूप पौंड्रराजाके जीतनेकी कौन कथा है ॥ ८ ॥ हे प्रिय ! तुम अपने कार्यको गमन करो. मैं निरन्तर सावधान हूं

सात्यकिरुवाच ॥ करिष्यामि वचस्तुभ्यं यथाशक्ति जनार्दन ॥ आज्ञा तव जगन्नाथ धार्या यत्नेन मे सदा॥५॥ भृत्यवत्प्रचरिष्यामि कामपालस्य माधव ॥ यावदागमनं तुभ्यं तावत्स्थास्यामि यत्नतः ॥६॥ प्रसादस्तव गोविन्द यदि स्यान्मयि माधव ॥ किं नाम मे च दुःसाध्यं शत्रूणां निग्रहे रणे ॥७॥ यदि शक्रं यमं वापि कुबेरमपि पाशिनम् ॥ सर्वानेतान्विजेष्यामि किमु पौण्ड्रं नृणोत्तमम् ॥८॥ गच्छ कार्यं कुरुष्वेदं यत्तोऽहं सततं हरे ॥ उद्धवं पुनराहेदं कृष्णः पद्मनिभेक्षणः ॥९॥ शृणूद्धव त्वं वाक्यं मे कुर्यास्त्वेतत्प्रयत्नवान् ॥ रक्ष्या नयेन राजेन्द्र पुरी द्वारवती त्वया ॥१०॥ यत्तो भव सदा तात कुरु साहाय्यमत्र नः ॥ लज्जा मम समुत्पन्ना वदतस्तव साम्प्रतम् ॥११॥ त्वं हि नेता समस्तस्य विद्यापारस्य सर्वतः ॥ को नु शक्ष्यति मेधावी वक्तुं विद्यावतः पुरः ॥ १२ ॥ यत्कार्यं तद्भवान्वेत्ति ह्यकार्यं वापि सर्वतः ॥ अतोऽहं विरमे तात वक्तुं संप्रति वृष्णिप ॥१३॥ उद्धव उवाच ॥ किमिदं तव गोविन्द वर्त्तते मां प्रति प्रभो ॥ अहो प्रसन्नता मह्यं किं तु प्रीतिरियं तव ॥ १४ ॥

फिर कमललोचन श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! तुम यत्नपूर्वक मेरे वचन करना नीतिपूर्वक इस पुरीकी रक्षा करना तुमको उचित है ॥१०॥ हे तात ! सावधान होकर हमारी सहाय करना और तुम्हारे आगे कहनेमें मुझे लाज आती है ॥ ११ ॥ क्योंकि सब विद्याके पारगामी तुमही नेता हो,इस कारण विद्यावालेके सन्मुख कौन शिक्षा देनेको समर्थ है ॥१२॥ कार्य और अकार्यको तुम भली भांतिसे जानते हो. हे वृष्णिपाल ! इस कारण आपके सन्मुख कुछ विशेष कहना उचित नहीं ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि हे गोविंद ! यह आप कैसे वचन मुझसे

कहते हो या तो आपकी प्रसन्नता है, या प्रीतिस कहते हो ॥१४॥ हे जगन्नाथ ! आपके विस्तारको मैं जानता हू. जिसपर तुम प्रसन्न होते हो. तिसको क्या नहीं होता,तुम मुझपर प्रसन्न होनेसे यह कहते हो ॥ १५॥ तुमही सब जगत्के कर्त्ता और हर्त्ता हो, तथा सब कार्योंके उत्पत्तिस्थान हो. वक्ता श्रोता और प्रमाणको जाननेवाले धाता ध्यानमय और ध्येय ऐसा तुमको ब्रह्म जाननेवाले कहते हैं आप शत्रुओंके जीतनेवाले और देवताओंकी रक्षा करनेवाल हो॥१६॥ तुम्हारीही कृपासे हतवैरी होकर हम जीते हैं ॥ १७ ॥ नीतिको जाननेवालेभी तुम हो, और सब कार्योंके

जानाम्यहं जगन्नाथ प्रसादस्यैष विस्तरः ॥ यस्य प्रसन्नो भवसि तस्य किं नास्ति केशव ॥१५॥ त्वं हि सर्वस्य जगतः कर्ता हर्ता प्रधानतः ॥ प्रभवः सर्वकार्याणां वक्ता श्रोता प्रमाणवित् ॥ १६ ॥ ध्याता ध्यानमयो ध्येय इति ब्रह्मविदो विदुः ॥ जेता देवरिपूणां च गोप्ता नाकसदां भवान् ॥ १७ ॥ त्वंनाथा वयमेवेति जीवामो निहतद्विषः ॥ इयं नीति रहं मन्ये नेता नीतेर्यतो भवान् ॥१८॥ को नु नाम नयो वेद त्वां विना साम्प्रतं वद ॥ नीतिस्त्वं सर्वकार्याणामिति मे निश्चिता मतिः ॥१९॥ दुर्गाढो नवमार्गोऽयमित्याहुस्तद्विदो जनाः ॥ चतुर्द्धा प्रोच्यते नीतिः सामदाने जनार्दन॥२०॥दण्डो भेदो मनुष्याणां निग्रहावग्रहे सदा । दण्डचेषु दण्डमिच्छन्ति सामान्थ तु नये हरे ॥ २१ ॥ बलवत्स्वथ दानं तु त्रयाणामप्य गोचरे ॥ प्रयोक्तव्यो महाभेद इति नीतिमतां मतम् ॥२२॥ तेषु तेष्वथ सर्वेषु प्रमाणं त्वां विदुर्बुधाः ॥ किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं त्वयि समर्पितम् ॥ २३ ॥

नीतिरूप आप तुम हो ॥ १८ ॥ और तुम्हारे सिवाय नीतिको जाननेवाला कौन है सो तो आप कहिये; आप सब कायाकी नीति हो, यह मेरी निश्चित मति है ॥१९॥ यह नीतिमार्ग दुघट है ऐसा नीतिके जाननेवाले तेहक हैं.हेजनार्दन ! चार प्रकारस नीति कही है साम दान ॥ २० ॥ दण्ड, भेद, यह मनुष्योंके निग्रह अवग्रहमें प्रयोग किया जाता है, दंडके देने योग्योंको दड देना उचित है, और सामान्यको साम उचित है ॥ २१ ॥ और बलवानोंमें दानका देना उचित है और इन तीनोंसे जो वशमें नहीं आवे तो भद करना उचिंत है, ऐसे नीतिवालोंका मत है ॥ २२ ॥ और तहां तहां सब कार्योंमें विद्वान् आपको प्रमाणरूप मानते हैं, बहुत कहनेसे क्या है. सब कार्य आपहीमें समर्पित है ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी बोले कि इस प्रकार कह नीतिको जाननेवाले उद्धवजी शांत हो गये तब भगवान् श्रीकृष्ण॥२४॥यादवोंकी सभामें बडी भुजावाले बल देवजी और राजा उग्रसेनसे कहने लगे॥२५॥पीछे फिर श्रीकृष्ण बलदेवजीसे कहने लगे, कि आप प्रमाद नहीं करना सब कालमें यत्नवान् रहना॥२६॥ हे महाबाहो ! जहां तुम स्थित रहोगे, तहां जगत्को क्या पीडा हो सकती है ? इस कारण हे आर्य ! सब कालमें गदाको धारण करना. क्रीडा न करना॥२७॥सब यत्नसे इस द्वारकापुरीकी रक्षा करो और जैसे हम उपहास्यताको प्राप्त न हों तैसे करो गदा ग्रहण करो॥२८॥और सब कालमें उत्साह

वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामैव उद्धवो नीतिमत्तरः॥ ततः स भगवान्विष्णुरेवमेव नृपोत्तम ॥२४॥ कामपालं महाबाहुमुवाच यदुसंसदि॥ उग्रसेनं नृपं राजंस्तथा हार्दिक्यमेव च ॥२५॥ कामपालं पुनर्विष्णुरिदं प्रोवाच तत्त्ववित् ॥ न प्रमादस्त्वया कार्यः सर्वदा यत्नवान् भव ॥२६॥ स्थिते त्वयि महाबाहो का पीडा जगतो भवेत्॥गदी भव सदा त्वार्य न क्रीडा सर्वदा भवेत्॥२७ रक्ष त्वं सर्वदा यत्नात्पुरीं द्वारवतीं प्रभो ॥ नोपहास्या यथा स्याम तथा कुरु गदी भव ॥ २८ ॥ उत्साहः सर्वदा कार्यो निरुत्साहो न यत्नतः ॥ बाढमित्यब्रवीद्रामः कृष्णं वृष्णिकुलोद्भवम् ॥२९॥ वृष्णयः सर्व एवैते स्वं स्वं सद्म समाययुः ॥ गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः कैलासं पर्वतोत्तमम्॥३०॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥
वैशम्पायन उवाच ॥ ततः संचिन्तयामास गरुडं पक्षिपुङ्गवम् ॥ आगच्छ त्वरितं तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पतिः ॥ १ ॥ ततः स भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृतः ॥ बलवान्विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह ॥ २ ॥

करना और यत्नसेभी उत्साहका त्याग न करना, इस वचनको सुन बलदेवजी श्रीकृष्णसे कहने लगे कि आपका कहना ठीक है सब किया जायगा॥२९॥इसके उपरान्त सब यादव अपने अपने स्थानको चले गये तब श्रीकृष्ण भगवान् कैलासपर्वतमें गमन करनेकी इच्छाकरने लगे॥३०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ वैशम्पायन कहने लगे तदनंतर श्रीकृष्णने पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजीको स्मरण किया अर्थात् यह विचार जगत्पतिने किया कि हे गरुड ! शीघ्र आ ॥१॥ हे राजन् ! उसी समय वेदोंके जानने-

वाले अतिबलवान् और योगशास्त्रके जाननेवाले॥२॥यज्ञमूर्ति पुराणात्मा,साममूर्द्धा और पवित्र ऋग्वेद रूप पंखोंवाले पिंगल और जटिलकी आकृतिवाले ॥ ३ ॥ तांबेके समान तुंडवाले अमृतको हरनेवाले शत्रुओंको जीतनेवाले महाशिरवाले और सर्पोंके वैरी कमलके फूलोंके समान नेत्रोंवाले साक्षात् दूसरे विष्णु भगवान् ॥४॥ विष्णु श्रीकृष्णके वाहन दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भको खंडन करनेवाले राक्षस और दैत्योंके समूहको पंखोंके बलसे जीतनेवाले ॥५॥ महाबली गरुडजी श्रीकृष्णके आगे प्रगट हो गोदोंसे पृथ्वीमें पड बोले, हे विष्णु ! हे जगत्पते !॥६॥हे देवदेवेश ! हे स्वामिन् !

यज्ञमूर्तिः पुराणात्मा साममूर्द्धा च पावनः ॥ ऋग्वेदपक्षवान्पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृतिः ॥ ३ ॥ ताम्रतुण्डः सोमहरः शक्रजेता महाशिराः ॥ पन्नगारिः पद्मनेत्रः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥४॥ वाहनं देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तनः ॥ राक्षसासुरसंघानां जेता पक्षबलेन यः ॥५ ॥ प्रादुरासीन्महावीर्यः केशवस्याग्रतस्तदा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ नमो विष्णो जगत्पते ॥ ६ ॥ नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन् ॥ पस्पर्शपाणिना कृष्णः स्वागतं तार्क्ष्यपुङ्गवम् ॥ ७ ॥ इत्युवाच तदा तार्क्ष्य यास्ये कैलासपर्वतम् ॥ शूलिनं द्रष्टुमिच्छामि शंकरं शाश्वतं शिवम् ॥ ८ ॥ बाढमित्यब्रवीत्तार्क्ष्य आरुह्यैनं जनार्दनः ॥ तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान्पार्श्ववर्तिनः ॥ ९ ॥ ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरां हरिः ॥ रवेण महता तार्क्ष्यस्त्रैलोक्यं समकम्पयत् ॥ १० ॥ सागरं क्षोभयामास पद्भ्यां पक्षी व्रजंस्तदा ॥ पक्षेण पर्वतान्सर्वान्वहन्देवं जनार्दनम् ॥ ११ ॥

हे हरे ! इस प्रकार कहते हुए नमस्कार करने लगे तब श्रीकृष्णने अपने हाथसे स्पर्श कर कहा; हे गरुड ! तुम्हारा सुन्दर आगमन हुआ ॥७॥ और हे प्रिय ! मैं महादेवजीके देखनेको कैलासपर्वतमें गमन करूंगा. उन शाश्वत शूलधारी शिवके देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ ८ ॥ तब गरुडजीने कहा बहुत अच्छा तब श्रीकृष्ण गरुडपर चढ समीपमें खडे हुए यादवोंसे कहने लगे कि हे प्रियो ! तुम स्थित रहो ॥ ९ ॥ तब ऐशान्य दिशाको भगवान् गमन करने लगे गरुडजी बडे वेगसे त्रिलोकीको कंपायमान करते हुए चले ॥१०॥ पक्षोंसे गरुडजीने समुद्रको क्षोभित किया और पंखोंसे सब पर्वतोंको

कंपाते श्रीकृष्णको वहन करने लगे ॥११॥ गरुडजी समुद्रको क्षोभित करते चले तब आकाशमें स्थित देवता और गंधर्व इष्टरूप वाणियोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ जयदेव जगन्नाथ जय जगतपति विष्णु, हे अजेय ! आपकी जय हो.हे भूतभावन ॥ १३ ॥ परमसिंहरूप दैत्यदानवोंके मारनेवाले हो आपको नमस्कार है हे अजेय ! योगिध्येय परागते आपकी जय हो ॥ १४ ॥ नारायण देव हरे कृष्ण जगतपते आदिकर्ता पुराणात्मन् ब्रह्मयोनि सनातन ॥ १५ ॥ सबके ईश निर्गुण गुणात्मा भक्तिप्रिय दानवनाशक भक्तके निमित्त नमस्कार है ॥१६॥ अचिन्त्यमूर्ति सबके ईश्वर

ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा ॥ तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम् ॥१२॥जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते ॥ जयाजेय नमो देव भूतभावनभावन ॥ १३ ॥ नमः परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन ॥ जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागते ॥१४॥ नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे । आदिकर्तः पुराणात्मन् ब्रह्मयोने सनातन ॥१५॥ नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशन ॥१६॥ अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर ॥ इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम् ॥१७॥ तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः॥ शृण्वन्नेव जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च ॥१८॥ ययौ सार्द्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ यत्र पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १९ ॥ लोकवृद्धिकरः श्रीमाँल्लोकानां हित-काम्यया ॥ वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०॥ यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥ द्विधाकरोत्स्वमात्मानं नरनारायणाख्यया ॥ २१ ॥ गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी ॥ यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वगम् ॥ २२ ॥

आपके निमित्त नमस्कार है.इस प्रकारकी वाणियोंसे अविनाशी ईशान देवकी ॥ १७ ॥ देवता, गंधर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण, श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए जनार्दन देव इसप्रकार स्तुति वाक्योंको सुनते हुए ॥१८॥ श्रीकृष्ण देवता और मुनियोंके संग गये,जहां पहले दारुण तप किया था ॥१९॥ लोकोंके हितकी कामनासे लोकवृद्धिके निमित्त श्रीमान् समर्थ विष्णुने स्वयं दशसहस्र वर्षतक उग्र तप करके ॥ २० ॥ अर्थात् जहां जगन्नाथ विष्णुने दारुण तप करके नर नारायण नामसे अपनी आत्माको दो प्रकारसे किया ॥ २१ ॥ जहां सब नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र गंगाजी मध्य-

भागमें चलती है, और जहां वेदार्थोंके तत्त्वको जाननेवाले वृत्रासुरको इन्द्रने मारकर ॥२२॥ ब्रह्महत्या दूर करनेको दश सहस्र वर्षोंतक तप किया था और जहां विष्णुका ध्यानकर असिद्ध सिद्ध होते हैं ॥ २३ ॥ और जहां लोक दुःखदाई रावणको मारकर रामचन्द्रजीने शिक्षा देनेकी इच्छासे घोर तप किया था ॥२४॥ जहां पवित्ररूप देवता और मुनि सिद्धिको प्राप्त होते हैं और जहां नित्यप्रति साक्षात् केशव विष्णु वसते हैं॥ २५ ॥ जहां मुनिगणोंके सहित यज्ञ होते हैं, और जिनके स्मरण करनेसे मनुष्य स्वर्गको गमन करते हैं ॥ २६ ॥ जिसको मुनिजन साक्षात्

ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत् ॥ यत्र सिद्धाश्च सिद्धाः स्युर्ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ॥२३॥ यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम् ॥ एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत ॥२४॥ देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः ॥ यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद्वसति केशवः ॥२५॥ यत्र यज्ञाः प्रवर्तन्ते नित्यं मुनिगणैः सह ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण नरः स्वर्गं गमिष्यति ॥ २६ ॥ स्वर्गसोपानमिच्छन्ति यां पुण्यां मुनिसत्तमाः ॥ शत्रवो मित्रतां यान्ति यत्र नित्यं नृपोत्तम ॥ २७ ॥ यामाहुः पुण्यशीलानां स्थानमुत्तमधर्मिणाम् ॥ यत्र विष्णुं समाराध्य देवाः स्वर्गं समाययुः ॥२८॥ सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः ॥ विशालां बदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः ॥२९॥ सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम् ॥३०॥ अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले ॥ नीडस्थेषु विहगेषु दुह्यमानासु गोषु च ॥ ३१ ॥ ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः ॥ समाधिस्थेषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम् ॥ ३२ ॥

स्वर्गकी सीढी मानते हैं, और जहां वास कर शत्रुभी मित्रभावको प्राप्त हो जाते हैं॥२७॥ जो पुण्यशीलोंका और उत्तमधर्मवालोंका परम स्थान है, और जहां विष्णुकी आराधना कर देवता स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं ॥ २८ ॥ और जिसको मत्सरता रहित मुनिजन सिद्ध क्षेत्र कहते हैं, ऐसी विशाला बदरीको देखनेके अर्थ॥२९॥सबके ईश्वर विष्णु सायंकालमें देवताओंके गण और तत्त्वोंको जाननेवाले मुनियोंके संगऋषियोंसे जुष्ट और महापवित्र तपोवनमें प्रवेश करते हुए॥३०॥जो अग्निहोत्रसे आकुल, पक्षियोंके बोलनेसे संकुलहै, सब पक्षी अपने अपने घोंसलोंमें स्थित हो रहे हैं, और गायें दुही जाती हैं ॥३१॥ अपने आसनोंपर मुनिजन स्थित हो रहे हैं, और समाधिमें स्थित होनेवाले मुनिजन विष्णुके चिंतवन करनेमें लग रहे हैं जहां

घृत गरम हो रहा है, जहां अग्नि प्रज्वलित हो रहा है और जहां चारों ओर अग्निमें हवन हो रहा है ॥ ३२ ॥ और जहां अतिथिकी पूजा हो रही है ऐसे संध्यासमयमें देवताओंके संग श्रीकृष्ण॥३३॥मुनियोंसे जुष्ट और तपोमयी ऐसी बदरीपुरी अर्थात् बद्रिकाश्रममें प्रवेश करने लगे॥३४॥ तब आश्रमके मध्यभागमें श्रीकृष्ण प्रवेश कर ॥ ३५॥ गरुडजीसे उतर दीपिकाओंसे दीपित प्रदेशमें प्रवेश कर देवताओंके साथ स्थित हुए ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ वैशंपायन बोले;कि तब देवताओंके देवता

अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु ॥ हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समन्ततः ॥ ३३ ॥ अतिथौ पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मये ॥ स तस्यामथ वेलायां देवैः सह जनार्दनः ॥ ३४ ॥ विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम् ॥ आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥ ३५ ॥ गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा ॥ प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत्सहामरैः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम् ॥ समाप्य चाग्निहोत्राणि संपूज्यातिथिसत्तमान् ॥ १ ॥ मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृत-निश्चयाः ॥ जटिनो मु ण्डनः केचिच्छिराधमनिसंतताः ॥ २ ॥ निर्मज्जा नीरसाः केचिद्वेताला इव केचन ॥ अश्मकुट्टाशनपराः पर्णभक्षास्तथा परे ॥३॥ वेदविद्याव्रतस्नाता निराहारा महातपाः ॥ स्मरन्तः सर्वदा विष्णुं तद्भक्तास्तत्परायणाः ॥ ४ ॥ आसन्न-मुक्तयः केचित्केचिद्ध्यानैकतत्पराः ॥ ध्यानेन मनसा विष्णुं दृष्टवन्तस्तपोधनाः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णको आया देख निगण अग्निहोत्रोंको समाप्त कर और अतिथियोंका पूजन कर ॥ १ ॥ दीर्घकालसे तप करनेवाले, कोई समाधिमें निश्चय करनेवाले, जटाको धारण करनेवाले, मुंडोंको मुंडानेवाले और कोई नसोंसे व्याप्त ॥२॥ कितनेही मज्जासे रहित, कितने रससे रहित, कितनेही वेता-लोंके समान रहनेवाले, कितनेही पत्थरसे कूटे हुए पदार्थको खानेवाले, और कितनेही परभिक्षा करनेवाले ॥ ३ ॥ कितनेही वेदविद्याव्रतोंसे स्नान किये, कितनेही भोजनको नहीं करनेवाले और कितनेही सब कालमें विष्णुका स्मरण कर उनमें भक्ति करनेवाले॥४॥और कितनेही निकट मुक्तिवाले,

कितनेही ध्यानमें तत्पर, कितनेही ध्यानमें मनसे विष्णुको देखनेवाले, कोई तपकोही धन माननेवाले॥५॥और कितनेही एकवर्षमें भोजन करनेवाले, कितनेही जलमें विचरनेवाले, और कितनेही इन्द्रकोभी भय देनेवाले और कितनेही श्रुतिस्मृतिमें परायण॥६॥वसिष्ठ, वामदेव, रैभ्य, धूम्र जाबाली, कश्यप, कण्व, भरद्वाज, गौतम ॥७॥ अत्रि, अश्वशिरा,भद्र,शंखनिधि, कुणि, वेदव्यास, पवित्राक्ष,महाशन, याज्ञवल्क्य ॥ ८ ॥ कक्षिवान्, अंगिरा, दीर्घतपा, असित देवल और महातप करनेवाले वाल्मीकि ॥ ९ ॥ इनके सिवाय औरभी मुनि अर्घको, ग्रहण कर श्रीकृष्णके देखनेको अपनी

सवत्सराशिनः केचित्केचिज्जलविचारिणः ॥ शक्रस्य भयदातारः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥६ ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च रैभ्यो धूम्रस्त-थैव च ॥ जाबालिः कश्यपः कण्वो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥७॥ अत्रिरश्वशिरा भद्रः शङ्खः शङ्खनिधिः कुणिः ॥ पाराशर्यः पवि-त्राक्षो याज्ञवल्क्यो महामनाः ॥८॥ कक्षीवानङ्गिराश्चैव मुनीर्दीर्घतपास्तथा ॥ असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ॥ ९ ॥ ऐते चान्ये च मुनयो द्रष्टुमीश्वरमव्ययम् ॥ आदायार्घ्यं यथायोग्यमुटजात्स्वात्समाययुः ॥ १० ॥ ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णुमाश जनार्दनम् ॥ भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम् ॥११॥ नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देव देवेति केशवम् ॥ प्रण-वात्मन् जगन्नाथ नताः स्म शिरसा हरे ॥१२॥ कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा ॥ प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम् ॥ १३ ॥ इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च ॥ कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः ॥१४ ॥ किं कुर्मः किं नु नः कृत्यं कश्चिद्दोषः प्रभो हरे ॥ इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः ॥ १५ ॥

अपनी कुटियोंसे आये॥१०॥भक्तिसे नम्र हुए मुनि भक्तवत्सल ईश्वर, विष्णु, जनार्दन श्रीकृष्णको प्रणाम करते हुए ॥११॥कहने लगे; हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे देवदेव ! हे प्रणवात्मन् ! हे जगन्नाथ ! हे हरे ! हम शिरसे नमस्कार करते हैं॥१२॥हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे विष्णु ! हे केशव ! हे हृषीकेश ! तुमको सब मुनि जगत्का पति मानते हैं, और प्रणाम करते हैं ॥१३॥ यह अर्घ्य, यह पाद्य और यह आसन ग्रहण करो. तुमने हम सबको कृत-कृत्य कर दिया इस कारण हे देव ! हमपर प्रसन्न रहो॥१४॥ और हम क्या करें ? क्या हमारा कृत्य है ? क्या हमसे कोई दोष हुआ है ? इस प्रकार

सब हाथ जोड श्रीकृष्णके देखते हुए कहने लगे ॥१५॥ तब सब देवताओंसे युक्त श्रीकृष्ण कहने लगे कि, हे मुनिवरो ! तुम लोगोंने सब सुकृत किया है, इस कारण तुम्हारा उत्तम तप बढता रहे ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहते हुए तिन गरुडजीके संग प्रसन्न हुए रात्रिमें श्रीकृष्ण आसनको प्राप्त हुए ॥१७॥ फिर सब मुनियोंसे अग्निहोत्रमें तपमें भृत्योंमें कुशल पूछने लगे ॥१८॥ तब सब मुनि श्रीकृष्णसे कुशल कहते हुए ॥१९॥ इसके उपरान्त नीवार धान्य,फल,मूल,आदिसे सब देवताओंका और विशेष कर श्रीकृष्णका मुनिजन आतिथ्य करने लगे. सो आतिथ्यको प्राप्त होकर

कृष्णोऽपि तद्यथायोगमुपयुज्य सहामरैः ॥ कृतं सर्वं मुनिवरा वर्द्धतां तप उत्तमम् ॥ १६ ॥ इति ब्रुवन् पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता ॥ आसनं लम्भयामास रात्रौ देवो जनार्दनः ॥१७॥ कुशलं पृष्टवान् भूयो मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ अग्निहोत्रेषु तपसि तथा भृत्येषु सर्वतः ॥१८॥ एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा ॥ सर्वत्र कुशलं तेऽत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सवतः ॥१९॥ आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः ॥ देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः॥आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः॥२०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ तत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥१॥ गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः ॥ स्वयमेव हरिः साक्षात्प्रविवेश तपोवनम् ॥२॥ प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम् ॥ निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यवर्द्धनः ॥ ३ ॥ समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः ॥ किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण अतिप्रसन्न हुए ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायांसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ वैशंपायन कहने लगे कि;तब अलक्ष्यगति विष्णु भगवान्‌ने जहां पहले तप किया था ॥ १ ॥ गंगाजीके उत्तर तीरपर तिस देशके देखनेको साक्षात् हरिभगवा-न्‌ने तपोवनमें प्रवेश किया ॥२॥ तहां मनोरम देशमें प्रवेश कर उत्तम आश्रममें पुण्य बढानेवाले स्थित हुए ॥ ३ ॥ कमललोचन श्रीकृष्णने समा-

धिमेंमनको युक्तकर तब देवताओंके ईश्वर श्रीकृष्ण ध्यानमें कुछ विचारने लगे ॥ ४ ॥ जब देवगुरु समाधिमें दीपककी नांई प्रकाशित हुए. तब महाघोररूप शब्द चारों ओरसे होने लगा ॥ ५ ॥ कि खाओ खाओ प्रसन्न हो इन मृगोंको प्राप्त हो. और श्रीकृष्णके प्रसादसे सब कुत्तोंको मैं प्रेरता हूं ॥ ६ ॥ यह विष्णु कृष्ण हरि ईश अच्युत स्थित है. हे विष्णो ! हे देवेश ! हे स्वामिन् ! हे माधव ! हे केशव ! तुमको नमस्कार हो ॥७॥ इत्यादि महारात्रिमें घोर शब्द प्रगट हुआ फिर दौडते हुए मृगोंके पीछे भागते हुए व्याधेका ॥ ८ ॥ कुत्तोंका और भयवाले मृगोंका और ऋक्षोंका

स्थिते देवगुरौ तच्च समाधौ दीपवद्धरौ॥ तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥५॥ खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान् ॥ प्रेषयेह पुनः सर्वान्प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ॥ ६ ॥ एष विष्णुरयं कृष्णो हरिरीशः स्मृतोऽच्युतः ॥ नमोऽस्तु विष्णो देवेश स्वामिन् माधव केशव ॥ ७ ॥ इत्यादिशब्दः सुमहानाविरासीत्तदा निशि ॥ ततश्च सुमहानादः सिंहानां मृगविद्विषाम् ॥ ८ ॥ धावतां च शुनां राजन्मृगाननुविनर्दताम् ॥ मृगाणां भीतियुक्तानामृक्षाणां द्वीपिनां तथा ॥ ९ ॥ गजानां नदतां राजन्बृंहितं च ततस्ततः॥ महावातसमुद्धूतक्षुभितस्येव वारिधेः॥१०॥नादस्त्रैलोक्यवित्रासः प्रादुरासीत्तदा निशि ॥ श्रुत्वा शब्दं हरिर्देवस्तादृशं तत्र धिष्ठितः ॥११॥ समाधिक्षोभमासाद्य विश्वस्य च जगत्पतिः॥ ततः संचिन्तयामास कोऽयमेष महास्वनः ॥१२॥ कस्यायमीदृशः शब्दः स्तुतियुक्तो मम त्विति॥अहोऽस्मिन्मृगयाशब्दः शुनां संचरतां वने ॥१३॥ मृगाणामथ सर्वेषां नादश्च सुमहानयम् ॥ व्यामिश्रस्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिर्मम समन्ततः ॥ १४ ॥

गैंडोंका ॥९॥ और गर्जनेवाले हाथियोंका जहां तहांसे बढता हुआ और महावायुसे क्षुभित हुए समुद्रके शब्दके समान ॥ १० ॥ त्रिलोकीमें त्रासका देनेवाला शब्द रात्रिमें प्रगट होने लगा तब समाधिमें स्थित श्रीकृष्ण यह शब्द सुन ॥११॥ समाधिके क्षोभको प्राप्त हो जगत्पति श्वास ले चिन्ता करने लगे कि यह महाशब्द क्या है ॥१२॥ मेरी स्तुतिसे संयुक्त यह किसका ऐसा शब्द है ? और आश्चर्य है कि इस वनमें शिकारके अर्थ विचरते हुए कुत्तोंका शब्द ॥१३॥ सब मृगोंका शब्द और मेरी स्तुतिसे मिला हुआ शब्द चारों ओर हो रहा है ॥ १४ ॥

इस प्रकार मनमें चिन्ता कर सब दिशाओंको चारों ओरसे देख उसका कारण देखनेको स्थित हुए ॥ १५ ॥ तब जहां श्रीकृष्ण स्थित थे. तहां भागते हुए मृग आये और तिनके पीछे कुत्तोंका समूह भागता हुआ आया ॥ १६ ॥ जहां सैंकडों सहस्रों दीपकोंसे चांदना हो रहा था. इस कारण अंधेरेका नाश हो दिनका समय हो गया ॥ १७ ॥ तब भूतोंके समूह सब ओर दीखने लगे और महाघोर पिशाच शब्द करने लगे ॥ १८ ॥ और मांसको भक्षण करते हुए लोहूको पीते हुए और विकृत मुखोंवाले महाघोर पिशाच प्रगट हुए ॥ १९ ॥ और जहां

इति संचिन्त्य मनसा दिशो विप्रेक्ष्य सर्वतः ॥ तत आस्ते हरिस्तत्र ज्ञातुं तस्य समुदद्भवम् ॥ १५ ॥ ततो मृगाः समाधावन्यत्र तिष्ठति केशवः ॥ तांश्चैवानुचरो राजन् सगणः समपद्यत ॥ १६ ॥ अथ वै दीपिका राजञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ततस्तमोऽपि व्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥ १७ ॥ ततो नु भूतसंघाश्च समदृश्यन्त तत्र ह ॥ पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहु विस्वनम् ॥ १८ ॥ भक्षयन्तोऽथ पिशितं पिबन्तो रुधिरं बहु ॥ प्रादुरासन्महाघोराः पिशाचा विकृताननाः ॥ १९ ॥ हन्यमाना हता राजन्पतन्तः पतिता मृगाः ॥ इतश्चेतश्च धावन्तो बाणैर्विद्धा मृगा द्विपाः ॥ २० ॥ ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत ॥ यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम् ॥२१॥ अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम ॥ पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः॥२२॥ पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः ॥ श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येवं ततस्ततः ॥ २३ ॥ ततः स भगवान्विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः ॥ विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः ॥ २४ ॥

तहांसे भयसे भागते हुए बाणोंसे विंधे हुए मरनेके तुल्य और मृतक हुए मृग पडने लगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! तब सहस्रों मृग तहां प्राप्त हुए जहां देव श्रीकृष्ण स्थित थे॥२१॥और श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेर कर स्थित हुए यह हमने सुना है विकृत आकारवाली पिशाचनी करालरूप-वाली जिनको देखनेसे रोमावली अर्थात् रुंवें खडे हो जांय॥२२॥पुत्रवती पिशाचोंकी स्त्रियें श्रीकृष्णके निकट प्राप्त हुई हे राजेन्द्र ! तहां चारों ओरसे कुत्तोंके गण विचरने लगे ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्ण भगवान् सबोंको घेरा हुआ देख परम आश्चर्यको प्राप्त हो उन्हें देखते तहांही स्थित

रहें॥२४॥और कहने लगे किसका यह विस्तार पूर्वक शब्द है और किसका यह कुटुम्ब यहां प्राप्त हुआ है, और कौन मेरी भक्ति व स्तुति कर रहा है किसपर मैं प्रसन्न हूंगा ॥ २५ ॥ और जब मैं प्रसन्न हुआ, तब किसको मुक्ति दुर्लभ है. इस प्रकार चिन्ता करके मनुष्यकी चेष्टासे भगवान् स्थित हुए ॥ २६ ॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ वैशंपायनजी बोले कि; तब उनके पीछे विकृत मुखवाले और धूरिको उडानेवाले पिंगलरोमोंवाले लम्बी जिह्वा और बडी ठोडीवाले ॥ १ ॥ लंबे केश, विरूप नेत्र, हीहीं हाहा

कस्यैष विस्तृतो नादः कस्य वायं जनोऽपतत् ॥ को नु मां स्तौति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमानहम् ॥ २५ ॥ कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा॥ इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः॥२६॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तेषामनु महाघोरौ पिशाचौ विकृताननौ ॥ प्रांशू पिङ्गलरोमाणौ दीर्घजिह्वौ महाहनू ॥ १ ॥ लम्बकेशौ विरूपाक्षौ हा हा हा हेति वादिनौ ॥ खादन्तौ मांसपिटकं पिबन्तौ रुधिरं बहु ॥ २ ॥ आन्त्रवेष्टितसर्वाङ्गौ दीर्घौ कृशकृतोदरौ ॥ लम्बमानमहाप्रान्तशूलप्रोतशिरोधरौ ॥ ३ ॥ कर्षन्तौ शवयूथानि बाहुभ्यां तत्र तत्र ह ॥ हसन्तौ विविधं हासं स्वजातिसदृशं नृप ॥४॥ वदन्तौ बहुरूपाणि वचांसि प्राकृतानि च ॥ कम्पयन्तौ महावृक्षानुरुपादप्रघट्टनैः ॥ ५ ॥ सृक्किणी लेहिहन्तौ च दन्तान्कटकटायिनौ ॥ अस्थिस्नायुसमाकीर्णौ धमनीरज्जुसंततौ ॥ ६ ॥

बोलनेवाले मांसकी पेटीको खानेवाले बहुतसे रुधिरको पीनेवाले ॥ २ ॥ आंतोंसे वेष्टित अङ्गोंवाले लंबे और कृश उदरवाले, लम्बायमान शूल प्रोतवत् शिरको धारण करनेवाले ॥ ३ ॥ दोनों भुजाओंसे मुरदोंके शिरोंको खैंचनेवाले और अनेक प्रकारके हास्यको करते अपनी जातिके सदृश चेष्टा करनेवाले ॥ ४ ॥ बहुतसे रूपोंसे संयुक्त प्राकृत वचनोंको कहनेवाले, अपनी जंघाओंसे बडे बडे वृक्षोंको कँपानेवाले ॥५॥ और सृक्किणी अर्थात् अपने ओष्ठप्रांत देशको अपनी जीभसे चाटनेवाले, दांतोंको चवानेवाले, अस्थि और नसोंसे आकीर्ण धमनीरूप रज्जुसे विस्तृत ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! हे कृष्ण!हे माधव!इन वचनोंको सदा कहनेवाले और किस समय विष्णु दीखेंगे,वह विष्णु अब कहां स्थित हैं॥७॥हमारे स्वामी श्रीकृष्ण कहां स्थित हैं. कैसे देखनेको हम यत्न करें ? और किस देशमें वह देवेशरूप ईश्वर वसते हैं ॥८॥ कमलके पत्तोंके सदृश नेत्रोंवालेसाक्षात् इन्द्रके छोटे भ्राता कहां है?जिसको ब्रह्मके जाननेवाले विद्वान् साक्षात् ब्रह्म कहते हैं ॥ ९ ॥ उन जन्मसे रहित और विश्वके रचनेवाले ईश्वरके देखनेको हम यत्न करते हैं और अंतकालमें इसी ईश्वरमें तीनों जगत् लय होते हैं ॥१०॥ उस अज विश्वके कर्त्ताको अब कहां देखेंगे जिनका विस्तार किया यह लोक

वदन्तौ कृष्ण कृष्णेति माधवेति स संततम् ॥ कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क्व तिष्ठति ॥ ७ ॥ स्वामिनः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टुं यतामहे ॥ अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्थास्यते हरिः ॥ ८ ॥ कुतः पद्मपलाशाक्षः साक्षादिन्द्रानुजो हरिः॥ यमाहुः पुण्डरीकाक्षं ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ ९ ॥ तमजं पुरुषं विष्णुं द्रष्टुमभ्युद्यता वयम् ॥ अन्तकाले जगन्नाथं प्रविवेश जगत्रयम् ॥ १० ॥ तमजं विश्वकर्तारं कुतो द्रक्ष्याम साम्प्रतम् ॥ यस्य विस्तार एवैष लोकः प्राणिनिवासिनः ॥ ११ ॥ त द्रष्टुं देवमीशानं यतामः साम्प्रतं हरिम् ॥ दशा घोरतमा लोके विद्विष्टा सर्वजन्तुभिः ॥१२॥ पैशाचीयं समुत्पन्ना कथं नौ प्राविशद्बलात् ॥ नरमांसास्थिकलुषा सर्वभीतिप्रदायिनी ॥ १३ ॥ अहो नो दुष्कृतं कर्म प्राक्तने कर्मसंचये ॥ अत्रैव महती प्रीतिर्वर्त्तते सर्वदा तथा ॥ १४ ॥ यावन्नौ दुष्कृतं कर्म तावत्स्थास्यति तादृशी॥ दशा सा सर्वविद्विष्टा प्राणिपीडनकारिणी ॥ १५ ॥

प्राणियोंका निवासरूप है॥११॥ऐसे ईश्वरको शीघ्र हम कैसे देखेंगे, कैसे जतन करेंगे. संसारमें हमारी दशा बडी घोर है, और सब जंतुओंसे त्यागी हुई है ॥१२॥ और पिशाचोंके योग्य मनुष्योंके मांस और हाड आदिको ग्रहण करनेवाली और सब प्रकारके भयको देनेवाली ऐसी बुरी दशा बलसे कैसे हमारेको प्राप्त हुई आश्चर्य है ॥१३॥ पूर्वजन्ममें हम लोगोंने बहुत बुरे कर्म किये हैं.जिससे इन पूर्वोक्त बुरे कर्मोंमेंभी हमारी प्रीति सब कालमें बनी रहती है॥१४॥और जबतक हम उस दोनोंसे किया बुरा कर्म स्थित रहेगा तबतक प्राणियोंको पीडा करनेवाली और सबोंसे त्यागी

हुई दशा हमारी रहेगी ॥ १५ ॥ बहुतजन्मोंमें हमसे बुराही कर्म बन आया है, इस कारण यह घोररूप फल अबभी निवृत्त नहीं होता ॥१६॥ क्योंकि कुत्तोंके समूहोंके संग प्राणियोंको मारनेके अर्थ हम सावधान हैं, और बाल्यअवस्थासेही इसमें रत हैं॥ १७ ॥ अज्ञानसे आवृत चित्तवाले प्राणी कृत्य और अकृत्यको नहीं जानते और यौवन अवस्थामें विषयोंसे भ्रमित हुए ॥ १८ ॥ चित्तोंवाले मनुष्य अपने कल्याणके लिये यत्न नहीं करते कारण कि उनके चित्त विषयवासनामें रत हैं ॥१९ ॥ और वृद्ध अवस्थामें घोररूप दुःखदाता ज्वर आदि अनेक प्रकारकी

सर्वथा दुष्कृतं कर्म बहुभिर्जन्मसंचयैः ॥ तथा हि तत्फलं घोरमद्यापि न निवर्त्तते ॥ १६ ॥ यताः स्म प्राणिनो हन्तुं श्वगणैः सह साम्प्रतम् ॥ तथा हि प्राणिनो लोके बाल्यमादौ समास्थिताः ॥ १७ ॥ अज्ञानावृतचित्ताश्च कृत्याकृत्यं न जानते ॥ तथा यौवनिनो भ्रान्ता विषयैर्बहुलीकृताः ॥ १८ ॥ यतन्ते श्रेयसे नैव ततो विषयसंस्थिताः ॥ विषयाविष्टचित्ता हि मनुष्या न विजानते ॥ १९ ॥ तथा च वृद्धभावे तु व्याधिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ज्वरादिभिर्महाघोरैर्नानादुःखविधायिभिः ॥ २० ॥ यतन्ते न हि वै श्रेयो विनष्टेन्द्रियगोचराः ॥ ततो मृता गर्भवासे वसन्ति सततं नराः ॥२१॥ विण्मूत्रकलिले घोरे दुःखैर्बहुभिराचिताः ॥ च्यवन्ते तु ततो घोराद्गर्भात् संसारमण्डले ॥ २२ ॥ परस्परं विहिंसन्तः कुर्वन्तः कर्मसंचयम् ॥ महत्येवं सदा घोरे संसारे दुःखसंकुले ॥ २३ ॥ पापानि बहुरूपाणि कुर्वतेऽज्ञानतस्तदा ॥ संसारस्यैष महिमा विस्तृतः सर्वजन्तुषु ॥ २४ ॥ अच्छेद्यः शस्त्रसंपातैरुपायैर्बहुभिः सदा ॥ एतस्मान्न निवर्तन्ते मर्त्याः प्राकृतबुद्धयः ॥ २५ ॥

व्याधियोंसे पीडित॥२०॥नष्ट इन्द्रियोंवाले होकर मनुष्य कल्याणके अर्थ यत्न नहीं करते हैं, फिर मरकर गर्भवास करते हैं अर्थात् ॥२१॥ विष्ठा और मूत्रसे युक्त गर्भमें निरंतर वसते हैं, पीछे बहुतसे दुःखोंसे व्याप्त हुए घोररूप गर्भसे संसारमण्डलमें जन्मते हैं।।२२।। अब परस्परमें हिंसा करते हुए और कर्मका संचय करते हुए इस दुःखयुक्त घोरसंसारमें ॥२३॥ अज्ञानसे बहुतसे पापोंको करते हैं,ऐसे संसारकी महिमा प्राणि-योंमें विस्तृत है॥२४॥यह शस्त्र आदि अनेक प्रकारके उपायोंसे उच्छेद्य अर्थात् कटनेके योग्य नहीं है, इस कारण प्राकृत बुद्धिवाले मनुष्य इस

संसारसे निवृत्त नहीं होते ॥२५॥ इस मनुष्येन्द्रको मारकर मैं इसके धनको हरूं और इसके धनको चुरा कर मैं अपना बना लूं ॥२६॥ और इस शतरूप मनुष्यको झिडककर धनको हरूंगा,इत्यादि मनोरथोंसे व्याकुल हुए मूर्ख प्राणियोंको पीडा देनेके अर्थ यत्न करते हैं ॥२७॥ इस दुःखके मूलरूप संसारकी सब कालमें शंख,चक्रगदाको धारण करनेवाले नारायणही औषधी है॥२८॥ कारण कि वह आदिदेव पुराणात्मा और ब्रह्म जाननेवालेके आत्मा, विष्णु हैं, इस कारण हम सब यत्नसे तिन विष्णुको देखेंगे ऐसे बोलते हुए दोनों पिशाच विष्णुके आगे प्रगट हुए ॥२९॥

इमं हत्वा मनुष्येन्द्रमिदमस्माद्धराम्यहम् ॥ चोरयित्वा धनमिदं हरिष्याम्याददाम्यहम् ॥२६॥ निर्भर्त्स्यैनमिमं शान्तं हरिष्यामि धनं बली ॥ इत्यादिव्याकुला मूर्खा यतन्ते प्राणिपीडनम् ॥२७॥ अस्यैव दुःखमूलस्य संसारस्य सदा हरिः ॥ भेषजं सर्वथा देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आदिदेवः पुराणात्मा आत्मा ब्रह्मविदां सदा ॥ ते वयं सर्वयत्नेन द्रक्ष्यामः सर्वथा हरिम् ॥ इत्थं पिशाचौ भाषान्तौ प्रादुरास्तां हरेः पुरः ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचौ मांसभक्षकौ ॥ ददर्शाथ महाघोरौ दीपिकाधारिणौ हरिः ॥ १ ॥ विलोकयांचक्रतुस्तौ पिशाचौ देवकीसुतम् ॥ स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥ २ ॥ तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचौ केशवस्यच ॥ ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीकृत्य केशवम् ॥ ३ ॥

इति श्रीम० खिलेषु ह० भ० भाषायां कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥ वैशंपायन बोले कि;इसके उपरान्त विष्णु भगवान्ने मांसको भक्षण करनेवाले और दीपकको धारण करनेवाले महाघोर रूप दो पिशाचोंको देखा ॥ १ ॥ और वह दोनों पिशाच सुंदर आसनपर स्थित हुए देवकीपुत्र लोकेश्वर विष्णुको देखते हुए ॥ २ ॥ तब लोकेश्वरोंके ईश्वररूप विष्णुको देखकर और विष्णुके समीपमें जा कर और विष्णुको मध्यमें

कर दोनों पिशाच कहने लगे ॥ ३ ॥ हे मनुष्य! तुम कौन हो और किसके शिष्य हो ? और कहांसे आये हो ? मृगोंसे व्याप्त ॥४॥ और मनुष्योंसे रहित हाथियोंसे आवृत. पिशाचगणोंसे सेवित और श्वापद प्राणियोंसे और सिंहोंसे सेव्यमान ॥ ५ ॥ वनमें तुम किस कारण आये हो ? कुमारअवस्थायुक्त सुंदर अंगवाले साक्षात् दूसरे विष्णुके समान पद्मके पत्तोंके समान नेत्रोंवाले श्याम और कमलके समान कांतिवाले और स्वयं लक्ष्मीपति ॥६॥ हमसे प्रीति करनेवाले हो तुम देव, यक्ष, गंधर्व वा किन्नर हो ॥ ७ ॥ वा इन्द्र, कुबेर, यम वा वरुण हो, ध्यानार्पित मनवालेके समान

को भगवान्कस्य वा मर्त्यः कुतश्चागम्यते त्वया ॥ किमर्थमिह संप्राप्तो वने घोरे मृगाकुले ॥४॥ निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते ॥ श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥५॥ सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ पद्मपत्रेक्षणः श्यामः पद्माभिः श्रीपतिः स्वयम् ॥ ६ ॥ अस्मात्प्रीतिकरः साक्षात्प्राप्तो विष्णुरिवापरः ॥ देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा ॥७॥ इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा ॥ एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव ॥८॥ ब्रूहि मर्त्य यथातत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद ॥ एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥ क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः ॥ यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः ॥ १० ॥ लोकानामथ पातास्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥ कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम् ॥ ११ ॥ इत्येवं मम वृत्तान्तः कथ्यतां कौ युवामिति ॥ युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥ १२ ॥ एषा हि महती पुण्या नानाविप्रनिषेविता ॥ बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रैराश्रिता क्वचित् ॥ १३ ॥

इस वनमें अकेले तुम कैसे हो ? ॥ ८ ॥ हे मनुष्य ! यथार्थ वर्णन करो. मैं जाननेकी इच्छा करता हूं इस प्रकार पिशाचोंसे पूछे हुए महापराक्रमी श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ९ ॥ कि यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले और क्षात्रवृत्तमें अनुष्ठित मैं क्षत्रिय हूं ऐसा प्रकृतिमें स्थित मनुष्य कहते हैं ॥ १० ॥ लोकोंकी रक्षा करनेवाला और सब कालमें दुष्टोंको शिक्षा देनेवाला मैं क्षत्रिय हूं. सो महादेवजीको देखनेके लिये कैलास पर्वतको गमन करनेवाला हूं ॥ ११ ॥ यह मेरा वृत्तान्त है, परंतु तुम दोनों कौन हो ? यह कहो,और इस ब्राह्मणाश्रममें तुम किस कारण आये हो ? ॥ १२ ॥ पवित्र और

अनेक प्रकारके विप्रोंसे सेवित यह बदरीपुरी विख्यात है, यह क्षुद्र पुरुषोंसे कहींभी सेवित नहीं हो सकती ॥१३॥तपस्वियोंसे जुष्ट और सिद्धोंसे सेवित यह बदरिकाश्रम है यहां कुत्तोंके गण और मांसको भोजन करनेवाले पिशाच नहीं दीखते हैं॥१४॥और यहां मृग मारनेके योग्य नहीं हैं, और यहां शिकार नहीं खेला जाता है. और क्षुद्र कृतघ्न नास्तिकोंका प्रवेश यहां नहीं हो सकता है॥१५॥और इस देशका मैं रक्षा करनेवाला हूं, इसमें संशय नहीं; जो व्यतिक्रम करेगा, मैं यत्नसे उसकी शिक्षा करूंगा॥१६॥ तुम दोनों कौन हो? कहां जाते हो और किसकी यह बडी सेना है? और यहांसे अगाडी तुम प्रवेश नहीं करना, कारण कि ऋषिजन वसते हैं ॥१७॥ और तपस्वियोंके तपमें विघ्न हो सकता है. इस कारण प्रथम

तपस्विभिस्तपोयुक्तैर्जुष्टा सिद्धनिषेविता ॥ श्वगणा नात्र दृश्यन्ते पिशाचा मांसभोजनाः ॥ १४ ॥ न हन्तव्या मृगाश्चात्र मृगया नात्र वर्तते ॥ न तु क्षुद्रैः प्रवेष्टव्या न कृतघ्नैर्न नास्तिकैः ॥ १५ ॥ अहमस्य तु देशस्य रक्षिता नात्र संशयः ॥ व्यतिक्रमो यदि भवेत्तस्य शास्तास्मि यत्नतः ॥१६॥ कौ भवन्तौ क्व नु युवां कस्येयं महती चमूः ॥ नातः परं प्रवेष्टव्यमृषयस्तत्र संस्थिताः ॥१७॥ विघ्नस्तत्र प्रवर्तेत तपस्सु च तपस्विनाम् ॥ इहैव स्थीयतां तावद्वक्तव्यं च ततः सुखम् ॥१८॥ अन्यथाहं निषेद्धा स्यां बलाद्वाक्यै स्तथैव च ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं पृष्टौ पिशाचौ तु वक्तुमेवोपचक्रतुः ॥१९॥ तयोरेको महाघोरः पिशाचो दीर्घबाहुकः ॥ उवाच वचनं तत्र यथा हृदि समर्पितम् ॥२०॥ पिशाच उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव ॥ नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम् ॥ २१ ॥ आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥ वक्ष्यामि सकलं यद्वृत्तथा शृणु यदीच्छसि ॥२२॥

यहीं स्थित रहो और फिर सुखपूर्वक बोलो ॥१८॥ और यदि मेरे वचनको नहीं मानोगे तो बलसे और वाक्यसे रोक दूंगा. वैशंपायन बोले; कि इस प्रकार पूछे हुए दोनों पिशाच कहनेको समीपमें पहुँचे॥१९॥परन्तु तिन दोनोंमें जो एक महाघोर, दीर्घ भुजाओंवाला पिशाच था, वह हृदयमें स्थित वचन कहने लगा ॥२०॥ पिशाच कहने लगा, जगत्के नाथ और जगत्के पति हरि कृष्णको नमस्कार कर मैं वर्णन करता हूं, तुम सावधान मन होकर सुनो ॥२१॥ आदिदेव अज वरेण्य अनघ और पवित्र विष्णुका ध्यान कर मैं सब कहूंगा. जो तुम्हारी इच्छा है, तो सुनो ॥ २२ ॥

मांस खानेवाला, घोर दर्शन, विकृत घोर मृत्युके समान मानो दूसरी मृत्यु मैं घंटाकर्ण नाम पिशाच हूं ॥ २३ ॥ महादेवके मित्र साक्षात् कुबेरका अनुचर हूं, और यह मेरा छोटा भाई है और मैं अंतककाभी अंतक हूं॥२४॥और यह बडी मृगया विष्णुकी पूजाके अर्थ है, और यह मेरी सेना है, और कुत्तोंका गणभी मेराही है ॥२५॥ और मैं भूतसेवित कैलासपर्वतसे आया हूं, पाप करनेवाला मैं पिशाचके वेषसे युक्त हूं ॥ २६ ॥ पूर्वकालमें मैं निरन्तर विष्णुको दूषित करता हुआ दोनों कानोंमें घंटे बांधकरके कि मेरे कानोंमें विष्णुका नाम प्रवेश न करे, इस प्रकार विचार

घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाहं पिशाचो घोरदर्शनः॥ मांसादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥ २३ ॥ धनदस्यानुगन्ताहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च ॥ ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥ २४ ॥ मृगयेयं सुमहती विष्णोः पूजार्थमित्युत ॥ ममेयं वर्तते सेना श्वगणोऽपि ममैव तु ॥२५॥ आगतोऽहं महाशैलात्कैलासाद्भूतसेवितात् ॥ अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत् ॥२६॥ सततं दूषयन्विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयोः ॥ मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ॥ २७ ॥ अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ॥ आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् ॥२८॥ ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ॥ ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥ २९ ॥ मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ॥ मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥३०॥ तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम् ॥ मुक्तिं प्राप्नुहि गोविंदान्नरनारायणाश्रमे ॥ ३१ ॥ इत्युक्तो देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम् ॥ तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥ ३२ ॥

कर ॥ २७ ॥ कैलासपर्वतमें जायकर महादेवजीकी आराधना कर निरंतर महादेवजीकी स्तुति करने लगा ॥ २८ ॥ तब प्रसन्न हुए महादेव मुझसे कहने लगे कि वर मांग, तब मैंने महादेवके समीपमें मुक्तिकी प्रार्थना करी ॥२९॥ तब मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाले मुझसे महादेव कहने लगे कि सबको मुक्तिका देनेवाला विष्णु है, इसमें संशय नहीं॥३०॥इस कारणसे बद्रिकाश्रममें नरनारायणके आश्रममें जायकर विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे तू मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार महादेवजीके कहनेसे तिसी विष्णुको परम मानकर गरुडध्वजरूप गोविन्दको जानता

हुआ ॥ ३२ ॥ तिनसे मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाला मैं इस देशमें प्राप्त हुआ हूं, औरभी मेरा कार्य सुनो. जो तुमको सुननेकी अभिलाषा है ॥ ३३ ॥ पश्चिमसमुद्रके तटपर यदुवृष्णियोंसे आकीर्ण और समुद्रकी तरंगोंसे आकुल द्वारवती पुरी है ॥ ३४ ॥ तिस पुरीमें हरि भगवान् पुरुषोत्तम लोकोंका हित करनेके निमित्त वसते हैं. तिनको देखनेके अर्थ ॥ ३५ ॥ इन अनुचरोंके संग निकलकर प्राप्त हुए हैं, सो सबोंके ईश्वररूप विष्णुको अब हम देखेंगे ॥ ३६ ॥ लोकोंके उत्पत्तिस्थान और संसारकी रक्षा करनेवाले, कर्त्ता, हर्त्ता और जगत्के पति और आदिकेभी आदि सबोंके उत्पत्तिस्थान और कारण ॥ ३७ ॥ सबोंकी रक्षा करनेवाले, सबोंके पापोंको हरनेवाले, पुरातन प्रभुओंकेभी प्रभु और सत्यआत्मावाले, वर देनेवाले

तस्मात्प्रार्थयमानस्सन्मुक्तिदेशममुं गतः ॥ अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ॥ ३३ ॥ पुरी द्वारवती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे ॥ यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाकुलाम् ॥ ३४ ॥ अध्यास्ये स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः ॥ द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ३५ ॥ निर्गताः साम्प्रतं मर्त्ये वयमेतैः सहानुगैः ॥ विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद्द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै ॥ ३६ ॥ लोकानां प्रभवः पाता कर्त्ता हर्ता जगत्पतिः ॥ आदिः स हि समस्तस्य प्रभवः कारणं हरिः ॥ ३७ ॥ कर्ता समस्तस्य हरिः पुरातनः प्रभुः प्रभूणामपि यः सदात्मकः ॥ तदादिदेवं वरदं वरेण्यं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ३८ ॥ यस्य प्रसादाज्जगदेवमासीत्स्वप्राणिगन्धर्वमहोरगौघम् ॥ देवं जगद्योनिमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ३९ ॥ यस्योदयाद्विश्वमिदं प्रभूतं लयं च तस्मिन्समुपैति कल्पे ॥ तस्यैव साक्षाद्वशवर्ति विश्वं द्रक्ष्याम देवं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ४० ॥

आदिदेव विष्णुको देखनेके अर्थ अब हम सब यत्न कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ और जिसके प्रसादसे प्राणी गंधर्व महासर्पके समूहरूप जगत् हो गया है, देव और जगत्के योनि, अजन्मा और दुष्टजनोंको पीडा देनेवाले विष्णुको देखनेके लिये अब हम यत्न कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ और जिसके उदरसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, और प्रलयमें जिसके शरीरमें यह जगत् लय होगा, और जिसके साक्षात् वशवर्ती संसार है, ऐसे पुरुषोत्तमरूप विष्णुको देखेंगे ॥ ४० ॥ और जो सब संसारके रचनेवाले पालनेवाले देव हर्त्ता और भुवनके ईश्वर हरि पुरातन और आद्यमें होनेवाले अवि-

नाशी विष्णुको हम देखेंगे॥४१॥ब्रह्मा आदिको करनेवाले, भुवनके रक्षक पृथिवीके कर्त्ता एकही नारायण जिनकी कृपासे योगियोंको शुद्ध बुद्धिकी प्राप्ति होती है, उन नारायणका दर्शन हम करेंगे ॥ ४२ ॥ वह जगत्पति इस संपूर्ण जगत्को निगलकर साक्षात् बालकके समान होकर शयन कर बडके पत्रमें स्थित हो पैरोंको चलाते हैं, और हाथोंको कँपाते हैं ॥४३॥ जिसके उदरमें पुरातन मार्कण्डेय मुनि प्रवेश कर मायासहित सब लोकोंके देखते हुए और फिर बाहर आकरभी यह सब कुछ देखते हुए ॥४४॥वही महात्मा जगत्के आदि कालमें संसारको पेटमें रखकर शयन कर जाते

स्रष्टा च योऽसौ सकलस्य देवः पाता च हर्ता च हरिः स एव ॥ द्रक्ष्याम नित्यं भुवनेश्वरं हरिं पुराणमाद्यं प्रभविष्णुमव्ययम्॥४१॥ अजस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता भुवश्च कर्ता हरिरेक एव ॥ तं योगिनो योगविशुद्धबुद्धिं लभेम तेनैव मतिः समाकुला ॥ ४२ ॥ निगीर्य विश्वं सकलं जगत्पतिः शेते शिशुत्वं समवाप्य साक्षात् ॥ वटस्य पत्रे जगतां निवासः पादौ च विक्षिप्य करौ विधुन्वन् ॥४३॥ यस्योदरे देवमुनिः पुरातनो ददर्श लोकानखिलान्स मायया ॥ प्रविश्य विश्वं सकलं यथावद्बहिर्यथा भूतमभूदिदं महत् ॥४४॥ निगीर्य विश्वं जगदादिकाले शेते महात्मा जलधेर्जलौघे ॥ देव्या श्रिया चामरलोलहस्तया निसेव्यमाणः पुरुषोत्तमस्तदा ॥४५॥ नाभेश्च यस्याविरभूत्सपत्रं पद्मं महत्काञ्चनसप्रभं प्रभोः ॥ जन्मास्पदं लोकगुरोर्यदासीद्विस्तारि पद्मं जगदादिसृष्टौ ॥४६॥ दधार यो भूतपतिर्महान्महीं दंष्ट्राग्रसंस्थापितरूढमूलाम् ॥ नदन्महामेघ इवादिकाले कुर्वन्वराहो मुनिगीतमूर्तिः ॥ ४७ ॥ हरिः पुराणः पुरुषोत्तमः प्रभुः कर्ता समस्तस्य समस्तसाक्षी ॥ यज्ञात्मको यज्ञपतिर्जगत्पतिर्द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४८ ॥

हैं, उस समय सागरमें देवी लक्ष्मी चमर हाथमें लिये उन पुरुषोत्तमकी सेवा करती है ॥ ४५ ॥ और जिसकी नाभिसे सुवर्णके सदृश कांतिवाले पत्तोंसहित कमल प्रगट हुआ, तिस विस्तारित कमलमें जगत्की सृष्टिके अर्थ ब्रह्माजी जन्मे हैं ॥४६॥ और भूतपति जो अपनी दाढके अग्रभागपर पृथ्वीको दृढ स्थापित कर महामेघके समान शब्द करते हुए वाराहजी पृथ्वीको धारण करते हुए. जिनकी कीर्ति मुनि गाते हैं ॥४७ ॥ और वही वाराह हरि पुराण पुरुषोत्तम प्रभु सबके करनेवाले, सबके साक्षी, यज्ञात्मक, यज्ञपति, जगत्पति हैं, उनको देखनेके लिये हम उद्यत हुए हैं ॥ ४८ ॥

कितनेही इस देवको बहुतरूपोंसे वर्णन करते हैं, और वेदान्त करके संस्थापित सत्वसंयुक्त तिस ईश्वरके देखनेको हम उद्यत होते हैं॥४९॥और श्रुति, स्मृति, न्यायसे निविष्ट चित्तवाले बहुतसे बहुत प्रकारसे कहते हैं, और अजन्मा साक्षात् आत्मा है, ईश्वरके देखनेको हम सब उद्यत हुए हैं ॥५०॥ जो आद्य वरका देनेवाला,श्रेष्ठ प्रकाशवाला और एकांत तत्त्ववाला सब प्राणियोंमें स्थित और देव, दुष्टोंको पीडा देनेवाला है. जिसको पुरातन मुनि ऐसा कहते हैं, ऐसे ईश्वरके हम देखनेको यत्न करते हैं, ॥ ५१ ॥ और आदिकालमें जिस जगतपतिमें यह विश्व स्थित है, तिसके देखनेको हम साव-

केचिद्बहुत्वेन वदन्ति देवमेकात्मना केचिदिमं पुराणम् ॥ वेदान्तसंस्थापितसत्त्वयुक्तं द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४९ ॥
अनेकमेकं बहुधा वदन्ति श्रुतस्मृतिन्यायनिविष्टचित्ताः ॥ आहुर्यमात्मानमजं पुराविदो द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ५० ॥
यं प्राहुरीडचं वरदं वरेण्यमेकान्ततत्त्वं मुनयः पुरातनाः ॥ यं सर्वगं देवमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ५१ ॥
यस्मिन्विश्वमिदं प्रोतमादिकाले जगत्पतौ ॥ तं द्रष्टुमभिसंवृताः किं नु वक्ष्याम साम्प्रतम् ॥५२ ॥ गच्छामो वयमन्यत्र गच्छ त्वं काममन्यतः ॥ नियमोऽप्यस्ति नो मर्त्य यथेष्टं गच्छ साम्प्रतम् ॥ ५३ ॥ रात्रिमध्यमनुप्राप्तं नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा घोररूपोऽसौ पिशाचो विकृताननः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्नेव समे देशे पीत्वा च रुधिरं बहु ॥ भक्षयित्वा यथाकामं मांसराशिं विचक्षणः ॥५५॥ अपः संस्पृश्य तत्रैव पार्श्वे संस्थाप्य साधनम् ॥ आन्त्रपाशं महाघोरं संस्थाप्य विपुलं महत् ॥५६॥

धान हैं, और अब हम क्या कहें ॥ ५२ ॥ हे मनुष्य ! अब हम अन्य जगह गमन करते हैं. और तू अन्य जगह गमन कर और जिधर इच्छा हो, उस यथेष्ट देशको चला जा ॥ ५३ ॥ बहुत घोर रात्रि है, इसका विचार न करना इस प्रकार कहकर विकृत मुखवाला घोररूप पिशाच ॥ ५४ ॥ इस देशमें बहुतसे रुधिरका पानकर और यथायोग्य मांसके समूहका भक्षण कर ॥ ५५ ॥ और जलके कुल्ले कर और समीपमें सब प्रकारके साधन और महाघोररूप अंत्रपाशको स्थापन कर ॥ ५६ ॥

कुशके आसनोंको बिछा, पानीसे आप पवित्र हो और सब कुत्तोंके गणोंको त्याग बडे यत्नसे ॥५७॥आसनपर स्थित हो समाधिके लिये यत्न करने लगा. फिर एकाग्रचित होकर विष्णुको नमस्कार कर घोररूप पिशाच भक्तवत्सल भगवान्‌के इस मंत्रका पाठ करने लगा॥५८॥भगवान्‌को नमस्कार है. वासुदेव और चक्रगदाको धारण करनेवालेको नमस्कार है॥ ५९ ॥ ॐ नारायणके अर्थ नमस्कार है, विष्णु और प्रभविष्णुको नमस्कार है, हे केशव ! तुम्हारे कीर्त्तनसे मेरे आत्माकी शुद्धि हो॥६०॥और यह घोररूप जन्म मेरे मत हों. हे गोपते ! तुम्हारे स्मरणसे मैं देवदूत हो जाऊं॥६१॥

आसनं कुशसंयुक्तं कृत्वा चाभ्युक्ष्य वारिणा ॥ उत्सार्य श्वगणान् सर्वान्यत्नेन महता तदा ॥ ५७ ॥ सुखासनं समास्थाय समाधौ यतते श्वपः ॥ एकचित्तस्तदा भूत्वा नमस्कृत्य च केशवम् ॥ इमं मन्त्रं पठन्घोरः पिशाचो भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे ॥ नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ ५९ ॥ ओं नमो नारायणाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ मम भूयान्मनःशुद्धिः कीर्त्तनात्तव केशव ॥ ६० ॥ जन्मेदमीदृशं घोरं मा भून्मम दुरासदम् ॥ देवदूतो भविष्यामि स्मरणात्तव गोपते ॥ ६१ ॥ तव चक्रप्रहारेण कायो नश्यतु मामकः ॥ मम भूयो भवो मा भूदेषा मे प्रार्थना विभो ॥ ६२ ॥ अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता सर्वस्य सर्वदा ॥ यत्र यत्र भवेज्जन्म तत्र तत्र भवान्हृदि ॥ ६३ ॥ वर्त्ततां मम देवेश प्रार्थनैषा ममापरा ॥ नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं भवत्वेवं सदा मम ॥ ६४ ॥ निर्विघ्ना प्रार्थना देव नमस्तेऽस्तु सदा मम ॥ यदा मे मरणं भूयात्तदा मा भूत्स्मृतिभ्रमः॥६५॥दिने दिने क्षणं चित्तं त्वयि संस्थं भवत्विति॥एवं प्रेरय मां देव मा भूत्ते चित्तमीदृशम् ॥६६॥

और तुम्हारे चक्रके प्रहारसे मेरा शरीर नष्ट हो जाय और फिर मुझे यह संसार न मिलेहे विभो ! यह मेरी प्रार्थना है ॥ ६२ ॥ आप अर्थियोंके कल्पवृक्ष हो और सब कालमें सबोंके दाता तुमही हो. हे देव ! जहां जहां मेरा जन्म हो, तहां तहां मेरे हृदयमें तुम स्थित रहो ॥ ६३ ॥ यह दूसरी मेरी प्रार्थना है, सो पुरी हो. तुम्हें मेरा वारंवार नमस्कार है ॥६४॥ हे देव ! विघ्नोंसे रहित सदा मेरी प्रार्थना हो, तुम्हें नमस्कार है. जब मेरी मृत्यु हो जाय, तबभी स्मृति बनी रहे ॥ ६५ ॥ दिनरात्रिमें और क्षणक्षणमें मेरा चित्त तुममें स्थित रहे. हे देव !

ऐसे मेरेको प्रेरित कर और ऐसा तुम्हारा चित्त न हो कि ॥ ६६ ॥ यह नृशंसरूपपिशाच है, इसपर क्या दया करनी उचित है. हे देव ! आप इस बातका विचार करो यह हमारा दास है ॥ ६७ ॥ हे विभो ! मेरा मन पराई पीडाके अर्थ मत्त न हो. हे भगवान् ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार है. और सब इन्द्रियें इन्द्रियोंके अर्थोंको न भजें ॥ ६८ ॥ हे केशव ! तुम्हारे प्रसादसे अंतकालमें यह हो, पृथ्वी मेरी नासिकाकी रक्षा करे, और जल मेरी जिह्वा रक्षा करे ॥ ६९ ॥ सूर्य मेरे नेत्र रक्षा करे और वायु मेरे स्पर्शकी रक्षा करे, आकाश मेरे कानोंकी रक्षा करो और

नृशंसोऽयं पिशाचोऽयं दयास्मिन्का भवेदिति ॥ एवं चिन्तय मां देव भृत्यो मह्यमिति प्रभो ॥ ६७ ॥ परपीडा न मत्तोऽस्तु नमस्ते भगवन्प्रभो ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु मा भूवन् साम्प्रतं हि मे ॥ ६८ ॥ अन्तकाले ममाप्येवं प्रसादात्तव केशव ॥ पृथिवी यातु मे घ्राणं रसनां यातु मे पयः ॥ ६९ ॥ सूर्यश्च यातुमे चक्षुः स्पर्शं यातु च मारुतः ॥ श्रोत्रमाकाशमप्येतु मनः प्राणं च गच्छतु ॥७०॥ जलं मां रक्षतां नित्यं पृथिवी रक्षतां हरे ॥ सूर्यो मां रक्षतां विष्णो नमस्ते सूर्यतेजसे ॥ ७१ ॥ वायुर्मां रक्षतां दुःखादाकाशं च जनार्दन ॥ न मनः सर्वगं देव रक्षतां विषयान्तरे ॥ ७२ ॥ मनो विपर्यये घोरे पुरुषान् हन्ति नित्यशः ॥ पापेषु योजयेत्पुंसः परपीडात्मकेषु च ॥ ७३ ॥ मनस्तद्रक्षतां देव भूयो भूयो जनार्दन ॥ मा भून्मनसि कालुष्यं मनो मे निर्मलं भवेत् ॥ ७४ ॥ कलुषं तस्य यच्चित्तं नरके पातयत्यमुम् ॥ बाह्यानि निर्मलान्येवमिन्द्रियाणि भवन्त्युत ॥ ७५ ॥

मन मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ७० ॥ जल, पृथ्वी, सूर्य, वायु, आकाश दुःखोंसे मेरी रक्षा करे. सूर्यके समान तेजस्वी ! आपको नमस्कार है ॥७१॥ हे जनार्दन ! वायु और आकाश दुःखसे मेरी रक्षा करें. हे देव ! मेरा मन विषयोंमें नहीं लगे. ऐसो मेरी रक्षा करो ॥ ७२ ॥ मनके विपर्यय होनेसे पुरुषोंका नाश होता है, और यही मन मनुष्योंको पापोंमें और परपीडामें युक्त करता है ॥ ७३ ॥ इस कारण हे देव ! वारंवार मेरे मनकी रक्षा करो. मेरे मनमें कालिस मत रहो और मेरा मन निर्मल हो जाय ॥ ७४ ॥ जिसका चित्त

कालिससे संयुक्त होता है. वह नरकमें वास करता है. और बाह्यइन्द्रियें तो निर्मल होतीही हैं ॥ ७५ ॥ परन्तु जिसका मन कालिससे संयुक्त होता है, तहां यह इन्द्रियें कुछ कार्य नहीं कर सकतीं, जिसकी बुद्धिमें अपवित्र वस्तु है उसकी अंग शुद्धि क्या करेंगे ॥७६॥ हे केशव ! उसके बाहरसे स्नान करनेसे क्या है ! उसका बाह्यगोचर स्नान व्यर्थ है ॥७७॥ इस कारण हे जनार्दन ! सब प्रकार मेरे चित्तकी तुम रक्षा करो.हे देव ! यह इन्द्रियोंका समूह बलवान् है,इसके विषयोंकोभी निवारणकरो ।७८॥ हे जगन्नाथ ! परवादसे वाणीकी रक्षा करो. और हे जनार्दन ! पराये

न तानि कार्यवन्तीह मनश्चेत्कलुषं भवेत ॥ नाङ्गानि मुष्टिना मेध्यं गृहीत्वा यो व्यवस्थितः ॥७६॥ बहिः प्रक्षालनं कुर्वन् किं भवेत्तस्य केशवः ॥ व्यर्थो हि केवलं तस्य प्रग्रहो बाह्यगोचरः ॥ ७७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चित्तं रक्ष जनार्दन ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो वारयैनं जनार्दन ॥७८॥ परीवादाज्जगन्नाथ वाचं रक्ष दुरुद्धहाम् ॥ परद्रव्यान्मनो रक्ष परदाराज्जनार्दन ॥ सर्वत्र मे दया भूयात्प्रसादात्तव केशव ॥७९॥ त्वय्येव भक्तिरचला भूयाद्भूतेषु मे दया ॥ बहुनात्र किमुक्तेन शृणुष्वेदं वचो मम ॥८०॥ सुखे दुःखे च रागे च भोजने गमने तथा ॥ जाग्रत्स्वप्नेषु सर्वत्र त्वय्येव रमतां मनः ॥ ८१ ॥ मामकं देवदेवेश नमस्तेऽस्तु जनार्दन ॥ इति श्रुवन्घोरतमो जात्या हीनो च चिन्तितः ॥ ८२ ॥ पिशाचो भगवद्भक्तः समाधिं समपद्यत ॥ दृढं बद्ध्वात्मनः काममान्त्रपाशेन मांसपः ॥८३॥ निश्चलेनैव मनसा सुखमास्ते स्म संयतः॥ ध्यायन् हरिं जगद्योनिं विष्णुं पीताम्बरं शिवम्॥८४॥

द्रव्यसे और पराई स्त्रीसे मेरी रक्षा करो. हे केशव ! तुम्हारे प्रसादसे सब जगह दया ॥ ७९ ॥ तुममें अचलरूप भक्ति रहे. और बहुतकहनेसे क्या है ? हे भगवन्!तुम मेरे एक वचनको सुनो॥८०॥सुख, दुःख,प्रीति, भोजन, गमन,जागने और सोने,इन सबमें मेरा मन तुममेंही लगा रहे॥८१॥ और हे जनार्दन देवदेवेश ! आपको नमस्कार है ऐसा कह घोरतम जातिहीन विचार छोड ॥८२॥ वह पिशाच भगवत्का भक्त होकर समाधिको प्राप्त हुआ अर्थात् आतोंकी फांसीसे अपने शरीरको दृढ बांध ॥ ८३ ॥ निश्चलरूप मन करके सुखपूर्वक बैठा हुआ हरिजगद्योनि विष्णु पीतांबर

शिव ॥ ८४ ॥ मुकुंद आदिपुरुष एककार्य अनामय नित्यशुद्ध, ज्ञानगम्य, सब प्राणियोंके कारण ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्णका ध्यान करता हुआ और ओंकाररूप सनातन वेदको पढता हुआ. नासिकाके अग्रभागको देखता हुआ निर्वाण दीपके समान अचल हो ओंकार उच्चारण करता॥८६॥निरंतर एकाग्र चित्तको विष्णुमें समर्पित करके॥८७॥विकल्पसे रहित चित्तको हृदयके मध्यमें प्राप्त कर कमलरूप हृदयमें जगतपति विष्णुको स्थापन कर ॥८८॥ और तीन प्रकारसे सनातन विष्णुको जपता हुआ मांसभक्षी पिशाच सुखपूर्वक महायोगी होकर स्थित हुआ ॥८९॥ इति श्रीम-

मुकुन्दमादिपुरुषमेकाकारमनामयम् ॥ नित्यं शुद्धं ज्ञानगम्यं कारणं सर्वदेहिनाम् ॥ ८५ ॥ नासिकाग्रं समालोक्य पठन् ब्रह्म सनातनम् ॥ निर्वातस्थो यथा दीपः प्रोच्चरन् प्रणवं सदा ॥८६॥ प्रणवं वाचकं मत्वा वाच्यं ब्रह्मेति निश्चितः ॥ एकाग्रं सततं कृत्वा चित्तं विष्णौ समर्पितम् ॥८७॥ विकल्परहितं चित्तं हृदि मध्ये न्यवेशयत् ॥ पुण्डरीके शुभदले समावेश्य जगत्पतिम् ॥८८॥ आस्ते सुखं महायोगी पिशिताशस्तदा महान् ॥ त्रिधामानं जपंस्तत्र स्मरन्विष्णुं सनातनम् ॥८९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णचित्तसमाधिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान् विष्णुः पिशाचं दृष्टवांस्तदा ॥ चिन्तयन्तं स्वमात्मानं शुद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥१॥ आत्मन्यवस्थितं साक्षात्पठन्तं प्रणवं सकृत् ॥ प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः ॥२॥ अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः ॥ ३ ॥

हाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णसमाधिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ वैशम्पायन बोले; इस प्रकार भगवान् विष्णुने पिशाचको देखा कि अपने आत्माको चिन्तवन करता, शुद्ध और बुद्धिसे युक्त॥१॥आत्मामें स्थित अकेलें ओंकारको पढता और अपने आत्मासे प्रार्थना करनेवाला था, उसे देख हरि ॥ २ ॥ जगन्नाथ उसके पुण्यसंचयका कारण विचारने लगे और चिरकालमें ध्यान कर ॥३॥ कि

कुबेरके उपदेशसे यह पृथ्वीमें यह शब्द पढता है मुझे पृथ्वीमें वासुदेव, कृष्ण, माधव नामसे पुकारते हैं ॥४॥ जनार्दन, हारि, विष्णु, भूतभावन; भावन, नरकारि, जगन्नाथ, नारायण, परायण॥५॥इन नामोंसे दिनरात सोता हुआ,जागता हुआ, स्थित हुआ, भोजन करता हुआ, ममन करता हुआ और कहता हुआ ॥६॥ मेरा जप करता है और मांसकी बोटीको खाता हुआ, लोहूको पीता हुआ और बहुतसे मृगोंको मारता हुआ॥७॥ मारनेमें, भोजन करनेमें, जागने सोनेमें सब कार्योंमें मही करता हूं. ऐसे मानता है ॥८॥ सो इस घोर कर्मका पाक यही है, इस प्रकार निश्चय

धनदस्योपदेशेन पठन्सुबहुशः क्षितौ ॥ वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां सदा ॥४॥ जनार्दन हरे विष्णो भूतभावन भावन ॥ नमस्कारि जगन्नाथ नारायण परायण ॥५॥ इति मां नामभिर्नित्यं पठत्येव दिवानिशम् ॥ स्वपन् जाग्रंस्तथा तिष्ठन् भुञ्जन् गच्छंस्तथा वदन् ॥६॥ भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा ॥ बाधमानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥७॥ हनने भोजने चैष जाग्रत्स्वप्ने तथैव च ॥ सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्त्ताहमिति मन्यते ॥८॥ एतस्य कर्मणः पाक एष घोरस्य कर्मणः ॥ निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥ ९ ॥ अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्यस्य जगत्पतिः ॥ शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥१०॥ स च घोरः पिशाचोऽपि ददर्शात्मनि केशवम् ॥ पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम् ॥११॥ शङ्खिनं चक्रिणं विष्णुं स्रग्विणं गदिनं विभुम् ॥ किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ १२ ॥ नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम् ॥ चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥ १३ ॥

कर जगन्नाथ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर ॥९॥ अपने स्वरूपको दिखाते हुए. हे राजन् ! उस पिशाचका अंतःकरण शुद्ध हो गया था. इससे दर्शन पाया ॥ १० ॥ जब वह घोररूप पिशाच अपनेही आत्मामें पीले रेशमी वस्त्रोंको धारण करनेवाले कमलके समान नेत्रोंवाले और श्याम रंगवाले ॥ ११ ॥ शंख, चक्र, गदा, माला, मुकुट, कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले और श्रीवत्सचिह्नसे आच्छादित छातीवाले ॥ १२ ॥ नीलमेघके समान कांतिमान्,प्रकाशित और गरुडपर स्थित और चार भुजावाले सुंदर वाणीवाले और निश्चल सर्वगत और कल्याणरूप ॥ १३ ॥ आदि-

अंतरहित नित्य और मायावी, मायासे रहित सत्यरूप, सब कालमें शुद्ध और बुद्धिमें प्राप्त होनेके योग्य और सब कालमें मलसे रहित। । १४ ॥ श्रीकृष्णको अनेक प्रकारसे मनमें देखकर फिर नेत्रोंको बंदकर मैं कृतार्थ हुआ. ऐसा मानता हुआ ॥ १५ ॥ और कहने लगा कि अब साक्षात् विष्णुको मन देखा और विष्णु मुझसे प्रसन्न हैं, इस कारण मुझे विष्णुके दर्शन हुए हैं॥१६॥और मेरे जन्मका कृत्य सिद्ध हुआ. इसके उपरान्त मेरे कोईभी कृत्य नहीं है मेरे हृदयकी ग्रन्थी छूट गई है, वशमें मेरी इन्द्रियें वशी हो गई हैं ॥१७॥ और विशेष करके मैंने मनभी जीत लिया है,

अनादिनिधनं नित्यं मायाविनममायिनम् ॥ सत्ययुक्तं सदा शुद्धं बुद्धिगम्यं सदामलम् ॥ १४ ॥ मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा ॥ अनुमील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत ॥ १५ ॥ अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात्सर्वत्रगः शुभः ॥ प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान्हरिम् ॥१६॥ सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे ॥ ग्रन्थयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे॥१७॥ प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ ॥ ईषणा च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाभवम्॥१८॥ एतेभ्योऽपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः साम्प्रतं तथा ॥ योऽसौ ममानुजः साक्षात्स च भक्तस्तथा हरौ॥१९॥कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ इत्येवंचिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च ॥२०॥ क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा ॥ शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत्स सुखेन ह ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पिशाचस्य विष्णुसाक्षात्कारो नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पिशिताशो जगन्नाथं ददर्शाथ जगद्गुरुम्॥समाधौ च यथादृष्टं भूमौ चापि तथा हरिम् ॥१॥

और मेरी इच्छा दूर हो गई है, और मैं प्रसन्न हो गया हूं॥१८॥और इन पिशाचोंसेभी मैं अलग हो गया हूं और जो मेरा छोटाभ्राता है,वहभी मेरे समान विष्णु भगवान्‌का भक्त है॥१९॥और समय पाकर निर्मुक्त हुआ मैं विष्णुके समीप प्राप्त हूंगा, ऐसा विचार कर आंत्रपाशको भेदन कर ॥२०॥ क्रमसे अपने प्राणोंको छोड और सब दिशाओंको देख और शरीरको समरूप कर सुखसे संयुक्त हुआ ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णस्य विष्णुसाक्षात्कारो नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥ वैशम्पायन बोले;कि जैसे

उग्र पिशाचने समाधिमें श्रीकृष्णको देखा.तैसेही पृथ्वीमें भी स्थित हुए श्रीकृष्णको देखा ॥१॥ "यह विष्णु है, यह विष्णु है" इस प्रकार वह पिशाच कहने लगा,जैसा समाधिमें देखा था वैसा प्रत्यक्ष देखता हूं इस प्रकार कह नाचता और हँसता हुआ फिर बोला ॥ २ ॥ कि चक्र शर शार्ङ्ग धनुष ध्वजा गदा रथ तूणयुक्त शस्त्रोंको हाथमें धारण किये,सहस्रशिरोंवाले और सब देवताओंके स्वामी जगत्के निवास विष्णु भगवान् यही हैं ॥ ३ ॥ सबोंको जीतनेवाले, जगत्के स्वामी पुरातन पुरुषोंमें उत्तम, विश्वके ईश और विश्वके कर्त्ता सनातन विष्णु यही हैं॥४॥इन्हीं विष्णुके दोनों स्तनोंके

अयं विष्णुरयं विष्णुरित्यूचे पिशिताशनः ॥ समाधौ च यथा दृष्टः सोऽयमत्रापि दृश्यते ॥ इत्युक्त्वा च पुनर्ब्रूते नृत्यन्निव हसन्निव ॥२॥ अयं स चक्री शरशार्ङ्गधन्वा गदी रथी सध्वजतूणपाणिः ॥ सहस्रमूर्द्धा सकलामरेशे जगत्प्रसूतिर्जगतां निवासः ॥ ३ ॥विंष्णुर्जिष्णुर्जगन्नाथः पुराणः पुरुषोत्तमः॥विश्वात्मा विश्वकर्ता यः सोऽयमेष सनातनः॥४॥अस्यैव देवस्य हरेः स्तनान्तरे विराजते कौस्तुभरत्नदीपः ॥ यस्य प्रसादाज्जगदेतदादौ विराजते चन्द्रमसेव रात्रिः ॥५॥ योऽसौ पृथ्वीं दधाराशु दंष्ट्रया जलसंचयात् ॥ योऽयमेव हरिः साक्षाद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ६ ॥ बद्ध्वा तथा दानवमुग्रपौरुषं ददौ च शक्राय ततोऽनु राज्यम् ॥ बलिं बलादेष हरिः स वामनः स्तुतश्च भक्त्या मुनिभिः पुरातनैः ॥ ७ ॥ दंष्ट्राकरालः सुमहान् हत्वा यो दानवान्रणे ॥ निःशोकमखिलं लोकं चकारासौ जनार्दनः ॥ ८ ॥ आदौ दधारैकभुजेन मन्दरं निर्जित्य सर्वानसुरान्महार्णवे ॥ ददौ च शक्राय सुधामयं महान् स एष साक्षादिह मामवस्थितः ॥ ९ ॥

बीचमें कौस्तुभमणि विराजमान है, जिसमें चन्द्रमाके समान रात्रि प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ जिन्होंने जलके समूहसे पृथ्वीको अपनी डाढपर रखकर बाहर निकाला था.वह साक्षात् वाराहरूपको धारण करनेवाले विष्णु यही हैं ॥ ६ ॥ इन्हीं भगवान्‌ने उग्र पौरुषवाले बलि दैत्यको बांधकर इन्द्रके अर्थ उनका राज्य दिया. उस समय पुरातन मुनियोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए बली विष्णु यही हैं ॥ ७ ॥ जो बडी डाढोंवाले कराल बडे रूपको धारण करनेवाले युद्धमें दैत्योंको मार शोकसे रहित इसलोकको करते हुए वह विष्णु यही हैं ॥ ८ ॥ जो आदिमें एकभुजासेही मंदराचल पर्वतको

धारण कर समुद्रके सब दैत्योंको जीत इन्द्रको अमृत देते हुए वह विष्णु यही स्थित हैं ॥ ९ ॥ मधुकैटभ दैत्यको वधकर समुद्रमें शेषनागरूप शय्यापर शयन करते हैं ॥१०॥ जिसको विद्वान् आद्य जगतपति सबका धाता अजन्मा अन्योंको जीतनेवाला सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थल कहते हैं, वह विष्णु यही हैं ॥११॥ और संहार कालमें यह जगत् जिसमें स्थित होता है, और आदिमें जिससे उत्पन्न होता है वह विष्णु यही हैं ॥ १२ ॥ और जिसकी इच्छासे यह जगत् प्रवृत्त और निवृत्त हो जाता है,सो पुरुषोत्तम शिव यादवेश्वर विष्णु यही मेरे समीप स्थित हैं॥१३॥ जो भृगुवं-

यः शेते जलधौ नागे देव्या लक्ष्म्या सुखावहे ॥ हत्वा तौ दानवौ घोरौ मधुकैटभसंज्ञितौ ॥१०॥ यमाहुराद्यं विबुधा जगत्पतिं सर्वस्य धातारमजं जनित्रम् ॥ अणोरणीयांसमतिप्रमाणं स्थूलात्स्थविष्ठं हरिमेव विष्णुम् ॥ ११ ॥ यत्र स्थितमिदं सर्वं प्राप्ते लोकस्य नाशने ॥ आदौ यस्यात्समुत्पन्नं सोऽयं विष्णुरिति स्थितः ॥१२॥ यस्येच्छया सर्वमिदं प्रवृत्तं प्रवर्तते चापि जनार्द-नस्य ॥ अयं स विष्णुः पुरुषोत्तमः शिवः प्रवर्तते मामिह यादवेश्वरः ॥१३॥ भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्य इति श्रुतः ॥ शिष्यत्वं समवाप्यैव मृगव्याधस्य यः स्थितः ॥१४॥ जघान वीर्याद्बलिनं महारणे कुठारशस्त्रेण गिरीशशिष्यः ॥ सहस्रबाहुं कृतवीर्यसंभवं हयैर्गजैश्चैव रथैश्च निर्गतम् ॥१५॥ कुरुक्षेत्रं समासाद्य यश्चकार पितृक्रियाम् ॥ निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः ॥१६॥ रघोरथ कुले जातो रामो नाम जनार्दनः ॥ सीतया च श्रिया युक्तो लक्ष्मणानुचरः कृती ॥१७॥ कृत्वा च सेतुं जलधौ जनार्दनो हत्वा च रक्षःपतिमाशुगैः शरैः ॥ दत्त्वा च राज्यं स विभीषणाय दशाश्वमेधैरयजच्च योऽसौ ॥ १८ ॥

शमें जमदग्निके पुत्र परशुरामनामसे उत्पन्नहो जो मृगव्याधके शिष्यत्वको प्राप्तहो अर्थात्॥१४॥महादेवजीके शिष्य होकर युद्धमें फरसा ले महाबली कृतवीर्यके पुत्र,घोडे,हाथी,रथमें बैठनेवाले सहस्रबाहुको मारतेहुए ॥ १५ ॥ पीछेइक्कीसवार क्षत्रियोंसे रहित इस लोकको कर कुरुक्षेत्रमें प्राप्त हो पितृक्रिया की वह विष्णु यही हैं ॥१६॥ जो रघुवंशमें उत्पन्न हो सीता और शोभासे संयुक्त अनुगामी,लक्ष्मण भ्रातासे संयुक्त विद्वान्॥१७॥ रामचंद्र समुद्रमें सेतुको बनाय और तीक्ष्ण बाणोंसे रावणको मार और बिभीषणको राज्य दे पीछे दश अश्वमेधयज्ञ करते हुए,वह विष्णुभी यही हैं ॥ १८ ॥

और वसुदेवके कुलमें जन्म लेनेवाले वासुदेव नामसे विख्यात जो बलदेवजीके संग गोकुलमें क्रीडा करते थे॥ १९॥सीधे शयन करते बालकरूप धारण करनेवाले श्रीकृष्ण पूतनाके दिये हुए स्तनको पी पूतनाको मारकरफिर सुखपूर्वक वास करते हुए॥२०॥दूधके पीने और नैनीघृतके खानेसे क्रोधको प्राप्त हुई माताने रस्सीसे इन विष्णुको बांध दिया॥२१॥ तब दृढरूप रस्सीसे बंधे हुए यमलार्जुन वृक्षोंको गिराया और गोकुलमें वास कर गोपियोंके संग मुख और स्तनको आच्छादित कर क्रिडा करी ॥ २२ ॥ विष्णु भगवान् वृन्दावनमें गोकुलवासियोंके साथनिवास करते केशीनामक अश्व (घोडे) को

वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दितः ॥ गोकुले क्रीडते योऽसौ संकर्षणसहायवान् ॥ १९ ॥ उत्तानशायी शिशुरूपधारी पीत्वा स्तनं पूतनिकाप्रदत्तम् ॥ व्यसुं चकाराशु जनार्दनस्तदा दनोः सुतां तामवसत्सुखं हरिः ॥२०॥ पयः पानं तथा कुर्वन् भक्षयन्दधिपिण्डकम् ॥ दाम्ना बद्धोदरो विष्णुर्मात्रा रुषितया दृढम् ॥२१॥ततश्च दाम्ना सुदृढेन बद्धो जघान योऽसौ यमलार्जुनौ च ॥ क्रीडन्हरिर्गोकुलवासवासी गोपीभिरास्वाद्य मुखं स्तनं च॥२२॥वृन्दावने वसन्विष्णुर्गोपैर्गोकुलवासिभिः॥ तत्र हत्वा हयं राजन् विरराजांशुमानिव ॥२३॥ यः क्रीडते नागफणौ जनार्दनो निषेव्यमाणः सह गोपदारकैः॥ महाह्रदे नागपतिं जगत्पतिर्ममर्द वीर्यातिशयं प्रदर्शयन् ॥२४॥ यो धेनुकं तालवने तत्फलैः सममच्छिनत् ॥ हत्वा दानवमुग्रं तं गोपान्विस्मापयत्यसौ ॥२५॥ दधार यो गोधरमुग्रपौरुषान्महामतिर्मेघसमागमे सति ॥ विडम्बयञ्छक्रबलं प्रमोदयन् गोपांश्च गोपीश्च स गोकुलं हरिः ॥ २६ ॥ गोपीनां स्तनमध्ये तु क्रीडते काममीश्वरः ॥ योऽसौ पिबंस्तदधरं मायामानुषदेहवान् ॥ २७ ॥

मार सूर्यके समान प्रकाशित हुए ॥२३॥ गोपोंके बालकोंके संग यमुनामें कालियसर्पके फनोंपर क्रीडा करी और वीर्यके अतिशयको दिखानेके लिये कालियसर्पको जगन्नाथने नाथा॥२४॥और तालवनमें उग्ररूपधेनुक दानवको तिसी वनके फलोंसे मार गोपोंको आश्चर्य दिखाया॥२५॥जब इन्द्रने क्रोधकर व्रजपर जल वरसाया. तब श्रीकृष्णने उनकी रक्षा की. और गोप गोपी गोकुलको आनंदित किया और उग्ररूप गोवर्द्धन पर्वतको धारण किया ॥ २६ ॥ और मायासे मनुष्यदेहको धारण करनेवाले गोपियोंके अधरामृतको पीनेवाले तथा गोपियोंके स्तनोंमें इच्छापूर्वक क्रीडा करने-

वाले ॥२७॥ तथा गोपियोंके अधरामृतका पानकर उनके संग एकान्तस्थानमें शयन करनेवाले उनके स्तनोंके आलिंगनसे प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ अक्रूरके संग बुलाये हुए मार्गमें चलनेके समय अक्रूरने यमुनाके जलमें जो ईश्वर देखे वही रथमें देखे ॥ २९ ॥ मथुरापुरीम चलते हुए बलवान् जनार्दन मार्गमें अपने बलसे उग्ररूप रजक (धोबी) को मारकर वह ईश्वर मनोवाछित वस्त्रोंको ग्रहण कर बलदेवजीके संग मथुरापुरीमें विचरे ॥ ३० ॥ और मालाकारकी बहुतसी मालाओंको ग्रहण कर तिसको वरदान दे कुब्जासे सुंदर अनुलेपन ग्रहणकर उसको सुंदर रूपवाली बनादिया ॥ ३१ ॥

गोपीभिरास्वाद्यमुखं विविक्ते शेते स्म रात्रौ सुखमेव केशवः ॥ स्तनान्तरेष्वेव तदा च तासां कामी च कान्ताधरपल्लवं पिबन् ॥२८॥ अक्रूरेण समाहूतस्तेन गच्छन् हि यामुने ॥ जले यो ह्यर्चितस्तेन नागलोके स एव हि ॥ २९ ॥ ततश्च गच्छन्बलवान् जनार्दनो हत्वा तमुग्रं रजकं बलात्पथि ॥ हृत्वा च वस्त्राणि यथेष्टमीश्वरो ययौ सरामो मथुरां पुरीं हरिः ॥ ३० ॥ लब्ध्वा च दामानि बहूनि कामदो दत्त्वा वरं माल्यकृते महान्तम् ॥ लब्ध्वानुलेपं सुरभि च यादवः कुब्जां चकाराशु महार्हरूपाम् ॥ ३१ ॥ योऽसौ चापं समादाय मध्ये च्छित्त्वा महद्धनुः॥सिंहनादं महांश्चक्रे कल्पान्ते जलदो यथा॥३२॥हत्वा गजं घोरमुदग्ररूपं विषाणमादाय ततोऽनु केशवः॥ ननर्त रङ्गे बहुरूपमीश्वरःकंसस्य दत्त्वा भयमुग्रवीर्यः॥३३॥ योऽसौ हत्वा महामल्लं चाणूरं निहतद्विषम् ॥ यादवेभ्यो ददौ प्रीतिं कंसस्यैव तु पश्यतः॥३४॥ जघान कंसं रिपुपक्षघातिनं पितृद्विषं यादवनामधेयम् ॥ संस्थाप्य राज्ये हरिरुग्रसेनं सान्दीपिनं काश्यमुपागतो यः ॥ ३५ ॥ विद्यामवाप्य सकलां दत्त्वा पुत्र महामुनेः ॥ साग्रजोऽथ जगामाशु मथुरां यादवीं पुरीम् ॥ ३६ ॥

इसके उपरान्त रंगसमाजमें जाकर धनुषको ग्रहण कर बीचसे तोड सिंहके शब्दके समान शब्द कर कि जिस प्रकार कल्पके अंतमें मेघोंका शब्द होता है॥३२॥फिर उदग्र रूपवाले कुवलयापीड हाथीको मार तिसके दांतोंको ग्रहण कर रंगसमाजमें विचरते हुए केशवने कंसको अति भय दिखाया॥३३॥ फिर कंसके देखते हुए महामल्ल चाणूरको मारकर यादवोंको प्रसन्न किया ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे शत्रुके पक्षको मारनेवाले पिताके वैरी कंसको मार उग्रसेन राजाको राज्यपर स्थित कर सांदीपिनी नामक गुरुके समीप प्राप्त हुए॥३५॥तहां संपूर्ण विद्याको प्राप्त हो दक्षिणामें गुरुको पुत्रका दान दे

बलदेवजीके संग श्रीकृष्ण मथुरामें प्राप्त हुए॥३६॥ और निशुंभ नरकासुर दैत्यको मारकर और दैत्योंको पीडा देकर संग्राम कर ब्राह्मण मुनियोंके समूह देवतोंकी जगतपतिने रक्षा की॥३७॥ ऐसे विष्णु भगवान्‌को अब मैंने देखा है सो कृतकृत्य हुआ और मैं मोक्षको प्राप्त हूंगा॥३८॥कारण कि जिसने साक्षात् विष्णुको देख लिया, उसके हाथमें मुक्ति स्थित है. वह यह विष्णु मेरे सन्मुख स्थित है॥३९॥निश्चयही मैंने पूर्वजन्ममें बहुत धर्मका संचित किया जिससे यह विष्णु भगवान्‌का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है॥४०॥सर्वथा मैं पुण्यवान् हूं मेरे संसारके बंधन नष्ट हो गये. और क्या

हत्वा निशुम्भं नरकं महामतिः कृत्वा सुघोरं कदनं जनार्दनः ॥ ररक्ष विप्रान्मुनिवीरसंघान्देवांश्च सर्वान् जगतो जगत्पतिः ॥३७॥ स एष भगवान्विष्णुरद्य दृष्टो जनार्दनः ॥ कृतकृत्योऽस्मि संजातः सायुज्यं प्राप्तवानहम् ॥ ३८ ॥ येन दृष्टो हरिः साक्षात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥ सोऽयमेष हरिः साक्षात्प्रत्यक्षमिह वर्तते ॥ ३९ ॥ नूनं जन्मान्तरे पूर्वं धर्मः संचित एव मे ॥ यस्य पाकः समुत्पन्नो येनासौ दृश्यते मया ॥४०॥ सर्वथा पुण्यवानस्मि नष्टसंसारबन्धनः ॥ किमस्मै दीयते वस्तु किं नु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ करिष्ये किमहं विष्णो वदस्वाद्य यथेप्सितम् ॥४१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा विस्तरं नादं ननर्द बहुशस्तदा ॥ जहास विकृतं भूयो ननर्त पिशिताशनः ॥ ४२ ॥ नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव ॥ प्रत्यक्षं च हरेस्तत्र ननर्त विविधं नृप ॥४३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णस्तुतिर्नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वस्तु मैं इनको दूं? क्या कहूं ?॥४१॥ हे विष्णो ! मैं अब क्या करूं ? जो अब वांछित हो सो कहो ॥ ४२ ॥ वैशंपायनजी बोले कि; इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहकर वह पिशाच फिर बडे वेगसे गर्जकर नाचने लगा ॥ ४३ ॥ हे हरे ! हे केशव ! हे कृष्ण ! हे यादवेश्वर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है. ऐसे कहता हुआ श्रीकृष्णके सन्मुख नानाप्रकारसे नाचने लगा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णकृतस्तुतिर्नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वैशंपायन बोले कि; इस प्रकार वह पिशाच वारंवार हँसकर फिर मरे हुए ब्राह्मणके शरीरको लाकर ॥ १ ॥ उसके दो भागकर उस महाघोर बाल-युक्तको ले पानीसे शुद्धकर ॥ २ ॥ सुंदर पात्रमें धर श्रीकृष्णको नमस्कार कर अञ्जलि बांध नम्र हो देवेशसे इस प्रकार कहने लगा ॥ ३ ॥ हे जगन्नाथ ! हे प्रभो ! तुम्हारे योग्य यह भक्ष्य पदार्थ है. इसको ग्रहण कीजिये और हे हरे ! तुम्हारे सरीखोंको यह पदार्थ सब प्रकारसे ग्रहण करना चाहिये आप सर्वात्मा हो ॥४॥ हे विष्णो ! हम भक्तिसे नम्र हैं. इसमें विचार नहीं करना चाहिये. जो भक्तिनम्र पुरुष है, वह स्वामीको ग्रहण

वैशम्पायन उवाच ॥ विहस्य विकृतं भूयः प्रनृत्य च यथाबलम् ॥ ब्राह्मणस्य हतस्याथ शवमादाय सत्वरः ॥ १ ॥ द्विधाकृत्य महाघोरं पिशितं केशशाड्वलम् ॥ ततः खण्डं समादाय अदद्भिरभ्युक्ष्य यत्नतः ॥२॥ विधाय पात्रे सुशुभे नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ इदं प्रोवाच देवशं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥३॥ गृहाण मे जन्नाथ भक्ष्यं योग्यं तव प्रभो ॥ भवादृशैर्जगन्नाथ ग्राह्यं सर्वात्मना हरे ॥ ४ ॥ भक्तिनम्रा वयं विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥ दत्तं यद्भक्तिनम्रेण ग्राह्यं तत्स्वामिना हरे ॥ ५ ॥ नवं सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् अस्माकं पिशिताशानां शास्त्रे नियतमेव हि ॥ ६ ॥ तस्माद्गृहाण भगवन्यदि दोषो न विद्यते ॥ इत्युक्त्वा विकृतं भूयो विहस्य स तु कामतः ॥ ७ ॥ दातुमैच्छत्तदा खण्डमस्पृश्यं तु शवस्य ह ॥ ततः प्रीतोऽभवत्तस्मै मनसापूजयच्च तम् ॥ ८ ॥ अहोऽस्य स्नेहकारुण्यं मयि सर्वत्र वर्त्तते ॥ इति संचिन्त्य मनसा प्रोवाच यदुपुङ्गवः ॥ ९ ॥

करना उचित है ॥५॥ नवीन अच्छी प्रकार संस्कारित किया ब्राह्मणका शरीररूप मुरदा भक्ष्य हमारे शास्त्रमें उत्तम कहा है ॥६॥ इस कारण हे भगवन् ! जो दोष नहीं हो तो आप ग्रहण कीजिये. इस प्रकार वारंवार विकृत कहकर और हँसकर ॥ ७ ॥ नहीं स्पर्श करनेके योग्य उस मुरदेके टुकडेको श्रीकृष्णके लिये देनेकी इच्छा करने लगा. तब तिस पिशाचके अर्थ प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण तिसको मनसे पूजते हुए ॥ ८ ॥ कहने लगे कि, आश्चर्य है ! इसका स्नेह मेरे विषे सब स्थानोंमें है, इस प्रकार मनमें चिंतवन करके श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ९ ॥

हे पिशाच ! इसको मुझे मत दो, मुझ सरीखे मनुष्य ब्राह्मणके शवका स्पर्श नहीं करते ॥१०॥ कारण कि धर्मकी आकांक्षावाले सब मनुष्योंको सब कालमें ब्राह्मण पूजने योग्य है,और घोरकर्मवाले पिशाच ब्राह्मणके मारनेमें यत्न करते हैं ॥११॥ किसी कालमेंभी ब्राह्मण मारनेके योग्य नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणके मारनेसे निश्चय नरक होता है, इस कारण हमको यह मुरदा स्पर्श करना योग्य नहीं है, इसमें संशय नहीं करना ॥ १२ ॥ परन्तु तेरा कल्याण हो. मैं तेरी प्रीतिसे प्रसन्न हुआ, और जिस भक्तिसे तेरा मन निर्मल हुआ. और जिसका मन शुद्धिको प्राप्त हो, तिसपर मैं प्रसन्न हो जाता हूं ॥१३॥ और इस कीर्त्तनसे निरंतर तेरा अंतःकरण शुद्ध प्रतीत होता है, सो मैं तुझसे अतिप्रसन्न हूं, ऐसे कहकर भगवान्

अलमेतेन सर्वत्र पिशाच पिशिताशन ॥ अस्पृश्यं मादृशैरेतद्ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् ॥ १० ॥ ब्राह्मणः सर्वथा पूज्यो जन्तुभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः॥ पिशाचा घोरकर्माणो यतन्ते ब्रह्महिंसने॥११॥ न हन्तव्याः सदा विप्रास्तद्धिंसा नरकावहा ॥ तस्मादस्पृश्यमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ १२ ॥ भक्त्या प्रीतोऽस्मि भद्रं ते मनोनिर्मलता मया ॥ मनःशुद्धिं यदा यत्नं ततः प्रीतोऽस्मि मांसप ॥१३॥अस्मात्संकीर्त्तनाच्छश्वच्छुद्धं हि करणं तव ॥ अतीव मनसा प्रीत इत्युत्युक्त्वा भगवान् हरिः ॥१४॥ पस्पर्शाङ्गं तदा विष्णुः पिशाचस्याथ सर्वतः ॥ करेण मृदुना देवः पापान्निर्मोचयद्धरिः ॥ १५ ॥ ततस्तस्याभवद्रूपं कामरूपसमप्रभम् ॥ दीर्घकुञ्चितकेशाढ्यो दीर्घबाहुः सुलोचनः ॥ १६ ॥ समाङ्गुलिः समनखः समवक्त्रः समुन्नसः ॥ पद्माक्षः पद्मवर्णाभः पद्मकेसरभूषणः ॥ १७ ॥ केयूरी चाङ्गदी चैव कौशेयवसनस्तदा ॥ ज्ञानवान्सत्त्वसंपन्नः साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ १८ ॥

हरि ॥१४॥ श्रीकृष्ण उस पिशाचके सब अङ्गोंको चारों ओरसे कोमल हाथसे स्पर्श करते हुए और पापोंसे उस पिशाचको छुडाते हुए ॥१५॥ तब उसका रूप कामदेवके समान कांतिमान् लम्बे केशोंवाला लम्बी भुजाओंवाला और सुंदर नेत्रोंवाला ॥ १६ ॥ समान अंगुलियोंवाला, समान नखोंवाला और समान मुख सम्यक् प्रकारसे ऊंची नासिकावाला और कमलके समान नेत्रवाला और कमलके वर्णके समान कांति और कमलके शब्दके समान भूषित ॥ १७ ॥

और केयूर बाजूबंदको धारण करनेवाला, रेशमी कपडोंको पहने हुए, ज्ञानमाला और सत्त्वगुणोंसे संयुक्त, साक्षात् इन्द्रके समान मानो दूसरा इन्द्र ॥ १८ ॥ गंधर्वके समान गानेवाला और सिद्धके समान सिद्ध वह पिशाच होता हुआ अर्थात् श्रीकृष्णके कोमल हाथके छूनेसे ॥ १९ ॥ जैसा रूपउस पिशाचको मिला, तैसे रूपको उग्रतप करनेवाल मुनिजनभी प्राप्त नहीं हो सकते॥२०॥जो बडा घोर परमदारुण तप करके रूप प्राप्त होता है, यह उस पिशाचने पाया ॥२१॥ हे राजन् ! ऐसा कौन जन है जो श्रीकृष्णके आश्रित होकर दुःखी रहे, वह सर्वत्र कल्याणको प्राप्त होता है, जो नित्य जनार्दनको ॥२२॥नित्यप्रति ध्यान करता पढता जप करता है. तो ऐसी क्या वस्तु है,जिसकी उसे प्राप्ति नहीं हो सकती है,

गन्धर्व इव गायंस्तु सिद्धः सिद्ध इव स्वयम् ॥ साक्षात्स्पृष्टं तदा विष्णोः करेण मृदुपूर्वकम् ॥१९ ॥ न नूनं तादृशं रूपमासीत् कालान्तरेष्वपि ॥ अद्यापि नैव मुनयो लभन्ते तादृशं वपुः ॥ २० ॥ कृत्वा सुबहुशो घोरं तपः परमदारुणम् ॥ यच्च लब्धं तदा तेन पिशाचेन नृपोत्तम ॥२१॥ को नु नाम जगन्नाथमाश्रितः सीदते नृप ॥ स हि सर्वत्र कल्याणो यो हि नित्यं जनार्दनम् ॥२२॥ ध्यायन्पठन् जपन्वापि तस्य किं नास्ति भूपते ॥ ततः प्रोवाच भगवान् स्थितं काममिवापरम् ॥ २३ ॥ अक्षयः सर्ववासस्ते यावदिन्द्रो वसिष्यति ॥ तावत्स्वर्गी भवानस्तु शासनान्मम नान्यतः॥२४॥ नष्टे शक्रे ततः स्वर्गात्सायुज्यं मम गच्छतु ॥ योऽयं भ्राता तव स्वर्गी यावदिन्द्रो भवेत्तदा॥२५॥वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्त्तते॥दातास्मि सर्वं सर्वत्र नात्र कार्या विचारणा॥२६॥ घण्टाकर्ण उवाच ॥ यश्चेमं संगम देव संस्मरन्नियतात्मवान् ॥ भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन ॥२७॥ मनःशुद्धिर्भवे-त्तस्य मा भूत्कलुषता हरे ॥ कालुष्यं मनसस्तस्य मा भूदेष वरो मम ॥ २८ ॥

कामदेवके समान रूपको धारण करनेवाले पिशाचसे श्रीकृष्ण कहने लगे ॥२३॥ कि जबतक इन्द्र स्वर्गमें वास करेगा तबतक तूभी स्वर्गमें वसेगा यह मेरी आज्ञा है, इसमें अन्यथा न होगा ॥२४॥ और जब इन्द्र नष्ट हो जायगा. तब तू मेरे समीपमें प्राप्त होगा और तेरा भ्राताभी तेरे संग स्वर्गमें वास करेगा ॥ २५ ॥ तेरा कल्याण हो. जो तेरे मनमें हो सो तू मांग और मैं सब जगह सब वरोंको दूंगा, इसमें संशय नहीं ॥२६॥ घंटाकर्ण बोला; हे देव!जो निरंतर इस मेरे तुम्हारे संगमका स्मरण करे, उस मनुष्यकी तुममें अचल भक्ति हो ॥२७॥ तिसके मनकी शुद्धि रहे

और तिसके मनमें क्लेश न रहे,उसके मनमें कलुषता न हो.यही वर दो ॥२८॥ तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि ऐसेही होगा और तू स्वर्गमें गमन कर और इन्द्रका अतिथि हो जा. अर्थात् तुझे देखकर इन्द्र प्रसन्न होगा ॥२९॥ इस प्रकार कह श्रीकृष्णने उस ब्राह्मणको जो पिशाचने पहले भेंटमें दिया था जिवाया और उस ब्राह्मणसे स्तुतिको प्राप्त हो श्रीकृष्ण उस ब्राह्मणको पूजकर ॥३०॥ फिर उस देशसे उठ श्रीकृष्ण जहां अग्नि-होत्र करनेवाले सिद्ध और मुनि वास करते थे, तहां प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ और वह घंटाकर्णभी श्रीकृष्णकी आज्ञासे स्वर्गमें प्राप्त हुआ, इस कारण हे राजन् ! यदि तुम मनकी शुद्धिकी इच्छा करते हो. तो सब कालमें इस आख्यानका पाठ करो, इसके पाठ करनेसे निश्चय मन

एवमस्त्विवति देवेशः स्वर्गं गच्छेति केशवः ॥ इन्द्रातिथिर्भवानस्तु त्वां प्रतीक्ष्य हरिः स्थितः ॥२९॥ इत्युक्त्वा भगवान् कृष्ण उत्थाप्य ब्राह्मणं तदा ॥ तेन स्तुतो जगन्नाथः पूजयित्वा च तं द्विजम् ॥३०॥ ततो विसृज्य गोविन्दस्तस्माद्देशादुपागमत् ॥यत्र ते मुनयः सिद्धा अग्निहोत्रसमन्विताः ॥ ३१ ॥ स च स्वर्गी ततः स्वर्गमाज्ञया केशवस्य ह ॥ तस्मात्पठ सदा राजन् मनःशुद्धिं यदिच्छसि ॥ मनश्च शुद्धं भवति पठतस्ते जगत्पते ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि घण्टाकर्णमुक्तिप्रदानं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः ॥ कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति ॥ २ ॥ अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः ॥ ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥ ३ ॥

शुद्ध हो जाता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णमोक्षे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशंपायन बोले; तब श्रीकृष्णने पिशाचके संग जो वृत्तान्त हुआ, वह सब मुनियोंसे कहा ॥ १ ॥ तब सब मुनियोंसे सुनकर अति-आश्चर्य माना और बोले आपके दर्शनसे उस पिशाचका जन्म सफल हुआ. यह अति उत्तम हुआ ॥ २ ॥ पीछे सब मुनिजनोंसे अर्चित किये श्रीकृष्णजी अत्यन्त प्रसन्न हुए फिर प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेपर ॥ ३ ॥

॥१९६॥

गरुडपर चढ विष्णु कैलासपर्वतको गये और मुनिजनोंसे कहने लगे कि; तुमकोभी तहां गमन करना योग्य है॥४॥जहां तप करनेवाले विश्वके ईश्वर सिद्ध वास करते हैं और जहां साक्षात् कुबेर महादेवजीकी उपासना करते हैं॥५॥जहां मानससरोवर नामक हंसोंका स्थान है और जहां भृंगीऋषि शिवकी उपासना करके ॥ ६ ॥ गणोंके स्वामिभावको प्राप्त होकर महादेवजीके समीपमें विचरते हैं, और जहां सिद्ध, वराह, हाथी, गैंडा, मृग ॥ ७ ॥ यह परस्पर मित्रभावसे क्रीडा करते हैं और जहां समुद्रमें जानेवाली गंगा आदिक नदियें उत्पन्न हुई हैं ॥ ८ ॥ जहां महादेवजीने

आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययौ कैलासमुत्तमम् ॥ भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान् ॥४॥ यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः ॥ यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा ॥ ५ ॥ यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत् ॥ यत्र भृङ्गीरिटिर्देवमुपास्त शंकरं शिवम् ॥६॥ गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वचरः सदा ॥ यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह ॥७॥ क्रीडन्ति वन्यरतयः परस्परहिते रताः ॥ यत्र नद्यः समुत्पन्ना गंगाद्याः सागरंगमाः ॥८॥ यत्र विश्वेश्वरः शम्भुरच्छिनद्ब्रह्मणः शिरः ॥ यत्रोत्पन्ना महावेत्रा भूतानां दण्डतां ययुः ॥९॥ उमया यत्र सहितः शंकरो नीललोहितः ॥ ऋषिभिः प्रार्थितः पूर्वं ददौ यत्र गिरिः सुताम्॥१०॥ शंकराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते ॥ यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनैः ॥११॥ पुष्करैः शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम्॥ गुहां यत्र समाश्रित्य क्रीडन्ते सिद्धकिन्नराः ॥ १२ ॥ प्रियाभिः सह मोदन्ते पिबन्ते मधु चोत्तमम् ॥ यमुद्धृत्य भुजैः सर्वैः पौलस्त्यो विरराम ह ॥१३॥ तमारुह्य महाशैलं देवकीनन्दनो हरिः ॥ मासनस्योत्तर तीरं जगाम यदुनन्दनः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजीके पंचम शिरको छेदन किया था और जहां उत्पन्न हुए बडे बडे वेत्र प्राणियोंकी दण्डताको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ और जहां पार्वतीके संग नीललोहित महादेवजी वास करते हैं, और जहां ऋषियोंकी प्रार्थनासे हिमाचलने जगद्धाता शंकर महादेवजीके अर्थ अपनी पुत्रीको दिया॥१०॥ जहां बहुत दिनोंतक कमलोंसे महादेवजीकी उपासना कर एकनेत्र चढाय विष्णु भगवान्‌ने चक्र पाया था जिसकी गुफाओंमें आश्रित हो सिद्ध किन्नर क्रीडा करते हैं ॥११॥१२॥अपनी अपनी भार्याओंके संग क्रीडा करते और आनंदित हो उत्तम मधुका पान करते हैं, और जिसको रावण सब भुजाओंसे उठा नहीं सका ॥ १३ ॥ ऐसे कैलास पर्वतमें आरोहण कर देवकीनंदन हरि मानस सरोवरके उत्तम तीरपर गये ॥ १४ ॥

पीछे केशोंको बढाये चीर वसन धारे.मनुष्य शरीर धारण किये॥ १५॥तपमें मन लगाये श्रीकृष्ण वेदसंमत गरुडसे उतर कर पृथ्वीमें स्थित हुए॥१६॥ तब हरिने बारह वर्षतक तप करनेका मनमें विचार किया और शुद्ध भूमिमें स्थित हुए फाल्गुनके महीनेमें श्रीकृष्णने तपका आरंभ किया ॥ १७ ॥ शाकोंका भोजन करनेवाले मंत्रोंको जपनेमें तत्पर वेदोंके अध्ययनमें तत्पर विष्णु किस उद्देशसे तप करते हैं ॥१८॥ उसे कोई यथेष्ट न जान सका ईश्वरकी चिन्तना दुर्ज्ञेय है, इस प्रकार भूतसेवित पर्वतमें श्रीकृष्णके तप करनेपर ॥१९॥ कश्यपके पुत्र गरुड तप करते हुए श्रीकृष्णके समीपमें होम

तपश्चर्तुं किल हरिर्विष्णुः सर्वेश्वरः शिवः ॥ जटी चीरी जगन्नाथो मानुषं वपुरास्थितः॥१५॥तपसे धृतचित्तस्तु शुचौ भूमावुपाविशत् ॥ अवरुह्य ततो यानाद्गरुडाद्वेदसंमितात् ॥१६॥ द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः ॥ फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः ॥ १७ ॥ शाकभक्षः कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः ॥ किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः ॥ १८ ॥ तं न विज्ञो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना ॥ तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते ॥१९॥ गरुडः कश्यपसुत इन्धनानि समाचिनोत् ॥ होमार्थं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् ॥२०॥ चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः ॥ दिक्षु सर्वासु सर्वत्र ररक्ष जलजस्तदा ॥२१॥ खड्ग आहृत्य यत्नेन कुशान्सुबहुशस्तदा ॥ गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह॥२२॥धनुःप्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम्॥ स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवत्स्वयम् ॥ २३ ॥ जुहोति भगवान्विष्णुरेधोभिर्बहुभिः सदा ॥ आज्यादिभिस्तदा हव्यैरग्निं संपूज्य माधवः ॥ २४ ॥ सप्तार्चिषः समाप्तिं च समस्तव्यस्ततः कृती ॥ एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवान् ॥ २५ ॥

करनेके लिये ईंधनोंको इकट्ठा करने लगे॥२०॥सुदर्शन चक्र श्रीकृष्णके समीपमें पुष्पोंको इकट्ठे करने लगा, और संपूर्ण दिशाओंमें पांचजन्य शंख रक्षा करने लगा ॥ २१ ॥ और यत्नसे नंदक खड्ग बहुतसी कुशाओंको श्रीकृष्णके समीप लाकर गेरता था कौमोदकी गदा श्रीकृष्णकी सेवा करती थी ॥२२॥ और दैत्योंको भय देनेवाला शार्ङ्ग धनुष श्रीकृष्णके सन्मुख यथेष्ट भृत्यके समान स्थित हुआ ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु अनेक प्रकारके काष्ठों और घृतआदिसे हवन कर अग्निकी पूजा करने लगे ॥ २४ ॥ वह सूर्यके समान कांतिवाले कृतकृत्य एक महीनेमें एक दिन भोजन करते

थे॥२५॥ फिर दो महीनेके उपरान्त फिर तीन चार पांच छैः महीने पीछे भोजन करते थे फिर एक वर्षमें एक दिन ऐसे भोजन किया इसप्रकार जगत्पति श्रीकृष्ण ॥२६॥ एक महीना कम बारह वर्षतक ॥ २७ ॥ अग्निमें हवन कर मंत्रका पाठ करते हुए महादेवजीका ध्यान करते हुए. आरण्यक विधिको पढते हुए साक्षात् सर्वेश्वर हरि ओंकारका विचार करते हुए ध्यानमें तत्पर हो स्थित हुए ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायांचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥ वैशंपायनजी बोले कि; तब साक्षात् इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढकर तप करनेवाले

द्वितीये त्वथ पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः ॥ एकस्मिन्वत्सरे भुञ्जंस्तथैवैकेन केनचित् ॥२६॥ समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः॥ द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः॥२७॥ जुह्वन्नग्निं समास्थाय पठन्मंत्रं जनार्दनः ॥ आरण्यकं पठन्विष्णुः साक्षात्सर्वेश्वरो हरिः ॥ आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन्प्रणवमुत्तमम् ॥२८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्ण तपोवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत इन्द्रः स्वयं यत्र आरुह्य गजमुत्तमम् ॥ द्रष्टुं सर्वेश्वरो विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ॥१॥ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम् ॥ किंकरैश्च स्वयं साक्षादाययौ नगमुत्तमम् ॥२॥ प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः ॥ श्वेतच्छत्रसमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः ॥ ३ ॥ ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा ॥ अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्था ॥४॥ रुद्राश्चैव तथा राजन्द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥ ५ ॥ सर्वाश्चाप्सरसो राजन्नृत्यगीतविशारदाः ॥ ततो देवगणाः सर्वे कैलासं समपद्यत ॥ ६ ॥

विष्णुके देखनेको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ इसके उपरान्त भैंसेपर चढकर धर्मराज अपने दूतोंसहित कैलासपर्वतमें प्राप्त हुए ॥ २ ॥ फिर श्वेतछत्रको लगानेवाला और श्वेतवीजनासे वीजित वरुणजी हंसपर चढ ॥ ३ ॥ अपने भृत्योंके सहित श्रीकृष्णके देखनेको कैलासपर्वतमें प्राप्त हुए. हे राजन् ! अन्यभी देवता आदित्य, सब वसु ॥४॥ और सब रुद्र श्रीकृष्णके देखनेको आये, सिद्ध, मुनि, गंधर्व;यक्ष, किन्नर ॥ ५ ॥ नृत्यगीतमें विशारद

अप्सरा और सब देवता कैलासपर्वतमें आये ॥६॥ पर्वत, नारदऋषि और दूसरे मुनिजन विस्मयसे चलायमान नेत्रवाले ऋषि और देवगण ॥ ७॥ यह सब श्रीकृष्णके देखनेको कैलासपर्वतमें आये और सब कहने लगे कि ऐसा आश्चर्य है कि न हुआ न होगा, तिसको देखो कि योगिजनोंको ध्यान करनेके योग्य और सबके बडेभी श्रीकृष्ण आप तप करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसा समय कब होगा. ऐसे सब गण मानने लगे जब जगत्पतिको बारह वर्ष तप करते पूर्ण हो गये तब सब जगतके ईश्वर महादेव पार्वती और भूतसंघके संग लोकहितकारी श्रीकृष्णके देखनेको आये ॥ ९ ॥

पर्वतो नारदश्चैव तथान्ये मुनिसत्तमः ॥ विस्मयस्थितलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा ॥७॥ आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति ॥ योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयम् ॥ ८ ॥ कोऽन्वत्र समयो भूयादिति ते मेनिरे गणाः ॥ ततः समाप्ते सकले जगत्पतेर्व्रते समूले सकलेश्वरः शिवः ॥ द्रष्टुं हरिं लोकहितैषिणं प्रभुं ययौ भवान्या सह भूतसंघैः॥९॥सार्द्धं कुबेरेण सगुह्यकेन सख्या प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः ॥ स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः शरी च खड्गी शशिखण्डशेखरः ॥१०॥ करेण बिभ्रत्सह दर्भकुण्डिकां करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ॥ अन्येन बिभ्रन्महतीं स डिण्डिमां शूलं च बिभ्रन्नपरेण बाहुना ॥११॥ गुणान्स रुद्राक्षकृतान्समुद्वहन् जटाभिरापिङ्गलताम्रमूर्तिः ॥ विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥१२॥ उमास्तनद्वन्द्वसमर्पिताननस्तया समाश्लिष्य निपीडिताधरः ॥ गङ्गाम्बुविक्षालितचन्द्रशेखरस्तां चापि वीक्षन्बहुशस्तदा शिवः ॥ १३ ॥

कुबेर गुह्यकोंके संग सखिके प्रिय जटाको धारण करनेवाले पिशाचोंसे परिवृत शर और खड्गको धारण करनेवाले और चन्द्रमाको मस्तकमें धारण किये ॥१०॥ एक हाथमें डाभके समूहको धारण किये. दूसरेमें दीपिका लिये तीसरे हाथमें बडी डिंडिमा धारे और चौथे हाथमें त्रिशूलको लिये ॥११॥ रुद्राक्षोंकी मालाओंको पहरे पीली जटाओंको धारे पार्वतीसे संयुक्त, ताम्रमूर्ति सफेद रंगके बैलसे संयुक्त, विराजमान चन्द्रशेखर ॥१२॥ और पार्वतीजीके दोनोंस्तनोंके बीचमें मिलापकर अधरामृतकोपीडन करनेवाले गंगाजलसे क्षालित शिर और पार्वतीजीकी ओर वारंवार देखते हुए॥१३॥

भस्म आदि मुखपर लेप किये और महासर्पोंसे जटाओंको बांधे, नरके शिरोंकी माला धारे, शिवजी केशवके देखनेको आये॥ १४॥जिसको सांख्य-वादी अन्य महापुरुष पुरातन कहते हैं और चित्तके उत्तम चौवीस तत्त्वगुण हैं, उस देवके संपूर्ण गुण कौन जान सकता है॥ १५॥और जिसको एक पुरातन पुरुष कणाद अज महेश्वर कहते हैं, जिसने दक्षके यज्ञका नाश कर देवता और दैत्योंको मारा जो सनातन हैं॥ १६॥भूतोंके तत्त्वोंको जाननेवाला, भूतेश, भूतभावन, वामदेव, विरूपाक्ष जिसको तत्त्व जाननेवाले कहते हैं ॥ १७ ॥ महादेव; सहस्राक्ष, कालमूर्ति, चतुर्भुज, रुद्र, रोदन, विश्वेश्वर, शिव

भस्माङ्गरागैरनुलेपिताननो महोरगैर्बद्धजटः सनातनः॥शिरः कपालैः परिशोभितस्तदा द्रष्टुं हरिं केशवमभ्ययाच्छिवः॥१४॥ यमाहु-रग्र्यं पुरुषं महान्तं पुरातनं सांख्यनिबद्धदृष्टयः ॥ यस्यापि देवस्य गुणान्समग्रांस्तत्त्वांश्चतुर्विंशतिमाहुरेके ॥१५॥ यमाहुरेकं पुरुषं पुरातनं कणादनामानमजं महेश्वरम् ॥ दक्षस्य यज्ञं विनिहत्य यो वै विनाश्य देवानसुरान् सनातनः ॥१६॥ यं विदुर्भूततत्त्वज्ञं भूतेशं भूतभावनम् ॥ वामदेवं विरूपाक्षमाहुस्तत्त्वविदो जनाः ॥१७॥ महादेवं सहस्राक्षं कालमूर्तिं चतुर्भुजम् ॥ रुद्रं रोदननामानमाहुर्विश्वे-श्वरं शिवम् ॥१८॥ अप्रमेयमनाधारमाहुर्माहेश्वरा जनाः ॥ नग्नं नग्नपरीतं तु नागिनं त्वग्निवर्चसम्॥१९॥आहुर्विश्वेश्वरंशान्तं शिवमादिं सनातनम् ॥ तस्य मूर्तिरिमाः सर्वा धराद्याः सकला नृप ॥२०॥ भूमिरापोनलो वायुः खं सूर्यश्च तथा शशी ॥ अग्निश्च यजमानश्च प्रकृतिश्चैवमष्टधा ॥२१॥ महादेवो महायोगी गिरिशो नीललोहितः॥ आदिकर्त्ता महाभर्त्ता शूलपाणिरुमापतिः॥द्रष्टुं विश्वेश्वरं विष्णुं भूतसंघैः समाययौ ॥२२॥इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि कैलासयात्रायां शिवागमनकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

नाम जिनको कहते हैं ॥ १८ ॥ सब महात्मा जिनको अप्रमेय अनाधार. नग्न, नागोपवीत, नागी, अग्निवर्चा ॥ १९ ॥ शांत विश्वेश्वर, शिव आदि सनातन कहते हैं. हे जनार्दन ! जिसकी मूर्ति यह पृथ्वी आदि सब पदार्थ हैं ॥ २० ॥ अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान यह उसकी आठ प्रकृति हैं॥२१॥महादेव, महायोगी, गिरीश,नील लोहित, आदिकर्त्ता, महीभर्त्ता, शूलपाणि, उमापति महादेव भूतगणोंके संग विश्वके ईश्वररूप विष्णुके देखनेको आये॥२२॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां शिवगमनकथनं नाम

पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥ वैशंपायनजी बोले कि;उन महादेवजीके अगाडी सहस्रों भूतोंके समूह और घंटाकर्ण विरूपाक्ष कुंडधार कुमुद्वह ॥१॥ दीर्घरोमा दीर्घभुज दीर्घबाहु निरंजन, उरुवक्र, शतमुख, शतग्रीव व शतोदर॥२॥कुंडोदर, महाग्रीव, स्थलजिह्व, द्विबाहुक, पार्श्ववक्र; सिंहमुख, उन्नतांस, महाहनु॥३॥त्रिबाहु, पंचबाहु, व्याघ्रवक्र,शतानन इत्यादि बहुतसे दीर्घमुखोंवाले और दीर्घभुजोंवाले और दीर्घनेत्रोंवाले॥४॥नृत्य करते हुए हँसते हुए परस्पर स्फोटन करते हुए और कितनेही घोररूप कितनेही विकृतमुखोंवाले॥५॥प्रेतोंके भक्षण करनेवाले और प्रेतोंको वहानेवाले,मांस और रुधिरका

वैशम्पायन उवाच ॥ तस्याग्रे समपद्यन्त भूतसंघाः सहस्रशः ॥ घण्टाकर्णो विरूपाक्षः कुण्डधारः कुमुद्वहः॥१॥ दीर्घरोमा दीर्घभुजो दीर्घबाहुनिरञ्जनः ॥ उरुनेत्रः शतमुखः शतग्रीवः शतोदरः॥२॥ कुण्डोदरो महाग्रीवः स्थूलजिह्वो द्विबाहुकः ॥ पार्श्ववक्रः सिंहमुख उन्नतांसो महाहनुः ॥३॥ त्रिबाहुः पञ्चबाहुश्च व्याघ्रवक्रः सिताननः ॥ एते चान्ये च बहवो दीर्घास्या दीर्घलोचनाः ॥ ४ ॥ नृत्यन्तः प्रहसन्तश्च स्फोटयन्तः परस्परम् ॥ तथान्ये घोररूपाश्च तथान्ये विकृताननाः ॥ ५ ॥ प्रेतभक्षाः प्रेतवाहा मांसशोणितभोजनाः ॥ शवानि सुबहून्याशु भक्षयन्तस्ततस्ततः ॥६॥ पिबन्तो रुधिरं घोरं खण्डयन्तः शवान्बहून् ॥ कराला वितता दीर्घा धमनिस्नायुसंतताः ॥७॥ नानाविधाः सुवीराश्च शूलाग्रप्रोतमानुषाः ॥ शिरोमालावृताः केचिदान्त्रपाशावपाशिताः ॥८॥ डिण्डिमैरट्टहासैश्च नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ कपालिनो भैरवाश्च जटिला मुण्डिनस्तथा ॥ ९ ॥ एवं बहुविधा घोराः पिशाचा विकृताननाः ॥ तथान्ये मुनिवीराश्च ध्यायन्तः परमेश्वरम् ॥ १० ॥

भोजन करनेवाले बहुतसे मुरदोंको भक्षण करनेवाले॥६॥घोररूप लोहूको पीनेवाले और बहुतसे मुरदोंको खण्डित करनेवाले, कराल, विस्तृत, लम्बी नाडी और नसोंसे व्याप्त ॥ ७ ॥ नानाप्रकारकी आकृतिवाले वीर शूलके अग्रभागमें, मनुष्योंको लटकाये और शिरोंकी मालाको पहरनेवाले, कितनेही आंत्रपाशको धारण करनेवाले॥८॥और डिंडिम तथा अट्टहासोंसे इस पृथ्वीको शब्दित करते,कपालोंको धारण करनेवाले भय देनेवाले, जटाधारी, मूंड मुँडाये हुए॥९॥बहुत प्रकारके घोरमुख पिशाच महादेवजीके अगाडी स्थित हो रहे हैं और बहुतसे मुनिजन परमेश्वरका ध्यान कर व्रती हुए ॥१०॥

वेद और वेदके अंगोंका विधिपूर्वकपठन करनेवाले कोई कुंडिका और कोई कुशाके चीरोंको धारण किये॥ ११॥कोई कौपीनमात्र वस्त्रोंको धारण किये और कितनेही कषाय वस्त्रोंको धारण किये,कितनेहीभक्तिसे माहेश्वरके स्तोत्रोंसे महादेवजीकी स्तुति करते मुनिजनोंके गण और महादेवजीके गण और सिद्ध अपनी अपनी स्त्रियोंको लिये॥१२॥ यह और वे मुनिगण दूसरी ओर दूसरे गण अपनी स्त्रियोंके साथ॥१३॥गंधर्व तथा नृत्यकर्म और गायनकर्ममें चतुर कन्या, विद्याधर यह सब महादेवजीकी स्तुति गान कर रहे हैं ॥१४॥ और गमन करते हुए महादेवजीके आगे अप्सरा-

पठन्तो वेदवाक्यानि सांगानि विविधानि च ॥ कुण्डिकास्थकराः केचित्केचित्कुशविचारिणः ॥११॥ कौपीनवसनाः केचित्के-चित्काषायसंवृताः ॥ स्तुवन्तः शंकरं भक्त्या स्तोत्रैर्माहेश्वरैस्तथा ॥१२॥ एकत्र ते मुनिगणा अपरत्र गणास्तथा ॥ अन्यत्र सिद्ध-गन्धर्वाः प्रियाभिः सह संगताः ॥१३॥ नृत्यन्ति नृत्यकुशला गायन्ति स्म च कन्यकाः ॥ विद्याधरास्तथान्यत्र स्तुवन्तः शंकरं शिवम् ॥१४॥ ननृतुस्तस्य पुरतो गच्छन्तोऽप्सरसां गणाः ॥ एवमेतैर्महाघोरैः पिशाचैर्भूतकिन्नरैः ॥१५॥ मुनिभिश्चैव प्रमथैः समं शर्वः समाययौ ॥ यत्र विश्वेश्वरो विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥१६॥ यत्र ते लोकपालाश्च तिष्ठन्ति स्म दिदृक्षया ॥ उमया लोकभा-विन्या गंगया चन्द्रशेखरः ॥१७॥ स सर्वलोकप्रभवो भवो विभुर्जटी च साक्षात्प्रणवात्मकः कृती ॥ द्रष्टुं हरिं विष्णुमुदारविक्रमो ययौ यथेष्टं पिशिताशनैर्वृतः ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशी-तितमोऽध्यायः ॥८६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह ॥ आगत्य भगवान्रुद्रः शंकरो वृषवाहनः॥१॥

ओंके गण नाच रहे हैं. इस प्रकार महाघोर पिशाच भूत, किन्नर॥१५॥मुनि, प्रमथगण, आदिके सहित शिवजी, जहां विष्णु दारुण तप करते थे, वहां आये॥१६॥जहां वे लोकपाल महादेवजीके देखनेकी इच्छासे स्थित थे. वहां लोकभाविनी उमा और गंगाको साथ लिये ॥ १७ ॥ सब लोकके उत्पन्न करता विभु जटाधारी साक्षात् ओंकारात्मक कृती उदार विक्रम पिशाचादिके सहित विष्णुके देखनेको आये॥१८॥ इति श्रीमहा-भारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार बहुतसे भूत

पिशाच व सर्पोंको संग लिये बैलपर चढे भगवान् महादेवजीने आनकर ॥ १ ॥ उत्तम तप तपते देवताओंके पति पवित्र हव्यका अग्निमें हवन करते ॥ २ ॥ और गरुडजीसेहवनके काष्ठको इकट्ठे कराये हुए, जटाऔर पुराने वस्त्रको धारण किये चक्रसे पुष्पोंको इकट्ठा कराते, खड्गसे कुशाको संग्रह कराते ॥३॥ गदासे समाचारको कराते हुए और इन्द्र आदिक देवताओंके समूहसे और मुनिगणोंसे युक्त ॥ ४ ॥ सब जीवोंको अचिन्त्य, कुछेक ध्यान करते हुए विष्णुको, वृषभपर स्थित भूतभावन भगवान् शिवने देखा ॥ ५ ॥ तब प्रसन्न हुए प्रसन्नात्मा,मस्तकमें तीसरे नेत्रवाले उमापति प्राप्त हुए, तब भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक॥६॥ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मुनि यह सब जयशब्द करने लगे.हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे देवरुद्र ! हे जनार्दन !

ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम् ॥ जुह्वानमग्निं विधिवद्धव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम् ॥२॥ गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम् ॥ चक्रेणानीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा ॥३॥ गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम् ॥ इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह ॥ ४ ॥ अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम् ॥ अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान् भूतभावनः ॥५॥ ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष उमापतिः ॥ ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा ॥६॥ मुनयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ॥ जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन ॥७॥ जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण ॥ जय रुद्र पुराणात्मन् जय देव हरेश्वर ॥८॥ आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ॥ जय कौस्तुभदीप्तांग जय भस्मविराजित ॥९॥ जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन ॥ जय मौक्तिकदीप्तांग जय नागविभूषण ॥१०॥ इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम् ॥ तत उत्थाय भगवान् दृष्ट्वा देवमवस्थितम् ॥ ११ ॥

आपकी जय हो॥७॥हेविष्णो!हे इन्द्रियोंके ईश!हेनारायण!आपकी जय हो,हे रुद्र!हे पुण्यात्मन्!हे हरेश्वर!आपकी जय हो॥८॥हे आदिदेव जगन्नाथ! हे शंकर भावन ! हे कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले!हे भस्मविराजित ! आपकी जय हो॥९॥चक्र गदा हाथमें लिये आपकी जय हो. त्रिशूलधारी त्रिलोचन आपकी जय हो. मोतियोंसे प्रकाशित अंगवाले आपकी जय हो, नागोंके आभूषण धारण करनेवाले देव तुम्हारी जय हो ॥ १० ॥ इस प्रकार वह सब मुनि हरिभगवान्की स्तुति करनेलगे (इन विशेषगणोंसे यहां अभेद दिखाया है)ऐसे स्तुति श्रवणकर विष्णु भगवान् उठकर स्थित हुए

भगवान् ॥११॥ वृषध्वजावाले, विरूपाक्ष, शंकर नीले व रक्त वर्णवाले शिवजीको देख प्रसन्न हो स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले, हे शितिकंठ ! हे नीलग्रीव ! हे वेधस ! हे शोचिष ! हे उपवासिन् ! तुमको नमस्कार हैं ॥ १३ ॥ हे मेढुष ! हे गदिन् ! हे गदाधारी हरि ! तुमको नमस्कार है. हे विश्वतनु ! हे वृष ! हे वृषरूपी ! आपको नमस्कार है॥१४॥हे अमूर्त्तदेव ! हे पिनाकिन् कुब्जकूप्य शिव शिवरूपिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥१५॥ हे तुष्टच ! हे तुंड ! हे तुटितुट ! आपके अर्थ नमस्कार है, और शांतरूपी शिव गिरीश आपके अर्थ नमस्कार है, और पर्वतमें

वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम्॥ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम्॥१२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ॥ नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥ १३ ॥ नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हर ॥ नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे॥१४॥ अमूर्त्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने॥नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे॥१५॥ नमस्तुष्टचाय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च ॥ नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥ १६ ॥ नमो हराय विप्राय नमो हरिहराय च ॥ नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च ॥ १७ ॥ नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ॥ नमः शिवाय शान्ताय गिरीशाय च ते नमः ॥१८॥ नमोविरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे ॥ नम आद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे ॥१९॥ नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे ॥ नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ २० ॥

शयन करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है ॥१६॥ हे हर ! हे विप्र ! हे हरिहर ! हे घोर ! हे अघोर ! हे घोरघोरप्रिय ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १७ ॥ घंटा, अघंटारूप, घटिघटरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, शांतरूप सर्वरूप भूतोंके अधिपति आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ विरूपवान्, रूपवान्, पुररूप, पुरनाशक, आद्य, विज्ञ, शुचि, अष्टस्वरूपी आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ पिनाक धनुष और शूल खड्गको धारण करनेवाले, और खट्वाके अंग अर्थात् पाया आदिको हाथमें धारण करनेवाले,और चर्मके वस्त्रोंको धारण करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २० ॥

हे देवदेव आकाशमूर्ति ! हे हरिरूप ! हे हर तीक्ष्णतेजको धारण करनेवाले ! आपके अर्थ नमस्कार है॥२१॥हे भक्तप्रिय ! भक्तोंको वर देनेवाले ! भक्त आकाशमूर्ति देव ! हे अभ्रमूर्ति जगत्की मूर्तिको धारण करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे चंद्रदेव ! हे सूर्यदेव ! हे प्रधानदेव ! हे भूतपति ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥२३॥ हे कराल ! हे मुंडरूप ! हे विकृतजटाको धारण करनेवाले ! हे अज ! हे भूतभावन ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे हरिकेश ! हे पिंगलरूप ! हे अभीषु ! अर्थात् अश्वादिकोंकी रश्मिको हाथमें धारण करनेवाले हर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है

नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्त्तये ॥ हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे ॥२१॥ भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने ॥ नमोऽभ्रमूर्त्तये देव जगन्मूर्तिधराय च॥२२॥नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः ॥ नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः॥२३॥ करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने ॥ अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन ॥२४॥ नमोऽस्तु हरिकेशाय पिङ्गलाय नमो नमः ॥ नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च ॥२५॥ हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने ॥ नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्राप-हारिणे ॥२६॥ उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च ॥ आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे ॥ २७ ॥ नमः कपालहस्ताय नमोऽजमथनाय च ॥ त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च ॥२८॥ वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर ॥ नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कुशाय च ॥२९॥ नमस्ते शक्तियुक्ताय नागपाशप्रियाय च ॥ विरूपाय सुरूपाय मद्यपानप्रियाय च ॥ ३० ॥

है ॥ २५ ॥ भयंकर रूपको धारण करनेवाले हर घोरपुरुषोंको भय देनेवाले और दक्ष प्रजापतिके यज्ञनाशक, भगके नेत्रोंको हरनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥२६॥ हे उमापति ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है. और कैलासमें स्थान करनेवाले आदिदेव और भवरूपी तुम्हारे लिये नमस्कार है॥२७॥ कपाल हाथमें रखनेवाले त्र्यंबक त्र्यक्ष शिव तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ वर देनेवाले, वरेण्य, चन्द्रशेखर, इच्छारूप, हविरूप, ध्रुव, कृष्ण तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २९ ॥ शक्तियुक्तके अर्थ नमस्कार है, नागफांसीके प्रिय विरूप सुरूप, मद्यपान प्रिय तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥३०॥

नित्य स्मशानमें प्रीति करनेवालेऔर जयशब्दके प्रिय,खरप्रियवामनरूप खर खररूपी आपकेअर्थ नमस्कार है॥३१॥भद्रप्रिय, भद्र, भद्ररूपको धारण करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, और विरूप, स्वरूप, महाघोर ॥ ३२ ॥ घट, घटभूषी, घंटेका आभूषण करनेवाले तीव्र तीव्ररूप और तीव्रप्रिय तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३३ ॥ और नग्न, नग्नरूप, नग्नरूपप्रिय, भूतवास, आपको नमस्कार है, सब वासारूप आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ सर्वात्मा भूतिदायक, आपके अर्थ नमस्कार है और वामदेव महादेव आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे स्तुतिमतांवर ! तुम्हारी स्तुति करने

श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च ॥ खरप्रियाय खर्वाय खराय खररूपिणे ॥३१॥ भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च ॥ विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः ॥ ३२ ॥ घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषणभूषिणे ॥ तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च ॥३३॥ नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च ॥ भूतवास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः ॥ ३४ ॥ नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ॥ नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ ३५ ॥ का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात् ॥ कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥३६॥ क्षमस्व भगवन्देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ॥ सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥३७॥ रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर ॥ त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥३८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृतेश्वरस्तुतिर्नाम सप्तशीतितमोऽध्यायः॥८७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः ॥ करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥ १ ॥

योग्य कौन वाणी है ? और कौन तुम्हारी स्तुति करनेको समर्थ है और तुम्हारी स्तुति करनेमें किसकी जिह्वा फुरती है॥ ३६ ॥ हे हर ! क्षमा करो,मैं तुम्हारा भक्त हूं, मेरी रक्षा करो. हे सर्वात्मन् ! सर्वभूतेश ! मेरी सदा रक्षा करो ॥ ३७ ॥ हे देव ! हे जगन्नाथ ! तुम सर्वात्मा होकर लोकोंकी रक्षा करो. हे महादेव ! हे भक्तप्रिय ! तुम निरंतर भक्तोंकी रक्षा करो ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां ईश्वरस्तुतौ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ वैशंपायनजी बोले; तब वह वृषध्वज शूली सत्स्वरूप

उमापति शिवचक्रको धारण करनेवाले विष्णु भगवान्के हाथको हाथसे स्पर्श करके ॥१॥भगवान् रुद्र सब देवता और भावितात्मावाले मुनियोंके सुनते हुए गरुडध्वज केशवसे कहने लगे॥२॥हे देवदेव ! हे चक्रपाणे ! हे जनार्दन ! यह क्या है किस कारण यह तपश्चर्या तुम करते हो! और हे विभो ! तुम्हारी क्या प्रार्थना है ॥ ३ ॥ तुम आप विष्णु हो. हे हरे ! आपही तप हो हे देव ! हे जनार्दन ! तुम्हारी यह तपश्चर्या पुत्रके निमित्त है ॥ ४ ॥ सो हे जगत्पते ! मैंने पहले तुमको पुत्र दिया है. हे कारणात्मक ! इसमें कारण सुनो ॥ ५ ॥ हे हरे ! प्रथम सतयुगमें मैं किसी समय

प्रोवाच भगवानुद्रः केशवं गरुडध्वजम् ॥ शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२॥ किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन ॥ तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो ॥ ३ ॥ स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यस्तपस्त्वं तपसा हरे ॥ पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ॥४॥ पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते ॥ शृणु तत्रापि भगवन्कारणं कारणात्मक ॥५॥ तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुतश्चित्कारणाद्धरे ॥ वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ॥६॥ भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाभवत् ॥ पित्रा नियुक्ता देवेश उमैषा वरवर्णिनी ॥ ७ ॥ भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रेषयत्तदा ॥ मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा ॥ ८ ॥ लक्ष्यं मामकरोत्तत्र बाणस्य प्रेषितस्य ह ॥एषा मां सेवते तत्र दानात्पुष्पादिनां हरे ॥ ९ ॥ ततः क्रुद्धोहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम् ॥ क्रुद्ध्यतो मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह ॥१०॥ सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात्कृतवान् हरे ॥अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम्॥११॥

दशसहस्र वर्षतक महाघोर तप करनेको प्रवृत्त हुआ ॥ ६ ॥ और हे देव ! पिता हिमाचलसे दी हुई वह वरवाणनी उमापार्वती मेरी परिचर्या करने लगी ॥७॥ हे देव तब भयभीत हुए इन्द्रने मेरे प्रति कामदेवको प्रेरण किया फिर वह कामदेव पुष्परसोंसे संयुक्त हुआ मेरे सन्मुखआया ॥८॥ फिर अपने पुष्परूपी बाणोंसे लक्ष्यकर मुझको मारने लगा तब यह पार्वती मुझको पुष्पादिकोंसे सेवने लगी ॥ ९ ॥ तब मैं तिस प्रकार विधिवाले कामदेवको देख क्रोधित हुआ तो मेरे क्रोध करते हुए नेत्रोंसे अग्नि निकली ॥१०॥ हेहरे ! फिर उस अग्निने कामदेवको भस्मकर दिया. हे विष्णो !

पीछे वह इन्द्रका कर्तव्य मुझको विदित हुआ ॥ ११ ॥ हे देवेश ! तब मुझको दया आने लगी और हे विष्णु ! फिर मैंने प्रसन्न हो ब्रह्माको प्रेरित किया ॥ १२ ॥ हे जगत्पते ! तब मैंने पुरुषरूप करके तुम्हारा बडा पुत्र उसे विधान किया है और वह प्रद्युम्ननामसे विख्यात है ॥१३॥ सो हे देव ! उसको तुम कामदेव जानो. इसमें संदेह नहीं. इस प्रकार वह शिवजी कहकर फिर अपने देहको याथात्म्य दिखानेकी इच्छा करते हुए॥१४॥ याथात्म्य सुननेकी इच्छावाले मुनियोंके मध्यमें विष्णुको उद्देश लेकर हाथोंसे अंजली बांधकर॥१५॥पार्वतीके संग शिवजी यथार्थ आत्माके वर्णन

ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति वर्तते ॥ ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन ॥१२॥ नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते॥ ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव ॥ १४ ॥ मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः ॥ अञ्जलिं संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः ॥ १५ ॥ उमया सार्द्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत ॥ हरे कुर्वंति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम ॥ १६ ॥ मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धश्च सहकिन्नराः ॥ अञ्जलिं चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ ॥ १७ ॥ महेश्वर उवाच ॥ यत्तत्कारणमाहुस्तत्सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम् ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥ १८ ॥ त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम् ॥ सत्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन ॥ १९ ॥ तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ॥ तद्रूपेण भवान्विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥ २० ॥

करनेकी इच्छा करने लगे. हे कुरुश्रेष्ठ ! उस समय नारायणको हाथ जोडकर॥१६॥मुनि देव गंधर्व सिद्ध किन्नर यह सब देवदेवेश्वर विष्णुकी अंजली बांधने लगे ॥ १७ ॥ शिवजी बोले; जो कुछ प्रकृतिसंज्ञक कारण सांख्यके जाननेवाले कहते हैं. उससे महान् उत्पन्न हुआ जो प्रकृतिका कारण है ॥१८॥ तीन प्रकार जगत्की योनि प्रधान कारणात्मक कहते हैं और सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणको इस जगत्‌रूपी अण्डका कारण कहते हैं. हे जनार्दन!॥१९॥ इन सबोंके कारण सांख्यके जाननेवाले तुम्हीको कहते हैं तिसी रूपसे तुम विष्णु परिणामके अधिष्ठाता हो ॥ २० ॥

तिससे महाघोर अधिष्ठातासे अहंकार उत्पन्न हुआ सो हे जगन्नाथ! तुम आदिमें जगत्‌के परिणाम हो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! अहंकारसे महान् कारण उत्पन्न हुए हैं और पश्चात् तन्मात्रा हुई हैं और पचतत्त्व हुए हैं ॥ २२ ॥ सो हे जगत्पते! तिन पांच तत्त्वोंको तुम्हाराही रूप कहते हैं पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि ये पांच तत्त्व हैं ॥ २३ ॥ चक्षु, घ्राण, स्पर्श, जिह्वा, श्रोत्र वह पांच इन्द्रियें हैं और हे देव ! इनका प्रेरनेवाला छठा मन है ॥ २४ ॥ हे जनार्दन ! वाक् आदिक अन्य कर्मेन्द्रियें हैं, उन सबोंको नियंता आत्मा होकर नियन्ता तुमही हो ॥ २५ ॥ हे हरे ! अपने

तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ॥ स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः ॥ २१ ॥ अहंकारात्प्रभो देव कारणानि महान्ति च॥तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवत्युत॥२२॥तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ २३ ॥ चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ॥ मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥ २४ ॥ कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ॥ त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥ २५ ॥ स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ॥ निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥ २६ ॥ यदात्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ॥ यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥२७॥ तदा त्वं तमसाकृष्टस्तदा संहरसे जगत् ॥ त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने॥२८॥ वर्त्तसे विविधां भूतिमादाय नियतात्मवान् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥ २९ ॥

विषयोंमें इन इन्द्रियोंको तुम प्रवेश करते हो ॥ २६ ॥ जब तुम रजोगुणसे युक्त होते हो, तब जीवोंको रचते हो और जब सत्त्वगुणसे युक्त होते हो, तब तीनों लोकोंकी पालना करते हो ॥२७॥ और जब तमोगुणसे युक्त होते हो तब जगत्‌का संहार करते हो, इस प्रकार तीन गुणोंसे युक्त हुए तुम सृष्टिकी रक्षा और विनाश करते हो ॥ २८ ॥ हे माधव ! नियत आत्मावाले तुम तीन प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त होकर इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके अर्थमें नियुक्त करते हो ॥ २९ ॥

हे जगद्गुरो! प्राणियोंके उपभोगको अन्न रचकर फिर सब भोगोंवाले तुम सब जीवोंमें वर्त्तते हो॥३०॥ सृष्टिकालमें तुम ब्रह्मा हो और स्थिति कालमें विष्णु हो जाते हो और संहारसमय तुम रुद्र नामवाले हो ऐसे तुम तीन धामवाले हो ॥ ३१ ॥ हे देव ! पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि, यह तुम्हारी प्रकृति मुझसे सर्वत्र भिन्न है ॥३२॥ सहस्र पुरुष अर्थात् ईश्वर और सहस्रनेत्र सहस्रचरण, सहस्र प्रकार, सहस्र मुख, सहस्रात्मा और स्वर्गके पति हो॥३३॥ तुम इससब भूमिको व्याप्त होकर और सातों द्वीप व सागरोंमें व्याप्तहो और सूक्ष्मरूपसे सब जगह दशांगुल परिमित

प्राणिनामुपभोगार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो ॥ तस्मात्सर्वत्र भूतेषु वर्त्तसे सर्वभोगवान् ॥ ३० ॥ ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो ॥ संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥ ३१ ॥ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥ एताः प्रकृतयो देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥ ३२ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ सहस्रधारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः ॥ ३३ ॥ भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपां ससागराम् ॥ अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ ३४ ॥ त्वमेवेदं जगत्सर्वं यद्भूतं यच्च भविष्यति ॥ त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत्सम्राट् चैव जनार्दन ॥३५॥ तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः ॥ प्रादुरासीत्पुराणात्मन् षट्कर्मनिरतः सदा ॥ ३६ ॥ राजन्यस्तु तथा बाह्वोरासीत्संरक्षणे रतः ॥ ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णोः पादाच्छूद्र उदाहृतः ॥ ३७ ॥ एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन ॥ मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत ॥ ३८॥ सुखकृत्सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः ॥ अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः ॥ ३९ ॥

देशमें स्थित हो ॥३४॥ जो जगत् हो गया है, और जो होगा, सो तुम्ही हो. हे जनार्दन ! तुमहीसे विराट्रूप उत्पन्न है. और तुमसेही सम्राट्रूप उत्पन्न है ॥ ३५ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम्हारे मुखसे लोककी रक्षा करनेवाले षट्कर्मोंमें रत ब्राह्मण उत्पन्न हुये हैं ॥३६॥ और रक्षा करनेमें तत्पर क्षत्री तुम्हारी भुजाओंसे हुए हैं, और जांघोंसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं. और पैरोंसे शूद्र हुए हैं॥३७॥ हे जगन्नाथ देव ! इस प्रकार सब वर्ण तुम्हारे देहसे उत्पन्न हुए हैं और तुम्हारे मनसे चन्द्रमा हुआ है॥३८॥ जो सब भूतोंको सुखकरनेवाला, शीतल किरणोंसे युक्त अमृतके समान और जिनसे सब

प्राणियोंका नेत्ररूप सूय हुआ है, जिसकी कांतिसे सपूर्ण जगत् प्रकाशमान हो रहा है ॥ ३९ ॥ और मुखसे अग्नि और प्राणसे वायु उत्पन्न हुई है ॥ ४० ॥ नाभिसे अन्तरिक्ष और शिरसे महाघोर स्वर्ग उत्पन्न हुआ॥४१॥ चरणोंसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है. हे जगत्पते ! तुम्हारे कानोंसे दिशा हुई हैं. इस प्रकार सब जगत्को तुम रचकर फिर तिसीमें तुम व्याप्त होकर अब स्थित हो रहेहो ॥४२॥ हे केशव ! तुम इन सब लोकोंको व्याप्त होकर स्थित हो रहे हो, क्योंकि इसी कारण तुम्हारा विष्णा नाम है कि विष्णु अर्थात् सब स्थानमें व्याप्त ॥४३॥ नार नाम जलोंके समूहका है. और उनके अयन नाम प्रवृत्त करनेवाले तुमही हो,इस कारण तुमको नारायण कहते हैं ॥ ४४ ॥और हे देव!तुम ीवोंको हरते हो,इस कारण तुमको हारे

यस्य भासा जगत्सर्वं भासते भानुमानसौ ॥ मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ४० ॥ नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन ॥ द्यौरासीत्तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥ ४१ ॥ पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते ॥ एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ व्याप्य सर्वानिमाल्लोकान् स्थितः सर्वत्र केशव ॥ ततश्च विष्णुनामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात् ॥ ४३ ॥ नारा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः ॥ यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः ॥ ४४ ॥ हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति स्मृतः ॥ शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरतां गतः ॥४५॥ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च स्माद्ब्रह्मेति शब्दितः ॥ मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः ॥ ४६ ॥ हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान् ॥ हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥ ४७ ॥ क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ॥ आवां तवाङ्गसंभूतौ तस्मात्केशवनामवान् ॥ ४८ ॥

कहते हैं, हे देव ! तुम सदा शं अर्थात् मंगल करते हो, इस कारण तुमको शंकर कहते हैं ॥४५॥ बृहत् होनेसे और बृहण अन्योंको बढानेवाले होनेसे तुम ब्रह्म कहलाते हो, और मधु इंद्रियोंका नाम है, इस कारण तुम मधुनिषूदन कहाते हो ॥ ४६ ॥ हृषीक नाम इंद्रियोंका है तिनके तुम ईश हो, सो हे केशव ! इस कारण तुम देवताओंमें हृषीकेशनामसे विख्यात हो ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्मका नाम है मैं सर्वदेहधारियोंका ईश हू हम दोनों तुम्हारे अङ्गसे प्रगट हैं इस कारण केशव नाम है ॥ ४८ ॥

मा नाम विद्याका है इसके आप ईश हो इस कारण माधव नाम है धव नाम स्वामीका है ॥४९॥ गौ नाम वाणीका है उसको आप जानते हो इस कारण आप गोविन्द नामसे कहे जाते हो ॥ ५० ॥ त्रिनाम तीन वेदोंको जो यथार्थ नामसे आक्रमण करता है इस कारण आपको त्रिविक्रम कहते हैं ॥ ५१ ॥ अणु होनेसे आपको वामन कहते हैं मननसे मनु और यमसे यति कहलाते हो ॥ ५२ ॥ जिस कारण कि आप तप करते हो इससे तपस्वी कहते हैं आपमें सब प्राणी निवास करते हैं इस कारणसे आप भूतावास कहे जाते हो॥५३॥हे हरे ! आप सब भूतोंके ईश हो इससे ईश्वर

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान् ॥ तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥ ४९ ॥ गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान् ॥ गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥ ५० ॥ त्रिरित्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः ॥ क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः॥५१॥ अणुर्वामिननामासि यतस्त्वं वामनाख्यया ॥ मननान्मुनिरेवासि यमनाद्यतिरुच्यते ॥५२॥ तपश्चरसि यस्मात्त्वं तपस्वीति च शब्दितः ॥ वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥५३॥ ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे ॥ प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥५४॥ अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः ॥ रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥५५॥ अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान् ॥ मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥५६॥ दानवानां भवान्दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः ॥ सर्पाणामेव सर्वेषां भवान्वासुकिसंज्ञितः ॥ ५७ ॥ गुह्यकानां च सर्वेषां भवान्धनद एव च ॥ वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग्भवान् ॥ ५८ ॥

हो आप सब वेदोंमें प्रणव और छन्दोंमें गायत्री हो॥५४॥आप अक्षरोंमें अकार और वर्णोंके संश्रयमें स्फोट हो रुद्रोंमें मेरा रूप वसुओंमें आप अग्नि हो॥५५॥वृक्षोंकी जातिमें अश्वत्थ (पीपल) लोकगुरु ब्रह्मा आप हो तुम पर्वतोंमें मेरु और देवर्षियोंमें नारद हो ॥ ५६ ॥ दानवोंमें आप दैत्य और भक्तवत्सल प्रह्लाद हो सब सर्पोंमें आप वासुकी हो ॥ ५७ ॥ सब गुह्यकोंमें आप कुबेर हो जलोंके राजा आप वरुण हो त्रिपथगा आप

गंगा हो ॥५८॥ आप सर्वभूतोंकी आदि हो आपसे सब संसार होकर आपहीमें लय हो जाता है ॥ ५९ ॥ हे देव ! मैं और तुम सर्वगामी हैं. हे जनार्दन ! जो आप हो सो मैं हू. हे जगत्पते ! शब्दअर्थके समान हममें तुममें भेद नहीं है॥६०॥हे गोविन्द ! लोकमें आपके जितने नाम हैं वही मेरे नाम हैं इसमें संदेह नहीं॥६१॥हे जगन्नाथ ! आपकी उपासना मेरी हो. हे देवेश ! जो आपसे द्वेष करता है इसमें संदेह नहीं कि वह मुझसे द्वेष करता है ॥६२॥ हे देव ! जो तुम्हारा विस्तार है वही मैं भूतपति हूं. हे हरे ! कोई वस्तु नहीं जो तुम्हारे विना हो ॥ ६३ ॥ हे जगत्पते !

आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् ॥ त्वत्तः समभवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥ ५९ ॥ अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन ॥ आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६० ॥ नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च ॥ तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥६१॥ त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते ॥ यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥६२॥ त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः ॥ न तदस्ति विना देव यत्ते विरहितं हरे ॥६३॥ यदासीद्वर्त्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते ॥ सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया नहि ॥ ६४ ॥ स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो ॥ ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥६५॥ किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ॥ नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥६६॥ नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेऽस्तु सदा हरे ॥ नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥ ६७ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

जो हो गया और जो होगा. हे देवेश ! वह सब कुछ तुमही हो तुम्हारे विना कुछ नहीं है ॥६४॥ हे विभो ! आपके गुणोंके कारण देवता नित्य आपकी स्तुति करते हैं. हे प्रभो ! तुम ऋग्यजु तथा सामरूप हो॥६५॥ हे भूतभावन ! मैं क्या कहू सब आपहीका रूप है. हे भूतभावन ! सर्वात्मा केशव माधव आपको नमस्कार है ॥ ६६ ॥ हे सर्वात्मन् हे हरे ! मैं आपको सदा नमस्कार करता हूं पुष्करनाभ ईश्वररूप आपक लिये नमस्कार है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

वैशंपायन बोले; देवदेवेशके प्रति इस प्रकार कहकर फिर शिवजी मुनियोंसे कहने लगे. हे विप्रो! जो भक्त देखनेको आये हैं वे इस प्रकार जानो॥ १॥ यही परम वस्तुहै इससे परे और कुछ नहीं है तुम इसीको जानो कारण कि यही परंतप है ॥२॥ हे विप्रो ! इसीका निरन्तर मनमें ध्यान करना चाहिये यही तुम्हारा परम श्रेय और यही तुम्हारा परम धन है॥ ३॥ यही तुम्हारे जन्मका कृत्य और यही तुम्हारे तपका फल है यही तुम्हारा पुण्यस्थान और यही सनातन धर्म है ॥ ४ ॥ यही मोक्षदाता और यही मार्ग यही पुण्यदाता और यही साक्षात् कर्मोंका फल है ॥ ५॥ इसीको विद्वान् ब्रह्मवादी

वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः ॥ एवं जानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः ॥ १ ॥ एतदेव परं वस्तु नैकस्मात्परमस्ति वः ॥ एतदेव विजानीध्वमेतद्वः परमं तपः ॥ २ ॥ एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः ॥ एतद्वः परमं श्रेय एतद्वः परमं धनम् ॥३॥ एतद्वो जन्मनः कृत्यमेतद्वस्तपसः फलम् ॥ एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः ॥४॥ एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः ॥ एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद्वः कर्मणां फलम् ॥५॥ एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः ॥ एष त्रयीगतिर्विप्राः प्रार्थ्यो ब्रह्मविदां सदा ॥ ६ ॥ ॥ एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः ॥ एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः ॥७॥ एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा ॥ हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः ॥ ८ ॥ नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात्परः ॥ ओमित्येवं सदा विप्रा पठत ध्यात केशवम् ॥ ९ ॥ ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ एवं ध्यातो हरिः साक्षात्प्रसन्नो वो भविष्यति ॥ १० ॥

प्रशंसा करते हैं. हे ब्राह्मणो! यही कर्मकाण्डसे प्राथनीय यही सदा ब्रह्मज्ञानियोंसे प्रार्थनीय है॥६॥ सांख्ययोगके आश्रित पुरुष इसीकी प्रशंसा करते हैं वेदवादियोंने कहा है यही ब्रह्मज्ञानियोंका मार्ग है ॥ ७ ॥ इसीको जानना चाहिये और विचार करनेकी आवश्यकता नहीं, सतगुणमें आश्रित हुए तुमको एक नारायणकाही सदा ध्यान करना चाहिये ॥८ ॥ विष्णु नारायणसे अधिक जगत्में कोई और देवता नहीं है. हे विप्रो ! ॐ इस प्रकार उच्चारण कर सदा केशवका ध्यान और पाठ करो॥९॥ इसमें सन्देह नहीं तब आपको मंगलकी प्राप्ति होगी इस प्रकार ध्यान करनेसे साक्षात् हरि

तुमपर प्रसन्न होंगे॥१०॥यह हरि निश्चय संसारका बंधन छुडानेवाले हैं जो आप अच्युतकेप्राप्त होनेकी इच्छा करतेहो तो सदा अच्युतका ध्यान करो॥११॥ यह गुरु संसाररोगका नाश करेंगे तुम सदा विष्णुका स्मरण करो ब्रह्मादि तीन शरीर धारण करनेवालेका ध्यान करो ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! सदा यत्नसे मनका संयमन करो. हे तपोधनो ! शुद्ध अन्तःकरण होनेसे विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥१३॥ मुझे सब यत्नसे ध्यान करकेही केशवको जानोगे मैं सदा उपास्य हूँ इन हरिमें सदा मेरा ध्यान करो ॥१४॥ यह उपाय जो मैंने कहा है इसमें संदेह नहीं है यही मायापति हैं.

भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः॥सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम्॥११॥एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः॥ स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम् ॥ १२ ॥ मनःसंयमनं विप्राः कुरुध्वं यत्नतः सदा ॥ शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति तपोधनाः ॥ १३ ॥ ध्यात्वामे सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम् ॥ उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्योऽस्मिन् हरौ स्मृतः ॥ १४ ॥ उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र संदेह इत्यपि ॥ अयं मायी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने॥१५॥यथा वो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति यत्नतः ॥ तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः ॥ यथावदुपगृह्णाना निरसन् संशयं नृप ॥१७॥ एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम् ॥ छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतोऽर्थः स तादृशः ॥ १८ ॥ एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम् ॥ संगमाद्युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह ॥ १९ ॥

हे विप्रो ! पापनाशके निमित्त तुम सदा इनका जप करो ॥ १५ ॥ जिससे तुम्हारी सम्पूर्ण बुद्धि शुद्ध हो जाय. हे विप्रेन्द्रो ! वही करो जिससे यह देव प्रसन्न हो जाय ॥१६॥ वैशंपायन बोले; जब इस प्रकारसे कहे गये तब वे पुण्यशालीमुनि संदेहरहित हो यथायोग्य सत्कार करने लगे ॥१७॥ आपका कहना ऐसेहीहै इस प्रकारसे हाथ जोड शंकरसे कहने लगे हमारा सन्देह सब दूर हुआ आपका अर्थ ग्रहण किया ॥ १८ ॥ इसी निमित्त

हम आपके स्थानमें आये थे आप दोनोंके संगमसे हमारा मोह नष्ट हो गया है ॥१९॥ हे देवेश ! आप जैसा कहते हो उसीसे हमारा परम मंगल होगा जैसे भगवान् रुद्रने कहा है उसीके अनुसार नारायणमें यत्न करेंगे इस प्रकार वे मुनि प्रसन्न हो, केशवको प्रणाम करने लगे ॥ २० ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भविष्यपर्वणि भा० कैलासयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः॥८९॥वैशंपायन बोले; तब भगवान् रुद्र सबको विस्मय कराते हुए विश्वेश्वर हरिकी स्तुति करने लगे वह अर्थवाली स्तुति मुनिजनोंके श्रवण करते होने लगी॥१॥महेश्वर बोले; वासुदेव बुद्धिमान् आपके निमित्त

यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम् ॥ यथाह भगवान् रुद्रो यतामः सततं हरौ ॥ इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् ॥२०॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥८९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव ॥स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् ॥ अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा ॥१॥ महेश्वर उवाच ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥२॥ नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ॥ यः शीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान्विभुः ॥३॥ नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ॥ यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥४॥ नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे॥ यो दधार करेणासौ कुश चीरादि यत्सदा ॥५॥ दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ॥ सर्वान्संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा ॥ ६ ॥

नमस्कार है जिनकी कांतिसे सब जगत् भासमान होता है. हे अच्युत ! आपको नमस्कार है ॥२॥ भगवान् देव नित्य सूर्यात्माके निमित्त नमस्कार है जो विभु चंद्रमा इन सब लोकोंको शीतल करता है ॥ ३ ॥ हे विष्णु ! उस सोमात्माको हम नित्य नमस्कार करते हैं जो भूतभावन विश्वात्मा प्रजाको प्रसन्न करता है ॥ ४ ॥ उस सर्वात्मा वागात्मा देवके अर्थ नमस्कार है जो सदा हाथमें कुश चीरादि धारण करते हैं ॥ ५॥ तथा सब वेदोंको धारण करनेवाले ब्रह्मात्माको नमस्कार है, जो सबके संहारकर्ता संहाररूप विश्वदृक हैं ॥ ६ ॥

आपही क्रोधात्मा विरूप हो रुद्रात्मा आपके निमित्त नमस्कार है आप सृष्टिमें सबके स्रष्टा और प्राणियोंके प्राण देनेवाले हो ॥ ७ ॥ आप अज विष्णु हो विश्वके सृजनेवाले आपको नमस्कार है, आदिप्रकृतिके मूलभूतोंके उत्पन्न करनेवाले ॥८॥ देवदेवेश प्रधानपुरुषके निमित्त नमस्कार है, आप पृथ्वीमें गंधरूपसे, प्राणियोंमें प्राणरूपसे स्थित हो ॥ ९ ॥ दृढ दृढरूप गंधात्मा आपको नमस्कार है, सर्वत्र प्राणियोंके सुख देनेवाले रसरूप आपको नमस्कार है ॥ १० ॥ विश्वरूप रसरूपके निमित्त नमस्कार है, तेजमें सूर्यरूप और आपही प्राणियोंपर दया करनेवाले

क्रोधात्मासि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः॥ सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥७॥ अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः॥आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥ ८ ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः ॥ पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ॥९॥ दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः ॥ अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ १० ॥ नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः ॥ तेजसा भास्करो यस्तु घृणो जन्तुहितः सदा ॥११॥ तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे ॥ वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥ १२ ॥ नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे ॥ आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥१३॥ नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥ यो दधार जगत्सर्वं मायामानुषदेहवान् ॥१४॥ नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने ॥ नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥१५॥ अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः ॥ हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥ १६ ॥

हो ॥ ११ ॥ भास्कररूप देव जगन्नाथके वास्ते नमस्कार है जहां वायु स्पर्शगुणवाला शीतोष्ण सुखदुःख देनेवाला है ॥ १२ ॥ वायुरूप स्पर्शात्मा हरिके निमित्त नमस्कार है आकाशमें सबकी श्रोत्रक्रिया प्रवृत्त करनेवाला शब्द स्थित है॥१३॥हे विष्णु भगवन् ! सर्वात्मारूप आपको नमस्कार है, जो मायासे मनुष्यदेह धारण करके जो सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है ॥ १४ ॥ आप मायि जगन्नाथ अमायि देनेवालेके निमित्त नमस्कार है, आदिबीज निर्गुण गुणात्माके निमित्त नमस्कार है॥१५॥अचिन्त्य सुचिन्त्य चिन्त्यात्माके निमित्त नमस्कार है हर हरिरूप ब्रह्म वेद-

दाताके अर्थ नमस्कार ॥ १६ ॥ ब्रह्मवित् ब्रह्म ब्रह्मात्मा आपके निमित्त नमस्कार है सहस्रशिर सहस्रकिरणवालेके वास्ते नमस्कार है ॥१७॥ सहस्र-मुख सहस्रनेत्र विश्व विश्वरूप विश्वके कर्ताके निमित्त नमस्कार है ॥१८॥ विश्ववक्त्र भूतावास आपके निमित्त नमस्कार है.हे हरे!इन्द्रिय इन्द्ररूप विषय आपको नमस्कार है॥१९॥अश्वशिरस् वेदाभरणरूप आपके निमित्त नमस्कार है अग्नि अग्निपति ज्योतियोंके पति आपकोनमस्कार है ॥२०॥ सूर्य सूर्यपुत्र तेजोंके पति आपको नमस्कार है सोम सौम्य शीतात्मा आपके निमित्त नमस्कार है॥२१॥यज्ञ इज्य हवि हव्यसंस्कृत स्रुव पात्र यज्ञांग

नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ॥ नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥ १७ ॥ नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥१८॥ विश्ववक्त्रे नमो नित्यं भूतवास नमो नमः॥ इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥ १९ ॥ नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ॥ अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥ सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः ॥ नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥ २१ ॥ नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ॥ नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥२२॥ नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ॥ वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ॥२३॥ गदिने खड्गिने तुभ्यं शङ्खिने चक्रिणे नमः ॥ शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥२४॥ बुद्धिप्रियाय बुद्धायप्रबुद्धाय सुखाय च ॥ हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो ॥ २५ ॥ नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ॥ नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥ २६ ॥ नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ॥ नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ॥ २७ ॥

पर आपके निमित्त नमस्कार है ॥२२॥ प्रणव देह क्षर अक्षर वेद वेदरूप शस्त्री शस्त्ररूपीआपके निमित्त नमस्कार है ॥ २३ ॥ गदा खड्ग शंख चक्र शूल चर्मधारी वरदात्मा नित्य आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ बुद्धिप्रिय बुद्ध प्रबुद्ध सुख हरि विष्णु सर्वात्मा गुरु आपको नमस्कार है॥२५॥सर्व-लोकेश सबके कर्ता आपको नमस्कार है स्वभावशुद्ध यज्ञवाराहके निमित्त नमस्कार है ॥२६॥ विष्णु विष्णु विष्णु हरिके वास्ते नमस्कार है वासुदेव

वासुदेव बुद्धिमान्के निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ कृष्ण कृष्णसर्वावासके निमित्त नमस्कार है. फिरभी आपके निमित्त नमस्कार है.हे जनार्दन ! आप लोककी पालना करो॥२८॥इस प्रकार जगन्नाथ स्तुतिकर मुनिश्रेष्ठोंसेकहने लगे इसस्तोत्रका पाठकर नित्य केशवकी निकटता करो॥२९॥ वह सब भूतोंके शरण्य हैं आपका मंगल विधान करेंगे और जो इस पापमोचन स्तोत्रको धारण करेंगे॥३०॥उन पढने सुननेवालोंपर हरि प्रसन्न होंगे वह धर्मात्मा मंगल देंगे इसमें विचारकरनेकी आवश्यकता नहीं॥३१॥भक्तवत्सल केशवको अवश्यही मनसे ध्यान करना चाहिये जो आप

नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः॥ नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन ॥२८॥ इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ॥ इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् ॥ २९ ॥ शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ॥ ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् ॥ ३० ॥ तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ॥ श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥ अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् ॥ श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः ॥३२॥ इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ॥३३॥ नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निवृति माययुः ॥ तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ॥ विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ॥३४॥ लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा ॥ जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥३५॥ आरुह्य भगवान्विष्णुर्गरुडं पक्षिपुङ्गवम् ॥ शङ्खी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान् ॥ ३६ ॥ यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु ॥ सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम् ॥३७॥

शंसितव्रतवालेमंगलकी इच्छा करते हो तो॥३२॥ यह कह भगवान् रुद्र वहांही अन्तर्धान होगये, गण और उमाके सहित जब भूतात्मा अन्तर्धान हुए॥३३॥तब मुनि उनको नमस्कार कर परमनिवृत्तिको प्राप्त हुए उन नारायण हरिको परमतत्त्व मानकर परम विस्मयको प्राप्त हो अपनेको कृतार्थ मानते हुए ॥ ३४ ॥ और लोकपालभी प्रेमसेहरि विष्णुको नमस्कार करके हे राजन् ! अपने समूहोंसे सहित अपने २ स्थानकोगये ॥३५॥ और भगवान् विष्णुभी पक्षिश्रेष्ठ गरुडके ऊपर चढकर शंख चक्र गदाखड्ग शार्ङ्ग धनुष लिये तरकस धारण किये ॥३६॥ बदरिकाश्रमको यथागति गये

और वह पुण्डरीकाक्ष संध्याके समय नित्य मुनिजनोंसे सेवित स्थानको प्राप्त हो॥ ३७॥ वहां जाकर नम्र हुए हरि मुनियोंसे अर्चित हो आसनपर सुखसे स्थित हुए ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ वैशंपायन बोले; इसी समय राजोंमें बली पौंड्र राजा बली पराक्रमसम्पन्न योधा॥ १। सदा वृष्णि वंशियोंका शत्रु कृष्णसे द्वेष करनेवाला, बलसे सब राजाओंको बुलाकर सभामें इस प्रकारके वचन कहने लगा।।२॥हमने सब पृथ्वी और सब राजाओंको जीत लिया है परन्तु कृष्णके आश्रित हो सब वृष्णिवंशी बडे गर्वित हो

तत्र गत्वा यथायोगं विनम्य हरिरीश्वरः ॥ अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने ॥३८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः ॥ बलवान्सत्त्वसंपन्नो योद्धा विपुलविक्रमः॥ १॥वृष्णिशत्रुस्सदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा ॥ नृपान्सर्वान्समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥२॥ जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः ॥ वृष्णयस्ते बलोन्मत्ता कृष्णमाश्रित्य गर्विताः ॥३॥ दास्यन्ति मे करं सर्वे नहि ते कृष्णसंश्रयात् ॥ स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥ ४ ॥ अहं चक्रीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा ॥ शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥५॥ एवमादिर्महागर्वस्तस्य संप्रति वर्त्तते ॥ लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥६॥ अगृह्णन्मम तन्नाम गोपो मदबलान्वितः॥तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ॥७॥ गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम्॥सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम्॥ ८॥अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः॥ममाप्येतद्धनुर्दिव्यं शार्ङ्गनाम महारवम्॥९

रहे हैं ॥३॥ मुझे सब कर देते हैं परन्तु वे कृष्णके आश्रयसे कर नहीं देते हैं, वह कृष्ण चक्रके बलसे मेरी अवज्ञा करके स्थित हुआ है॥४॥ मैं चक्रधारी हूं यह गर्व सदा उस गोपको रहता है; शंख चक्र गदा शार्ङ्ग धनुष सदा धारण किये रहता है॥५॥इत्यादि और भी उसको अनेक प्रकारसे गर्व है और लोकमें जो मेरा नाम वासुदेव है॥६॥सो बलसे मत्त हो उसने वह मेरा नाम ग्रहण कर लिया है उसके चक्रसे मेरा चक्र बहुत तीक्ष्ण है ॥७॥ सुदर्शन चक्र जो मेरा है वह सदा उसके सहस्र आरेवाले महाघोर चक्रका नाशक है ॥८॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठो ! उस गोपका चक्र मेरे चक्रसे

हत होनेके योग्य है; और बडे शब्दवाला शार्ङ्ग नाम धनुष मेरे पासभी है॥९॥तथा कौमोदकी नाम दृढ गदा मेरे पास है जो सहस्र भारवाले काला-यस लोहकी निर्मित है॥१०॥इस प्रकार नंदक नाम महादृढ खड्ग मेरे पास रहता है यह कालकाभी काल खड्ग कृष्णके खड्गका नाशक है॥११॥ हे राजो! सो यह गदा खड्ग चक्र तरकसधारी कृष्ण युद्धमें जीतने योग्य है इसमें विचार करना नहीं ॥ १२ ॥ हे राजो ! नित्यही मुझको गदा चक्र

गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा ॥ कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया ॥१०॥ खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः ॥ अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खड्गस्य नाशकः ॥ ११ ॥ तत्रायं च गदी खड्गी शंखी चक्री तनुत्रवान् ॥ युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१२॥ मां संब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा ॥ शङ्खिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः॥१३॥ वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम् ॥ एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥ १४ ॥ सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः ॥ मां तथा यदि न ब्रूत दण्ड्या भारशतैः शतम् ॥ १५ ॥ सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य बहुशस्तदा ॥ तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा ॥१६॥ केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः ॥ रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥१७॥

शार्ङ्ग शंखधारी वीर कहा करो ॥१३॥ मुझको वासुदेव कहो उस यदुकुलोत्पन्नको नहीं एकही मैं वासुदेव हूं उस गोपके बालकको मारकर प्रसन्न हूंगा ॥१४॥ कारण कि उसने मेरे सखा नरकासुरको मारा है और जो मुझे वासुदेव नहीं कहेगा उससे सौ भार[1] सुवर्ण दण्ड लिया जायगा॥१५॥ अनेक सुवर्णके निष्क और बहुत धान्य दण्ड लिया जायगा राजाके मनसे दुस्सह यह बात कहनेपर ॥१६॥ कोई बली राजा लज्जित हो वहां

१ वीस तुलाका एक भार होता है.

बैठे रहे, वे सदा उस राजाके बलवीर्यके ज्ञाता थे ॥१७॥ और दूसरे राजा सत्य है ऐसेही है इस प्रकार कहने लगे;कोई बलमदसे युक्त हो बोले; हम केशवको रणमें जीतेंगे ॥ १८ ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भविष्यपर्वणि भाषायां पौण्ड्रकोक्तावेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ वैशंपायन बोले; उस समय सर्वलोकके जाननेवाले मुनिश्रेष्ठ नारदजी कैलासके शिखरसे उतर कर पौंड्रकके नगरको चले ॥ १ ॥ आकाशमार्गसे चल राजाके उत्तम नगरमें आये और द्वारपालसे आज्ञा पाकर राजाके घरमें प्रविष्ट हुए ॥ २ ॥ वहां महामुनिने राजासे अर्घ्य पाद्य आदि सत्कार प्राप्त किया और सुन्दर

अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः ॥ अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे ॥ १८ ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भ० पौण्ड्रकोक्तावेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः ॥ नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥ १ ॥ अवतीर्य नभोभागात्प्रत्यागम्य नरोत्तमम् ॥ द्वाःस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ २ ॥ अर्घादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः॥निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥३॥ कुशलं पृष्टवान्भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् ॥ उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः॥४॥भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः॥ प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु॥५॥ सर्वत्रगो निराबाधो गन्ता सर्वत्र सर्वदा ॥ अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे नहि किञ्चन ॥ ६ ॥ नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् ॥ तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः ॥ ७ ॥

वस्त्र बिछे आसनपर विराजमान हुए ॥३॥ तब राजाने मुनिराजसे कुशल पूछी तब नारदजीसे पौंड्रकने कहा ॥ ४ ॥ आप सर्वत्र कुशल और सब कार्यमें पण्डित हो देवसिद्ध महात्मा गन्धर्वोंमें प्रसिद्ध हो ॥ ५ ॥ आप सर्वत्र बाधारहित होकर गमन कर सकते हैं. हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आपको ब्रह्माण्डमें कोई स्थान अगम्य नहीं है ॥ ६ ॥ हे नारदजी ! कहिये आप जहां जहां गमन करते हो वहां वहां तपसिद्धिके लोक विख्यात हैं वहीं वहीं मैं पौंड्र वासुदेव नामसे विख्यात हूं ॥ ७ ॥

शंख चक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग तरकस धारण किये राजसिंहोंका जीतनेवाला सदासबका दाता हूं॥८॥सब राज्यका भोक्ता बलसेराजोंका शासन करनेवाला महाबली हूं;शत्रुकी सेनाको अजेय और अपने जनोंकीरक्षा करता हूं ॥९॥ और जो यह गोप कृष्ण वासुदेव कहाता है उस मेरे नाम धारण करनेवालेमें इतना वीर्य नहीं है॥१०॥ वह गोप बालकपनकी चंचलतासे वृथा मेरा नाम धारण करता है. हे विप्रेन्द्र ! ऐसा निश्चय कहो कि मैंही एक स्थित रहूं॥११॥इस जगत्में उस बलिष्ठ यदुको जीतकर मैंही वासुदेव कहाऊं और बलसे सब वृष्णियोंको मार उस पुरीको नष्ट करूंगा॥१२॥

शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान् ॥ विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥ ८ ॥ भोक्ता राजस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद्बली॥अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य ह ॥ ९ ॥ योऽद्य गोपकनामासौ वासुदेवेति शब्दितः ॥ तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे ॥ १० ॥ स हि गोपो वृथा बाल्याद्धारयत्येव नाम मे ॥ इदं निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम् ॥ ११ वासुदेवो जगत्यस्मिन्निर्जित्य बलिनं यदुम् ॥ वृष्णीन्सर्वान्बलात्‌ क्षिप्त्वा निहनिष्ये च तां पुरीम् ॥ १२ ॥ द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते ॥ एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ॥ १३ ॥ अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम ॥ नानामन्त्राः सहस्रं च गजा नियुतमेव च ॥ १४ ॥ एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे ॥ तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन्पुरे मम ॥ १५ ॥ इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम् ॥ प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः ॥ आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥ १७ ॥

उस विष्णु की स्थान की द्वारकामें जाकर युद्ध करूंगा और यह सब बली राजा मेरी सहायताको आये हैं ॥ १३ ॥ वेगवाले घोडे और वायुवेगके समान वेगगामी मेरे रथ हैं अनेक मंत्र सहस्रों और नियुत (लक्ष)हाथी मेरे यहां विद्यमान हैं ॥ १४ ॥ इस बली सेनासे रणमें केशवको मैं मारूंगा. हे ब्रह्मन् ! इस कारणसे हमारे आगे कहिये ॥१५॥ इन्द्रकाभी क्या ऐश्वर्य है. हे नारदजी ! सो आप कहिये हे विभो !हे तपोधन ! यह मेरी प्रार्थना है आपको नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ नारदजी बोले;जहांतक ब्रह्माण्डकी स्थिति है मैं वहांतक सब जगह जा सकता हूं सब स्थानमें

गमन करनेवालोंमें मुझे आचार्य जानिये ॥ १७॥ परन्तु हे राजन्! चक्रपाणि जनार्दन देवके पृथ्वी शासन करनेपर किस प्रकार तुम ऐसे वचन कहनेका साहस करते हो ॥१८॥सर्वत्रगामी विष्णु देव बंधुओंसहित दुष्टोंको मारकर स्थित हैं इन हरिके स्थित होनेमें वासुदेव नाम किसमें स्थित हो सकता है ॥१९॥ सूर्यके प्रकाश पर्यन्त पृथ्वीके पालन करनेवाले श्रीकृष्णके होते मूढ और प्राकृत जनके सिवाय ऐसा कौन कह सकता है॥२०॥ सर्वत्रगामी विष्णु तेरा दर्प चूर्ण करेंगे वह शार्ङ्गधनुष गदा धारण करनेवाले विष्णु अचिन्त्य प्रभाववाले हैं॥२१॥वह आदिदेव पुराणात्मा तेरा दर्प चूर्ण

किन्नु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम ॥ महीं शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ १८ ॥ विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान् हत्वा सबान्धवान् ॥ वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन् हराविति ॥१९॥ को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमति ॥ अज्ञानाद्वक्तुमेवं च समर्थाः प्राकृता जनाः ॥२०॥ हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति ॥ अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ २१ ॥ आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति ॥ हास्यमेतन्महाराज यच्च वै तत्र संस्थितम् ॥ २२ ॥ शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन्महाघोरं न दाप्यते ॥ अतीव हासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्त्तते ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबलान्वितः ॥ नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि ॥ १ ॥ किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाहं च द्विजैः सह ॥ गच्छ त्वं काममथवा मुने शापप्रदः सदा ॥२॥ भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं काममद्य हि ॥ इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारदः ॥ ३ ॥

करेंगे. हे महाराज ! इसी बातकी तुम इच्छा करते हो यह हास्यकी बात है॥२२॥ उनका महाघोर शार्ङ्ग धनुष और खड्ग तुम्हारे धनुषसे न टूटेगा यह तुम्हारी बातें बडी हास्यकी हैं ॥२३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥ वैशंपायन बोले; तब मदके बलसे क्रोधित हो पौंड्रक राजा राजसभामें नारदजीसे कहने लगा ॥ १ ॥ हे विप्रर्षे ! यह तुम क्या कहते हो मैं ब्राह्मणोंके सहित राजा हूं. हे मुने ! आप शाप देनेवाले हो यथेच्छ गमन कीजिये ॥२॥ हे महाबुद्धे ! मुझे आपसे भय है आप अभी गमन

कीजिये ज्यों राजाने ऐसा कहा तब नारदजी मौन धारण किये ॥३॥ आकाशमार्गसे केशवके निकट गये वह विष्णुके निकट जाकर विष्णुसे सब वर्णन करते हुए ॥४॥ उन यथेष्ट कहनेवालेसे विष्णु भगवान् कहने लगे. हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रातःकालमें उसका अभिमान नष्ट करूंगा ॥५॥ ऐसा कह प्रभु बदरीकाश्रममें विरामको प्राप्त हुए तब वह महाबाहु पौण्ड्र बहुतसी सेना साथ लिये ॥ ६ ॥ अनेक सहस्र घोडे और बहुतसे हाथियोंसे युक्त करोडों शस्त्रोंसे युक्त सत्यसंगर वह राजा ॥७॥ सहस्रों प्यादोंके साथ एकलव्यादि राजाओंसे सेवित ॥८॥ आठ सहस्र रथ दस सहस्र हाथी एक

जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः ॥ स गत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति ॥ दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम ॥५॥ इत्युक्त्वा विररामैव तस्मिन्बदरिकाश्रमे ॥ ततः पौण्ड्रे महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः ॥६॥ अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वितः ॥ शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसंगरः ॥ ७ ॥ अनेकशतसाहस्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः ॥ एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समन्ततः ॥ ८ ॥ अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा ॥ अर्बुदं पत्तिसंघानां तद्बलं समपद्यत ॥९॥ एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन्नृपसत्तमः ॥ विरराज महाराज उदयस्थो महारविः ॥ १० ॥ स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु ॥ पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥ ११ ॥ ययुर्विविधशस्त्रौघान्संपतन्तो महाबलाः ॥ द्वारकां वीर्यसंपन्नां महाघोरां नृपोत्तमाः ॥ १२ ॥ रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम् ॥ पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम् ॥ १३ ॥ शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम् ॥ किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्राससंयुतम् ॥ १४ ॥

अर्बुद पैदल लेकर चला ॥ ९ ॥ इतनी सेना लिये संग्रामके निमित्त चलता हुआ राजा उदय हुए सूर्यके समान विराजमान हुआ ॥ १० ॥ वह आधी रातके समय द्वारकापुरीको गया और उस अंधेरीरातमें पैदल मसाल लेकर चले ॥ ११ ॥ और वे महाबली अनेक शस्त्र लिये चले वे श्रेष्ठ राजा महाघोर वीर्य सम्पन्न द्वारकापुरी को ॥१२॥ बडे बडे रथोंमें बैठे शस्त्रसमूह लिये पट्टिश तल्वार गदा परिघ लेकर घेरते हुए ॥ १३ ॥ शक्तितोमरसे संकीर्ण ध्वजमालासे युक्त किंकणीजाल और शर तल्वार प्राससे संयुक्त ॥ १४ ॥

महाघोर महारौद्र प्रलयके मेघके समान धनु गदासे युक्त महावाद्यके समान बडी ॥१५॥ अग्नि सूर्यके समान आकारवाली सेना द्वारकाको चली उस प्रकार वह बलवान् राजा प्रकाशमें चला ॥ १६ ॥ और जगन्नाथ कृष्ण तथा वृष्णियोंके मारनेकी इच्छा करने लगा और वह महाबुद्धिमान् राजा मुख्य २ सेना साथमें लिये था ॥ १७ ॥ पुरके द्वारमें प्राप्त हो यत्नसे सेनाको स्थापन कर स्थित हुए सब राजोंसे इस प्रकार पौंड्रक कहने लगा ॥१८॥ हमारा नाम सुनाकर भेरी बाजा बजाया जाय या तो युद्ध करो या हमारी देने योग्य वस्तुकर रूपसे प्रदान करो ॥१९॥ महाबली

महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम् ॥ धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत् ॥१५॥ अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु ॥ गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान्बलवान्नृप ॥१६॥ हन्तुमैच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समन्ततः ॥ आकर्षन्बलमुख्यांस्तान् राज्ञः सर्वान् महाद्युतिः ॥१७॥ पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः ॥ इदं प्रोवाच राजा तु नृपान्सर्वानवस्थितान् ॥ १८ ॥ ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम् ॥ युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम् ॥१९॥ आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीरवत्तरः॥ हन्तुकामः समग्रान्वः कृष्णबाहुबलाश्रयान् ॥२०॥ इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान्बहून् ॥ दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बह्वचः शतसहस्रशः ॥२१॥ इतश्चेतश्च राजानो युद्धयन्ते युद्धलालसाः ॥ पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तथा ॥ २२ ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः ॥ कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥ २३ ॥ कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च ॥ कुतो न बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः ॥ इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते ॥ २४ ॥

पौंड्रक राजायुद्ध करनेको आया है और कृष्णके बाहुबलका आश्रय किये तुमसबके मारनेकी इच्छा करता है॥२०॥इसप्रकार आज्ञासे वे सब भेजे जाकर घोषणा करने लगे और सैंकडों मसालें जलाई गईं ॥२१॥इधर उधरसे वे शस्त्रधारी क्षत्रिय राजा पुरीको घेरकर युद्ध करनेलगे ॥ २२ ॥ शस्त्रधारा लिये सिंहनाद करने लगे और बोले; वह वृष्णियोंमेंउत्तम राजा जगत्पति कहां है ॥ २३ ॥ वीर सात्यकि और हार्दिक्य कहां है सब

यादवोंमें बली बलभद्र कहां है, इस प्रकार वे सब राजा कहने लगे ॥ २४ ॥ सब ओरसे बडे बडे शस्त्र लिये तथा अनेक शर और चाप धारण किये युद्धके निमित्त वख्तर धारण किये चारों ओरसे द्वारकापुरीको घेरने लगे ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ वैशम्पायन बोले; तब सब यादव इस प्रकार सेनाका संचय देखकर कि महाशस्त्र धारियोंद्वारा रात्रिमें व्यसन प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ महावातसे उद्भूत कल्पान्तमें युद्धके समान है, तब वेभी युद्धकी इच्छासे शस्त्र लेकर स्थित हुए सब शस्त्रयोधी

आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे ॥ युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययुर्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः ॥२६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् ॥ रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १ ॥ महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते समरोपमम् ॥ सन्नद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः॥२॥ गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः॥ सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा॥३॥ उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलाः ॥ अन्ये च यादवाः सर्वे कवचप्रग्रहे रताः ॥४॥ समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः॥ शस्त्रिणः खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः ॥ ५ ॥ युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः ॥ रथिनो गदिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा ॥ ६ ॥ नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः ॥ निर्ययुर्नगरात्तूर्णं दीपिकाभिः समन्ततः ॥ ७ ॥ कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसात्वताः ॥ दीपिकादीपितो देशो निस्तमाः समपद्यत ॥ ८ ॥

यादव हाथोंमें मशाल लिये तथा सात्यकि बलभद्र हार्दिक्य निशठ ॥ २॥३ ॥ महाबुद्धि उद्धव महाबली उग्रसेन औरभी सब यादव कवच पहरे हुए ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण युद्धमें कुशल रात्रिमें युद्ध करनेकी इच्छासे तय्यार शस्त्र खड्ग धारे सब प्रकारसे चतुर ॥ ५ ॥ बडी भुजावाले युद्ध करनेमें तत्पर रथमें बैठनेवाले गदावाले रथी युद्धमें तत्पर आयुध लिये ॥ ६ ॥ नित्ययुक्त महात्मा धनुषधारी पुरुषोत्तम प्रकाश किये बहुत शीघ्र नगरसे बाहर निकले ॥ ७ ॥ पौंड्रक कहां है, इस प्रकार वे सब कहते चले, मशालोंसे सब प्रकार उजाला हो गया ॥ ८ ॥

जब कहीं अंधकार न रहा तब वृष्णियोंका शत्रुओंके साथ महाघोर संग्राम हुआ॥९॥तब रोमहर्षण तुमुल संग्रामके होनेमें घोडे घोडोंके और हाथी हाथियोंके साथ भिड गये॥१०॥रथ रथोंसे रथवान् रथवानसे खड्गवालें खड्गवालोंसे गदावाले गदावालोंसे भिड गये ॥११॥ यह मिलाप परस्पर बडा दारुण युद्ध हुआ उनका शब्द महाप्रलयके संक्षोभके समान हुआ ॥१२॥ चारों ओरसे धावमान होते हुए राजोंको प्रहार करने लगे यह महाबाहु खड्गधारी बली पतित होता है ॥ १३ ॥ अहो यह बाण तौ बडा घोर है यह गदा धारण किये राजा हम सबको बाधा देता है॥ १४ ॥ यह रथी

ततो वितिमिरो देशः समन्तात्प्रत्यपद्यत ॥ युद्धं समभवद्धोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह ॥९॥ ततो महान् समभवत्सन्नादो रोमहर्षणः॥ हया हयैः समायुक्ता गजाश्च गजयूथपैः॥१०॥रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा ॥ खड्गिनः खड्गिभिः सार्द्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ॥११॥ परस्परव्यतीकारो रण आसीत्सुदारुणः ॥ महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ॥ १२ ॥ धावन्तः प्रहरन्त्येतान् हन्त्येतान्सर्वतो नृपान् ॥ अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ॥१३॥ अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः ॥ गदी चायं महावीर्यः सर्वान्नो बाधते नृपः ॥१४॥ अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान् ॥ यादृशः सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली ॥१५॥ अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतो दिशम् ॥ गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति ॥१६॥ अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान्वातसन्निभः ॥ शराञ्छरैः समाहन्ति दण्डान्दण्डैर्जगत्पते ॥१७॥ कुन्तान्कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा॥परिघान्परिघैः सार्द्धं शूलाञ्छूलैः समन्ततः ॥ १८ ॥

धनुष गदा बाण तर्कस लिये सब ओरसे बरछी लियेकी समान धावमान होता है ॥१५॥ यह बडा शूल लिये चारों ओरसे धावमान होता है यह हाथी बडे दांतवाला सब ओर धावमान होता है॥१६॥ यह शूर सब ओरसे पवनके समान वेगसे धावमान होता है शरोंको शरोंसे दण्डोंको दण्डसे हनन करता है॥१७॥ बरछीवालोंको बरछीसे गदावालोंको गदासे परिघवालोंको परिघोंसे शूलवालोंको चारों ओर शूलसे हनन करने लगे ॥१८॥

हे महाराज! इस प्रकार उनका घोर संग्राम हुआ बडा संग्राम और बडाही शब्द हुआ॥१९॥संग्राममें बडे शब्दवाले प्राणी शब्द करने लगे शंखोंका घोर शब्द होने लगा॥२०॥यह रात्रिमें घोरशब्द युद्धका हुआ जब इस प्रकार शत्रुओंके साथ यादवोंका घोर संग्राम हुआ ॥२१॥ कोई विकल हो पृथ्वीपर गिरते हुए कोई हाथ चरण शिरहीन हो पृथ्वीमें गिरे॥२२॥ शस्त्रधारी महाबली राजा पृथ्वीमें गिरने लगे कोई वख्तर भिन्न होकर सहस्र प्रकार पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २३ ॥ परस्पर युद्ध कर एक दूसरेके वधकी इच्छा किये शस्त्र त्यागे सब प्रकार क्षत शरीर हुए ॥ २४ ॥ यमराज्यकी वृद्धि करनेवाले

एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम् ॥ संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत् ॥ १९ ॥ भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च ॥ प्रादुरासन्सहस्राणि शंखानां भीमनिःस्वनः ॥२०॥ रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः ॥ वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह ॥२१॥ केचिद्ग्रस्ताः समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः ॥ केचित्पतितश्लिष्टाश्च विप्रकीर्णशिरोधराः ॥२२॥ पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्रपाणयः ॥ केचित्तु भिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा ॥२३। परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः॥ न्यस्तशस्त्रा महात्मानः समन्तात्क्षतविग्रहाः ॥२४॥ पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविवर्द्धनाः ॥ एवं ते निहता राजन्योधिताःसर्वएव तु ॥२५॥ एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः ॥ धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः ॥ २६ ॥ शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामास यादवान् ॥ परं शतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥२७॥ वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः ॥ युद्धचतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥२८॥ निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥

प्राणरहित हो पृथ्वीमें गिरने लगे इस प्रकार सब प्रकार युद्ध करनेवाले राजा मृतक हुए॥२५॥इसी समय निषादपति शूर एकलव्य राजा कालान्तक यमके समान घोर धनुष ग्रहण कर ॥ २६ ॥ सहस्रों बाणोंसे यादवोंका मर्दन करने लगा वह मर्मभेदी सैंकडों बाण थे ॥ २७ ॥ वह चारों ओरसे सब यादवोंकी सेनाको नष्ट करने लगा और वीर्यवान् शस्त्र लिये क्षत्रियोंसे युद्ध करने लगा ॥२८॥ बडे तीक्ष्ण पचीस बाणसे निशठको दश बाणसे

सारणको पांच बाणसे हार्दिक्यको॥२९॥नव्वे बाणसे उग्रसेनको सात बाणसे वसुदेवको दशसे उद्धवको पांचसे अक्रूरको विद्ध किया॥३०॥इसप्रकार तीक्ष्ण बाणोंसेसबको विद्धकिया इसप्रकारयादवी सेनाको विद्रावणकर अपना नाम सुनाकर वहबली॥३१॥एकलव्य बली यदुओंको व्यथित करने लगा और बोले अब वोह वीर सात्यकि कहां जाता है॥३२॥और मदमत्त हलधर गदाधर कहां जाता है इस प्रकार सिंहोंको विस्मित करता हुआ सिंहनाद करने लगा॥३३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकवधे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥वैशंपायन बोले; जब इस

उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः॥ उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः॥३०॥ एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः॥ विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान्॥३१॥ एकलव्यो यदुवृषान्वीर्यवान्बलवानहम्॥ इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः॥३२॥ मदमत्तो हली साक्षात्क्व यातीह गदाधरः॥ इत्याह सिंहनादेन सिंहान्विस्मापयन्निव॥३३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि० पौण्ड्रकवधे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥ वैशम्पायन उवाच॥ निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि॥ भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः॥१॥ दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः॥ जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम्॥२॥ ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान्स्वकान्॥ शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैःकुन्तैः पुरीमिमाम्॥३॥ कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतोदिशम्॥ कर्षणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः॥४॥भिद्यन्तां प्राकारचयाः प्रासादाश्च समन्ततः॥ गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः॥५॥ गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ॥ ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु॥६॥

प्रकार यादवीसेना और वृष्णिवीर निवृत्तहुए औरउनके भीतहोने तथाअनेक वीरोंके मरनेमें॥१॥दीपिका शान्तहोने और चारोंओर निश्शब्द होने पर उन्होंने जान लियाकि हमने वृष्णिवंशियोंको जीत लिया॥२॥तब महावीर पौंड्र अपनी सेनासे कहनेलगा हेराजेन्द्रो!शीघ्रतासे जाकर टंक और बरछोंसे इस पुरीको खोदो॥३॥कुहाडे कुन्तल और पाषाण सबओर डालो खैंचनेयोग्य पत्थरोंको सब ओर ले चलो॥४॥ इसका परकोटा और प्राकार सब ओरसे तोड डालो सब राजकन्या दासी करनेको ग्रहण करो॥५॥ मुख्य रत्न और धन ग्रहण कर लो यह आज्ञा सुन उन राजोंने कहा

ऐसेही होगा ॥६॥ पौंड्रककी आज्ञासे कुठारोंद्वारा प्राकारको ढाने लगे रसआदिके संचयवाले प्रासाद और प्राकार भग्न करने लगे॥७॥तब चारों ओरसे महाशब्द प्रगट हुआ जिस समय बलपूर्वक टांकियोंसे प्रासाद छेदित होने लगे ॥८॥ हे महाराज! उस समय पूर्वके द्वारसे प्राकार कुछ गम्न हो गया उस महाघोर शब्दको सुनकर सात्यकि क्रोधसे मूर्छित हो गया ॥ ९ ॥ कि यादवेश्वर कृष्ण मुझमें यह सब सौंपकर अविनाशी शंकरके देखनेको कैलासपर्वतमें गये हैं॥१०॥द्वारकापुरीकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये यह मनमें विचार शीघ्रतासे धनुष लाकर ॥११॥ महात्मा दारुकके पुत्रसे

कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया ॥ प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान्रससंचयान् ॥ ७ ॥ अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः ॥८॥ पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः ॥ श्रुत्वा शब्दं महाघोरं सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ॥९॥ मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः ॥ गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ १० ॥ अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम् ॥ इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम्॥११॥ रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः ॥ पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि ॥१२॥ धनुर्महत्तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसंपातदुः-सहम् ॥१३॥ अङ्गदी कुण्डली तूली शरी चापी गदासिमान् ॥ ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन्केशवं वचः ॥१४॥ दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः ॥ तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम् ॥१५॥ गदी शरी महावीर्यः प्रायाद्रणचिकीर्षया ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तो मुञ्चन्तो भैरवं रवम् ॥१६॥ उद्धवोऽपि बली साक्षाद्गजमारुह्य सत्वरम् ॥ मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतिमत्तरम् ॥१७॥

लाये महारथमें चढकर जो उसके द्वारा सजाया गया था और स्वयं उसका यन्ता होकर॥१२॥बडा धनुष ग्रहण कर आशीविषके समान घोर बाण लेकर दुस्सह शस्त्रपात सहनेवाला घोरकवच पहर कर॥१३॥बाजूबंद कुंडल धारण कियेशर और गदा तल्वार लिये श्रीकृष्णके वचन स्मरण करता सात्यकि युद्ध करनेको चला ॥१४॥ मशालें जलवाकर सात्यकि उस स्थानमें पहुँचा, इसी प्रकार प्रकाशमान रथमें स्थित हो बलदेवजी चले॥ १५ ॥ यह महाबली गदा और धनुषबाणको हाथमें लिये लडाईकी इच्छासे चले, सिंहनाद और भयंकर शब्दकरते चले ॥ १६ ॥ बली ऊधोभी हाथीके

ऊपर चढकर जो मत्त और महाघोर संग्राममें नीतियुक्त था ॥१७॥ यह ऊधो परमप्रसन्नतासे संग्राममें राजनीति विचारते चले दूसरे वृष्णिवंशी संग्रामकी इच्छासे चले ॥ १८ ॥ हाथी घोडोंपर चढे हार्दिक्य आदि यादव आगे प्रकाशके निमित्त दीपिकावालोंसे युक्त ॥ १९ ॥ सिंहनाद करते केशवका वचन स्मरण किये युद्धकी लालसासे पूर्वद्वारमें प्राप्त हुए ॥२०॥ वे महाबली परस्पर मिलकर वहां स्थित हुए महाघोर प्रकाशमें जब दीपिका प्रज्वलित हुईं ॥२१॥ तब सात्यकि वीर शर चाप लिये तरकस धारण किये धनुषपर वायव्य अस्त्र चढाकर ॥२२॥ श्रेष्ठ धनुषको कान-

ययौ नीतिं विचिन्वानः परां प्रीतिं महाबलः ॥ अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः ॥ १८ ॥ रथान् गजान् समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखास्तथा ॥ दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोवृत्ताभिरीश्वराः ॥ १९ ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः केशवं वचः ॥ पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः ॥ २० ॥ ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः ॥ स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि ॥२१॥ शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान्विभो ॥ वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥ २२ ॥ आकर्णपूर्ण-माकृष्य धनुःप्रवरमुत्तमम् ॥ मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीरः प्रतापवान् ॥२३॥ वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः ॥ विजिता ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥२४॥ तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्द्धूता वातरंहसा ॥ यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजस-त्तमाः ॥ २५ ॥ तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम् ॥ निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा ॥ २६ ॥ क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः ॥ स्थितोऽस्ति व्यवसायेन शरी चापी महाबलः ॥ २७ ॥

पर्यन्त खैंचकर शत्रुकी सेनामें प्रहार करने लगा ॥२३॥ जो वहां स्थित थे वे सब वायव्य अस्त्रसे पराजित हो पौंड्रकके समीप चले गये ॥२४॥ वातके वेगसे पराजित हो वे सब वहां स्थित हुए जहां पहले व्याकुल हो स्थित हुए थे॥२५॥और सात्यकि वहां स्थित हो शर ग्रहण कर जो सर्पके समान था कहने लगा ॥२६॥ इस समय वह बुद्धिमान् पौंड्रक कहां है मैं धनुषबाण शर चापधारीसे युद्ध करनेको स्थित हूं ॥ २७ ॥

मैं उस दुरात्माको आज वध करूंगा मैं केशवका भृत्य उसके मारनेके निमित्त स्थित हूं॥२८॥सब क्षत्रियोंके देखते उसका शिर छेदन कर उसदुरात्माके शरीरकी बली गिद्ध और कुत्तोंको दूंगा ॥ २९ ॥ कारण कि उसके सिवाय चोरके समान कर्म कौन कर सकता है जब कि रात्रिमें सब यादव सो रहे थे तब आया॥३०॥ यह राजा बली नहीं सर्वथा चोर है यदि समर्थ होता तो यह अधम इस प्रकार चोरी नहीं करता ॥ ३१ ॥ अहो इसके चोरवत् आनेसे मैं किसी प्रकार इसको बली नहीं मानता हूं॥३२॥यह कह महाबली सात्यकि हास्य करने लगा और धनुष चढाकर

यदि द्रष्टा दुरात्मानं ततो हन्ता नृपाधमम् ॥ भृत्योऽस्मि केशवस्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः ॥२८॥ छित्त्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः ॥२९॥ को नाम ईदृशं कर्म चौरवच्च समाचरेत् ॥ सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु ॥ ३० ॥ चोरोऽयं सर्वथा राजा नहि राजा बलान्वितः ॥ यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः ॥३१॥ अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वतः ॥ सर्वथागमनं तस्य नहि पश्यामि साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः ॥ विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम् ॥ ३३ ॥ आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः ॥ क्व नु कृष्णः क्व गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्त्तते॥३४॥स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क्व च स्वामीति सेवितः ॥ स इदानीं क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥ ३५ ॥ हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः ॥ ममैव तात युद्धेऽस्मिन् हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ ३६ ॥ गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं न क्षमते भवान् ॥ अथवा तिष्ठ किंचित्तु ततो द्रष्टासि मे बलम् ॥ ३७ ॥

उसपर बाण चढाता हुआ॥३३॥वह वीर उस सात्यकिके वचन सुनकर बोला वह गोपालकृष्ण कहां है॥३४॥वह स्त्रीहंता पशुहन्ता स्वामी सेवित मेरा नाम ग्रहण कर इस समय कहां गया है ॥३५॥ जिसने महाबली नरक महात्मा मेरे सखाको मारा है. हे तात ! इस युद्धमें उस दुरात्माकोही मारूंगा॥३६॥हे वीर तेरी जहां इच्छा हो वहां चला जा मुझसे युद्ध करनेको तू समर्थ नहीं है अथवा क्षणमात्र ठहरकर मेरा बल देख ले॥३७॥

घोर बाणोंसे तेरा शिर पृथ्वीमें गिराये देता हूं. हे वीर ! तेरे हत होनेसे पृथ्वी तेरा रुधिर पान करेगी॥३८॥जब वह गोप सुनेगा कि सात्यकि मृतक हो गया जो गर्व उसका महान् वर्तता है ॥३९॥ सो तेरे मरनेसे वह नष्ट हो जायगा तुझे रक्षामें स्थित कर वह गोपाल कैलासपर्वतको॥४०॥चला गया है यह हमने पहले सुन रक्खा है. हे सात्यकि ! जो तुझे सामर्थ्य है तो तीक्ष्ण बाण ग्रहणकर यह कह बाण लेकर युद्ध करनेको स्थित हुआ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकवधेसात्यकिपौंड्रभाषणं नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशम्पायन बोले; हे

शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः ॥ हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ३८ ॥ श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि ॥ यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥ ३९ ॥ विनश्यति स तु क्षिप्रं हते त्वयि यदूत्तम ॥ त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासपर्वतम् ॥ ४०॥ गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते ॥ शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके ॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकवधे सात्यकिपौंड्रभाषणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः ॥ उवाच वचनं राजन्वासुदेवं स्मरन्निव ॥ १ ॥ अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः ॥ को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ २ ॥ मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः ॥ जिह्वा ते शतधा दीर्याद्वदतस्तादृशं वचः ॥ ३ ॥

महाराज ! यह वचन सुन सात्यकिको बडा क्रोध हुआ और श्रीकृष्णको स्मरण करता हुआ वचन कहने लगा ॥ १ ॥ हे नृपाधम ! जो कि तू वासुदेवके प्रति ऐसे वचन कहता है जीनेकी इच्छा करनेवाला जगन्नाथके प्रति कौन ऐसे वचन कह सकता है ॥ २ ॥ ऐसे वचन कहते हुए सर्वथा तेरे निमित्त मृत्यु प्राप्त होगी ऐसे वचन कहनेमें तेरी जिह्वाके सौ खण्ड होंगे॥ ३ ॥

हे पौंड्रक! यह मैं तेरा शिर कायासे पृथक् करूंगा और जो वासुदेव नाम तुझमें वर्तता है॥४॥सो जबतक कायासे तेरा शिर न गिरेगा तबहीतक यह नाम तुझमें है सो प्रातःकाल हमारे भगवान् कृष्णही वासुदेव रहेंगे ॥ ५॥ वह एकही जगन्नाथ सबके कर्ता और सर्वगामी हैं. हे दुरात्मन् ! इसमें सन्देह नहीं वही देव सर्वथा स्थित रहेंगे ॥ ६ ॥ हे नीच राजन् ! मैं तुम्हारी कायासे सर्वथा तेरा शिर काटकर गिराऊंगा जो भगवान् विष्णु नहीं आवेंगे ॥७॥ अब तू सब अपना अस्त्र और वीर्यका बल मुझे दिखा. हे राजन् ! इससे अधिक तुम्हारा पराक्रम नहीं है ॥८॥ मैं युद्धको खडा

एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक ॥ यन्नाम वासुदेवेति तव संप्रति वर्त्तते ॥ ४ ॥ यावत्पतति कायात्ते शिरस्तावत्प्रवर्त्तते ॥ स एव श्वो न भगवान्वासुदेवो भविष्यसि ॥ ५ ॥ एक एव जगन्नाथः कर्त्ता सर्वस्य सर्वगः ॥ दुरात्मन्सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ एष तेऽहं शिरः कायात्पातयिष्यामि राजक ॥ यदसौ भगवान्विष्णुर्नागमिष्यति साम्प्रतम् अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम् ॥ नातः परतरं राजन्वीर्यं च तव वर्त्तते ॥ ८ ॥ सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् ॥ शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाहमुपस्थितः ॥ ९ ॥ नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ॥ १० ॥ तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक ॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः ॥ ११ ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् ॥ स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम ॥ ततश्चुक्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

हूं तू यह सब यत्नसे दिखा शर चाप गदा खड्ग लिये मैं सर्वथा उपस्थित हूं ॥ ९ ॥ इस नगरमें तू न आवेगा यह मैं सत्य कहता हूं तुझ मिथ्या वासुदेवको देख मैं सर्वथा कृतकृत्य हूँ ॥१०॥ हे नीच! तेरे शरीरको तिलोंके समान टुकडेकर कुत्तोंको दे दूंगा यह कहकर वह बली बाण लेकर पौंड्रकके ऊपर ॥११॥ कानपर्यन्त धनुष चढाय बाण छोडता हुआ उस बाणसे पौंड्रक विद्ध होकर ॥१२॥ मुख और नेत्रसे शोणित वमन करने लगा और उस प्रतापी पौंड्रकने बडा क्रोध किया ॥ १३ ॥

नौ और दश बडे तीक्ष्ण बाणोंसे राजाने सात्यकिको विद्ध किया और बडी गर्जना की ॥ १४ ॥ तब यमराजाके समान घोर धनुष चढाकर पौंड्र-कने बाणद्वारा ॥ १५ ॥ सात्यकिको विद्धकर अपनी सेनाके लोगोंको प्रसन्न किया, सत्यसंगर सात्यकि नाराचसे विद्ध होकर ॥ १६ ॥ जो बाण उसके ललाटमें लगा था उसके वेगसे वह वृष्णियोंमें श्रेष्ठ चेष्टारहित हो रथमें स्थित हुआ ॥ १७ ॥ तब पौंड्रकने दश बाण उसके घोडोंके मारे और पच्चीस बाणसे उसके सारथि और घोडोंको विद्ध किया ॥ १८ ॥ वे घोडे और सारथी रुधिरसे लिप्त हो गये और पौंड्रकके देखते २ विह्वल हो

नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ विव्याध सात्यकिं राजा ननर्द च बहुधा किल ॥१४॥ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम् ॥ धनुराकृष्य भगवान्वासुदेवो नृपोत्तम ॥ १५॥ विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन्स्वकान् ॥ नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः ॥ १६ ॥ ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा ॥ निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः ॥१७॥ ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः॥सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप॥१८॥ते हया रुधिराक्ताङ्गा सारथिश्च समन्ततः विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः॥१९॥वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समाददे ॥ तेन नादेन तत्राभूद्विबुद्धः सात्यकिर्नृप॥२०॥ विद्वान् हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम् ॥ शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तमः ॥ २१ ॥ अलं द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे ॥ विव्याध तेन बाणेन वक्षस्येनं महाबलः॥२२॥ ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह ॥ सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥२३॥ रथोपस्थे पपाताशु निश्वसन्नुरगो यथा ॥ कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह ॥ २४ ॥

गये ॥१९॥यह देख पौंड्रकने सिंहनाद किया उस शब्दसे सात्यकिको चेतना हुई ॥ २० ॥ घोडोंको विद्ध और सारथिकी यह दशा देखकर महा-बली सात्यकि महाक्रोधित हुआ ॥२१॥ बस तुम्हारा पराक्रम देख लिया यह कहकर बाण ग्रहण किया और पौंड्रककी छातीमें बाण मारा॥२२॥ युद्धमें उस बाणसे सात्यकिने राजाको चलायमान कर दिया और छातीसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा॥२३॥तब वह सर्पके समान स्वांस लेता

रथके ऊपर मूर्छित हो गिरा और कुछ कर्तव्यको न जानकर केवल विषादको प्राप्त हुआ ॥ २४॥ तब सात्यकिने दश बाणसे उसके रथको विद्ध किया और भालेसे उसकी ध्वजाको छेदन कर दिया ॥ २५॥ चारों घोडे मारकर और बाणोंसे सारथिको विद्ध कर पौंड्रकके देखते युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ और उसके सारथिका शिर काटकर नीचे गिरा दिया रथकी ग्रंथि तोड दी और घोडोंको प्राणरहित कर दिया ॥२७॥ दश बाणोंसे उसके चक्रको तिलके समान काट दिया और पौंड्रकको देखकर बडा हास्य किया ॥ २८ ॥ तब महाबली सात्यकि सबके देखते बडा शब्द करने

सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा ॥ ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः ॥२५॥ हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च ॥ युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः ॥ २६ ॥ सारथेश्च शिरः कायादाहरत्स रथात्तदा ॥ रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसवोऽभवन् ॥२७॥ चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभिरंहसा ॥ जहास विपुलं राजन्वासुदेवं महाबलः॥२८॥ ततः परं महत्प्रायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ॥ शब्दं कृत्वा बली साक्षात्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥२९॥ शरैः सप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम् ॥ ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥ ३० ॥ शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा ॥ केवलं धैर्यनिचयस्तृ-षार्तः शरवान् यथा ॥३१॥ यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥ ततश्चुक्रोध बलवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम् ॥ विद्ध्वा सप्तभिरायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ॥३३॥ विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः ॥ चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ ३४ ॥

लगा॥२९॥ और (७०)सत्तर बाणोंसे फिर मर्दन किया, वे शलभके आकारके बाण सब ओर पतित होने लगे ॥ ३० ॥ शिर पार्श्व पीछे आगे सब ओर बाण गिरने लगे जैसे कोई बाणवाला प्यासा होता है इस प्रकार पौंड्रक होकर धैर्य धारण कर स्थित हुआ ॥३१॥ और जैसे कोई बुद्धिमान् रीता होकर स्थित होता है इस प्रकार पौंड्रक स्थित हुआ परंतु फिर वह बलवान् पौंड्रक क्रोधित हुआ॥३२॥और अर्धचन्द्र बाण लेकर युद्धमें सात्यकिको विद्ध किया और सात बाणसे क्रोधित हो उसने विद्ध किया॥३३॥तब सात्यकिने विद्ध होकर पांच बाणोंसे पौंड्रकका

धनुष छेदन कर दिया और सिंहनाद किया॥३४॥तब पौंड्रकने गदा लेकर उसे घुमाकर बडी शीघ्रतासे सात्यकिकी छातीमें मारी॥३५॥यदुनंदनने आती हुई उस गदाको बायें हाथसे खैंचकर और उसीसे पौंड्रकको युद्धमें ताडन किया॥३६॥ पौंड्रकनेभी उसे बीचमेंही पकडकर दश शक्तिसे युद्धमें सात्यकिको ताडनकिया॥३७॥सत्यसंगर सात्यकि युद्धमें उनशक्तियोंसे विद्धहो अपना धनुष छोड दूसरा धनुष ग्रहणकर उस वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठने पौंड्रकको ताडन किया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौंड्रकवधेषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥ त्वरितं पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो ॥३५॥ सव्येन तां समाकृष्य करेण यदुनन्दनः ॥ शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौंड्रकम् ॥ ३६ ॥ तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह ॥३७॥ ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः ॥ अपास्य धनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम् ॥ आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृपः ॥३८॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥
वैशम्पायन उवाच॥ ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ॥ वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप ॥१॥ सात्यकिंवासुदेवस्तु गदयाभ्यहनद्बली ॥ तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ ॥२॥ दृप्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ ॥ततः स सात्यकिः क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत् ॥३॥ दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे ॥ युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥ ४ ॥ दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भुवि ॥ तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥ ५ ॥

वैशंपायन बोले; हे राजन् ! तब वृष्णिनंदन सात्यकिने गदा ले उसी तीक्ष्णगदासेपौंड्रकको ताडन किया ॥१॥ बली पौंड्रकनेभी गदा लेकर सात्यकिको ताडन किया,गदाको उठाये वे दोनों वीर बडी शोभाको प्राप्त हुए ॥२॥ जैसे परस्पर वधकी इच्छा किये वनमें दो मतवाले सिंह हो तब क्रुद्ध होकर सात्यकि सव्यमण्डलको प्राप्त हुआ ॥३॥ और दक्षिण ओर पौंड्रक हुआ उस समय उनकी छातीमें आघात किया युद्ध करते हुए उस वीरकी छातीमें आघात किया ॥ ४ ॥ तब सात्यकिसे वह वीर दृढ ताडित हो पृथ्वीमें जंघाके बलसे बैठ गया फिर बडी शीघ्रतासे उठकर राजाने ललाटमें

आघात किया ॥५॥ सात्यकि कुछ विषण्ण होकर फिर बहुत शीघ्रतासे उठा और गदासे पौंड्रकको ताडन किया ॥ ६ ॥ तब बली वीर पौंड्रकने साक्षात् मृत्युके समान क्रोधकर नेत्रोंसे जलाते हुए सात्यकिको गदासे ताडन किया ॥ ७ ॥ वह सात्यकि उसकी भुजासे छोडी हुई गदासे ताडित हो सहसा मृत्युकी गोदीमें प्राप्त हुएके समान पृथ्वीमें पतित हुआ ॥ ८ ॥ फिर चैतन्यताको प्राप्त हो हाथोंसे गदाको दृढतापूर्वक ग्रहण कर प्रहार करता हुआ ॥ ९ ॥ उस कालायस लोहेकी बनी महागदाको दो टुकडे कर और त्यागन कर वह वीर सिंहनाद करने लगा ॥ १० ॥ तब वह

विषण्णः किंचिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम् ॥ गदयाभ्यहनद्वीरः सात्यकिः पौण्ड्रसत्तमम् ॥६॥ वासुदेवो बलिर्वीरः साक्षान्मृत्यु रिवापरः ॥ जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥७॥ स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ॥ आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा ॥८॥ संज्ञां पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च ॥ गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह ॥९॥ द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम् ॥ उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥१०॥ ततः उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबलः॥ सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥ ११ ॥ मुष्टिं कृत्वा महाघोरां वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ताडयामास मध्ये तु स्तनयो- सात्यकेर्नृप ॥१२॥ शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् ॥ तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेवं रणाजिरे ॥१३॥ तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥ तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत ॥१४॥ जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा ॥ उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा ॥ १५ ॥

महाबली राजा गदाको छोडकर बायें हाथसे सात्यकिको पकड दक्षिण हाथकी ॥ ११ ॥ महाघोर मुष्टिसे वीरने सात्यकिकी छातीको ताडन किया ॥१२॥ तब वीर सात्यकीनेभी शीघ्रतासे गदाको छोड युद्धमें राजाको तलप्रहारसे ताडित किया ॥१३॥ राजानेभी तलप्रहारसे सात्यकिको ताडन किया इस प्रकार दोनोंका घोर तलयुद्ध हुआ ॥ १४ ॥ जानु मुष्टि बाहु शिर हृदयसे हृदय और जानुसे जानु ताडन करने लगे ॥ १५ ॥

हाथसे हाथको आहतकर ताडन करने लगे. हे राजन्! जैसे वनमें तालवृक्ष निकट होकर युद्ध करें॥१६॥और उनका सन्निकर्षतासे महाशब्द हो इस प्रकार शब्द होने लगा वे पौंड्रक और सात्यकि दोनों युद्धमें बडे विख्यात थे॥१७॥जब कि रातका अंधेरा घोर था दीपक बुझ गये तब वे दोनों शस्त्र त्याग मल्लयुद्ध करने लगे ॥१८॥ हे महाराज! उस समय दोनों सेनाओंको संदेह होने लगा क्या सात्यकि वीर इससे हत हो जायगा ॥ १९ ॥ वा यह पौंड्रक राजा इससे हत हो जायगा इस समय यह दोनों वीर परस्पर वधकी इच्छा करते॥२०॥युद्ध करते हुए स्वर्गको जायंगे और किसी प्रकार

कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं संप्रचक्रतुः॥तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः॥१६॥वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः॥ तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी ॥१७॥निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महाबलौ॥ युयुधाते महारङ्गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥१८॥ उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ॥ किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति ॥१९॥ आहोस्विद्वासुदेवस्तु हस्तेन महात्मना ॥ अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥ २० ॥ युध्यमानौ महावीरौ तदा (नरौ) स्वर्गं गमिष्यतः ॥ अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ ॥२१॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः ॥ एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥२२॥ नैवं युद्धं महाघोरमासीद्देवासुरेष्वपि ॥ न श्रुतो न च वा दृष्टाः संग्रामोऽयं कदाचन ॥२३॥ एते वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि ॥ रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥२४॥ अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ॥ दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा ॥ २५ ॥

यह दोनों वीर युद्धसे विरामको प्राप्त न होंगे ॥२१॥ इन बलशालियोंके धैर्य और पराक्रमको धन्य है यह लोकमें दोनों महाबली और श्रेष्ठ प्रकृतिवाले हैं ॥ २२ ॥ ऐसा घोर युद्ध तो देवता और असुरोंमेंभी नहीं हुआ था ऐसा संग्राम न कभी देखा न सुना ॥ २३ ॥ इस प्रकार दोनों सेनाके लोग कहने लगे आधी रातके समय मेघसमूहमें दारुण युद्ध देखकर चकित हुए ॥ २४ ॥ तब वे दोनों वीर बाहुयुद्धमें प्रवृत्त हुए तब सात्यकिने राजाके दश घूंसे मारे ॥ २५ ॥

पौंड्रूने सात्यकिके पांच घूसे मारे उनके मारे उनके चटचट शब्दसे ब्रह्माण्डको महाक्षोभ हुआ और सबको आश्चर्य करनेवाला शब्दसर्वत्र होने लगा॥२६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रूकवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥ वैशंपायन बोले;इसी समय निषादपति एकलव्य महाक्रोधित हो बलरामके ऊपर धनुष लेकर शीघ्रतासे चला ॥ १ ॥ दश नाराच और बाणोंसे उनको विद्ध किया और सब क्षत्रियोंके देखते उनका आधा धनुष छेदन कर दिया ॥ २ ॥ दश बाणसे सूत और तीस बाणसे रथको ताडित किया और भल्लास्त्रसे बलदेवजीने एकलव्यकी ध्वजा

पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः॥तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान्॥ प्रादुरासीत्तु सर्वत्र सर्वान्विस्मापयन्निव२६ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः ॥ बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादय सत्वरम् ॥ १ ॥ नाराचैर्दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः॥ चिच्छेद धनुरर्द्धं तत्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥२॥ सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च॥ ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः ॥३॥ ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसंमतः ॥ दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ॥४॥ कामपालं शरेणाशु जघान जनमध्यतः ॥ बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥५॥ दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः ॥ चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः ॥ ६ ॥ एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः ॥ प्राहिणोद्बलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ॥ ७ ॥

छेदन करदी॥३॥तब वह बली निषाद दीर्घ चापको ग्रहणकर जो दीर्घ ज्यासे युक्त थी जिसका प्रमाण दश तालका था ॥ ४ ॥ उससे मनुष्योंके देखते बलरामजीको ताडन किया महाबली बलदेवजी सर्पके समान स्वांस लेने लगे ॥ ५ ॥ तब कृष्णके बडे भ्राता बलरामजीने उसके दिव्य धनुषको मुष्टिदेशमेंसे छेदन कर दिया ॥६॥ तब निषादपति एकलव्य शीघ्रतासे खड्ग लेकर उस घोर विग्रहवालेको बलरामजीके ऊपर प्रहार करता

हुआ ॥ ७ ॥ उसको दूसरे प्रतापवान् यदुनंदन बलरामजीने पांच बाणोंसे तिलके समान कर दिया ॥८॥ तब उस निषादने काले लोहेके बने उस खड्गको बडे वेगसे सारथिके ऊपर चलाया॥९॥ यदुनंदन बलरामजीने उस खड्गकोभी बाहोंके अन्तरमें भेदित कर दिया ॥१०॥ तब उस राजाने अनेक घण्टे लगी हुई शक्तिको ग्रहण कर बलदेवके ऊपर प्रहार किया॥११॥और उस राजाने महाघोर सिंहनाद किया वह कल्याणी शक्ति बलदेवके निकट प्राप्त हुई ॥१२॥ बलभद्रने आती हुई उस महाशक्तिको देखकर ग्रहण कर लिया जिससे निषादेश तथा और सब विस्मित हो गये ॥१३॥

तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् ॥ तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः॥८॥ ततोऽपरं महत्खड्गं सर्वकालायसं शुभम् ॥ प्राहिणोत्सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः ॥९॥ तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः ॥ बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे ॥१०॥ ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृपः ॥ निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥११॥ सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निषादपः ॥ सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागतम् ॥१२॥ उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान् ॥ आदायाथ निषादेशं सर्वान्विस्मापयन्निव ॥१३॥ तथैव तं जघानाशु वक्षोदेशे स माधवः॥ स तया ताडितो वीरः स्वशक्त्याथ निषादपः॥१४॥ विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले ॥ प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः ॥१५॥ निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः॥ अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः ॥१६॥ गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः ॥ शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥१७॥ गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः ॥ कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम् ॥ १८ ॥

तब बलरामजीने उसको वक्षस्थलमें ताडन किया जब वीर निषादपति उस अपनी शक्तिसे ताडन किया॥१४॥तब सब शरीरसे विह्वल होकर वह पृथ्वीमें गिरा और रामसे ताडित हो निषाद प्राणसंशयको प्राप्त हुआ॥१५॥हे राजन्!उसके ताडित होनेपर सैंकडों निषाद अर्थात् अठासी सहस्र राक्षस उसके साथ युद्ध करनेवाले ॥१६॥ गदा खड्ग लिये महातरकस धारे महाबली सैंकडों बाण शक्ति परशे ॥१७॥ गदा पट्टिश शूल परिघ

प्रास तोमर बर्छी कुठारोंसे महाबली यादवोंको ॥१८॥ शलभके समान अग्नि प्रदीप्त किये दूसरे रामके समान बलरामके ऊपर बाणप्रहार करने लगे ॥१९॥ कोई कुहाडे कोई बरछे और कोई परशोंसे मारने लगे कोई गदा शक्तिसे प्रहार करने लगे ॥२०॥ जिस प्रकार स्फुरायमान अग्निके ऊपर कोई प्रहार करता है,तब बलरामजीने क्रोधकर हलको उठाय ॥२१॥ उन सबको खैंचकर मुशलसे पीडन करने लगे वे पर्वत आश्रयवाले निषाद इस प्रकार ताडित हो ॥ २२ ॥ सैकडों पृथ्वीपर गिरने लगे. हे महाराज! क्षणमें उन सब महाबलियोंको मारकर ॥ २३ ॥ सिंहके

शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम् ॥ ते शरैः पातयांचक्रू रामं राममिवापरम् ॥१९॥ केचित्कुठारैराजघ्नुः केचित्कुन्तैः परश्वधैः ॥ गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे ॥२०॥ निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा ॥ ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् ॥ २१ ॥ सर्वानाकर्षयामास मुशलेन हि पीडयन् ॥ ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः॥२२॥ निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान्महाबलान् ॥२३॥ सिंहवद्व्यनदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः ॥ ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः ॥२४॥ आकृष्य मांसयूथानि भक्षयन्तः समासते ॥ पिबन्तः शोणितं कोष्ठात्संछिद्य च शवं बहु ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ क्रव्यादाः सर्व एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम् ॥ हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥१॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु ॥ आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः ॥ २ ॥

समान शब्द करते बलरामजी वहां स्थित हुए उस रात्रिमें मांस खानेवाले महाघोर पिशाच ॥ २४ ॥ मांसके समूहोंको खैंचकर भक्षण करते हुए स्थित थे और मृतकोंके कोष्ठोंमें छेदकर उनका रुधिर पान करते थे ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ वैशंपायन बोले; तब चारों ओरसे क्रव्याद शवोंका भक्षण करने लगे और पृथ्वीको नादित करते वारंवार हास्य करने लगे ॥ १ ॥ राक्षस और घोर पिशाच रुधिर पान करने लगे और वे मांसके खानेवाले शिखाप-

र्यन्त शवको भक्षण करने लगे ॥२॥ हेराजन् ! वे रणसे संतुष्ट हो वहां नृत्य करने लगे कौए बगले गृध्र श्येन शृगाल ॥ ३ ॥ और राक्षस यह युद्धमें मांस भक्षण करते प्रवृत्त हुए इसी समय एकलव्यकी मूर्च्छा जागी ॥४॥ वह सब पर्वतचारी निषादोंको हत देखकर गदा ले बलरामके ऊपर झपटा॥५॥और उस गदाको बलरामजीके शिरपर मारा. हे राजन् ! तब बलरामजीने गदा ग्रहण कर उस निषादपतिको ॥६॥ जो बडा क्रूर था हलायुधने मदमत्त हो गदासे प्रहार किया, तब उनका भयंकर गदायुद्ध होने लगा ॥७॥ हे राजन् ! उनके युद्धका शब्द आकाशमें होने लगा

नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्यां रणतोषिताः ॥ काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ॥३॥ भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः ॥ एतस्मिनन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः ॥ ४ ॥ हतान्सर्वान्समालोक्य निषादान्नगचारिणः ॥ गदामादाय कुपितो राममेवं जगाम ह ॥ ५ ॥ जघान गदया राजञ्छत्रदेशे निषादपः ॥ ततो रामो गदी राजन्निषादं बाहुशालिनम् ॥ ६ ॥ आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ॥ तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्त्तत ॥ ७ ॥ आकाशे शब्द आसीत्तु तयोर्युद्धे महाभुज ॥ समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥८॥ कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ॥ क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥ ९ ॥ पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥ १० ॥ गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः ॥ युयुधानो बली राजन्वासुदेवं जघान ह ॥११॥ तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे ॥ चतुर्णां युध्यतां राजन्परस्परवधैषिणाम् ॥१२॥ ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत्सुदारुणः॥ततो रजः प्रादुरभूत्तस्मिन्संग्राममूर्द्धनि॥१३॥

जैसे मर्यादा त्यागकर चलनेसे समुद्रोंका होता है ॥ ८ ॥ हे महाराज ! वह शब्द कल्पक्षयके समान हुआ उससे नागराज और नागभी क्षुभित हो गये ॥९॥ पृथ्वी अन्तरिक्ष सब शब्दमय हो गया उस समय पौंड्रक राजा वृष्णिनंदन सात्यकिको ॥१०॥ बहुत शीघ्रतासे गदासे ताडनकरता हुआ. हे राजन् ! सात्यकिने उसको गदासे ताडन किया॥११॥ उस महारणमें उनका भयंकर शब्द होने लगा कारण कि वे चारों परस्पर वधकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥१२॥ हे राजन् ! उस समय ब्रह्माण्डका क्षोभ करनेवाला दारुण शब्द हुआ तब उस संग्राममें बडी रज उठी ॥ १३ ॥

हे राजन् ! तब अंधकारके क्षय होनेमें तारे कान्तिहीन हो गये फिर प्रातःकाल होनेपरसर्वथा अंधकार नष्टहो गया॥१४॥भगवान् सूर्य उदय हुए चन्द्रकान्ति मलीन हुई तब उन चारों वीरोंका बडा युद्ध होने लगा. हे राजन् ! सूर्योदयमें वह युद्ध देवासुरयुद्धके समान हुआ ॥१५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकयुद्धेनवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥ वैशंपायन बोले;तब निर्मल प्रभात होनेमें भगवान् देवकीपुत्र जगत्पति बद्रिकाश्रमसे जानेकी इच्छा करने लगे ॥१॥ हे राजन् ! वे सब मुनियोंको नमस्कार कर द्वारकापुरीको चले और गरुडपर चढ बडे वेगसे

तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षये गते ॥ उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ ॥ १४ ॥ उदितो भगवान्त्सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ ॥ तयोर्युद्धं प्रादुरभूच्चतूर्णां बाहुशालिनाम् ॥ देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥१५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले भगवान्देवकीसुतः ॥ गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात् ॥ १ ॥नमस्कृत्य मुनीन्त्सर्वान्ययौ द्वारवतीं नृप ॥ आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभुः ॥२॥ सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम् ॥ गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप ॥३॥ अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः॥संग्रामसंभवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः ॥४॥ व्यक्तमागतवान्पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु ॥ तेन युद्धं समभवत्पौंड्रकेन दुरात्मना॥ ५ ॥ यदूनां वृष्णिवीराणां युद्ध्यतामितरेतरम् ॥ शब्दोऽयं सुमहान्व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महावरम् ॥ पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात्प्रीणयन्वृष्णिपुङ्गवान् ॥ ७ ॥

गमन किया ॥ २ ॥ तब उनको उन युद्ध करनेवालोंका महाशब्द सुनाई आने लगा, जब कि द्वारकाके समीपमें आ गये थे ॥ ३ ॥ तब जगन्नाथ विचारने लगे कि यह कैसा शब्द है, इस घोरसंग्राममें आर्य (बलराम) और सात्यकिकाभी शब्द सुनाई आता है ॥४॥ इससे विदित होता है अवश्यही पौंड्र द्वारिकापुरीमें आया है इस दुरात्मा पौंड्रके साथ युद्ध होता है ॥ ५ ॥ यह वृष्णिवीर यदु महायुद्ध करते हैं इसमें संदेह नहीं कि यह सब शब्द उसीका है ॥ ६ ॥ यह विचार कर हरिने यदुवंशियोंके प्रसन्न करनेको अपना महाशब्दवाला पांचजन्य शंख बजाया ॥ ७ ॥

उस शब्दसे कृष्णने आकाशको पूर्ण कर दिया यादव और वृष्णिवंशी उस शंखका घोर शब्द सुनकर ॥ ८ ॥ जान गये कि श्रीकृष्ण आये निश्चयही यह उनके शंखका शब्द है. हे राजन् ! इस प्रकार वृष्णि और यादवोंने माना ॥ ९ ॥ तब वे वृष्णि और यादव निर्भय हो गये उसी समय तपवालोंमें श्रेष्ठ गरुडजी दीखे ॥ १० ॥ तब वह देवकीपुत्र उन यादवोंके द्वारा देखे गये सूत मागध उन जगत्पतिके आगे चलने लगे ॥ ११ ॥ स्तुतियोग्य लक्ष्मीपति कमलाकान्तकी वह स्तुति करने लगे और सब यादव श्रीकृष्णके पीछे गमन करने लगे॥१२॥

रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः ॥ यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य ते रवम् ॥ ८ ॥ व्यक्तमायाति भगवान्पाञ्चजन्यरवो ह्ययम् ॥ इति ते मेनिरे राजन्वृष्णयो यादवास्तथा ॥ ९ ॥ निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते ॥ तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः ॥ १० ॥ ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टस्तैर्यादवेश्वरः ॥ सूताश्च मगाधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पते ॥११॥ स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम् ॥ गताश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥१२॥ कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः ॥ १३ ॥ दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥ १४ ॥ रथोऽयं भगवन्देव किमतः कृत्यमस्ति मे ॥ इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः ॥ १५ ॥ गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम् ॥ यत्र युद्धं समभवत्तत्र याति स्म केशवः ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा महाराज युद्ध्यतां च महात्मनाम् ॥ पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ यदुवृषोत्तमः ॥ १७ ॥

तब श्रीकृष्णने गरुडके प्रति स्वर्ग जानेको कहा जब ऐसा कह श्रीकृष्णने गरुडको विदा किया ॥ १३ ॥ तब दारुकको आज्ञा दी कि हमारा रथ लाओ वह बहुत अच्छा ऐसा कह शीघ्र रथको लाता हुआ ॥१४॥ और बोला; हे भगवन् देव ! यह रथ विद्यमान है कहिये अब क्या आज्ञा है यह कह रथ लिये प्रणाम कर नारायणके आगे स्थित रहा॥१५॥गरुडके चले जानेपर विष्णुजी उत्तम रथके ऊपर स्थित हो जहां युद्ध हो रहा था वहां श्रीकृष्ण गये॥१६॥हे महाराज ! वहां जाकर उन महात्माओंको युद्ध करते देख यदुश्रेष्ठने अपना उत्तम पांचजन्य शंख बजाया॥१७॥

तब पौंड्रकने श्रीकृष्णको युद्धके निमित्त आया देखकर सात्यकिको छोड श्रीकृष्णके सन्मुख उपस्थित हुआ॥१८॥तब क्रोधकर सात्यकिने राजाको निवारण किया. हे राजन् ! जब मैं सन्मुख स्थित हूं तो मुझे छोड कहां जाते हो सनातन धर्म क्यों छोडते हो ॥१९॥ हे राजेन्द्र ! मुझे जीतकर फिर दूसरेके साथ युद्ध करनेको जाओ.हे वीर ! मेरे स्थित होनेमें क्षत्रियताको छोड जाना उचित नहीं है ॥ २० ॥ मैं युद्धमें तुम्हारा सम्पूर्ण गर्व नष्ट कर दूंगा यह कह यादवेश्वर उस जाते हुएके आगे स्थित हुआ॥ २१ ॥पौंड्रकके आगे जब सात्यकि स्थित हुआ तब केशवने देखा तब

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम् ॥ सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥ १८ ॥ क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन्वारयामास पौण्ड्रकम् ॥ न गन्तव्यमितो राजन्नेष धर्मः सनातनः ॥१९॥ जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे॥क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥२०॥ एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥ इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥ २१ ॥ पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह ॥ अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥ २२ ॥ निर्भर्त्स्य सहसा भूयः सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ गदया प्राहरत्पौण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यतः ॥२३॥ यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ दृष्ट्वाथ भगवानेवं सात्यकिं प्रशशंस ह ॥ २४ ॥ निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ ॥ उपारमद्यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः ॥२५॥ स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह ॥ भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान् ॥२६॥

सात्यकिका तिरस्कार कर वह श्रीकृष्णकेही सन्मुख चला॥२२॥उसके वारंवार घुडकनेमें सात्यकि क्रोधसे मूर्छित हो गया और श्रीकृष्णके देखते पौंड्रके ऊपर गदा प्रहार किया ॥२३॥ सत्यविक्रम सात्यकिने अपने पूरे बलसे प्रहार किया यह देखकर भगवान्ने सात्यकिकी प्रशंसा की॥२४॥ तब श्रीकृष्णने सात्यकिको निवारण कर कहा इसे यथेष्ट करने दो, तब कृष्णके निषेध करनेसे सात्यकि निवारित हुआ॥२५॥तब पौंड्रकने वासुदेवसे कहा. हे यादव गोपाल ! इतने समयतक तू कहां था ॥२६॥

मैं वासुदेव तुम्हें देखनेको आया हूं.हे कृष्ण ! बलसहित मैं तुमको मारकर अपनी सेनाके साथ ॥२७॥ पृथ्वीमें एकही वासुदेव हूंगा. हे गोविंद ! जो तुम्हारा घोर विख्यात चक्र है ॥२८॥ और इस तुम्हारे चकसे मैं पीडित हूंगा. हे माधव ! इस समय तुम्हारे चक्रमें जो बल है ॥ २९ ॥ सो सब क्षत्रियोंके देखते वह सब बल मैं नष्ट करूंगा मुझ शार्ङ्गीके सामने शार्ङ्गी नहीं रह सकते ॥३०॥ हे माधव ! तुम्हारे शंखमें जो बल है सो दिखाओ. हे जनार्दन ! शंख चक्र गदाका धारण करनेवाला मैं हूं ॥३१॥ मुझहीको बलशाली ऐसा कहते हैं, पहले तुमने बली वृद्ध बालक

त्वां द्रष्टुमथ संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः॥२७॥ अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ॥ यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥२८॥ अनेन तव चक्रेण पीडितोऽअस्मि च तद्रणे ॥ चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ॥२९॥ नाशयिष्यामि तत्सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥शार्ङ्गीति मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यते ॥३०॥ (शंखमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम्)॥ शंखी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन ॥३१॥ मामेव हि सदा ब्रूयुर्जानन्तो वीर्यशालिनः ॥ आदौ त्वं बलवद्वृद्धान्हत्वा स्त्रीबालकान्बहून् ॥ ३२ गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्त्तते ॥ तत्तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः॥३३॥शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धु व्यवस्थितः॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पते ॥ ३४ ॥ एतद्वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम् ॥ स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम् ॥ ३५ ॥ कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप ॥ गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप ॥ ३६ ॥

और स्त्री बहुतोंकोमारा है ॥ ३२ ॥ और बैलको मारकर सम्प्रति तुमको बडा गर्व हो रहा है, सो जो मेरे सामने तुम स्थित रहे तो वह तेरा घमण्ड मैं दूर कर दूंगा ॥३३॥ हे गोविंद ! यदि युद्ध करना प्रिय मानते हो तो शस्त्र ग्रहण करो यह कह बाण लेकर जगतपतिके आगे स्थित हुआ ॥३४॥ पौंड्रक वासुदेवके कहे यह वचन सुनकर हँसकर श्रीकृष्ण उससे कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! मैं पातकी हुं इस बातको आप

अच्छीप्रकार कहिये गोघाती बालघाती तथा सर्वथा मैं स्त्रीहन्ता हूं ॥३६॥ हे राजन्!तुमही सदा शंख चक्र गदा धारण करनेवाले हो और मेरा वासुदेव नाम मिथ्याही है॥३७॥शार्ङ्ग धनुष चक्र गदा शंख यह सब वृथाही है परन्तु यदि मानो तो मैं कुछ कहता हूं बलि क्षत्रिय मुझ जगत्पतिके स्थित होनेमें ॥३८॥ मेरे जीवित होनेमेंभी तुमको ऐसा कहते हैं और जो असुरोंको मारनेवाला तुम्हारा महाचक्र है ॥३९॥ मेरा चक्र बडेपनमें उसके बराबर बलमें नहीं आयुधोंमेंभी शब्दमात्रसेसादृश्यता है बलसे नहीं है॥४०॥हे राजन्!मैं सदा प्राणियोंके प्राणका देनेवाला गोप

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव ॥ नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥३७॥ शार्ङ्गी चक्री गदी शङ्खीत्येवमादि वृथा मम ॥ किं तु वक्ष्यामि किंचित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे ॥ क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ ॥ ३८ ॥ तथा नु ब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ॥ यत्ते चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत् ॥३९॥ तत्तुल्यं मम चक्रं तु वृत्ततो न तु वीर्यतः ॥ अयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते॥४०॥ गोपोऽहं सर्वदा राजन्प्राणिनां प्राणदः सदा ॥ गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥४१॥ कत्थनं सर्वकार्यं हि जित्वा शत्रून्नृपाधम ॥ अजित्वा किं भवान् ब्रूते स्थिते मयि च शस्त्रिणि ॥४२॥ हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक॥स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान्॥४३॥रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत्॥४४॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कै॰ कृष्णपौण्ड्रकयुद्धं नाम शततमोऽध्यायः१००॥वैशम्पायन उवाच॥ ततःशरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान्॥पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह॥१॥

हूं सब लोकका रक्षक और दुष्टोंका शास्ता हूं॥४१॥ हे नृपाधम ! सब शत्रुओंको जीतकर कार्यका कथन करना ठीक है मुझ शस्त्रधारीके विना जीते तुम किस प्रकार ऐसा कहते हो ॥४२॥ हे पौंड्रक ! यदि समर्थ है तो मुझको जीतकर ऐसा कह, मैं चक्र रथ गदा चाप तलवारसे युक्त हूं ॥४३॥ तुम रथपर स्थित युद्धके निमित्त तैयार हो. हे मानद ! शीघ्र आओ यह कह भगवान् विष्णुने सिंहनाद किया ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकयुद्धं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥ वैशंपायन बोले;तब प्रतापवान् वासुदेव तीक्ष्ण बाण लेकर

पौंड्रकको तीक्ष्ण बाणसे ताडन करते हुए ॥१॥ तब पौंड्रक वासुदेवने दश बाणोंसे वृष्णिनंदन वासुदेवको ताडन किया॥२॥पच्चीस बाणसे दारुकको दश बाणसे घोडोंको और सत्तर बाणसे वासुदेवको ताडित किया ॥३॥ तब केशिनिषूदन हास्य करके मनसेही इसकी बडाई करके ॥ ४ ॥ बलवान् अपना शार्ङ्ग धनुष चढाकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसकी ध्वजाओंको छेदन कर दिया ॥५॥ और फिर यदुनंदनने सारथिका शिर उसकी कायासे पृथक् कर दिया, और चार बाणोंसे चारों घोडोंको मार दिया ॥ ६ ॥ फिर राजाके रथ और उनके पार्ष्णिग्राहोंको मार दिया और चक्रको तिलके समान

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः ॥ वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम्॥२॥दारुकं पञ्चविंशत्या हयान्दशभिरेव च॥ सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः॥३॥ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः ॥ दृष्टोऽसाविति मनसा संपूज्य यदुनन्दनः॥४॥ आकृष्य शार्ङ्गं बलवान्संधाय रिपुसूदनः ॥ नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ॥५॥ सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदु- नन्दनः ॥ अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥६॥ रथं राज्ञः समाहत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ चक्रं च तिलशः कृत्वा हसन्किंचिदिव स्थितः ॥७॥ पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः ॥ आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत्केशवाय सः ॥ ८ ॥ स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः ॥ ततः परं महाघोरं परिघं कालसंमितम् ॥ ९ ॥ गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवः प्रतापवान् ॥ प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥१०॥ तद्द्विधा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः ॥ ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥११॥ त्रिंशद्भारसमायुक्तमायसास्यममित्रहा ॥ आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

काटकर मार दिया ॥ ७ ॥ तब पौंड्रक वासुदेव शीघ्र रथसे उतरकर तीक्ष्ण खड्ग लेकर केशवके ऊपर प्रहार करता हुआ ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णने उस खड्गके सौ खण्ड कर दिये और चुप रहे तब महाघोर कालके समान परिघ लेकर ॥९॥ प्रतापवान् पौंड्रकने श्रीकृष्णके ऊपर प्रहार किया यह सब क्षत्रियोंने देखा ॥ १० ॥ जगन्नाथ यदुनंदनने उसके दो खण्ड कर दिये तब अपना सहस्र आरेवाला महाघोर चक्र लेकर ॥ ११ ॥ जो कि तीस भारका लोहमय था उसको ग्रहण कर पौंड्रक श्रीकृष्णसे कहने लगा ॥ १२ ॥

इस घोरचक्रको देखो यह तुम्हारा दर्प चूर्ण करेगा.हे गोविंद! महागर्वीले! इसी चक्रसे तुम्हारा गर्व ॥ १३ ॥ सब क्षत्रियोंके देखते दूर करूंगा तुम्हारे उद्देश्यसे दूसरोंको दुरासद यह छोडूंगा ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! यदि समर्थ हो तो इस चक्रको तोडो,यह कह वह महाबली उसको सौ वार घुमाकर ॥१५॥ राजा पौंड्रक श्रीकृष्णके ऊपर छोडता हुआ तब महाबलीने कूदकर उस चक्रको वंचित कर दिया ॥ १६ ॥ तब उस वीर्यवान्ने महाघोर सिंहनाद. किया जिसको सुनकर भगवान् देवकीपुत्र परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥१७॥ आश्चर्य है कि इस पौंड्रकका वीर्य और धैर्य दुस्सह

पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम् ॥ अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥१३॥ अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद्दुरासदम् ॥१४॥ यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम् ॥ इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः ॥१५॥ चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः ॥ अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ॥१६॥ सिंहनादं महाघोरं व्यनदद्वीर्यवांस्तदा ॥ ततो विस्मयमापन्नो भगवान्देवकीसुतः ॥१७॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम् ॥ इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात्॥१८॥ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम् ॥ तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ॥१९॥ पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान् हरिः ॥ ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥२०॥ दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ॥ शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥२१॥ सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम् ॥ ऐश्वर्यवर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम् ॥ २२ ॥ विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः ॥ जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २३ ॥

॥२२४॥

है यह विचार कर जगन्नाथ रथसे उठे ॥ १८ ॥ तब उसने शिला लेकर भगवान्के ऊपर छोडी यदुकुलोत्पन्नने उस शिलाका उसहीके ऊपर प्रहार किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान् हरि पौंड्रकके साथ बहुत समयतक क्रीडा करके रक्तभोजन करनेवाले तीक्ष्ण चक्रको ग्रहण करते हुए ॥ २० ॥ जिसका अंग दैत्योंके मांससे अर्चित था जो स्त्रियोंका गर्भ मोचन करनेवाला सुवर्णनिर्मित महाघोर दैत्य दानवोंका नाश करनेवाला ॥ २१ ॥ सहस्र शत आरोंसे युक्त अद्भुत दैत्योंको भय देनेवाला परम ऐश्वर्यका वस्तररूप देवगणोंसे अर्चित॥२२॥जिससे शार्ङ्गधारी विष्णु कृष्ण सदा युक्त रहते

हैं उस चक्रसे गोविन्दने पौंड्रकको मारा॥ २३ ॥ वह मांसभोजी चक्र तत्काल उसका देह विदीर्ण कर सर्वेश्वर कृष्णकेही हाथमें फिर आनकर प्राप्त हुआ ॥२४॥ तब पौंड्रक राजा प्राणरहित हो पृथ्वीमें गिरा इस प्रकार दुर्विज्ञेयगति प्रभु भगवान् उसको मारकर यादवोंसे पूजित हो सुधर्मा सभामें आनकर प्राप्त हुए ॥२५॥ इति श्रीमहाभारतेखिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायांपौंड्रकवासुदेववधो नामैकाधिकशततमोऽ-ध्यायः॥१०१॥वैशंपायन बोले;तब वीर्यवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने एकलव्य निषादपतिको शक्तिसे ताडन कर बडा सिंहनाद किया॥१॥तब निषादेशने

तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम् ॥ कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥ २४ ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद्भुवि ॥ निहत्य भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः॥ प्रतिपेदे सुधर्मां तु यादवैः पूजितो हरिः॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौंड्रकवासुदेववधो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः ॥ आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत् ॥१॥ ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम्॥ गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥२॥ आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः ॥ उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः ॥३॥ गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम् ॥ दुद्रावाथ निषादेशः समुद्रं मकरालयम् ॥४॥ धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे ॥ धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः ॥५॥ सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ॥ भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः ॥६॥ कंचिद्द्वीपान्तरं राजन्प्रविश्य न्यवसत्तदा ॥ ततो रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः ॥७॥

क्रोधकर मत्त महावली बलरामको लोकविख्यात अपनी गदासे छातीमें ताडन किया ॥ २ ॥महावली बलभद्रउस गदासे ताडित होकर तत्काल अपने दोनों हाथोंसे ॥३॥ प्राण हरनेवाली महाघोर गदाको ग्रहण कर समुद्रमें मकरके समान निषादपतिके ऊपर धावमान हुए ॥ ४ ॥जब राजा एकलव्य इस प्रकार धावमान हुआ तब वह जिधर चला उधरही बलरामजी धावमान होने लगे ॥५॥ फिर सागरमें प्रवेश कर पांच योजनतक जाकर एकलव्य राजा भयभीत हो ॥ ६ ॥ किसी और द्वीपमें प्रवेश कर निवास करने लगा तब राम इस प्रकार निषादपतिको जीतकर ॥ ७ ॥

उस मणिरत्नोंसे शोभित सभामें बलरामजी प्रविष्ट हुए और युद्धसंसक्त सात्यकिभी उस सभामें प्रविष्ट हुआ ॥ ८ ॥ दूसरे यादवभी यथायोग्य उपस्थित हुए जब चारों ओरसे वृष्णिवीर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ तब केशव यथायोग्य सब वृष्णियोंको अभिवादन कर भगवान् देवकीपुत्र समयके अनुसार वचन कहने लगे ॥ १० ॥ कैलास शिखरपर नीललोहित शंकरका दर्शन किया. हे यदुवीरो ! उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया है ॥ ११ ॥ वहां देवता और तपोधन मुनिभी आये थे मुझे देख शंकर प्रसन्न हो स्तुति कर चले गये ॥ १२ ॥ हे यादवश्रेष्ठो !

तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः ॥ सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां सभां प्रविवेश ह ॥८॥ अन्ये च यादवा राजन्यथायोगमुपस्थिताः ॥ आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥९॥ अभिवाद्य यथायोगं वृष्णीन्सर्वांश्च केशवः ॥ उवाच वचनं काले भगवान् देवकीसुतः ॥ १० ॥ दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नीललोहितः ॥ स तु मह्यं यदुवराः प्रीतिमांश्च ददौ वरम् ॥ ११ ॥ तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः ॥ दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययौ ॥ १२ ॥ अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रौ यादवसत्तमाः ॥ पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम् ॥१३॥ मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा ॥ दृष्ट्वा मां तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ ॥ १४ ॥ भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥ ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम् ॥१५॥ तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥ १६ ॥ सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः ॥ यादवाः सर्व एवैते स्व स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥ १७ ॥

रात्रिमें मैंने बडा अद्भुत कृत्य देखा दो महाघोर पिशाच मेरी कथा कहते थे ॥ १३ ॥ और मृगया करते हुए दोनों मेरा चिन्तन करते थे. हे राजेन्द्र ! दोनों मुझे देखकर प्रीति करते हुए कारण कि तपस्वी थे ॥ ॥ १४ ॥ वे दोनों महात्मा भक्तिसे नम्र हुए मुझे प्रणाम करने लगे तब मैंने सर्वथा प्रसन्न हो उनको स्वर्गकी प्राप्ति कर दी ॥ १५ ॥ और फिर महादेवको संतुष्ट कर मैं इस स्थानमें आनकर प्राप्त हुआ हूं. तब वे सब वृष्णिवंशी उन देवदेवकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥ सर्वथा वे केशवके आश्रयवाले वृष्णिवंशी कृतकृत्य हुए और सब यादव

देवदेवकी प्रशंसा करते अपने २ स्थानको गये॥१७॥तब रुक्मिणीके भवनमें नारायण प्रविष्ट हुए रुक्मिणी और सत्यभामासे हरिने वह सब वृत्तान्त कहा ॥ १८ ॥ वे केशवके साथ महाप्रीति युक्त हुई यह केशवकी सब चेष्टा तुमसे वर्णन की ॥ १९ ॥ महाबली दुष्टोंको मार इस प्रकार वह सब पृथ्वीकी पालना करते हुए घोरकर्मा नरक और नृपश्रेष्ठ पौंड्रकको ॥२०॥तथा हयग्रीव निशुंभ सुन्द उपसुन्दको मारकर मुनियोंसे अर्चित हो देवेश विप्रोंकी रक्षा करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त केशवने बहुत द्रव्य और गौवोंका दान किया अग्निहोत्र करते ब्राह्मणोंको तृप्त करते ॥ २२ ॥

अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥ रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाभवत् ॥ १८ ॥ ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम् ॥१९॥ शशास पृथिवीं कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान् ॥ नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २० ॥ हयग्रीव निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ॥ ररक्ष विप्रान्देवेशो मुनीन्मुनिवरार्चितः ॥ २१ ॥ विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः ॥ अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥२२॥ मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान्यज्ञैर-नेकधा ॥ स्वधया च पितॄन्सर्वान्प्रीणयन्नेव सर्वदा ॥ २३ ॥ तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कंटकं प्रभो ॥ सुखमेव प्रजा सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥ जनमेजय उवाच ॥ भूय एव द्विजश्रेष्ठ शङ्खचक्रगदाभृतः॥ चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥१॥

ब्रह्मचर्यसे मुनियोंको यज्ञोंसे देवतोंको और स्वधासे पितरोंको तृप्त करते हुए ॥ २३ ॥ उस देवेशके निष्कंटक राज्य करनेमें ब्राह्मणादि सब प्रजा सुखसे निवास करती थी॥२४॥इति श्रीम० खि० हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पौंड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥ जनमेजय बोले; हे द्विजश्रेष्ठ ! आप फिरभी शंख चक्र गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णका चरित्र कहिये. हे तपोधन ! विस्तारसे कहो ॥ १ ॥

केशवसंबन्धी कथा सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती है ऐसा कौन है जो देवदेव चक्रधारी हरिके॥२॥चरित्र श्रवण कर उसमें रमण करता हुआ रातदिन तृप्त हो यही एक पुरुषार्थ है कि नारायणकी कथा श्रवण करे ॥३॥ अब यह कहिये कि जगत्‌के वास्ते हंस डिंभककी लडाई सब जगत्‌को विस्मयदायक किस प्रकारसे हुई ॥ ४ ॥ महात्मा विचक्र दानवका युद्ध कैसे हुआ हमने सुना है कि प्रथम उनकी मित्रता थी ॥५॥ उनके दो पुत्र बडे बली भृगुके शिष्य हुए वह वीर सम्पूर्ण अस्त्रमें कुशल और हरिसे वर पाये हुए थे ॥६॥ आपने पहले कहा है कि उनमें बडा संग्राम हुआ था और

नहि ते तृप्तिरस्तीह शृण्वतः केशवीं कथाम् ॥ को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ २ ॥ शृण्वंस्तथा रमन्त्रापि तृप्तिं याति दिवानिशम् ॥ पुरुषार्थोऽयमेवैको यत्कथाश्रवणं हरेः ॥ ३ ॥ कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च॥समितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी ॥४॥ विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः॥ स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥५॥ तौ सुतौ वीर्यसंपन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह ॥ सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हरेर्लब्धवरौ किल ॥ ६ ॥ संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा ॥ तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पतेः ॥७॥ कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाभूद्विग्रहो महान् ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम्॥८॥ बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च ॥ आसन्युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ॥९॥ यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया ॥ देवासुरे महायुद्धे देवान् जयति दुर्धरः ॥ तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

उनका केशवके साथभी संग्राम हुआ ॥ ७ ॥ वह किसके पुत्र हुए जिससे महाविग्रह हुआ अट्ठासी सहस्र बडे शीघ्रगामी दानवोंका ॥८॥ जो कि विचक्रकी सेना थी उन तीक्ष्ण शूलधारी महात्मा दानवोंका युद्ध हुआ॥९॥यदुओंका अन्तर देखनेवाले यदुओंसे युद्ध करनेवाले देवासुरके महायुद्धमें उसने देवताओंको जीता था श्रीकृष्णने उसके मारनेको सदा यत्न किया॥१०॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०३॥वैशंपायन बोले;हे राजन्!शाल्ववंशमें ब्रह्मदत्त नाम राजा था वह पवित्र आत्मा सब प्राणियोंपर दया करता था॥१॥ नित्य पंचयज्ञमें तत्पर जितात्मा जितेन्द्रिय ब्रह्मका जाननेवाला वेदवित् सदा यज्ञमय कल्याणरूप था ॥२॥ हे राजन् ! उसकी रूपगुणोंसे सम्पन्न दो भार्या थीं परन्तु उनके कोई सन्तान नहीं था॥३॥उनके साथ राजा ऐसे प्रसन्न रहता जैसे इन्द्राणीकेसाथमें इन्द्र.उसका ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नामका सखा था॥४॥वह महायोगी वेदवेदांग जाननेमें तत्पर था परन्तु जिस प्रकार राजाके कोई सन्तान नहीं थी इसी प्रकार उस ब्राह्मणकेभी

वैशम्पायन उवाच ॥ आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः ॥ नाम्ना राजन् स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः ॥१॥ पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः ॥ ब्रह्मविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः ॥ २ ॥ तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते ॥ बभूवतुः सुसंपन्ने अनपत्ये नृपोत्तम ॥३॥ स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे ॥ नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्वि-जोत्तमः ॥४॥ तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः॥ अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ॥५॥ स राजा सहितस्ताभ्या-मर्चयामास शंकरम् ॥ पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः ॥६॥ स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थे समयोजयत् ॥ आर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ॥७॥ आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत् ॥ प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ॥८॥ अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव ॥ पुत्रो मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः ॥९॥ अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः ॥ सोऽपि मित्रसहो विद्वान्देवं केशवमव्ययम् ॥ १० ॥

सन्तान नहीं थी ॥ ५ ॥ तब उसके सहित राजाने शंकरकी आराधना की अनन्यबुद्धिसे दश वर्षतक शूलधारी महादेवका तप किया ॥६॥ उस ब्राह्मणने पुत्रके निमित्त वैष्णव यज्ञ किया. हे राजन् ! उसने नीललोहित शंकरका आराधनकिया ॥७॥ तब अपना दर्शन देकर शंकरने स्वप्नमें राजासे कहा.हे सुव्रत ! तुम्हारा मंगल हो मैं तुमसे प्रसन्न हूं वर मांगो ॥८॥ तब राजाने मुस्काकर देवदेव जगन्नाथसे यह वचन कहे मेरे दो पुत्र हों यही वर दीजियेशिवजीने कहा ऐसाही होगा॥९॥जब यह कह शिवजी अन्तर्धान हुए तब राजा जागृत हुआ और वह विद्वान् मित्रसह ब्राह्मण

अविनाशी केशव ॥१०॥ जगन्नाथका पांच वर्षपर्यन्त पूजन करता हुआ इस प्रकार उस विप्रने जनार्दन देवका पूजन किया ॥११॥हरिने अपनी आत्माके समान उसको एक पुत्र दिया वह दोनोंकी भार्या शंकरकेतेजसे गर्भवती हुई ॥१२॥ हे महाराज ! ब्राह्मणकी स्त्री वैष्णवतेजसे गर्भधारण करती हुई.वे महाबली पुत्रोंको दोनों रानी गर्भमें धारण करती हुईं॥१३॥हे महाराज! क्रमसे राजाके दो पुत्र हुए तब राजाने उनकी नामकर्मादि क्रियाकरी ॥१४॥ विधिपूर्वक नामकरण करके ब्राह्मणोंको बहुतसा दान किया उस विनीत आत्मा ब्राह्मणकेभी एक पुत्र हुआ॥१५॥हे राजन् !

पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः ॥ आर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः ॥ ११ ॥ पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः ॥ ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह ॥१२॥ विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत् ॥ महिष्यौ ते महावीर्यै पुत्रौ शंकरनिर्मितौ ॥१३॥ असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह ॥ स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥ १४ ॥ चकार विधिवत्सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम्॥स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान् ॥१५॥ साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप ॥ जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥१६॥ तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन् ॥ वेदानधीत्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा ॥१७॥ धनुर्वेदे तथास्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा ॥ हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् ॥१८॥ स च विप्रसुतो राजन् जनार्दन इति स्मृतः ॥ अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वह साक्षात् जगन्नाथही पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए जातकर्मादि सब ब्राह्मणके सहित राजाने किये॥ १६ ॥ वे तीनों कुमार एक अवस्थाके हुए वे सब वेदोंको पढ राजनीतिका श्रवण कर॥१७॥धनुर्वेद और अस्त्रविद्यामें निपुण हो गये बडे पुत्रका नाम हंस और छोटेका डिंभ हुआ ॥१८॥ और ब्राह्मणके बेटेका नाम जनार्दन हुआ वे सब कुमार परस्पर मित्रभावको प्राप्त हुए॥१९॥ इति श्रीम०खि०ह० भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभको-

त्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ वैशंपायन बोले; तब महाबुद्धिमान् हंस डिंभक जो कि शंकरकी आत्मा और मनरूप थे तप करनेकी इच्छासे॥१॥हिमालयपर जाकर तप करने लगे और शंकरके उद्देश्यसे तप करने लगे ॥ २ ॥ हम दोनों अस्त्रविद्यामें वीर्यवान् हो जाँय इस प्रकार वे दोनों मनमें धारण कर एकाग्र और नियमित होकर वायु और जलके आहारसे निर्वाह करते कहने लगे॥३॥देवदेवेश शंकरको नमस्कार रातदिन करने लगे. हे हर, शर्व, शिवानंद, नीलग्रीव, उमापते॥४॥वृषभध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगत्के पति भक्तिप्रिय गिरीश वासुदेव शिव अच्युत॥५॥सद्योजात

वैशम्पायन उवाच ॥ हंसश्च डिम्भकश्चैव तपश्चर्तुं महामती ॥ मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम ॥१॥ गत्वा तु हिमवत्पार्श्वं तपश्चक्रतुरञ्जसा ॥ उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥२॥ वीर्यास्त्रे चैव नौ स्यातामित्याधाय तु मानसे ॥ एकाग्रौ प्रयतौ भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप ॥३॥ नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् ॥ हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥४॥ वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते ॥ भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत ॥५॥ सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ॥ भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव ॥ ६ ॥ इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तौ शंकरं भवम् ॥ हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा ॥ ७ ॥ निर्ममौ निरहंकारौ मौनव्रतसमास्थितौ ॥ वर्षाणीह तदा राजन्पञ्च चक्रतुरोजसा ॥८॥ ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च ॥ स ददौ दर्शनं नैजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः ॥९॥ त्रियक्षः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ॥ अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा॥१०॥श्रीभगवानुवाच॥ वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वै॥तावूचतुस्तदा राजन्प्रीतस्त्वं भगवन्यदि ॥११॥

महादेव देवदेव गुहाशय भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव॥६॥इत्यादि नामोंसे नित्य शंकरकी स्तुति करते हुए इस प्रकार विरूपाक्षको हृदयमें धारण कर वह तप करने लगे॥७॥ममता अहंकाररहित मौनव्रतमें स्थित हुए पांच वर्षतक बराबर तप करते रहे ॥८॥तब उनके संयम नियमसे शिवजी प्रसन्न हुए और व्याघ्रचर्मधारी शिवने उनको दर्शन दिया ॥९॥ त्रिनेत्र शंकर शर्व शूलपाणि उमापति चन्द्रार्धशेखर शिवजीको आगे स्थित देखकर वे दोनों प्रसन्न हो नमस्कार करते हुए ॥१०॥ श्रीभगवान् बोले; तुम वर मांगो जो इच्छा होगी सो मैं दूंगा तब वह कहने लगे. हे भगवन् ! यदि तुम हमारे

ऊपर प्रसन्न हों तो ॥ ११ ॥ देवता असुरोंकी मुख्य सेना यक्ष गन्धर्व दानवोंसे हम अजय हों यही हमारा प्रथम वर है॥१२॥और दूसरा वर यह दो कि हमारे रौद्र अस्त्रोंका संग्रह हो जाय माहेश्वर अस्त्र रौद्रास्त्र ब्रह्मशिर अस्त्र॥१३॥ अभेद्य कवच और अभेद्य धनुष और रक्षाका करने-वाला परशा दो॥१४॥हे देव ! युद्धमें हमारी सहायताके निमित्त दो भूतोंको दीजिये यही हो यह वचन कह शिवजीने भृंगी और रिटिको आज्ञा दी ॥१५॥सब प्राणियोंके हित करनेवाले कुंडोदर और विरूपाक्षसे कहते हुए तुम और यह दोनों भूत इनकी रणमें सदा सहाय करना ॥ १६ ॥

देवासुरचमूमुख्यैर्यक्षैर्गन्धर्वदानवैः ॥ आवामजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः ॥ १२ ॥ द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः ॥ माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥ १३ ॥ अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम् ॥ परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च ॥ १४ ॥ सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम् ॥ एवमस्त्विति देवेश आह भृंगिरिटी हरः ॥ १५ ॥ कुण्डोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥ युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे ॥ १६ ॥ संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशा-लिनोः ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ ततस्तौ वीर्यसंपन्नौ हंसो डिम्भक एव च ॥ कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ ॥ १८ ॥ आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः ॥ अत्यन्तभक्तौ देवेशे शंकरे नीललोहिते ॥१९॥ नित्यो-त्सवकरौ देवे भस्मोद्धूलनशोभिनौ ॥ कृतत्रिपुण्ड्कौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ ॥२०॥ रुद्राक्षार्पितसर्वांगौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ ॥ नमः शिवाय शान्ताय महादेवाय धीमते ॥ २१ ॥

इन दोनों बलियोंके संग्राममें जानेपर तुम इनके साथ जाना यह कह भगवान् शिव वहांही अन्तर्धान हो गये ॥१७॥ तब वे बडे बली हंस और डिंभक अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्न चापवाले बडे वीर्यवान् ॥ १८ ॥ कवच पहरे देवदानवोंको अजय्य बडे वीर देवेश नीललोहित शंकरके बडे भक्त ॥ १९ ॥ शिवका नित्य उत्सव करनेवाले शरीरमें भस्म लगाये नित्य त्रिपुण्ड्रधारी जटा शिरपर धारे ॥ २० ॥ सब अङ्गमें रुद्राक्ष धारण किये व्याघ्रचर्म ओढे नमः शिवाय शान्तरूप महादेव धीमान्‌को नमस्कार है ॥ २१ ॥

इत्यादि नामोंसे महादेवकी स्तुतिकरते साक्षात् महादेवके समानही जटाधारी शोभाको प्राप्त हुए ॥२२॥तबवे अपने घर जाकर पिताके चरण ग्रहण करते हुए तथा पिताके सखा और माताके चरणोंको नमस्कार करते हुए ॥ २३ ॥ हे राजन्!वह महात्मा जनार्दनभी बहुत समयपर महाविद्याके पारको प्राप्त होता हुआ॥२४॥वह हृषीकेश विष्णु पीतकौशेय धारण करनेवालेकी ब्रह्मतत्त्वमें तत्परहो नित्य उपासना करने लगा और जितेन्द्रिय रहने लगा ॥२५॥ फिर हंस और डिंभने अपना विवाह किया और महात्मा जनार्दननेभी विवाह किया ॥२६॥ यह सब यज्ञ करनेवाले नित्य

इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम् ॥ साक्षादिव महादेवौ रेजतुर्जलधारिणौ ॥२२॥ ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादा-वगृह्यताम् ॥ पितुश्च सख्युर्बलिनौ मातुश्च चरणौ तदा ॥ २३ ॥ जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप ॥ विद्यापरं महा-बुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान् ॥२४॥ स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम् ॥ ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः ॥२५॥ हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारौ बभूवतुः ॥ जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥ २६ ॥ सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ॥ स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवं०भ० हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः कदाचित्तौ वीरौ मृगयामाटतुः किल ॥ जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वैर्गजैरपि ॥ १ ॥ वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः ॥ शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः ॥ २ ॥ व्यालानन्यान्मृगान् हिंस्राञ्छ्वभिश्च सहितौ नृप ॥ एष आयाति विपुलो वराहो दीर्घलोचनः ॥ ३ ॥

पंचयज्ञमें तत्पर अपनी स्त्रीमें निरत गुरु शुश्रूषामें तत्पर हुए.हे राजन्!धर्मही परम श्रेष्ठ है इस बातको उन्होंने पूर्णरूपसे जान लिया था ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्यानेपंचाधिकशततमकोऽध्यायः॥ १०५॥वैशंपायन बोले; एक समय वह दोनों वीर मृगयाके निमित्त गये रथ हाथियोंपर स्थित जनार्दनके सहित पयान किया ॥ १ ॥ वह दोनों वीर वनमें जाकर सिंह व्याघ्रोंको मारने लगे. हे महाराज ! तीक्ष्ण बाणोंसे वराहोंको मारने लगे ॥ २ ॥ व्याल मृग हिंसक जीव कुत्ते आदिके सहित वे दोनों बोले कि यह दीर्घलोचन

वाराह आता है ॥ ३ ॥ इसको बाणोंसे छेदन करो यह मृगराज आता है यह दूसरा महिष जिसके शृंगमें सरीसृप प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४ ॥ यह मृगोंके साथ बालकोंको बढाते हैं यह व्याकुल हो खरगोशोंका झुंड फिर रहा है ॥ ५ ॥ यह बच्चा स्तनपान कर रहा है इसको मत मारो और इन सबको कुत्तोंसे घेरकर पकड लो ॥ ६ ॥ इस प्रकार उस राजाके मृगया करनेमें महान् शब्द हुआ. हे नृपश्रेष्ठ! वह शब्द क्षत्रिय और व्याधोंके दौडनेका हुआ ॥ ७ ॥ वह दोनों राजा अनेक प्रकारके मृग व्याघ्र और सिंहोंको मारकर सूर्यके मध्यस्थानमें प्राप्त होनेसे श्रमको

एनं बाणेन संछिन्धि याति चायं मृगाधिपः ॥ अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गप्रोतसरीसृपः ॥ ४ ॥ एते खलु मृगाः सार्द्धं शावैर्बा-धन्ति सर्वशः ॥ एतद्भ्रमति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत् ॥ ५ ॥ शावं स्तनं पिबत्साधु न हन्तव्यमिदं शुभम् ॥ ग्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह ॥६॥ इत्यादिशब्दः सुमहान्मृगयां कुर्वतां नृप ॥ क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम् ॥ ७ ॥ हत्वा मृगान्सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान्नृपोत्तमौ ॥ श्रमं च जग्मतुर्वीरौ मध्यं याते दिवाकरे ॥ ८ ॥ अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते ॥ इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः ॥ ९ ॥ सरः समीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ वीजन्मारुतसानूपं श्रमात्तत्र सुखस्थितौ ॥१०॥ ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः ॥ बिसान्प्रवालान्पद्मानां भक्षयामासुरार्त्तवत् ॥ ११ ॥ जनार्दनेन सहितौ हंसो डिम्भक एव च ॥ सरः क्वचित्समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः ॥ १२ ॥

प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ बोले कि मृगयाकी आवश्यकता नहीं अब हमको श्रम होता है.हे महाराज ! ऐसा कह वे दोनों पुष्करके समीप गये ॥ ९ ॥ सरके समीप प्राप्त हुए जो मुनि और सिद्धों करके सेवित है और पवन होने लगी जिससे सुखपूर्वक विश्राम लेते हुए ॥ १० ॥ तब सब आदमी श्रमसे कर्षित हो उस सरोवरको अवगाहन करने लगे कमलनाल प्रवाल पद्मको आर्तोंके समान भक्षण करने लगे ॥ ११ ॥ जनार्दनके सहित वे हंस और डिंभक कहीं सरोवरमें स्नान कर श्रमरहित स्थित हुए ॥ १२ ॥

उस सरोवरके किनारे विश्राम लेकर स्थित हुए मुनियोंके मुखसे वेदको सुनने लगे॥१३॥ वे माध्यन्दिनशाखाको स्वरसहित श्रवण करने लगे वेद ध्वनिको श्रवण कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए॥१४॥और मुनियोंके किये यज्ञोंके देखनेकी इच्छा करने लगे मृगोंसहित उस सेनाको वहां स्थापित कर ॥ १५ ॥ महाचाप और बाण धारण किये वह जनार्दन वीर हंस और डिंभक सभामें प्रवेश कर मुनिजनोंको प्रणाम करते हुए ॥१६॥ हे महाराज ! वे ऋषिके आश्रममें पैरों पैरों चले वहां महर्षि कश्यपका वैष्णव यज्ञ होता था जप होममें परायण वे ऋषि मुनियोंके साथ यजन करते

विश्रम्य सरसस्तीरे तदासाते सुखं नृपौ ॥ अशृण्वतां परं ब्रह्म मुनिमुख्यैः समीरितम् ॥ १३ ॥ मध्यंदिनं तथा सर्वैः सवनं सस्वरं नृपौ ॥ ततः प्रीतौ नृपौ भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा ॥१४ ॥ ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा ॥ स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम् ॥१५ ॥ आदाय च महाचापे शरान्कतिचिदेव च ॥ जनार्दनस्तदा वीरो हंसो डिम्भक एव च ॥ १६ ॥ पदातिनौ महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल ॥ महर्षेः काश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम् ॥ यजन्तो मुनिभिः सार्द्धं जपहोमपरायणैः॥१७॥इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० हंसडिम्भकोपाख्याने मृगयावर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च ॥ सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥ १ ॥ तानागतान्महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः ॥ अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः ॥२॥ तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रतिगृह्य च ॥ प्रीतात्मानो महात्मान आसते ससुखं नृप ॥ ३ ॥

थे ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्याने मृगयावर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ वैशंपायन बोले;जनार्दन धर्मात्मा हंस और डिंभ उस यज्ञमें प्रवेश कर नमस्कार करते हुए ॥१॥ शिष्योंके सहित मुनि उनको आया हुआ देखकर अर्घ पाद्य आसन देकर उनकी पूजा करते हुए ॥२॥ वह नृप और वह विप्रेन्द्र उस पूजाको ग्रहण कर प्रसन्न हो सुखसे आसनपर बैठे ॥३॥

तब मौनव्रती उन मुनियोंसे हंसने कहा. हे मुनिश्रेष्ठो ! हमारे पिताभी यज्ञ करनेकी इच्छा करते हैं॥४॥हे मुनिश्रेष्ठो ! यज्ञके अन्तमें आप हमारे यहां आइये हम दिग्विजय कर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! हम अपने धर्मात्मा पितासे यज्ञ करावेंगे. हे विप्रेन्द्रो ! शिष्य और परिच्छदोंसहित आप पधारिये ॥ ६ ॥ हम अभी दिग्विजय करेंगे हम यहीं सेनाके संचयको कर सकते हैं॥७॥हमारे सामने देव दानव खडे होनेको समर्थ नहीं हैं हमने कैलासवासी शिवसे वर पाया है॥८॥हमारे पास शत्रुनाशक अनेक अस्त्र हैं मदसे बली हंस यह कहकर मौन हुआ॥९॥मुनि बोले; हे राजन् ! जो

ततो हंसो बभाषे तान्मुनीन्संयतवाङ्नृप ॥ पिता हि नौ मुनिश्रेष्ठा यष्टुमैच्छत्ससाधनम् ॥ ४ ॥ गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः ॥ राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥ ५ ॥ याजयिष्यामहे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम् ॥ आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥६॥ वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम् ॥ शक्ता वयमिहैवैतत्कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥७॥ आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः ॥ कैलासनिलयाद्देवाद्वरं लब्धाः स्म यत्नतः ॥ ८ ॥ अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च ॥ इत्युक्त्वा विररामैव हंसो मदबलान्वितः ॥९॥ मुनय ऊचुः ॥ यदि स्यात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम ॥ आस्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ ॥ पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ॥११॥ यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः ॥ ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः ॥१२॥ निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः ॥ तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम् ॥ १३ ॥

यज्ञ होगा तो हम शिष्योंसहित जांयगे हम जरूर जांयगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! तब वे वहां निश्चितको प्राप्त हो देशान्तरोंमें जानेकी इच्छा करने लगे जहां पुष्करके उत्तरकी ओर दुर्वासाजी स्थित थे ॥११॥ जहां नियत होकर यति मंत्ररूपी ब्रह्म (वेद) की उपासना करते थे ब्रह्मसूत्रके पदोंमें आसक्त और उसके अर्थ देखनेमें तत्पर ॥ १२ ॥ ममत्व और अहंकारसे हीन कौपीनसे आच्छादन व्रतवाले उस आत्मा जगत्के योनि विष्णु विश्वेश्वर भुवि ॥ १३ ॥

ब्रह्मरूप शुभ शान्त अक्षर सर्वतोमुख वेदान्तमूर्ति अव्यक्त अनन्त शाश्वत शिव ॥१४॥ नित्ययुक्त विरूपाक्ष भूताधार अनामय मनसे सर्वतोमुख नारायणका ध्यान करते हुए॥१५॥दुर्वासाको सभामें उपासना करते जो वेदान्तकेही एक गुरु हैं तर्कसे निश्चित तत्त्वके जाननेवाले ज्ञानसे निर्मित चित्तवाले ॥ १६ ॥ हंस और परमहंस जो दुर्वासाके शिष्य थे उन दोनोंने जाकर उन ऊर्ध्वरेतस महात्माको देखा ॥ १७ ॥ वह महाबुद्धि दुर्वासा परब्रह्मका विचार कर रहे थे कारण कि क्रोध करके त्रिलोकको नष्ट करनेकी सामर्थ्य थी॥१८॥जिनको क्रोध करनेपर देवताभी देखनेको समर्थ

ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ॥ वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् ॥ १४ ॥ नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारम-नामयम् ॥ ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् ॥ १५ ॥ दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम् ॥ तर्कनिश्चिततत्त्वार्थी ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥ १६ ॥ हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो ॥ गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम् ॥ १७ ॥ दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम् ॥ क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान्क्षमः ॥ १८ ॥ देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा ॥ रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥ १९ ॥ रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च ॥ दृष्ट्वैनं च तयो-रेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥ २० ॥ को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः ॥ कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥ २१ ॥ गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ २२ ॥ गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा ॥ तं विनान्येन रूपेण वर्त्तते योऽतिमूर्खवत् ॥ २३ ॥

नहीं हो सकते थे जो सदारोषमूर्ति रुद्रात्मा विश्वरूपधारी थे ॥१९॥लाल कौपीनका वसन किये इनको देखकर हंसकी यह बुद्धि हुई ॥२०॥ यह महाभूत कषाय वस्त्रधारी कौन है और किसका यह आश्रम है जिसने गृहस्थाश्रम त्याग दिया है॥२१॥गृहस्थही धर्मात्मा है गृहस्थही धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ है गृहस्थही धर्मरूप और गृहस्थही वर्ण है ॥२२॥ गृहस्थही सदा माता सदा प्राणियोंका जीवन है उसके विना जो और रूपसे वर्तता है वह मूर्ख है ॥ २३ ॥

यह उन्मत्त विरूप अथवा मूर्ख है यह ध्यान लोगोंके ठगनेके निमित्त करता है॥२४॥यह प्राकृत अज्ञानी क्या ध्यान करते हैं मैं इन दुरारोह अनेक आश्रमोंकी कल्पना करनेवालोंको ॥२५॥ तथा मंदबुद्धियोंको गृहस्थमें स्थापन करूंगा बलसेही इन मूढ विज्ञानमें तत्पर ब्राह्मणोंको ॥ २६ ॥ जो असद्ग्राहमें ग्रहीत मूर्ख दुर्मति इन ब्राह्मणोंका शास्ता हमारे सिवाय कौन है ॥२७॥ हम इनको धर्ममें स्थापन कर निवृत्त होंगे. हे राजन् ! इस प्रकार वे दोनों राजकुमार उस ब्राह्मणके सहित ॥ २८ ॥ अर्थात् जनार्दनके सहित भाग्यक्षयके कारण हे राजेन्द्र ! उस संयतचित्तवाले यतिके समीप

उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च ॥ ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयितापि वा ॥२४ ॥ किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन ॥ वयमेतान् दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥२५॥ स्थापयिष्यामहे सर्वान्मन्दबुद्धीनिमान् गृहे ॥ बलादेव द्विजाने-तान्मूढविज्ञानतत्परान् ॥२६॥ असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान्दुर्मतीनिमान् ॥ एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥२७॥ धर्मे वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ ॥ इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप ॥२८॥ जनार्दनेन राजानौ मोहाद्भाग्य-क्षयान्नृप ॥ समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥ २९ ॥ गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम् ॥ यतींश्च नियतान्क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ हंसडिम्भकावूचतुः ॥ ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन् किं ते व्यवसितं द्विज ॥ कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः ॥ १ ॥ गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम् ॥ दम्भं एव भवान्व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम् ॥ २ ॥

गये ॥२९॥ और जोंकर वे दोनों अतीन्द्रिय दुर्वासासे बोले अर्थात् वे दोनों यतीन्द्रके ऊपर क्रुद्ध हुए॥३०॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ हंसडिंभक बोले; हे द्विज ! ज्ञानलेशसे विहीन ! यह तुम्हारी क्या व्यवस्था है. हे विप्र ! जिसमें तुम स्थित हो यह कौनसा आश्रम है ॥१॥ गृहस्थको छोडकर यह आपने क्या साधन किया है हम जानते हैं

सर्वथा आपने पाखण्ड साधा है इसमें और कुछ कारण नहीं है ॥२॥ हे मूढ ! तुम निवृत्त हुएसे इन लोकोंको नाश करते होनिश्चय इन सबको तुम नरकमें गिराओगे ॥ ३ ॥ स्वयंभी नष्ट हुए और इन मूर्खोंको तुम नष्ट करते हो. हे मन्दमति ब्राह्मण ! क्या कोई तुम्हारा शास्ता नहीं है ॥ ४ ॥ इसमें संदेह नहीं कि तुम सर्वथा पापके विनेता हो. हे ब्राह्मण ! इस आश्रमको छोडकर आप गृहस्थ हो आइये ॥५॥हे विप्र ! सदा यत्नसे पंचयज्ञ करते रहिये तब स्वर्गको जाओगे कारण कि वहां बडा सुख है ॥६॥ हे विप्र ! यही कल्याणका मार्ग है जो आपकी जीवनमें स्पृहा है तो करो जब

लोकांश्चेमान्सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः ॥ एतान्सर्वान्विनेतासि नरके पातयिष्यसि ॥३॥ स्वयं नष्टः परान्मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः ॥ अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज ॥४॥ सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः ॥ त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥५॥ पञ्च यज्ञान्सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव ॥ ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत्सुखम् ॥ ६ ॥ एष श्रेयःपथो विप्र जीविते चेत्स्पृहा तव ॥ इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः ॥७॥ उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनी तवत् ॥ मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ ॥८॥ अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि ॥ को वस्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत्सबान्धवः ॥९॥ सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः॥ समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् ॥१०॥ एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः ॥ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्रणान्प्राणेषु जुह्वति ॥ ११ ॥ ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन् ॥ सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥ १२ ॥

इन दोनोंने ऐसा कहा तो जनार्दन ब्राह्मण इस वचनको सुन ॥७॥ भीतवत् प्रणाम कर यतिको देखकर कहने लगा. हे मंदतेजवाले राजकुमारो ! इनके प्रति ऐसे वचन न कहो॥८॥इस प्रकारके घोर वचन दोनों लोकमें कोई नहीं कह सकता है कौन बंधुओंके सहित जीनेकी इच्छा करनेवाला इनसे यह कह सक्ता है ॥९॥ सर्वथा तुम मंदबुद्धिवालोंको यह कालस्वरूप है आयु तुम्हारी समाप्त हो गई अब तुमपर ब्रह्मदण्ड गिरेगा ॥ १० ॥ यह शुद्ध यति ज्ञानसे दीप्तचित्त ज्ञान अग्निसे दीप्तिमान् शरीर प्राणोंको प्राणोंमें हवन करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ इनसे ईशके विना कौन ऐसे

वचन बोल सकता है सर्वथा हमने जाना कि तुम्हारा जीवन समाप्त हो चुका ॥ १२ ॥ हे राजकुमारो ! शास्त्रमें ऋषियोंके किये चार आश्रम हैं. ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास ॥ १३ ॥ उनमें सबमें श्रेष्ठ यह चौथा संन्यास आश्रम है सो इस पुण्यतर आश्रममें यह महाबुद्धि स्थित है ॥ १४ ॥ हम जानते हैं कि आपने अच्छी प्रकार वृद्धोंकी सेवा की है तपस्वियोंसे ज्ञान नहीं प्राप्त किया भला ऐसा कौन कह सकता है ॥१५॥ हे राजन् ! प्राणधारियोंको इस प्रकारके वचन सुनने अश्राव्य हैं. हे मंदात्मन् ! तुम मेरे मित्र हो क्या करूं ॥१६॥ हे राजन् ! तुमने

चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥१३॥ तेषा मग्रश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः ॥ आस्ते तस्मिन्महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः॥१४॥ नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाः सम्यग्विनीतवत्॥ ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चैवं वदेत कः ॥ १५ ॥ अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप ॥ किं करिष्यामि मन्दात्मन्मित्रत्वाद्भवतो नृप ॥ १६ ॥ ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्यस्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप ॥ ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं बलाद्धिपापस्य विधातृरूपम् ॥ १७ ॥ युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम् ॥ पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥ १८ ॥ आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः ॥ इत्युक्त्वा विललापैवं मा ब्रूतमिति तौ वदन् ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा धक्षन्निव तयोरसून् ॥ एकेनाक्ष्णाऽथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा सदा ॥ १ ॥

जो गुरुओंसे ज्ञान प्राप्त किया है वह केवल दुःखके ही निमित्त है धर्मसे उत्तम है परन्तु तुम्हारा ज्ञान तो पापकी उत्पत्तिकाही कारण है ॥ १७ ॥ मैं तुमको छोडकर चला जाऊंगा या शिलातलमें अपनेको गिरा दूंगा वा विष पी लूंगा या सागरमें गिर पडूंगा ॥ १८ ॥ अथवा कहते सुनतेमें अपने आत्माको त्यागन करूंगा इस प्रकार विलाप कर वह जनार्दन कहने लगा कि तुम दोनों ऐसे वचन मत कहो ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्यानेअष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥ वैशम्पायन बोले; तब क्रोधकर दुर्वासा उनके प्राणोंको

जलाते हुएसे अग्निके समान रौद्र प्रज्वलित एक नेत्रसे ॥१॥रोषसे चलित इन्द्रिय हो उन दोनोंको देखने लगे. हे राजन् ! उस समय वह लोकोंको भस्मीभूत करने लगे ॥ २ ॥ और दूसरे सौम्य नेत्रसे उस ब्राह्मणको देखते हुए नष्ट हो नष्ट हो इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ३ ॥ हे दोनों कुमारो ! यहांसे चले जाओ क्यों देर करते हो मेरे वचनके रोषको सहनेको तुम समर्थ नहीं हो ॥ ४ ॥ नहीं तो मैं सम्पूर्ण राजोंके भस्म करनेमें समर्थ हूं फिर मेरे आगे साहस करनेको समर्थ न होना ॥ ५ ॥ शंख चक्र गदाके धारण करनेवाले लोकमें विख्यात नारायण तुम्हारे दर्पको चूर्ण

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः ॥ कुर्वन्निव तदा लोकान्भस्मभूतानिमान्नृप॥२॥ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन्सौम्येनान्येन केवलम् ॥ उवाच वचनं राजन्ध्वंसत ध्वंसतेति च ॥३॥ इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम्॥न वां वचनसंभूतं रोष धारयितुं क्षमे ॥ ४ ॥ अन्यथा वो महीपालान्सर्वान्दग्धुमहं क्षमः॥किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः ॥ ५ ॥ दर्पं वा लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वो वक्ष्यामि साम्प्रतम्॥६॥तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः ॥ ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम्॥७॥तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तमः ॥ कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम॥८॥यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः ॥ कष्टं हेति वदन्विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥९॥ न्यावारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति ॥ दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥ १० ॥ मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ ॥ ११ ॥

करेंगे अब मैं क्या कहूं ॥६॥ जब वह धर्मात्मा ईश्वर यह कहकर वहांसे चलनेकी इच्छा करते हुए तब इस यतीश्वरको हंसने निषेध कर ॥ ७ ॥ नृपवर हंसने उनकी बाहु पकड कर क्रूरतासे उनकी कौपिन छेदन कर दी तब कालके समान दिखाई देने लगे ॥८॥ दूसरे यति विचेत हो दशों दिशाओंमें पलायन करने लगे उस समय मित्रभावसे जनार्दन कष्ट है कष्ट है ऐसा कहने लगा॥९॥और यथाशक्ति उनको निवारणभी करने लगा कि यह क्या साहस है यद्यपि सत्यधर्म दुर्वासा उन्होंको मारनेको समर्थ थे ॥१०॥ परन्तु तथापि हंसडिंभकसे मन्द मन्द कहने लगे मैं शापसे इन

नीच कुल राजोंको मारनेमें समर्थभी हूं ॥११॥ तो भी यति होनेके कारण मैं ऐसा न करूंगा जो जगन्नाथ केशव शंख चक्र गदाधर हैं वह केशव यादवेश्वर ॥ १२ ॥ शंख चक्र गदापाणि तुम्हारा अभिमान दूर करेंगे वह यदुपति लोककी रक्षा करेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनोंका सज्जोव है कारण कि उनके हाथसे मरनेमें स्वर्ग होगा और तुम्हारा बंधु जरासंधभी तुमसे कहनेकी इच्छा न करेगा ॥ १४ ॥ इस प्रकारके लोक विद्वेषमें वह धर्मपथमें स्थित होकरभी इस प्रकार संन्यासियोंका द्रोह करनेसे वह तुमको त्याग देगा ॥ १५ ॥ उस मगधदेशके अधिपतिके

तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम् ॥ यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः ॥१२॥ शंखचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति लोके तस्मिन्यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ ॥ १३ ॥ युवयोः सर्वथा जीवः सज्जीव इति मे मतिः ॥ जरासन्धोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति ॥१४॥ ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे सदा ॥ एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति॥१५॥ विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः॥श्रुत्वेदं घोररूपं तु स हि बन्धुः सहेत चेत् ॥१६॥ धर्मनाशो भवेत्तस्य मात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः ॥१७॥ जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः॥स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने ॥१८॥ संगतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥ १९ ॥ नहि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि ॥ गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम् ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

साथ तुम्हारा विद्वेष होगा जो इस घोररूप अनिष्टको सुनकर वह सहन करे ॥ १६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उसका धर्म नाश हो जायगा यह कह वारंवार हंससे कहा चला जा चला जा ॥ १७ ॥ और यतिश्रेष्ठ दुर्वासाने जनार्दनसे कहा हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे कल्याण और जनार्दनमें भक्ति हो ॥१८॥ और तुम्हारी शंख चक्र गदाधारीसे संगति होगी आज कल वा परसों आप श्रेष्ठ साधुत्वको प्राप्त होगे॥१९॥ दोनों लोकमें साधुओंका विनाश नहीं होता है जाकर यह सब वृत्तान्तअपने पितासे कह देना॥२०॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्य-

पर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ वैशंपायन बोले;तब वह हंस और डिंभक कालसे प्रेरित हो क्रोधित हुए शिक्य कमंडलु द्विदल काष्ठ॥१॥ दण्ड पात्र इत्यादि सबको छेदन भेदन करके उस देशमें व्याधोंसे मांस पकवाते हुए॥२॥ वहां उसे भक्षण करके फिर अपनी पुरीमें आये और धर्मात्मा जनार्दन स्नेहसे उनके पीछे पीछे गया ॥ ३ ॥ और अब यह नष्ट हुए ऐसे जानकर वह बडा दुःखी हुआ और उन सबके चले जानेपर यतिश्रेष्ठ दुर्वासा ॥४॥ पलायन करते हुए सब यतियोंसे इस प्रकार बोले और पवित्र देश पुष्करसे

वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ ॥ शिक्यं कमण्डलु चैव द्विदलं दारुमेव च ॥१॥ दण्डान्पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वशः ॥ तस्मिन्देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन्॥२॥भक्षयित्वा ततो देशात्स्वपुरीं तौ प्रजग्मतुः॥ जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः ॥ ३ ॥ नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम् ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तमः ॥४॥ पलायनपरान्सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् ॥ इतो देशाद्विनिर्गत्य पुष्करात्पुण्यसंयुतात् ॥५॥ मन्दं मन्दं समाश्वास्य विश्रम्य च ततस्ततः ॥ प्रविश्य द्वारकां देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६॥ दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः ॥ स हि रक्षन् जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥ ७ ॥ आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्ववित्प्रियः ॥ उद्धृत्य कण्टकान्सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम् ॥८॥ स च पापान्महाघोरान्सर्वान्पापकृतान्प्रभुः ॥ रक्षेन्नः सकलान्सर्वान् ज्ञानेषु नियतात्मनः ॥ ९ ॥ इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् ॥ साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः ॥ १० ॥

निकलकर ॥५॥ मंद मंद समझाते हुए इधर उधर ठहराते हुए और बोले द्वारकामें शंख चक्र गदाधारीके निकट जाकर उन प्रभुका दर्शन ॥६॥ कर उनसे हम यह वृत्तान्त कहेंगे वह इस जगत्की रक्षा करते धर्ममार्गमें स्थित हैं ॥ ७ ॥ आद्य लोकके गुरु विष्णु यतात्मा तत्त्वके जाननेवाले प्रिय सब कंटकोंको नष्ट करके इस पृथ्वीका पालन करते हैं ॥ ८ ॥ यह प्रभु सब महाघोर पाप और पापात्माओंसे ज्ञानमें नियतात्मा हो हम सबकी रक्षा करते हैं ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! अब यही ठीक है कि उनके निकट चलें,जो उन दोनोंने साहस किया है वह उनसे कहें जो उन्होंने हमारे पात्रोंका

छेदन भेदन किया है ॥१०॥ यह हम जनार्दनको दिखावें वह ज्ञानी यति इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके ॥११॥ उन टूटे हुए दारुमय पात्रोंको लेकर द्विदल कषाय वस्त्र और कौपीन वल्कलको लेकर ॥१२॥ तथा अलाबु फलके मूलसे अर्धप्रोत दो टुकडे हुए पात्रको ले तथा अन्य वस्तुओंकोभी लेकर केशवके दर्शनको गये ॥१३॥ पांच सहस्र मुनियोंको साथ लेकर तपोयोनि ईश्वरके अंश दुर्वासाजी ॥ १४ ॥ एक दिन रात बराबर चलकर कृष्णकी पाली हुई द्वारकामें वे चतुर महात्मा कोई लोमवान् कोई केशवर्जित प्राप्त हुए ॥१५॥ हे राजेन्द्र! प्रातःकाल वे यतीश्वर वापिकामें

एतत्सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् ॥ तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥ ११ ॥ छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा ॥ द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम् ॥ १२ ॥ कमण्डलुं तदा राजन्नर्धप्रोतकपालम् ॥ एतानन्यान्समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥१३॥ पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् ॥ दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसंभवम् ॥ १४ ॥ अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः॥१५॥प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः॥ स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥१६॥ द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टकोद्धृतितत्परम् ॥ एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भोपाख्याने यतीनां द्वारकागमनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिञ्जल्कलोचनः ॥ श्यामः पीताम्बरः श्रीमान्प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ १ ॥ किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः ॥ अव्यक्तः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥२॥

पहुँच वहां स्नान कर बडे यत्नसे ॥१६॥ कंटकोंके उद्धार करनेमें युक्त केशवके देखनेकी इच्छा करने लगे जो एक रूपमें स्थित हो सुधर्मामें स्थित हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्यानेयतीनां द्वारकागमनो नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ वैशंपायन बोले; तब कमललोचन सर्वेश्वर विष्णु श्यामरूप पीताम्बरधारी श्रीमान् प्रलम्बायमान अम्बरके समान भूषण धारे ॥ १ ॥ किरीटधारी श्रीपति कृष्ण नील कुंचित केशवाले अव्यक्त शाश्वत देव सकल निष्कल शिव ॥ २ ॥

कृष्ण विहार और क्रीडा करते थे उस समय अनेक कुमार और सात्यकि उनके साथ थे ॥ ३ ॥ यादवोंके साथ गोलाकार पासोंसे खेल रहे थे युयुधानके सहित कृष्ण अपना प्रिय करते थे ॥ ४ ॥ कि यह प्रथमका अक्ष हमारा है तुम्हारा पीछे होगा जब कमल लोचन कृष्णने सात्यकिसे ऐसा कहा ॥ ५ ॥ तब उनके पार्श्वमें स्थित वसुदेवादि दूसरे यादव तथा उद्धव आदिभी वहां स्थित थे ॥ ६ ॥ वह भूतात्मा भूतभावन उस समय दूसरे व्यापारोंसे रहित थे और सुग्रीवके साथ रामके समान विहारमें तत्पर थे ॥ ७ ॥ वह महाविष्णु अच्युत मध्याह्न समयमें

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ॥ कुमारैरपरैः सार्द्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥ ३ ॥ गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः ॥ चकार प्रियकृत्कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥ ४ ॥ ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भविष्यति ॥ इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः ॥ ५ ॥ पार्श्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः ॥ उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र वै ॥ ६ ॥ अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ॥ विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥ ७ ॥ मध्यंदिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः ॥ विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत्स यादवः॥८॥ द्वाःस्थने वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः॥इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप॥९॥ यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् ॥ दुर्वाससं सुमनसो दद्दशुर्यादवेश्वरम् ॥ १० ॥ गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥ ११ ॥ ए केनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् ॥ यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥ १२ ॥ वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः ॥ वसुदेवस्तथाक्रूर उग्रसेनस्तथा नृपः ॥ १३ ॥

सात्यकिके साथ विहार कर उपरामको प्राप्त हुए ॥८॥ पहले द्वारपालोंने तपस्वियोंको श्रीकृष्णको क्रीडा करते देखकर निवृत्त कर रक्खा था अब समय देखकर वे तपस्वी सभामें प्रविष्ट हुए॥९॥वे दीर्घतपवाले यति तपोधन दुर्वासाको आगे करके श्रेष्ठ मनवाले यादवेश्वरका दर्शन करते हुए॥१०॥ जिनके हाथमें क्रीडा करनेका पासा विद्यमान है पद्मपत्रके समान विशाललोचन विष्णु और सात्यकिको देखा ॥११॥ एक ओर दृष्टिसे प्रसन्न करके दूसरे ओर गोलकको देखते वे महातपस्वी श्रीकृष्णको देखते हुए॥१२॥वृष्णिपति पुण्डरीकाक्ष सात्यकि बलभद्र वसुदेव अक्रूर राजा उग्रसेन॥१३॥

और भी दूसरे यादव उन्हें देख आश्चर्यको प्राप्त हो कहने लगे यह क्या ऐसे सब मनमें भ्रान्त हो कहने लगे ॥१४॥ तीनों जगत्को दग्ध करनेमें समर्थ दुर्वासाके पीछे अनेक ऋषि गमन करने लगे अर्धकौपीन वस्त्रवाले स्मरण करनेवाले किसी द्विजको देख ॥१५॥ जो कि अन्तरके तापसे युक्त छिन्न दण्ड धारण किये यति जो कि रोषसे अन्तरमें प्रज्वलित हो रहे थे कारण कि हंसके द्वारा उनको बडा कश्मल आनकर प्राप्त हुआ था ॥१६॥ नेत्रमें उठी हुई महाअग्निसे यादवेश्वरको देखने लगे तब सब यादव भीत हो दुर्वासाको देखने लगे ॥ १७ ॥ यह दुर्वासा क्रोध कर क्या कहेंगे और

अन्ये च यादवाः सर्वे संभ्रमं प्रतिपेदिरे ॥ इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् ॥१४॥ पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्रयम् ॥ अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥१५॥ अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम् ॥ अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् ॥ १६ ॥ नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम् ॥ दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः ॥ १७ ॥ किं करिष्यत्यसौ क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः ॥ इति प्राञ्जलयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥ इदमासनमित्येवं किंचिदूचुश्च वृष्णयः ॥ ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः ॥ १९ ॥ इदमासनमित्येवं स्थीयतामिह निर्वृतः ॥ अहमद्य स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥ ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः ॥ आसने संस्थिते तस्मिन्यतयो वीतमत्सराः ॥ २१ ॥ आसनानि यथायोगं भेजिरे निर्वृताः किल ॥ अर्घादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ॥ २२ ॥ आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम् ॥ किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन्प्रत्यागमो हि वः ॥ २३ ॥

हमारे प्रभु क्या करेंगे इस प्रकार हाथ जोडकर सम्पूर्ण यादव स्थित हुए ॥ १८ ॥ कोई कोई वृष्णिवंशी कहने लगे यह आसन है बिराजिये तब हृषीकेश श्रीकृष्णजी कुछ आगे बढकर बोले ॥ १९ ॥ यह आसन है इसपर सुखसे बैठिये और मैं आपकी आज्ञामें स्थित हूं क्या करूं ॥२०॥ तव वह दुर्वासा कुछेक आसनपर बैठते हुए, जब वे आसनपर बैठ गये तब दूसरे यतिभी॥२१॥यथायोग्य अपने आसनोंपर बैठते हुए तब श्रीकृष्णने सब अर्घादिका आचार किया ॥२२॥फिर हृषीकेश दुर्वासा ऋषिसे कहने लगे. हे विप्रेन्द्र ! कहिये इस समय आप कैसे पधारे हैं ॥२३॥

॥२३५॥

इसमें मैं कोई बडा कारण आपकी दृष्टिसे देखता हूं. हे द्विजश्रेष्ठो ! आप पापरहित संन्यासी हो ॥२४॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! आप सदा स्पृहारहित हो आपको कोई इच्छा न होनेसे कुछ प्रार्थनाभी नहीं है ॥ २५ ॥ स्पृहासे प्रेरित कर्मवाले क्षत्रियोंके निकट जाते हैं. हे विप्र ! हमसे निरूपणीय कोई वस्तु नहीं है ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! आपके आगमन कारण जाननेकी मुझे बडी अभिलाषा है परन्तु इतना अनुमान करता हूं कि इसमें कुछ कारण है ॥२७॥ सो आप कहिये यह हम आपसे जाननेकी इच्छा करते हैं चक्रपाणि जनार्दनके ऐसा कहने पर ॥ २८ ॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठको

दृष्टं वा ह्यथवा किंचित्कारणं चास्ति वो महत् ॥ संन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः ॥२४॥ निस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः ॥ प्रार्थ्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः ॥२५॥ स्पृहाप्रेरितकर्माणः क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः ॥ निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते ॥२६॥ न जाने कारणं ब्रह्मन्युष्मदागमनं प्रति ॥ एतावता चानुमेयं किंचित्कारणमस्ति वै ॥ २७ ॥ तद्ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम् ॥ इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ २८ ॥ तस्यापि राजन्विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत् ॥ तस्मादभ्यधिकः पूर्वात्कोपः संजायते महान् ॥२९॥ दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् भक्षयन्निव पश्यतः॥रोषरक्तेक्षणः क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव॥३०॥उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः॥ न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ॥ ३१ ॥ जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे ॥ पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥ ३२ ॥ यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान् ॥ निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥ ३३ ॥

बडा क्रोध बढा और पहलेसेभी अधिक कोप बढने लगा ॥२९॥ तीनों लोकको जलाते हुएसे और देखनेसे भक्षण करते हुएसे रोषसे लालनेत्र कर हँसते और जलाते हुए से ॥३०॥ क्रोधसे मूर्छित हो दुर्वासा विष्णु भगवान्‌से बोले; हे यादवेश्वर ! यह आप किस प्रकारसे कहते हैं कि हम नहीं जानते ॥ ३१ ॥ मैं तुम महादेवको जानता हूं आप वंचना करते हुए इस प्रकारके वचन कहते हो ॥ ३२ ॥ आप देवदेव मायासे मनुष्यका शरीर धारण कर आये हो. हे जगत्पते ! फिर आप हमसे किस कारण छिपाव करते हो ॥ ३३ ॥

आप ब्रह्मविद पुरुषोंकी मूर्ति हो, यही आपका परम पद है जिसे पहले ब्रह्माने अर्चन किया और जिसको पहले हमने जाना ॥ ३४ ॥ जिससे यह सब संसार हुआ है वही आप परम पद हो जिसको तत्त्वज्ञानी स्थूलरूपभी जानते हैं ॥ ३५ ॥ जिसको पुरातनवित् ऐसा जानते हैं वही यह परम शरीर है जो कर्मसेही प्राप्त है, जिसको स्मरण कर हम शान्त होते हैं ॥३६॥ जिस प्रत्यक्ष हुए रूपकोभी मनुष्य नहीं जानते हैं, न मूढबुद्धि और न हमही जिसको यथार्थतासे जानते हैं ॥ ३७ ॥ हम नहीं जानते हैं आप ऐसे साहसके वचन कैसे कहते हो, जो मूलको जानता है उसका विचार

सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत्परमं पदम् ॥ यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा ॥३४॥ यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत्परमं पदम् ॥ यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥ ३५ ॥ पुराविदोऽथ विश्वेश तदेतत्परमं वपुः ॥ कर्मणा प्राप्यते यत्तु यत्स्मृत्वा निर्वृता वयम् ॥३६॥ प्रत्यक्षमपि यद्रूपं नैव जानन्ति मानुषाः ॥ न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे ॥३७॥ न जाने इति यद्ब्रूषे किमतः साहसं वचः ॥ ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु प्रविवेचनम् ॥ ३८ ॥ कुर्वतः किं फलं देव तव केशिनिषूदन ॥ वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते ॥ ३९ ॥ ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः ॥ पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः प्रभो ॥४०॥ वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै ॥ तदेवेदं विजानेऽहं रूपमेश्वरमेव च ॥४१॥ वैष्णवं परमं तेज इति वेदेषु पठ्यते ॥ अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव ॥४२॥ य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते ॥ स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद ॥ ४३ ॥

कैसा ॥ ३८ ॥ हे देव ! हे केशिनिषूदन ! इस प्रकार आपका वेदान्तमें कथित तेज विचारा जाता है ॥ ३९ ॥ जो पापरहित योगी वेदान्तमें तृप्त हैं वह अपने हृदयकमलमें आपका दर्शन करते हैं ॥ ४० ॥ जो वेदोंमें गाया जाता है जो ब्रह्मसे प्रतिपादित होता है उसी ईश्वरके रूपको हम जानते हैं ॥४१॥ वैष्णवही परम तेज है ऐसा वेदोंमें पढा जाता है ! हे विष्णो ! हम उसी आपके रूपके जाननेकी इच्छा करते हैं ॥४२॥ जिसको ॐ कहते हैं और वाक् (वाणी) कहते हैं वही आप प्रभु विष्णु हो, हम नहीं जानते ऐसा मत कहो ॥ ४३ ॥

जो कुछ तुमसे परोक्ष हो तो यह कह सकते हैं, हम नहीं जानते. हे गोविंद ! ऐसा मत कहो ॥४४॥ जिससे यह विश्व उदय हुआ है और जिसमें लय हो जाता है. हे केशव ! उसी तुम्हारे इस वैष्णव तेजके जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४५ ॥ तुम सब जगत्के कर्ता भूतभव्यके पति हो सदा हृदयमें दीखते हो जो आपको स्मरण करते हैं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो ! मेरी बुद्धिमें वायु विष्णु है जब यह ध्यान होता है. हे विष्णो ! तब वही रूप मेरे हृदयमें स्थिति करता है ॥ ४७ ॥ कभी आकाशही विष्णु हैं ऐसा ध्यानमें आता है तब वही रूप हृदयमें स्थित होता है ॥४८॥ कभी यह

परोक्षं यदि किंचित्स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते ॥ न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे ॥ ४४ ॥ विश्वं यदा प्रादुरासीद्य-स्मिँल्लीनं क्षये सति ॥ इदं तदैश्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव ॥ ४५ ॥ कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि ॥ यद्यद्रूपं स्मरेन्नित्यं तत्तदेवासि मे हृदि ॥४६॥ वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः ॥ तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४७॥ आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः ॥ तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४८॥ पृथिवी विष्णुरित्ये-तत्कदाचिद्धीयते मतिः ॥ तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥४९॥ रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया ॥ तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥५०॥ यदा त्वं तेज इत्येवं स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम ॥ तदा तद्रूपसंपन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ॥५१॥ चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः ॥ निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ॥५२॥ यदा सौरं वपुरिति स्मर्त्ता स्यां जगतीपते ॥ तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥ ५३ ॥

मनमें आता है कि पृथ्वीही विष्णु है तब तुम हमको पार्थिवरूप दीखते हो ॥ ४९ ॥ कभी आपको मैं रसरूपसे विचार करता हूं तब आपको मैं रसरूप देखता हूं ॥ ५० ॥ हे पुरुषोत्तम ! जब आकाश और तेजरूपसे आपका ध्यान करता हूं तब वही रूप मेरे हृदयमें दीखने लगता है ॥ ५१ ॥ जब आपको चन्द्रमारूपसे विचार करता हूं तब आप चन्द्रमारूपसे दीखते हो. हे देव ! इस प्रकार आपको देख मैं प्रसन्न होता हूं ॥ ५२ ॥ हे जगतीपते ! जब आपको सूर्यरूपसे विचार करता हूं, तब उसकी भावनासे सूर्यरूप दीखते हो ॥ ५३ ॥

इस कारण सर्वरूप तुमही हो यह मेरी निश्चित मति है.हे जनार्दन ! हम नहीं जानते ऐसी बात आप मत कहो ॥५४॥ हे विष्णो ! सर्वज्ञ होकर आप हमारे दुःखको क्यों नहीं जानते हे विष्णो ! हम अत्यन्त दुःखी होकर आपके निकट आये हैं ॥५५॥ हे केशव ! आप ऐसी हमारी दशाको क्या नहीं स्मरण करते हो हमारा भाग्यही नष्ट हुआ है यह हम विचार करते हैं ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! जो हमारा भाग्यही नष्ट है जो आप हमको भूल गये हो कोई क्षत्रिय कुमार शिवके वरदानसे गर्वित हुए ॥ ५७ ॥ हंस और डिंभक नामवाले हमको बाधा देते हैं. हे केशव ! गृहस्थही सर्वश्रेष्ठ है

तस्मात्सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी ॥ अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥ ५४ ॥ इत्यर्थं संस्थितो विष्णो पीडां नो नैव चिन्त्यसे ॥ अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥ ५५ ॥ ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव ॥ एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥ ५६ ॥ मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो ॥ कौचित्क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥५७॥ नाम्ना हंसडिम्भकौ च बाधेते नो जनार्दन ॥ गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥५८॥ इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम् ॥ अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥ ५९ ॥ इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ॥ पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥ ६० ॥ शिक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान्वेणुकान्बहून् ॥ इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥६१॥ कौपीनं बहुधा च्छिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ॥ कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२ ॥

यह वह कहते हैं ॥ ५८ ॥ इधर उधर धावमान होते बडे दुर्वाक्य कहते थे, औरभी अनेक अयुक्त वचन कह सदा हमारी धर्षणा करते हैं ॥ ५९ ॥ हे देव ! यह और असह्य पाप उनका है आप देखिये कि हमारे पात्रोंके सहस्रों खण्ड कर दिये हैं ॥ ६० ॥ शिक्य[1] काष्ठ पात्र द्विदल वेणु यह खण्ड २ कर दिये यह आप उनकी दूसरी साहस चेष्टा स्मरण कीजिये ॥ ६१ ॥ हमारी महाधन कौपीनभी

१ छींका।

छेदन कर दी हैं.हे जगत्प्रभो ! हमारा कमण्डलु तोडकर कपाल मात्र कर दिया है ॥ ६२ ॥ आप क्षात्रव्रतमें स्थित हुए नित्य हमारी रक्षा करते हो. हे देव ! यह बडा आश्चर्य है. प्रतिदिन हमारी रक्षा करते हो ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! हम मंदात्मा मंदभाग्य हैं क्याकरें. हे जगत्पते ! कहिये आपके सिवाय हम किसकी शरण जाँय ॥ ६४ ॥ यदि वे जीते रहे तो त्रिलोकी नष्ट हो जायगी, न ब्राह्मण न राजा न वैश्य न शूद्र कोई न रहेंगे ॥६५॥ वे दोनों अत्यन्त बलि तीक्ष्ण दण्ड धरनेवाले हैं उनके आगे खडे होनेको देवता और इन्द्र समर्थ नहीं है ॥६६॥ न भीष्म न राजा

त्वं तु नो क्षरसे नित्यं क्षात्रे वै व्रतमास्थितः ॥ चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यपि सदानिशम् ॥ ६३ ॥ किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो ॥ किन्नः शरणमद्यैव तद्ब्रूहि जगतां पते ॥ ६४ ॥ जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः ॥ न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥ ६५ ॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप ॥ न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः ॥ ६६ ॥ न च भीष्मो न वा राजा बाह्लीको भीमविक्रमः ॥ यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणां भयंकर ॥६७॥ नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ॥ तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥ ६८ ॥ तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान्प्रभो ॥ अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते ॥ ६९ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ॥ इत्युक्त्वा विररामैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमो नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

पराक्रमी वाल्हीक कोई ऐसा बलि नहीं जो वीर जरासंध क्षत्रियोंको भय देनेवाला है ॥६७॥ वहभी शिवके वरसे अभिमानवाले उनके सामने खडा नहीं हो सकता है. हे कृष्ण ! उन सदा संगति करनेवालोंके सामने आपही समर्थ हैं ॥ ६८ ॥ हे प्रभो ! इस कारण आप इन दोनोंको मारकर जगत्की रक्षा करो नहीं तो रक्षा करनेका शब्द तुममें वृथा हो जायगा ॥६९॥ बहुत कहनेसे क्या है आप त्रिलोकीकी रक्षा कीजिये क्रोधमूर्छित दुर्वासा यह कहकर मौन हुए ॥७०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमो नामैकदशाधि-

कशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार दुर्वासाके वचन सुनकर श्रीकृष्ण कुछ दीर्घ निश्वास ले दुर्वासाको देखकर यादवेश्वर कहने लगे ॥१॥ यह सब हमाराही दोष है आप इसको क्षमा करिये, आप हमारे वचन सुनकर शान्त हूजिये ॥ २ ॥ हे विप्र ! उन हंस और डिंभकको मैं युद्धमें जीतूंगा चाहे उनको गिरीश वा कुबेर किसीने वर क्यों न दिया हो ॥३॥ यम वरुण चाहें चतुर्मुख ब्रह्मासे क्यों न वर पाये हों मैं उन दोनोंको सेनासहित मारकर तुमको प्रसन्न करूंगा ॥ ४ ॥ आप इस बातमें क्रोध न करें मैं सत्यकी सौगन्ध कर कहता हूं उन दोनों नृपाधमोंको मारकर मैं

वैशम्पायन उवाच॥यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः ॥ दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ॥१॥ क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एव ममैव हि ॥ शृणु वाक्यं ममैतत्तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव ॥२॥ जेष्यामि तौ रणे विप्र हंस डिम्भकमेव च ॥ गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा ॥ ३ ॥ यमो वा वरुणो वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः ॥ सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम् ॥४॥ सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव ॥ रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ ॥५॥ जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ ॥ श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति ॥६॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ ॥ नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितैषिणौ ॥ ७ ॥ प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येवं न संशयः ॥ जरासंधो महीपालो विना तौ जयते महीम् ॥ ८ ॥ जये तयोर्विप्रवर्य तत्र श्रेयो भवेत्ततः ॥ यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम ॥ ९ ॥

तुम्हारी रक्षा करूंगा ॥ ५ ॥ तुम्हारे साथ द्वेष करनेवाले उन दुरात्माओंको मैं जानता हूं मैंने उनके तीक्ष्ण दंडकी वार्ता पहले सुन ली है ॥६॥ वे दोनों बडे बली मत्त शिवके वरदानसे गर्वित हैं और जरासंधके हितकारी होनेसे थोडे प्रयत्नसे साध्य नहीं हो सक्के हैं ॥ ७ ॥ राजा उनको अपने प्राणतक दे देगा इसमें संशय नहीं राजा जरासंध उनकी सहायताके विनाही पृथ्वी जीत सकता है ॥ ८ ॥ हे विप्रश्रेष्ठो ! उनके जीतनेमेंभी मंगल होगा, हमने सुना है कि जहां जहां जाकर स्थिति करेंगे ॥ ९ ॥

वहीं वहीं मैं उनका वध करूंगा इसमें सन्देह नहीं.हे यतियो ! आप स्वच्छन्दतासे जाकर अपना कार्य करो ॥१०॥ शीघ्रही उन युद्ध करनेवालोंको मैं जीतूंगा तब यादवेश्वरसे प्रसन्न हो वह कहने लगे॥११॥जगत्का मंगल करनेवाले कृष्ण ! आपकी जय हो. हे जगन्नाथ केशव ! आपको जगत्में दुस्साध्य क्या है ॥१२॥ आप त्रिलोकीके अधिपति त्रिधामा हो सब संहारके करनेवाले हो आप देवताओंकेभी देवता सर्वत्र समदृष्टि हो ॥ १३ ॥ हे विष्णो देव ! हे चक्रपाणि कृष्ण !आपको नमस्कार है.स्वभावशुद्ध शुद्ध नियमित आपके निमित्त नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे शब्दगोचर देवेश भक्त

तत्र तत्र च हन्ताहं नात्र कार्या विचारणा ॥ गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्यपरायणाः ॥ १० ॥ अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवो ॥ ततः प्रीताः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः ॥ ११ ॥ स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगतां स्वस्ति कुर्वते ॥ किन्नु नाम जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव ॥ १२ ॥ त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः ॥ देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शनः ॥ १३ ॥ विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये ॥ नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च ॥१४॥ शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥ १५ ॥ त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक् ॥ अतः क्षमस्व भगवन्क्षमासारा हि साधवः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा ॥ संन्यासिनः क्षमासारा क्षमा तेषां परं बलम् ॥१७॥ क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज ॥ क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ॥ १८ ॥ क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥ १९ ॥

वत्सल ! आपके निमित्त नमस्कार है जो ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने कहा है सो क्षमा करो ॥ १५ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम मैं एकही हूं हममें आपमें अन्तर नहीं है इस कारण हे भगवन् ! क्षमा करो. साधु क्षमावाले होते हैं ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले; हे विप्र ! आपही क्षमा करो तुम क्षमासारवाले हो संन्यासी क्षमासारवाले होते हैं उनका क्षमाही परम बल है ॥ १७ ॥ हे द्विज ! तत्त्वज्ञानके समान क्षमा नित्य मोक्ष करनेवाली है, क्षमा धर्म क्षमा सत्य क्षमा दान और क्षमा यश है ॥१८॥ क्षमाही स्वर्गकी सीढी है ऐसा वेदवादी कहते हैं इस कारण सब प्रयत्नसे तुम क्षमाकी पालनाकरो ॥१९॥

तुम सम्पूर्ण यतीश्वर प्रत्यक्ष ज्ञानसे युक्त हो जोही यति है वह मुझे सदैव पूजने चाहिये ॥२०॥ यति ब्राह्मण भिक्षुकोंको सदा भोजन देना चाहिये; सो आप सब हमारे यहां भोजन कीजिये, बहुत अच्छा यह वचन कह उन सबने नारायणके स्थानमें भोजन करनेकी इच्छा की ॥२१॥ तब हरि ईश्वर अपने भवनमें प्रवेश कर चार प्रकारके भोजन विधिपूर्वक कराकर ॥ २२ ॥ सत्कारपूर्वक उन यतियोंको भोजन कराते हुए और देवेशने वह उनके वस्त्र फटे अलग कराय नवीन वस्त्र दिये ॥ २३ ॥ हे जनमेजय ! इस प्रकार सबको भोजन दिया वस्त्र दिये वह यथायोग्य प्रसन्न हो अपने

प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः ॥ य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाद्य वै ॥२०॥ भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि ॥ तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन्हरेर्गृहे॥२१॥ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविष्य हरिरीश्वरः ॥ चतुर्विधं तथाहारं कारयित्वा यथाविधि ॥ २२ ॥ भोजयामास तान्सर्वान्यतीन्यतिवरार्चितः ॥ छित्त्वा छित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥ २३ ॥ ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय ॥ ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतिभोजनं नाम द्वादशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना ॥ चिन्तयन् ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥१॥ भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत ॥ ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन्काले महीपतिम् ॥२॥ ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ॥ प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसदि ॥ ३ ॥ राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः ॥ अस्मिन्मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ॥ ४ ॥

२ स्थानोंको गये ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्यानेयतिभोजनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ वैशंपायन बोले; उस समय महात्मा नारदजीके साथ दुर्वासाजी ब्रह्मतत्त्वका विचार करते यथासुखसे विहार करने लगे ॥ १ ॥ भगवान् गोविंदनेभी उनको अपने यहां टिकाया उस समय हंस और डिंभकभी राजा ॥ २ ॥ ब्रह्मदत्त बडे बलीसे जनसभामें इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥३॥ हे पिताजी ! आप यतनसे राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा करिये. हे राजन् ! इसी महीनेमें आप यज्ञ सिद्धिके निमित्त यज्ञ करिये ॥ ४ ॥

हे राजन् ! हम आपके निमित्त दिग्विजय करेंगे.हाथी घोडे सेनासे युक्त हम जायंगे॥५॥हे राजन् ! यज्ञसिद्धिके निमित्त सामान मँगवाइये बहुत अच्छा ऐसा ब्रह्मदत्तने कहा॥६॥उस ब्राह्मण जनार्दनने उनका इस प्रकारसे साहस देखकर उसे अशक्य जानकर अपने मित्र हंससे कहा॥७॥हे हंस ! हमारे वचन सुनकर निश्चय करो. हे आयुष्मन्!आप बडा साहस करनेको उद्यत हुए हैं ॥ ८ ॥ जब कि जरासंध भीष्म बाल्हीक तथा महावीर यादव स्थित हैं ॥ ९ ॥ और सत्यसंध जितेन्द्रिय महाबली भीष्मजी स्थित हैं जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीका जय करनेवाले परशुरामको ॥ १० ॥ सब

आवां तेऽद्य महाराज दिशा विजयतत्परौ ॥ यतिष्यावो बलैः सार्द्धं गजैरश्वै रथैरपि ॥ ५ ॥ संभारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम ॥ तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ॥ ६ ॥ जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ ॥ अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान् ॥ आयुष्मन्साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥ ८ ॥ स्थिते भीष्मे जरासंधे बाह्लीके च नृपोत्तमे ॥ किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥ ९ ॥ भीष्मो हि बलवान्वृद्धः सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः ॥ १० ॥ तं युद्धे जितवान्भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान्वेत्ति संयुगे ॥ ११ ॥ वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ॥ १२ ॥ जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः॥प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन्नृपोत्तमः ॥ १३ ॥ बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद्बली ॥ लोकानिमान्समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥ १४ ॥

क्षत्रियोंके देखते युद्धमें जीत लिया जो जरासंधका वीर्य है वह आप युद्धमें जानतेही हैं ॥ ११ ॥ इधर सब वृष्णिवंशी कृतास्त्र और युद्धमें दुर्मद हैं उनके अधिपति कृष्ण शत्रुओंके जीतनेवाले महाचतुर हैं ॥१२॥ जरासंधके साथभी युद्धमें श्रम जीतनेवाले हैं उनके सामने कोई राजा स्थित हो जीवित नहीं रह सकते ॥१३॥ और प्रमत्त बलराम यदि क्रुद्ध हो तो इन लोकोंको नष्ट कर सके हैं यह मेरी बुद्धिमें आता है ॥ १४ ॥

इसी प्रकार वीर सात्यकि युद्धमें शत्रुओंको जीत सकता है इसी प्रकार औरभी सब यादव कृष्णके आश्रयवाले प्रबल हैं॥१५॥और हमारा यतियोंके साथ पहले विरोध हो चुका है और दुर्वासा यतियोंके साथ कृष्णको देखनेके निमित्त गये हैं ॥ १६ ॥ यह हमने भोजनको आये हुए ब्राह्मणोंसे सुना है इसमें जैसे सिद्धि हो वैसे मंत्रियोंके साथ विचार कीजिये ॥ १७ ॥ पीछे राजसूय महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे. हंसने कहा मंदात्मा हीनबल वृद्ध भीष्म कौन है ॥ १८ ॥ क्या वह वृद्ध हमारे सामने स्थित हो सकता है यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हमारे सामने

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ तथान्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः ॥ १५ ॥ अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह ॥ दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥ १६ ॥ इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाद्भोक्तुमागतात् ॥ तथा सति यदा सिद्ध्येत्तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥१७॥ ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम् ॥ हंस उवाच ॥ को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥ १८ ॥ आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः ॥ यादवा इति चित्रं न शक्ताः स्थातुं रणे द्विज ॥ १९ ॥ कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः ॥ शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥ २० ॥ जरासन्धस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम ॥ गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात्त्वरन्॥२१॥दीयतां करसर्वस्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु॥ लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥ २२ ॥ आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम् ॥ इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे ॥ मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥ २४ ॥

यादव स्थित हो सकते हैं ॥ १९ ॥ कौन कृष्ण और मत्त बलराम कौन है. हेविप्रेन्द्र ! कहीं सात्यकिभी हमारे सामने स्थित हो सकता है ॥२०॥ धर्मात्मा जरासंध हमारा सदा बंधु है. हे विप्र ! जाओ हमारे वचनोंसे यदुश्रेष्ठसे कहो॥२१॥ यज्ञके निमित्त हमको बहुतसा कर दे और बहुतसे लवणभी केशवसे ग्रहण करो ॥ २२ ॥ और वे कृष्ण यह लेकर बहुत शीघ्र आवे देर न करे तुम जलदी जाकर यह श्रीकृष्णसे कहो॥ २३ ॥हे विप्र ! मैं तुमको अपनी सौगन्ध दिवाकर कहता हूं कि इसमें प्रत्युत्तर न देना मैं तुमको वारंवार मित्रभावसे देखता हुआ कहता हूं ॥ २४ ॥

ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने कुछ उत्तर नहीं दिया.हे राजन्! मित्रभाव और स्नेहसे कुछ न बोला ॥ २५ ॥ वह धर्मात्मा जनार्दन नित्य जानेकी इच्छा करता आज जाऊं कल जाऊं प्रतिदिन ऐसा कहता ॥ २६ ॥ शंख चक्र गदा धारण करनेवाले देवके देखनेकीइच्छा करता ॥ २७ ॥ फिर प्रातःकाल वह द्वारकापुरीके देखनेको शीघ्रतासे चल हरि कृष्ण हृषीकेशको मनसे स्मरण करता चला ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्य-पर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ वैशंपायन बोले; तब वह हरिभक्त ब्राह्मण विष्णुके समीप चले. हे

इति संचोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ मित्रभावात्तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥२५॥ जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः ॥२६॥ देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शंखचक्रगदाधरम् ॥ एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम् ॥ २७ ॥ प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः ॥ हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन् द्विजः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशतत्तमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप ॥१॥ यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः ॥ पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया ॥२॥ धावत्येव तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः ॥ गच्छन्स चिन्तयामास चोदयन् हयमुत्तमम् ॥ ३ ॥ हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात् प्रियहितं मम ॥ तथाहि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम् ॥४॥ अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको नहि ॥ यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ५ ॥

राजेन्द्र! एक घोडेपर चढ वह बडी शीघ्रतासे चला ॥ १ ॥ जैसे गरमीके समय सूर्यकी किरणोंसे पीडित हुआ प्यासके कारण पथिक वृक्षके नीचे जाता हो ॥ २ ॥ इसी प्रकार यह ब्राह्मण हरिको देखनेको धावमान हुआ घोडेको प्रेरण कर जाता हुआ वह चिन्ता करने लगा ॥ ३ ॥ हंस मेरा प्रिय है सदैव मेरा प्रियहित करता है उसने मुझे अबभी नारायणके दर्शनके निमित्त प्रेरण किया है ॥ ४ ॥ मैं बडा धन्य हूं मुझसे अधिक कोई धन्य नहीं है जो कि मैं द्वारकापुरीमें निवास करते विष्णुका दर्शन करूंगा ॥ ५ ॥ फिर वह मेरी माताभी धन्य है जो फिर आये हरिका

दर्शन करेगी वहदेवी इनको देखकर सर्वथा कृतार्थ होजायगी॥६॥खुले हुए कमलके समान मुख उन शंखचक्र गदाधारी नारायणको देखूंगा॥७॥ मैं नीलकमलके समान कान्तिमान् उन विष्णुका मुख देखूंगा शंख चक्र गदा और शार्ङ्ग धनुष तथावनमालासे विभूषित ॥८॥उनको और कमलके समान खिले उनके नेत्रोंको मैं अदीनात्मा देखूंगा इस समयमें दुःखरहित और शान्त हूं॥ ९ ॥ वह योगात्मा अपनी सौम्य दृष्टिसे मुझको देखेंगे अथवा वह मेरा प्रिय कहकर स्वस्तिवाचन कहेंगे ॥ १० ॥ वह त्रिलोकीके आनन्ददायक चक्रधारीके शरीरका मैं दर्शन करूंगा अब उनके चरण-

सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम्॥कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी॥६॥मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम्॥ द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः ॥७॥ वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छवि ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषि-तम् ॥८॥ नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ॥ पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृत्तः ॥ ९ ॥ अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा ॥ अपि वा मत्प्रियं ब्रूयात्स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥१०॥ द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसन्निभम् ॥ पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः॥११॥ वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुरद्रत्नप्रभाद्युतम् ॥ पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चा-निशमीश्वरम् ॥१२॥ पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ॥ ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥१३॥ स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः ॥ गच्छतश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥ १४ ॥

कमल देखनेको मेरा मन शीघ्रता करता है ॥ ११ ॥ विष्णुका वक्षस्थल रत्नोंकी कान्तिसे सदा स्फुरायमान होता है मैं उसको देखता हुआ जाऊंगा और रातदिन स्मरण करूंगा॥१२॥पीत रेशमीन वस्त्रधारणकिये लम्बायमान हारसे विभूषित कुछेक मुस्कानवाले अधरयुक्त विष्णु भगवान्‌का वारं-वार दर्शन करूंगा ॥ १३ ॥ उनका रूप स्मरण करकेही मेरे रोमाञ्च होते हैं और चलते हुए मेरेआगे शंख चक्र गदा असि हाथमें लिये शोभित

होते हैं ॥ १४ ॥ वह जगत्के गुरु देवदेव मेरे आगे चलते हुए दीखते हैं यह मेरी जिह्वा इनसे बोलनेको स्फुरायमान होती है ॥ १५ ॥ परन्तु कर दो यह वचन उनसे कहनाही महादुःखकारक है जो उस राजाके ऐसे वचन हैं यही महासाहस है ॥ १६ ॥ हे विष्णो ! हंसका कर दें यह उसकी आज्ञा मानकर निर्दय वचन कहना पडेगा और प्रभुके सन्मुख कहा जायगा ॥ १७ ॥ मैं मूढोंका अग्रणी निर्लज्जतापूर्वक कैसे इस बातको कहूंगा कि, हे विष्णो यदुपुंगव ! आप हंसका कर दो ॥ १८ ॥ करमें आपको अनेक प्रकारके लवण देने चाहिये शार्ङ्गीके सन्मुख मैं यह

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः ॥ एषोऽयमिति मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥१५॥ इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः ॥ इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥ १६ ॥ हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः ॥ तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताहं किल निर्दयः ॥ १७ ॥ मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ॥ करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥ १८ ॥ लवणानि बहून्याशु पातव्यानि करात्मना ॥ इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥ १९ ॥ तथापि मित्रभावात्तु वक्तव्यं घोरमीदृशम् ॥ कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् ॥२०॥ अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् ॥ जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ।२१॥ तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् ॥ सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥२२॥ द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ॥ कम्बुग्रीवाधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥२३॥ स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् ॥ द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥ २४ ॥

कहनेके योग्य नहीं हूं ॥ १९ ॥ तथापि राजाके मित्रभावसे यह घोरवार्ता मुझे कहनी पडेगी कृतात्मा मनुष्योंको मित्रभावभी बडे कष्टका देनेवाला है ॥ २० ॥ अथवा सबके जाननेवाले विष्णु सबके हृदयमें स्थित हैं वह प्राणियोंके हितमें तत्पर सब भावोंको जानते हैं ॥२१॥ मैं उस राजाकी मित्रतासे यह कहूंगा इसमें मुझको दोष न लगेगा सर्वथा इस घोर वचनसे विष्णु मेरी रक्षा करेंगे॥२२॥नीले घुँघुंरवाले बालसे युक्त जगन्नाथका मैं दर्शन करूंगा जिनके शंखकी समान गरदन विष्णुरूप जिनका हृदय श्रीवत्सचिन्हसे आच्छादित है ॥२३॥ स्फुरायमान कमलके समान महाभुजा

रत्नोंकी कान्तिसे शोभित शंख चक्र गदाधारी केशवका मैं दर्शन करूंगा ॥२४॥ पूजनीय ऐश्वर्यवाले देव भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता अपनी इच्छासे जगत्की रक्षा करनेवाले जलशायीका ॥ २५ ॥ दर्शन कर सर्वथा मैं कृतार्थ होकर दुःखरहित हो जाऊंगा साक्षात् हरिको देखकर मेरा जन्म सफल हो जायगा ॥२६॥ हरिको साक्षात् कर आज मेरे यज्ञ सफल हो जांयगे जगन्मय विष्णुको देख यह मेरे नेत्र सफल होंगे ॥२७॥ मैं घोर वचन कहूंगा तथापि विष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे दोनों नेत्रोंसे भली प्रकार देखकर मैं विष्णुका दर्शन करूंगा॥२८॥नखशिखपर्यन्त मैं विष्णुको

अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥२५॥ कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः ॥ अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्द्रष्टवतो हरिम् ॥२६॥ अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात्कृतवतो हरिम् ॥ नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम् ॥२७॥ प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः॥ उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम्॥२८॥ आमूलमसकृद्विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥ पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥२९॥ धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पाद-प्रभवं शिवम् ॥ ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः ॥ ३० ॥ मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् ॥ पादाब्जं चक्रिणो विष्णोः पश्यामि च जगत्पतेः ॥३१॥ पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ॥ हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥३२॥ प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः ॥ आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥३३॥ स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ॥ सव्येद्योतन्महाशङ्खं रश्मिजालविराजितम् ॥ ३४ ॥

भली प्रकारसे दर्शन करूंगा उन कृष्णके शरीरको मैं अपने नेत्रयुगलसे दर्शन करूंगा॥२९॥उनके चरणकमलकी धूरि मैं अपने शिरपर धारण करूंगा, तब कृतार्थताको प्राप्त हूंगा कारण कि उनके चरणोंकी रज स्वर्गका मार्ग है ॥ ३० ॥ मेघके समान गंभीर हरिका शब्द मैं श्रवण करूंगा चक्रधारी विष्णके चरणकमलोंका दर्शन करूंगा॥३१॥पूर्णचन्द्रमाके समान कान्तिमान् हरिका मुख देखूंगा और हरिका यह रूप सब प्रकारसे देखूंगा॥३२॥ अयुक्त कहनेवालेभी मुझपर विष्णु सदा प्रसन्न होंगे चलायमान कुंडलोंसे युक्त हरिचंदनसे चर्चित॥३३॥स्फुरायमान बाजूबंद रत्नोंकी कान्तिवाली दोनों

भुजाओंसे विराजित सीधे हाथमें महाशंख और रत्नोंसे प्रकाशित है॥३४॥उदय होते हुए सूर्यके वर्णके समान कान्तिवाले चक्रकी ज्वालासे विराजित उज्ज्वल कंकणसे युक्त तत्ते सुवर्णके बने अंगदवाले॥३५॥ पीत रेशमीन वस्त्र धारण किये विस्तीर्ण हृदयवाले देवेश अच्युतका मैं कब दर्शन करूंगा ॥३६॥ जो उनका दर्शन करूंगा इससे मैं सर्वथा कृतकृत्य हूं मुझे नमस्कार हैं मुझे नमस्कार है जो मैं हरिको देखूंगा ॥ ३७ ॥ जगन्नाथ बलभद्रके समीप जिष्णु विष्णु जगत्‌के गुरुका मैं आज दर्शन करूंगा ॥३८॥ कौस्तुभमणीसे स्फुरायमान वक्षस्थल पीताम्बर मकराकृत कुंडल

प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम् ॥ प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुतं तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ॥ ३५ ॥ पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम् ॥ कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवाऽन्यदा ॥ ३६ ॥ सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः ॥ नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमहं हरिम् ॥ ३७ ॥ उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्रकृतास्पदम् ॥ द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥ ३८ ॥ श्रीकौस्तुभोद्भवरुचिं स्फुरितोरुवक्षः पीताम्बरं मकरकुण्डलपङ्कजाक्षम् ॥ कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥३९॥ वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने ॥ उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि वाद्य ॥ ४० ॥ ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् ॥ ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्यमक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम् ॥ ४१ ॥

धारण किये कमलनेत्र कृष्णकिरीटी चक्रगदा पद्मधारीहरिका तेजोमय शरीर मेरे मंगलके निमित्तहो॥३९॥वेदरूपी सागर शास्त्ररूपी शेषपर योगमें स्थित हो शयनकरनेवाले शास्त्रकेपारगामी शुद्धमति मंदरकेमथनेमें प्रकाशमानदेवतोंसेनित्य सेवित नारायणरूपी अमृतकामैं आजपान करूंगा॥४०॥ मुमुक्षुओंसे ध्यानके योग्य आदि अन्त रहित स्थूल सूक्ष्मरूप एक अनेक रूपवाले ज्योतिरूप त्रिलोकीके उत्पन्नकर्ता देवताओंके नमस्कारके

योग्य मेरे नेत्र और हृदयमें सदा अच्युत विराजमान हों ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण विचार करता द्वारकापुरीको गया अपनेको कृतार्थ मान शीघ्रतासे घोडा चलाने लगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ वैशम्पायन कहने लगे; उस धर्मात्मा ब्राह्मणने द्वारे स्थितही सर्वस्व निवेदन कर दिया पीछे धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्राह्मण सभामें प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ उस सुधर्मा सभामें मूर्तिमान् केशवका दर्शन किया जो बलरामके साथ महाआसनपर स्थित थे ॥२॥ आगे सात्यकि और पीछे नारदजी स्थित थे और उग्रसेनको आगे किये दुर्वासासे कथोपकथन करते थे ॥ ३ ॥ मुख्य गंधर्व गाते और

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥४२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः ॥ अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः ॥ १ ॥ अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृति संस्थितम् ॥ बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥२॥ अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतःस्थितनारदम् ॥ दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥३॥ गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः ॥सेव्यमानं महाराज सूतमागधबन्दिभिः ॥४॥उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम् ॥ उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ॥दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः ॥५॥नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः ॥ बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥६॥दूतोऽस्मि देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥७॥

अप्सराओंके गण नृत्य करते थे. हे महाराज ! सूत मागध बन्दिजन उनकी सेवा करते थे ॥ ४ ॥ मधुसूदन माधवका यश वे गान करते थे साम जाननेवाले ब्राह्मण सामवेदके मंत्रोंका पाठ करते थे इस प्रकार विष्णुको प्रसन्न देख छविसे पुलकायमान हो ॥ ५ ॥ अपना जनार्दन नाम लेकर इसने हरिके चरणोंको प्रणाम किया फिर बलरामजीको शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ और कहा हे देवदेव ! मैं हंस और डिंभकका दूत हूं ब्राह्मणको ऐसा कहते सुन श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ७ ॥

हे ब्राह्मण ! पहले विष्टरपर बैठो पीछे अपना प्रयोजन कहो तब आसनपर स्थित हो ब्राह्मण बोला॥८॥तब श्रीकृष्णने उसका सत्कार कर कुशल पूछी ब्रह्मदत्त तथा हंसडिंभकके यहांभी कुशल पूछी॥९॥हे द्विज ! हमने प्रयोजन और पराक्रम सुना है जिस प्रकार हंस डिंभकमें बल है. हे जनार्दन ! तुम्हारे पिता कुशल हैं ॥१०॥ जनार्दन बोले; हे केशव ! ब्रह्मदत्त और मेरे पिता कुशलसे हैं; हे जगन्नाथ ! हंस और डिंभकभी प्रसन्न हैं ॥११॥ श्रीभगवान् बोले; उन हंस और डिंभकने क्या कह दिया है.हे द्विजोत्तम ! निश्शंक होकर वह तुम सब कहो ॥१२॥ जो वाच्य अवाच्य जैसे

आस्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् ॥ तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थितः ॥ ८ ॥ वाचा संपूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत्कुशलं हरिः ॥ ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥९॥ श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज॥ अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥ १० ॥ जनार्दन उवाच ॥ कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव ॥ तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥११॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम ॥ १२ ॥ वाच्यं वाप्यथवावाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत् ॥ श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम ॥१३॥ दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना ॥ यत्कर्मकारनिर्दिष्टं तद्वाच्यं दूतजन्मना ॥१४॥ नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च ॥ अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥ १५ ॥ केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः ॥ अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ १६ ॥ न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत ॥ सर्वं हि मनसा पश्यन् किं त्वमात्थ वेदति माम् ॥ १७ ॥

कुछभी कर्तव्य अकर्तव्य हो. तुम कहो हे ब्राह्मण ! उस वार्ताको सुनकर हम वैसा विधान करेंगे॥१३॥हे विप्र ! आप दूत हो वाच्यकी कल्पना कर मत कहना जो कर्मकारने कहा है वह सर्वथा वर्णन करो॥१४॥किसी प्रकारके वचन कहनेमें तुम कोई शंका न करना । हे जनार्दन ! इस कारण जो कुछ उन्होंने कह दिया है सो यथायोग्य कह देना॥१५॥केशवके यह वचन सुन जनार्दनने कहा आप बेजानके समान क्यों बोलते हो सब कुछ प्रत्यक्षके देखनेवाले हो॥१६॥ हे अच्युत ! आपको जगत्में कुछभी अविदित नहीं है सब कुछ मनसेही देखते हुए मुझसे कहनेको क्यों

कहते हो ॥१७॥ हे जगतीपते विष्णो ! आपही विद्वानोंके द्वारा गाये जाते हो इच्छासेही आपको सब कुछ प्राप्त होता है दृष्ट अदृष्ट आप सबके ज्ञाता हो॥१८॥सब जगत्में तुम और तुममें यह जगत् प्रतिष्ठित है आपसे रहित चराचर जगत्में कोई पदार्थ नहीं है ॥ १९ ॥ हे जगत्पते ! आप सर्वगामी हो आपको कुछभी अवेद्य नहीं है तुमही इन्द्र और सब भूतोंके संहार करनेवाले रुद्र हो ॥ २० ॥ हे विष्णु माधव ! आप सब लोककी रक्षा करनेवाले हो आप संसारके स्रष्टा होकर कहो यह कैसे कहते हो ॥२१॥ हे माधव ! आपको विद्वान् नित्य ज्ञानात्मा कहकर मान

विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते ॥ इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥ १८ ॥ त्वमेवेदं जगत्सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति ॥ न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥१९॥ नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते ॥ त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥ २० ॥ रक्षितासि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव ॥ संसारस्य भवान्स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥२१॥ विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव ॥ प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥ शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥२३॥ तथापि शृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया ॥ वदेत्यसकृदेवैतत्तस्माद्वक्ष्यामि माधव ॥ २४ ॥ राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते ॥ तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च ॥२५॥ करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि ॥ लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥ २६ ॥ इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया ॥ इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं शृणु जगत्पते ॥ २७ ॥

करते हैं. हे पुरुषोत्तम ! प्राणवित् आपको प्राणात्मा कहते हैं ॥२२॥ शब्दवित् आपको शब्दरूप कहते हैं. हे हृषीकेश ! ऐसा होनेपर फिर आप हमसे कैसे पूछते हो ॥२३॥ हे देवेश ! तथापि आपकी प्रेरणासे मैं कहता हूं जो आप मुझसे वार वार पूछते हो इससे मैं कहता हू ॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेगा उसी निमित्त मुझे हंस और डिंभकने भेजा है॥२५॥कि उन यदुमुख्योंसे यज्ञके निमित्त कर लाओ और यज्ञमें आनेको कहो.हे केशव ! यज्ञके निमित्त आपको लवण देना चाहिये ॥२६॥ इस निमित्त करके उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है. हे जगत्पते ! उनकी कही

यह और बात सुनो ॥२७॥ सो आप बहुत शीघ्रतासे लवण ग्रहण करके उन राजोंके निकट चलिये बस यही कहना है॥२८॥हे राजन् ! उनके दूत होकर यह कहनेको मैं आया हूं तब श्रीकृष्ण हँसकर दूतसे कहने लगे ॥२९॥ हे दूत ! हे द्विजोत्तम ! तुम हमारे वचन सुनो तुमने सत्य कहा है मैं उनको कर दूंगा जिस कारण कि मैं करदाता हूं ॥३०॥ हे विप्र ! जो वे मुझसे कर मांगते हैं यह उनकी बडी ढीठता है आश्चर्यकी बात है कि उनकी बडी ढीठता है ॥३१॥ हमसे कर मांगते हैं यह पहलीही बात है यह कह श्रीकृष्ण यदुओंको कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे यदुश्रेष्ठो ! कैसे

लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् ॥ आगच्छतु तयो राज्ञोः सेयं केशव वाग्विभो ॥ २८ ॥ इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप ॥ प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः ॥२९॥ शृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम ॥ करं ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृप ॥३०॥ धाष्टर्यमेतत्तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः ॥ अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः ॥३१॥ इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः॥इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान् ॥३२॥ हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः ॥ यष्टासौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥३३॥ तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च ॥ वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः ॥३४॥ करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः ॥ हास्यं हास्यमिदं भूयः शृणुध्वं यादवा वचः ॥३५॥ इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः ॥ यादवाः सर्व एवैते हासाय समवस्थिताः ॥ ३६ ॥ करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः ॥ हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम् ॥३७॥ तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत्॥स च विप्रो नृपश्रेष्ठ नन्दयन्मित्रमात्मनः॥३८॥

हास्यकी बात है जो हमसे कर मांगते हैं वह ब्रह्मदत्त राजा यज्ञ करता है ॥३३॥ वह हंस और डिंभक उसको यज्ञ करावेंगे और मैं उस दुरात्माका लवण ले चलनेवाला हूंगा॥३४॥हे यदुश्रेष्ठो ! मैं उसको कर देनेवाला होकर उससे जीता गया हूं यह महाहास्यकी वार्ता है हे यादवो ! सुनो तो॥३५॥ देवेशके ऐसा कहनेपर बलभद्र आदि सब यादव हँसने लगे॥३६॥लो अब कृष्णभी कर देनेवाले हुए ऐसा सब यादव कहने लगे और ताली बजाय परस्पर हास्य करने लगे ॥३७॥ उस तालीके महाशब्दसे द्यावापृथ्वी पूर्ण हो गई और वह ब्राह्मण अपने मित्रको प्रसन्न करता हुआ बोला ॥३८॥

अहो बडे कष्टकी बात है कि जो मैं दूत होकर यहां आया हूं इस प्रकार लज्जित हो दूत नीचेंको मुख करे स्थित हुआ॥३९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ वैशंपायन बोले, जब सब हास्य कर रहे थे तब सबके सामने श्रीकृष्ण दूतसे बोले तुम हमारे वचनसे जाओ॥१॥ और शीघ्र जाकर हंस डिंभकसे कहो कि मैं शार्ङ्ग धनुषसे निकले हुए शिलापर पैनाये तीक्ष्ण बाणोंसे ॥२॥ अथवा असिसे जो बडी तीक्ष्ण अथवा चक्रसे उनका शिर छेदन करूंगा जो मुझसे बलि मांगते हैं ॥३॥ जो कि

अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत्कृतवानहम् ॥ इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥३९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्यं नाम पञ्चदशाऽधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥वैशम्पायन उवाच ॥ हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः ॥ उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद्द्विज ॥१॥ तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः ॥ बाणैर्दा-स्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥२॥ असिना वाथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः ॥ शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्र-हितं बलिम् ॥३॥ यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धार्ष्ट्यकारणम् ॥ स एव रक्षिता वां स्यात्तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ॥ ४ ॥ देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत् ॥ तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः॥५॥ भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ ॥ पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ॥ ६ ॥ तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा ॥ अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥७॥ न शक्यं यत्त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः ॥ त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ॥ ८ ॥

तुम्हारी धृष्टताका कारण वरदान तुमको शिवजीने दिया है वह यदि तुम्हारी रक्षा करेंगे तो उनको जीतकर युद्धमें तुम्हारा वध करूंगा॥४॥ वह देशनिर्णय कर लो जहां हमारा तुम्हारा संगम होगा वहां मैं बलवाहनसहित प्राप्त हूँगा॥५॥और आपभी निर्भय हो सेनासहित वहां चलिये पुष्कर प्रयाग मथुरा जहां इच्छा हो युद्ध हो ॥ ६ ॥ वहीं मैं सेना सहित प्राप्त हूंगा इसमें सन्देह नहीं है अथवा मित्रभावसे जो यह बात तुम न कह सको तो मत कहो ॥ ७ ॥ हम सात्यकिको भेजते हैं वह सब कहेगा वह तुम्हारे साथ जायगा तुम साक्षीरूप रहना ॥ ८ ॥ हे विप्रेंद्र ! मैं यह

जानता हूं कि आपका मुझमें प्रेम है इससे तुम विजयी होकर दुःखसंकुल संसारमें सदा मेरी कथामें तत्पर हो॥९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरि-वंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥वैशपायन बोले; श्रीकृष्ण ब्राह्मणसे यों कह सात्यकिसे बोले; हे सात्यकि! हमारे वचनसे तुम वहां जाकर उन दोनोंसे कहो॥१॥जो कुछ हमने कहा है वह सब उन से कहो और जसे युद्धमें हमारी संगति हो वह बलसे कहना॥२॥ तुम गोधा अंगुलित्राण युक्त धनुष लेकर जाओ और केवल एक घोडेपर चढ सहायहीन होकर जाओ ॥ ३ ॥ बहुत अच्छा

इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मम सदा त्वयि ॥ तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले ॥ मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ॥९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥ वैशम्पायन उवाच इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः॥ गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात्तयोः॥१॥ यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयो पुरः ॥ यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात्तदा ॥२॥ धेनुरादाय गच्छ त्वं बद्धमोधाङ्गुलित्रवान् ॥ एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥३॥ सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम् ॥ गन्तुमैच्छत्ततो राजन्नसहायः स सात्यकेः ॥४॥ जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः ॥ अहो धार्ष्ट्यमहो धार्ष्ट्यमित्युवाच जनार्दनः ॥ ५ ॥ नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम् ॥ स ययो शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥ ६ ॥ ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः ॥ अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ॥ ८ ॥

यह वचन कह सात्यकि घोडेपर चढ इकलाही जानेकी इच्छा करने लगा ॥४॥ और यादवेश्वरने उस जनार्दन दूतको बहुत शीघ्र विदा करके वारंवार कहा उन दोनोंकी बडीही ढीठता है ॥५॥ तब वह दूत माधवेश्वर यादवको नमस्कार करके सात्यकिके सहित शाल्वनगरको गया ॥ ६ ॥ तब वह ज्ञानी धर्मात्मा ब्राह्मण राजभवनमें प्रवेश कर आसनपर बैठा सात्यकिके निमित्तभी आसन दिया॥७॥जब वह ब्राह्मण सात्यकिके सहित

सुखसे बैठा तब हंस डिंभकके निमित्त सात्यकिको दिखाया॥८॥कि यह नारायणकी दाहिनी भुजारूप सात्यकि उनके निकटसे दूत होकर आया है उसके यह वचन सुन हंस कहने लगे॥९॥मैंने पहले इनका नाम सुना है आज देख भी लिया धनुर्वेद वेद शास्त्र शस्त्रमें ॥१०॥ यह धीर बडाही निपुण है यह हमने सुना है अब यह हमारी दृष्टिके सन्मुख होकर प्रसन्नता प्राप्त करेगा ॥ ११ ॥ वासुदेव और बलभद्र कुशलसे हैं तथा सब यादव उग्रसेनादि प्रसन्न हैं ॥ १२ ॥ कुछ हँसकर सात्यकिने कहा सब कुशल है तब वाक्य विशारद हंसने जनार्दनसे कहा ॥ १३ ॥

दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥९॥ श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ ॥ धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च ॥१०॥ निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम ॥ अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ ॥११॥ कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः ॥ कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥१२॥ तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः ॥ ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥१३॥ अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम् ॥ वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११७॥वैशम्पायन उवाच॥इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः ॥ उवाच प्रहसन्वीरःस्तुवन्नारायणं सदा ॥१॥ अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं हस्तस्थशंखं वरचक्रधारिणम् ॥ आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गदं स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नवारिणम् ॥ २ ॥ अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम् ॥ ३ ॥

आपने श्रीकृष्णको देखा हमारा कार्य क्या सिद्ध है सम्पूर्ण वार्ता कहो वृथा समयका खोना भला नहीं॥१४॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥ वैशंपायन बोले; हंसके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा जनार्दन नारायणकी स्तुति करता हुआ हँसकर बोला ॥ १ ॥ हां हां हाथमें शंख चक्र लिये सुवर्णकी बनी गदा धारण किये चारों ओर कान्तिमान् रत्नोंको धारे जनार्दनका मैंने दर्शन किया है ॥ २ ॥ पुरातन यदु और मुख्य मुनिवृंदोंसे सेवित बडे मागधोंसे स्तूयमान हास्यमुख मूंगेके समान अधरवाले

श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ३ ॥ पुरातन कवियों द्वारा स्तुतिकिये हुए देवताओंके जानने योग्य फूले नील कमलके समान लक्ष्मीसे सेवित खिले कमलके समान उदरवाले श्रीकृष्णको हमने देखा ॥ ४ ॥ उन अजन्मा जगत्‌के गुरुको वचनोंसे यादवोंको प्रसन्न करते हुए और मुनियोंसे वेदार्थ निरूपण करते हुए मैंने देखा है ॥ ५ ॥ वारंवार मैंने समस्त लोकोंके हितैषी हरिका दर्शन किया है जो शत्रुओंको तिरस्कार कर जगत्‌के हितके निमित्त स्थित हैं ॥६॥ विहारके समग्र यदुवंशियोंके साथ श्रीकृष्णको मैंने क्रीडा करते देखा है जो आप यदुवंशियोंमें मुख्य ईश्वर होकर यदुवं-

अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनैर्विविच्य वेद्यं विधिवत्सहामरैः ॥ प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितं श्रिया विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम् ॥४॥
भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान् ॥ निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः ॥ ५ ॥
अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम् ॥ वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय जगन्मयं तान्परिभूय शत्रून् ॥ ६ ॥
भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरैर्विक्रीडयमानं च विहारकाले ॥ रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरान्यदूत्तमान्यादवमुख्यमीश्वरम् ॥७॥
भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं समेतया भीष्मतनूजया हरिम् ॥ वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम् ॥८॥
अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः पिबन्पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम् ॥ नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं धन्योऽहमस्मीति तदा व्यचिन्तयम् ॥९॥
अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम् ॥ आद्यं ककुद्मानमुरुं विभावसुं संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः ॥१०॥
अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम् ॥ वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा ॥ ११ ॥

शियोंको रमण कराते हुए रमते हैं ॥७॥ फिर मैंने उस हरिको भीष्मसुता रुक्मिणीसे वार्ता करते देखा है उन जलशायी हरि सर्वव्यापक भक्तप्रिय भक्तजनोंके स्थान शिवस्वरूपका दर्शन किया है ॥ ८ ॥ शान्त होकर उनके शरीरको नेत्रोंद्वारा पान कर और फिर नेत्रोंको मीचकर मैं धन्य हूं इस प्रकार विचारते हुए वारंवार हरिका दर्शन किया है ॥९॥ प्रभु विभु भूतमय नारायणका कमलयुगल धारण किये देखा है आद्यपुरुष ककुद्मान (माहात्म्यवाले) कान्तिमान्‌को वारंवार स्मरण करताहूं ॥ १० ॥ वक्षस्थलमें विराजित कौस्तुभवाले सैंकडों चामरोंसे वीज्यमान केशवका मैंने

दर्शन किया है ॥ ११ ॥ आप दोनों विद्वेषयुक्त होनेके कारण विकृत चित्तसे आप दोनोंका स्मरण करते विष्णुने कहा है कि हंस और डिंभक कहांहै ॥१२॥ उन दोनों मन्दात्माओंको मैं कब देखूंगा और वह कब मेरे सन्मुख होंगे इस प्रकार शंख हाथमें धारण किये विचार करते ॥१३॥ कर देनेकी वार्ता सुनकर हास्यमें तत्पर यतीश्वर नारद और दुर्वासासे वार्ता करते हुए ॥ १४ ॥ ब्रह्मसूत्र पदरूप वाणीको मुनीश्वरोंके निमित्त दते हुए उन हरिको देखकर मैं वारंवार विचार करने लगा ॥१५॥उन हमारे दोनों राजोंने बडी असावधानी की है. हे राजन् ! अब यह कार्य आप

युवां विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम् ॥ स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्वचैवं क्व च वेत्ति कः ॥ १२ ॥ क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ ॥ ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शंखवहं सदा॥१३॥हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम् ॥ वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥१४॥ ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम् ॥ दृष्ट्वाहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम् ॥ १५ ॥ असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम॥नारब्धव्यमिदं कार्यमितः प्रभृति भूमिप ॥१६॥ निवृत्ता सा कथा हंसाचिन्तयद्ग्रहणं तव ॥ तद्वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकिः ॥ एतद्वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १७ ॥ हंस उवाच ॥ अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वागियम् ॥ आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः ॥१८॥ मायया त्वां भ्रमयति कृष्णो लीलाविधानवित् ॥ तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान् ॥ १९ ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥ वृष्णिवीरं समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥ २० ॥

आरंभ मत करो ॥ १६ ॥ जो तुमने कथा ग्रहण की थी वह निवृत्त हो गई शेष सब वृत्तान्त सात्यकि वर्णन करेगा यह वचन सुन क्रोधकर हंस कहने लगा ॥ १७ ॥ हंस बोला; अरे ब्राह्मणसन्तान ! यह तुम कैसी वाणी बोलते हो जो त्रिलोकी जीतनेमें समर्थ हमारे सामने तुम ऐसी वाणी बोलते हो ॥१८॥ लीलाके विधान जाननेवाले श्रीकृष्णने तुमको मायासे भ्रमा दिया है उनको देखतेही यह तुमको महाभ्रम हो गया है ॥ १९ ॥ शंख चक्र गदा शार्ङ्ग वनमालासे विभूषित वृष्णिवीरको प्राप्त होकर जिन्होंने अपना बडा यश कर रक्खा है ॥ २० ॥

सूत मागधोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर अपना यश फैलानेवाले और विक्रमसे लोकोंको मंडन करनेवाले॥२१॥चतुर्बाहु बलसे आक्रान्त वृष्णि और यदुवंशियोंके संमत श्रीकृष्णको देखकर तुमको भ्रम हो गया है यह बडे आश्चर्यकी बात है॥२२॥और इस समयभी वह दुर्मति तुमको भ्रमाते हैं. हे मन्दात्मन् प्रिय ! उन्होंने जो तुमको भ्रमाया है यह इन्द्रजाल विया है॥२३॥हे विप्र ! उस भ्रमसेही तुमको यह चपलता प्राप्त हुई है तुम्हें तो हमारे समान वर्तना चाहिये ॥२४॥ हे ब्राह्मण ! मैं ही तुम्हारे इस प्रकारके वचन सहन कर सकता हूं सोभी यह मित्रभावकी बात है अन्यथा कौन इन

सूतमागधसंस्तावप्रकटद्धारबाहुकम् ॥ अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥२१॥ चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसंमतम् अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात्तस्य चक्रिणः ॥ २२ ॥ इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ॥ त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि या ॥ २३ ॥ चापल्यमिदमेवैतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ॥ अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥ २४ ॥ अहमेव त्वया विप्र मर्षये प्रोदितं वचः ॥ सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम्॥२५॥गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव ॥ द्विज गच्छ यथेष्टं त्वं पृथिवीं पृथिवी तव॥२६॥जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान् बहून्॥एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान् ॥२७॥ गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम् ॥ शत्रु पक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया ॥२८॥ न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥ २९ ॥ भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह ॥ किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वासौ मेऽदिशत्करम् ॥ ३० ॥

वचनोंको सह सकता है॥२५॥हे मंदमति ब्राह्मण ! आप अब यहांसे यथेष्ट गमन करिये आपकी पृथ्वी है चाहे जहां यथेष्ट गमन करो॥२६॥ गोपालकी सन्तानोंको जीत बहुतसे यादवोंको मार डालूंगा अब पहला काम हमारा यादवोंका मारनाही है ॥२७॥ हे विप्र ! तुम अब जाओ तुम ढीठ और परुषवादीको मैं रखना नहीं चाहता मेरे साथ भोजन कर शत्रुपक्षकी स्तुति करते हो॥२८॥कष्ट परभी मैं ब्राह्मणका वध नहीं करता हूं यह ब्राह्मणसे कथन कर फिर हंस सात्यकिसे कहने लगा॥२९॥हे यादवसंतान ! तुम यहां किस कारणसे आये हो नन्दपुत्रने क्या कहा है क्या

वह मुझको कर देंगे ॥ ३० ॥ सात्यकि बोला; हे हंस ! यह वचन सत्यही है कि शंख चक्र गदा धारण करनेवालेके तीक्ष्ण धारावाले शिलापर पैने किये शार्ङ्गधनुषसे निकले बाणोंसे ॥ ३१ ॥ और अपनी तीक्ष्ण तलवारसे मैं तुमको कर दूंगा. हे हंस ! करदानमें तत्पर मैं तुम्हारा शिरच्छेदन कर दूंगा॥ ३२ ॥ हे मन्दात्मन् नृपाधम ! तुम्हारी बडी धृष्टता है जो देवदेव जगन्नाथसे कर लेनेकी इच्छा करते हो ॥ ॥३३॥ इस करसे आपकी जिह्वा छेदन कर दी जायगी उन हरिके शंख और शार्ङ्ग धनुषका शब्द श्रवण करके॥ ३४॥कौन जीवित रह सकता है तुम क्षणमात्र ठहरो शिवके वरसे

सात्यकिरुवाच ॥ इदं सत्यं वचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ३१ ॥ दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते ॥ शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥ ३२ ॥ धार्ष्ट्यं हि तव मन्दात्मन् किमतोऽपि नृपाधम ॥ देवदेवाज्जगन्नाथात्करमिच्छति यो नृपः ॥ ३३ ॥ तस्यैष करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम ॥ तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥ ३४ ॥ को नाम जीवितं काङ्क्षेत्तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै ॥ गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥ ३५ ॥ सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः॥प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः॥३६॥कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली॥ पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥३७॥ सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः ॥ अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥ ३८ ॥ दशमश्चोद्धवो धीमान्वयमेते बलान्विताः ॥ त एते पुरतोगोप्तुः शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ३९ ॥ देवदेवस्य युद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम् ॥ यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नासत्यसदृशौ बले ॥ ४० ॥

दर्पित हो कौन ऐसे वचन कह सकता है ॥ ३५ ॥ और बलभद्रको आदि ले हम सब उनके सहायकारी हैं प्रमथ बलभद्र और दूसरा मैं सात्यकि ॥ ३६ ॥ तीसरा कृतवर्मा चौथा बली निशठ पांचवां बभ्रु छठा उत्कल ॥३७॥ सातवां अस्त्रशस्त्रमें पंडित बुद्धिमान् तारण है आठवां सारंग और नववां विपृथु है॥३८॥दशवां बुद्धिमान् उद्धव यह सब महाबली हैं यह दश शंख चक्र गदा धारण करनेवालेके सन्मुख रक्षा करनेको चलते हैं ॥ ३९ ॥ यह युद्धमें देवदेवके आगे दिनरात रहते हैं और जो उनके वीर दो पुत्र अश्विनीकुमारके समान बली हैं ॥ ४० ॥

वही दोनों युद्धमें मत्त तुमको मारनेको समर्थ हैं जो गिरीश देव तुमको वर देनेवाले हैं उनके बलसे दर्पित तुम ॥४१॥ धनुष बाण धारण किये श्रीकृष्णके संग युद्ध करनेको स्थित नहीं हो सकते उनके साथ कौन शत्रु युद्ध कर सकता है जिनके संग्राममें ॥ ४२ ॥ इस प्रकारके भृत्य शत्रुओंसे युद्ध करते हैं उन त्रिलोकीकी रक्षा करनेवालेसे तुम कर ग्रहणकी इच्छा करते ऐसोंसे युद्ध करनेको कौन न जायगा॥४३॥जो त्रिलोकीकी रक्षा करता है वह अवश्य युद्धमें तुम्हारा वध करेगा संग्राममें शार्ङ्ग धनुषसे निकले बाण तुम्हारा वध करेंगे ॥ ४४ ॥ जगत्पतिने

तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ ॥ यो गिरीशो गिरा देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥४१॥ युवां हि किंबलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः ॥ गृहीत्वा शत्रुभिः सार्द्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ ॥ ४२ ॥ ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः ॥ त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात्करमिच्छन् व्रजेत कः ॥ ४३ ॥ हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति ॥ शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम् ॥४४॥ क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ॥ पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्द्धने गिरौ ॥४५॥ मथुरायां प्रयागे वा दर्शन्यतो बलानि मे ॥ शङ्खचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥ ४६ ॥ राजसूयं महायज्ञं कर्तुमिच्छति कः स्वयम् ॥ वदन्वा स्वस्तिमान्मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत्सुखम्॥४७॥इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले॥ इत्युक्त्वा सत्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिवाक्यं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

कहा है पुष्कर देश वा पवित्र गोवर्द्धन आदिके स्थानमें हमारा तुम्हारा संग्राम कहां होगा ॥ ४५ ॥ मथुरा वा प्रयाग जहां तेरी इच्छा हो वहां मुझे अपना बल दिखा शंख चक्रधारी जगत्के पालन करनेवाले देवके विद्यमान होनेमें ॥ ४६ ॥ कौन स्वयं राजसूय यज्ञ कर सकता है और तेरे विना ऐसा कहकर कौन इसमें अपना कल्याण मान सकता है ॥ ४७ ॥ हे मूढ ! जो तू ऐसी इच्छा करेगा तो भूतलमें तेरा महाहास्य होगा ऐसा कह सात्यकि हँसता हुआ अपने आसनपर स्थित रहा॥४८॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभ-

कोपाख्याने सात्यकिवाक्यं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ वैशंपायन बोले; हे महाराज ! तब तो हंस और डिंभक क्रुद्ध हुए और रोषसे व्याकुल नेत्र कर इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ सब राजोंको देखते क्रोधसे मानो दिशाओंको जलाते हुए और सात्यकिके वचन सुन हाथसे हाथ मलते हुए बोले ॥२॥ क्या वह नंदपुत्र कृष्ण और क्या वस्तु बलराम है यह कह फिर आक्षेप कर सात्यकिसे कहने लगा ॥३॥ अरे यादव पुत्र ! हमारे सन्मुख तू क्या कहता है!हे मन्दात्मन् ! यहांसे निकल जा तू इस समय दूत है ॥४॥ नहीं तो ऐसे वचन कहनेवालेको मैं तत्काल

वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धौ महाराज हंसो डिम्भक एव च॥इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥१॥दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान्वीक्ष्य नृपोत्तमान्॥करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत्॥२॥क्व नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो बलोत्कटः॥ इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम्॥३॥अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः ॥ इतो निर्गच्छ मन्दात्मन्दूतस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥४॥ अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन् परुषं वचः॥सत्यं निर्लज्ज एवासि यद्ब्रूया ईदृशं वचः॥५॥आवामिदं जगत्सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ ॥ को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥६॥ हत्वा गोपालकान्सर्वान्बद्ध्वा यादवकान्बहून् ॥ गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥ ७ ॥ अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभाषसे ॥ ईश्वरो नौ वरं दाता ह्यस्त्राणमपि च प्रभुः ॥ ८ ॥ रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ ॥ पितरं याजयिष्यावो तित्वा गोपालकं रणे ॥ ९ ॥ एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ॥ हत्वा तान्सबलान्युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥ १० ॥

मार डालता,तू सत्यही निर्लज्ज है जो इस प्रकारके वचन कहता है॥५॥हम दोनों राजा इस सम्पूर्ण जगत्के शासन करनेमें समर्थ हैं ऐसा कौन है जो हमको कर दिये विना जीवित रह सकता है॥६॥सब गोपालोंको मार और यादवोंको मारकर हम सर्वस्व उनका ग्रहण कर लेंगे.हे नराधम ! तू यहांसे जा॥७॥दूतताको प्राप्त होनेसे तू अवद्ध है बहुत अनुचित वचन कह रहा है ईश्वरने हमको वर और अस्त्र दिये हैं ॥८॥ और संग्राममें हम दोनोंकी शिवके दो गणरक्षा करते हैं, हम गोपालोंको रणमें जीतकर पिताको यज्ञ करावेंगे॥९॥जिनका तुमने नाम लिया है यह सब युद्धमें

कातर हैं उन सबको युद्धमें जीत केशवको जीतूंगा ॥१०॥ शरासन ग्रहण कर महासेना सजाओ जो प्रास मुशल कवच धारण किये हो ॥११॥ सहस्रों रथमें चढकर गदा परिघ लिये बहुत धनवती और बहुत साधनसे सम्पन्न॥१२॥घोर सेनाको बडे बडे अध्यक्ष लेकर चलें सात्यकि तू अवध्य होकर जा तुझे मरणसे भय नहीं है ॥१३॥ हमारा संग्राम पुष्करमें कल वा परसोंसेही आरंभ होगा, तब हम केशवका बल देख लेंगे और जिनका नाम तैंने लिया है उनका बलभी देखेंगे॥१४॥सात्यकि बोला; हे हंस ! मैं तुम्हारे मारनेको वहां चलता हूं और अबभी मारनेको समर्थ हूं पर मैं

संहर्तव्या महासेना प्रगृहीतशरासना ॥ गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥ ११ ॥ आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसंकुला ॥ सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना ॥१२॥ चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः ॥ अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥१३॥ संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ॥ ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च ॥ ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च यद्बलम् ॥१४॥ सात्यकिरुवाच ॥ हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ॥ अद्यैव हि मया वध्यो न चेद्दूतो भवाम्यहम् ॥१५॥ न हि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ ॥ दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥१६॥ अन्यथाहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम् ॥ स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन्वां नृपाधमौ ॥१७॥ शङ्खचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत् ॥ नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥१८॥ स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् ॥ दैत्यदानवहन्तासौ योगिध्येयः पुरातनः ॥१९॥ पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः ॥ सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥ २० ॥

दूत हूं ॥ १५ ॥ तुम कटु बोलनेवालोंको कल परसोंतकभी क्षमा नहीं करता दूत होनेसे यह कठिन दुःख धारण करना पडा ॥१६॥ नहीं तो अभी तुमको मारकर शान्तिको प्राप्त होता. हे नृपाधमो ! अपनी बाहुओंका बलवीर्य दिखाऊंगा॥१७॥शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये किरीट-धारी शार्ङ्गधन्वा नील कुंचित केशवान् लम्बायमान भुजा लक्ष्मीसे युक्त॥१८॥सब लोकके उत्पन्न करता विश्वरूप स्वरूपवान् दैत्य दानवोंके मार-नेवाले योगियोंको ध्यान करने योग्य पुरातन ॥ १९ ॥ कमलके समान नेत्र श्यामस्वरूप सिंहके समान चालवाले सृष्टि स्थिति लयमें वह एकही

कर्ता तीनों जगत्‌के गुरु ॥ २० ॥ तीक्ष्ण बाणसे आपका अभिमान दूर करेंगे यह कह रथपर चढ सात्यकी चला गया ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ वैशंपायन बोले; शिनिपुंगव सात्यकि द्वारकापुरीमें प्रवेश कर उनका सब वृत्तान्त श्रीकृष्णसे कहता हुआ ॥ १ ॥ तब प्रातःकाल होतेही केशिसूदन केशव चक्रपाणि गदा धारण करनेवाले अपने बलाध्यक्षसे बोले ॥ २ ॥ रथ कुंजर घोडेवाली तथा अनेक भेरियोंसे युक्त हमारी सेना तयार करो जो प्रास परिघ

शरेण निशितेनाजौ दर्पं वा व्यपनेष्यति ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुङ्गवः ॥ आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथावृत्तं तयोस्तथा ॥१॥ ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः ॥ बलाध्यक्षानुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः ॥२॥ संन्यह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् ॥ अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ ३ ॥ सध्वजं सपताकं च सालंकारपरिच्छदम् ॥ ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वे चक्रुरधीनगाः ॥४॥ आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः ॥ अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ॥५॥ सात्यकिश्च तथा राजन्प्रगृहीतशरासनः ॥ बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः॥६॥ अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ॥७॥ हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह ॥ शार्ङ्गभारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः॥८॥चक्रपाणिस्तदा शङ्खी गदाशरवरासिमान्॥बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः॥९॥

धारण किये ॥ ३ ॥ ध्वजा पताका और सब अलंकारोंसे व्याप्त है शीघ्र तयार करो बहुत अच्छा ऐसा कहकर उन्होंने बहुत शीघ्र वह किया ॥४॥ दृढ चाप धारण कर रथमें स्थित हुए वे पुरुषश्रेष्ठ रथमें चढकर आगे २ चले॥५॥हे राजन् ! सात्यकिभी शरासन ग्रहण कर क्रोधको प्राप्त हो आगे आगे गमन करने लगा॥६॥ औरभी शूर यादव आयुध ग्रहण किये सिंहनाद करते गमन करने लगे ॥७॥ और श्रीकृष्ण दारुकके सजाये रथमें चढकर और शार्ङ्गभारके सहन करनेवाले घोर बाण धनुष्यको लिये ॥८॥ चक्र शंख गदा शर असि ग्रहण करे गोधांगुलि त्राण बांधे

पीत वस्त्र पहरे जनार्दन ॥ ९ ॥ कमलोंकी माला पहरे नये मेघके समान कान्तिमान् ब्राह्मणोंसे स्तुतिको प्राप्त हो प्रसन्नतासे चले ॥ १० ॥ सूत मागधपुत्र उनको गाने लगे सब सेना लेकर उत्तर दिशाको चले ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण बलसे श्रीकृष्ण पांचजन्य शंखको मुखमें रखकर शत्रुओंको भय देनेवाले महाशब्द करने लगे ॥१२॥ जब श्रीकृष्णने उस शंखराजको बजाया तब उसने शब्दसे आकाशको पूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे उस शंखके बजनेमें सहस्रों शंख बजने लगे तथा बहुतसी भेरी और मृदंग बजने लगे ॥१४॥ यह ऐसा शब्द हुआ जैसे चौमासेमें मेघ

पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसन्निभः ॥ ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितैः॥१०॥ सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः॥ आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथोत्तराम् ॥ ११ ॥ पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः ॥ दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणा भयवर्द्धनम् ॥१२॥ आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शङ्खराट् ध्रुवम् ॥ रवः स रोदसी राजन्पूरयामास सर्वतः ॥१३॥ तस्मिञ्छङ्खे तथाध्माते दध्मुः शङ्खान् सहस्रशः ॥ भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप ॥ १४ ॥ नेदुरत्यर्थमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा ॥ अथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम् ॥१५॥ सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः ॥ प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिताः ॥१६॥ निवेशं कारयामासुर्यादवाः सर्व एव हि ॥ स्वं स्वं ययुः सुखं राजन्प्रगृहीतकुटीमठम् ॥१७॥ भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ॥ उपस्पृश्य जले तस्मिन्प्रणम्य यतिपुङ्गवान् ॥ १८ ॥

शब्द करते हैं. हे महाराज ! फिर वे पुण्यस्थान पुष्करमें प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ वे राजोंमें उत्तम उस पवित्र सरोवर पुष्करमें प्राप्त हुए और हंस डिंभककी वाट देखते वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ सब ओर यादवोंने अपने डेरे डाल दिये अपने कुटीमठमें प्राप्त हो सब प्रसन्नतासे स्थित हुए ॥१७॥ भगवान् गोविंदभी उस मनोहर सरोवरको देखकर यतिश्रेष्ठोंको प्रणामकर जलस्पर्श करते हुए ॥ १८ ॥

और उनके आगमनकी इच्छासे उसके तटमें स्थित हुए और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि श्रवण करने लगे ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ वैशंपायन बोले;हे नृप ! तब वे हंस और डिंभकभी पुष्करको चले और महाचाप ग्रहण कर रथ ध्वजासे युक्त ॥ १ ॥ महाभूतके समान वे प्रलय करनेको चले शरीरमें भस्म लगाये महाशब्द करते हुए ॥२॥ ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये रुद्राक्षसे शोभित मानो दो रुद्रहीलोकसंहार करनेको प्रगट हुए हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उनके पीछे सैंकडों सेना

तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् ॥ शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ तौ हंसडिम्भकौ जग्मुतुः पुष्करं प्रति ॥ प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥१॥ पुरस्सरमहाभूतौ संहरन्ताविवोल्बणौ ॥ प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपितौ ॥ २ ॥ त्रिपुंड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ ॥ अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहार-कारकौ ॥३॥ ततोऽनुजग्मुः शतशः सन्यानि नृपसत्तम ॥ अक्षौहिण्यो दशैवासंस्तयोरथ समागताः ॥४॥ विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभः ॥ तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः ॥ ५ ॥ शक्रो यस्य पुरसरः स्थातुं शक्तो न वज्रभृत् ॥ यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥६॥ देवान्निघ्नंस्तथा राजन् देवेन्द्रमजयन्महान् ॥ अकरोच्च पुरा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ७ ॥ यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे यदुपुङ्गवान् ॥ स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥ ८ ॥

चलने लगी दश अक्षौहिणी सेना उनके रथके साथ चलीं ॥४॥ हे महाराज ! एक पर्वतके समान बडा बली विचक्र नाम दानव उन दोनों बलशा-लियोंका सखा था ॥ ५ ॥ जिसके सामने वज्रधारी इन्द्रभी खडे होनेको समर्थ नहीं था. हे महाराज ! जो वीर देवता दैत्योंके समागममें ॥ ६ ॥ देवताओंको मार देवेन्द्रको जीतता हुआ और जिसने पहिले विष्णुके साथ युद्ध किया था ॥ ७ ॥ और जिसने द्वारकापुरीमें जाकर यदुवंशियोंको

दुःखी किया था. हे महाराज ! वह उपस्थित युद्ध श्रवण कर ॥ ८ ॥ परिघ हाथमें लिये सैंकडों दानवोंको संग लिये वृष्णिवंशियोंसे द्वेष करता चला ॥ ९ ॥ इस प्रकार वह हंस डिंभककी सहायता करनेको उद्यत हुआ विचक्र दैत्यका डिंभ राक्षसपति ॥ १० ॥ बडा मित्र था अर्थात् युद्धमें प्राणोंतकका देनेवाला था शिला शूल तल्वार हाथमें लिये राक्षसोंके साथ ॥ ११ ॥ पुरुषोंके खानेवाले राक्षसोंका अधिपति उसको सहायता करनेको गया, उसके साथमें अट्ठासी सहस्र दानव थे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! इन सबके हाथमें शिला और परिघ थीं उनकी महासेना यादवोंसे

अनेकशतसाहस्रैर्दानवैः परिघायुधैः ॥ वृतः समभवद्दैत्यो वृष्णिद्वेषान्नृपोत्तम ॥९॥ हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तुमुद्यतः ॥ विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥१०॥ अतीव मित्रतां यातो दद्यात्प्राणांश्च संयति ॥ राक्षसैरपरैः सार्धं शिलाशूलासिपाणिभिः ॥११॥ ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादपः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥१२॥ अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः ॥ तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशवं प्रति ॥ १३ ॥ मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः ॥ अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥१४॥ दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति ॥ तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा ॥१५॥ ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह ॥ नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥ १६ ॥ गच्छतोः समितिं राजन्हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥ १७ ॥ सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ॥ अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥१८॥ इत्यब्रुवन्नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति ॥ संप्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्द्धनम् ॥ १९ ॥

युद्ध करनेको चली॥१३॥इस प्रकार दैत्य और राक्षसोंसे संयुक्त वह सेना महारौद्र अति अद्भुत त्रिलोकीको भय देनेवाली हुई॥१४॥ इस प्रकार वे दोनों दैत्योंके संग पुष्करको चले वे हंस डिंभक केशवके मारनेकी इच्छासे चले ॥१५॥ उस समय जरासंधने यदुओंके संग विग्रह सुनकर इसमें पाप जानकर राजोंकी सहायता न की ॥ १६ ॥ हंस और डिंभक इस प्रकारसे अतिविक्रमको प्राप्त हो पुष्करके प्रति गमन करने लगे ॥ १७ ॥ सिंहनाद करते गमन करने लगे कि प्रथम मैं ही राजोंसे पहले श्रीकृष्णसे युद्ध करूंगा ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे सबही राजा कहने लगे कि इस प्रकार

इस पुण्यवर्द्धन पुष्करमें संग्राम होगा॥ १९ ॥ मुनियोंसे युक्त और वृद्ध २ ऋषियोंसे सेवित यह सब लोकोंमें पुष्करही अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष यह दोही दर्शन और स्पर्शसे पाप दूर करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ हे राजन्! यह पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष दोही देवता मुनिश्रेष्ठ और महात्माओंसे सेवित हैं ॥२२॥ हे नृपश्रेष्ठ! यह दोनोंही पापके नाशक हैं जहां ये दोनों स्थित थे वहां राजा गये ॥ २३ ॥ वहां उन्होंने परम देव श्रीकृष्णको देखा वह पुष्कर ब्रह्मस्थान मुनिश्रेष्ठोंसे सेवित है ॥ २४ ॥ हे राजन्! मनसे इस दोनोंको नमस्कार करो यहां सब

मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम् ॥ अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥२०॥ पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते ॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनौ नृप ॥ २१ ॥ पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव नृपसत्तम ॥ सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरौघैर्महात्मभिः ॥२२॥ द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ ॥ तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥२३॥ दृष्टवन्तो हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम् ॥ पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ॥२४॥ ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम ॥ अहो निःशेषमभवत्तत्र भूयो न संशयः ॥२५॥ सैन्यं तत्र च संप्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम् ॥ अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥२६॥ नानापणवसंमिश्रं रक्षोनादविनादितम् ॥ प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशांपते ॥ दर्शयामास देवेश युद्धाय समुपस्थितम् ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ द्वे सेने संगते राजन्सध्वजे सपरिच्छदे ॥ महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥ १ ॥

पापोंका निश्शेष हो जायगा इसमें संदेह नहीं ॥ २५ ॥ फिर दैत्यराक्षसोंसे युक्त वह सेना वहां प्राप्त हुई अनेक भेरी पणव झर्झरी और डिंडिमसे संयुक्त थी ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके बाजोंसे संयुक्त राक्षसोंके नादसे शब्दायमान इस प्रकार पुष्करके स्थानमें प्राप्त होकर युद्धके निमित्त स्थित केशवको देखा ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन्! जब ध्वजापरिच्छेदसहित दोनों सेनाकी संगति हुई तब महापरिघ तथा गदा शक्तिसे समाकुल ॥ १ ॥

भेरी झर्झरसे सम्पूर्ण, डिमडिमके शब्दसे संकुल महाशस्त्र ग्रहण किये शूल तलवार कार्मुक धारण किये ॥ २ ॥ परस्पर उत्साहपूर्वक दारुण युद्ध करने लगे, वे बाण धनुषसे मुक्त होकर प्राणियोंको निर्भेद कर ॥ ३ ॥ शरीरोंको विदीर्ण करने लगे योधाओंकी भुजाओंसे छूटे खड्ग वीरोंकी छातीको विदीर्ण कर ॥ ४ ॥ तथा उनके स्फुरायमान शिरोंको ग्रहण कर आकाशको गये इसी प्रकार राजोंसे छोडे हुए परिघ ॥ ५ ॥ राक्षसोंके शरीर तिलके समान खण्ड खण्ड करने लगे, इस प्रकार एक दूसरेके वधकी इच्छासे सिंहनाद करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! राक्षस राजा

भेरीझर्झरसंपूर्णे डिण्डिमारावसंकुले ॥ प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकार्मुके ॥ २ ॥ परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम् ॥ ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम् ॥ ३ ॥ शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः ॥ भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥४॥ स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहृत्य खं ययुः ॥ परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः ॥५॥ तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृप रक्षसाम् ॥ दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ ६ ॥ दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समन्ततः॥अन्योन्यं परिजैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥७॥ शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबलाः॥राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमाः॥८॥ अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः॥नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः ॥ ९ ॥ रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा ॥ पट्टिशासिशरव्रातैः कुन्तैः सायककर्षणैः ॥ १० ॥ सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलैः ॥ भिण्डिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

और दैत्य एक दूसरेको शिला और परिघोंसे मारने लगे ॥७॥दूसरे महाबली सर्पके शरीरके समान तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे; वे राक्षस दानव मत्त मातंगके समान पराक्रमी थे ॥८॥चापसे छूटे महाबाणोंसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे. हे महाराज ! अनेक हाथी और घोडोंसे हाथी घोडोंका युद्ध होने लगा ॥९॥ रथी रथियोंसे अश्वारोही अश्वारोहियोंसे युद्ध करने लगे, पट्टिश, असि, शर समूह कुन्त सायक कर्षण ॥ १० ॥ शक्ति परिघ

प्रास परसोंसे समाकुल भिंडिपाल आदिसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे॥ ११॥इस प्रकार चापसे छूटें हुए बाणोंसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे. हे राजन् ! राक्षस दानव और क्षत्रिय इधर उधर दौडते महाशब्द करने लगे॥ १२॥कोई तलवारसे मारकर पृथ्वीमें गिर पडे किन्ही बलियोंके मस्तक गदासे चूर्ण हो गये॥ १३॥हे महारज ! किन्हीकी गर्दन परिघसे चूर्ण हो गई, कोई यमलोक और कोई स्वर्गको जाने लगे॥ १४॥कोई अप्सराओंसे संगतिको प्राप्त हो अपने कलेवरको देखने लगे कोई अपने परायोंको भ्रान्त होकर मारने लगे ॥ १५॥ हे राजन् ! इस अवसरमें सैंकडों शंख और भेरी

अन्योन्यं जघ्निरे राजश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥ राक्षसा दानवा राजन्क्षत्रियाश्च समन्ततः ॥ इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं रवम् ॥ १२ ॥ हताः केचिन्महाराज पेतु रुर्व्यां महासिभिः ॥ केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥ १३ ॥ भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः ॥ यमराष्ट्रं गताः केचित्केचित्स्वर्गं समाययुः ॥१४॥ अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वकलेवरम् ॥ केचित्स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन् शङ्खा भेर्यः सहस्रशः ॥ सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदङ्गा बहवस्तथा ॥ १६ ॥ मध्यंदिनगते सूर्ये तापं दधति घोरवत् ॥ ततः पिशाचा विकृताः करालविततोदराः ॥ १७ ॥ राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाड्वलम् ॥ मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥ १८ ॥ संचितानि शवान्यासन्कबन्धाः खड्गपातिताः ॥ विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः ॥१९॥ अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे ॥ तुण्डैः शवान्विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्ततः ॥ २० ॥

सेनामें चारों ओरसे बजने लगीं और बहुतसे मृंदग बजने लगे ॥१६॥ जिस समय सूर्य मध्याह्न समयको प्राप्त हो घोर प्रचण्ड हुए उस समय घोर मुख बडे पेटवाले पिशाच और महाघोर राक्षस मांस खाते प्रसन्न हो रुधिर पान करने लगे॥ १७॥और संचित हुए खड्गसे पातित हो कबंध नाचने लगे बहुतसे देशको विभाग कर युद्धभूमिमें मृतकोंको मारने लगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब श्येन मृग कंक गृध्र तुण्डोंसे मृतकोंको खैंचने लगे ॥ २० ॥

हे राजन् ! उस युद्धमें सत्तासी सहस्र हाथी और चालीस सहस्र (हजार) घोडे मृतक हुए ॥२१॥ हे महाराज ! एक लक्ष रथीभी मृतक हुए और तीस करोड घुडसवार मृतक हुए॥२२॥सूर्यके मध्याह्नकालमें इस प्रकार मृत्युको प्राप्त हुए और कोई प्यासे हो पुष्करमें प्रवेश करने लगे॥२३॥ और कोई पृथ्वीको आलिंगन कर युद्धमें भीत होकर बोलने लगे कोई रथसे गिरकर खुले बाल पृथ्वीमें गिरने लगे॥२४॥कोई सवार होठ चाटते पृथ्वी-पर गिरे वह युद्ध पुष्करतीर्थमें महाघोर हुआ. हे राजन् ! जैसा पूर्वकालमें देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ था ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे

सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम ॥ त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता हयसत्तमाः ॥२१॥ हतं लक्षं महाराज रथानां रथिभिः सह ॥ त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिनः सायुधा भृशम् ॥२२॥ मध्यंदिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः ॥ केचिच्च तृषिता राजन्विविशुः पुष्करं सरः ॥२३॥ केचिद्भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन् रणे॥ मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान्संत्यज्यकेचन ॥२४॥ संदष्टोष्ठपुटाः केचित्सादिनः पुरतो हताः ॥ अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत्पुष्करतीर्थके ॥ यथा देवासुरं युद्धमासीत्पूर्वं नृपोत्तम ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥ विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधर ॥ १ ॥ बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः ॥ २ ॥ शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनगाः ॥ वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ३ ॥ शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मयं दर्शयन् रणे ॥ दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ॥ ४ ॥

भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! उसी समय द्वंद्वयुद्ध होने लगा शार्ङ्गधन्वा गदाधर विचक्रके साथ युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ बलभद्र हंसके साथ और डिंभकके साथ सात्यकिका संग्राम होने लगा, वसुदेव और उग्रसेनके साथ राक्षस हिडिम्बका युद्ध होने लगा ॥ २ ॥ हे महाराज ! शेष योधा बडी धीरतासे दूसरोंके साथ संग्राम करने लगे, वासुदेवने ७३ बाण दैत्यकी छातीमें मारे ॥ ३ ॥ वह बाण बडे तीक्ष्ण थे जिससे रणमें दानवको बडा विस्मय हुआ; दानवनेभी श्रीकृष्णको बडे तीक्ष्ण ॥ ४ ॥

बाणसे कर्णपर्यन्त खैंचकर छातीमें इन्द्रके देखते२प्रहार किया॥५॥उस बाणसे वक्षस्थलमें विद्ध होकर जनार्दन देव रुधिर वमन करने लगे जैसे आदि कालमें प्रजा॥६॥तब श्रीकृष्णने क्रोधकर क्षुरसे इसकी ध्वजा छेदन कर दी चारों घोडे मारकर तीन बाणोंसे सारथिको मारकर अपना महाशंख बजाया जैसे तारकामय संग्राम हुआ था तब क्रोधमूर्ति दानवने तत्काल रथसे उतरकर ॥७॥८॥ दुस्सह वीर्यशालिनी महाघोर गदाको ग्रहण कर उस दैत्येन्द्रने श्रीकृष्णके किरीटपर आघात किया॥९॥और फिर मस्तकपर प्रहार करके सिंहनाद किया,और फिर उस राक्षसने एक महाशिलाको ग्रहण कर॥१०॥

शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम् ॥ जघानस्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ॥५॥ तेन विद्धोऽथ भगवान्वक्षोदेशे जनार्दनः ॥ अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ॥६॥ ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद्ध्वजम् ॥ अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च शरैस्त्रिभिः ॥७॥ ततो दध्मौ महाशङ्खं यथा तारामये रणे ॥ रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवःक्रोधमूर्च्छितः ॥८॥ गदां गृह्य महाघोरां दुःसहां वीर्यशालिनीम् ॥ तया जघान दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह ॥९॥ ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ तत शिलां च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल ॥१०॥ भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत्केशवोरसि ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः ॥११॥ जघान च तया दैत्यं स पपातार्दितः क्षितौ ॥ गतासुरिव संजज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥१२॥ प्राप्य संज्ञां ततो दैत्य क्रोधाद्द्विगुणमाबभौ ॥ आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥१३॥ अनेन तव गोविन्द दर्पजातं विहन्म्यहम् ॥ विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे ॥ १४ ॥ तावेव विपुलौ बाहू स एवास्मि जनार्दन ॥ तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम्॥ १५ ॥

उसे दश बार घुमाकर केशवके हृदयमें प्रहार किया,उसे आया देख केशवने हाथसेही ग्रहण कर॥११॥उससे दैत्यकोही मारा जिससे दैत्य अर्दित हो पृथ्वीपर श्वास लेता प्राणरहितके समान गिर पडा॥१२॥ तब वह दैत्य संज्ञाको प्राप्त होकर दुगुना क्रोधकर परिघको उठाय जनार्दनसे बोला ॥१३॥ हे गोविंद!जान लो कि इससे तुम्हारा दर्प चूर्ण होजायगा देवासुरके युद्धमें आपने मेरा पराक्रम देखा है॥१४॥यह वही मेरी विपुलभुजा और

वही तुम हो.हे वीर ! तोभी तुम युद्ध कर मेरा बल देखोगे ॥ १५ ॥ अब मेरी भुजासे छूटे हुए इस परिघको निवारण करो, ऐसा देवदेव शंख चक्र गदाधारीसे कहकर सबके देखते दैत्यने वह परिघ लोकेशपर फेंका ॥ १६ ॥ कृष्णने उसको भुजासे ग्रहण कर कहा अब तुझको मारा और खड्ग से उसके खण्ड खण्ड कर डाले॥१७॥तब उस दैत्यने सौ शाखका महावृक्ष उखाडकर उससे हरिको ताडन किया ॥१८॥ उसकोभी श्रीकृष्णने तिलके बराबर खण्ड कर दिया इस प्रकार माधव बहुत कालतक दैत्यके साथ क्रीडा करके ॥ १९ ॥ तीक्ष्ण बाण लेकर दैत्यके मारनेकी इच्छा करने लगे,

वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम् ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः॥१६॥ तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः ॥ खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह ॥१७॥ उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशःशतशाखं महाशिखम् ॥ तेन संपोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम् ॥ १८ ॥ छित्त्वा तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह ॥ विक्रीड्य सुचिरं विष्णुस्तेन दैत्येन माधवः ॥१९॥ हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशितं शरम् ॥आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः ॥२०॥ संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ यथापूर्वं जगामाशु करं भगवतः पुनः ॥ २१ ॥ हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो दिशो दश ॥ अद्यापि न निवर्त्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् ॥२२॥ इति श्रीम० खिलेषु हरि० भवि० हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम् ॥ जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वरः ॥१॥ तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः ॥ तानन्तरे हला छित्त्वा नाराचैर्दशभिःपुनः ॥२॥

और उसे आग्नेयास्त्रसे संयुक्त कर मारा ॥ २० ॥ सब लोकके देखते उससे वह दैत्य भस्म हो गया और वह अस्त्र फिर भगवान्‌के हाथमें आ गया ॥ २१ ॥ मरनेसे शेष रहे दैत्य दशों दिशाओंको भाग गये वे समुद्रमें गये आजतक नहीं लौटे हैं सागरमें चले गये ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ वैशंपायन बोले, धर्मात्मा बलदेवजी शीघ्र धनुष लेकर दश बाणोंसे हंसको ताडन करते हुए ॥ १ ॥ हंसने उनको पांच बाणोंसे विद्ध किया दश बाणोंसे बलरामजीने

उनको छेदन कर दिया ॥२॥ और हंसके मस्तकमें नाराचोंका प्रहार किया वह दृढ बाण गिरकर उसकी संज्ञाको हरता हुआ तब वह बहुत कालतक रथमें स्थित होकर संज्ञाको प्राप्त हो बाण ग्रहण करता हुआ ॥३॥और संज्ञाको प्राप्त हो उस बाणसे यदुवीरको विद्ध किया और देवताओंको विस्मय कराता हुआ सिंहके समान गर्जने लगा ॥४॥ तब क्रोधको प्राप्त हुए हली उस बाणसे विद्ध होकर रुधिर वमन करते हुए॥५॥ लोहितवर्णका शरीर हो जानेसे कुमकुमसे रंगेके समान हो गये, तब सौ युद्धमें स्थित सहस्र बाणोंसे बलरामजीने उसको अर्दित किया॥६॥इस प्रकार बलरामजीने हंसगतिवाले

नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ॥ दृढं पतन्स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे ॥ रथोपस्थे चरं स्थित्वा तूणाद्बाणं समाददे॥ ३ ॥ लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्धा तेन यदूत्तमम् ॥ सिंहवद्व्यनदद्धंसो देवान्विस्मापयन् रणे ॥ ४ ॥ ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः ॥ वमञ्छोणितमत्युष्णं निश्वसंश्च रणाजिरे ॥५॥ लोहिताविष्टगात्रस्तु कुङ्कुमार्द्र इवाभवत् ॥ नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः ॥६॥ हंस हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः ॥ ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः ॥७॥ रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणीद्वये नृप ॥ पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः ॥ शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥ ९ ॥ शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपं ददौ ॥ ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे॥१०॥ आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन् ॥ तथा रथं ध्वजं चक्रमश्वान्सूतं हलायुधः ॥ बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः ॥११॥ भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल ॥ सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥१२॥

वीर हंसको विद्ध किया, वे शीघ्रगामी नाराच उनके धनुषसे निकलकर॥७॥रथ ध्वजा चाप केतु दोनों तरकसमें चारों ओरसे पतित हो उसको व्यथित करने लगे॥८॥हे महाराज ! तब वीर्य और मदसे युक्त हंस बडा क्रोधित हुआ एक बाणसे बलरामको वेध कर उनकी ध्वजा छेदन कर दी॥९॥चार बाणोंसे घोडों और सारथिको मार डाला तब बलरामजीने क्रोधकर गदा ग्रहण की॥१०॥और श्वास लेते हुए हंसपर झपटे उससे बलरामजीने रथ ध्वजा रथके पहिये घोडे सारथिको तिलके समान खण्ड खण्ड कर वारंवार शब्द किया॥११॥और फिर गदा लेकर हंसके मारी और हंस गदा लेकर रथसे

उतरा ॥१२॥ तब वे महाबलीदोनों युद्ध करने लगे वे महाबली महातेजस्वी लोकमें विख्यात॥१३॥ अतिअद्भुत विक्रान्त परस्पर वधकी इच्छा करनेवाले श्रम किये हंसके समान गमन करनेवाले ॥१४॥ ऐसे युद्ध करने लगे जैसे देवासुरके संग्राममें इन्द्रका और वृत्रासुरका संग्राम हुआ था दोनोंके रुधिरसे शरीर संसक्त हो गये॥१५॥और युद्धमें महाखेदित हो गये, तब बलरामजी दक्षिणमार्गसे चलने लगे ॥१६॥ और हंसने सव्यमार्ग ग्रहण किया और हाथीके समान विक्रमवाले युद्धमें प्रहार करने लगे॥१७॥ और अपने पूर्णबलसे एक दूसरेको प्रहार करने लगे, देवासुरके युद्धके

ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे ॥ महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥१३॥ अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ ॥ कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ ॥ १४ ॥ यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराम्बरे ॥ उभौ संसक्तसर्वाङ्गौ शोणितेन महारणे ॥१५॥ अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह ॥ ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽन्वगच्छत ॥ १६ ॥ सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो व्यगृह्णात्स्वयमेव हि ॥ पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ॥१७॥ यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ ॥ अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम् ॥ १८ ॥ विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥ १९ ॥ अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् ॥ इत्यूचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥२०॥ परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः ॥ २१ ॥ व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान्बलः ॥ निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् ॥ रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

समान युद्ध होने लगा ॥१८॥ देवता उस युद्धको देखने लगे देवता और मुनि सब विस्मित हो गये॥१९॥अहो हमने ऐसा युद्ध कभी नहीं देखा था, यह विस्मित हो देवता गन्धर्व किन्नर कहने लगे॥२०॥परस्पर उत्साहसे युद्ध करने लगे फिर युद्धमें हंस बाई ओरसे, बलराम दक्षिणओरसे युद्ध करने लगे॥२१॥बलरामजी सव्य मार्ग चलने लगे जांघ सकोड बडे वेगसे गदाप्रहार करने लगे इस प्रकार युद्धमें उन युद्धकरनेवालोंमें श्रेष्ठको देवता देखने लगे॥२२॥इति श्रीमहाभारते खिलेषुहरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसबलभद्रयुद्धवर्णनो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

वैशम्पायन बोले;इधर डिंभक और सात्यकिका महायुद्ध होने लगा वह दोनों वीर युद्धमें विख्यात थे ॥ १ ॥ युद्धविद्यामें महानिपुण वृद्धोंकी सेवा किये हुए थे सात्यकिने वेदपारगामी डिंभकको दश बाण ॥ २ ॥ मारकर उसे विद्ध किया और तीक्ष्ण बाणोंसे हृदयको विद्ध किया उस बलीसे क्षत्रियश्रेष्ठ डिंभ विद्ध होकर ॥ ३ ॥ पांच सहस्र बाणोंसे युद्धमें उसे विद्ध करने लगा, उनको बीचमेंही सात्यकिने काट दिया और बडा शब्द किया ॥ ४ ॥ और क्रोधकर सात बाणोंसे राजोंको विद्ध किया फिर उस डिंभकने लक्ष बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी ॥ तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च ॥ १ ॥ कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ ॥ सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम् ॥२॥ अविध्यन्निशितैर्बाणैस्तेन वक्रे तथोरसि ॥ स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः ॥ ३ ॥ नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः ॥ तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्धन्निनदन् ब्रुवन् ॥४॥ अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः॥ पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥५॥ सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत ॥ अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः॥६॥आजघ्ने डिंभको वीरश्चापमादाय चापरम् ॥ क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ॥७॥ स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृपः ॥ अतीव शुशुभे राजन्वसन्ते किंशुको यथा ॥ ८ ॥ धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत्पुरा धनुः ॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥ ९ ॥ जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ स धनुः पुनरत्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥ १० ॥

तब क्रोधकर सात्यकिने उसका धनुष छेदन कर दिया यह अर्धचन्द्र बाणसे छेदन किया ॥ ६ ॥ तब डिंभकने और चाप लेकर सात्यकिको विद्ध किया उसने क्षुरेके समान तीक्ष्ण बाणसे विद्ध किया ॥ ७ ॥ उस बाणसे विद्ध हो राजा शोणित वमन करने लगे, वसन्तमें टेसूके फूलके समान शोभित हुए ॥ ८ ॥ और वह उसका धनुष फिर छेदन कर दिया तब डिंभकने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंसे सब क्षत्रियोंके देखते विद्ध किया, सात्यकिने फिर उसका धनुष छेदन कर दिया ॥ १० ॥

जब तीक्ष्ण बाणसे उस दुरात्माका धनुष छेदन किया तब बहुत शीघ्र उसने दूसरा धनुष लिया ॥ ११ ॥ और उसने सात्यकिको विद्ध किया. हे राजेन्द्र ! इस प्रकारसे १००धनुष छेदन कर दिये॥१२॥और सब क्षत्रियोंके सामने सात्यकि सिंहनाद करने लगा तब वीर डिंभक और सात्यकि धनुष त्यागनकर॥१३॥खड्ग ग्रहण कर दोनों युद्ध करनेको तैयार हुए, तब खड्गके युद्ध जाननेमें श्रेष्ठ सात्यकि और डिंभक॥१४॥अर्थात् दुश्शासनका पुत्र महाभाग सोमदत्तका पुत्र महाबली अभिमन्यु और नकुल यह खड्गयुद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ कहे हैं. हे राजन् ! इन छहोंमें यह युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ

शरेण तीक्ष्णपुङ्खेन डिम्भकस्य दुरात्मनः ॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥११॥ धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः ॥ एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥१२॥ छित्त्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥१३॥ खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ ॥ तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १४ ॥ दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च ॥ अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च ॥१५॥ एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः ॥ एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ षट्सु वै नृपसत्तम ॥१६॥ तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बहुनिःसृतम् ॥१७॥ आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम् ॥ संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥१८॥ आहिकं चित्रकं क्षिप्तं कुसुम्बं लम्बनं धृतम् ॥ सर्वबाहुविनिर्बाहुः सव्येतरमथोत्तरम् ॥ १९ ॥ त्रिबाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च ॥ पृष्ठतः प्रथितं चैव यौधिकं प्रथितं तथा ॥२०॥ इति प्रकारान् द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ॥पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः॥२१॥

हैं॥१५॥१६॥दोनों युद्धकी लालसासे खड्गयुद्ध करने लगे, भ्रान्त उद्भ्रान्त आविद्ध प्रविद्ध इत्यादिबत्तीस प्रकारके तलवारके हाथ घुमाते ॥ १७ ॥ आकर विकर भिन्नमर्याद अमानुष संकोचित कुलचित सव्यजानु विजानु ॥१८॥ आहिक चित्रक क्षिप्त कुसुमलम्बन धृत सर्वबाहु निर्बाहु सव्येतर उत्तर॥१९॥ त्रिबाहु तुंगबाहु सव्य उन्नत उदासि पृष्ठकी ओर हाथ घुमाना यौधिक प्रथित॥२०॥इस ३२ प्रकारसे युद्ध करने लगे और वारंवार प्रहार

करकेभी श्रमको न प्राप्त हुए॥२१॥हे महाराज ! इस प्रकार वे युद्धके निमित्त निश्चय किये थे, तब देवता गन्धर्व ऋषि॥२२॥जय हो इस प्रकार उन परिश्रम करनेवालोंको संतुष्ट करने लगे इन दोनों बलशालियोंका बडा पराक्रम है ॥ २३ ॥ यह दोनों युद्ध करनेमें समर्थ धनुषविद्याके पारगामी हैं, एक शिवका और एक द्रोणाचार्यका शिष्य है ॥२४॥ अर्जुन सात्यकि वासुदेव जगत्पति हे महाराज ! संग्राममें यह तीन महाविख्यात हैं॥२५॥ और डिंभक कार्तिकेय शिव यह तीन महारथी हैं यह वीर्य और बलमें प्रसिद्ध हैं॥२६॥ इस प्रकार देव गन्धर्व सिद्ध यक्ष महोरग युद्ध देखनेकी

पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥२२॥ तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः ॥२३॥ एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ ॥ एकः शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः ॥२४॥ अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः ॥ त्रय एते महाराज प्रथिताः संगरे सदा ॥२५॥ डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः ॥ प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च ॥२६॥ इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः ॥ दिवि स्थिताः समं ब्रूयुर्युद्धदर्शनलालसाः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ ॥ जराजरितसर्वाङ्गौ पलिताङ्गशिरोरुहौ ॥१॥ ज्ञान विज्ञानसंपन्नौ राजमार्गविशारदौ ॥ युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना ॥२॥ शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामासतू रणे ॥ राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिम्बं पुरुषादकम् ॥ ३ ॥

॥२५७॥

इच्छासे आकाशमें स्थित हुए कहने लगे ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ वैशंपायन बोले; वसुदेव और उग्रसेन दोनों युद्धमें बडे पराक्रमको प्राप्त हुए जरासे सर्वांग जर्जरित और श्वेतबालवाले॥१॥ ज्ञान विज्ञानमें तत्पर राजमार्गके जाननेवाले उस महायुद्धमें राक्षसके साथ युद्ध करते थे॥ २ ॥ और सहस्रों बाणोंसे युद्धमें उस राक्षसको अर्दित

करने लगे वह पुरुषभक्षी दुरात्मा हिडिम्ब राक्षस था ॥ ३ ॥ वह हिडिम्ब राक्षस सब ओरसे यदुवंशियोंको भक्षण करता था, वह दुष्टात्मा लम्बी भुजा और लम्बी ठोढीवाला महावृद्धिको प्राप्त हुआ ॥४॥ लम्बोदर विरूपाक्ष पीले केश और नेत्र, श्येनकेसी नासिका, महाभयंकर, ऊर्ध्वरोमा, महा-भुज ॥ ५ ॥ पर्वताकार शरीर,दीर्घ डाढों, गीदडकेसा मुख, लम्बोदर, दीर्घदन्त, जगत्के ग्रास करनेमें तत्पर ॥ ६ ॥ ऊंचे कंधेवाला, बडी छाती, लम्बी गरदन,हाथीके समान, बडा मांसके लोदोंको खाता, रुधिरपान करता हुआ ॥ ७ ॥ हाथियोंसे हाथियोंको घोडोंसे घोडोंको रथोंसे रथोंको

हिडिम्बो राक्षसेंद्रस्तु भक्षयन्सर्वतो नरान् ॥ अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः ॥ ४ ॥ लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः ॥ श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥ ५ ॥ पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः ॥ लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥ ६ ॥ उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः ॥ भक्षयन्मांसपिटकं पिबन् शोणितसंचयम् ॥७॥ गजान्नागैः समाहृत्य हयैर श्वान्नृपोत्तम ॥ रथान्रथैः समाहृत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥८॥ मनुष्यान्त्स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः॥ कांचिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥ ९ ॥ भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः॥यान्पश्यन्पुरतो रक्षस्तान् जघान विरूपधृक् ॥ १० ॥ भक्षयन्नपरान्वृष्णीन्यादवान् राक्षसेश्वरः ॥ चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥११॥ अन्तकले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृपः ॥ क्षणेनैकेन सर्वांस्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥ १२ ॥ केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ॥ केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुङ्गवाः ॥ १३ ॥

सवारोंको सवारोंसे मारता हुआ ॥ ८ ॥ आगे मनुष्योंको देखकर नासिकासेही श्वासके द्वारा ग्रस लेता था,किसीको पकडकर निगल जाता था हे महाराज ! इस प्रकार अनेक वृष्णिवंशियोंको ॥ ९ ॥ खाने लगा जिसको उसने आगे देखा उसीका वध किया, विरूपधारे ॥ १० ॥ दूसरे वृष्णिवंशी और यादवोंको वह राक्षस खाने लगा, और किसीको वह हिडिम्ब फेंकने लगा ॥ ११ ॥ अन्तकालमें क्रोधकर रुद्र जैसे प्रजाका संहार करते हैं, इस प्रकार वह क्षणमात्रमें सबको भक्षण करने लगा ॥१२॥ कोई बली वृष्णि डरकर दिशाओंमें भाग गये, और किन्हीको वह

राक्षस भक्षण कर गया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कुंभकर्णने वानरोंको भक्षण किया था इस प्रकार वह यादवोंकी सेनाको भक्षण करने लगा ॥ १४ ॥ चित्रपटके समान यादवी सेना निश्शेष हो गई तब दोनों वृद्ध यादव क्रुद्ध हुए और महाघोर धनुषको ग्रहण कर राक्षसके सन्मुख हुए ॥ १५ ॥ जैसे सिंहके सन्मुख मृग होते हों तब वह महाराक्षस मुख फैलाकर उन दोनोंके ऊपर दौडा ॥ १६ ॥ और पातालके समान मुख फैलाये खानेकी इच्छा करने लगा और भक्षण करता हुआ रथसे धावमान हुआ ॥१७॥ तब उन दोनों वीरोंने बाणोंसे उसका मुख पूर्ण कर

कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ॥ (निःशेशं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः) ॥ १४ ॥ निश्शेषं वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रपठे यथा ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुङ्गवौ ॥ धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षस्य पुरः स्थितौ ॥ १५ ॥ यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव ॥ व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥ १६ ॥ चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसन्निभः ॥ ततोऽरथः पर्यधावत्खादन् खादन्कलेवरम् ॥ १७ ॥ पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुवृषौ नृप ॥ हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्यमिवन्तकम् ॥ १८ ॥ सर्वांस्तान्वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक् ॥ धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम् ॥ १९ ॥ तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम् ॥ बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः ॥ २० ॥ वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम् ॥ ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि ॥ २१ ॥ हिडिम्ब उवाच ॥ एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह ॥ उग्रसेन किमर्थं त्वं तिष्ठसे मत्पुरोगमः ॥ २२ ॥ आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम ॥ विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता ॥ २३ ॥

दिया वह हिडिम्बका मुख बडा घोर था ॥१८॥ उस देवशत्रु विरूपने उन सबको निवारण किया और भयानक मुख फैलाये वह राक्षस धावमान होने लगा ॥ १९ ॥ और उन दोनोंके धनुष लेकर बहुत शीघ्र तोड डाले और वह दुष्टात्मा राक्षस बाहें फैलाकर ॥ २० ॥ वसुदेव राजा वृद्धसेवीको ग्रहण करनेकी इच्छा राजोंके सन्मुख करने लगा॥२१॥हिडिम्ब बोला; हे वसुदेव ! मैं अभी तुम्हारे साथ वृद्ध उग्रसेनके खानेकी इच्छा करता हूं मेरे सामने उग्रसेनकी क्या सामर्थ्य है ॥ २२ ॥ आओ तुम मेरे मुखमें प्रवेश कर जाओ हरिके पिता वसुदेवको मेरे मुखमें आनेके

निमित्त परमात्माने कल्पित कर दिया है ॥ २३ ॥ मैं शीघ्र विक्रमी भूखा श्रमसे आर्त हो रहा हूं मेरे मुखमें शीघ्र प्रवेश करो अब तुम जा नहीं सकते ॥ २४ ॥ तुम दोनोंका रुधिरपान कर मैं शान्त हो जाऊंगा, और पीछे तुम दोनों वृद्धोंका मांस खाऊंगा ॥२५॥ यह कहकर उस महाठोढीवाले राक्षसने खानेको मुख फैलाया, और राक्षसेश्वर उन्हें खानेको दौडा ॥२६॥ तब उग्रसेन और वसुदेव भयभीत हो सब ओर देखने लगे, और शस्त्ररहित हो वहांसे पृथक् हो गये ॥ २७ ॥ इस अवसर प्रतापवान् बलरामजीने उग्रसेन वसुदेवजीको इस प्रकार देखकर ॥ २८ ॥ हंससे

बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः ॥ मन्मुखान्नैव गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥ २४ ॥ युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः ॥ खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम् ॥२५॥ इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यं महाहनु ॥ धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः ॥ दिशोऽभ्यभजतां राजन्निःशस्त्रैर्वृष्णिपुङ्गवौ ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान् ॥ दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥ २८ ॥ वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे ॥ निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ २९ ॥ मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चैतौ राजसत्तमौ ॥ स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रून् जिघांसता ॥ ३० ॥ अहमेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका ॥ इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥ ३१ ॥ महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः ॥ विदार्य पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥ ३२ ॥ विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः ॥ मुष्टिं प्रगृह्य बलवान्स्फोटयन्बाहुमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

युद्ध करनेको वासुदेवसे कहकर और उस दुरात्मा राक्षसके बीचमें प्राप्त हो बोले ॥ २९ ॥ राक्षस ! इन्हें छोड साहस मत कर मैं स्थित हूं मुझ शत्रुनाश करनेवालेके साथ युद्ध कर ॥ ३० ॥ मैं तुझको वध करूंगा तुझसे क्या भय है बलरामजीको ऐसा कहते देख महायुद्धमें वह उन दोनोंको छोडकर ॥३१॥ यह कुटिल महाअनयसंपन्न है पहले इसेही भक्षण करूं, यह कह मुख फैलाकर बलरामके सन्मुख धावमान हुआ ॥ ३२ ॥ वहभी शरचापको छोडकर राक्षसके सन्मुख स्थित हुए, और घूंसा बनाकर अपनी भुजाको ठोकते हुए ॥ ३३ ॥

तब दुष्टात्मा हिडिम्बकनेभी घूंसा उठाकर कालके समान घूंसा बलरामजीकी छातीमें मारा ॥ ३४ ॥ क्रोधकर बलरामजीको मुष्टिसे उसने मारा और बलरामजीने राक्षसको मारा ॥ ३५ ॥ उस समय नर और राक्षस वीरका मुष्टियुद्ध होने लगा और दोनों युद्धभूमिमें युद्ध करते रहे ॥ ३६ ॥ उन दोनोंके घूसोंका चटचटा शब्द होने लगा तब राक्षसराजने संग्राममें रामको घूंसेसे ॥ ३७ ॥ छातीमें मारा जैसे इन्द्र वज्र मारे तब बलरामजीनेभी यत्नने घुंसा बनाकर ॥३८॥ देवशत्रु हिडिम्बकी छातीमें मारा तब रामने तलप्रहार उस राक्ष-

हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकाम् ॥ जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३४ ॥ क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः ॥ जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ॥३५॥ मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः ॥ युद्ध्यतोर्युद्धरंगेऽथ नरराक्षससिंहयोः ॥ ३६ ॥ तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ॥ अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥ ३७ ॥ जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः ॥ अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः ॥३८॥ हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम् ॥ तलाभ्यामथ रामस्तु वक्रे हत्वा स राक्षसम् ॥ ३९ ॥ आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीर राक्षसः ॥४०॥ तत उत्पाद्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम् ॥ आदाय बाहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥४१॥ व्याविध्यत्सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम् ॥ उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः॥४२॥ गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धलायुधः ॥ गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥४३॥ ये केचिद्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे ॥ बलभद्रात्ततो भीता जग्मुश्चैवं दिशो दश॥४४॥

सके मुखमें किया ॥ ३९ ॥ राक्षसपति तालके आघातसे ताडित होकर गतासु हो जंघाके बल पृथ्वीमें गिरा ॥४०॥ तब बलरामजीने भुजाओंसे बली राक्षसको पकडकर बडे वेगसे घुमाया ॥४१॥ और अपना बल दिखाकर उसे महाताडित कर सर्वके देखते २ दूर फैंक दिया ॥४२॥ और उन महाबलीने उस राक्षसको दो कोसपर फैंक दिया प्राणरहित हो राक्षसश्रेष्ठ उस देशसे पृथक् हो गया॥४३॥जो वहां राक्षस थे वे हत होकर बल-

रामके डरसे दशों दिशाओंमें भाग गये ॥४४॥ तब अंशुमाली भगवान् सूर्य अपना तेज संहार कर प्रजाओंके चक्षुओंका प्रकाश हरण करते अस्त हुए और कुछ अंधकार छाने लगा॥४५॥जब प्रजापति जगत्के गुरु सूर्य विश्वमुख सागरमें प्रविष्ट हुए, उस समय संध्याके अन्धकारको दूर करता चन्द्रमा उदय हुआ॥४६॥हे राजन्!फिर प्रातःकालमें उठकर राजा कहने लगे कि गोवर्द्धनमें युद्ध करना श्रेष्ठ है जहां किन्नरोंके गीतोंका शब्द होता है, ऐसा कहकर वे सब गोवर्द्धनको गमन करने लगे ॥४७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने

अथांशुमाली भगवान् दिनेशः संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ॥ अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजानामीषत्तमश्चापि समाविवेश ॥ ४५ ॥
तस्मिन्प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ ॥ नक्षत्रनाथः समुपाजगाम संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोत्तम ॥ ४६ ॥
प्रभातकाले नृपसत्तमो रणो गोवर्द्धने किन्नरगीतनादिते ॥ इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥ ४७ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवो नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम् ॥ जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो नृप ॥ १ ॥
अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥ गोवर्द्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः॥२॥ शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ३ ॥ जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो गिरिम् ॥ गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ४ ॥ तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं संप्राप्य यादवाः ॥ निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ५ ॥

हिडिम्बपराभवो नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥वैशंपायन बोले; वे दोनों हंस और डिंभक रात्रिमेंही महागिरि गोवर्द्धनको चले ॥१॥ फिर विमल प्रातःकाल होनेसे केशिसूदन केशवभी गोवर्द्धनको चले ॥२॥ शैनेय बलभद्र सारण आदि यादव चले गन्धर्व और अप्सराओंसे वह पर्वत शब्दायमान था ॥३॥ तथा गोधनादिके शब्दोंसेभी वह पूर्ण था. हे राजन् ! इस प्रकारसे वे गोवर्द्धन पर्वतको गये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह यादव

उसके उत्तर पार्श्वमें प्राप्त होकर यमुनाके किनारे युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ हंस डिंभकने वसुदेवको सात बाणोंसे विद्ध किया पच्चीससे सारण और दशसे कंकको विद्ध किया ॥ ६ ॥ फिर हंस डिंभकका यादवोंके संग संग्राम होने लगा उग्रसेनने ७३ बाण ॥ ७ ॥ विराटने तीस सात्यकिने सात विपृथुने ८० उद्धवने दश प्रद्युम्नने तीस साम्बने सत्तर अनाधृष्टिने ७१ बाण मारे ॥ ८ ॥ ९ ॥ उस प्रकार वे पराक्रम प्रकाश करके युद्ध करने लगे, वे सब यादव अति अद्भुत महाघोर युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ वासुदेवके देखते उन दोनोंसे युद्ध होने लगा. हे महाराज! बलदर्पित वे सब

विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः ॥ सारणः पञ्चविंशत्या दशभिःकङ्क एव च ॥६॥ हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः॥ उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥७॥ विराटस्त्रिंशता राजन्सात्यकिश्चापि सप्तभिः॥ अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः ॥८॥ प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन्साम्बश्चापि च सप्तभिः ॥ अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥९॥ एव वै सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत् ॥ अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥ १० ॥ चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ सर्वानपि महाराज यादवान्बलदर्पितान् ॥ ११ ॥ तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ॥ प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितकोमलैः ॥१२॥ जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान् ॥ व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं बहु ॥१३॥ माधवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते बभुः ॥ भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजो नृप ॥ वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः ॥ १५ ॥ चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ॥ तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥ १६ ॥

युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ वे हंस और डिंभक उन राजोंको विद्ध करके प्रत्येकको तीक्ष्ण बाणोंसे वेध कर ॥ १२ ॥ तीक्ष्ण बाणोंसे यादवेश्वरोंको विद्ध करने लगे वे सब व्यथित हो रुधिर वमन करने लगे ॥१३॥ और चैतके महीनेमें टेसूके फूलके समान शोभित हुए और भीत होकर यादव भागनेकी इच्छा करने लगे॥ १४ ॥ हे राजन् ! उसी समय श्रीकृष्ण और बलराम युद्धमें उन दोनों धनुषधारियोंके साथ ॥ १५ ॥ इन्द्र और स्कन्दके समान आकाशमें तुमुल युद्ध करने लगे, उस समय गन्धर्व सिद्ध यक्ष महर्षि ॥ १६ ॥

देवता देवताओंके समान इस युद्धको देखने लगे. हे राजन्! उस समय शिवजीके भेजे हुए दो भूतेश्वर वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ उन्हें उनकी रक्षाके निमित्त शिवजीने भेजा था, तब हंस और वासुदेव दोनों युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ तथा राम और डिंभक युद्ध करने लगे वह सब अस्त्रशस्त्रसे विशून्य हुए बलमें युक्त थे ॥ १९ ॥ और अपने २ रथमें स्थित हुए शंख बजाने लगे तब हृषीकेश पांचजन्य नामक महाशंखको बजाने लगे ॥२०॥ इस प्रकार वह कमललोचन सबको आश्चर्य कराने लगे, तब वे दोनों महाघोर शरीरवाले लम्बोदर ॥ २१ ॥

विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् ॥ ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥ १७ ॥ शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयोः ॥ हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥ १८ ॥ रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकाङ्क्षया ॥ विशून्याः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥ १९ ॥ शंखान्दध्मुः पृथक्‌ ह्रादं स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः ॥ अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्यं महारवम् ॥२०॥ दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान्विस्मापयन्निव ॥ अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥२१॥ दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम् ॥ शूलेन पोथयां राजन् चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥२२॥ ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसंनिधौ ॥ ईषत्स्मिताधरो देवः किंचिदुत्प्लुत्य सत्वरम् ॥ २३ ॥ रथाद्रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः ॥ भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः ॥ २४ ॥ कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः ॥ ता उपेत्य गिरेः श्रृंगं कैलासस्य महामते ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम् ॥ हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥ २६ ॥

शूल हाथमें लिये केशवके ऊपर दौडे और शूलसे यादवेश्वरको वींधने लगे ॥ २२ ॥ देव गंधर्वोंके सामने उनसे समाहत हुए विष्णु भगवान् कुछ हँसते हुए वहांसे कूदे ॥ २३ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने रथसे कूदकर उन दोनोंको पकड लिया और अलातचक्रके समान उनको सौ वार घुमाया ॥ २४ ॥ और कैलासपर्वतपर उन दोनोंको फैंक दिया वे दोनों कैलासपर्वतके शृंगपर गिरे ॥ २५ ॥ और देवका यह कर्म

देखकर परम विस्मयको प्राप्त हुए हंस वह कर्म देखकर बडा क्रोधित हुआ ॥२६॥ और देवताओंके सुनते वह हंस कहने लगा. हे केशव ! तुम हमारे राज्यरूप यज्ञमें क्यों विघ्न करते हो ॥ २७ ॥ ब्रह्मदत्त राजा उस यज्ञको करेंगे जो प्राणोंकी रक्षा करना चाहते हो तो हमारा कर दो ॥२८॥ अथवा तुम क्षणमात्र स्थित हो तो बहुत कर दोगे. हे नंदपुत्र ! तुमको इतना देना होगा कि उससे हमारा यज्ञ हो जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओंके पति शिव हैं, इस प्रकार मैं राजोंका अधिपति हूं युद्धमें तुम्हारा सम्पूर्ण दर्प चूण करूंगा॥३०॥यह कहकर तालके वृक्षके समान चापको चढाय

उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥ २७ ॥ ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः ॥ करं दिश यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि ॥ २८ ॥ अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा परं बहु ॥ ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः ॥ २९ ॥ ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत् ॥ एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥३०॥ इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ॥ आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम् ॥३१॥ ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ॥ उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो ॥ ३२ ॥ दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देश तमीश्वरः ॥ अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन्रथम् ॥ ३३ ॥ मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम् ॥ अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः ॥३४॥ आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरे कस्मिंश्चिदव्ययः ॥ उवाच ॥ हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन्रणे ॥ ३५ ॥ अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय ॥ अलं ते बह्वबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥ ३६ ॥

॥२६१॥

बाण रख यथाशक्ति चढाय केशवके ॥ ३१ ॥ मस्तकमें प्रहार किया, यह बडी अद्भुत वार्ता हुई, तब कृष्णने सात्यकिसे कहा तुम हमारा रथ चालन करो॥ ३२ ॥ तब श्रीकृष्णने दारुकको पृष्ठवाहक करके, सात्यकिद्वारा रथको चालन कराया ॥ ३३ ॥ और संग्राममें वह अनेक मंडल दिखाता रथ चलाने लगा, श्रीकृष्ण उसके शरसे दृढ विद्ध हो गये थे॥३४॥ तब श्रीकृष्णने धनुषके ऊपर दिव्य बाण चढाय अग्नि अस्त्रसे संयुक्त किया और सात्यकिको प्रेरण करते हंससे बोले; हे पापी ! इस बाणसे मैं तुझको मारूंगा ॥ ३५ ॥ यदि समर्थ हो तो निवारण कर बहुतसी अबद्ध

बातोंसे क्या है तू क्षत्रियोंमें सदा शठ है ॥ ३६ ॥ जो मुझसे कर लेनेकी इच्छा है तो अपना बल दिखा; हे हंस ! तैंने पुष्करमें रहनेवाले यतियोंको पीडित किया है ॥ ३७ ॥ हे नराधम ! मेरे होते तू ब्राह्मणोंका शासन कर सक्ता है मुझ जगत्के स्वामीने क्षत्रियरूपी कंटकको वध कर दिया है ॥ ३८ ॥ मैं लोकमें असत् और ब्राह्मणद्वेषियोंकी शासना करनेवाला हूं, हे नृपाधम ! तू तो यतियोंमें मुख्य यतियोंके पापसेही दग्ध हो रहा है ॥३९॥ आज तुझे मृत्युके अर्थ सौंपकर ब्राह्मणोंकी रक्षा करूंगा, यह कहकर वह अस्त्र युद्धमें श्रीकृष्णने त्यागन किया ॥ ४० ॥ हंसने वारु

मत्तश्चेत्करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ॥ यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ॥३७॥ शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम ॥ स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ॥३८॥ शास्तास्म्यथो सतां लोके दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम् ॥ शापेन यतिमुख्यानां हत एव नृपाधम ॥३९॥ मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ॥ इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः ॥४०॥ तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोपि प्रत्यषेधयत् ॥ वायव्यमथ गोविन्दो मुमोचयुधि हंसके ॥४१॥ तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः ॥ अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ॥ ४२ ॥ रौद्रेण तत्ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात् ॥ गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः ॥४३॥ ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुरं याम्यमेव च ॥ चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥ ४४ ॥ वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह ॥ अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम् ॥ ४५ ॥ मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः ॥ योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम् ॥४६॥ अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तमः ॥ हंसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास तं शरम् ॥ ४७ ॥

णास्त्रसे उसको निवारण कर दिया तब श्रीकृष्णने वायव्यअस्त्रको चलाया ॥४१॥ हंसने उसे महेन्द्र अस्त्रसे निवारण किया तब श्रीकृष्णने युद्धमें माहेश्वर अस्त्र चलाया ॥ ४२ ॥ हंसने उसको रौद्रास्त्रसे निवारण कर दिया, तब गन्धर्व राक्षस पिशाच अस्त्र केशवने चलाये ॥ ४३ ॥ तब ब्रह्मास्त्र कुबेरास्त्र आसुर याम्य यह चार अस्त्र हंसने युद्धमें श्रीकृष्णके ऊपर छोडे ॥४४॥ श्रीकृष्णने घोर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रसे उनका निवारण कर दिया ॥४५॥ और फिर यही घोर अस्त्र हंसके ऊपर घोर पराक्रमवाला संयुक्त किया ॥४६॥ तब इस महारौद्र अस्त्रको देखकर राजा हंस

डर गया, और हंसने उसी अस्त्रसे उसको वारणकिया॥४७॥तब देवदेव जनार्दनने यमुनाजलका स्पर्श कर वैष्णव अस्त्र बाणपरसंधान किया॥४८॥ और भूतभावनने उसको बाणपर चढाया, जिस अस्त्रसे देवताओंने असुरोंको मारकर राज्य प्राप्त किया था, वही अस्त्र उस राजाके वधके निमित्त चढाया ॥४९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसकेशवयुद्धे सप्त विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥ वैशंपायन बोले; वह राजा महारौद्र अस्त्रको देखकर भीत हुआ और वह हंस चेष्टारहितके समान हो गया ॥१॥ और रथसे उतरकर यमुनामें धावमान हुआ जहां कृष्णने

यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः॥ अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः॥४८॥ योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः॥ येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुराऽसुरान् ॥ यदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपते ॥४९॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम॥ हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव संबभौ ॥१॥ उत्प्लुत्य स रथात्तस्माद्यमुनामभ्यधावत॥ यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालियाहिं ममर्द ह ॥२॥ महाह्रदं महारौद्रं यावत्पातालसंस्थितम्॥ तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत् ॥ ३ ॥ तस्मिन् ह्रदे महाघोरे पपाताथ स हंसकः॥ हंसे पतति तस्मिंस्तु महान् रावो बभूव ह ॥४॥ गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा ॥ रथादुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह ॥५॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव॥ प्राहरत्तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः॥६॥ पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ॥ ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि ॥ ७ ॥

कालियनागको यमुनामें मर्दन किया था ॥ २ ॥ वह महारौद्र ह्रद पातालपर्यन्त गहरा था वह उतनाही दीर्घपातालके समान स्थित था ॥ ३ ॥ उस महाघोर ह्रदमें वह हंस निपतित हुआ, हंसके गिरनेसे उसमें महाशब्द हुआ ॥ ४ ॥ जैसे इन्द्रके मारे पर्वत सागरमें गिरे थे तब रथसे कूदकर श्रीकृष्ण उसके ऊपर पतित हुए ॥५॥ वह देवदेव जगन्नाथ जगत्को विस्मय कराते हुए पैरोंसे उसको प्रहार करते हुए ॥ ६ ॥ वह नृप श्रीकृष्णके

पादप्रक्षेपको प्राप्त होकर मर गया ऐसा कोई कोई कहते हैं ॥७॥ कोई कहते हैं पातालको चला गया वहां सर्पोंने भक्षण कर लिया. हे राजन् अबतक उसे किसीने देखा हो ऐसा हमने नहीं सुना॥८॥फिर जगन्नाथ अपने रथमें आनकर स्थित हुए.हे महाराज ! उसके मरनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ इस प्रकार तुम्हारे पूर्व पितामहका यज्ञ हुआ, और जो यह हंस जीता रहता तो उस यज्ञकी कौन प्रशंसा करता॥१०॥हे महाराज!वह सर्व अस्त्रका जाननेवाला रुद्रसे अस्त्रबलको प्राप्तहोकर गर्वित हुआ था,क्षणमें यह वार्ता पृथ्वीमें व्याप्त होगई कि॥११॥

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति ॥ अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्युनुशुश्रुम ॥८॥ यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् ॥ हते तस्मिन्महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ अकरोद्राजसूयं च तव पूर्वपितामहः ॥ यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तक्रतुम् ॥ १० ॥ स च सर्वास्त्रविन्नित्यं रुद्राल्लब्धवरः प्रभो ॥ क्षणादेव महाराज वार्त्तेयं गामगाहत ॥ ११ ॥ हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवा निशम् ॥ १२ ॥ कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥१३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधो नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम् ॥ बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥ १ ॥ डिम्भको वीर्यसंपन्नो यमुनामनुजग्मिवान् ॥ तमन्वधावद्वेगेन बलभद्रो हलायुधः ॥२॥ हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह ॥ यमुनायां महाराज विलोडय जलसंचयम् ॥ ३ ॥

शत्रुघाती श्रीकृष्णने हंसको मार डाला गन्धर्वपति देवलोकमें यह वार्ता रातदिन गाते हैं॥१२॥लोकनाथ प्रभु विष्णु श्रीकृष्णने यमुनाके घोर ह्रदमें इसको मार डाला ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसवधो नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥ वैशंपायन बोले; बडे बली अपने भ्राताको मरा हुआ देखकर युद्धमें लडते हुए बलदेवसे युद्ध करना छोडकर॥१॥ बडा बली डिंभक यमुनाके निकट गया बलरामजीभी उसके पीछे हुए ॥ २ ॥ जहां हंस निपतित हुआ था वहीं यह कूद पडा और यमुनाका जल विलोडित करने लगा ॥ ३ ॥

और क्रोधकर बहुत प्रकारसे उस जलमें ढूंढकर वारंवार गोता मारकर और वारंवार खोजकर ॥ ४ ॥ कहींभी अपने बली भ्राताको न पाया और बाहर निकलकर श्रीकृष्णको देखकर वह ॥ ५ ॥ बडा बली डिंभक वचन कहने लगा; अरे गोपपुत्र ! बताओ तो वह हंस कहां स्थित है ॥ ६ ॥ धर्मात्मा वासुदेवने कहा यमुनासे पूछ, यह वार्ता प्रसन्नतासे कही ॥ ७ ॥ यह सुनकर डिंभक फिर यमुनामें प्रविष्ट हुआ, और वहां बहुत प्रकारसे भाईको ढूंढा ॥ ८ ॥ जब न मिला तब डिंभक विलाप करने लगा कि हे भ्राता ! मुझे छोडकर तुम कहां जाते

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु॥उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनःपुनः ॥ ४ ॥ न ददर्श तदा राजन् भ्रातरं वीर्यशालिनम् ॥ उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च॥५॥उवाच वचनं राजन् डिम्भको वीर्यवत्तमः॥अरे गोपकदायाद क्वासौ हंस इति स्थितः॥६॥ वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक ॥ इत्यब्रवीत्प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥७॥ तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिम्भकः किल ॥ बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥८॥ विललाप ततो राजा डिंभको भ्रान्तमानसः ॥ क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ॥९॥कुतो भ्रातरितो गच्छेःपरित्यज्यैव मामिह ॥ विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः॥१०॥ आत्मत्यागे मनः कुर्वन् यमुनाया महाह्रदे ॥ निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः ॥११॥ हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च ॥ ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत्स्वयम् ॥१२॥ ममारान्तर्जले राजन् डिंभको नरकाय वै ॥ एवं तु निहते हंसे डिम्भके वीर्यशालिनि ॥१३॥ आगमत्पुण्डरीकाक्षो भूतान्विस्मापयन्निव ॥ ततः पीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १४ ॥

हो ॥ ९ ॥ हे भ्राता ! मुझे छोड कहां गये हो, इस प्रकार नृपश्रेष्ठ भ्राताके निमित्त विलाप करके ॥ १० ॥ उस यमुनाके महाह्रदमें प्राण-त्यागनकी इच्छा करता हुआ वारंवार मरनेके निमित्त डूबने लगा ॥ ११ ॥ हाथसे जीभको खैंच वारंवार विलाप करने लगा और फिर अपने हाथसे जिह्वाको खैंच लिया ॥ १२ ॥ और जलके भीतर नरक जानेके निमित्त मर गया इस प्रकार बली डिंभक और हंसके मरनेमें ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण प्राणियोंको विस्मय कराते वहां आये तब प्रसन्न हो प्रतापवान् श्रीकृष्ण ॥ १४ ॥

बलभद्रके सहित गोवर्द्धनमें विश्राम कर कुछ कालतक वहां निवास करते हुए॥१५॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभ-कवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥ वैशंपायन बोले;यशोदा और नन्द गोप श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा किये उन्हें बलदेवजीके साथ गोवर्द्धनमें आया देखकर ॥ १ ॥ मक्खन दही दूध कृशर वनके फूल मयूराङ्गद ले ॥ २ ॥ सब गोप और गोपियोंके साथ प्रसन्न हो गोवर्द्धनको गये ॥ ३ ॥ किसी एक वृक्षके नीचे बैठे हुए काले मृगके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णको बलरामजी सहित देखा ॥ ४ ॥ उन महाबलियोंको देखकर

गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान् ॥ कंचित्कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥ वैशम्पायन उवाच॥ यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ ॥ गोवर्द्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥१॥ नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा ॥ वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥२॥ वल्लवैरपरैः सार्द्धं गोपीभिश्च समन्ततः ॥ जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप ॥३॥ क्वचिद्वृक्षे तमासक्त कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् ॥ ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ ४ ॥ प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ ॥ दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च ॥ ५ ॥ तात मातर्व्रजे गोष्ठे कुशलं वा स्वगोधनम् ॥ अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सपराः पितः ॥ ६ ॥ अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः ॥ अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च ॥ ७ ॥ बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु ॥ तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा ॥ ८ ॥ शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्ध्रुवम् ॥ अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान् किमजीजनन् ॥ ९ ॥

उन्होंने प्रणाम किया और वह दुग्धादि उनको भेटमें दिया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले; हे तात! माता ! व्रजमें (गोष्ठ) में कुशल है गौ दूधवाली हैं और बच्छडे भले हैं ॥ ६ ॥ आपके दूध अच्छा है, और गऊ सुन्दर हैं. हे माता ! बालक उनका दूध भली प्रकार पीते हैं॥ ७ ॥ बहुतसी माला और कीलक और अनेक प्रकारके तृण आपके यहां विद्यमान हैं क्या ?॥८॥ हे पिता ! क्या शकट और सुगंधि पदार्थ आपके यहां विद्यमान है ? और

गोपी पुत्रवती अच्छे बालकोंको उत्पन्न करनेवाली हैं ॥ ९ ॥ हे माता ! क्या व्रजमें सब प्रकारसे अभिन्न घट विद्यमान हैं ? हे पिता ! क्या प्रति-
दिन गौ अधिक दूध देती हैं ॥ १० ॥ आपके मक्खन दूध दही क्या अधिक होता है ? और सम्पूर्ण गोधन निरोग तो है ? ॥ ११ ॥ नंदजी बोले;
हे यदुश्रेष्ठ! हमारे यहां सब प्रकारसे निरोगता है हे केशव ! सम्पूर्ण कालमें गोधनमें कुशल है ॥ १२ ॥ हे देवेश ! आपकी रक्षा करनेसे हम सदा
कुशलवाले हैं गोधन और बछडे सब कालमें निरोग हैं ॥ १३ ॥ आपका दर्शन नहीं होता यही हमको महादुःख है, इसी दुःखसे बुद्धि विशीर्ण होती

घटाः किं बहवो मातरभिन्नाः सर्वतो व्रजे ॥ किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः ॥ १० ॥ हय्यङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा
किमजीजनन् ॥ गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते ॥११॥ नन्द उवाच ॥ सर्वमेतद्यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो ॥ कुशलं गोध-
नस्यैव सर्वकालेषु केशव ॥ १२ ॥ रक्षणात्तव देवेश सदा कुशलिनो वयम् ॥ सगोधनास्सवत्साश्च नीरोगा इव केशव ॥१३॥
एकमेव सदा दुःखंन त्वां द्रक्ष्यामि केशव ॥ यदेतत्केवलं दुःखमिति धीः शीर्यते सदा ॥१४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमादि
विलप्यन्तं गच्छेत्याह स केशवः ॥ यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति ॥१५॥ ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ॥
ये केचित्त्वां नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा ॥१६॥ मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः ॥ इत्युक्त्वा पितरौ देवो
वासुदेवः सनातनः ॥१७॥ गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतौ प्रेषयामास केशवः ॥ यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति ॥ १८ ॥
ततः कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः ॥ गन्तुमैच्छत्तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल ॥ १९ ॥

है ॥१४॥ वैशम्पायन बोले; यह वचन कहकर जब नन्दने आंसू भर लिये तब श्रीकृष्णने उनसे घर जानेको कहा और यशोदा मातासेभी घर जानेको
कहा ॥१५॥ माता जो तुम्हारा कीर्तन करेंगे उनको स्वर्गकी प्राप्ति होगी, और जो कोई तुमको नमस्कार करेंगे वे मेरे सदा प्रिय होंगे ॥ १६ ॥
मेरे भक्त होंगे यह कहकर हरिने जानेको कहा, यह कहकर सनातन वासुदेवने ॥१७॥ माता पिताको गाढ आलिंगन कर जानेकी आज्ञा दी, यशोदा
नंद और गोप अपने २ घरोंको गये ॥१८॥ तब हृषीकेश कृष्ण यादव और वृष्णिवंशियोंके सहित अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा करने लगे ॥१९॥

॥२६४॥

जो इसे नित्य सुनते और पाठ करते हैं वह पुत्रवान् धनवान् होकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥२०॥ इति श्रीम० खि० ह० भवि० भाषायां यशोदानन्दगोपबलभद्रसमागमो नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ वैशम्पायन बोले; जब यादवोंके सहित पुष्करको प्राप्त होकर विष्णुजी गमन करने लगे तब पुष्करमें स्थित अनेक मुनियोंको देखने लगे॥१॥ वे अभिमानरहित ऋषि मिलकर भगवान्के निकट प्राप्त होकर उन यादव-श्रेष्ठके प्रति अर्घ्यादिका आचार करते हुए॥२॥ भूतभव्यभवत्प्रभु विश्वेश्वर देवसे कहने लगे; हे जनार्दन ! यह आपका पराक्रम बडाही अद्भुत है ॥३॥

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः ॥ पुत्रवान् धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपबलभद्रकृष्णसमागमो नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः ॥ अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुष्करस्थान्नृपोत्तम ॥ १ ॥ ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः ॥ अर्घादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम् ॥२॥ प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ॥ ३ ॥ येन तौ निहतौ युद्धे हंसौ डिम्भक एव च ॥ यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ॥ ४ ॥ सङ्गरे निहतो देव दुःसाध्य इतिनो मतिः ॥ क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥ ५ ॥ निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे ॥ त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ॥६॥ त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो ॥ त्वं हि नः सततं धाता विधाता तपसो हरेः ॥ ७ ॥ त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं यज्ञस्त्वं पितामहः ॥ त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव च ॥ ८ ॥

जो आपने युद्धमें हंस और डिंभकको मार डाला जो दुराधर्ष देवताओंकोभी दुस्सह थे॥४॥हम तो उनको दुस्साध्य मानते थे जिनको आपने युद्धमें मार डाला, अब हमारे तप तथा अन्य सब कार्यमें मंगल होगा॥५॥हे हरे! आपके स्मरणसे हम पापरहित हो जांयगे आपही सब दुःखके हर्ता होआपके ध्यान करनेसे॥६॥आपका स्मरण प्राणियोंको सदा आनंद देनेवाला है हमारे आपही धाता विधाता तपके आदिकारण हो॥७॥तुम ओंकार वषट् यज्ञ

और पितामह हो तुम ज्योति ब्रह्ममूर्ति ब्रह्मा और रुद्र हो ॥ ८ ॥ आप सब भूतोंके प्राण और अन्तरात्मा हो, हे जगत्पते ! सब भूतोंके यज्ञ-दानसे आपही उपासनीय हो ॥ ९ ॥ विश्वके उत्पन्न करनेवाले विश्वमूर्तिको नमस्कार है. हे देव ! ब्राह्मणद्वेषियोंको मारकर सदा इस जगत्की रक्षा करो ॥ १० ॥ बहुत अच्छा कह हरिद्वारकापुरीको गये और मागधोंसे स्तुतिको प्राप्त हो वहां निवास करने लगे ॥ ११ ॥ हे जन्मे-जय ! इस प्रकार भगवान्की चेष्टा हैं सो तुम्हारे पूछनेपर कहीं अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वारकायां कृष्णप्रत्यागमनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ जनमेजय बोले;हे भगवन् ! पंडितोंको

प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते ॥ उपास्यः सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते ॥९॥ नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वमूर्तये॥ पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा॥१०॥ स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ अवसद्वृष्णिभिः सार्द्धं स्तूयमानः स मागधैः॥११॥इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय ॥ सा प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१२॥इति श्रीमहाभारते भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्णप्रत्यागमनं नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः ॥ फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥ देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणिपर्वणि ॥ वाचकः कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे ॥२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्विधिमिमं फलं यच्छति भारतात् ॥ श्रुताद्भवन्ति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥३॥ दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः ॥ कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः॥४॥

किस प्रकार भारतकी कथा सुननी चाहिये इसका क्या फल है और पारणमें किन किन देवताओंका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ हे भगवन् ! पर्वकी समाप्तिमें क्या देना चाहिये ॥ २ ॥ और कैसे वाचककी पूजा करनी चाहिये वह आप हमसे कहिये.वैशम्पायन बोले;हे राजन् ! भारतश्रवणकी विधि हमसे सुनिये ! हे राजन् ! जो आप हमसे पूछते हो सो मैं कहता हूं ॥ ३ ॥ स्वर्गसे देवताही क्रीडा करनेके निमित्त पृथ्वीमें अवतार ले आये थे, और यह कार्य करके फिर स्वर्गमें चले गये ॥ ४ ॥

जो मैं तुमसे कहता हूं सो सावधान होकर सुनो, जैसे देवताओंका पृथ्वीतलमें जन्म हुआ है ॥ ५ ॥ यहां रुद्र साध्य विश्वेदेवा आदित्य अश्विनीकुमार लोकपाल, महर्षि॥६॥गुह्यक, गंधर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध धर्म, स्वयंभू मुनि कात्यायन॥७॥गिरि, सागर, नदी, अप्सराओंके गण, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु ॥८॥ स्थावर, जंगम, सुर, असुर, सहित सब जगत् यह सब भारतमें एकही स्थानमें दीखते हैं॥९॥उन वेदमें प्रतिष्ठावाले देवताओंके

हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः ॥ ऋषीणां देवतानां च संभवं वसुधातले ॥ ५ ॥ अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः ॥ आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः॥६॥ गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा ॥ सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥७॥ गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥ स्थावर जङ्गमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम् ॥ भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९ ॥ तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात् ॥ कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥ १० ॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः ॥ संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥ तेषां शृणु त्वं श्राद्धानि श्रुत्वा भारत भारतम् ॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥ १२ ॥ महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च ॥ गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥१३॥ सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च ॥ भाजनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥ १४ ॥

नामकर्म कीर्तन करनेसे घोर पाप करनेवालाभी शीघ्र पापसे छूट जाता है॥१०॥यथायोग्य इस इतिहासको यथायोग्य श्रवण कर नियममें तत्पर, पवित्र होकर जो भारतको सम्पूर्ण सुनते हैं वे पापरहित होते हैं॥११॥हे राजन् ! उन भारतमें मृत हुए भीष्मादिके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान करना चाहिये ॥१२॥ अनेक रत्नोंके महादान देने चाहिये गौ कांसीके पात्र दुहने योग्य बरतन अलंकार की हुई कन्या ॥१३॥ सम्पूर्ण कामना देनेवाले

विविध यान विचित्र भाजन भूमि वस्त्र कंचन ॥१४॥ वाहन, मतवाले हाथी, सेज, पालकी, अलंकृत रथ ॥१५॥ जो घरमें महामूल्य वस्तु और श्रेष्ठ धन है आत्मा स्त्री पुत्र वह सब वाचकको दान कर सकता है॥१६॥जो परमश्रद्धासे दान करते सम्पूर्ण पारायण क्रमसे करते हैं और शक्तिसे अच्छे मनवाले हृष्ट शुश्रूषा करनेवाले कंपरहित॥१७॥सत्य और ऋजुतामें रत इन्द्रियजित, पवित्र, शौचपरायण, श्रद्धावाले, क्रोधजित हैं उनको जैसे इसकी सिद्धि होती है सो सुनो ॥१८॥ पवित्र शील आचारसे युक्त शुक्लवस्त्र जितेन्द्रिय संस्कृतज्ञ सब शास्त्रके जाननेवाले श्रद्धायुक्त निन्दार-

वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः ॥ शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥ यद्यद्गृहे वरं किंचिद्यद्यदस्ति महद्वसु ॥ तत्तद्देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ॥ १६ ॥ श्रद्धया परया दत्तं क्रमशस्तस्य पारगः ॥ शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकम्पनः ॥ १७ ॥ सत्यार्जवरतो यत्तः शुचिः शौचपरायणः ॥ श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्ध्यति तच्छृणु ॥ १८ ॥ शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः ॥ संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥ रूपवान्सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचकः॥२०॥ अविलम्बमनायस्तमद्भुतं धीरमूर्जितम् ॥ असंसक्ताक्षरपदं न च भावसमन्वितम् ॥ २१ ॥ त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ॥ वाचयेद्वाचकः स्वस्थः स्वाधीनः सुसमाहितः ॥ २२ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥ ईदृशाद्वाचकाद्राजञ्छ्रुत्वा भारत भारतम् ॥ नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥२४ ॥

हित ॥१९॥ रूपवान् सुन्दर चतुर सत्यवादी जितेंद्रिय दानमानका ग्रहण करनेवाला वाचक होना चाहिये ॥ २० ॥ आलस्यरहित अद्भुत धीर बलसम्पन्न अक्षरपदका स्पष्ट उच्चारण करनेवाला,लोभादिकी अधिकतासे हीन ॥ २१ ॥ त्रेसठ वर्णोंके आठों स्थानसे वर्णोंके उच्चारणका जाननेवाला स्वस्थ स्वाधीन होकर वाचकको भारतका पाठ करना चाहिये ॥२२॥ आरंभमें नारायण नरनरोत्तम और देवी सरस्वतीको नमस्कार कर इस जयनामक ग्रंथका उच्चारण करे ॥२३॥ हे राजन् ! इस प्रकारके वाचकसे भारतका श्रवण कर नियममें स्थित हो पवित्र श्रोता सुनकर सम्पूर्ण फलको

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पहले पारायणकी समाप्तिमें ब्राह्मणोंकी यथाकाम अर्चना करे तो मनुष्यको अग्निष्टोमका फल मिलता है ॥२५॥अप्सरा-ओंसे युक्त अच्छे विमानकी प्राप्ति होती है, वह देवताओंसे सेवित हो स्वर्गको जाता है ॥२६॥ दूसरे पारणको प्राप्त होकर अतिरात्र यज्ञका फल पाता है सम्पूर्ण रत्नोंवाले विमानपर चढकर स्वर्गको जाता है॥२७॥ दिव्यमाला और वस्त्र धारण किये दिव्यगंधसे विभूषित होकर नित्य दिव्यगंधसे युक्त हो देवलोकमें महिमाको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ तीसरे पारणको प्राप्त हो द्वादशाह यज्ञका फल पाता है देवरूप हो दश सहस्र वर्ष स्वर्गमें निवास

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान्कामैश्च तर्पयेत् ॥ अग्निष्टोमस्य यागस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् ॥ प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः॥२६॥द्वितीयं पारणं प्राप्य अतिरात्रफलं लभेत्॥सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानम-धिरोहति ॥ २७ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः॥ दिव्यांगदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥ तृतीयं पारणं प्राप्यद्वादशाहफलं लभेत् ॥ वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि॥२९॥ चतुर्थं वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ॥ उदितादि-त्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥ विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ॥ वर्षायुताभिर्भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥ षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ॥ कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥ परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ॥ विमनं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥ सर्वाँल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्करः ॥ अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥

करता है ॥२९॥ चौथे पारणमें वाजपेय यज्ञका फल और पांचवेंमें इससे दूना होता है तब यह उदय होते हुए सूर्यके समान प्रकाशमान निर्मल॥३०॥ विमानमें बैठ देवताओंके साथ स्वर्गको जाता है दश सहस्र वर्षतक इन्द्रके समीप आनंद करता है ॥ ३१ ॥ छठेमें इससे दूना और सातवेंमें उससे तिगुना फल होता है जहां कैलासके शिखराकार वेदी वनी हुई हैं॥३२॥अनेक प्रकारसे मणिविद्रुमसे भूषित कामगामी विमानोंके ऊपर बैठ अप्स-राओंसे सेवित हो स्वर्गको जाता है॥३३॥ और दूसरे सूर्यके समान प्रकाशमान हो सब लोकोंमें विचरता है ॥ ३४ ॥

और चन्द्रोदयके समान उज्ज्वल विमानमें स्थित होता है जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान वेगगामी विमान हैं ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाके समान कान्तिवाली स्त्रियोंसे सेवित, उनके नूपुर और मेखलाओंके शब्द सुनता हुआ ॥ ३६ ॥ सुन्दर स्त्रियोंकी गोदीमें सुखसे सोया हुआ जागता है, नौवें पारणमें अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥३७॥ सुवर्णके स्तंभ लगे वैदूर्यमणिकी वेदिका तथा सुवर्ण गवाक्षोंसे सब ओर व्याप्त ॥ ३८ ॥ अप्सरा गन्धर्वोंसे सेवित होकर स्वर्गचारियोंके साथमें परम कान्तिवाली लक्ष्मीसे शोभित हो॥३९॥दिव्य माला और वस्त्र धारण किये,दिव्य चंदन लगाये,

चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति॥चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥३५॥ सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः ॥ मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥ अङ्के परमनारीणां सुखं सुप्तो विबुध्यते ॥ नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥ काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् ॥ जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥ सेवितं चाप्सरःसंघैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभि ॥ विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥३९॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः ॥ मोदते दैवतैः सार्द्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥ दशमं पारणं प्राप्य द्विजातिनभिवन्द्य च ॥ किङ्किणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥४१॥ रत्नवेदिकसंकाशं वैदूर्यमणितोरणम् ॥ हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥ गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिर्निषेवितम् ॥ विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥४३॥ मुकुटेनाकवर्णेन जाम्बूनदविभूषणः ॥ दिव्यचन्दनदिग्धांगो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥४४॥ दिव्याँल्लोकान्प्रचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः ॥ विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥ ४५ ॥

देवताके समान स्वर्गमें आनंद पाता है ॥४०॥ दशवें पारणमें ब्राह्मणोंको प्रणाम कर किंकिणीजालके शब्द पताका ध्वजासे शोभित ॥ ४१ ॥ रत्नवेदीके समान वैदूर्य मणि और तोरणसे व्याप्त हेमजालसे परिक्षित प्रवाल और झालरोंसे व्याप्त ॥ ४२ ॥ गीतमें कुशल गन्धर्व और अप्सराओंसे सेवित ऐसा सुखदायक विमान पुण्यसेही प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सूर्यके समान प्रकाशित मुख सुवर्णके भूषण धारण किये दिव्य गंध शरीरमें लगाये, दिव्यमालासे विभूषित ॥४४॥ दिव्य भोगसे युक्त होकर वह दिव्यलोकमें विचरण करता है. देवताओंके प्रसादसे वह परम लक्ष्मीसे युक्त

होता है ॥ ४५ ॥ बहुत वर्षोंतक स्वर्गलोकोंमें महिमाको प्राप्त होता है तब गधर्वोंके सहित इक्कीस सहस्र वर्षतक ॥ ४६ ॥ इन्द्रलोकमें आनंद करता है दिव्य यान और अनेक प्रकारके लोकोंमें ॥ ४७ ॥ दिव्य नारियोंके समूहसे व्याप्त अमरके समान शोभित होता है तब सूर्य और चन्द्रलोकमें ॥ ४८ ॥ तथा शिवके लोकमें होता हुआ विष्णुकी सालोक्यताको प्राप्त होता है. हे महाराज ! इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ४९ ॥ परंतु हमारे गुरुने कहा है कि श्रद्धा करकेही यह सब कार्य सिद्ध होते हैं जो जो मनमें इच्छा हो सो सो वाचकको देना चाहिये ॥ ५० ॥ हाथी घोडे

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते॥ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः॥४६॥पुरंदरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ॥ दिव्ययान-विमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥४७॥ दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा ॥ ततःसूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥४८॥ शिवस्य भवने राजन्विष्णोर्याति सलोकताम् ॥ एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९ श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम ॥ वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद्यदिच्छति ॥ ५० ॥ हस्त्यश्वरथयानादि वाहन च विशेषतः ॥ कटकं कुण्डले चैव ब्रह्म सूत्रं तथापरम् ॥ ५१ ॥ वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः ॥ देववत्पूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते ॥ वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन्पर्वणि पर्वणि ॥५३॥ जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ॥ धर्मवृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥५४॥ स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्यं प्रवर्त्तयेत् ॥ समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥५५॥ आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ॥ विधिवद्भोजयेद्राजन्मधुपायससंयुतम् ॥ ५६ ॥

रथ यान और वाहन कटक कुंडल ब्रह्मसूत्र ॥ ५१ ॥ सुन्दर वस्त्र और विविध प्रकारके गन्धद्रव्योंसे कहनेवालेकी देवताके समान पूजा करनेसे देव-लोककी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥ अब भारतके सुननेमें जो देना चाहिये सो सुनो. हे राजन् ! वाचनेवालेको पर्वपर्वमें ॥ ५३ ॥ जाति देश सत्य माहात्म्य तथा क्षत्रियोंके धर्मवृत्तिको जानकर ॥ ५४ ॥ पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कार्य प्रारंभ करे,पर्वके समाप्तिमें ब्राह्मणोंको यथाशक्ति तृप्त करे ॥ ५५ ॥ वाचकको वस्त्रगंधादिसे तृप्त कर और विधिपूर्वक मधु पायस खवाकर प्रसन्न करे ॥ ५६ ॥

फिर मूल फल खीर मधु घृतद्वारा आस्तिकोंको भोजन करावे, बूरा और ओदन (भात) खवावे ॥५७॥ पूये पूप मोदक (लड्डू) खवावे. हे राजन् ! सभापर्वकी पूर्तिमें ब्राह्मणोंको हविष्यान्न भोजन करावे ॥ ५८ ॥ वनपर्वमें मूलफलोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे अरणी पर्वाध्यायमें जलके घडे प्रदान करे ॥ ५९ ॥ मुख्य २ वनके मूल फलोंसे तृप्त करे और सब कामनासे युक्त ब्राह्मणोंको तृप्त करे ॥ ६० ॥ विराटपर्वमें विविध प्रकारके वस्त्र दे. हे राजन् ! उद्योगपर्वमें सर्वगुणयुक्त ॥ ६१ ॥ गंधादिसे अलंकृत किये ब्राह्मणोंको भोजन करावे और भीष्मपर्वमें उत्तम यान दान करे, और

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा ॥ आस्तिके भोजयेद्राजन्दद्याच्चैव गुडौदनम् ॥५७॥ अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ॥ सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ ५८ ॥ आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ॥ अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥ तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ॥ सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥६०॥ विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ॥ उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ६१ ॥ भोजनं भोजयेद्विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् ॥ भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम् ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ६२ ॥ द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ॥ शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ॥६३॥ कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ॥ विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यक् दद्यात्संयतमानसः ॥ ६४ ॥ शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ॥ अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदीपयेत् ॥ ६५ ॥ गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ॥ स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥ ६६ ॥

सर्व कामगुणोंसे युक्त संस्कार किया अन्न दे ॥ ६२ ॥ द्रोणपर्वमें परम सुन्दर भोजन ब्राह्मणोंको जिमावे, तथा शर चाप और असि (तल्वार)का दान करे ॥६३॥ कर्णपर्वमें सब कामना देनेवाला भोजन करावे और यह अच्छी तरह बनाय जितेन्द्रियता युक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥६४॥ शल्यपर्वमें गुड मोदक और ओदन जिमावे,तथा मालपुए और सब प्रकारके अन्नभी दे ॥६५॥ और गदापर्वमें मूंग मिलाकर दे स्त्रीपर्वमें ब्राह्मणोंको

रत्नभी दे॥६६॥ऐषीकपर्वमें घृत और ओदन दे और सब प्रकारसे उत्तम अन्न दे॥६७॥शान्तिपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे, अश्वमेधपर्वमें सब कामना देनेवाला भोजन दे ॥६८॥ आश्रमवासिकपर्वके अन्तमें ब्राह्मणोंको हविष्यान्न भोजन करावे मूसलपर्वमें सर्वगुणयुक्त गंधादिका अनुलेपन करे ॥६९॥ महाप्रस्थानपर्वमें सर्व गुण और कामनासे युक्त भोजन दे, स्वर्गारोहणपर्वमेंभी ब्राह्मणोंको हविष्य अन्न भोजन करावे ॥७०॥ हरिवंशकी समाप्तिमें सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे, और सुवर्णके निष्[1]कसहित ब्राह्मणको एक गौ दान करे ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! जो श्रोता दरिद्र हो तो

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषिके दापयेत्पुनः ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥ शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ६८ ॥ तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ ६९ ॥ महाप्रस्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ॥ स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ ७० ॥ हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोयेद्द्विजान् ॥ गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ७१ ॥ तदर्द्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ॥ प्रतिपर्व समाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः ॥ ७२ ॥ सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ॥ ७३ ॥ श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज ॥ शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णुदयितो भवेत् ॥ ७४ ॥ व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि ॥ लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तच्च पूजयेत् ॥ ७५ ॥ वाचकं पूजयेद्यस्तु भूमिवस्त्रसुधेनुभिः ॥ विष्णुः सपूजितस्तेन स साक्षादेवकीसुतः ॥ ७६ ॥

इससे आधा दान करे, और प्रतिपर्वकी समाप्तिमें एक पुस्तक ॥७२॥ सुवर्णके सहित वाचकको निवेदन करे हरिवंशपर्वमें पायसका भोजन दे॥७३॥ हे राजन् ! एक श्लोक श्लोकका आधा चौथाई वा एक अक्षरभी जो एकचित्त होकर सुनता है वही विष्णुके लोकको जाता है॥७४॥व्यासजीको स्त्रीसहित विधिपूर्वक पूजन करे, और लक्ष्मीनारायणका पूजन करे ॥ ७५ ॥ जो भूमि वस्त्र और धेनुसे वाचकका पूजन करता है मानो उसने विष्णुकी

[1] दीनार।

भली प्रकार पूजा की ॥७६॥ हे राजन् ! प्रत्येक पारणमें सब संहिताका जाननेवाला॥७७॥सुन्दर देशमें स्थिति कर रेशमी वस्त्रादिके सहित युक्त हो शुक्ल वस्त्र पहरे श्रीमान् पवित्र और अलंकृत हो॥७८॥गंधमालासे पृथक् २ शिष्टसम्मत संहिताकी पुस्तकका पूजन करे ॥ ७९ ॥ भक्षणयोग्य अन्न पीनेके पदार्थ औरभी वस्तु सुवर्ण गौ वस्त्र ब्राह्मणोंको दे ॥ ८० ॥ सर्वत्र तीन पल सुवर्ण देना चाहिये वा उससे आधा वा उससे चौथाई दे परन्तु वित्तकी शठता न करे ॥ ८१ ॥ जो जो अपनेको इष्ट हो वह वह ब्राह्मणोंको देनी चाहिये सब प्रकार अपने गुरु और वाचकको सन्तुष्ट करे सब देवता

पारणे पारणे राजन्यथावद्भरतर्षभ ॥ समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः ॥ ७७ ॥ शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥ शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ॥ ७८ ॥ अर्चयेत्तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ संहितापुस्तकान् राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥७९॥ भक्ष्यैर्मांसैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः॥हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणामथ दापयेत् ॥८०॥ सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रणतात्मना ॥ तदर्द्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥ ८१ ॥ यद्यदेवात्मनोऽभीष्टं तत्तद्देयं द्विजातये ॥ सर्वथा तोषयेद्भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः ॥ देवताः कीर्त्तयेत्सर्वा नरनारायणौ तथा ॥८२॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृतद्विजोत्तमान् ॥ तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८३ ॥ अतिरात्रस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥ प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८४ ॥ वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः ॥ भविष्यं श्रावयेद्विप्रान् भारतं भरतर्षभ ॥८५॥ भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत्संप्रापयेत् ॥ वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८६ ॥

और नरनारायणका स्मरण करे कीर्तन करे॥८२॥ फिर गंधमालासे ब्राह्मणोंको अलंकृत करके अनेक कामनासे छोटे बडे दोनोंको दे ॥ ८३ ॥ तो मनुष्य अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होता है तथा पर्वपर्वमें यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥८४॥ हे राजन् ! वांचनेवाला स्पष्ट पद अक्षरसे युक्त भविष्यपर्व भारत ब्राह्मणोंको सुनावे॥८५॥जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें तब दान देकर और वाचकको भोजन कर चुकनेपर अलंकृत करे॥८६॥

वाचकके संतुष्ट होनेपर विष्णुकी प्रीति होती है ब्राह्मणोंके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥८७॥ फिर यथायोग्य ब्राह्मणोंका भरण पोषण करना चाहिये, सब कामनायुक्त साधुओंको पूर्ण करे ॥८८॥ हे राजन् ! यह तुमसे भारत सुननेकी विधि कही जो तुमने मुझसे पूछा यह श्रद्धावान्‌को करना चाहिये और इसमें विश्वास करना चाहिये ॥८९॥ हे नृपोत्तम राजन् ! भारतके श्रवण और पारणमें श्रेयकी इच्छा करनेवालेको सदा यत्नवान् होना चाहिये ॥९०॥ नित्य भारत सुने और कहे जिसके घरमें भारत है उसके हाथमें जय है ॥ ९१ ॥ भारतही परम पुण्य है और भारतमें अनेक

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ॥ ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८७ ॥ ततो हि भरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ ॥ सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥८८॥ इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर ॥ श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८९॥ भारतश्रवणे राजन्पारणे च नृपोत्तम ॥ सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ९० ॥ भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ॥ भारतं भवने यस्य तस्य हस्त गतो जयः ॥९१॥ भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ॥ भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥९२॥ भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ॥ भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥९३॥ महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् ॥ ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन्नावसीदति ॥ ९४ ॥ वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ॥ आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९५ ॥ यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः ॥ तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥९६॥ एतत्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् ॥ एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९७ ॥

कथा हैं भारतको देवता नित्य सेवते हैं इससे नित्य भारतकाकीर्तन करे ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! यही सब शास्त्रोंमें श्रेष्ठ है, भारतश्रवणसे मुक्ति हो जाती है यह मैं तत्त्वसे कहता हूं ॥ ९३ ॥ महाभारतकी कथा पृथ्वी गौ सरस्वती ब्राह्मण और केशवका स्मरण करनेसे पुरुष दुःख नहीं पाता है ॥ ९४ ॥ वेद रामायण पवित्र भारतमें आदि मध्य और अन्तमें सर्वत्र हरि गाये जाते हैं ॥ ९५ ॥ जहां विष्णुकी दिव्य कथा है वहां सनातनी श्रुति है सो परमपदकी इच्छावाले मनुष्यको सदा सुननी चाहिये ॥ ९६॥ यही परम पद और धर्मका निदर्शन है यही सबगुणोंसे युक्त ऐश्वर्यकी

इच्छावालेको सुननी चाहिये॥९७॥इस संसारमें यही वांछित फल देनेका कारण है और सार है इस प्रकार व्यासजीने हरिवंशका माहात्म्य कहा है ॥९८॥ सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञसे जो फल होता है वह हरिवंशके पारायणसे फल होता है ॥९९॥ अजर अमर एक आदि अन्तसे शून्य सगुण अगुण आदि स्थूल सूक्ष्मरूप निरुपम अनुमेय योगियोंके ज्ञानमें आने योग्य त्रिभुवनगुरु विष्णु ईशकी मैं शरण होता हूं॥१००॥सम्पूर्ण कष्ट दूर हों सब मंगल दृष्टिगोचर हों सब वांछित अर्थ इसके पारणसे प्राप्त होते हैं ॥१०१॥इति श्रीम०खि०ह०भ०भा०हरिवंशश्रवणफलकथनं नाम द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ जन्मेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! मैं तत्त्वसे शिवद्वारा त्रिपुरासुरका वध सुनना चाहता हूं, जो आकाशचारी तीन पुर हैं उनका संक्षेपसे वर्णन करो यद्यपि भारतकी समाप्ति करके अब प्रश्नका संभव युक्त नहीं है परन्तु"आत्मा वा अरे श्रोतव्येति"

क्रियतेऽसारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम्॥हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥९८॥अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा॥यत्फलं प्राप्यते पुंभिस्तद्धरेर्वंशपारणात् ॥९९॥ अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ॥ निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ॥१००॥ सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ॥ सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥१०१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥ जनमेजय उवाच ॥ त्र्यक्षाद्वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां समासतः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम् ॥ दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम् ॥२॥

श्रुतिद्वारा फिर दृढता प्रतिपादन करानेके लिये प्रश्न करते हैं (त्र्यक्षात्)श्रवण मनन निदिध्यासनरूप दर्शन साधन इंद्रियवत् नेत्रवाले, वा विद्वान् श्रवणादि समुदायवान् तीन नेत्रवाले से (त्रिपुर) स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंका समूलोच्छेद किस प्रकारसे होता है अर्थात् मनन निदिध्यासन फलोपकार्यद्वारा वेदान्त महावाक्य श्रवणसे कैसे संसारका विच्छेद होताहै कारण कि ज्ञानमात्रसे किसी अर्थका उच्छेद देखा नही है सो कहो ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; जो तुम पूछते हो वह विस्तारसे सुनो, वे बडे बली दैत्य सब प्राणियोंके निरोध करनेवाले थे, शमादिक देवता और काम क्रोधादिक असुर हैं, यह

अध्यात्मविद्यामें बृहदारण्यकमें कथन किया है ॥ २ ॥ जैसे परमात्मा शंकरने श्रवणादि साधनवाले तीन शूलोंसे वध किया है सो सुनो यह असुर सब भूतोंके वधकी इच्छा करनेवाले थे ॥३॥ यह त्रिपुर (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) के अभिमानी विश्वतैजस प्राज्ञद्वारा भोगयोग्य बहुतसी धातु (मायाका कार्य) और उनके गुणोंसे युक्त हैं अर्थात् आकाशरूप अपने कारणमें मेघसमूहके समान स्वयं उठे हुए हैं ॥ ४ ॥ प्रकाररूप अन्नमय पिंडके सुवर्णरूप प्रकाशमान मणि सर्व रत्न और तोरणोंसे अर्थात् भोगमोक्षकी उपयोगी इंद्रियोंसे संयुक्त हैं ॥ ५ ॥ वह आकाशमें परम लक्ष्मीसे प्रकाशमान थे बडे

शंकरेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ कृतं पुराऽसुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषिणाम् ॥३॥ त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम् ॥ विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम् ॥ ४ ॥ प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता ॥ मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः ॥ ५ ॥ बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन् ॥ गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥ ६ ॥ वाजिनः पक्षसंयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः ॥ पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः ॥७॥ धावन्ति ह्रेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसंभृतैः ॥ आहूयन्त इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥८॥ वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम् ॥ असुराः समदृश्यन्त चतुर्भिर्विदितात्मभिः ॥९॥ ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ गीतवादित्रबहुलं गन्धर्वनगरोपमम् ॥१०॥ चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकःप्रभैः ॥ भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥ ११ ॥

गन्धर्वोंके कर्मसे साधित अर्थात् यज्ञादिसे गंधर्वपुरके समान शोभित थे ॥ ६ ॥ उसको परम बलरूप इंद्रियरूपी घोडे वहन करते हैं और यथेच्छ मनकी वृत्तियोंसे इच्छित स्थानमें पहुँचा देते हैं ॥७॥ और उत्तर उत्तर वासनाके बढनेसे धावमान होते हुए कामरूपी तृष्णासे पुष्ट हुए वे घोडे मुख प्राणों द्वारा चलायमान होते हैं और काले खुरोंसे मानो आकाशको हूयमान करते हैं ॥ ८ ॥ वायुके समान वेगवालोंसे वे असुर आकाशरूप कारण ब्रह्मको ग्रसते हुए दीखते हैं और चार दर्शन साधन आदि अनुमानसे जाने जाते हैं ॥ ९ ॥ तपसे दग्धपाप हुए ऋषियोंके समान वह नगर गन्धर्व नगरके समान शोभित हुआ ॥ १० ॥ चित्रआयुधोंसे युक्त जो कनकके समान प्रकाशित हैं

अर्थात् कामके उद्दीपन करनेवाले कटाक्षादिसे समाकीर्ण और चित्तके प्रवेशवाले स्त्रीरूपी भवनोंसे युक्त है ॥११॥ साक्षात् स्वर्गके समान बडे बडे महलोंसे संयुक्त और ग्रहोंके ऊपर मनोरथरूपी दूसरे पुरोंसे संयुक्त हैं ॥१२॥ आकाशमें सूर्यके समान वह दैत्यनगर शोभित हुआ जो बडी अटारी युक्त तपाये सुवर्णके समान कान्तिमान् था ॥१३॥ हे राजन् ! तेजोंसे प्रदीप्त होकर वह शोभित हुआ और उसमें दैत्योंके बडे बडे सिंहनाद होते थे ॥१४॥ वह चैत्ररथ वनके समान महाशोभाको प्राप्त हुआ बडी बडी पताका और असियोंसे विराजित था ॥१५॥ इस प्रकार अंबरमें त्रिपुर विराजमान हुआ. हे राजन् ! उसमें सूर्यनाभ (चक्षु) चन्द्रनाभ (मन)उसमें अधिपति हैं ॥ १६ ॥ तथा औरभी बलसे दर्पित दानव मोहित होकर

देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति ॥ प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः ॥ १२ ॥ शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम् ॥ वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥ १३ ॥ प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो ॥ क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादविनादितम् ॥१४॥ बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा ॥ समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥ १५ ॥ रराज त्रिपुरं राजन्महा-विद्युदिवाम्बरे ॥ सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥१६॥ तथान्ये च महावीर्यादानवा बलदर्पिताः ॥ ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥१७॥ पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत ॥ तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥ १८ ॥ दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे ॥ पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥१९॥ ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा ॥ विवर्णवदना दीनाश्छि-न्नेव गतिकर्मणि ॥२०॥ अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्त्तनिनादिना ॥ हन्यामहे शत्रुगणैर्भागोच्छेदेन भागद ॥ २१ ॥ तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर ॥ यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥ २२ ॥

मर्दित और भंजन करने लगे॥१७॥अर्थात् देवयान पितृयान मार्गको प्राप्त करानेवाले कर्म और उपासनाको नष्ट करने लगे और उन्होंने बडे बडे धनुष धारण किये॥१८॥ हे महाराज ! जब उन्होंने अग्नि बलवाले देवयान और पितृबलसे युक्त पितृयानका हरण किया अर्थात् धर्मकर्मसे श्रद्धा नष्ट की ॥१९॥ तब देवता दोनों मार्गके नष्ट होनेसे ब्रह्माके निकट गये और कर्म नष्ट होनेसे विवर्णवदन तथा दीन हो गये॥२०॥ और आर्तस्वरसे दीन होकर कहने लगे पुण्यलोककी प्राप्तिके न होनेसे हम असुरोंसे हत हुए हैं ॥ २१ ॥ हे वदतां वर ! आप उनके वधका उपाय कहिये जिसको

जानकर हम शत्रुओंको बाधा दे सकें ॥ २२ ॥ तब ब्रह्मा उन्हें समझाते हुए बोले;हे देवताओ ! शत्रुओंके नाशका उपाय सुनो ॥ २३ ॥ वे दानव शंकररूपी सुखबोधके विना मृत्युको प्राप्त न होंगे, इस कारण उस अविना शीकी प्रार्थना करो ॥ २४ ॥ हे भारत! तब वे सब रुद्रके सहित पृथ्वीमें आकर प्राप्त हुए विन्ध्यपाद मेरु और पृथ्वीतलमें अर्थात् कारण कर्मभूमिमें उग्रतपरूप प्राणोंके साथ शंकरकी शरणमें गये ॥२५॥ वे सब मुनि तप चान्द्रायणादि वानप्रस्थ धर्मयोग निष्काम कर्मानुष्ठान गृहस्थधर्म जप वेदाभ्यास ब्रह्मचारी धर्म ब्रह्मसंहिता ओंकार जपते हरको प्राप्त हुए॥२६॥जिन महात्माओंके तपयोगके ऐश्वर्यकी प्रार्थना करनेवाली परस्त्रियोंकी तथा कामादिकी विफलता होती हुई इस कारण वे तृष्णादिक परम दुर्बल हो गये,

सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः ॥ शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥ २३ ॥ अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् ॥ प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४ ॥ भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत ॥ विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले॥२५॥ तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् ॥ काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥२६॥ एषां च परदाराणामभवद्वन्ध्यता जने ॥ विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥ २७ ॥ परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च ॥ स्वयंमृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥ २८ ॥ गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम् ॥ अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥ २९ ॥ हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः ॥ प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥ ३० ॥

कुशसमूहको बिछाये लोहरूपी भूषणवाले ॥ २७ ॥ मृगचर्म मृदु और शुभ धारण किये हे कुरुसत्तम ! वे मृगचर्म स्वयं मृतक हुए मृगोंके थे॥२८॥ वे वनचारी मृगोंके थे इनसे वे कामादिक अत्यन्त दरिद्री हो अन्तरिक्षरूपी हृदयाकाशमें सूक्ष्म वासनारूपसे विलीन हुए ॥ २९ ॥ वे व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले देवता हरके स्थानको गये और दीन होकरजगत्पतिको प्रणाम किया अर्थात् संसारके दुःख हरनेवाले निर्गुण ब्रह्मके उपलब्धि स्थान हृदयाकाश सगुण ब्रह्ममें उनकी उपासनाकरनेको चले, वे शान्ति आदि देवता विषयोंको भोगनेवाले व्याघ्रको मार उसका चर्म धारण किये थे ॥ ३० ॥

और अच्छे वचनोंसे नारायणके प्रति वचन कहने लगे जैसे भस्मसे ढकी अग्निमें हवि निष्फल है ऐसे हमारे मलिन चित्त है॥३१॥हे भगवन् ! आपसे विमुख होनेमें हमको आत्मज्ञानका वरदान वृथाही है यथाकाल यथादेशमें ब्रह्माका वचन कीजिये हमको तत्त्वज्ञान दीजिये॥३२॥जो कुछ देवदेवने खेचर (हृदय आकाश)में उपासकोंके समीप कहा है (कि मैं तुमको सब पापोंसे छुडा दूंगा सोच मत करो) उस मोक्षरूप अर्थके वैभवसे ॥ ३३ ॥ प्रगट हुए और महादेव इन्द्रादि देवताओंके सहित आदित्यमार्गमें स्थित हो प्रगट हुए ॥ ३४ ॥ यह सब सुवर्णके समान दीप्तिमान् हुए और रुद्रके साथ वह तेजसे अधिक जलाने लगे अर्थात् उपासक अधिक शोभित हुए ॥ ३५ ॥ और वे सब चतुर

सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः ॥ हविर्दत्तमविज्ञानाद्भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥ ३१ ॥ वरदानं वृथास्मासु भगवन्विमुखे त्वयि ॥ यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥ ३२ ॥ यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः ॥ एवं देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवात् ॥ ३३ ॥ समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः ॥आदित्यपथमास्थाय सन्नद्धाः समलंकृताः ॥३४॥ सर्वे काञ्चनवर्णाभा बभुर्दीप्ता इवाग्नयः ॥ रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥ ३५ ॥ सनद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव ॥ विश्वे विश्वेन वपुषा बलिनः कामरूपिणः॥३६॥ समनह्यन्महात्मानो दानवान्तं विधित्सवः॥एभिः सह धनाध्यक्षैः समन्तात्परिवारितः ॥३७॥ त्रिपुरं योधयत्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ अथ दैत्या भिन्नदेहाः पुराट्टालं गता इव ॥३८॥ न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः॥ अतिविद्धाःसुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप॥३९॥न्यपतन्दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः॥असिभिश्च हता देवैःशक्तिचक्रपरश्वधैः॥४०॥

पर्वतोंके समान प्रकाशित और सन्नद्ध हुए और तपोयोगबलसे सब (कामरूप) सर्वात्मिक हो गये ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वे महात्मा दानवोंके वधकी इच्छा करके इन धनाध्यक्ष (श्रद्धावित्त मुख्य अध्यक्षों) शमादिसे परिवारित हुए ॥३७॥ तब विद्वान् त्र्यक्ष त्रिपुरसे युद्ध करनेकी इच्छा करते हुए अर्थात् कोश भंग करनेको उद्यत हुए और प्रणवरूपी धनुष और आत्मारूपी बाण लिया, तब योगारंभ करनेके उपरान्त कामादिदैत्य भिन्न देहवाले हो गये और वे स्थूलरूप रणमें अधिकतर भिन्न हो गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और वज्रसे हत हुए पर्वतके समान वे पृथ्वीमें गिरे देवताओंने असि

और शक्तिसे तथा फरसोंसे दैत्योंको मारा॥४०॥वे दैत्य युद्धमें बाणोंसे भिन्नदेह हो गये और छिन्न हुए पंखवाले पर्वतोंकेसमान पृथ्वीमें गिरे॥४१॥ और योगियों द्वारा बलसे निरुद्धमान हुए दैत्य दुष्ट वचन कहते प्रदीप्त हुए फिर कषायद्वारा जडीभूत हो लयको प्राप्त होते हैं,और क्षयकर्मसे क्षय हुए परस्पर बाधा देते हैं ॥४२॥ वे दिव्यचक्षु होकरभी चक्षुसे उनको न देख सके सूर्यके बोधवाले निशामुखमेंभी अविद्यास्वरूपमें स्थित होनेसे छिन्न भिन्न हो देवता (शम दमादि) पृथ्वीमें गिरे ॥४३॥ तब दैत्य जयको प्राप्त हो रात्रिमें तीक्ष्ण बाणोंसे देवतोंको मारते मेघके समान गंभीर शब्द करते हुए ॥४४॥ और जयको प्राप्त हो परस्पर जल्पना करने लगे और संग्राममें जय पानेवाले सब देवताओंको व्याकुल कर दिया ॥ ४५॥

बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा युद्धगोचरे ॥ प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥ ४१ ॥ तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा ॥ एवं तेऽन्योन्यसंबाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥ ४२ ॥ नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा ॥ अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ॥ छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ॥ ४३ ॥ अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः ॥ विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः ॥४४॥ जयप्राप्त्यासुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे ॥ त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकांक्षिणः ॥ ४५ ॥ अस्माभिर्बलसंपन्नैः सह प्रासासितोमरैः ॥ विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः ॥४६॥ समरे बलसंपन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः॥ सुरैश्च सहिताः सर्वे रथमास्थाय शंकरः ॥ ४७ ॥ दर्पितान्निनदन्दैत्यान् प्रदहन्निव तेजसा ॥ युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥ ४८ ॥ सर्वभूतानि भूताग्र्यः प्रलये समुपस्थिते ॥ स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः ॥ ४९ ॥

और उशनाकी हविसे बोधित हुए प्रास असि तोमर लिये बलसम्पन्न जयको प्राप्त हो शोभित हुए उस भृगुका रूप बृहस्पतिजीने देवताओंके जय और दैत्योंके क्षयके निमित्त धारण किया है यह मैत्रायणी श्रुति है ॥ ४६ ॥ वे दैत्य आयुध लिये समरमें बलसम्पन्न हो गये तब स्थलको छोड शंकर देवताओंके सहित रथमें स्थित हुए अर्थात् सूक्ष्मदेहमें प्रवेश होनेसे पहले लय विक्षेप विघ्न होते हैं तब अस्मितारूपमें प्राप्त होनेपर उनका बाध होता है, तब योगिरूप शंकर देवताओंके साथ रथमें चढकर ॥४७॥ अपने तेजसे शब्द करते हुए दैत्योंको जलाने लगे, जैसे युगान्तकालमें सूर्य जलता है ऐसे कामादिकको जलाने लगे ॥ ४८ ॥ जब सब भूतोंकी प्रलय उपस्थित होने लगी, तब वह रथ वासनामय सूक्ष्म इन्द्रियोंसे चालित

होता हुआ ॥ ४९ ॥ आकाशमें विजली युक्त मेघके समान शोभित हुआ वह योगसे उत्तम वृषभरूपी धर्मसे जो ध्वजाग्रके समान ऊंचा था गर्जने लगे ॥५०॥ हे राजन् ! वह रथ आकाशमें इन्द्रधनुषके समान शोभित हुआ तब आकाशमें स्थित हुए सिद्ध शिवजीकी प्रार्थना करने लगे, अर्थात् स्तुतिरूप विघ्न प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ तब वह अपने पूर्वजन्मके कर्मोंसे शिवजीको प्रार्थना करने लगे अर्थात् सत्यव्रतपरायण शान्त ऋषि ॥ ५२ ॥ और अमृतके प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण देवता गन्धर्व अप्सरा यह सब गन्धर्व स्वरसे ॥ ५३ ॥ प्रहृष्टमुख हो सौम्यरूप पित्रके स्थानान्तरमें समूहोंवाली अटारी जिनमें सैंकडों शतघ्नी विद्यमान हैं ॥ ५४ ॥ ऐसे भयावने दैत्यके नगरमें दैत्य दानव बाणोंकी वर्षा करने लगे अर्थात् सूक्ष्म देहमें युद्ध

विबभौ नभसो मध्ये सविद्युदिव तोयदः ॥ वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥ ५० ॥ भाति स्म स रथो राजन् सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ॥ ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ॥५१॥ कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा ॥ ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ५२ ॥ अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव गन्धर्वेण स्वरेण वै ॥ ५३ ॥ प्रहृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप ॥ चयाट्टालकसंपन्ने शतघ्नीशतसंकुले ॥ ५४ ॥ तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे ॥ ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः ॥ ५५ ॥ सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः ॥ शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत ॥५६॥ ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः ॥ गदाभिश्च गदां जघ्नुर्भल्लैर्भल्लांश्च चिच्छिदुः ॥ ५७ ॥ अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त मायां मायाभिरेव च ॥ ततोऽपरे समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान् ॥ ५८ ॥ अशनींश्च महाघोरान्मुक्तान् शतसहस्रशः ॥ असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ॥ ५९ ॥

हुआ ॥ ५५ ॥ तब दैत्य देवताओंपर बाण वर्षा करने लगे शतघ्नी भाले और शूलसे मारने लगे ॥ ५६ ॥ युद्धमें चतुर दानवोंने उस समय महत्कर्म किया गदासे गदा भालेसे भाले मारकर छेदन करने लगे ॥५७॥ अस्त्रसे अस्त्र और मायासे मायाका बाध होने लगा तब दूसरे शर शक्ति और फरसोंको लेकर ॥५८॥ सैंकडों महाघोर अशनी वज्रोंको छोडने लगे और मायाकी तलवार जो अज्ञानरूपी मृत्युके निकट है छोडने लगे ॥५९॥

तब देवता उनसे वध्यमान होकर बाणोंकी वर्षा करते स्थित हुए तब गन्धर्वनगरके समान हरिका रथ फिर सीदित होने लगा ॥६०॥ प्रास असि तोमरोंसे देवताओंद्वारा ताडित हो और बडे भारवाले देवताओंके प्रहारसे युक्त अनेक विचित्र अस्त्रोंको धारण किये इन्द्र स्थित हुआ (इन्द्रसे योगी जानना) ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! तब स्वर्गके स्थानमें बडा भारी शब्द होने लगा ऋषियोंका और ब्रह्मपुत्रोंका बडा शब्द हुआ ॥ ६२ ॥ और शंकरके आगे यह रथ भूमिमें प्रतिष्ठित हुआ और सब लोकोंके देखते अजेय होकरभी पराजयको प्राप्त हुआ ॥६३॥ हे राजन् ! उस रथश्रेष्ठके

ते वध्यमान विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ॥ गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदत्सहरो रथः॥६०॥ हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ॥ तैश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुर्भारसाहिभिः ॥ चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः ॥६१॥ ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासिन्महीपते ॥ ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥ ६२ ॥ स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठतः ॥ अजेयो जय्यतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ६३ ॥ तस्मिन्निपतिते राजन् रथानां प्रवरे रथे ॥ निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ६४ ॥ विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः ॥ विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥६५॥ वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् ॥ यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः सर्वत्र विजयैषिणाम् ॥६६॥ शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च ॥ समाधायात्मनात्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥६७॥ रथन्तरेण साम्नाथ ब्रह्मभूतेन भारत ॥ तेजसा ज्वलयन्विष्णो त्र्यक्षस्य च महात्मनः ॥६८॥ सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् ॥ ऋषीणां तपसाढ्यानां वसतां विजने वने ॥ ६९ ॥

पतित होनेमें सब प्राणी पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ६४ ॥ पर्वतके शृंग चलायमान हो गये महावृक्ष चलायमान हो गये सब समुद्र क्षुभित हुए और दिशा शोभित न हुई ॥६५॥ तब वृद्ध ब्राह्मण परम जप करने लगे और जीतनेवालोंका जो ब्रह्मतेज है ॥ ६६ ॥ उसकी शान्तिके अर्थ सब भूत इस लोक और परलोकमें आत्माको आत्मासे समाधान कर अर्थात् जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिके निमित्त योगप्राप्तिके हेतुसे ॥ ६७ ॥ रथंतर साम (प्रणवाख्य प्रतीक तथा शब्द ब्रह्मरूप साम) करके विष्णुके तेजसे प्रज्वलित महात्मा त्र्यक्षका॥६८॥सब बली तथा कामरूपी देवताओंका तथा

निर्जन वनमें निवास करनेवाले बडे बली तपस्वियोंको ॥६९॥ महायोगी विष्णुजी सब ओरसे तत्त्वसे देख वृषरूपमें स्थित हो रथको उद्धार करने लगे ॥ ७० ॥ सम्पूर्ण बल और पुरुषार्थवाले देवताओंको देखकर हेतुरूप सींगोंपर उठाकर देवयान और पितृयानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त हृदयरूप अन्धकारसे उद्धार कर प्राणरूप योगबलसे गर्जने लगे ॥७१॥ इस प्रकार लिंगशरीररूप भूमिको जीतकर योगभूमिकी प्राप्ति कहते हैं वह शृंगवान् तीसरे वायु विषय शुद्धत्व पदार्थको प्राप्त होकर पर्वमें समुद्रके समान नाद करने लगा ॥७२॥ उस नादसे युद्धदुर्मद दैत्य वित्रस्त हो गये और फिर युद्ध करनेको तत्पर हुए अर्थात् लय विक्षेप विघ्न वहांभी आनकर प्राप्त हुए पहले लीन सुषुप्तिमें कहे जाते हैं दूसरा लीन विदेह कहा जाता है कारण

अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोऽदृश्य तत्त्वतः ॥ वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम्॥७०॥रमाकान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः॥ बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः ॥ ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥ ७१ ॥ तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान् ॥ ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ॥७२॥ ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः ॥ पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधः सुमहाबलाः ॥ ७३ ॥ सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः ॥ सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥ ७४ ॥ अग्निं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम् ॥ ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः ॥ मुमोच दैत्यनगरं त्रिधामात्रानुसंज्ञितम् ॥ ७५ ॥

कि उसमें स्थूल शरीर त्याग होता है तीसरा लय प्रकृतिलीन कहाता है ॥ ७३ ॥ वे सब बडे बाहुबली समर्थ बल और पुरुषार्थवान् थे, और शरासन ग्रहण कर देवताओंकी सेनाको मर्दन करने लगे ॥ ७४ ॥ धनुषमें अग्नि चढाकर बडा तीक्ष्ण बाण लेकर ब्रह्मास्त्रसे उसको संयुक्त कर अविनाशी शिवने तीन प्रकार मात्रावाला बाण प्रहार किया, अर्थात् अग्निदेवतात्मक तत्त्वमस्यादि महावाक्यको ओंकाररूप धनुषपर चढाय "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं" सूक्ष्मबुद्धिसे तीक्ष्णकर भ्रमरहित वाक्यके तात्पर्यको जान, सूक्ष्मचित्तवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या ब्रह्मास्त्रसे चिदाभाससंज्ञक जीवको संयुक्त कर मूल अज्ञानरूप तीसरे दैत्य नगरपर उसको छोडा, मूल अज्ञान नष्ट होनेसे चौथा अविनाशी अवशिष्ट रहता है वह ब्रह्मदण्ड तीन मात्रा अकार

उकार मकार रूप विश्व तैजस प्राज्ञ संज्ञावाला था॥७५॥सूक्ष्मधारायुक्त स्थूलदशामें जाग्रत् आदि भेदसे तीन प्रकार है ऐसा मनमें विचार कर शास्त्र युक्ति वीर्य ध्यानबल उग्रतप (मनइन्द्रियोंकी एकाग्रता) जीव ब्रह्मकी अभेदताका बाण छोडा॥७६॥ वह सर्व प्राण हरनेवाला बाण दैत्योंके नगरपर छोडा जो दीप्तिमान् सुवर्णके वर्णकेसमान थे और बडे निर्मल थे यह काव्यशोभा है॥७७॥विषैले सर्पोंके समान उन बाणोंको छोडकर जो बडे दीप्तिमान् तीन थे और वेगवान् थे उन्होंने त्रिपुर विदीर्ण कर दिया॥७८॥शराघातसे वह पुर विंध्याचलके शृंगके समान प्रदीप्त हुआ और उसपुरके सहित गोपुरादि स्थान विदीण होने लगे॥७९॥ अग्निगर्भवाले पदार्थ अग्निसे प्रदीप्त हो गये और वह पुर पृथ्वीपर गिरे,जैसे यज्ञ वैसी पूजा इस न्यायसे बुद्धिमय पुर

त बाणं त्रिविधं वीर्यात्संधाय मनसा प्रभुः ॥ सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत ॥ ७६ ॥ मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहराञ्छरान् ॥ दीप्तान्कनकवर्णाभान्सुवर्णांश्च सुनिर्मलान् ॥७७॥ मुक्त्वा वरशरान्घोरान्सविषानिव पन्नगान् ॥ सुप्रदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम् ॥७८॥ शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत ॥ गोपुराणि पुरैः सार्द्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥७९॥ अग्निना संप्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत ॥ धरणीं संप्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप ॥८०॥ तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव ॥ शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन् नृप ॥ ८१ ॥ हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात्किलेरिताः ॥ सर्वान् जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान्पुरुषोत्तम ॥८२॥ विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव ॥ स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शंकरेण च ॥ ब्रह्मणा सहितैर्देवैः संपन्नबलपौरुषैः ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

रज्जुसर्पके समान नष्ट होगये॥८०॥वे वैदूर्यमणिके वर्णवाले पर्वतशिखरके समान शंकररूप कल्याणकारी जीवने ब्रह्मविद्यारूपी अस्त्रसे नष्ट कर दिये ॥८१॥त्रिपुरके नष्ट होनेमें देवता जयध्वनि करने लगे. हे पुरुषोत्तम!धर्मरूप महाविष्णु आप सब शत्रुओंको जीतो॥८२॥विष्णुरूप धर्म महायोगी योगसे (बुद्धिद्वारा)अनुष्ठानको प्राप्त होकर आश्चर्यके समान स्तुति किया जाता है और ब्रह्माके समान ऋषि और सम्पन्न बलपौरुषवाले देवताओंके सहित ब्रह्माद्वारा स्तुतिको प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि इस अध्यायमें सम्पूर्ण भारतका यह आशय प्रगट किया है कि धर्मबलसे अविद्या नष्ट होकर विद्यासे परमानन्दकी प्राप्ति होती है।॥८३॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां त्रिपुरवधोनाम त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

वैशम्पायन बोले; अब क्रमसे हरिवंशकी कथाकी सूची कहते हैं, पहले आदिसर्ग फिर भूत सर्ग ॥ १ ॥ वैन्यपुत्र पृथुका आख्यान मनुका कीर्तन वैवस्वत कुलकी उत्पत्ति धुंधुमारकी कथा ॥ २ ॥ गालवकी उत्पत्ति इक्ष्वाकुवंशका कीर्तन पितृकल्पकी उत्पत्ति चन्द्रमा बुधकी उत्पत्ति ॥ ३ ॥ कीर्तिवर्द्धन अमावसुका वंशकथन इन्द्रकी च्युति और प्रतिष्ठा क्षत्रवृद्धोत्पत्ति ॥ ४ ॥ दिवोदासकी प्रतिष्ठा क्षत्रियश्रेष्ठ त्रिशंकुका चरित्र ययाति-चरित्र पुरुवंशका कीर्तन ॥५॥ कृष्णका चारित्र स्यमंतकमणिका वर्णन संक्षेपसे विष्णुका प्रादुर्भाव ॥ ६ ॥ तारकामय युद्ध ब्रह्मलोकका वर्णन ब्रह्माके

वैशम्पायन उवाच ॥ हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमोदिताः ॥ तत्राद्यमादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः ॥ १ ॥ पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्त्तनं तथा ॥ वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुन्धुमारकथा तथा ॥२॥ गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम् ॥ पितृकल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च ॥ ३ ॥ अमावसोरन्वयस्य कीर्त्तनं कीर्तिवर्द्धनम् ॥ च्युतिप्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः क्षत्रवृद्धजः ॥ ४ ॥ दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशङ्कोः क्षत्रियस्य च ॥ ययातिचरितं चैव पुरुवंशस्य कीर्त्तनम् ॥ ५ ॥ कीर्त्तनं कृष्णसंभूते स्यमन्तकमणेस्तथा ॥ संक्षेपात्कीर्तिता विष्णोः प्रादुर्भावास्ततः परम् ॥ ६ ॥ तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम् ॥ योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्वाक्यं च वेधसः ॥७॥ पृथ्वीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा ॥ ततो नारदवाक्यं च स्वप्नगर्भविधिस्तथा ॥८॥ आर्यास्तवः पुनः कृष्णे समुत्पत्तिः प्रपञ्चतः ॥ गोव्रजे गमनं विष्णोः शकटस्य निवर्त्तनम् ॥९॥ पूतनाया वधो भङ्गो यमलार्जुनयोरपि ॥ वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम् ॥१०॥ प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम् ॥ कालीयस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम् ॥ ११ ॥ प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेवच ॥ गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्द्धनविधारणम् ॥ १२ ॥

वचनसे विष्णुका योगनिद्रासे उठना ॥ ७ ॥ पृथ्वीके वाक्य देवताओंका अंशावतार होना नारद वाक्य स्वप्नगर्भविधि ॥ ८ ॥ आर्यास्तव प्रपंचसे कृष्णकी उत्पत्ति विष्णुका गोव्रजमें जाना शकटका तोडना ॥९॥ पूतनावध यमलार्जुनवृक्षका गिराना, वृकोंका दीखना, वृंदावनमें जाना ॥ १० ॥ वर्षाका वर्णन यमुनाह्रदका देखना कालीनागका दमन, धेनुकवध ॥ ११ ॥ प्रलम्बनिधन शरद्वर्णन गिरियज्ञप्रवृत्ति गोवर्द्धनधारण ॥ १२ ॥

गोविन्दका अभिषेक, गोपियोंसे क्रीडा, अरिष्टासुरनिधन, अक्रूरका प्रेषण ॥१३॥ अंधकके वाक्य, केशीका निधन; अक्रूरका आना, नागलोकका दर्शन ॥१४॥ धनुर्भंग कंसवाक्य कथन, कुवलयापीड और चाणूरका वध ॥१५॥ कंसका निधन, उसकी स्त्रियोंका विलाप करना, उग्रसेनका अभिषेक, यादवोंको आश्वासन करना ॥१६॥ गुरुकुलसे लौटकर आना, रामकृष्णसे वचन कहना, मथुराका घेरना, जरासंधका लौट जाना ॥१७॥ विकद्रुवाक्य, रामका दर्शन और भाषण, गोमन्तका अधिरोहण, जरासंधकी गति ॥१८॥ गोमन्तपर्वतका जलाना, करवीरपुरमें जाना, शृगालवध,

गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा॥रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा॥१३॥अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा॥ अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम्॥१४॥धनुर्भंगस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम्॥ कुवलयापीडवधश्चाणूरान्धवधस्तथा॥१५॥ कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम्॥उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा॥१६॥प्रत्यागतिर्गुरुकुलादथोक्ता रामकृष्णयोः॥ मथुरायाश्चोपरोधो जरासन्धनिवर्त्तनम् ॥ १७ ॥ विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा ॥ गोमन्तारोहणं चापि जरासंधगति-स्तथा ॥१८॥ गोमन्तस्य गिरेर्दाहः करवीरपुरे गतिः ॥ शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं ततः ॥१९॥ यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्र-मस्तथा॥उपायेण वधः कालयवनस्य प्रकीर्तितः॥२०॥निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिमणीहरणं तथा ॥ विवाहश्चैव रुक्मिमण्या रुक्मिणो निधनं तथा ॥२१॥ बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च ॥ नरकस्य वधः पारिजातस्य हरणं तथा ॥ २२ ॥ द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्त्तनम् ॥ द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम् ॥२३॥ नारदस्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्त्तनम् ॥ षट्पुरस्य वधाख्यानं मेधकस्य निबर्हणम् ॥२४॥ समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडाकुतूहलम् ॥ तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्त्तकम् ॥२५॥

मथुरामें जाना ॥ १९ ॥ यमुनाकर्षण, मथुराका अपक्रम, उपायसे कालयवनका वध ॥ २० ॥ द्वारकापुरीका निर्माण, रुक्मिमणीहरण, रुक्मीका निधन॥२१॥ बलदेव आह्निक, बलदेवजीका माहात्म्य, नरकवध, पारिजातहरण ॥२२॥ विशेष कर फिर द्वारकापुरीका निर्माण कहना, द्वारका और सभामें प्रवेश ॥ २३ ॥ नारदके वाक्य, वृष्णिवंशका कीर्तन षट्पुरका आख्यान, मेधकका निबर्हण ॥ २४ ॥ कृष्णकी समुद्रयात्रा, जलविहार

वर्णन, भैमवंशवालोंका मधुपान करना ॥ २५ ॥ हरिके निकट छालिक्य, गांधर्व (गीत) का गान करना, भानुदुहिता भानुमतीका हरण ॥२६॥ शम्बरवध, धन्योपाख्यान कथन, वासुदेवमाहात्म्य, बाणासुरका युद्ध ॥२७॥ भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भाव कथन, वाराह नृसिंह और वामन चरित्र-वर्णन ॥२८॥ कृष्णकी कैलास यात्रा, पौंड्रकवध, हंस डिंभक वधकथन ॥२९॥ त्रिपुरसंहार, हे राजन्! इस ग्रंथमें पापनाशक इतते चरित्र वर्णन किये हैं॥३०॥जो सावधान होकर सायंप्रातःकालमें यह वृत्तान्त सुनते हैं हे कुरुराज! वह कामनाको प्राप्त हो विष्णुके धामको जाते हैं यह धन्य यशदाता

ततश्छालिक्यगान्धर्वसमुदाहरणं हरेः ॥ भानोश्च दुहितुर्भानुमत्याहरणकीर्त्तनम् ॥ २६ ॥ शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च ॥ वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम् ॥२७॥ भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम् ॥ वराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम् ॥ २८ ॥ कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः॥ हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तांतसंग्रहः ॥ कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३० ॥ वृत्तान्तं शृणुयाद्यस्तु सायं प्रातः समाहितः ॥ स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥३१॥ इति श्रीम० खि० ह० भवि० वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ इति हरिवंशः समाप्तः ॥ अथ श्रवणफलकथनम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम ॥ किं फलं किं च देयं वै तद्ब्रूहि त्वं ममाग्रतः॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम ॥ कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥ २ ॥

आयु भक्ति और मुक्तिका देनेवाला है ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ जन्मेजय बोले; हे द्विजोत्तम! हरिवंशके श्रवण करनेका क्या फल है और क्या विधान है इसमें क्या देना चाहिये सो आप हमसे कहिये ॥१॥ वैशंपायन बोले; हे भरतसत्तम! हरिवंशपुराण श्रवण करनेमें कायिक वाचिक और मानसिक पाप॥२॥

सब ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदयमें जाडा नष्ट हो जाता है। जो अठारह पुराणोंके सुननेका फल है ॥ ३ ॥ इसमें सन्देह नहीं वह फल वैष्णव (हरिभक्त) को प्राप्त हो जाता है, हरिवंशका एक श्लोक आधा श्लोक वा चौथाई॥४॥जो श्रद्धासे सुनते हैं वे वैष्णवपदको प्राप्त होते हैं जम्बुद्वीपको प्राप्त हो कलिमें इसके सुननेवाले दुर्लभ होंगे॥५॥हे राजन् ! यह मैं सत्यही सत्य कहता हूं पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रियोंको नित्य विष्णुका यश सुनना चाहिये ॥ ६ ॥ और तीन निष्क सुवर्ण दक्षिणामें देना चाहिये यह वाचकको यथाशक्ति फलकी इच्छा कर देना चाहिये ॥ ७ ॥ और

तत्सर्वं नाशमायाति हिमं सूर्योदये यथा॥अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत्॥३॥तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं पदमाप्नुयुः ॥ जम्बुद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥ ५ ॥ भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ६ ॥ दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम् ॥ वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥७॥ स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंयुताम् ॥ वाचकाय प्रदद्याद्वै आत्मनः श्रेयकाङ्क्षया ॥८॥ अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ॥ कर्णस्याभरणं दद्याद्यानं च सविशेषतः ॥९॥ भूमिदानं समादद्याद्ब्राह्मणाय नराधिप॥ भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०॥ शृणोति श्रावयेद्वापि हरिवंशं तु यो नरः ॥ सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥११॥ पितॄनुद्धरते सर्वानेकादश समुद्भवान् ॥ आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१२॥ दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप ॥ इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥ १३ ॥

सोनेके सींग मढवाकर बछडे सहित कपिला गौको वस्त्रसहित अपने मंगलके निमित्त वाचकको देनी चाहिये ॥८॥ और बहुमूल्यके अलंकारभी देने चाहिये कर्ण आभरण और विशेषकर दानभी देने चाहिये ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मणके निमित्त भूमिदान करना चाहिये पृथ्वीदानके समान और दान न है और न होगा ॥१०॥ जो ब्राह्मण हरिवंश सुनते और सुनाते हैं वह सर्वथा पापरहित हो वैष्णवपदको प्राप्त होते हैं ॥११॥ और अपने ग्यारह पितरोंका उद्धार करते हैं. हे राजन् ! अपनेको पुत्र और स्त्रियोंको उद्धार करता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! श्रोताको दशांश हवन करना चाहिये. हे

राजन् ! यह मैंने सब आपके आगे वर्णन किया॥१३॥इसके स्मरणमात्रसे यह प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है, अपुत्र पुत्रको और निर्धन धनको प्राप्त होता है ॥१४॥ जो फल मनुष्योंको नरमेध और अश्वमेधसे प्राप्त होता है वह फल इस पुराणके श्रवणसे मिलता है ॥१५॥ ब्राह्मण हत्यारा, गर्भहत्यारा, गोहत्यारा, सुरापान करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ऐसे पुरुषभी एकवार पुराण श्रवण करनेसे पवित्र हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥१६॥ हे

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥१४॥ नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ तत्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरेः ॥१५॥ ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ इदं मया ते परिकीर्त्तितं महच्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ॥ शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात्फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥१७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम पञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३५ इति हरिवंशग्रन्थः समाप्तः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

राजन् ! यह मैंने तुम्हारे आगे श्रीकृष्णका अपार और अद्भुत चरित्र कीर्तन किया, इसके श्रवण पठन करनेसे यह प्राणी लोकमें दुर्लभ फलको प्राप्त होता है॥१७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रीशिवदयालमिश्रशर्मवंशावतंसश्रीसुखानंदमिश्रसूनोज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां श्रवणफलकथनं नाम पंचत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इदं पुस्तकं मोहमयीनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मज–खेमराजश्रेष्ठिना निज "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालये मुद्रितं प्रकाशितं च ॥

दोहा—कृष्णचन्द्र आनंदघन,सकल सुमंगलमूल ॥ द्विजज्वालाप्रसादपर, सदा रहहु अनुकूल ॥ १ ॥ छबिनिधान तारण तरण, गुणागार घनश्याम ॥ दीनबंधु अशरण शरण, गुणागार सुखधाम ॥ २ ॥ प्रभु तव कृपाकटाक्षते, मूक होहिं वाचाल ॥जन ज्वाला-प्रसादपर, द्रवहु सो दीनदयाल ॥ ३ ॥ चरित उदधि श्रीकृष्णके, को कवि पावे पार ॥ कछु भाषामें करि कहे, निजमतिके अनु-सार ॥ ४ ॥ व्यासरचित हरिवंशको, देवगिरा विस्तार ॥ सो प्राकृतभाषा कियो, दर्पणसदृश विचार ॥ ५ ॥ संस्कृतके अनुसार सब, पद अरु अर्थ मिलाय ॥ स्वच्छ तिलक भाषा कियो, सुनत सकल भ्रमजाय ॥ ६ ॥ संवत् गुण शर अंक विधु, मास अषाढ पवित्र ॥ शुक्ल पक्ष द्वितिया रवौ, पूर्‍यो ग्रंथ विचित्र ॥ ७ ॥ सब हरिभक्तनसे विनय, वारंवार महान ॥ याहि पढैं अतिप्रेमसे, दयादृष्टि अनुमान ॥ ८ ॥ पावनहित निजवचनके, मैं भाषान्तर कीन ॥ ज्यौं त्यौं भजिये कृष्णको, रहिये गुण लवलीन ॥ ९ ॥ आगम निगम पुराणको, इतनोही है सार ॥ भजन करहु भगवानके, जगजंजाल विसार ॥ १० ॥ सेठ शिरोमणि जगविदित, गंगाविष्णु सुजान ॥ कल्याणीमें रहत हैं, हरिके भक्त महान ॥ ११ ॥ संयम जप तप नियममें, तत्पर रहत सदाहि ॥ जिनके श्रीहरि भजनमें, निस दिन बीते जाहिं ॥ १२ ॥ ऋद्धि सिद्ध सुत सम्पदा, तिनके होहिं महान ॥ कृपा करहिं गोविंद नित, कृपासिंधु भगवान ॥१३॥ सकल देश पावन कियो, छापे ग्रंथ अपार ॥ यश छायो सब विश्वमें, जिमि सुरसरिकी धार ॥ १४ ॥ तिनके हित कीनो तिलक, भाषामें हरिवंश ॥ बाढहि तिनको वंश प्रभु, वैश्यवंश अवतंश ॥ १५ ॥ नारायणको सुमिरिये, भजिये राधाश्याम ॥ तिनकी कृपा कटाक्षते, सिद्ध होत सब काम ॥ १६ ॥ वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद ॥ तहां वसत हरि भजनरत, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ १७ ॥ सुमरि भवानी शंकरहि, महावीर हनुमान ॥ गणनायक पद पूजके, पूर्ण कियो सुख-दान ॥ १८ ॥ एहि जगमें जिन आयके, नहिं सुमिरे भगवान ॥ ताको इहि संसारमें, जन्म अकारथ जान ॥ १९ ॥ मात पिता गुरु देवको, प्रेमसहित शिर नाय ॥ भाषाटीकामें कियो, पूर्ण सुतिलक बनाय ॥ २० ॥ जिन जगमें अवतार ले, किय भक्तन मनकाम ॥ तिनको नित करिये भजन, जय श्रीराधेश्याम ॥ २१ ॥

॥ इति हरिवंशे भाषाटीकायुतं भविष्यपर्व समाप्तम् ॥

हमारे प्रकाशनो की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.,

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८




॥ इति भाषाटीकायुतो हरिवंशः समाप्तः ॥




खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई